Volume I , Issue V
Jan - March 2014

Reg. No.- MPHIN/28519/12/1/2012- TC
ISSN 2320-8767

Naveen Shodh Sansar

(An International Multidisciplinary Refereed Journal)

नवीन शोध संसार

Editor - Ashish Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795 - Vikas Nagar Extension 14/2 , NEEMUCH (M.P.) 458 441, (INDIA)
Mob. 09617239102 **Email** nssresearchjournal@gmail.com **Website** www.nssresearchjournal.com

‘श्री गणेशाय नम:’

नवीन शोध संसार

Reg. No.- MPHIN/28519/12/1/2012- TC
ISSN 2320-8767
Volume I Issue V, Jan. - March 2014

संरक्षक एवं अध्यक्ष निर्णायक मण्डल
डॉ. एल.एन. शर्मा 09425974314
प्राध्यापक वाणिज्य
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

सम्पादक
आशीष शर्मा
मो. 09617239102

प्रबंध सम्पादक
अपूर्व शर्मा
मो. 08989670811

मार्गदर्शक

(1) **श्री जे.एन. कांसोटिया** प्रमुख सचिव
उच्च शिक्षा म.प्र. शासन, मंत्रालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

(2) **प्रो.डॉ. आई.वी. त्रिवेदी** (कुलपति)
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

(3) **प्रो. डॉ. मोहनलाल छीपा** (कुलपति)
अटलबिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

(4) **प्रो. डॉ. शिवनारायण यादव** (पूर्व कुलपति) प्राचार्य
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

सम्पादक की अभिव्यक्ति

सम्माननीय शोधार्थियों

सादर वन्दे,

‘नवीन शोध संसार’ के द्वारा किये जा रहे नवीन प्रयास- राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी (फरवरी 2014, छिन्दवाड़ा) अंक एवं म.प्र. में उच्च शिक्षा के नये आयाम विशेषांक पर आप सभी के द्वारा जो सहयोग एवं प्रोत्साहन मिला है। उसका मैं दिल से सभी का धन्यवाद करता हूँ। इन प्रयासों की सफलता का श्रेय सभी शोधार्थियों को जाता है जिन्होंने हमारे इन प्रयासों में अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि, सभी के पुन: अनुरोध पर हम म.प्र. उच्च शिक्षा के नये आयाम विशेषांक को दो भागों में प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। जिसका प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है और उसकी सराहना से हम इसका द्वितीय भाग का प्रकाशन जुलाई 2014 में करेंगे। इस विशेषांक के उपशीर्षकों के साथ-साथ नियमावली में भी विस्तार किया है जिसमें शोधार्थियों के सुझाव सम्मिलित है। इस विशेषांक में शोध आलेख भेजने की अंतिम तिथि 15 जुलाई 2014 निर्धारित की गई है। शेष जानकारी हमारी वेबसाईट के एन.एस.एस. स्पेशल एडिशन सेक्शन पर उपलब्ध है।

भविष्य में भी आपके स्नेह सहयोग एवं मार्गदर्शन की कामना करते हुए आप सभी को पुन: धन्यवाद।

आपका

Ashish Sharma

आशीष शर्मा

‘नवीन शोध संसार’ का छोटा-सा अनुरोध-

✻ पेड़-पानी, ऊर्जा और बेटी बचाएँ

✻ गुटखा, बीड़ी, सिगरेट एवं शराब को ना कहें, इनसे कैंसर होता है।

सदस्यता शुल्क विवरण

✻ संस्थागत वार्षिक- ₹ 1200/-

✻ प्रति शोधार्थी वार्षिक - ₹ 700/-

शोधपत्र प्रकाशन राशि (सदस्यता अनिवार्य है)

✻ प्रति शोध पत्र - ₹ 800/-

(प्रति शोध पत्र अधिकतम 2000 शब्द)
अतिरिक्त प्रति 500 शब्द ₹ 200/-

(शोध पत्र प्रकाशन राशि में वार्षिक सदस्यता शुल्क सम्मिलित नहीं है)

इस शोध पत्रिका को प्रकाशित करते हुए पूर्ण सावधानी बरती गई है, फिर भी किसी प्रकार की त्रुटी के लिये सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक जिम्मेदार नहीं होंगे। समस्त विचारों का न्यायक्षेत्र नीमच होगा।

प्रिन्ट- मित्तल प्रिन्ट लाईन
282 विकास नगर 14/4, नीमच ☎ 228654

अनुक्रमणिका/Index

01 अनुक्रमणिका /Index 01

02 नवीन शोध संसार के बढ़ते कदम 07

03 क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल/सम्पादकीय सलाहकार मण्डल 08

04 निर्णायक मण्डल 09

05 प्रवक्ता साथी 11

(Science / विज्ञान)

06 Protective role of vitamin E supplementation on biochemical alterations induced by mercury chloride in Catfish Heteropneustes fossilis (Vinod Thakur, R.R. Kanhere, Rameshwar Jatwa) 13

07 Alterations in the activity of Enzyme AChE in the vital organs of Heteropneustes fossilis exposed to phenol and detergents. (Dr. Seema Dixit) 18

08 BIOGAS : An Biomass alternative Clean energy in rural Areas special reference to Sanwer Block of Indore District (M.P.) A Survey Report (Saroj Mahajan, Anita Gangrade) 22

09 Fixed point results in cone metric spaces (Girish Pandya, M.M. Sharma and Shushil Sharma) 25

10 Fixed point results in G-metric spaces (Girish Pandya, M.M. Sharma) 29

11 Signals Representation By Summability Theorem Involving Jacobi Series And Wavelets (S. D. Chaturvedi, R.C. Dixit, M.K. Mishra, Aditi Silawat) 32

12 Related Fixed Point Theorem for Two Complete Intuitionistic Fuzzy Metric Spaces (Sushil Sharma, Shashi Solanki) 35

13 Fixed Point Theorem on Three Complete Menger Spaces (Sushil Sharma, Shashi Solanki) 39

14 Fixed Points for Occasionally Weakly Biased Mapping (Sushil Sharma, Veer Singh Meda) 42

15 Fixed Point Theorem of Contraction Multivalued Mappings in Menger Space (Sushil Sharma, Veer Singh Meda) 44

(Home Science / गृह विज्ञान)

16 Effect of Globalization on Employment Opportunities of Women in India (Dr. Richa Saxena) 47

17 किशोरियों के संवेगात्मक परिपक्वता स्तर का अध्ययन (डॉ. मंजु शर्मा, शारदा भिण्डे) 51

18 आदिवासी क्षेत्र के 6-14 वर्ष के बच्चों का पर्यावरण संबंधी ज्ञान का स्तर (डॉ. सीमा रजा, डॉ. गीताली सेनगुप्ता) 54

19 महाविद्यालय में अध्ययनरत् किशोर तथा किशोरियों का समायोजन का स्तर ज्ञात करना (कु. अन्तिमबाला नामदेव, डॉ. रश्मि वर्मा) 56

20 उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विभिन्न अभिकरणों द्वारा संचालित विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कार्यसंबंधी प्रतिबल का तुलनात्मक अध्ययन (अलका नायक) 58

21 बालिका का घटता अनुपात : चिंतनीय विषय (डॉ रंजू गुप्ता) 61

22 स्वास्थ्य संबंधी योजनाएँ एवं महिला सशक्तिकरण (जननी सुरक्षा योजना खण्डवा जिले के विशेष संदर्भ में) 63
(डॉ. गीताली सेनगुप्ता)

23 महिलाओं तथा किशोरियों के स्वास्थ्य की स्थिति (डॉ. कलिका डोलस) 65

(Commerce & Management / वाणिज्य एवं प्रबंध)

24 Perception of Employees towards Women Leaders 67
(Prof., Harvinder Soni, Yashwant Singh Rawal)

25 Role of Jawaharlal Nehru National Urban Renewal Mission (JNNURM) for the Infrastructural 70
Development of Madhya Pradesh (Dr. Ashish Pathak, Reeta Chawla)

26 Role Of Foreign Direct Investment In India (S.K. Maheshwari, Ankita Pipada) 74

27 The Career Opportunity in Human resource management (Dr. Nilofar Qureshi, Dr. R.B. Gupta) 76

28 Retail Marketing in Rural India (Dr. Devendra Singh Rathore) 79

29 Trade & Export Policy and External Sector (S.K. Maheshwari, Ankita Pipada) 81

30 Role of Mobile Phones in Rural and Agricultural Development 83
(Dr. Sanjay Prasad, Prof. Deepali Amb (Prasad)

31 Management and Institutional Planning (Meenu Ghazala Khan) 86

32 Role of women entrepreneurs in india (Dr. Vimmi behal, Dr. Anil shivani) 87

33 Analysis Of The Infrastructure Development And Management Of 88
(Mid Day Meal Scheme In Madhya Pradesh) (Dr. Satish Maheshwari, Madan Mohan Vishwakarma)

34 भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान (डॉ.लक्ष्मण परवाल) 92

35 जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित मंदसौर की वित्तीय स्थिति का विश्लेषण एवं अध्ययन (डॉ. अनुभा गुप्ता बड़ेरा) 94

36 म.प्र. मूल्यवर्धित कर प्रणाली एवं वाणिज्यिक कर प्रणाली का तुलनात्मक (डॉ. महेन्द्र कुमार जैन, डॉ. अनिता पंवार) 96

37 प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का कृषि पर प्रभाव (रतलाम जिले के विशेष संदर्भ में) (डॉ. मालसिंह चौहान) 98

38 राष्ट्रीय आवास बैंक का ग्रामीण आवास में योगदान - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. सतीश माहेश्वरी, किशोर मोरे) 102

39 औद्योगिक रूग्णता (पीथमपुर औद्योगिक क्षेत्र की रुग्ण औद्योगिक इकाइयों के विशेष संदर्भ में) 104
(डॉ. राकेश माथुर, गौरव राठौर इन्दौर)

40 जनसंख्या वृद्धि और पर्यावरण पर उसका प्रभाव (डॉ. किशोर कुमार डावर, डॉ. अर्जुन सिंह बघेल) 106

41 दुग्ध उत्पादन व्यवसाय से आय एवं स्वरोजगार का अध्ययन (डॉ. सतीश माहेश्वरी, प्रो.मोहनसिंह वास्केल) 108

42 भारत में जल संसाधन के संरक्षण एवं शुद्धता संधारण की आवश्यकता -एक अध्ययन 110
(डॉ. रश्मि शर्मा, डॉ. पी. एस. पटेल)

43 भारत के संदर्भ में महिला उद्यमिता - एक अध्ययन (डॉ. संजय पंडित) 113

44 गैर प्रतिचयन त्रुटियाँ (डॉ.प्रकाश कुमार जैन, श्रीमती अस्मिता श्रीमाल (जैन) 115

45 भारतीय परिदृश्य में उद्यमियों की चुनौतियाँ एवं अवसर (डॉ. राकेश माथुर, प्रो. विकास बक्षी) 117

46 भारत में वैश्वीकरण एवं उच्च शिक्षा (डॉ. संजय पंडित) 121

(Economics / अर्थशास्त्र)

47 Estimation Of Input Elasticies In Indian Agricultural Sector (Dr. Vinod Kumar Sharma) 123

48 मंदसौर जिले के कृषि वित्त पोषण में सहकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों का योगदान-एक तुलनात्मक अध्ययन 125
(डॉ. अनुभा गुप्ता बड़ेरा)

49 जैविक खेती को प्रभावित करने वाले घटक (कु. सुरेखा यादव, डॉ. कमला गुप्ता) 127

50 बैंकिग क्षेत्र द्वारा कृषि साख – (नीमच जिले के विशेष संदर्भ में) (डॉ. रिखब चन्द्र जैन) 129

51 विनियोग के क्षेत्र में म्यूचुअल फंड का अध्ययन (डॉ. सचिन शर्मा, सतीश जायसवाल) 131

52 राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा प्रदत्ता कृषि ऋणों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन (मंदसौर जिले के विशेष संदर्भ में) 133
(डॉ. अनुभा गुप्ता बड़ेरा)

53 अनुसूचित जाति की महिलाओं में उद्यमिता विकास (डॉ. मीना मटकर) 136

54 म. प्र. में महिला सशक्तिकरण से लिंगानुपात पर प्रभाव एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. प्रभावती भावसार) 138

55 जनसंख्या वृद्धि और बढ़ता लिंगानुपात (झाबुआ जिले के संदर्भ में) (प्रो. हेमता डुडवे) 140

56 रिटेल बाजार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (डॉ. प्रभावती भावसार, डॉ. अंजू जगधारी) 142

(Political Seience / राजनीति विज्ञान)

57 भ्रष्टाचार में डूबे देश के लिए लोकपाल विधेयक कितना आवश्यक : एक विश्लेषण (डॉ.प्रदीपसिंह राव) 144

58 भारतीय विदेश नीति निर्माण में जनमत की भूमिका (अनिल कुमार चन्देल) 146

59 भारत में जन-आंदोलन एवं संवैधानिक मर्यादाए (डॉ. आभा तिवारी) 148

60 भारत में नक्सलवाद का इतिहास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (जगदीश मासोदकर) 150

61 दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क) 1985-2011 (डॉ. नरेन्द्र ओझा) 152

62 भारत में संसदीय लोकतंत्र का विकास (डॉ. अनिल कुमार जैन) 153

63 भारत में बालश्रम की समस्या एवं समाधान (अंजना बुन्देला) 155

64 आधुनिक जीवन शैली से जल प्रदूषण (डॉ. वंदना मालवीया) 158

65 भारत में पंचायतों को स्वायत्ता : एक मूल्याकंन (डॉं. अनिल कुमार जैन) 161

66 भारतीय राजनीति की उभरती हुई प्रमुख प्रवृत्तियां एवं उनका निदान (डॉ. नरेन्द्र ओझा) 163

67 मानव अधिकार विकास एवं चुनौतियाँ (भारत के विशेष संदर्भ में) (डॉ. संजय सोहनी) 164

68 लोकपाल से लगे भ्रष्टाचार पर लगाम (डॉ. संजय सोहनी, डॉ. अनिता राय बाथम) 166

(History / इतिहास)

69 19 वी सदी के भारत में राजनीतिक संगठनों की राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका की समीक्षा (मधुसुदन प्रकाश) 168

70 मालवी लोकगीतों में प्रतिबिम्बित मालवा का चित्रण (डॉ. दिनेश कुमार सूर्यवंशी) 172

71 प्राचीन कालीन मुस्लिम विधिक प्रणाली (डॉ.गुलाबसिंह मेवाड़ा) 174

72 ब्रिटीशकालीन महिला सुधार आंदोलन (बंगाल और महाराष्ट्र के संदर्भ में)(डॉ. राजेश सकवार) 176

(Geography / भूगोल)

73 ग्रामीण विकास में आवर्ती विपणन केन्द्रों की भूमिका (म.प्र. के पश्चिमी निमाड़ के विशेष सन्दर्भ में) 177
(डॉ. मोहन निमोले, डॉ प्रमिला बघेल)

74 मध्य प्रदेश में विदेशी पूंजी निवेश : भौगोलिक प्रभाव और समाधान (डॉ. प्रभाकर मिश्र) 181

75 मंदसौर जिले में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग (डॉ. आर. के.श्रीवास्तव, डॉ. देवीलाल बामनियॉ) 185

76 पर्यावरण एवं श्रमिक : स्लेट पेंसिल उद्योग के संदर्भ में एक भौगालिक अध्ययन (प्रो. शाांतिलाल ईरवार) 188

77 मानचित्रों का विकास, उनके प्रकार एवं उपयोगिता (आलेख) (डॉ. संजय सोहनी) 191

(Sociology / समाजशास्त्र)

78 A comparative study of Social Intelligence among male and female college students 193
(Dr. Shipra Lavania, Dr. Rashmi Singh)

79 त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में महिला नेतृत्व की भूमिका (मन्दसौर तहसील के संदर्भ में)(डॉ. जाग्रति आर्य) 196

80 ध्वनि प्रदूषण का मानव स्वास्थ पर प्रभाव (डॉ. मंजू राजोरिया) 198

81 ग्लोबल वार्मिंग का गहराता संकट (डॉ. प्रार्थना निगम, प्रो. अनामिका प्रजापति) 200

82 युवा वर्ग में आत्महत्या एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण (डॉ. मंजू राजोरिया) 203

83 बदलते मूल्य एवं वृद्धावस्था (डॉ. राजश्री शाह) 205

84 निरक्षरता नियति नहीं है (प्रो. प्रिशिला अन्द्रेय्स) 207

85 संचार माध्यम, मनोरंजन और सामाजिक परिवर्तन (डॉ. आरती व्यास) 209

86 दलित महिलाओं की सामाजिक समस्याऐं (कु. रेखा रावत) 210

(English Literature / अंग्रेजी साहित्य)

87 Cross Cultural Exploration of Feminist Strands: A Comparison of Toni 211
Morrison's Sula and Shashi Deshpande's A Matter Of Time. (Ms Vanashree Godbole)

88 Thematic Concerns In the Novels of D.H. Lawrence (Prof. Rajshree Sharma) 215

89 Milton as an epic poet (Dr. Supriya Paithankar) 218

90 Creating Identity : Chitra Banerjee Divakaruni's The Vine of Desire (Dr. Veena Singh) 220

91 Thematic Analysis of Yann Martel's Fiction 'Life of Pi' (Prof. Chandrakanta Tejwani) 222

92 Exploration of Feminine Psyche in Cry the Peacock (Dr. Jyoti Vaidya) 225

93 The Yoga of Action in Shri Aurobindo's 'Essays on Gita' (Dr. Jyoti Taneja) 227

94 Aristotle As Critic (Prof. Sorabh E Lal) 230

(Hindi Literature / हिन्दी साहित्य)

95 दिनकर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन (प्रीति शुक्ला, प्रवीनलता) 232

96 कबीर वाणी में सच के साक्ष्य (डॉ.कमलेशसिंह नेगी) 234

97 बुन्देली लोक नाट्य (डॉ. वंदना जैन) 236

98 रूढ़िवादिता पर कबीर का प्रहार (डॉ. कांति पचौरी) 238

99 मीडिया और भाषा का अन्तर्संबंध एवं प्रभाव (डॉ.सुनीता यादव) 241

100 हिन्दी रंगमच : दशा एवं दिशा (उमेश कुमार चरपे) 243

101 'कमारी' वैवाहिक संदर्भ में– द्वितीय भाग (डॉ. सुशील सोमवंशी) 245

102 महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व व कृतित्व का अनुशीलन (चन्दनबाला सोनी) 249

103 भारतीय चेतना के वाहक एवं प्रसारक– प्रेमचंद (चन्दनबाला सोनी) 251

104 आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की समीक्षा दृष्टि (पंत एवं प्रसाद के विशेष संदर्भ में)(डॉ. चन्दा तलेरा जैन) 253

105 अपभ्रंश, अपभ्रांश भाषा और पुरानी हिन्दी (डॉ. साधना निर्भय) 254

106 कुछ प्रमुख संत कवि और धर्मनिरपेक्षता (डॉ. रशीदा खान) 255

(Music & Dance / संगीत एवं नृत्य)

107 संगीत के प्रचार में जन संचार माध्यमों की भूमिका (डॉ. बी. वर्षा) 256

108 कथक (नृत्य) में कवित्त का सौन्दर्य (डॉ. सुचित्रा हरमलकर) 258

109 शास्त्रीय नृत्य शैली कथक का उद्‌भव (डॉ. भावना ग्रोवर) 261

(Law/ विधि)

110 Provision Relating To Guardianship Under Hindu Law And Its Impact On Present Scenerio (Mrs. Anuradha Tiwari) 264

111 Is Security Of Women And Children Under The Purview Of Article 21 (Mrs. Anuradha Tiwari) 266

112 Broadcasting Reproduction Of Copyright V/S Public Interest (Mrs. Anuradha Tiwari) 268

113 Every Business is done with a view to make profits and a Company is no exception to this rule. (Mrs. Anuradha Tiwari) 270

114 न्याय आयुर्विज्ञान और चिकित्सा न्याय शास्त्र का अध्ययन एंव महत्व (डॉ. एस.एन. शर्मा) 272

115 महिला सशक्तिकरण एंव लैंगिक न्याय की अवधारणा (डॉ. एस.एन. शर्मा) 274

116 समलैंगिक संबंध : विधिक,व्यवहारिक व अपराधिक पहलू (डॉ.संजय कुमार मिश्रा, श्रीमती लीना अग्रवाल) 276

(Education / शिक्षा)

117 A Study Of Social Adjustment Of Arts And Science College Students In Dahod (Rizvana. S. Saiyed) 278

118 A Study Of Training In Heritage And Non-heritage Hotels Of Rajsthan (D.S. Solanki) 279

119 A group resonance intervention with a volleyball team (Dr. Hitesh Chandra Rawal) 282

120 Science and society : people's awareness towards pollution problem (Dr. Seema Sharma) 286

121 Assurance In Higher Quality Education (Dr. Vimmi Behal, Dr. O.P. Sharma) 289

122 उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का समस्या समाधान कौशल के साथ सम्बन्ध का अध्ययन 290
(डॉ. अर्चना श्रीवास्तव, सोनाली पण्डित)

123 उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक चरों पर विद्यालय वातावरण के प्रभाव का 293
तुलनात्मक अध्ययन (पियूषा मोरे)

124 राजस्थान एवं गुजरात के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में तनाव के स्तरों की तुलना (रमणीक जैन)..................... 295

125 उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति जागरूकता का अध्ययन 297
(डॉ. अर्चना श्रीवास्तव, श्रीमती राखी शर्मा)

126 सक्रिय अधिगम प्रविधि – (प्रारम्भिक स्थितियाँ) (प्रो. सरोज सिंह हाडा) 299

(Other / अन्य)

127 Effect Of Yogic Practices On Emotional States Of College Students 302
(Dr. B.K. Chaudhary, Pranveer Singh Chouhan)

128 गुणवत्ता उन्नयन का पर्याय – सी.सी.ई. मॉडल (डॉ. अशोक अग्रवाल, डॉ. सरिता अग्रवाल) 304

129 मूल्यों, गुणों एवं व्यावहारिक शिक्षा से दूर होती उच्च शिक्षा (डॉ. संजय जोशी)... 306

130 बदलते समाजीकरण में बच्चों पर इंटरनेट का प्रभाव (डॉ. अंजना जैन) 308

131 शासकीय योजनाओं में आदिवासी महिलाओं की स्थिति (मप्र के संदर्भ में) (डॉ. डी.डी. महाजन) 310

132 स्वामी विवेकानन्द के विचार आज की समस्याओं के समाधान (डॉ. सुमन तनेजा) 311

133 विवेकानन्द और भारतीय नवजागरण (बल्लु सिंह मुवेल)... 313

134 युवाओं का समाजीकरण और सामाजिक परिवर्तन (डॉ. शबनम खान) 315

135 वैश्वीकरण और दलित (डॉ. पुष्पा शाक्य)... 317

136 भारतीय दर्शन में धर्म की संकल्पना (डॉ. पुष्पा कपूर) 319

137 स्व शक्ति परियोजना–एक मूल्यांकन (म. प्र. के सन्दर्भ में) (डॉ. सारिका मिश्रा, डॉ अंतिमबाला जैन) 321

138 योग का महत्व (आलेख) (श्रीमती भावना ठाकूर).. 323

139 रामकथा का उद्भव और विकास (प्रो. मनु श्रॉफ).. 325

140 याददाश्त बनाएँ धारदार ! एलर्ट बनें (शोध आलेख) (डॉ. संजय सोहनी, डॉ. अनिता राय बाथम).......................... 327

141 स्वर्ण उत्खनन् आकर्षण (आलेख) (डॉ. सतीश माहेश्वरी, तृप्ति माहेश्वरी) 329

142 'सहकारिता'–सामाजिक आर्थिक उत्थान का सशक्त आधार (डॉ. रोहित पाटीदार) 330

****

नवीन शोध संसार के बढ़ते कदम...

शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय छिन्दवाड़ा में आयोजित राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी में नवीन शोध संसार द्वारा प्रकाशित विशेष संस्करण का विमोचन करते हुए अतिथि, प्राचार्य एवं स्टॉफ के सदस्य

माखनलाल चतुर्वेदी शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय खण्डवा में नवीन शोध संसार के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल का विमोचन महाविद्यालय के प्राचार्य, प्राध्यापक एवं अन्य गणमान्यजन द्वारा

क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय (Regional Editor Board- International & National) मानद्

(01) श्री अशोककुमार .... एम्प्लॉयब्लिटी ऑपरेशन्स मैनेजर, एक्शन ट्रेनिंग सेन्टर लि. लन्दन, यूनाईटेड किंगडम
(02) श्री खगेन्द्रप्रसाद सुबेदी .... सीनियर सॉयकोलॉजिस्ट, पब्लिक सर्विस कमीशन, सेन्ट्रल ऑफिस, अनामनगर, काठमाँडू, नेपाल
(03) प्रो. डॉ. ज्ञानचंद खिमेसरा .... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत
(04) प्रो. डॉ. प्रमोद कुमार राघव .... शोध निदेशक, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्व विद्यालय, जयपुर (राज.) भारत
(05) प्रो. डॉ. एन.एस.राव. .... संचालक, जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
(06) प्रो. डॉ. अनूप व्यास. .... संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन), देवी अहिल्या विश्व विद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(07) प्रो. डॉ. पी.पी. पाण्डे .... संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन), अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
(08) प्रो. डॉ. संजय भयानी. .... अध्यक्ष, व्यवसाय प्रबंध विभाग, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट (गुजरात) भारत
(09) प्रो. डॉ. प्रताप राव कदम .... अध्यक्ष, वाणिज्य शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत
(10) प्रो. डॉ. बी.एस. झरे . ... प्राध्यापक वाणिज्य विभाग, श्री शिवाजी महाविद्यालय, आकोला (महाराष्ट्र) भारत
(11) प्रो. डॉ. राकेश शर्मा .... अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा) भारत
(12) प्रो. डॉ. संजय खरे .... प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शास. स्वशासी कन्या स्नात. उत्कृष्टता महा., सागर (म.प्र.) भारत
(13) प्रो. डॉ. आर.पी. उपाध्याय .... परीक्षा नियंत्रक, शासकीय कमलाराजे कन्या स्वशासी स्नातकोत्तर महा., ग्वालियर (म.प्र.) भारत
(14) प्रो. डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा .... प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महा., भोपाल (म.प्र.) भारत
(15) प्रो. अखिलेश जाधव .... प्राध्यापक, भौतिकी, शासकीय जे. योगानन्दम् महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) भारत
(16) प्रो. डॉ. कमल जैन .... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगौन (म.प्र.) भारत
(17) प्रो. डॉ.डी.एन. खड़से .... प्राध्यापक, वाणिज्य, धनवते नेशनल कॉलेज, नागपुर (महाराष्ट्र) भारत
(18) प्रो.डॉ. वन्दना जैन .... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(19) प्रो. डॉ. शिव कुमार दुबे .... प्राध्यापक, भूगोल, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.) भारत
(20) प्रो. डॉ. शारदा त्रिवेदी .... सेवानिवृत्त प्राध्यापक, गृहविज्ञान, इंदौर (म.प्र.) भारत
(21) प्रो. डॉ. उषा श्रीवास्तव .... अध्यक्ष हिन्दी विभाग, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेच्यूट स्टडी. सोलदेवानली, बैंगलुरू (कर्ना.) भारत
(22) प्रो. डॉ. गणेशप्रसाद दावरे .... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, बड़वाह (म.प्र.) भारत
(23) प्रो. डॉ. एच.के. चौरसिया .... प्राध्यापक, वनस्पति टी.एन.वी. महाविद्यालय, भागलपुर (बिहार) भारत
(24) प्रो. डॉ. विवेक पटेल .... प्राध्यापक, वाणिज्य शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत
(25) प्रो. डॉ. दिनेशकुमार चौधरी .... प्राध्यापक, वाणिज्य शासकीय कन्या महविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत
(26) प्रो. डॉ. पी.के. मिश्रा .... प्राध्यापक प्राणी शास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैतूल (म.प्र.) भारत
(27) प्रो. डॉ. जितेन्द्र के. शर्मा .... प्राध्यापक वाणिज्य एवं प्रबंध महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय केन्द्र, पालवाल (हरियाणा) भारत

सम्पादकीय सलाहकार मण्डल (Editorial Advisory Board, INDIA) मानद्

(01) प्रो. डॉ. नरेन्द्र श्रीवास्तव .... प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'इसरो' बैंगलुरू (कर्नाटक) भारत
(02) प्रो. डॉ. आदित्य लूनावत .... निदेशक, स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर (म.प्र.) भारत
(03) प्रो. डॉ. संजय जैन .... नियंत्रक, म.प्र. व्यावसायिक परीक्षा मंडल भोपाल (म.प्र.) भारत
(04) प्रो. डॉ.एस.के. जोशी .... प्राचार्य, शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय रतलाम (म.प्र.) भारत
(05) प्रो. डॉ. जे.पी.एन. पाण्डेय .... प्राचार्य, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्ता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत
(06) प्रो. डॉ. अशोका श्रीवास्तव .... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत
(07) प्रो. डॉ. सुमित्रा वास्केल .... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगौन (म.प्र.) भारत
(08) प्रो. डॉ. पी.आर. चन्देलकर .... प्राचार्य, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत
(09) प्रो. डॉ. अशोक वर्मा .... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सेंधवा (म.प्र.) भारत
(10) प्रो. डॉ. राकेश ढण्ड .... संकायाध्यक्ष, विद्यार्थी कल्याण विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(11) प्रो. डॉ. अनिल शिवानी .... अध्यक्ष, वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग श्री अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) भारत
(12) प्रो. डॉ. बी.के. मेहता .... अध्यक्ष, रसायन एवं जैविक रसायन अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन (म.प्र.) भारत
(13) प्रो. डॉ. पद्मसिंह पटेल .... अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग शासकीय महाविद्यालय महिदपुर (म.प्र.) भारत
(14) प्रो. डॉ. मंजु दुबे .... संकायाध्यक्ष (डीन), गृह विज्ञान संकाय, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.) भारत
(15) प्रो. डॉ.ए.के. चौधरी .... प्राध्यापक, मनोविज्ञान, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
(16) प्रो. डॉ. के.एल. जाट .... प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, भौतिकी विभाग शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

निर्णायक मण्डल (Referee Board) मानद्

**** विज्ञान संकाय ****

गणित:- .... **(1) प्रो. डॉ.वी.के. गुप्ता**, संचालक वैदिक गणित एवं शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

भौतिकी:- .... **(1) प्रो. डॉ. एन.के. डबकरा**, शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

(2) प्रो.डॉ. रवि कटारे, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

कम्प्यूटर विज्ञान:- .... **(1) प्रो. डॉ. उमेश कुमार सिंह** अध्यक्ष कम्प्यूटर अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

रसायन:- .... **(1) प्रो. डॉ. बी.के. दानगढ़**, समन्वयक राष्ट्रीय इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, केन्द्र नीमच (म.प्र.)

वनस्पति:- .... **(1) प्रो. डॉ. सुचिता जैन**, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)

(2) प्रो.डॉ. अखिलेश आयाची, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्राणिकी:- .... **(1) प्रो.डॉ. आर.के. भट्ट**, प्राचार्य, शासकीय कन्या महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)

(2) प्रो.डॉ. मंजुलता शर्मा, एम.एस.जे., राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)

(3) प्रो. डॉ. अमृता खत्री, माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)

सांख्यिकी:- .... **(1) प्रो. डॉ. रमेश पण्ड्या**, शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

सैन्य विज्ञान:- .... **(1) प्रो. डॉ. कैलाश त्यागी**, शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

जीव रसायन:- .... **(1) डॉ. कंचन डींगरा**, शासकीय एम.एच. गृह विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भूगर्भ शास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. वी. कुलश्रेष्ठ**, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

चिकित्सा विज्ञान:- .... **(1) डॉ. एच.जी. वरूधकर**, आर.डी. गारड़ी मेडिकल महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

**** वाणिज्य संकाय ****

वाणिज्य :- .... **(1) प्रो. डॉ. पी.के. जैन**, शासकीय हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. बी.एस. मक्कड़, शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

(3) प्रो. डॉ. लक्ष्मण परवाल, शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

**** प्रबंध संकाय ****

प्रबंध :- .... **(1) प्रो. डॉ. रामेश्वर सोनी**, अध्यक्ष अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

मानव संसाधन:- .... **(1) प्रो. डॉ. हरविन्दर सोनी**, पैसेफिक बिजनेस स्कूल, उदयपुर (राज.)

**** व्यवसाय प्रशासन संकाय ****

व्यवसाय प्रशासन:- .... **(1) प्रो. डॉ. कपिलदेव शर्मा**, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)

**** विधि संकाय ****

विधि:- .... **(1) प्रो. डॉ. एस.एन. शर्मा**, शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, प्राचार्य श्री जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर विधि महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

**** कला संकाय ****

अर्थशास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. पी.सी. रांका**, शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. जे.पी. मिश्रा, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

(3) प्रो. डॉ. कमलेश श्रीवास्तव, विजयाराजे शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुरार, ग्वालियर (म.प्र.)

राजनीति:- .... **(1) प्रो. डॉ. रवींद्र सोहोनी**, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह राव, शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला रतलाम (म.प्र.)

समाजशास्त्र:- .... (1) **प्रो. डॉ. आशुतोष व्यास,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़ (राज.)
(2) **प्रो. डॉ. एच.एल. फुलवरे,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)

हिन्दी:- .... (1) **प्रो. डॉ. चन्दा तलेरा जैन,** अध्यक्ष अध्ययन मण्डल, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र)
(2) **प्रो. डॉ. जया प्रियदर्शनी शुक्ला,** वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

अंग्रेजी:- .... (1) **प्रो. डॉ. प्रशांत मिश्रा,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

संस्कृत:- .... (1) **प्रो. डॉ. भावना श्रीवास्तव,** शासकीय स्वशासी महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

इतिहास:- .... (1) **प्रो. डॉ. मदनलाल पंवार,** पूर्व प्राचार्य शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. नवीन गिडियन,** शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भूगोल:- .... (1) **प्रो. डॉ. राजेन्द्र श्रीवास्तव** शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामण्डी, जिला मंदसौर (म.प्र.)
(2) **प्रो. डी.डी. विश्वकर्मा,** शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

दर्शनशास्त्र:- .... (1) **प्रो. डॉ. हेमन्त नामदेव,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

मनोविज्ञान:- .... (1) **प्रो. डॉ. कामना वर्मा,** शासकीय राजमाता सिंधिया कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. सरोज कोठारी,** शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

चित्रकला:- .... (1) **प्रो. डॉ. अल्पना उपाध्याय,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. रेखा श्रीवास्तव,** महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

संगीत:- .... (1) **प्रो. डॉ. भावना ग्रोवर (कथक),** सुभारती विश्व विद्यालय मेरठ (उ.प्र.)

✻✻✻ गृह विज्ञान संकाय ✻✻✻

आहार एवं पोषण विज्ञान:- .... (1) **प्रो.डॉ. प्रगति देसाई,** शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(2) **डॉ. मधु गोयल,** स्वामी केशवानन्द गृह विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
(3) **डॉ. संध्या वर्मा,** शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

मानव विकास:- .... (1) **प्रो.डॉ. मीनाक्षी माथुर,** अध्यक्ष, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
(2) **प्रो.डॉ. आभा तिवारी,** अध्यक्ष अध्ययन मण्डल रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

पारिवारिक संसाधन प्रबंध:- ... (1) **प्रो.डॉ. मंजु शर्मा,** माता जीजाबाई कन्या शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(2) **प्रो.डॉ. नम्रता अरोरा,** वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

✻✻✻ शिक्षा संकाय ✻✻✻

शिक्षा .... (1) **प्रो. डॉ. मनोरमा माथुर,** प्राचार्य, अरावली शिक्षा महाविद्यालय, फरीदाबाद (हरियाणा)
(2) **प्रो. डॉ. एन.एम.जी. माथुर,** प्राचार्य एवं डीन पेसेफिक शिक्षा महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(3) **प्रो. डॉ. अर्चना श्रीवास्तव,** बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)

✻✻✻ शारीरिक शिक्षा संकाय ✻✻✻

शारीरिक शिक्षा .... (1) **प्रो. डॉ. अक्षयकुमार शुक्ला,** अध्यक्ष शारीरिक शिक्षा पेसेफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

✻✻✻ ग्रन्थालय विज्ञान संकाय ✻✻✻

ग्रन्थालय विज्ञान .... (1) **डॉ. अनिल सिरौठिया,** शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

प्रवक्ता साथी (मानद्)

(01) प्रो. डॉ. आर.के. गुजेटिया .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(02) प्रो. श्रीमती विजया वधवा .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(03) डॉ. सुरेंद्र शक्तावत .... ज्ञानोदय इंस्टीट्यूट ऑफ मेनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी, नीमच (म.प्र.)
(04) प्रो. डॉ. देवीलाल अहीर .... शासकीय महाविद्यालय, जावद, जिला नीमच (म.प्र.)
(05) श्री आशीष द्विवेदी .... शासकीय महाविद्यालय, मनासा, जिला नीमच (म.प्र.)
(06) प्रो. डी.एस. फिरोजिया .... शासकीय महाविद्यालय, रामपुरा, जिला नीमच (म.प्र.)
(07) श्री उमेश शर्मा .... कृष्णा शिक्षा महाविद्यालय, जावी, जिला- नीमच (म.प्र.)
(08) प्रो. डॉ.पी.डी. ज्ञानानी .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(09) प्रो. डॉ. पूरालाल पाटीदार .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(10) प्रो. डॉ. क्षीतिज पुरोहित .... जैन कला-वाणिज्य-विज्ञान महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(11) प्रो. डॉ.एन.के. पाटीदार .... शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामंडी, जिला मन्दसौर (म.प्र.)
(12) प्रो. डॉ. वाय.के. मिश्रा .... शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(13) प्रो. डॉ. सुरेश कटारिया .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(14) प्रो. डॉ. अभय पाठक .... शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(15) प्रो. डॉ. मालसिंह चौहान .... शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला रतलाम (म.प्र.)
(16) प्रो. डॉ.गेंदालाल चौहान .... शासकीय विक्रम महाविद्यालय, खाचरौद, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(17) प्रो. डॉ. प्रभाकर मिश्र .... शासकीय महाविद्यालय, महिदपुर, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(18) प्रो. डॉ. प्रकाश कुमार जैन .... शासकीय माधव कला वाणिज्य विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(19) प्रो. डॉ. अरूणा दुबे .... शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(20) प्रो. आभा दीक्षित .... शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(21) प्रो. डॉ. पंकज माहेश्वरी .... शासकीय महाविद्यालय, तराना, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(22) प्रो. डॉ. डी.सी. राठी .... स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ, उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर
(23) प्रो. डॉ. आर.सी. दीक्षित .... शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(24) प्रो. डॉ. संजय अग्रवाल .... शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)
(25) प्रो. डॉ. लता जैन .... शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(26) प्रो. डॉ. कहकशा खान .... शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(27) डॉ. सोनाली नरगुन्दे .... पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(28) डॉ. अदिति देसाई .... श्री अरविन्दो इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साईन्स, इन्दौर (म.प्र.)
(29) डॉ. एम.डी. सोमानी .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(30) डॉ. प्रीति भट्ट .... शासकीस एन.एस.पी. विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(31) डॉ. संजय प्रसाद .... शासकीय महाविद्यालय, सांवेर, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(32) प्रो. डॉ. मीना मटकर .... सुगनीदेवी कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(33) प्रो. डॉ.सुनीलकुमार सिकरवार .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.)
(34) प्रो. डॉ. जी.सी. मेहता .... शासकीय महाविद्यालय, थांदला, जिला झाबुआ (म.प्र.)
(35) प्रो. डॉ. मंजु राजोरिया .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)
(36) प्रो. डॉ. शहजाद कुरैशी .... शासकीय नवीन कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, मूंदी, जिला खण्डवा (म.प्र.)
(37) प्रो. डॉ. शैल वाला गाँधी .... महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(38) प्रो. डॉ. प्रवीण ओझा .... श्री भगवत सहाय शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(39) प्रो. डॉ. सीमा दीक्षित .... सरोजनी नायडू शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(40) प्रो. डॉ. एस.के. श्रीवास्तव .... शासकीय विजया राजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(41) प्रो. डॉ. अनूप मोघे .... शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(42) प्रो. डॉ. ए.के. बरैया .... आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(43) प्रो. डॉ. महेशचन्द्र गुप्ता .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगौन (म.प्र.)

(44) प्रो. डॉ. मंगला ठाकुर .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वाह, जिला खरगोन (म.प्र.)
(45) प्रो. डॉ. के.आर. कुम्हेकर .... शासकीय महाविद्यालय, सनावद, जिला खरगोन (म.प्र.)
(46) प्रो. डॉ. आर.के. यादव .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, खरगौन (म.प्र.)
(47) प्रो. डॉ. नटवरलाल गुप्ता .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.)
(48) प्रो. डॉ.रवींद्र कान्हेरे .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.)
(49) प्रो. डॉ. मीरा जामोद .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(50) प्रो. डॉ. प्रभा पाण्डेय .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मैहर, जिला- सतना (म.प्र.)
(51) डॉ. राजेश कुमार .... शासकीय महाविद्यालय अमरपाटन, जिला-सतना (म.प्र.)
(52) प्रो. डॉ. रावेन्द्रसिंह पटेल .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(53) प्रो. डॉ. मनोहरलाल गुप्ता .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा (म.प्र.)
(54) प्रो. डॉ. मधुसुदन प्रकाश .... शासकीय महाविद्यालय, गंजबासोदा, जिला-विदिशा (म.प्र.)
(55) श्रीमती भारती खरे .... एस.एस.एल. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, विदिशा (म.प्र.)
(56) प्रो. डॉ. सुनील वाजपेयी .... शासकीय तिलक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)
(57) प्रो. डॉ. के.एल. साहू .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)
(58) प्रो. डॉ. यतीन्द्र महोबे .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)
(59) प्रो. डॉ. रंजु गुप्ता .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर-मालवा (म.प्र.)
(60) प्रो. डॉ. नियाज अंसारी .... शासकीय महाविद्यालय,सिंहावल, जिला सीधी (म.प्र.)
(61) प्रो. डॉ. अर्जुनसिंह बघेल .... शासकीय महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.)
(62) डॉ. सुरेश कुमार विमल .... शासकीय महाविद्यालय, भैंसादेही, जिला बैतूल (म.प्र.)
(63) प्रो. डॉ. अमरकुमार जैन .... शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(64) प्रो. डॉ. आनंद तिवारी .... शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(65) प्रो. डॉ. ए.के. जैन .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीना, जिला- सागर (म.प्र.)
(66) प्रो. डॉ. संध्या टिकेकर .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला- सागर (म.प्र.)
(67) प्रो. डॉ. राजीव शर्मा .... शासकीय नर्मदा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(68) प्रो. डॉ. रश्मि श्रीवास्तव .... शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(69) प्रो. डॉ. लक्ष्मीकांत चंदेला .... शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
(70) प्रो. डॉ. बलराम सिंगोतिया .... शासकीय महाविद्यालय सौंसर, जिला-छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(71) प्रो.डॉ. विम्मी बहल .... शासकीय महाविद्यालय, काला पीपल, जिला - शाजापुर (म.प्र.)
(72) प्रो. डॉ. अमित शुक्ल .... शासकीय ठाकुर रणमतसिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
(73) प्रो. डॉ. मीनू गजाला खान .... शासकीय महाविद्यालय, मक्सी, जिला-शाजापुर (म.प्र.)
(74) प्रो. डॉ. पल्लवी मिश्रा .... शासकीय महाविद्यालय, महूगंज, जिला- रीवा (म.प्र.)
(75) प्रो. डॉ. एम.पी. शर्मा .... शासकीय महाविद्यालय, दतिया (म.प्र.)
(76) प्रो. डॉ. अमोल मांजेकर .... शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(77) प्रो. डॉ. सुशील सोमवंशी .... शासकीय महाविद्यालय, नेपानगर, जिला बुरहानपुर (म.प्र.)
(78) प्रो. डॉ. इशरत खान .... शासकीय महाविद्यालय, रायसेन (म.प्र.)
(79) प्रो. डॉ. कमलेशसिंह नेगी .... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिहोर (म.प्र.)
(80) प्रो. डॉ. भावना ठाकुर .... शासकीय महाविद्यालय रेहटी, जिला सिहोर (म.प्र.)
(81) प्रो. डॉ. अनूप परसाई .... शासकीय छत्तीसगढ़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)
(82) प्रो. डॉ. अनिलकुमार जैन .... इन्दिरा गाँधी खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
(83) श्रीमती सुमन वशिष्ठ .... राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)
(84) प्रो. डॉ. अर्चना वशिष्ठ .... राजकीय राजऋषि महाविद्यालय अलवर (राज.)
(85) प्रो. डॉ. कल्पना पारीख .... एस.एस.जी. पारीख पी.जी. कॉलेज, जयपुर (राज.)
(86) डॉ. कृष्णा पैन्सिया .... हरिश आंजना महाविद्यालय, छोटीसादड़ी, जिला- प्रतापगढ़ (राज.)
(87) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंग .... केंद्रीय विश्व विद्यालय हरियाणा, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)
(88) प्रो. डॉ. स्मृति अग्रवाल .... शोध सलाहकार, नई दिल्ली

Protective role of vitamin E supplementation on biochemical alterations induced by mercury chloride in Catfish Heteropneustes fossilis

Vinod Thakur* R.R. Kanhere and Rameshwar Jatwa*****

Abstract - The present investigation aimed to determine toxicological effects of mercury chloride on biochemical parameters of the widely consumed catfish Heteropneustes fossilis. Adult specimens were exposed to LC50 concentration (0.5ppm) of mercury chloride for 96 hrs. Empirical data of result obtained were subjected to statistical analysis of variance to test the effects of mercury, vitamin E and exposure period. The mean value of Liver, Intestine and gills, biochemical parameters, Protein SOD, CAT, and GSH were significantly increased from the control value. Vitamin E supplementation play appositive role in detoxification of mercury toxicity specially the low dose. The result suggests that mercury chloride can negatively affect the physiology of fish. It was observation that supplementation effect of mercury. **Key words:** Mercury, vitamine E, Biochemical, Heteropneustes fossilis.

Introduction

Fish are widely used to evaluate the health of aquatic ecosystems and physiological changes serve as biomarkers of environmental pollution1. Aquatic systems are exposed to a number of pollutants that are mainly released from effluents discharged from industries, sewage treatment plants and drainage from urban and agricultural areas. These pollutants cause serious damage to aquatic life. The contamination of fresh water with a wide range of pollutants has become a matter of great concern over the last few decades, not only because of the threat to public water supplies, but also with the damage caused to the aquatic life. The river systems may be excessively contaminated with heavy metals released from domestic, industrial, mining and agricultural effluents4. Pollutant effects on fish behavior have received increasing attention over the past decade. Several recent reviews on such effects have appeared including. In Such reviews the treated fish behavioral categories included the behaviors associated with schooling, feeding, migration, aggression, fear, learning, phototropism and attraction to or avoidance of a chemical or temperature. Pitcher gave a good overview of normal fish behavior. The resulting behavioral effects may inhibit an organism's ability to capture prey, avoid predators, or successfully compete with others. For example, a study of mosquito fish (Gambusia affinis) aqueous exposed to mercurial chloride demonstrated altered swimming activity and decreased swimming speed14. Similarly, concentration dependent effects of maternally-transferred MeHg in larval Atlantic croaker (Micropogonias undulatus), including decreased response speed and increased response time to a vibratory stimulus. Mercury is generally found at very low concentrations and is very reactive in the environment. Total mercury levels are generally lesser than 10 ng/g in crustal materials such as granites, feldspars and clays, and in the range of 40 to 200 ng/g in soils and sediments that are not directly impacted by anthropogenic discharges. Generally, the majority of mercury in aquatic systems is inorganic forms (about 95 to 99%) and is found in sediments rather than the dissolved phase. This bio-magnification can cause high levels of Hg in top predator fishes and have a detrimental effect on humans and fish-eating wildlife. Mercury concentrations in whole-body fish ranged from 0.048 to 0.061 microgram per gram wet weight, and 0.061 to 0.082 microgram per gram wet weight in muscle plugs19. Migratory history was significant, with anadromous fish having a lower mean THg concentration (64 ?g/kg ww) than the non-anadromous Arctic charr (117 ?g/kg). The increase in individual THg concentration with age was shown to be independent of length-atage, when large and small individuals within the same age groups were compared.

Peter mentioned that there are three types of mercury, 1. Elemental mercury (Hg) is found in glass thermometer, button batteries, paints and dental amalgams. 2. Inorganic mercury, mercuric chloride the most toxic inorganic form has been used as a disinfectant. Mercurous chloride was used as teething powder and laxative. Mercurous fulminate is an explosive compound. 3. Organic mercury as methyl and ethyl mercury are well known as environmental contaminants and concentrated in the aquatic food chain. Biochemical parameters are of fundamental importance in the

*** School of Life Sciences, Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore (M.P.) INDIA**
**** Department of Zoology, Govt. Girls Degree college, Barwani (M.P.) INDIA**
***** School of Life Sciences, Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore (M.P.) INDIA**

physiopathological evaluation of animals and often were often used when clinical diagnosis of fish physiology was applied to determine the effects of external stressors and toxic substances. Many studies indicated that biochemical changes in fish under pesticide

exposure were extensively reported. Damage to blood and heamapoietic organs in fish may be associated due to either change in environmental conditions or water born pollutants. The disruption of biochemical and physiological integrity is assessable by the changes in the enzyme activities in functional organs. Selenate is found to be generally less toxic than selenite. The role of aqueous sulphate concentrations in the differential toxicity of these selenium selenite species has not been adequately researched. Acute values for rainbow trout range from 4.2 to 32.3 mg/L, however acute values as low as 1 mg/L are reported for fathead minnows, and other values as high as 88 mg/L have been reported. Vitamin E played an essential role in elimination of mercury stress through antioxidant free radical mechanism. The metabolic pathways of fish can be severely altered by a variety of biological, chemical and physiological factors, which could be assessed throughout several biochemical procedures. The influence of toxicant on total protein content in liver and muscle of fish has also been taken into account in evaluating response of the fish against stressors and was studied by many workers. In Egypt, different studies on the effect of heavy metals on fishes and water pollution were carried out for both freshwaters and marine environments. These studies emphasized the severe effect of such heavy metals on the aquatic ecosystems. The African catfish, *Clarias gariepinus* (Burchell, 1822), was selected as the test organism in this study for its great aquaculture and commercial value in Egypt and elsewhere in the developing world. *C. gariepinus* is a benthopelagic (bottom feeder); omnivorous feeder that occasionally feeds at the surface. *C. gariepinus,* also referred to as mudfish, is very hardy and tasty. They are able to tolerate adverse aquatic conditions, where other cultivable fish species cannot survive. It is widely cultivated and used as experimental fish. According to the aforementioned findings, the present work was suggested and aimed to study the effect of mercury and its interaction with supplementation of vitamin E on the biochemical parameters of the catfish, *Heteropneustes fossilis.*

Methodology

Classification of H. fossilis

Kingdom - Animalia

Phylum - chordate

Class - Actinopterygii

Order - Siluriformes

Family - Heteropneustidae

Genus - *Heteropneustes*

Species - *H. fossilis*

Heteropneustes fossilis is a species of air sac catfish. Commonly known as Asian stinging catfish or fossil cat it found in India, Pakistan, Nepal, Sri Lanka, Thailand and Myanmar. In Sri Lanka, this fish is called Hunga by the Sinhala speaking community, in India it's called Singhi. Especially it is found in south India in the state of kerala, it is locally called as kaari. H. Fossilis is found mainly in ponds, ditches, swams and marshes, but sometimes occurs in muddy rivers. It can tolerate slightly brackish water. It is omnivorous this species breeds in confined water during the mounsoon months, but can breed in ponds, derelict pond and ditches when suffient rain water accumulates. It is in great demand due to its medicinal value. Stinging catfish is able to deliver a painful sting to human. Poison that can emanate from a gland an the pectoral fin spine and has been known to be extremely painful. This species grows to a length of 30 centimetres (12 in) and is an important component of local fisheries. *H.fossilis* is also farmed and is found in the aquarium trade.

For all the experiments *H. fossilis* were obtained from local fish market. They were acclimatized in the aquarium for 7 days before experiments. The collection of experimental fishes almost same sizes (weight 30- 35g) on arrival at the laboratory. The fishes (30-35g) were rendered in aquarium (n=7) containing tap water. Fish were fed on commercial feed (Taiyo pet production pvt.ltd.), nutritional content protein 32% fat 4% fibred 5% moisture 10%) feed daily. The acclimated fishes were exposed to mercuric chloride ($HgCl_2$) in glass aquarium containing 100 liter water each.

Determination of LC50 of HgCl2

Determination of lethal concentration value implies the toxicity strength of the pollutant hence it may be used as a measure of indication of pollution in the aquatic environment.LC50 value helps to monitor the water quality and to take initiative against the pollutant. The cumulative mortality (%) of the preliminary trial of HgCl2 is shown no mortality was observed of 0.0025 and 0.005 ppm concentration of HgCl2 after 96 hours exposure. Less than 10% mortality occurred in the fish groups exposed up to 0.1 ppm and 0.2 ppm within 96 hours exposure period. 60% and 80% mortality were observed in fish at 1ppm and 2ppm within 96 hours of exposure respectively. However a complete mortality (100%) occurred in the fish at 4 ppm or more ppm within 96 hours of exposure. We observer HgCl2 was 0.5 ppm after 96 hours LC50 value. Different sets of

experiments were performed to achieve the goal. Fishes were rendered in aquarium and were divided into several groups for the toxicological studies and also in the preventive role of vitamin supplementation in mercury induced toxicity. Following parameters were studied in all the groups before and after terminating the experiments.

Assay of lipid per oxidation :- LPO was determined using the protocol of Ohkawa et al (1979) as modified by Jamall and Smith (1985).In brief, it was determined by the reaction of 2-thiobarbuturic acid with malondialdehyde (MDA),one of the major products formed by peroxidation of lipids. Amount of MDA was measured by taking the absorb ate at 532nm (extinction coefficient=1.56×), using a Shimadzu UV-1700 spectrophotometer. The method is based on the principle that the peroxidation products of membrane lipid majority being malondialdehyde (MDA),when heated with thiobarbituric acid (TBA) in acidic medium, form pink coloured complexes.

Estimation of superoxide dismutase activity:-

The endogenous SOD activity was determined using the pyrogallol (1, 2, and 3- benzenetriol) autoxidation inhibition assay following the protocol of Marklund and Marklund (1974). The rate of autoxidation was determined by recording the increase in the absorption at 420 nm. Diethylenetriaminepeces of Fe++, Ca++ and Mn++.

Estimation of catalase activity

CAT activity was estimated by considering the method of Aebi (1983), based on the estimation of amount of hydrogen peroxide (H2O2) decomposed by catalase to H2O and O2. The reaction proceeds in two steps, first the enzyme combines with one molecule of H2O2 to from an enzyme-substracte complex, which then reacts with another molecule of H2O2 to form oxygen and water. This decomposition of H2O2 can be following directaly by recording the decrease in its absorbance at 240 nm. The difference in extinction (?e 240) per unit time is the measure of the catalase activity in the tissue.

Estimation of reduced glutathione

Glutathione primarily protects the thiol groups of the molecules and the membranes content was measured by taking the absorbance of the product formed by the reaction of Ellman's reagent with GSH at 412 nm. (Extinction coefficient, E= 1.36×104) following the method of Ellman (1963) modified by Beutler et al (1963) using 5, 5' -dithio-bis(-2-nitribenzoic acid) DTNB reagent (Ellman' reagent). The sulfhydryl group of GSH reacts with DTNB to produce a yellow-colored 5- thio-2- nitrobenzoic acid (TNB). The amount of TNB produced is directly proportional to the concentration of GSH in the sample. Measurement of the absorbance of TNB at 412 nm provides an accurate estimation of GSH in the sample.

Determination of tissue protein :- Tissue protein estimation was done by the routine method of Lowry et al. (1951) using bovine serum albumin as standard. The aromatic amino acid (tyrosine, tryptophan and phenylalanine) residues present in a protein react with the Folin-Ciocateau reagent to give a colored complex. The color formed is due to the reaction of the alkaline copper with the protein and the reduction of the phosphomolybdate by tyrosine, and tryptophan present in the protein. The intensity of the color depends on the amount of these aromatic amino acids present in the protein.

Results

Experiment 1: In this experiment twenty one healthy fish were divided into three groups of seven each. While animals in group one served as control and those in group two and three were exposed to LC50 of mercury chloride (0.5 ppm). However, fish in group three were also exposed to vitamin E (0.15 mg/l diluted in 1 ml of ethanol) in water for 96 hours. After 4 days the experiment was terminated by exposing the fishes to anaesthesia. After sacrificing liver tissues were removed and washed thoroughly with phosphate buffered saline (PBS, 0.1 M, pH 7.4) and 10% tissue homogenate was prepared for the estimation of LPO, SOD, CAT activities and GSH and Protein content to observe the impact of vitamin E on mercury induced toxicity.

From the result of this experiment it was evident that LC50 dose of HgCl2 increased tissue LPO (P<0.001) and reduced the activities of SOD and CAT (P<0.001 for both) and GSH and protein content (P<0.05 and P<0.01, respectively) in liver. However, vitamin E supplementation along with HgCl2 to fishes reversed these effects as it lowered LPO (P<0.01) and increased the activities of SOD and CAT and GSH and protein content (P<0.001 for first two and P<0.05 for rest two) significantly, as compared to control values.

Table 1: Effect of exposure with Vitamin E (0.15mg/l) on mercury chloride induced (0.5pmm) toxicity for 96 hrs on hepatic LPO (nM MDA/mg/hour), tissue protein (mg/ml) and on the activities of SOD (U/mg protein), CAT (µM H2O2 decomposed/min/mg protein) and GSH (µM/mg protein) in Heteropneustes fossilis.

Parameter	Control	HgCl2	HgCl2+Vit. E
Protein	3.29±0.10	2.63±0.13 b	2.87±0.13z
SOD	5.97±0.18	2.62±0.09 a	5.09±0.16 x
CAT	31.84±1.45	16.73±0.73 a	27.08±1.30 x
GSH	28.94±0.61	23.14±0.43 c	26.17±0.73 z

Data are mean ± SEM. (n = 7); a, P < 0.001; b, P < 0.01 and

c, P < 0.05 as compared to the respective values of control group; x, P < 0.001 and y, P < 0.01 as compared to the respective values of HgCl2 treated group.

Figure 1: Effect of exposure with Vitamin E (0.15 mg/l) on mercury chloride induced (0.5pmm) toxicity for 96 hrs on hepatic LPO (nM MDA/mg/hour) in *Heteropneustes fossilis.*

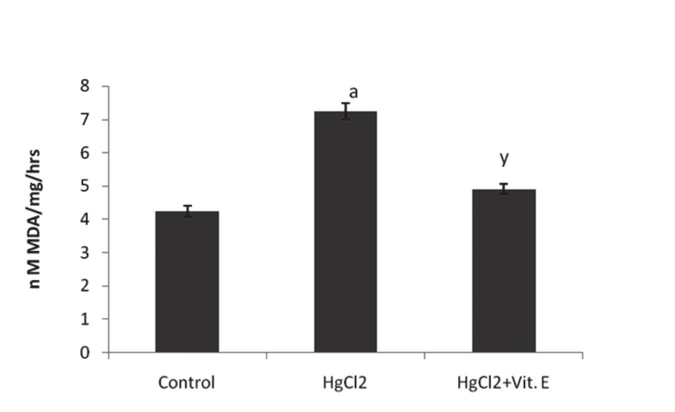

Each vertical bar represents the mean ± SEM. (n = 7); a, P < 0.001; b, P < 0.01 and c, P < 0.05 as compared to the respective values of control group; x, P < 0.001 and y, P < 0.01 as compared to the respective values of HgCl2 treated group.

Experiment 2: In this experiment twenty one healthy fish were divided into three groups of seven each. While animals in group one served as control and those in group two and three were exposed to LC50 of mercury chloride (0.5 ppm). However, fish in group three were also exposed to vitamin E (0.15 mg/l diluted in 1 ml of ethanol) in water for 96 hours. After 4 days the experiment was terminated by exposing the fishes to anaesthesia. After sacrificing intestine were removed and washed thoroughly with phosphate buffered saline (PBS, 0.1 M, pH 7.4) and 10% tissue homogenate was prepared for the estimation of LPO, SOD, CAT activities and GSH and Protein content to observe the impact of vitamin E on mercury induced toxicity.

It was observed that LC50 of HgCl2 increased intestinal LPO (P<0.01) and reduced the activities of SOD and CAT (P<0.001 and P<0.01 respectively) and GSH and protein content (P<0.05 for both). However, vitamin E supplementation along with HgCl2 to fishes reversed these effects as it lowered LPO (P<0.01) and increased the activities of SOD and CAT (P<0.01for both) and GSH (P<0.001) and protein content (P<0.001) significantly, as compared to control values

Table 2: Effect of exposure with Vitamin E (0.15mg/l) on mercury chloride induced (0.5pmm) toxicity for 96 hrs on intestinal LPO (nM MDA/mg/hour), tissue protein (mg/ml) and on the activities of SOD (U/mg protein), CAT (µM H2O2 decomposed/min/mg protein) and GSH (µM/mg protein) in Heteropneustes fossilis.

Parameter	Control	HgCl2	HgCl2+Vit. E
Protein	3.29±0.12	2.35±0.11 c	4.06±0.14 x
SOD	5.97±0.28	2.60±0.19 a	4.95±0.19 y
CAT	31.84±0.81	17.12±0.74 b	28.92±0.71y
GSH	28.94±0.71	24.42±0.65 c	26.17±0.58 z

Data are mean ± SEM. (n = 7); a, P < 0.001; b, P < 0.01 and c, P < 0.05 as compared to the respective values of control group; x, P < 0.001; y, P < 0.01 and z, P < 0.05 as compared to the respective values of HgCl2 treated group.

Figure 2: Effect of exposure with Vitamin E (0.15 mg/l) on mercury chloride induced (0.5pmm) toxicity for 96 hrs on intestine LPO (nM MDA/mg/hour) in *Heteropneustes fossilis.*

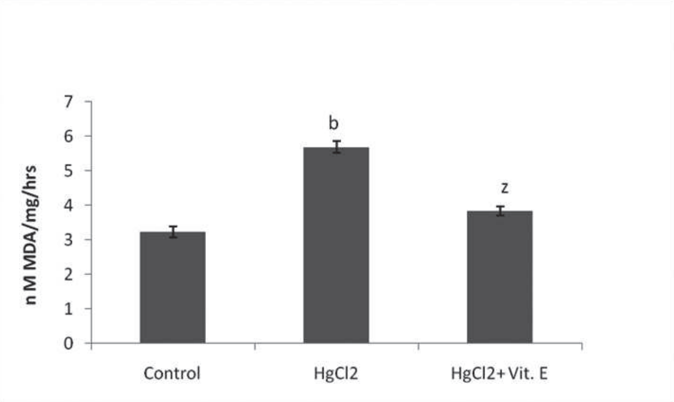

Each vertical bar represents the mean ± SEM. (n = 7); a, P < 0.001; b, P < 0.01 and c, P < 0.05 as compared to the respective values of control group; x, P < 0.001 and y, P < 0.01 as compared to the respective values of HgCl2 treated group.

Experiment 3: In this experiment twenty one healthy fish were divided into three groups of seven each. While animals in group one served as control and those in group two and three were exposed to LC50 of mercury chloride (0.5 ppm). However, fish in group three were also exposed to vitamin E (0.15 mg/l diluted in 1 ml of ethanol) in water for 96 hours. After 4 days the experiment was terminated by exposing the fishes to anaesthesia. After sacrificing Gills were removed and washed thoroughly with phosphate buffered saline (PBS, 0.1 M, pH 7.4) and 10% tissue homogenate was prepared for the estimation of LPO, SOD, CAT activities and GSH and Protein content to observe the impact of vitamin E on mercury induced toxicity.

It was observed that LC50 of HgCl2 increased gills LPO (P<0.001) and reduced the activities of SOD and CAT (P<0.001 and P<0.05 respectively) and GSH and protein

content (P<0.01 for both). However, vitamin E supplementation along with HgCl2 to fishes reversed these effects as it lowered LPO (P<0.05) and increased the activities of SOD and CAT (P<0.00 and P<0.01, respectively) and GSH (P<0.001) content (P<0.001) significantly, as compared to control values

Table 3: Effect of exposure with Vitamin E (0.15mg/) on mercury chloride induced (0.5pmm) toxicity for 96 hrs on gills LPO (nM MDA/mg/hour), tissue protein (mg/ml) and on the activities of SOD (U/mg protein), CAT (µM H2O2 decomposed/min/mg protein) and GSH (µM/mg protein) in *Heteropneustes fossilis.*

Parameter	Control	HgCl2	HgCl2+Vit. E
Protein	3.9±0.12	2.47±0.08 b	2.93±0.09
SOD	5.97±0.18	2.89±0.09 a	6.73±0.19 x
CAT	31.84±1.04	22.73±0.80c	28.59±1.01 y
GSH	28.94±1.41	18.91±0.86 b	25.81±0.78 y

Data are mean ± SEM. (n = 7); a, P < 0.001; b, P < 0.01 and c, P < 0.05 as compared to the respective values of control group; x, P < 0.001; y, P < 0.01 and z, P < 0.05 as compared to the respective values of HgCl2 treated group.

Figure 3: Effect of exposure with Vitamin E (0.15 mg/l) on mercury chloride induced (0.5pmm) toxicity for 96 hrs on Gills LPO (nM MDA/mg/hour) in Heteropneustes fossilis

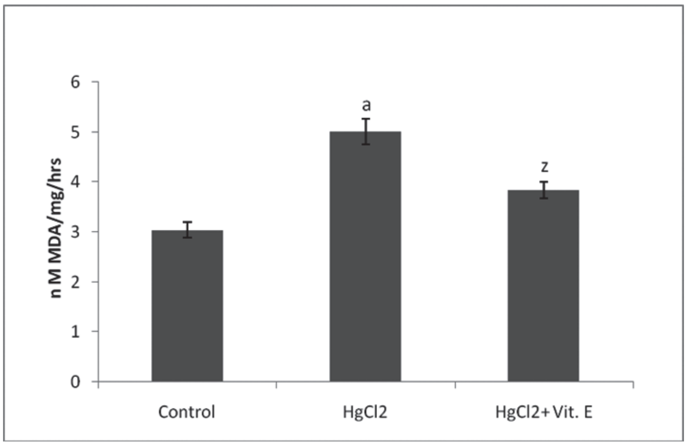

Each vertical bar represents the mean ± SEM. (n = 7); a, P < 0.001; b, P < 0.01 and c, P < 0.05 as compared to the respective values of control group; x, P < 0.001 and y, P < 0.01 as compared to the respective values of HgCl2 treated group.

Discussion :- The low level of LPO in the vitamin E supplementation group suggest that a need for a potent antioxidant to protect the liver cells of H. fossilis against environmental toxicant. Other antioxidant enzymes were also affluent in case of vitamin E supplementation group in comparison to control group. The effective dose vitamin E was fixed as 0.15 mg/ml for further experimentation. Similarly another experiment was conducted to study the protective role of vitamin E, if any, on the toxicity induced by mercuric chloride in intestine. Interestingly, exposure with vitamin E along with mercuric chloride; the activities of endogenous antioxidants (SOD, CAT and GSH) was increased significantly. Furthermore, there was a drastic reduction in the intestinal LPO following vitamin E exposure to H. fossilis . Accumulating evidence suggests that the protective effect of vitamins against oxidative damage could be attributed to its anti-oxidative properties .

Experiments were performed to study the influence of mercuric chloride and possible protective roles of vitamins on toxicant induced toxicity in gills of H. fossilis. Separate experiments were performed to study the impact of vitamin E alone with mercuric chloride

References

- Aebi H (1983). Catalase invitro. In: Colowick SP, Kaplan NO (eds) Method in enzymology, Academic, New York, pp 121-126.
- Agarwal, R., Goel, S. K., Chandra, R. & Behari, J. R. (2010). Role of vitamin E in preventing acute mercury toxicity in rat. Environ. Toxicol. Pharmacol. 29, 70-78
- Agarwal R, Goel S K, Chandra R, Behari JR (2010). Role of vitamin E in preventing acute mercury toxicity in rat.Environmental Toxicology and Pharmacology. 20: 70-78.
- Abreu SN, Pereira E, Vale C, Duarte AC (2005). Accumulation of mercury in sea bass from a contaminated lagoon (Ria de Aveiro, Portugal). Marine Pollution Bulletin. 40(4):293-305.
- Ahmad I, Hamid T, Fatima M, Chand HS, Jain SK, Athar M, Raisuddin S (2005). Induction of hepatic antioxidants in freshwater catfish (Channa punctatus Bloch) is a biomarker of paper mill effluent exposure. Biochim Biophys Acta 1523:37-48
- APHA (1993). Standard methods for the examination of water and wastewater. 19th edn. American public Health association, Washington D.C.
- Bagnyukova TV, Storey KB, Lushchak VI (2003). Induction of oxidative stress in Rana ridibunda during recovery from winter hibernation. J Thermal Biol 28:21-28
- Bano Y, Hasan M (2009). Mercury induced time-dependent alterations in lipid profiles and lipid peroxidation in different body organs of cat-fish Heteropneustes fossilis. J Environ Sci Health 2:145-166
- Lowry OH, Rosenbrough NG, Farr AL, Randall RJ (1951). Protein measurement with folin phenol reagent. J Biol 193:265-275
- Marklund S, Marklund G (1974). Superoxide dismutase: involvement of superoxide anion radical in auto oxidation of pyragallol and a convenient assay for superoxide dismutase. Eur J Biochem 47: 469-474
- Munthe J, Wängberg I, Shang L (2011). The origin and fate of mercury species in the environment. Euro Chlor Science Dossier 14 348-352
- Mutu K, Krishnamoorthy P (2012). Effect of vitamin C and vitamin E on mercuric chloride- induced reproductive toxicity in male rats.Biochem pharmacol 2167- 0501:1-7
- Nath KA, Croatt AJ, Likely S (2006). Renal oxidant injury and oxidant response induced by mercury. Kidney International. 50: 1032-1043.
- Ohkawa H, Ohishi N, Yagi K (1979). A New Assay Method for Lipid Peroxides Using a Methylene Blue Derivative, Biochem. Int. 10, 205-211.

Alterations in the activity of Enzyme AChE in the vital organs of Heteropneustes fossilis exposed to phenol and detergents.

Dr. Seema Dixit *

Abstract- The present project deals with the acute toxicity test conducted to determine the lethal toxicity of phenol and detergents in liver and kidney of fresh water fish Heteropneustes fossilis. Sublethal concentration 6 mg/lt and 20 mg./l of phenol and 8 mg/l and 26.6 mg/lt for detergents were taken as safe concentrations. Phenol in both the vital organs inhibits the AChE activity by increasing the Km and Vmax values, and thus shows non competitive mode of inhibition, while detergent contrastingly shows non competitive inhibition in liver and competitive inhibition in kidney, thus showing mixed mode of inhibition. The assay of liver and kidney AChE is thus useful for monitoring the toxicity of phenol and detergents in fresh water fishes. **Key words :** Heteropneustes fossilis, phenol, detergents, competitive, non competitive, mixed.

Introduction- Water resources are often polluted by agricultural run off, domestic sewages, untreated soap discharges and industrial effluents. When the waste from different industries are discharged without proper treatment into water courses, the physical chemical and biological characteristics of water are altered in such a way that they are not useful for the purpose for which they are intended. (Noorjahan etal. 2002). The industrial effluents often contain nonbiodegradable aromatic compounds like phenol which is highly toxic organic chemical (Coh etal. 2000). Phenol is toxic on ingestion, contact or inhalation and is lethal to fish even at concentration as low as 5 mg/lt. (Saha et al. 1999). Despite detoxification and active metabolism in fish (Hoar and Randall 1969) sublethal concentrations of phenol interfere with various enzyme activities (Mukherjee and Bhattacharya 1977) and can produce unpredictable changes in fish.

Soap industry is also an important industry causing water pollution. Soap effluents coming from industries in untreated form or directly through commercial clothwashing as soluble detergents cause irregular behaviour in cellular metabolism and causes alterations in physiological and biochemical mechanism of animals. (Sin etal. 1999 and Maheshwari etal. 1991) which results in impairment of important functions like respiration, Osmoregulation and even mortality (Kumaraguru 1995).

Enzyme studies are significant as they are not only authentic but highly sensitive in nature and can estimate even the minor most cellular disintegration which cause metabolic disorders. Metabolic pathway regulated by enzyme are altered under toxicity. Therefore the present study was done to investigate the short term exposure of pollutants on liver and kidney AChE enzyme kinetics of H. fossilis and which could be used as a diagnostic tool to check the toxicity of phenol and detergents like pollutants on vertebrates.

Material And Methods- Heteropneustes fossilis healthy, normal and of standard size (8-12 cms.) were procured from Motia Talab and were kept in glass aquaria containing dechlorinated tap water. They were acclimatized to laboratory conditions for two weeks. They were fed daily with dried shrimp powder until two days prior to acute exposure of test toxicants Lc 50 value of Lead-nitrate and detergents were determined by U.S. Std. graphical interpolation method (1976) and was estimated to be 30 mg/lt for phenol and 40 mg/lt for detergents. Two sublethal concentration of Lc 50 (i.e. safe doses) 1/5th and 2/3rd were taken for each toxicent i.e. 6 mg/lt and 20 mg/lt for phenol and 8 mg/lt and 26.6 mg/lt for detergents.

Each group of 10 fishes were exposed to two sublethal concentrations for 96 hrs. and control was kept and maintained parallel. At the end of experiment the control and experimental fishes were dissected and the organs brain and kidney were removed. Tissue homogenate of 5% was prepared in ice cold 0.25M sucrose solution at 12,000 rpm. AChE activity was measured spectrophotometrically at 540nm by Hestrin and Metcalf (1951) using ACHI as substrate. Protein estimation was done according to Lowry etal. (1951) using Bovine serum albumin as standard. The AChE activity Km, Vmax, percentage of inhibition and nature of inhibition at different concentrations of toxicants were investigated by line Weaver Burk plot.

Results And Discussion- Toxicants like phenol and detergent act as AChE inhibitors by binding with the active site of AChE through the electrophilic phosphate atom to form an enzyme inhibitor complex reducing the hydrolytic activity of the AChE enzyme thereby disturbing the conduction of nerve impulse in synaptic regions and neuro muscular junctions (Wilson and Bergmann 1974).

The present study on H. fossilis shows a decline in the

* Department of Zoology, Sarojini Naidu Govt. Girls P.G. Autonomous College, Bhopal (M.P.) INDIA

activity of AchE denoting the inhibition of AchE in various tissues. It also clearly indicates the neurotoxicity of the pollutants. In the liver of H. fossilis the control Km was 0.45 x 10-3M which increased to 0.59 x 10-3M in 6 mg/lt phenol and finally reached a value of 1.42 x 10-3M in 20 mg/lt phenol concentration. The Vmax value in control was 2.5 A/mg protein/30 min which increased to 4.0 A/mg protein/30 min. in 6 mg/lt phenol and finally reached to 4.34 A/mg protein/30 min in 20 mg/lt phenol concentration. The slope obtained in liver tissue from control and treated dose concentrations intercepted at different ordinates with respect to Michael's menten constant showing non competitive nature of inhibition - Table I and Fig. I.

In the Kidney of H. fossilis the control exhibited Km value as 1.25 x 10-3 M which increased to 2.5 x 10-3M in 6 mg/lt phenol and remained constant at high conc. i.e. at (20 mg/lt phenol) while Vmax in control showed a value of 3.33 A/mg protein/30 min. which increased to 6.25 A/mg protein/30 min. in 6 mg./lt phenol and reached a maximum value of 10 A/mg protein/30 min with 20 mg/lt phenol dose concentration. The slope obtained from control and treated kidney intersected at different ordinates with respect to Michael's menten constant, thus displaying non competitive nature of inhibition. - Table II Fig. II.

The present study in liver and kidney of H. fossils with phenol showed continuous increasing trend of Km and Vmax through out except for Kidney where Km showed a constant value of 2.5 x 10-3M at both dose concentrations. The continuous increase in the values of Km and Vmax indicates increasing level of AChE inhibition causing depletion in the hydrolytic power of enzyme and thereby stimulating continuous increase in the level of Ach molecule in the medium.

The intersection of calibration curves at different ordinates with respect to Michaels' menten constant shows non competitive nature of inhibition and phenol to be neurotoxic and noncompetitive inhibitor with respect to the enzyme kinetics of AchE in H. fossilis. This is well supported by the findings of Carter etal. (1971), Coppage etal. (1974), Rao etal. (1984), Bashamohideen and Sailbala (1989), Hande and Pradhan (1990), Balasubramanian and Ramaswami (1991), Devraj etal. (1992), Thangavel and Ramaswamy (1992), Tembhre and Kumar (1995), Farhina etal. (2005), Rita etal. (2006) who have also reported. Similar trends of non competitive nature of inhibition in different Fish species with different group of toxicants.

Under the detergent category, the control liver of H. fossilis showed Km as 0.45 x 10-3M which increased to 0.83 x 10-3M with 8 mg/lt and finally reached to maximum value of 5.0 x 10-3M with 26.6 mg/lt concentration of detergents. The Vmax in control was 2.5 A/mg protein/30 min, which decreased initially to 2.0 A/mg protein/30 min at 8 mg/lt and finally reached a value of 5.0 A/mg protein/30 min with 26.6 mg/lt detergent concentration.

The slope obtained from control and treated concentration intercepted at different ordinates showing noncompetitive nature of inhibition. Refer to Table III Fig. III.

In the kidney of H. fossilis the control exhibited Km as 1.25x10-3M which increased to 1.42x10-3M in 8 mg/lt concentration and finally reached a value of 1.6x10-3M with 26.6 mg/lt detergent concentration.

The Vmax in control showed a value of 3.33 A/mg protein/30 min. which remained constant at 8 mg/lt conc. and reached the value of 6.25 A/mg protein/30 min. with 26.6 mg/lt dose concentration. The slope obtained from control and treated sets intercepted at the some ordinate with respect to Michael Menten's constant showing competitive nature of inhibition. Refer to Table IV and figure IV.

The present study on the vital organs of H. fossilis with detergent showed different mode of enzyme Kinetics of AChE. While in Liver and Kidney the values of Km showed a gradual increase throughout while Vmax which initially declined or remained constant at low concentration later showed a sharp increase at high concentration. The increase in the values of Km and Vmax signifies a decline in the enzymatic activity of AChE i.e. increase in the inhibition level of AChE and continuous accumulation of ACh molecules in the medium.

Overall the observations under detergent category shows mixed type of inhibition where Liver tissue displayed non competitive and Kidney displayed competitive nature of inhibition. Thus detergent proved to be a mixed type of inhibitor being non competitive in Liver and competitive in Kidney of H. Fossilis. This is well supported by the findings of Carter etal. (1971), Coppage etal. (1974), Rao etal. (1984), Bashamohideen and Sailbala (1989), Hande and Pradhan (1990), Balasubramanian and Ramaswami (1991), Devraj etal. (1992), Thangavel and Ramaswamy (1992), Tembhre and Kumar (1995), Farhina etal. (2005), Rita etal. (2006) who have also reported similar trends of non competitive nature of inhibition in different Fish species with different group of toxicants.

In liver the maximum value of Km and Vmax reached in detergent category followed by phenol. It suggests that maximum deterioration of liver occurred in detergent category followed by phenol. Thus detergent proved to be more neutotoxic than phenol in liver. While in Kidney the maximum value of Km and Vmax reached in phenol category followed

by detergents, thus maximum deterioration or AchE inhibition occurred with phenol rather than detergent in Kidney. Thus phenol proved to be more neurotoxic than detergents in Kidney. Thus we can conclude that among the two toxicants detergents proved to be more toxic for liver while phenol showed its maximum toxicity in Kidney.

References-

1. Balasubramanian, S. and M. Ramaswami (1991). Jour. Ecobiol., 3(2) : 117-132.
2. Bashamohideen, M.D. and Ramanna Devis, S. (1989). Behavioral changes on symptons of poisoning in Indian major carp (Labeo rohita subjected to Phosphamidon exposure). Proc. 61th Indian Sci. Long. Abst. 1.
3. Carter (1971). In vie studies of brain acetylcholinesterase inhibition by organophosphate and Carbamate insecticides in fish Ph.D., dissertation Louisiana State University, Baton Rough, Louisiana.
4. Coppage, D.L., Mathew's, E., Cook, G.H. and Knight, J. (1974). Biochem. and Physiol., 5:536-542.
5. Das, S.K. and Chand, B.K. (2003). J. Eco. Env. Cons. J., 1 : 89-92.
5. Devaraj, P.S.; Durairaj and V.R. Selvarajan (1992). J. Ecotoxicol. Environ. Monit., 2(2) : 99-103.
6. Farhina, Pasha and Romsha Singh (2005). Asian Jour. Exp. Sci., 19(2) : 119-126.
7. Hande, R.A. and Pradhan, P.V. (1990). Proc. Ind. Acad. Sci. (Anim. Sci.), 99(1) : 53-56.
8. Hoar W.S. and Randall D.J. (1969) Fish Physiology Academic Press New York London.
9. Krishna Murthy, C.R. and Vishwanathan (1991), Toxic Metals in the Indian Environment. Tata Mc Graw Hill Pub. Co. Ltd., New Delhi.
10. Kumaraguru, A.K. (1995). Ecol. Environ. Cons., 1(1-5) : 143-150.
11. Loh Kc Chung T.S. and Wei-Fern A. (2000) Immobilized cell membrane bioreactor for high strength phenol waste water J. Environ. eng. 126:75-79.
12. Lowry, O.H.; N.J. Rosenbrough, A.L. Farr and R.J. Randall (1951). Jour. Biol. Chem., 193 : 265-275.
13. Maheshwari Devi, K.; Gopal, V. and Rathna Gopal (1991). J. Ecotoxicol Environ. Monit., 1(913) : 25-27.
14. Metcalf, R.L. (1951). In method in Biochemical Analysis - D- Glicked, Interscience Publishers, Inc. Newyork.
15. Mukherjee S. and Bhattacharya S. (1977). Variations in the hepatopancreas amylase activity in fishes exposed to some industrial pollutants water Res. 11 : 71-74.
16. Noorjahan C.M. Dawood Sharief S. Nausheen Dawood and Ghousia Nisha (2002) Studies on the untreated tannery effluent and its effects on biochemical constituents of marine crab. Scylla Serrata Indian J. Environ. Toxicol. 12 (1) 15-17.
17. Pathak and Mudgal, L.K. (2005). Ind. Env. Cons. J., 6(1) : 51-45.
18. Rao, I.M., Manjula, R. and Patnaik, Sree (1997). Indian J. Fish, 44(4) : 405-408.
19. Saha N.C. Bhuniaf and Kaviraj A. (1999) Toxicity of phenol to Fish and aquatic ecosystem Bull. Environ. Contam. Toxicol. 63 : 195-202.
20. Tembhre, M. and Kumar, S. (1995). Indian J. Spect., 6(2) : 39-42.
21. Thangavel, P. and M. Ramaswamy (1992). Ind. J. Exp. Physiol., 12(11) : 824-827.

Observations

Table-1 : Acute Effect Of Different Concentrations Of Phenol On Kinetic Parameters Of Km & Vmax Of Ache Of Liver Of H-Fossils (Substrate Used Was Achi)

Sl. No.	Phenol Concentration In Mg./Lt.For 96 Hrs.	Kinetic Parameters	
		Km x 10-3M	Vmax (Absorbance) /mg. protein / 30 min.
1	CONTROL	0.45	2.50
2	6	0.59	4.00
3	20	1.42	4.34

Table-2 : Acute Effect Of Different Concentrations Of Phenol On Kinetic Parameters Of Km & Vmax Of Ache Of Kidney Of H-Fossils (Substrate Used Was Achi)

Sl. No.	Phenol Concentration In Mg./Lt.For 96 Hrs.	Kinetic Parameters	
		Km x 10-3M	Vmax (Absorbance) /mg. protein / 30 min.
1	CONTROL	1.25	3.33
2	6	2.50	6.25
3	20	2.50	10.00

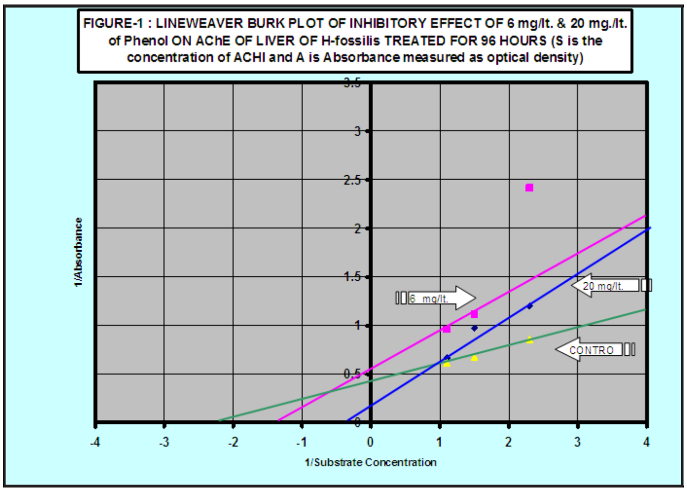

FIGURE-1 : LINEWEAVER BURK PLOT OF INHIBITORY EFFECT OF 6 mg/lt. & 20 mg./lt. of Phenol ON AChE OF LIVER OF H-fossilis TREATED FOR 96 HOURS (S is the concentration of ACHI and A is Absorbance measured as optical density)

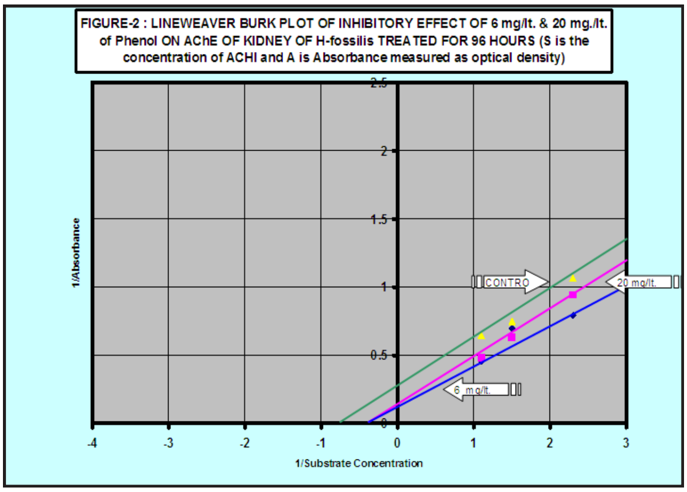

FIGURE-2 : LINEWEAVER BURK PLOT OF INHIBITORY EFFECT OF 6 mg/lt. & 20 mg./lt. of Phenol ON AChE OF KIDNEY OF H-fossilis TREATED FOR 96 HOURS (S is the concentration of ACHI and A is Absorbance measured as optical density)

Table-3 : Acute Effect Of Different Concentrations Of Detergent On Kinetic Parameters Of Km & Vmax Of Ache Of Liver Of H-Fossilis (Substrate Used Was Achi)

Sl. No.	Phenol Concentration In Mg./Lt.For 96 Hrs.	Kinetic Parameters	
		Km x 10-3M	Vmax (Absorbance) /mg. protein / 30 min.
1	CONTROL	0.45	2.50
2	8	0.83	2.00
3	26.6	5.00	5.00

Table-4 : Acute Effect Of Different Concentrations Of Detergent On Kinetic Parameters Of Km & Vmax Of Ache Of Kidney Of H-Fossilis (Substrate Used Was Achi)

Sl. No.	Phenol Concentration In Mg./Lt.For 96 Hrs.	Kinetic Parameters	
		Km x 10-3M	Vmax (Absorbance) /mg. protein / 30 min.
1	CONTROL	1.25	3.33
2	8	1.42	3.33
3	26.6	1.60	6.25

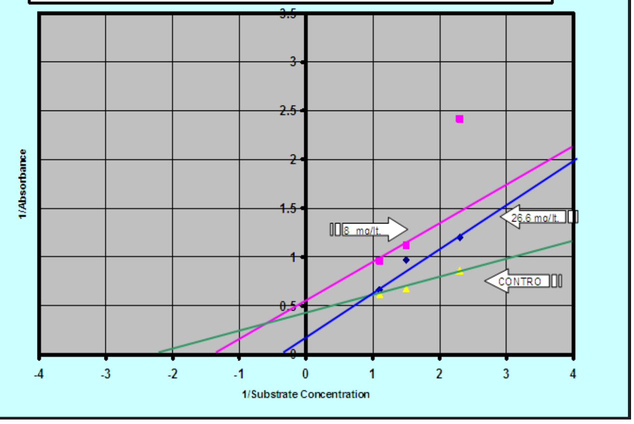

FIGURE-3 : LINEWEAVER BURK PLOT OF INHIBITORY EFFECT OF 8 mg/lt. & 26.6 mg./lt. of Detergent ON AChE OF LIVER OF H-fossilis TREATED FOR 96 HOURS (S is the concentration of ACHI and A is Absorbance measured as optical density)

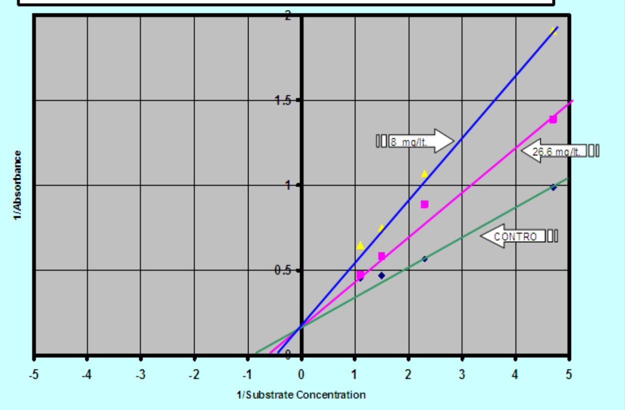

FIGURE-4 : LINEWEAVER BURK PLOT OF INHIBITORY EFFECT OF 8 mg/lt. & 26.6 mg./lt. of Detergent ON AChE OF KIDNEY OF H-fossilis TREATED FOR 96 HOURS (S is the concentration of ACHI and A is Absorbance measured as optical density)

****

BIOGAS : An Biomass alternative Clean energy in rural Areas special reference to Sanwer Block of Indore District (M.P.) A Survey Report

Saroj Mahajan* Anita Gangrade **

Abstract- Energy is the key input for socio-economic development of any Nation Biomass resources such as cattle dung, agriculture wastes and organic matter .These sources are environmentally benign and non-depleting in nature as well as are available in most parts of the country throughout the year. Biomass resources such as cattle dung, agriculture wastes and organic matter .These sources are environmentally benign and non-depleting in nature as well as are available in most parts of the country throughout the year. Biogas production is a clean low carbon technology for efficient management and conversion of organic wastes into clean renewable biogas and organic manure/fertilizer. It has the potential for leveraging sustainable livelihood development as well as tackling local and global land, air and water pollution. Madhya pradesh centrally located state and Indore is a Business city. Sanwer is a block of Indore were Biogas plants were installed with the help of Government Subsidy. Biogas has many uses and byproduct slurry obtained which is used as a fertilizer by the rural inhabitants.

Key words: - Marsh gas, Renewable energy, Biogas plant, Indore district

Introduction:-

World is facing energy crises due to over exploitation of Fossil fuels. These resources of Fossil fuels will drying of oil wells after three or four decades. So, conventional sources of energy will totally disappearance. Nowadays the alternative energy are best and permanent substitute in the form of biogas from biomass and other forms are solar, wind, biomass, Hydel, tidal.Today India is one of the few leading countries in the development and utilization of renewable energy. The country is blessed with various sources of non-conventional energy and Ministry of Non-Conventional Energy Sources will promote viable technologies that can reach the benefits of such sources to the poorest people in the far-flung regions of the country. Energy is an important input for economic development. Since exhaustible energy sources in the country are limited, there is an urgent need to focus attention on development of renewable energy sources and use of energy efficient technologies. The exploitation and development of various forms of energy and making energy available at affordable rates is one of our major thrust areas and improving the quality of life. Biomass resources such as cattle dung, agriculture wastes and other organic wastes have been one of the main energy sources for the mankind since the dawn of civilization. There is a vast scope to convert these energy sources into biogas . Biomass energy can play a major role in reducing India's reliance on fossil fuels India is very rich in biomass. It has a potential of 19,500 MW 3,500 MW from biogas based cogeneration and 16,000 MW from surplus biomass). Currently, India has 537 MW commissioned and 536 MW under construction.

Biogas technology provides an alternate source of energy in rural India, and is an appropriate technology that meets the basic need for cooking fuel in rural areas by using local resources, viz. cattle waste and other organic wastes. Realization of this potential and fact that India supports the largest cattle wealth led to the promotion of National Biogas Programmed in major way in the late 1970s as an answer to the growing fuel crisis. In India alone, there are an estimated over 250 million cattle and if one third of the dung produced annually from these is available for production of biogas, more than 12 million biogas plants can be installed which have the estimated biogas potential capacity of 17,000 MW. (1)

Biogas is cheap source of energy , first methane generation plant set up at Acworth Leprosy Hospital (3) In India First biogas plant established in Ratangiri Maharashtra. Nowadays large number of plants of various size installed throughout world.(4)

Biogas obtained by anaerobic digestion of cattle dung and other loose and leafy organic matters/ biomass wastes can be used as an energy source for various applications namely, cooking, heating, space cooling/ refrigeration, electricity generation and gaseous fuel for vehicular application. Based on the availability of cattle dung alone from about 304 million cattle, there exists an estimated potential of about 18,240 million cubic meter of biogas generation annually. The increasing number of poultry.

*** Department of Botany, Govt. M.L.B.G.P.G.College, Kila Bhavan, Indore (M.P.) INDIA**
**** Department of Botany, Govt. Holker Science College Indore (M.P.) INDIA**

In addition to gaseous fuel, biogas plants do provide high quality organic manure with soil nutrients which improves its fertility required for sustainable production and improving productivity.

Geo climatic Condition :-

Madhya pradesh is an important State of India, situated in center of india. It is rich in biodiversity , mineral wealth, and average annual rainfall 1160mm.(1)The population of Madhya pradesh stands at 72.6 millions, out of which 52.5 millions live in rural area (54,903 villages).

The people of rural area depend for live hood on forest, Agriculture, poultry, horticulture, livestock's, fishery. 31% of geographical area covered by forest land (2)Madhya Pradesh, with 31% of geographical area as forest land (FSI 2003) Madhya Pradesh is a developing state and thus the need of energy for its social and economic growth is very much evident. The state is endowed with both conventional and non-conventional sources of energy resources. The petrol and diesel are the main source of conventional energy. Sources were depleted very fast; one of the alternative nonconventional source is Biomass.

A central power city, Indore exerts a significant impact upon commerce, finance, media, art, fashion, research, technology, education, and entertainment and has been described as the commercial capital of the state.

Located on the southern edge of Malwa Plateau, the city is located 190 km west of the state capital of Bhopal. According to census 2011 the population of Indore is Thirty two lakhs , seventy two thousands, three hundred and thirty five (32,72,335) and distributed over a land area of just (526 km2). Indore is the most densely populated major city in the central province. It is the 14th largest city in India and 147th[4] largest city in the world.

Methodology :-

Indore district have four tehsil Indore, Depalpur, Sanwer and Mhow. Sanwer block situated at the Ujjain Road .Its population1,69,066 (census 2011) Important Villages were surveyed for Biogas plants (see Table No1.) during 2011 installed by Agriculture Department in Sanwer block. Government will provide subsidy to the Villagers.

Observations :-

The country ranks second in the world in biogas utilization In Madhya pradesh number of Biogas plants in 2011were 7 176. According to the 1997 Livestock Census, the cattle population in the country is about 290 million. The estimated potential of household biogas plants based on animal waste in India is 12 million. Till December 2004, under the National Biogas Programmed, over3.7 million biogas plants in the capacity of 1-6 m3 had been installed. Larger units have also been set up in many villages, farms, and cattle houses. The estimated biogas production from these plants is over3.5 million m3 per day, which is equivalent to a daily supply of about 2.2million m3 of natural gas. These plants usually provide gas for cooking and lighting, the latter through specially designed mantles. By replacing up to 75% it has been observed that the biogas production depends strongly on slurry temperature and the retention period which is nearly 85 days.

Discussion :-

It has been observed that the production of biogas is dependent upon the temperature and the solar intensity of the atmosphere. The methane fraction has found to increase up to first six weeks and then it become constant. The synthesis of biogas has been started from the third day of the slurry feeding inside the biogas chamber. There has no role of humidity and precipitation under biogas production. Initially solar intensity increased up to two weeks but after this it decreases due to cloudy weather condition, because the monsoonal season is very fluctuating.

Whereas the slurry temperature was always more than ambient temperature during the whole experimentation period. Lau etal. (1987) due to the lower temperature, biogas production decreases drastically and may stop. Thus, for enhancing biogas production, a higher digester temperature than ambient temperature is required. The green house concept should be integrated for larger capacity biogas plant. Tiwari etal. (1988), and Tiwari and Chandra (1986) have suggested that the rate of biogas production and the period to achieve the optimum temperature are function of the temperature of the slurry. There is stress to use clean energy which will not pollute the Environment. In recent years, India has emerged as one of the leading destinations for investors from developed countries. This attraction is partially due to the lower cost of manpower and good quality production. The calorific values of Biogas fuel has 5000 kcal per m3

Uses-

1. Biogas can be used in a Biogas chulhas / burner for cooking. A biogas plant of 2 cu.m. capacity is sufficient for providing cooking fuel to a family of 4
2. persons.Biogas can be also used for lighting a biogas lamp in indoor or outdoor. The requirement of gas for powering a 100 candle lamp (60 W) is 0.13 cu. m. per hour.
3. Biogas can be used to operate a dual fuel or 100% biogas engine and can replace up to 80% of diesel in dual fuel engines.
4. Biogas can also be used for cooling applications in

operating the chilling machines. Bio-methane (enriched biogas) which is nearly same as CNG, can be used for all applications for which CNG are used. Purified/enriched biogas (bio-methane) has a high calorific value in comparison to raw biogas. During the year 2008-09, a new initiative was taken for demonstration of Integrated

4. The use of biogas digested slurry as organic manure can supplement the usage of chemical fertilizers. The effluent manure does not produce any odor and hence does not create any pollution. The biogas slurry is rich in nitrogen, the essential nutrient for plant growth. Moreover, this nitrogen is in water-soluble form and can be easily absorbed by the plants.

Reference-

1. Agrahari Ravi P. Tiwari1 G. N. (2011) Parametric study of portable floating type biogas plant " world renewable energy congress 2011- sweden 8-13 may Linkoping, sewedon.
2. Anonymous . Agricultural statistics, Directorate of Agriculture, M.P. Vindhyachel Bhavan, Bhpoal.
3. Lau A.K., Staley L.M., 1987. A design procedure for an air-type solar heating system for green houses. Energy in Agriculture. 6(2): 95-119 EnergyAgricultural and Environment with special reference to nonrenewable sources.- S.S.Tomar.
4. Rural reconstruction Ecosystem and Forestry. -Pramod Singh.
5. Tiwari G.N., Sharma S.B. and Gupta S.P., 1988. Transient performance of a horizontal floating gas holder type biogas plant. Energy Conservation and Management. 28(3): 235-239
6. Tiwari G.N., Chandra A., 1986. Solar assisted biogas system: a new approach. Energy Conversion and Management. 26(2): 147-150.
7. Tomar, S.S. and Agrwal, D.O.- Biogas, Programe in the country and its future prospects. A research study. Journal of Institute of Engineers(1) 72(H2) : 1991,1-5.
8. MP Resource Atlas 2007, MPCST
9. FSI 2003),
10. 7. 1988, P.no. 6
11. NAS,1977 P.no. 5
12. zila Sankhiki Pustika (in Hindi, District Statistical ... Biokhad-Biogas Sanyantra (in Hindi)
13. Bio- manure and biogas plant Kasturbagram, Indore (MP), 52 pp. Kedare,

Observation Table No. 1

Sr. No.	Name of Village	Block	Population	Total No. of Biogas plant	No. Biogas working	No. Biogas t not	Government subsidy
1.	Makodiya	Sanwer	1118	32	27	15	Yes
2.	Barodiya khan	---"---	1655	49	40	09	Yes
3.	Tarana	---"---	1162	17	17	00	Yes
4.	Darjikharadiya	---"---	2095	41	38	03	Yes
5.	Chitoda	---"---	1220	13	13	00	Yes
6.	Barodiya	---"---	1663	29	11	18	Yes
7.	Panod	---"---	1045	09	02	07	Yes
8.	Lakashaman khedi	---"---	982	16	09	05	Yes
9.	Machukhedi	---"---	1162	20	20	00	Yes
10	Jetpura	---"---	800	07	01	06	Yes
11.	Panchadehriya	---"---	1134	18	18	00	Yes
12.	Hatunia	---"---	1526	37	22	15	Yes

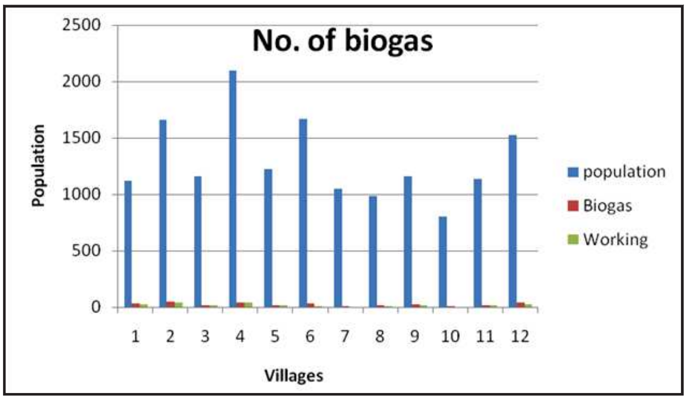

Fig No,1 Biogas plants analysis during 2012-13 In Sanwer Block of Indore District (M.P.)

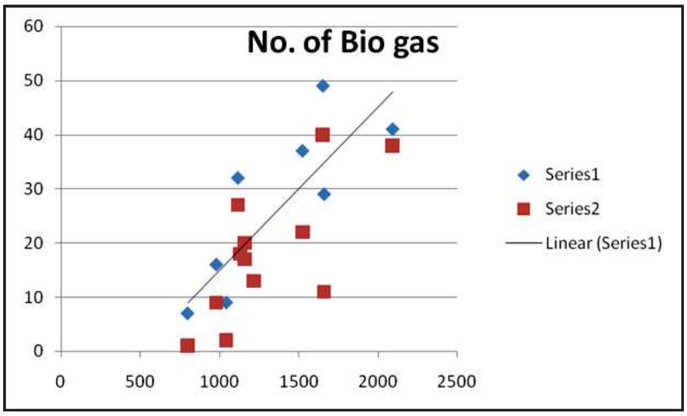

Fig. No.02. Number of biogas plants in Sanwer Block.

Fixed point results in cone metric spaces

Girish Pandya* M.M. Sharma** Shushil Sharma ***

Abstract - In this paper, we prove a unique common fixed point theorem in cone metric spaces without appealing to commutativity conditions. These results generalize several well-known comparable results in the literature.
Keywords: Common fixed point, cone metric space, coincidence points.

Introduction

The notion of cone metric space was introduced by Huang and Zhang in [1]. They replaced the set of real numbers by an ordered Banach space and defined a cone metric space. They introduced the notion of cone metric spaces as a generalization of metric spaces. They presented the notion of convergence of sequences in cone metric spaces and proved some fixed point theorems. Then after, many authors established many fixed point theorems in cone metric spaces. Abbas and Jungck [1] and Abbas and Rhoades [2] have studied common fixed point theorems in cone metric spaces (see also [5, 14] and the references mentioned therein). Isak Altun, G.Durmaz,[3] have proved some fixed point theorems on ordered cone metric spaces and M.Abbas , B.E.Rhoades [2] have proved common fixed point theorems for mappings without appealing to commutativity conditions in cone metric spaces. Recently, Abbas and Jungck [1] have obtained coincidence point result for two mappings in cone metric spaces. In this paper we prove fixed point results in cone metric spaces without appealing to commutativity conditions also we delete the continuity of the mappings and obtain some fixed point theorems for one expanding mapping . In all that follows B is a real Banach Space, and θ denotes the zero element of B. For the mapping f, g: $X \to X$, let C (f, g) denote the set of coincidence points of f and g, that is C (f,g) = { $z \in X$: fz = gz }

The following definitions are due to Huang and Zhang [5].

Definition 1

Let B be a real Banach Space and P a subset of B .The set P is called a cone if and only if:

(a). P is closed, non –empty and $p \neq \{\theta\}$;

(b). $a, b \in R,\ a, b \geq 0,\ x, y \in P$ implies ax+by $\in P$;

(c). $x \in P$ and $-x \in P$ implies $x = \theta$.

Definition 2

Let P be a cone in a Banach Space B, define partial ordering '$\leq$' with respect to P by $x \leq y$ if and only if $y - x \in P$. We shall write x<y to indicate $x \leq y$ but $x \neq y$ while $X << y$ will stand for $y - x \in$ Int P, where Int P denotes the interior of the set P. This Cone P is called an order cone.

Definition 3

Let B be a Banach Space and $P \subset B$ be an order cone .The order cone P is called normal if there exists L>0 such that for all $x, y \in B$,

$$\theta \leq x \leq y \ implies \ \|x\| \leq L \|y\|$$

The least positive number L satisfying the above inequality is called the normal constant of P.

Definition 4

Let X be a nonempty set of B .Suppose that the map d: $X \times X \to B$ satisfies:

(d1). $\theta \leq d(x, y)$ for all $x, y \in X$ and $d(x, y) = \theta$ if and only if $x = y$;

(d2). $d(x, y) = d(y, x)$ for all $x, y \in X$;

(d3). $d(x, y) \leq d(x, z) + d(y, z)$ for all $x, y, z \in X$.

Then d is called a cone metric on X and (X, d) is called a cone metric space.

The concept of a cone metric space is more general than that of a metric space.

Example 1 ([5])

Let $E = R^2, P = \{(x, y)E$ such that : $x, y \geq 0\} \subset R^2, X = R$ and $d: X \times X \to E$ such that $d(x, y) = (|x - y|, a|x - y|)$, where $a \geq 0$ is a constant .Then (X, d) is a cone metric space.

Definition 5

Let (X, d) be a cone metric space .We say that $\{x_n\}$ is

(i) a Cauchy sequence if for every c in B with $c \gg \theta$,there is N such that for all $n, m > N, d(x_m, x_m) \ll c$;

(ii) a convergent sequence if for any $c \gg \theta$,there is an N such that for all $n > N, d(x_n, x) \ll c$, for some fixed x in X .We denote this $x_n \to x(as\ n \to \infty)$.

Lemma 1

Let (X, d) be a cone metric space, and let P be a normal cone with normal constant K .Let {x_n} be a sequence in X .Then

(i). $\{x_n\}$ converges to x if and only if $d(x_n, x) \to 0\ (n \to \infty)$.

*Assistant Professor, Bhartiya College, Ujjain (M.P.) INDIA
** Retd. Professor *** Ex. Professor, Govt. Madhav Science College, Ujjain (M.P.) INDIA

(ii). $\{x_n\}$ is a Cauchy sequence if and only if $d(X_n, X_m) \to 0 \ (as\ n, m \to \infty)$.

Main Results

In this section we obtained a common fixed point theorem for mappings without appealing to commutativity conditions, defined on a cone metric space. Which generalizes the results of Abbas and Jungck [1].

Theorem 1

Let (X, d) be a complete cone metric space and P a normal cone with normal constant K. Suppose that the mappings f, g: $X \to X$ are such that for some constant $\lambda \in (0,1)$ and for every $x, y \in X$ are two self-maps of X satisfying

$$d(fx, fy) \le \lambda\left(d(fx, gy) + d(fy, gx)\right) \qquad (1)$$

If the range of g contains the range of f and g(X) is a complete subspace of X, then f and g have coincidence point. Then, f and g have a unique common fixed point in X.

Proof: Let x_0 be an arbitrary point in X, and let $x_1 \in X$ be chosen such that

$y_0 = f(x_0) = g(x_1)$. Since $f(X) \subseteq g(X)$. Let $x_2 \in X$ be chosen such that

$y_1 = f(x_1) = g(x_2)$. Continuing this process, having chosen $x_n \in X$, we chose $x_{n+1} \in X$

such that $y_n = f(x_n) = g(x_{n+1})$. Then

$$\begin{aligned} d(y_n, y_{n-1}) &= d(fx_n, fx_{n-1}) \\ &\le k\left(d(fx_n, gx_{n-1}) + d(fx_{n-1}, gx_n)\right) \quad (by (1)) \\ &\le k\left(d(gx_{n+1}, gx_n) + d(gx_n, gx_{n-1})\right) \\ &\le k\left(d(y_n, y_{n-1}) + d(y_{n-1}, y_{n-2})\right), \end{aligned}$$

for n=2,3....

$$d(y_n, y_{n-1}) - k(d(y_n, y_{n-1})) \le d(y_{n-1}, y_{n-2})$$

$$\Rightarrow d(y_n, y_{n-1}) \le \frac{1}{1-k} d(y_{n-1}, y_{n-2})$$

$$\le h d(y_{n-1}, y_{n-2}),$$

where,

$$h = \frac{1}{1-k}$$

Now by (2)

$$d(y_n, y_{n-1}) \le kd(y_{n-1}, y_{n-2}) \le \ldots\ldots \le k^{n-1} d(y_1, y_0)$$

Now we shall show that $\{y_n\}$ is a Cauchy sequence. By the triangle inequality, for n>m, we have

$$\begin{aligned} d(y_n, y_m) \le\ & d(y_n, y_{n-1}) \\ & + d(y_{n-1}, y_{n-2}) + \ldots\ldots + d(y_{m+1}, y_m) \end{aligned}$$

Hence, as p is a normal cone,

$$\begin{aligned} \|d(y_n, y_m)\| &\le L\left(\|d(y_n, y_{n-1}) + d(y_{n-1}, y_{n-2}) + \ldots \right. \\ &\qquad \left. \ldots + d(y_{m+1}, y_m)\|\right), \\ &\le L\left(\|d(y_n, y_{n-1})\| + \|d(y_{n-1}, y_{n-2})\| + \ldots \right. \\ &\qquad \left. \ldots + \|d(y_{m+1}, y_m)\|\right) \end{aligned}$$

$$\|d(y_n, y_m)\| \le L\left(K^{n-1} + K^{n-2} + \ldots\ldots + K^m\right)\|d(y_1, y_0)\|$$

$$\le \frac{L K^m}{1-K}\|d(y_1, y_0)\| \to 0, \ as\ m \to \infty$$

From ([5], Lemma 4) it follows that $\{y_n\}$ is a Cauchy sequence. Since g(X) is complete, there exists a q in g(X) such that $y_n \to q$ as $n \to \infty$. Consequently, we can find p in X such that $g(p) = q$. We shall show that $f(p) = q$. From (1)

$$d(gx_n, fp) = d(fx_{n-1}, fp) \le k\left(d(fx_{n-1}, gp) + d(fp, gx_{n-1})\right),$$

$$\Rightarrow d(gp, fp) \le k(d(gp, gp) + g(fp, gp))$$

$$\le kd(fp, gp)$$

It follows that, $d(gp, fp) = 0$

Hence,

$$gp = q = fp, p \text{ is a coincidence point of } f \text{ and } g$$

Now using (1),

$$d(p, gp) \le d(p, y_n) + d(y_n, gp)$$

(by the triangle inequality)

$$= d(p, y_n) + d(fx_n, fp) \to (\text{since } fp = gp)$$

$$\le d(p, y_n) + k(d(fx_n, gp) + d(fp, gx_n))$$

then

$$\|d(p, gp)\| \le L\left(\left\|d(p, y_n) + k\left(d(fx_n, gp) + d(fp, gx_n)\right)\right\|\right),$$

$$\le L\left(\|d(p, y_n)\| + k\left(\|d(y_n, gp)\|\right) + \|d(fp, y_{n-1})\|\right)$$

$$as\ n \to \infty$$

$$\le L\left(\|d(p, q)\| + k\left(\|d(q, gp)\| + \|d(fp, q)\|\right)\right),$$

$$\leq L\left(\|d(p,gp)\| + k\left(\|d(gq,gp)\| + \|d(fp,fp)\|\right)\right)$$
$$\leq L\|d(p,gp)\| + 0$$
$$\Rightarrow \|d(p,gp)\| = 0$$

That is, $p = gp$

Now,

$$d(fp,p) = d(fp,gp)$$
$$\leq k(d(fp,gp) + d(fp,gp)) \quad (by(1))$$
$$\leq 0 \quad (\text{since}, fp = gp)$$
$$\Rightarrow \|d(fp,p)\| = 0$$

That is, $fp = p$

Since, $fp = gp$

Therefore, $p = gp = p$, f and g have a common fixed point.

Uniqueness, let p_1 be another common fixed point of f and g, then

$$d(p,p_1) = d(fp,gp_1)$$
$$= d(fp,fp_1)$$
$$\leq k(d(fp,gp_1) + d(fp_1,gp)) \ (by(1)$$
$$\leq k(d(p,p_1) + d(p_1,p))$$
$$\leq 2k,\ d(p_1,p)$$

It follows that, $d(p,p_1) = 0$ that is, $p = p_1$

Therefore, f and g have a unique common fixed point.

This completes the proof.

Definition 6

Let *P* be a subset of *E*. θ denotes the zero element of *E* and int*P* denotes the interior of *P*. The subset *P* is called a cone if and only if:

(i) *P* is closed, nonempty and $p \neq \{\theta\}$,

(ii) $a,b \in \square$, $a,b \geq 0$, $x,y \in P \Rightarrow ax + by \in P$,

(iii) $x \in P$ and $-x \in P \Rightarrow x = \theta$.

Given a cone $P \subset E$, we define a partial ordering $\leq$ with respect to *P* by $x \leq y$ if and only if $y - x \in P$. We will write $x < y$ if $x \leq y$ and $x \neq y$, while $x \square\ y$ will stand for $y - x \in \text{int} P$. A cone *P* is called normal if there is a number $K > 0$ such that for all $x, y \in P$,

$$\theta \leq x \leq y \ \ implies \ \ \|x\| \leq K\|y\|$$

The least positive number satisfying the above inequality is called the normal constant of *P*.

Lemma 2([11])

The limit of a convergent sequence in a cone metric space is unique. In this section, we prove some fixed point theorems for expanding mappings without continuity in the following theorems.

Theorem 2

Let (x,d) *be a complete cone metric space. Suppose the mappingis* $f: X \to X$ *onto and satisfies*

$$d(f_x,f_y) \geq a_1 d(x,y) + a_2 d(x,fx) + a_3 d(y,fy) + a_4 d(x,fy) + a_5 d(y,fx) \quad (2)$$

for all, $x,y \in X$ *where* a_i $(i = 1,2,3,4,5)$ *satisfies* $a_1 + a_2 + a_3 > 1$ *and* $a_3 \leq 1 + a_4$. *Then f has a fixed point.*

Proof Since f is an onto mapping for each $x_0 \in X$, there exists $fx_1 = x_0$. Continuing this process, we can define $\{x_n\}$ by $x_n = fx_{n+1}$, $n = 0,1,2,\ldots$. Without loss of generality, we suppose that $x_{n-1} \neq x_n$ for all $n \geq 1$. According to (2), we have

$$d(x_n, x_{n-1}) = d(fx_{n+1}, fx_n)$$
$$\geq a_1 d(x_{n+1},x_n) + a_2 d(x_{n+1},fx_{n+1}) + a_3 d(x_n,fx_n)$$
$$+ a_4 d(x_{n+1},fx_n) + a_5 d(x_n,fx_{n+1})$$
$$= a_1 d(x_{n+1},x_n) + a_2 d(x_{n+1},x_n) + a_3 d(x_n,x_{n-1}) + a_4 d(x_{n+1},x_{n-1}) + a_5 d(x_n,x_n)$$

By , the above inequality implies that

Let . By and , we know and . Hence, we get

So, by the triangle inequality, for any , we see

Thus, as , we can choose a natural number such that for each and . Hence, we see

Therefore, is a Cauchy sequence in .

Since *X* is complete, there exists such that as . Consequently, we can find a such that . Now, we show that . Substituting , in (2), we get

For the second and fourth term on the right-hand side, we have and . For the left-hand side, . It follows that

Now, we have

If for each , we can choose a natural number such that and for . Thus, we obtain

If for ,

Therefore, . From Lemma 2, we see . The conclusion is true.

Taking some particular value of () in Theorem 2, we obtain several new results in the following.

Corollary 1

Letbe a complete cone metric space. Suppose the mappingis onto and satisfies

for all, where and . Then f has a fixed point.

Corollary 2

Let be a complete cone metric space. Suppose the mappingis onto and satisfies

for all, where k, l are constants and. Then f has a fixed point.

References

1. Huang, LG, Zhang, X: Cone metric spaces and fixed point theorems of contractive mappings. J Math Anal Appl. **332**, 1468–1476 (2007). Arshad, M, Azam, A, Beg, I: Common fixed points of two maps in cone metric spaces. Rend Circ Mat Palermo. **57**, 433–441 (2008). Arshad, M, Azam, A, Vetro, P: Some common fixed point results in cone metric spaces. Fixed Point Theory Appl. **2009**, 11 (Article ID 493965) (2009)
2. Abbas, M, Ali Khan, M, Radenoviæ, S: Common coupled fixed point theorems in cone metric spaces for *w*-compatible mappings. Appl Math Comput (2010)
3. Abbas, M, Rhoades, BE: Fixed and periodic point results in cone metric spaces. Appl Math Lett. **22**, 511–515 (2009).
4. Abbas, M, Jungck, G: Common fixed point results for noncommuting mappings without continuity in cone metric spaces. J Math Anal Appl. **341**, 416–420 (2008).
5. Altun, I, Durmaz, G: Some fixed point theorems on ordered cone metric spaces. Rend Circ Mat Palermo. **58**, 319–325 (2009).
6. Altun, I, Damjanoviæ, B, Djoriæ, D: Fixed point and common fixed point theorems on ordered cone metric spaces. Appl Math Lett. **23**, 310–316 (2010).
7. Aydi, H, Nashine, HK, Samet, B, Yazidi, H: Coincidence and common fixed point results in partially ordered cone metric spaces and applications to integral equations. Nonlinear Anal. **74**, 6814–6825 (2011).
8. Aydi, H, Samet, B, Vetro, C: Coupled fixed point results in cone metric spaces for compatible mappings. Fixed Point Theory Appl. **2011**, 27 (2011).

Authors

1 Girish pandya,Assistant professor, Bhartiya college, Ujjain (M.P.).

2 M.M. sharma, Retd. Professor, Govt. Madhav science college,Ujjain (M.P.)

3 Sushil sharma, Professor, Govt. Madhav science college,Ujjain (M.P.)

****

Fixed point results in G-metric spaces

Girish Pandya * M.M. Sharma **

Abstract -We discuss the introduced concept of G-metric spaces and the fixed point existing results of contractive mappings defined on such spaces. **Keywords-** G-metric; quasi-metric; metric; fixed point.

Introduction- The study of metric fixed point theory plays an important role because the study finds applications in many important areas as diverse as differential equations, operation research, mathematical economics and the like. Different generalizations of the usual notion of a metric space were proposed by several mathematicians such as G¨ahler and Dhage. K.S.Ha et.al. have pointed out that the results cited by G¨ahler are independent, rather than generalizations, of the corresponding results in metric spaces. Moreover, it was shown that Dhage's notion of D-metric space is flawed by errors and most of the results established by him and others are invalid.

These facts determined Mustafa and Sims [5] to introduce a new concept in the area, called G-metric space. In 2005, Mustafa and Sims introduced a new class of generalized metric spaces (see [1,2]), which are called G-metric spaces, as generalization of a metric space (x,d). Subsequently, many fixed point results on such spaces appeared.

It was observed that in the symmetric case (X, G) is symmetric), many fixed point theorems on G-metric spaces are particular cases of existing fixed point theorems in metric spaces. In this paper, we show that the most obtained fixed point theorems on such spaces can be deduced immediately from fixed point theorems on quasi-metric spaces.

Preliminaries

Definition 1

Let X be a nonempty set. Suppose that $G:X\times X\times X\to[0,+8)$ is a function satisfying the following conditions:

(1) $G(x,y,z) = 0$ if and only if $x=y=z$;

(2) $0>G(x,x,y)$ for all $x,y\in X$ with $x \neq y$;

(3) $G(x,x,y) \leq G(x,y,z)$ for all $x,y,z \in X$ with $y \neq z$;

(4) G (x,y,z) = (? ,z,y) = G(y,z,x) = ... (symmetry in all three variables);

(5) $G(x,y,z) \leq G(x,a,a,) + G(a,y,z)$ for all $x,y,z,a \in X$.

Then G is called a G-metric on X and (X,G) is called a G-metric space.

Definition 2

A G-metric space (X,G) is said to be symmetric if $G(x,y,y) = G(y,x,x)$ for all $x,y \in X$.

Definition 3

Let (X,G) be a G-metric space. We say that $\{x_n\}$ is

(1) a G-Cauchy sequence if, for any $\varepsilon>0$, there is $n \in N$ (the set of all positive integers) such that for all $n, m, l \geq N$, $G(x_n, x_m, x_l) < \varepsilon$;

(2) a G-convergent sequence to $x \in X$ if, for any $\varepsilon > 0$, there is $n\in N$ such that for all $n, m \geq N$, $G(x, x_n, x_m) < \varepsilon$.

A G-metric space (X,G) is said to be complete if every G-Cauchy sequence in X is G-convergent in X.

Proposition 1

Let (X,G) be a G-metric space. The following are equivalent:

(1) $\{x_n\}$*is G-convergent to x*;

(2) $G(x_n, x_n, x)\to 0$ *as* $n\to +8$;

(3) $G(x_n, x , x)\to 0$, *as* $n \to +8$;

(4) $G(x_n, x_m\ x)\to 0$, as $n, m\to +8$.

Proposition 2

Let (X,G) be a G-metric space. Then the following are equivalent:

(1) *the sequence* $\{x_n\}$ *is G-Cauchy*;

(2) $G(x_n, x_m, x_m) \to 0$ *as* $n, m \to 8$.

An interesting observation is that any G-metric space (X,G) induces a metric d_G on X given by

$d_G(x,y) = G(x,y,y) + G(y,x,x)$, for all $x,y\in X$.

Moreover, (X,G) is G-complete if and only if (X,d_G) is complete.

Theorem A

Let (X,G) be a G-metric space. The function $d : x\to x\to [0,8)$ *defined by* $d(x,y)= G(x,y,y)$ *satisfies the following properties*:

(1) $d(x,y) = 0$ *if and only if* $x=y$;

(2) $d(x,y) \leq d(x,z) + d(z,y)$ *for any points* $x,y,z\in X$.

Proof The proof of (1) follows immediately from the property (1) in definition 1. Now, let x, y, z be any points in X. Using the property (5) in definition 1, we have

$$d(x,y) = G(x,y,y) \leq G(x,z,z)+G(z,y,y) = d(x,z) + d(z,y)$$

Thus, (2) holds.

The above result suggests the following definition.

* Assistant professor, Bhartiya college, Ujjain ** Retd. Professor, Govt. Madhav science college,Ujjain (M.P.) INDIA

Definition 4

Let X be a nonempty set and $d : X \times X \to [0,8)$ be a given function which satisfies

(1) $d(x,y) = 0$ if and only if $x=y$;

(2) $d(x,y) \le d(x,z) + d(z,y)$ for any points $x,y,z \in X$.

Then d is called a quasi-metric and the pair (X,d) is called a quasi-metric space.

Note that any metric space is a quasi-metric space, but the converse is not true in general.

Now, we define convergence and completeness on quasi-metric spaces.

Definition 5

Let (X,d) be a quasi-metric space, $\{x_n\}$ be a sequence in X, and $x \in X$. The sequence $\{x_n\}$ converges to x if and only if

$$\lim_{n\to\infty} d(x_n,x) = \lim_{n\to\infty} d(x,x_n) = 0$$

Definition 6

Let (X,d) be a quasi-metric space and $\{x_n\}$ be a sequence in X. We say that $\{x_n\}$ is left-Cauchy if and only if for every $\varepsilon>0$ there exists a positive integer $N=N(\varepsilon)$ such that $d(x_n,x_m) < \varepsilon$ for all $n \ge m > N$.

Definition 7

Let (X,d) be a quasi-metric space and $\{x_n\}$ be a sequence in X. We say that $\{x_n\}$ is right-Cauchy if and only if for every $\varepsilon>0$ there exists a positive integer $N=N(\varepsilon)$ such that $d(x_n,x_m) < \varepsilon$ for all $m \ge n > N$.

Definition 8

Let (X,d) be a quasi-metric space and $\{x_n\}$ be a sequence in X. We say that $\{x_n\}$ is Cauchy if and only if for every $\varepsilon>0$ there exists a positive integer $N=N(\varepsilon)$ such that $d(x_n,x_m) < \varepsilon$ for all $m,n > N$.

Obviously, a sequence $\{x_n\}$ in a quasi-metric space is Cauchy if and only if it is left-Cauchy and right-Cauchy.

Definition 9

Let (X,d) be a quasi-metric space. We say that

(1) (X,d) is left-complete if and only if each left-Cauchy sequence in X is convergent;

(2) (X,d) is right-complete if and only if each right-Cauchy sequence in X is convergent;

(3) (X,d) is complete if and only if each Cauchy sequence in X is convergent.

The following result is an immediate consequence of the above definitions and results.

Theorem B

Le (X,G) be a G-metric space. Let $d: X\times X \to [0,8)$ be the function defined by

$d(x,y) = G(x,y,y)$. *Then*

(1) (X,d) *is a quasi-metric space;*

(2) $\{x_n\} \subset X$ *is G-convergent to $x \in X$ if and only if $\{x_n\}$ is convergent to x in* (X,d);

(3) $\{x_n\} \subset X$ *is G-Cauchy if and only if $\{x_n\}$ is Cauchy in* (X,d);

(4) *(X,G) is G-complete if and only if (X,d) is complete.*

Every quasi-metric induces a metric, that is, if (X,d) is a quasi-metric space, then the function $\delta : X \times X \to [0,8)$ defined by

$\delta(x,y) = \max\{d(x,y), d(y,x)\}$

is a metric on X.

The following result is an immediate consequence of the above definitions and results.

Theorem C

Le (X,G) be a G-metric space. Let $\delta: X\times X \to [0,8)$ be the function defined by

$\delta(x,y) = \max\{G(x,y,y), G(y,x,x)\}$. *Then*

(1) (X,δ) *is a metric space;*

(2) $\{x_n\} \subset X$ *is G-convergent to $x \in X$ if and only if $\{x_n\}$ is convergent to x in (X,δ);*

(3) $\{x_n\} \subset X$ *is G-Cauchy if and only if $\{x_n\}$ is Cauchy in* (X,δ);

(4) *(X,G) is G-complete if and only if (X,δ) is complete.*

Main Results

we will show that we can deduce fixed point results on G-metric spaces from fixed point results on quasi-metric spaces. As a model example, we consider a weakly contractive condition. At first, we need the following fixed point theorem on quasi-metric spaces.

Theorem 1

Let (X,d) be a complete quasi-metric space and $T: X \to X$ be a mapping satisfying

$d(T_x,T_y) \le d(x,y) - \varphi(d(x,y))$, (1)

for all $x,y \in X$, where $\varphi : [0,8) \to [0,8)$ is continuous with $\varphi^{-1}(\{0\})=\{0\}$. Then T has a unique fixed point.

Proof

Let x_0 be any point in X and { }be the sequence defined by $x_{n+1} = Tx_n$ for all $n \ge 0$. From (1), we have

$d(x_n, x_{n+1}) \le d(x_{n-1}, x_n) - \varphi(d(x_{n-1}, x_n))$, for all $n \ge 1$.

This implies that $\{d(x_n, x_{n+1})$ is a decreasing sequence of positive numbers. Then there exists $r \ge 0$ such that $d(x_n, x_{n+1}) \to r$ as $n \to 8$. Letting $n \to 8$, we get that $\varphi(r)=0$, that is, $r=0$. Thus, we have

$$\lim_{n\to\infty} d(x_n,x_{n+1}) = 0$$

(2)

we also have

$$\lim_{n\to\infty} d(x_{n+1},x_n) = 0$$

(3)

Now, we shall prove that $\{x_n\}$ is a Cauchy sequence in the quasi-metric space (X,d), that is, $\{x_n\}$ is left-Cauchy and right-Cauchy. Suppose that $\{x_n\}$ is not a left-Cauchy sequence. Then there exists $\varepsilon>0$ for which we can find subsequences $\{x_{n(k)}\}$ and $\{X_{m(k)}\}$ of $\{x_n\}$ with $n(k) > m(k) > k$ such that

$d(x_{n(k)}, x_{m(k)}) \ge \varepsilon$,

for all k. Further, corresponding to m(k), we can choose n(k) such that it is the smallest integer with n(k) > m(k) satisfying the above inequality. Then

$d(x_{n(k)-1}, x_{m(k)}) < \varepsilon$

for all k. On the other hand, we have

$\varepsilon \leq d(x_{n(k)}, x_{m(k)}) \leq d(x_{n(k)}, x_{n(k)-1}) + d(x_{n(k)-1}, x_{m(k)}) < d(x_{n(k)}, x_{n(k)-1}) + \varepsilon$.

Letting k→8 and using (3), we get

$$\lim_{k\to\infty} d(x_{n(k)}, x_{m(k)}) = \varepsilon$$

(4)

We have

$d(x_{n(k)-1}, x_{m(k)-1}) \leq d(x_{n(k)-1}, x_{n(k)}) + d(x_{n(k)}, x_{m(k)}) + d(x_{m(k)}, x_{m(k)-1})$.

and

$d(x_{n(k)}, x_{m(k)}) \leq d(x_{n(k)}, x_{n(k)-1}) + d(x_{n(k)-1}, x_{m(k)-1}) + d(x_{m(k)-1}, x_{m(k)})$.

Letting k→8 in the above inequalities, using (2), (3), and (4), we get

$$\lim_{k\to\infty} d(x_{n(k)-1}, x_{m(k)-1}) = \varepsilon$$

(5)

Now, from (1), for all k, we have

$d(x_{n(k)}, x_{m(k)}) \leq d(x_{n(k)-1}, x_{m(k)-1}) - \varphi(d(x_{n(k)-1}, x_{m(k)-1}))$.

Letting k→8 in the above inequality, using (4) and (5), we obtain

$\varepsilon \leq \varepsilon - \varphi(\varepsilon)$

which implies that ε=0: a contradiction with ε>0. Then we proved that $\{x_n\}$ is a left-Cauchy sequence. Similarly, we can show that $\{x_n\}$is a right-Cauchy sequence. Then $\{x_n\}$is a Cauchy sequence in the complete quasi-metric space (X,d). This implies that there exists a∈X such that

$$\lim_{n\to\infty} d(x_n, a) = \lim_{n\to\infty} d(a, x_n) = 0$$

(6)

Now, we have

$d(x_n, Ta) = d(Tx_{n-1}, Ta) \leq d(x_{n-1}, a) - \varphi(d(x_{n-1}, a))$.

Letting n→8 and using (6), we have

$$\lim_{n\to\infty} d(x_n, Ta) = 0$$

Similarly, we have

$d(Ta, x_n) = d(Ta, Tx_{n-1}) \leq d(a, x_{n-1}) - \varphi(d(a, x_{n-1}))$

Letting n→8 and using (6), we have

$$\lim_{n\to\infty} d(T_a, x_n) = 0$$

Then, we have

$$\lim_{n\to\infty} d(x_n, Ta) = \lim_{n\to\infty} d(Ta, x_n) = 0$$

(7)

It follows from (6) and (7) that a=Ta, that is, a is a fixed point of T.

To show the uniqueness of the fixed point, suppose that b is also a fixed point of T.

From (1), we have

$d(a,b) = d(Ta,Tb) \leq d(a,b) - \varphi(d(a,b))$

which implies that d(a,b)=0, that is, a=b. Then a is the unique fixed point of T.

Now, from this theorem, we deduce immediately the following fixed point theorem on G-metric spaces.

Theorem 2

Let (X,G) be a G-complete metric space and T:X→X be a mapping satisfying

$G(T_x, T_y, T_y) \leq G(x,y,y) - \varphi(G(x,y,y))$ (8)

for all x,y∈ X, where φ[0,8)→ [0,8} is continuous with $\varphi^{-1}(\{0\}) = \{0\}$. Then T has a unique fixed point.

Proof Consider the quasi-metric $\delta(x,y) = G(x,y,y)$ for all x,y ∈ X. From (8), we have

$d(T_x, T_y) \leq d(x,y) - \varphi(d(x,y))$

for all x,y∈X . Then the result follows from theorem 1

References

1. Mustafa, Z: A new structure for generalized metric spaces-with applications to fixed point theory. PhD thesis, the University of Newcastle, Australia (2005)
2. Mustafa, Z, Sims, B: A new approach to generalized metric spaces. J. Nonlinear Convex Anal.. 7(2), 289-297 (2006)
3. Mustafa, Z, Obiedat, H: A fixed point theorem of Reich in G-metric spaces. CUBO. 12(1), 83-93 (2010).
4. Mustafa, Z, Shatanawi, W, Bataineh, M: Existence of fixed point results in G-metric spaces. Int. J. Math. Math. Sci.. 2009, Article ID 283028 (2009)
5. Mustafa, Z, Sims, B: Fixed point theorems for contractive mappings in complete G-metric spaces. Fixed Point Theory Appl.. 2009, Article ID 917175 (2009)
6. Shatanawi, W: Fixed point theory for contractive mappings satisfying Φ-maps in G-metric spaces. Fixed Point Theory Appl.. 2010, Article ID 181650 (2010)
7. Shatanawi, W: Some fixed point theorems in ordered G-metric spaces and applications. Abstr. Appl. Anal.. 2011, Article ID 126205 (2011)
8. Mustafa, Z, Obiedat, H, Awawdeh, F: Some fixed point theorem for mapping on complete G-metric spaces. Fixed Point Theory Appl.. (2008)
9. Ćirić, , LB: Ageneralization of Banach's contraction principle. Proc. Am. Math. Soc.. 45(2), 267-273 (1974)

Signals Representation By Summability Theorem Involving Jacobi Series And Wavelets

S. D. Chaturvedi * R.C. Dixit ** M.K. Mishra *** Aditi Silawat ****

Abstract - We prove a new Theorem that in a sub space of Lebesgue space, a function can be represented by a linear combination of Jacobi polynomials to any degree of accuracy. Casaro summability theorems for Jacobi series and wavelets Our method in the uniform Convergence of F.J. expansion associated with function. i. e. Signals of the subspace.

INTRODUCTION :

Let $L_1(\omega)$ be the space of all Lebesgue integrable function $f(\cos\theta)$ *defined* on $[o, \pi]$ with weight $\omega(\theta) = (\sin\theta / L)^{2\alpha+1} (\cos\theta / 2)^{2\beta+1}, (\alpha, \beta > -1)$ (1)

The fourier Jacobi – expansion associated with f is

$$f(\cos\theta) \sim \sum_{n=0}^{\infty} a_n P_n^{(\alpha,\beta)}(\cos\theta)$$

a_n (n=1.2 ....) are Jacobi constant given by

$$a_n = \{h\eta(\alpha,\beta)\}^{-1} \int_0^{\pi} f(\cos\theta) P_n^{(\alpha-\beta)}(\cos\theta)\, W(\theta)\, d\theta$$

Where

$$h_n(\alpha,\beta) = \int_0^{\pi} \left\{ P_n^{(\alpha-\beta)}(\cos\theta)^2 \right\} w(\theta)\, d\theta$$

$$= \frac{\Gamma(n+\alpha+1)\,\Gamma(n+\beta+1)}{(2n+\alpha+\beta+2)\,\Gamma(n+1)\,\Gamma(n+\alpha+\beta+1)}$$

$P_n^{(\alpha,\beta)}(\cos\theta)$ is n-th Jacobi polynomial of degree and order (α, β). The $P_n^{(\alpha,\beta)}(\cos\theta), n = 0,1,2$ ....) $(\alpha, \beta > -1)$ is orthogonal (o, π). The $P_n^{(\alpha,\beta)}(\cos\theta), n = 0,1,2$..............) $(\alpha, \beta > -1)$ generalized summability theorem of G. SzegÖ[1] theorem [9.1.4] in [1].

(theorem 9.1.4) for the series (7.1.1)is

Theorem A Let $f \in L_1(\omega)$ and

$$\int_0^t |f(\cos\theta) - f(1)|\, d\theta = 0(t), as\ t \to 0^+$$

Then the Jacobi series (7.1.1) (C,K) summable $K > \alpha + ½$ at $\theta=0$

Provided that in case $\beta = -½ \alpha + ½ < K < \alpha + \beta 1$ the following additional "antipole condition" is satisfied the integral $\int_0^{\varepsilon} \phi^{\beta+½} |f(-\cos\phi)|\, d\phi\ ,\ \varepsilon > 0$ exists. (For $K \geq \alpha + \beta + 1$, no antipole condition is necessary)

For $K < \alpha + ½$ or for $K > + ½$ without the antipole condition, the statement is not true.

In view of Ramark (4) on Page 264 of [1], the statement of Theorem A is same as theorem (9.1.4) in [1]. We write X to denote either of the spaces C[-1,1] and $L_p^{(\alpha,\beta)}(\omega), (1 \le P \le \infty)$ are function spaces of p-power Labesgue integral with weight $w(x) = (1-x)^{\alpha}(1+\alpha)^{\beta}$;(α, β >-1) for $f \in x$, we associate the Fourier-Jacobi expansion given (7.1.1). We consider a subspace X_1 of X , such that the linear conditions are satisfied. Then we prove the following theorem.

Theorem 1 If $f \in X_1$ then f can be represented by a linear combination of Jacobi polynomial - $-½ \le \alpha < ½ \alpha \ge \beta \ge -½$ to any degree of accuracy precisely,

$\| \sigma_n^k(f, \cos\theta, X_1) - f(\cos\theta) \| \to 0$, as $n \to \infty$

or $\forall \varepsilon > 0, \exists$ no , $n > no$

$\| \sigma_n^k(f, \cos\theta, X_1) - f(\cos\theta) \|_x <$ □

Theorem 2 If $f \in X_1$ then f can be represented by a linear combination of Jacobi polynomials for $-\frac{1}{2} \le \alpha \le \frac{1}{2},\ \alpha \ge \beta \ge -\frac{1}{2}$ to any degree of accuracy precisely $\Rightarrow \left\| \sigma_n^k(f, \cos\theta), X) - f(\cos\theta) \right\|_x < \varepsilon$

2. RESULTS TO BE USED

The following lemmas are required for the proof of the Theorem

Lemma1

This lemma is taken from Yadav [2]

$$\int_0^{\pi} F(\phi) P_n^{(\alpha+K+1+\beta)}(\cos\phi)\, d\phi = \begin{cases} O(n^{K-\alpha-1}) & , K > \alpha + ½ \\ O(n^{-½} \log n) & , K = \alpha + ½ \\ O(n^{-½}) & , K < \alpha + ½ \end{cases}$$

* Govt. Maharaja college, Chhatarpur (MP) INDIA
** & *** Govt. Holkar Science college, Indore (MP) INDIA **** Research Scholar

$as\ n \to \infty$

Lemma2

$Let\ f \varepsilon L_1(w)$ and

$\int_0^1 |F(W)|\, dw = 0\ (t^{2\alpha+2})$, $t \to 0^+$

Where

$F(w) = \{ f(\cos w) - A\} (\sin w/2)^{2\alpha+1} (Cos w/2)^{2\beta+1}$

And A be a constant dependent on f. Then the Jacobi Series. (7.1.1) is (c, k) summable $K > \alpha + ½\ at\ \theta = 0$, Provided that in the case, $\beta > -½,\ \alpha + ½ < K < \alpha + \beta + 1$, the following addition "antipole condition" is satisfied; that

$\int_0^h W^{\beta+\alpha+K}\ |f(-\cos\theta)|\, dw = 0\ (1), as\ h \to 0$

Holds (for $-1 < \beta \le -½$ or for $k \ge \alpha + \beta + 1$, no antipole condition is necessary). For k ≤ α + ½ but without the antipole condition the statement is not ture.

PROOF OF LEMMA 2.

If we denote by $\sigma_n^k(x)$ the n-th Cesaro mean of order k, of the series (7.1.1) at

$\cos\theta = x \in (-1, 1)$ cos θ, then

$$\sigma_n^k(x) = \{C_n^k\} \sum_{v=0}^{n} C_{n-v}^k\ av\ P_v^{(\alpha,\beta)}(x)$$

and by the orthogonal property of Jacobi polynomials and

$P_0^{(\alpha,\beta)}\ (x) = 1,$

$$\sigma_n^k(x) - A = \left\{\frac{1}{C_n^k}\right\} \sum_{v=0}^{n} C_{n-v}^k\ \left(h_v^{(\alpha,\beta)}\right)^{-1} \int_{-1}^{1} (1-y)^\alpha (1+y)^\beta$$

$$[f(y) - A]\ P_v^{(\alpha,\beta)}\ (y) P_v^{(A\alpha,\beta)}\ (x)\ dy$$

(for the notation see [1], P-258 at x=1, i.e. θ=0

$$\sigma_n^k(1) - A = \frac{2^{-\alpha-\beta-1}}{\sqrt{\alpha+1}} C_n^k \sum_{v=0}^{n} G^{(n,k)} \frac{2\gamma + \alpha + \beta + 2 \lfloor v + \alpha + \beta + 2}{\lfloor v + \beta + 1}$$

$$\int_1^1 (1-x)^\alpha (1-x)^\beta [f(x) - A] P_V^{(\alpha+\beta+1,\beta)}(x) \quad dx$$

$$= \quad O(n^{-k}) \sum_{V=0}^{n} |G_v(n,k)| O(v)^{\alpha+k+2} \left| \int_0^\pi F(w) p_v^{(v+k+1,\beta)}(\cos w)\, dw \right|$$

$$= \quad Oo(n^{-k}) \sum_{V=0}^{n} |G_v(n,k)| O(v^{\alpha+k+2})\, O(v^{k-\alpha-1})$$

(by lemma l, for K > $\alpha + ½$)

Where $G_v(n,k)$ are defined on page 258 of {1} and v=0

We replace $o(v^{\alpha+\beta+2})$ and $o(v^{\alpha-\beta-2})$ by 1.

Thus

$$o_n^k(1) - A = 0(n^{-k}) \sum_{V=0}^{n} |G_v(n,k)|.\, O(v^{2k+2})$$

Thus

$$o_n^k(1) - A = 0(n^{-k}) \sum_{V=0}^{n} |G_v(n,k)|.\, O(v^{2k+2})$$

$M_n^k C\ f\ [1] p.263$

for k> $\alpha + ½$

But

$M_n^k \to 0(1),\ \ as\ n \to \infty\ for\ all\ k > \alpha + ½\ has\ been\ proved\ in$ [1]

This is the complete proof of Lemma 2.

This is complete proof of theorem

Remark For -1< β<-1/2,or for k >α+β1, β>-1/2 we do not (2.7.4) in the proof of Lemma 1. Thus the "antipole condition" is required only in the case of (7.2.3) it is due to generalized translation of function given by its Fourier-Jacob expansion, that an end point convergence problem is converted to give an approximation theorem in the closed interval [-1,1]. Such that first transplantation on theorem has been given by Yadav [4]. Thus we are able to give an approximation using Cesaro matrix.

Proof of theorem

Substituting

$$\Delta\lambda n, k = \sum_{v=0}^{n} \frac{C_{n-v}^k}{C_n^k}\ for\ k < n\ and\ o\ for\ k > n\ in\ equation (2.10)$$

Of [3] we have

$$o_n^k\ (f, \cos\theta, x) - f\ (\cos\theta)$$

$$= \int_0^\pi [T_\Psi(\cos\theta) - f(\cos\theta)] \sum_{v=0}^{n} \frac{C_{n-v}^k}{C_n^k}$$

$$\sum_{n=0}^{k} \frac{\alpha+1}{2k + \alpha + \beta + 2} \quad W_k^{(\alpha+1,\beta)}\ R_k^{(\alpha+1,\beta)}(\cos\psi)\, p(\psi)\, d\psi$$

Where

is T $_\psi$ f (cos**θ**) generalized translate of f (cos**θ**) in the interval [0,**π**]and

$$\|T_\psi f\|_x < \|f\|_x \qquad (\alpha > \beta > -½)$$

Thus we save for an absolute constant A_4

$$\| T_4\ f(\cos\theta) - f(\cos\theta) \|_x \cong \| f(\cos\alpha) - A \|_x$$

So That

$$\left\| o_n^k\left(f, \cos\theta, x\right) - f\left(\cos\theta\right) \right\|_x < A_4 + \left\| o_n^k\left(f, l, x\right) - A \right\|_x$$

$$for - \tfrac{1}{2} < \alpha < \tfrac{1}{2}, \beta > -1$$

But right side tends to zero by lemma 2 Hence the theorem follows.

This completes the proof of the theorem

References :

1. G. Szego, Orthogonal Polynomials, 3rd Edn. Amer Math. Soc. Collo. Pub., New York, Vol. XXIII, 1967
2. J. Tian and R.O. Wells (Jr.) Vanishing Moments and Biorthogonal Coifman Wavelet System, in : Proc. Of 4th International Conference on Mathematics in Signal Processing, University of Warwick, England, 1996-97
3. O.P. Vertesi, Hermite-Fejer interpolation based on the roots of Languerre polynomials, Studia Sci, Math. Hungarica, (1971), 91-97.
4. Sarjoo Prasad Yadav, On a Banach space approximable by Jacobi Polynomials, Acta Math. Hunger., 981-2 (2003), 21-30

****

Related Fixed Point Theorem for Two Complete Intuitionistic Fuzzy Metric Spaces

Sushil Sharma * Shashi Solanki **

Abstract - The aim of present paper is to prove a related fixed point theorem for two complete intuitionistic fuzzy metric spaces. **AMS Subject Classification :** Primary 47H10, Secondary 54H25.

Introduction :

Atanassov [2] introduced and studied the concept of Intuitionistic Fuzzy Metric set as a generalization of fuzzy sets. Intuitionistic Fuzzy Metric set deals with both the degree of nearness and non – nearness. Park [6] defined the notion of Intuitionistic Fuzzy Metric Space with the help of continuous t–norms and continuous t–conorms as generalization of Fuzzy metric space due to George and Veeramani [4]. Further, using the idea of Intuitionistic Fuzzy set, Alaca et.al. [1] defined the notion of Intuitionistic Fuzzy Metric space, as Park [7] with the help of continuous t – norms and continuous t–conorms, as a generalization of fuzzy metric space due to Kramosil and Michalek [5], further Coker [3], Turkoglu [8] and others have been expansively developed the theory of Intuitionistic Fuzzy set and applications.

For the sake of completeness, we recall some definitions and known results in Fuzzy metric space.

2.1 Preliminaries.

Definition 2.1. [1] A binary operation $* : [0,1] \times [0,1] \rightarrow [0,1]$ is said to be continuous t–norm if $*$ is satisfying the following conditions :

(i) $*$ is commutative and associative;

(ii) $*$ is continuous;

(iii) $a * 1 = a$ for all $a \in [0, 1]$;

(iv) $a * b \leq c * d$ whenever $a \leq c$ and $b \leq d$ for all a, b, c, d $\in [0, 1]$.

Definition 2.2. [1] A binary operation $\lozenge : [0, 1] \times [0, 1] \rightarrow [0, 1]$ is continuous

t–conorm if $\lozenge$ is satisfying the following conditions :

(i) $\lozenge$ is commutative and associative;

(ii) $\lozenge$ is continuous;

(iii) $a \lozenge 0 = a$ for all $a \in [0, 1]$;

(iv) $a \lozenge b \leq c \lozenge d$ whenever $a \leq c$ and $b \leq d$ for all a, b, c, d $\in [0, 1]$.

Alaca et al. [1] using the idea of intuitionistic fuzzy set, defined the notion of intuitionistic fuzzy metric space with the help of continuous t – norms and continuous t – conorms as a generalization of fuzzy metric space due to Kramosil and Michalek [5] as follows :

Definition 2.3. [1] A 5–tuple $(X, M, N, *, \lozenge)$ is said to be intuitionistic fuzzy metric space if X is an arbitrary set, $*$ is a continuous t – norm, $\lozenge$ is a continuous t–conorm and M, N are fuzzy sets on $X^2 \times (0,\infty)$ satisfying the following conditions :

(i) $M(x, y, t) + N(x, y, t) \leq 1$ for all $x, y \in X$ and $t > 0$;

(ii) $M(x, y, 0) = 0$ for all $x, y \in X$;

(iii) $M(x, y, t) = 1$ for all $x, y \in X$ and $t > 0$ if and only if $x = y$;

(iv) $M(x, y, t) = M(y, x, t)$ for all $x, y \in X$ and $t > 0$;

(v) $M(x, y, t) * M(y, z, s) \leq M(x, z, t + s)$ for all $x, y, z \in X$ and $s, t > 0$;

(vi) for all $x, y \in X$, $M(x, y, .) : [0, \infty) \rightarrow [0, 1]$ is left continuous;

(vii) $\lim_{t \rightarrow \infty} M(x, y, t) = 1$ for all $x, y \in X$ and $t > 0$;

(viii) $N(x, y, 0) = 1$ for all $x, y \in X$;

(ix) $N(x, y, t) = 0$ for all $x, y \in X$ and $t > 0$ if and only if $x = y$;

(x) $N(x, y, t) = N(y, x, t)$ for all $x, y \in X$ and $t > 0$;

(xi) $N(x, y, t) \lozenge N(y, z, s) \geq N(x, z, t + s)$ for all $x, y, z \in X$ and $s, t > 0$;

(xii) for all $x, y \in X$, $N(x, y, .) : [0, \infty) \rightarrow [0, 1]$ is right continuous;

(xiii) $\lim_{t \rightarrow \infty} N(x, y, t) = 0$ for all x, y in X :

Then (M, N) is called an intuitionistic fuzzy metric on X. The functions

M(x, y, t) and N(x, y, t) denote the degree of nearness and the degree of non–nearness between x and y with respect to t, respectively.

Example 2.1. Let $X = \{\frac{1}{n} : n \in N\} \cup \{0\}$ with $*$ continuous t–norm and $\lozenge$ continuous t–conorm defined by $a*b = ab$ and $a \lozenge b = \min\{1, a+b\}$ respectively, for all $a, b \in [0, 1]$. For each $t \in (0, \infty)$ and $x, y \in X$, define (M, N) by

* Ex. Prof. & ** Department of Mathematics, Govt. Madhav Science P.G. College, Ujjain (MP) INDIA

$$M(x,y,t)=\begin{cases}\dfrac{t}{t+|x-y|}, & t>0,\\ 0 & t=0\end{cases} \quad \text{and} \quad N(x,y,t)=\begin{cases}\dfrac{|x-y|}{t+|x-y|}, & t>0,\\ 1 & t=0\end{cases}$$

Then, $(X, M, N, *, \Diamond)$ is an intuitionistic fuzzy metric space, (for $k = 1$ [7]).

Definition 2.4. [1] Let $(X, M, N, *, \Diamond)$ be an intuitionistic fuzzy metric space. Then

(a) a sequence $\{x_n\}$ in X is said to be Cauchy sequence if, for all $t > 0$ and $p > 0$, $\lim_{n\to\infty} M(x_{n+p}, x_n, t) = 1$ and $\lim_{n\to\infty} N(x_{n+p}, x_n, t) = 0$:

(b) a sequence $\{x_n\}$ in X is said to be convergent to a point $x \in X$ if, for all $t > 0$, $\lim_{n\to\infty} M(x_n, x, t) = 1$ and $\lim_{n\to\infty} N(x_n, x, t) = 0$:

Since $*$ and $\Diamond$ are continuous, the limit is uniquely determined from (v) and (xi) of Definition 2.3, respectively.

Definition 2.5. [1] An intuitionistic fuzzy metric space $(X, M, N, *, \Diamond)$ is said to be complete if and only if every Cauchy sequence in X is convergent.

Lemma 2.1. Let $(X, M, N, *, \Diamond)$ be an intuitionistic fuzzy metric space and $\{y_n\}$ be a sequence in X. If there exists a number $k \in (0, 1)$ such that

(i) $M(y_{n+2}, y_{n+1}, kt) \geq M(y_{n+1}, y_n, t)$

(ii) $N(y_{n+2}, y_{n+1}, kt) \leq N(y_{n+1}, y_n, t)$

for all $t > 0$ and $n = 1, 2, \ldots$ then $\{y_n\}$ is a Cauchy sequence in X.

Lemma 2.2. Let $(X, M, N, *, \Diamond)$ be an intuitionistic fuzzy metric space for all $x, y \in X$, $t > 0$ and if for a number $k \in (0, 1)$

$M(x, y, kt) \geq M(x, y, t)$ and $N(x, y, kt) \leq N(x, y, t)$

then $x = y$.

3. Main Result.

Theorem 3.1. Let $(X, M_1, N_1, *, \Diamond)$ and $(Y, M_2, N_2, *, \Diamond)$ be two complete intuitionistic fuzzy metric spaces. Let A be the mapping from X to Y and B be the mapping from Y to X satisfying the inequalities, if there exists a number $k \in (0, 1)$ such that

(3.1) $M_1(BAx, BAx', kt) \geq M_1(x, x', t) * M_1(x, BAx, t) * M_1(x', BAx', t)$ and

$N_1(BAx, BAx', kt) \leq N_1(x, x', t) \Diamond N_1(x, BAx, t) \Diamond N_1(x', BAx', t)$.

(3.2) $M_2(ABy, ABy', kt) \geq M_2(y, y', t) * M_2(y, ABy, t) * M_2(y', ABy', t)$ and

$N_2(ABy, ABy', kt) \leq N_2(y, y', t) \Diamond N_2(y, ABy, t) \Diamond N_2(y', ABy', t)$

for all $x, x' \in X$ and $y, y' \in X$ also for all $t > 0$. If A is continuous, then BA has a unique fixed point z in X and AB has a unique fixed point w in Y.

Proof. Let $x = x_0$ be an arbitrary point in X and define sequences $\{x_n\}$ and $\{y_n\}$ in X and Y respectively as follows : Choose a point $y_1 = Ax_0$, a point $x_1 = By_1$. In general, having chosen x_{2n-2} in X, select a point $y_{2n-1} = Ax_{2n-2}$, a point $x_{2n-1} = By_{2n-1}$, for all $t > 0$ and $n = 1, 2, 3, \ldots$. Then applying (3.1), we get

$M_1(x_{2n+1}, x_{2n}, kt) = M_1(BAx_{2n}, BAx_{2n-1}, kt)$

$\geq M_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t) * M_1(x_{2n}, BAx_{2n}, t) * M_1(x_{2n-1}, BAx_{2n-1}, t)$

$= M_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t) * M_1(x_{2n}, x_{2n+1}, t) * M_1(x_{2n-1}, x_{2n}, t)$

$= M_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t) * M_1(x_{2n}, x_{2n+1}, t)$

i.e. $M_1(x_{2n+1}, x_{2n-1}, kt) \geq M_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t) * M_1(x_{2n}, x_{2n+1}, t)$,

and

$N_1(x_{2n+1}, x_{2n}, kt) \geq N_1(BAx_{2n}, BAx_{2n-1}, kt)$

$\leq N_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t) \Diamond N_1(x_{2n}, BAx_{2n}, t) \Diamond N_1(x_{2n-1}, BAx_{2n-1}, t)$

$= N_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t) \Diamond N_1(x_{2n}, x_{2n+1}, t) \Diamond N_1(x_{2n-1}, x_{2n}, t)$

$= N_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t) \Diamond N_1(x_{2n}, x_{2n+1}, t)$

i.e. $N_1(x_{2n+1}, x_{2n-1}, kt) \leq N_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t) \Diamond N_1(x_{2n}, x_{2n+1}, t)$.

Similarly, we have

$M_1(x_{2n+2}, x_{2n+1}, kt) \geq M_1(x_{2n+1}, x_{2n}, t) * M_1(x_{2n+1}, x_{2n+2}, t)$,

and

$N_1(x_{2n+2}, x_{2n+1}, kt) \leq N_1(x_{2n+1}, x_{2n}, t) \Diamond N_1(x_{2n+1}, x_{2n+2}, t)$.

Thus it follows that

$M_1(x_{n+1}, x_{n+2}, kt) \geq M_1(x_n, x_{n+1}, t) * M_1(x_{n+1}, x_{n+2}, t)$,

and

$N_1(x_{n+1}, x_{n+2}, kt) \leq N_1(x_n, x_{n+1}, t) \Diamond N_1(x_{n+1}, x_{n+2}, t)$,

for all $n = 1, 2, \ldots$.

Consequently, for positive integer n, p we have

$M_1(x_{n+1}, x_{n+2}, kt) \geq M_1(x_n, x_{n+1}, t) * M_1(x_{n+1}, x_{n+2}, t/k^p)$,

$N_1(x_{n+1}, x_{n+2}, kt) \leq N_1(x_n, x_{n+1}, t) \Diamond N_1(x_{n+1}, x_{n+2}, t/k^p)$.

Thus since $M_1(x_{n+1}, x_{n+2}, t/k^p) \to 0$ and $N_1(x_{n+1}, x_{n+2}, t/k^p) \to 0$ as $p \to \infty$, we have

$M_1(x_{n+1}, x_{n+2}, kt) \geq M_1(x_n, x_{n+1}, t)$,

and

$N_1(x_{n+1}, x_{n+2}, kt) \leq N_1(x_n, x_{n+1}, t)$.

Similarly, applying inequality (1.2), we get

$M_2(y_{2n}, y_{2n+1}, kt) = M_2(ABy_{2n-1}, ABy_{2n}, kt)$

$\geq M_2(y_{2n-1}, y_{2n}, t) * M_2(y_{2n-1}, ABy_{2n-1}, t) * M_2(y_{2n}, ABy_{2n}, t)$

$= M_2(y_{2n-1}, y_{2n}, t) * M_2(y_{2n-1}, y_{2n}, t) * M_2(y_{2n}, y_{2n+1}, t)$

$= M_2(y_{2n-1}, y_{2n}, t) * M_2(y_{2n}, y_{2n+1}, t)$,

i.e. $M_2(y_{2n}, y_{2n+1}, kt) \geq M_2(y_{2n-1}, y_{2n}, t) * M_2(y_{2n}, y_{2n+1}, t)$,

and

$N_2(y_{2n}, y_{2n+1}, kt) = N_2(ABy_{2n-1}, ABy_{2n}, kt)$

$\leq N_2(y_{2n-1}, y_{2n}, t) \Diamond N_2(y_{2n-1}, ABy_{2n-1}, t) \Diamond N_2(y_{2n}, ABy_{2n}, t)$

$= N_2(y_{2n-1}, y_{2n}, t) \lozenge N_2(y_{2n-1}, y_{2n}, t) \lozenge N_2(y_{2n}, y_{2n+1}, t)$

$= N_2(y_{2n-1}, y_{2n}, t) \lozenge N_2(y_{2n}, y_{2n+1}, t)$,

i.e. $N_2(y_{2n}, y_{2n+1}, kt) \leq N_2(y_{2n-1}, y_{2n}, t) \lozenge N_2(y_{2n}, y_{2n+1}, t)$.

Similarly we have also $M_2(y_{2n+1}, y_{2n+2}, kt) \geq M_2(y_{2n}, y_{2n+1}, t) * M_2(y_{2n+1}, y_{2n+2}, t)$

and

. $N_2(y_{2n+1}, y_{2n+2}, kt) \leq N_2(y_{2n}, y_{2n+1}, t) \lozenge N_2(y_{2n+1}, y_{2n+2}, t)$.

Thus it follows that

$$M_2(y_{n+1}, y_{n+2}, kt) \geq M_2(y_n, y_{n+1}, t) * M_2(y_{n+1}, y_{n+2}, t)$$

and

. $N_2(y_{n+1}, y_{n+2}, kt) \leq N_2(y_n, y_{n+1}, t) \lozenge N_2(y_{n+1}, y_{n+2}, t)$, for $n = 1, 2, 3, \dots$.

Consequently, for positive integers n, p we have

$$M_2(y_{n+1}, y_{n+2}, kt) \geq M_2(y_n, y_{n+1}, t) * M_2(y_{n+1}, y_{n+2}, t/k^p)$$

and

. $N_2(y_{n+1}, y_{n+2}, kt) \leq N_2(y_n, y_{n+1}, t) \lozenge N_2(y_{n+1}, y_{n+2}, t/k^p)$.

Thus since $M_2(y_{n+1}, y_{n+2}, t/k^p) \to 0$ and $N_2(y_{n+1}, y_{n+2}, t/k^p) \to 0$ as $p \to \infty$, we have

$$M_2(y_{n+1}, y_{n+2}, kt) \geq M_2(y_n, y_{n+1}, t),$$

and

$$N_2(y_{n+1}, y_{n+2}, kt) \leq N_2(y_n, y_{n+1}, t).$$

By Lemma 1, the sequence $\{x_n\}$ is therefore a Cauchy sequence in complete intuitionistic fuzzy metric space X and therefore, has a limit z in X. Similarly, it follows that sequence $\{y_n\}$ is a Cauchy sequence in complete intuitionistic fuzzy metric space Y and so has a limit w in Y.

Now using (3.1), we have

$M_1(BAx, z, kt) \geq M_1(BAx_{2n}, x_{2n}, kt/2) * M_1(x_{2n}, z, kt/2)$

$= M_1(BAx_{2n}, BAx_{2n-1}, kt/2) * M_1(x_{2n}, z, kt/2)$

$\geq M_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t/2) * M_1(x_{2n}, BAx_{2n}, t/2) * M_1(x_{2n-1}, BAx_{2n-1}, t/2) * M_1(x_{2n}, z, kt/2)$

$= M_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t/2) * M_1(x_{2n}, x_{2n+1}, t/2) * M_1(x_{2n-1}, x_{2n}, t/2) * M_1(x_{2n}, z, kt/2)$

and

$N_1(BAx, z, kt) \leq N_1(BAx_{2n}, x_{2n}, kt/2) * N_1(x_{2n}, z, kt/2)$

$= N_1(BAx_{2n}, BAx_{2n-1}, kt/2) \lozenge N_1(x_{2n}, z, kt/2)$

$\leq N_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t/2) * N_1(x_{2n}, BAx_{2n}\ t/2) * N_1(x_{2n-1}, BAx_{2n-1}, t/2) * N_1(x_{2n}, z, kt/2)$

$= N_1(x_{2n}, x_{2n-1}, t/2) \lozenge N_1(x_{2n}, x_{2n+1}, t/2) \lozenge N_1(x_{2n-1}, x_{2n}, t/2) \lozenge N_1(x_{2n}, z, kt/2)$.

Taking the limit, we have

$\lim_{n\to\infty} M_1(BAx_{2n}, z, kt/2) \to 1$

and $\lim_{n\to\infty} N_1(BAx_{2n}, z, kt/2) \to 0$.

Thus, we have

$$\lim_{n\to\infty} BAx_{2n} = z = \lim_{n\to\infty} By_{2n+1}. \quad (3.3)$$

Similarly, it can be proved that

$$\lim_{n\to\infty} ABy_{2n} = w = \lim_{n\to\infty} Ax_{2n}. \quad (3.4)$$

Now, suppose A is continuous. Thus

$$\lim_{n\to\infty} Ax_{2n-1} = Az = w. \quad (3.5)$$

Using (3.1), we have

$M_1(BAz, BAx_{2n-1}, kt) \geq M_1(z, x_{2n-1}, t) * M_1(z, BAz, t) * M_1(x_{2n-1}, BA\, x_{2n-1}, t)$

and

$N_1(BAz, BA\, x_{2n-1}, kt) \leq N_1(z, x_{2n-1}, t) \lozenge N_1(z, BAz, t) \lozenge N_1(x_{2n-1}, BA\, x_{2n-1}, t)$.

Letting $n \to \infty$ and using (3.4), we get

$$M_1(BAz, z, kt) \geq M_1(z, BAz, t),$$

and

$$N_1(BAz, z, kt) \leq N_1(z, BAz, t).$$

Therefore, by lemma 2, we have

$$BAz = z = Bw. \quad (3.6)$$

Applying (3.2), we get

$M_2(ABw, ABy_{2n}, kt) \geq M_2(w, y_{2n}, t) * M_2(w, ABw, t) * M_2(y_{2n}, ABy_{2n}, t)$ and

$N_2(ABw, ABy_{2n}, kt) \leq N_2(w, y_{2n}, t) \lozenge N_2(w, ABw, t) \lozenge N_2(y_{2n}, ABy_{2n}, t)$.

Letting $n \to \infty$ and using (3.4), we have

$$M_2(ABw, w, kt) \geq M_2(ABw, w, t),$$

and

$N_2(ABw, ABy_{2n}, kt) \leq N_2(w, y_{2n}, t) \lozenge N_2(w, ABw, t) \lozenge N_2(y_{2n}, ABy_{2n}, t)$.

Letting $n \to \infty$ and using (3.4), we have

$$M_2(ABw, w, kt) \geq M_2(ABw, w, t),$$

and

$$N_2(ABw, w, kt) \leq N_2(ABw, w, t).$$

Therefore by lemma 2, we have

$$ABw = w = Az. \quad (3.7)$$

Using inequality (3.1), we get

$M_1(BAx_{2n}, BAz, kt) \geq M_1(x_{2n}, z, t) * M_1(x_{2n}, BAx_{2n}, t) * M_1(z, BAz, t)$ and

$N_1(BAx_{2n}, BAz, kt) \leq N_1(x_{2n}, z, t) \lozenge N_1(x_{2n}, BAx_{2n}, t) \lozenge N_1(z, BAz, t)$.

Letting n and using (3.3), we get

$M_1(z, BAz, kt) \geq M_1(z, BAz, t)$

and $N_1(z, BAz, kt) \leq N_1(z, BAz, t)$.

Therefore, by lemma 2.1, and using (3.5) and (3.7), we have

$$BAz = z = Bw.$$

To prove the uniqueness, suppose BA has another fixed point z' ($z' \neq z$).

Using (3.1), we get

$M_1(BAz, BAz', kt) \geq M_1(z, z', t) * M_1(z, BAz, t) * M_1(z', BAz', t)$ and

$N_1(BAz, BAz', kt) \leq N_1(z, z', t) \lozenge N_1(z, BAz', t) \lozenge N_1(z', BAz', t)$.

Therefore, on solving, we have

$M_1(z, z', kt) \geq M_1(z, z', t)$

$N_1(z, z', kt) \leq N_1(z, z', t)$.

By lemma (2.2), we have z = z'. Similarly, it can be prove that w is unique fixed point of AB.

This completes the proof of the theorem.

References

1. Alaca, C., Turkoglu, D. and Yildiz, C., Fixed points in Intuitionistic fuzzy metric spaces, Smallerit Chaos, Solitons & Fractals, 29 (5) (2006), 1073 – 1078.
2. Atanassov, K., Intuitionistic fuzzy sets, Fuzzy Sets and System, 20 (1986), 87 – 96.
3. Coker, D., An Introduction to intuitionistic fuzzy topological spaces, Fuzzy Sets and System, 88 (1997), 81 – 89.
4. George, A. and Veeramani, P., On some results in fuzzy metric spaces, Fuzzy Sets and Systems, 64 (1994), 395 – 399.
5. Kramosil, O. and Michalek, J., Fuzzy metric and statistical metric spaces, Kybernetica 11 (1975), 336-344.
6. Park, J.H., Intuitionistic fuzzy metric spaces, Chaos, Solitions & Fractals, 22 (2004), 1039-1046.
7. Park, J.H., Intuitionistic fuzzy metric spaces, Chaos, Solitions & Fractals, 22 (2004), 1039-1046.
8. Turkoglu, D., Alaca, C., Cho, Y.J. and Yildiz, C., Common fixed point theorems in intuitionistic fuzzy metric spaces, J. Appl. Math. and Computing, 22 (2006), 411 – 424.

****

Fixed Point Theorem on Three Complete Menger Spaces

Sushil Sharma * Shashi Solanki **

Abstract - The aim of present paper is to prove a fixed point theorem on three complete Menger spaces which extend the result of harma et. al. [11] **AMS Subject Classification :** Primary 47H10, Secondary 54H25.

Introduction.

There have been a number of generalizations of metric space. One such generalization is Menger space initiated by Menger [7]. It is a probabilistic generalization in which we assign to any two points x and y, a distribution function Fx,y. Schweizer and Sklar [9] studied this concept and gave some fundamental results on this space. Sehgal and Bharucha-Reid [10] obtained a generalization of Banach Contraction Principle on a complete Menger space which is a milestone in developing fixed point theory in Menger space.

Recently, Jungck and Rhoades [5] termed a pair of self maps to be coincidentally commuting or equivalently weakly compatible if they commute at their coincidence points. Sessa [9] initiated the tradition of improving commutativity in fixed point theorems by introducing the notion of weak commuting maps in metric spaces. Jungck [4] soon enlarged this concept to compatible maps. The notion of compatible mapping in a Menger space has been introduced by Mishra [8]. Using the concept of compatible mappings of type (A), Jain et. al. [1, 2] proved some interesting fixed point theorems in Menger space. Afterwards, Jain et. al. [3] proved the fixed point theorem using the concept of weak compatible maps in Menger space. Using the concept of semi-compatible maps, Singh et. al. [13] proved a common fixed point theorem in Menger space.

Preliminaries

For terminologies, notations and properties of probabilistic metric spaces, refer to [9] and [11].

Definition 2.1. [3] A mapping F : R R+ is called a distribution if it is non-decreasing left continuous with inf{ F (t) : t R} = 0 and sup{F (t) : t R} = 1.

We shall denote by L the set of all distribution functions while H will always denote the specific distribution function defined by

$$H(t) = \begin{cases} 0, & t \le 0, \\ 1, & t > 0. \end{cases}$$

Definition 2.2. [6] A triangular norm * (shortly t-norm) is a binary operation on the unit interval [0, 1] such that for all a, b, c, d ∈ [0, 1] the following conditions are satisfied :

(t-1) $a * 1 = a$;

(t-2) $a * b = b * a$;

(t-3) $a * b \le c * d$ whenever $a \le c$ and $b \le d$;

(t-4) $a * (b * c) = (a * b) * c$.

Examples of t-norms are $a * b = \max\{a + b - 1, 0\}$ and $a * b = \min\{a, b\}$.

Definition 2.3. [9] A probabilistic metric space (PM-space) is an ordered pair (X,**F**) consisting of a non empty set X and a function $\mathbf{F} : X \times X \to L$, where L is the

collection of all distribution functions and the value of **F** at (u, v) ∈ X × X is represented by $F_{u,v}$. The function $F_{u,v}$ assumed to satisfy the following conditions :

(PM-1) $F_{u,v}(x) = 1$, for all $x > 0$, if and only if $u = v$;

(PM-2) $F_{u,v}(0) = 0$;

(PM-3) $F_{u,v} = F_{v,u}$;

(PM-4) If $F_{u,v}(x) =$ and $F_{v,w}(y) = 1$ then $F_{u,w}(x + y) = 1$, for all u, v, w ∈ X and x, y > 0.

A *Menger space* is a triplet (X, **F**, *) where (X, **F**) is a PM-space and * is a t-norm such that the inequality

(PM-5) $F_{u,w}(x + y) \ge F_{u,v}(x) * F_{v,w}(y)$, for all u, v, w ∈ X and x, y ≥ 0.

Proposition 2.1. [10] If (X,d) is a metric space then the metric d induces a mapping $X \times X \to L$ defined by $F_{p,q}(x) = H(x - d(p, q))$, for all p, q ∈ X and

x > 0. Further, if the t-norm * is $a * b = \min\{a, b\}$ for all a, b ∈ [0, 1],

then

(X, **F**, *) is a Menger space. It is complete if (X, d) is complete.

The space (X, **F**, *) so obtained is called the *induced Menger space*.

* Ex. Prof. & ** Department of Mathematics, Govt. Madhav Science P.G. College, Ujjain (MP) INDIA

Definition 2.4. [8] A sequence $\{x_n\}$ in a Menger space X is said to be *convergent* and converges to a point x in X if and only if for each $\varepsilon > 0$ and $\lambda > 0$, there is an integer $M(\varepsilon, \lambda)$ such that

$$F_{x_n,x}(\varepsilon) > 1 - \lambda, \quad \text{for all } n \geq M(\varepsilon, \lambda).$$

Further the sequence $\{x_n\}$ is said to be *Cauchy sequence* if for $\varepsilon > 0$

and

$\lambda > 0$, there is an integer $M(\varepsilon, \lambda)$ such that

$$F_{x_n,x_m}(\varepsilon) > 1 - \lambda, \quad \text{for all } m, n \geq M(\varepsilon, \lambda).$$

A Menger space is said to be *complete* if every Cauchy sequence in X converges to a point in X.

Definition 2.5. [8] Self maps S and T of a Menger space (X, **F**, *) are said to be *compatible* if $F_{STx_n,TSx_n}(t) \to 1$ for all $t > 0$, whenever $\{x_n\}$ is a sequence in X such that $Sx_n, Tx_n \to u$, for some u in X, as $n \to \infty$.

Definition 2.6. [13] Self maps S and T of a Menger space (X, **F**, *) are said to be *weakly compatible (or coincidentally commuting)* if they commute at their coincidence points, i.e. if Sp = Tp for some $p \in X$ then STp = TSp.

Lemma 2.1. [7] Let (X, F, t) be a Menger PM-space. Suppose that $\{p_n\} \subseteq X$ is such that

$$F_{p_n,p_{n+1}}(\phi^n(x)) \geq F_{p_0,p_1}(x)$$

for all $x > 0$, where the function $\phi : [0, \infty) [0, \infty)$ is onto, strictly increasing. Also assume

Then $\{p_n\}$ is a Cauchy sequence.

Lemma 2.2. [7] Let (X, F, t) be a Menger PM-space and $F_{p,q}(t) = C$, for all $t > 0$

and

C = H(t) and p = q.

3. Main Result.

Theorem 3.1. Let (X, F_1, t), (Y, F_2, t) and (Z, F_3, t) be three complete Menger spaces. Let R be the mapping from X into Y, S be the mapping from Y into Z and T be the mapping from Z into X satisfying the following inequalities, if there exists a number $k \in (0, 1)$ such that

(3.1) $F_{1TSRx,\, TSRx'}(ku) \geq \min\{F_{1x,x'}(u), F_{1x,\, TSRx}(u), F_{1x',\, TSRx'}(u)\}$,

(3.2) $F_{2RSTy,\, RSTy'}(ku) \geq \min\{F_{2y,y'}(u), F_{2y,\, RSTy}(u), F_{2y',RSTy'}(u)\}$

(3.3) $F_{3SRTz,\, SRTz'}(ku) \geq \min\{F_{3z,z'}(u), F_{3z,SRTz}(u), F_{3z',SRTz'}(u)\}$,

for all x, x' in X, y, y' in Y and z, z' in Z for all $u > 0$.

If two of the mappings R, S and T are continuous, then TRS has a unique fixed point 1 in X, RTS has a unique fixed point v in Y and SRT has a unique fixed point w in Z. Further $R_1 = v$, $Sv = w$ and $Tw = 1$.

Proof. Let x_0 be an arbitrary point in X such that $y_1 = Ax_0$. Define sequences $\{x_n\}$ and $\{y_n\}$ in X and Y respectively by

$y_{2n} = Rx_{2n-1}$, $z_{2n} = Sy_{2n}$, $x_{2n} = Tz_{2n}$, for all n = 1, 2, … .

Applying (3.1), we get

$$\begin{aligned} F_{1\,x_{2n+1},\,x_{2n}}(ku) &= F_{1TSRx_{2n},\,TSRx_{2n-1}}(ku) \\ &\geq \min\{F_{1x_{2n},\,x_{2n-1}}(u), F_{1x_{2n},\,TSRx_{2n}}(u), F_{1x_{2n-1},\,TSRx_{2n-1}}(u)\} \\ &\geq \min\{F_{1x_{2n},\,x_{2n-1}}(u), F_{1x_{2n},\,x_{2n+1}}(u), F_{1x_{2n-1},\,x_{2n}}(u)\} \\ &\geq \min\{F_{1x_{2n},\,x_{2n-1}}(u), F_{1x_{2n},\,x_{2n+1}}(u)\}. \end{aligned}$$

Similarly, we also have

$$F_{1\,x_{2n+2},\,x_{2n+1}}(ku) \geq \min\{F_{1x_{2n+1},\,x_{2n}}(u), F_{1x_{2n+1},\,x_{2n+2}}(u)\}.$$

In general, we have for m = 1, 2, …

$$F_{1\,x_{m+2},\,x_{m+1}}(ku) \geq \min\{F_{1x_{m+1},\,x_m}(u), F_{1x_{m+1},\,x_{m+2}}(u)\}.$$

Consequently, it follows that for m = 1, 2, …, p = 1, 2, …

$$F_{1\,x_{m+1},\,x_{m+2}}(ku) \geq \min\{F_{1x_m,\,x_{m+1}}(u), F_{1x_{m+1},\,x_{m+2}}(k^{-p}u)\}.$$

By noting that $F_{1x_{m+1},\,x_{m+2}}(k^{-p}u) \to 1$ as $p \to \infty$. We have for m = 1, 2, …

$$F_{1\,x_{m+1},\,x_{m+2}}(ku) \geq F_{1x_m,\,x_{m+1}}(u).$$

Hence, by Lemma 1, $\{x_n\}$ is a Cauchy sequence in X. Since X is complete Menger space, therefore has a limit *l* in X.

Applying (3.2), we have

$$\begin{aligned} F_{2\,y_{2n+1},\,y_{2n}}(ku) &= F_{2RTSy_{2n},\,RTSy_{2n-1}}(ku \\ &\geq \min\{F_{2y_{2n},\,y_{2n-1}}(u), F_{2y_{2n},\,RTSy_{2n}}(u), F_{2y_{2n-1},\,RTSy_{2n-1}}(u)\} \\ &\geq \min\{F_{2y_{2n},\,y_{2n-1}}(u), F_{2y_{2n},\,y_{2n+1}}(u), F_{2y_{2n-1},\,y_{2n}}(u)\} \\ &\geq \min\{F_{2y_{2n},\,y_{2n-1}}(u), F_{2y_{2n},\,y_{2n+1}}(u)\}. \end{aligned}$$

Similarly, we also have

$$F_{2\,y_{2n+2},\,y_{2n+1}}(ku) \geq \min\{F_{2y_{2n+1},\,y_{2n}}(u), F_{2y_{2n+1},\,y_{2n+2}}(u)\}.$$

In general, we have for m = 1, 2, …

$$F_{2\,y_{m+1},\,y_{m+2}}(ku) \geq \min\{F_{2y_m,\,y_{m+1}}(u), F_{2y_{m+1},\,y_{m+2}}(u)\}.$$

Consequently, it follows that for m = 1, 2, …, p = 1, 2, …

$$F_{2\,y_{m+1},\,y_{m+2}}(ku) \geq \min\{F_{2y_m,\,y_{m+1}}(u), F_{2y_{m+1},\,y_{m+2}}(k^{-p}u)\}.$$

By noting that $F_{2y_{m+1},\,y_{m+2}}(k^{-p}u) \to 1$ as $p \to \infty$. We have for m = 1, 2, …

$$F_{2\,y_{m+1},\,y_{m+2}}(ku) \geq F_{2y_m,\,y_{m+1}}(u).$$

Hence, by Lemma 1, $\{y_n\}$ is a Cauchy sequence in X. Since Y is complete Menger space, therefore has a limit v in Y.

By (3.3), we have

$$\begin{aligned} &F_{3SRTz_{2n},\,SRTz_{2n-1}}(ku) \\ &\geq \min\{F_{3z_{2n},\,z_{2n-1}}(u), F_{3z_{2n},\,TSRz_{2n}}(u), F_{3z_{2n-1},\,SRTz_{2n-1}}(u)\} \\ &F_{3z_{2n+1},\,z_{2n}}(ku) \geq \min\{F_{3z_{2n},\,z_{2n-1}}(u), F_{3z_{2n},\,z_{2n+1}}(u), F_{3z_{2n-1},\,z_{2n}}(u)\} \\ &\geq \min\{F_{3z_{2n},\,z_{2n-1}}(u), F_{3z_{2n},\,z_{2n+1}}(u)\}. \end{aligned}$$

Similarly, we also have

$$\begin{aligned} &F_{3\,z_{2n+2},\,z_{2n+1}}(ku) \\ &\geq \min\{F_{3z_{2n+1},\,z_{2n}}(u), F_{3z_{2n+1},\,z_{2n+2}}(u)\}. \end{aligned}$$

Consequently, it follows that for m = 1, 2, …, p = 1, 2, …

$$F_{3\,z_{m+1},\,z_{m+2}}(ku) \geq \min\{F_{3z_m,\,z_{m+1}}(u), F_{3z_{m+1},\,z_{m+2}}(k^{-p}u)\}.$$

By noting that $F_{3z_{m+1},\,z_{m+2}}(k^{-p}u) \to 1$ as $p \to \infty$. We have for m = 1, 2, …

$$F_{3\,z_{m+1},\,z_{m+2}}(ku) \geq F_{3z_m,\,z_{m+1}}(u).$$

Hence, by Lemma 1, $\{z_n\}$ is a Cauchy sequence in X. Since Z is complete Menger space, therefore has a limit w in Z.

Again, using (3.1), we have

$$F_{1TSRx_n,1}(ku) \geq \min\{F_{1TSRx_n,x_n}(ku/2), F_{1x_n,1}(ku/2)\}$$
$$\geq \min\{F_{1TSRx_n,TSRx_{n-1}}(ku/2), F_{1x_n,1}(ku/2)\}$$
$$\geq \min\{\min\{F_{1x_n,x_{n-1}}(u/2), F_{1x_n,TSRx_n}(u/2), F_{1x_{n-1},TSRx_{n-1}}(u/2), F_{1x_n,1}(ku/2)\}$$
$$\geq \min\{\min\{F_{1x_n,x_{n-1}}(u/2), F_{1x_n,x_{n+1}}(u/2), F_{1x_{n-1},x_n}(u/2), F_{1x_n,1}(ku/2)\}.$$

Taking the limit $n \to \infty$, we have

$$\lim_{n\to\infty} F_{1TSRx_n,1}(ku) \to 1.$$

Thus, we have

$$\lim_{n\to\infty} TSRx_n = 1. \qquad (3.4)$$

Now by (3.2), we have

$$F_{2RTSy_{2n},v}(ku) \geq \min\{F_{2RTSy_{2n},y_{2n}}(u/2), F_{2y_{2n},v}(ku/2)\}$$
$$\geq \min\{F_{2RTSy_{2n},RTSy_{2n-1}}(u/2), F_{2y_n,v}(ku/2)\}$$
$$\geq \min\{\min\{F_{2y_{2n},y_{2n-1}}(u/2), F_{2y_{2n},RTSy_{2n}}(u/2), F_{2y_{2n-1},RTSy_{2n-1}}(u/2), F_{2y_{2n},v}(ku/2)\}$$
$$\geq \min\{\min\{F_{2y_{2n},y_{2n-1}}(u/2), F_{2y_{2n},y_{2n+1}}(u/2), F_{2y_{2n-1},y_{2n}}(u/2), F_{2y_{2n},v}(ku/2)\}.$$

Taking the limit $n \to \infty$, we have

$$\lim_{n\to\infty} F_{2RTSy_{2n},v}(ku) \to 1.$$

Thus, we have

$$\lim_{n\to\infty} RSTy_n = v. \qquad (3.5)$$

Similarly, it can be proved that

$$\lim_{n\to\infty} SRTx_n = w. \qquad (3.6)$$

Now suppose that R and S are continuous. Then

$$\lim_{n\to\infty} Sy_n = \lim_{n\to\infty} z_n$$

Or $Sv = w$.

$$\lim_{n\to\infty} Rx_n = \lim_{n\to\infty} y_{2n+1}$$

and $Rl = v$.

Using (3.1), we have

$$F_{1TSRl,TSRx_{2n-1}}(ku) \geq \min\{F_{1l,x_{2n-1}}(u), F_{1l,TSRl}(u), F_{1x_{2n-1},TSRx_{2n-1}}(u)\}.$$

Letting $n \to \infty$ and using (3.4), we get

$$F_{1TSRl,1}(ku) \geq F_{1TSRl,1}(u).$$

Therefore, by lemma 2 and above results, we have

$TSRl = 1$,

$TSv = 1$,

$Tw = 1$.

Hence, we have

$TSRl = TSv = Tw = 1$.

Applying (3.2), we have

$$F_{2RTSv,RTSy_{2n}}(ku) \geq \min\{F_{2v,y_{2n}}(u), F_{2v,RTSv}(u), F_{2y_{2n},RTSy_{2n}}(u)\}.$$

Letting $n \to \infty$ and using (3.5), we get

$$F_{2RTSv,v}(ku) \geq F_{2RTSv,v}(u).$$

Therefore, by lemma 2, we have

$RTSv = v$.

Hence, $RTSv = RTw = Rl = v$.

Applying (3.3), we have

$$F_{3SRTw,SRTz_{2n}}(ku) \geq \min\{F_{3w,z_{2n}}(u), F_{3w,SRTw}(u), F_{3z_{2n},SRTz_{2n}}(u)\}.$$

Letting $n \to \infty$ and using (3.6), we get

$$F_{3SRTw,w}(ku) \geq F_{3SRTw,w}(u).$$

Therefore, by lemma 2, we have

$SRTw = w$.

Hence, $SRTw = SRl = Sv = w$.

The same result of course will hold if R and T or T and S are continuous instead of R and S.

Now we prove uniqueness of the fixed point l. Suppose that TSR has a second fixed point l'. Then using the inequality (3.1), we have

$$F_{1TSRl,TSRl'}(ku) \geq \min\{F_{1l,l'}(u), F_{1l,TSRl}(u), F_{1l',TSRl'}(u)\}.$$

Therefore, we have

$$F_{1l,l'}(ku) \geq F_{1l,l'}(u).$$

Therefore, by lemma 2, we have l = l'. Similarly it can be proved that v is the unique fixed point of RTS and w is the unique fixed point of SRT. This completes the proof.

References

1. A. Jain and B. Singh, *Common fixed point theorem in Menger space through compatible maps of type (A),* Chh. J. Sci. Tech. 2 (2005), 1-12.
2. A. Jain and B. Singh, *A fixed point theorem in Menger space through compatible maps of type (A),* V.J.M.S. 5(2), (2005), 555-568.
3. A. Jain and B. Singh, *Common fixed point theorem in Menger Spaces,* The Aligarh Bull. of Math. 25 (1), (2006), 23-31.
4. G. Jungck, *Compatible mappings and common fixed points*, Internat. J. Math. and Math. Sci. 9(4), (1986), 771-779.
5. G. Jungck and B.E. Rhoades, *Fixed points for set valued functions without continuity,* Indian J. Pure Appl. Math. 29(1998), 227-238.
6. K. Menger, *Statistical metrics,* Proc. Nat. Acad. Sci. USA. 28(1942), 535 -537.
7. S.N. Mishra, *Common fixed points of compatible mappings in PM-spaces,* Math. Japon. 36(2), (1991), 283-289.
8. B. Schweizer and A. Sklar, *Statistical metric spaces*, Pacific J. Math. 10 (1960), 313-334.
9. S. Sessa, *On a weak commutativity condition of mappings in fixed point consideration,* Publ.Inst. Math. Beograd 32(46), (1982), 146-153.
10. V.M. Sehgal and A.T. Bharucha-Reid, *Fixed points of contraction maps on probabilistic metric spaces,* Math. System Theory 6(1972), 97- 102.
11. S. Sharma, B. Deshpande and Thakur, D., Related fixed point theorem for four mappings on two fuzzy metric spaces, Int. J. Pure & Appl. Math. Vol. 41, No. 2 (2007), 241-250.
12. B. Singh, A. Jain and B. Lodha, *On common fixed point theorems for semi-compatible mappings in Menger space,* Commentationes Mathematicae 50(2), (2010), 127-139.
13. B. Singh and S. Jain, *A fixed point theorem in Menger space through weak compatibility,* J. Math. Anal. Appl., 301 (2005), 439-448.

Fixed Points for Occasionally Weakly Biased Mapping

Sushil Sharma * Veer Singh Meda **

Abstract - The present paper deals with the existence and uniqueness of common fixed points via occasionally weakly biased Gregus type maps on normed space. **AMS Subject Classification :** Primary 47H10, Secondary 54H25.

Introduction : In 1995, Jungck and Pathak [4] introduced the concept of biased maps, very general notion of compatible maps, which has been a very efficient tool and has been used by many authors to prove fixed point for maps. In the same paper, they also gave the concept of weakly biased maps which generalizes the notion of biased maps. Several authors proved common fixed point theorems using the concept of biased and weakly biased maps (see for example, the work of Shahzad and Sahar [5], Singh, Chadha and Mishra [6], Ciric and Ume [2].

Motivated by Al-Thaga and Shahzad [1], we introduce the concept of occasionally weakly biased maps. Our new concept is appreciable generalization of weakly biased maps. Further, we use this notion to show the existence and uniqueness of common fixed points for maps not necessary continuous and satisfying different contractive conditions in a normed space as well as in a metric space. Our results are improvements of some interesting results, mainly, those of Shahzad and Sahar [5], Ciric and Ume [1].

2. Preliminaries.

Definition 2.1. [3] Let (X, d) be a metric space. Self maps f and g are said to be compatible if $\lim_{n\to\infty} d(ABx_n, BAx_n) = 0$, whenever $\{x_n\}$ is a sequence in X such that $\lim_{n\to\infty} Ax_n = \lim_{n\to\infty} Bx_n = t$ for some $t \in X$.

Definition 2.2. [1] Two self maps A and B of a set X are occasionally weakly compatible iff there is a point t in X which is a coincidence point of A and B at which A and B commute.

Definition 2.3. [4] The pair{A, B} is B-biased and A-biased, respectively iff whenever $\{x_n\}$ is a sequence in X and $Ax_n, Bx_n \to t \in X$, then

$$\alpha d(BAx_n, Bx_n) \le d(ABx_n, Ax_n)$$
$$\alpha d(ABx_n, Ax_n) \le d(BAx_n, Bx_n)$$

respectively, if $\alpha = \lim\inf$ and if $\alpha = \lim\sup$.

Remark 2.1. [4] If the pair {A, B} is compatible, then it is both A- and B-biased. However, the converse is not true in general.

Definition 2.4. Let A and B be self maps of a set X. The pair {A, B} is said to be occasionally weakly A-biased and B-biased, respectively, if and only if, there exists a point p in X such that Ap = Bp implies

$d(ABp, Ap) \le d(BAp, Bp)$

$d(BAp, Bp) \le d(ABp, Ap)$

respectively.

Ofcourse, weakly A-biased maps and B-biased maps, respectively, are occasionally weakly A-biased and B-biased, respectively. However, the converse is not true in general.

3. Main Result.

Theorem 3.1. Let A, B, S, T and P be self maps of a normed space X satisfying the following conditions:

(1.1) $\|Px - Py\|^p \le \alpha\|ABx - STy\|^p + (1 - \alpha) \max\{\lambda\|Px - STy\|^p, \lambda\|ABx - Px\|^p$
$+ r \min\{\|ABx - Py\|^p + \|STy - Py\|^p\}$

for all $x, y \in X$, where $0 < \alpha, \lambda < 1$, $r \ge 0$, p is an integer such that $p > 0$.

If {P, AB} is occasionally weakly AB-biased, {P, ST} is occasionally weakly ST-biased, then A, B, S, T and P have a unique common fixed point.

Proof. Since {P, AB} as well as {P, ST} is occasionally weakly AB-biased, ST-biased, respectively, then there exist two points u and v in X such that

$Pu = ABu$ implies $\|ABPu - ABu\| \le \|PABu - Pu\|$,

$Pv = STv$ implies $\|STPv - STv\| \le \|PSTv - Pv\|$.

Suppose that $Pu \ne Pv$

$\|Pu - Pv\|^p \le \alpha\|ABu - STv\|^p + (1 - \alpha) \max\{\lambda\|Pu - STv\|^p, \lambda\|ABu - Pu\|^p$
$+ r \min\{\|ABu - Pv\|^p + \|STv - Pv\|^p\}$

that is

$\|Pu - Pv\|^p \le \alpha\|Pu - Pv\|^p + (1 - \alpha) \max\{\lambda\|Pu - Pv\|^p, \lambda\|Pu - Pu\|^p + r \min\{\|Pu - Pv\|^p + \|Pv - Pv\|^p\}$

or, $\|Pu - Pv\|^p \le \alpha\|Pu - Pv\|^p + (1 - \alpha)\max\{\lambda\|Pu - Pv\|^p\}$

$= [\alpha + \lambda(1 - \alpha)] \|Pu - Pv\|^p, \|Pu - Pv\|^p < \|Pu - Pv\|^p$

a contradiction. Thus Pu = Pv.

Assume that $PPu \ne Pu$. Then using (1.1) with x = Pu and y = v, we have

$\|PPu - Pv\|^p \le \alpha\|ABPu - STv\|^p + (1 - \alpha) \max\{\lambda\|PPu - STv\|^p, \lambda\|ABPu - PPu\|^p + r \min\{\|ABPu - Pv\|^p + \|STv - Pv\|^p\}$

$\|PPu - Pv\|^p \le \alpha\|PPu - Pu\|^p + (1 - \alpha) \max\{\lambda\|PPu - Pv\|^p, \lambda\|PPu - PPu\|^p + r \min\{\|PPu - Pv\|^p + \|Pv - Pv\|^p\}$

$\|PPu - Pu\|^p \le \alpha\|PPu - Pu\|^p + (1 - \alpha) \max\{\lambda\|PPu - Pu\|^p, \lambda\|PPu - PPu\|^p + r \min\{\|PPu - Pu\|^p + \|Pu - Pu\|^p\}$.

Since the pair {P, AB} is occasionally weakly AB-biased, we get

* Ex. Prof. & ** Department of Mathematics, Govt. Madhav Science P.G. College, Ujjain (M.P.) INDIA

$||ABPu – ABu||^p \leq ||PABu – Pu||^p$,

that is, $||ABPu - ABu||^p \leq ||PPu - Pu||^p$.

Therefore,

$||PPu – Pu||^p \leq ||PPu – Pu||^p + (1 - \alpha) \max\{\lambda||PPu – Pu||^p\}$

$= [\alpha + \lambda(1 - \alpha)] ||PPu – Pu||^p$.

$||PPu – Pu||^p \leq ||PPu – Pu||^p$.

This implies that $||PPu – Pu||^p = 0$. Hence PPu = Pu and so ABPu = ABu = Pu. Pu is a common fixed point of P and AB.

Now suppose that PPv ≠ Pv. Then from inequality (1.1), we have

$||Pu – PPv||^p \leq \alpha||ABu – STPv||^p + (1 - \alpha)$ mau $\{\lambda||Pu – STPv||^p, \lambda||ABu – Pu||^p$

$+ r \min \{||ABu – PPv||^p + ||STPv – PPv||^p\}$

$||Pu – PPv||^p \leq \alpha||Pu – PPv||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||Pu – PPv||^p, \lambda||Pu – Pu||^p$

$+ r \min \{||Pu – PPv||^p + ||PPv – PPv||^p\}$

$||Pv – PPv||^p \leq \alpha||Pv – PPv||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||Pv – PPv||^p, \lambda||Pv – Pv||^p$

$+ r \min \{||Pv – PPv||^p + ||PPv – PPv||^p\}$

i.e. $||Pv – PPv||^p \leq \alpha||Pv – PPv||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||Pv – PPv||^p\}$

$= [\alpha + \lambda(1 - \alpha)] ||PPv – Pv||^p$,

$||Pv – PPv||^p < ||Pv – PPv||^p$,

which is a contradiction. Hence PPv = PPu = Pu and so STPu = STPv = STv = Pu.

Put Pu = ABu = Pv = STv = w, then w is a common fixed point of mappings A, B, S, T and P.

Theorem 3.2. Let A, B, S, T and P be self maps of a normed space X satisfying the following conditions:

(2.1) $||Px – Qy||^p \leq \alpha||ABx – STy||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||Px – STy||^p, \lambda||ABx – Px||^p$

$+ r \min \{||ABx – Qy||^p + ||STy – Qy||^p\}$

for all x, y ∈ X, where $0 < \alpha, \lambda < 1$, $r \geq 0$, p is an integer such that $p > 0$.

If {P, AB} is occasionally weakly AB-biased, {Q, ST} is occasionally weakly ST-biased, then A, B, S, T and P have a unique common fixed point.

Proof. Since {P, AB} as well as {P, ST} is occasionally weakly AB-biased, ST-biased, respectively, then there exist two points u and v in X such that

Pu = ABu implies $||ABPu – ABu|| \leq || PABu – Pu||$,

Qv = STv implies $||STQv - STv|| \leq ||QSTv – Qv||$.

Suppose that Pu ≠ Qv

$||Pu – Qv||^p \leq \alpha||ABu – STv||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||Pu – STv||^p, \lambda||ABu – Pu||^p$

$+ r \min \{||ABu – Qv||^p + ||STv – Qv||^p\}$

that is $||Pu – Qv||^p \leq \alpha||Pu – Qv||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||Pu – Qv||^p, \lambda||Pu – Pu||^p + r \min \{||Pu – Qv||^p + ||Qv – Qv||^p\}$

or, $||Pu – Qv||^p \leq \alpha||Pu – Qv||^p + (1 - \alpha)\max\{\lambda||Pu – Qv||^p\}$

$= [\alpha + \lambda(1 - \alpha)] ||Pu - Pv||^p$,

$||Pu – Pv||^p < ||Pu – Qv||^p$

a contradiction. Thus Pu = Qv.

Assume that PPu ≠ Pu. Then using (2.1) with x = Pu and y = v, we have

$||PPu – Qv||^p \leq \alpha||ABPu – STv||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||PPu – STv||^p, \lambda||ABPu – PPu||^p$

$+ r \min \{||ABPu – Qv||^p + ||STv – Qv||^p\}$

$||PPu – Qv||^p \leq \alpha||PPu – Qv||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||PPu – Qv||^p, \lambda||PPu – PPu||^p$

$+ r \min \{||PPu – Qv||^p + ||Qv – Qv||^p\}$

$||PPu – Pu||^p \leq \alpha||PPu – Pu||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||PPu – Pu||^p, \lambda||PPu – PPu||^p$

$+ r \min \{||PPu – Pu||^p$.

Since the pair {P, AB} is occasionally weakly AB-biased, we get

$||ABPu – ABu||^p \leq ||PABu – Pu||^p$,

that is, $||ABPu - ABu||^p \leq ||PPu - Pu||^p$.

Therefore,

$||PPu – Pu||^p \leq ||PPu – Pu||^p + (1 - \alpha) \max\{\lambda||PPu – Pu||^p\}$

$= [\alpha + \lambda(1 - \alpha)] ||PPu – Pu||^p$.

$||PPu – Pu||^p \leq ||PPu – Pu||^p$.

This implies that $||PPu – Pu||^p = 0$. Hence PPu = Pu and so ABPu = ABu = Pu. Pu is a common fixed point of P and AB.

Now suppose that QQv ≠ Qv. Then from inequality (2.1), we have

$||Pu – QQv||^p \leq \alpha||ABu – STQv||^p + (1 - \alpha)$ mau $\{\lambda||Pu – STQ||^p, \lambda||ABu – Pu||^p$

$+ r \min \{||ABu – QQv||^p + ||STQv – QQv||^p\}$

$||Pu – QQv||^p \leq \alpha||Pu – QQv||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||Pu – QQv||^p, \lambda||Pu – Pu||^p$

$+ r \min \{||Pu – QQv||^p + ||QQv – QQv||^p\}$

$||Qv – QQv||^p \leq \alpha||Qv – QQv||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||Qv – QQv||^p, \lambda||Qv – Qv||^p$

$+ r \min \{||Qv – QQv||^p\}$

i.e. $||Qv – QQv||^p \leq \alpha||Qv – QQv||^p + (1 - \alpha) \max \{\lambda||Qv – QQv||^p\}$

$= [\alpha + \lambda(1 - \alpha)] ||QQv – Qv||^p$,

$||Pv – PPv||^p < ||Pv – PPv||^p$,

which is a contradiction. Hence QQv = Qv = Pu and so STQv = ABPu = Qv = Pu.

Put Pu = Qv = STv = ABu = w, then w is a common fixed point of mappings A, B, S, T and P.

References

1. Al-Thaga, M.A. and Shahzad, N., Generalizd I-nonexpansive self maps and invariant approximations, Acta Math. Sin. (Engl. Ser.) 24 (5), (2008), 867-876.
2. Ciric, Lj. B. and Ume, J.S., Common fixed points via weakly biased Gregus type mappings, Acta Math. Univ. Comenian. (N.S.) 72 (2), (2003), 185-190.
3. Jungck,G., Compatible mappings and common fixed points (2), Internat. J. Math. and Math. Sci. 11 (1988), 285-288.
4. Jungck, G. and Pathak, H.K., Fixed points via biased maps, Proc. Amer. Math. Soc. 123 (7), (1995), 2049-2060.
5. Shahzad, N. and Sahar, S., Some common fixed point theorems for biased mappings, Arch. Math. (Brno) 36 (3), (2000), 183-194.
6. Singh, S.L., Chadha, V. and Mishra, S.N., Remarks on recent fixed point theorems for compatible maps, Internat. J. Math. Math. Sci. 19 (4), (1996), 801-804.

Fixed Point Theorem of Contraction Multivalued Mappings in Menger Space

Sushil Sharma * Veer Singh Meda **

Abstract : The aim of present paper is to prove a fixed point theorem for multivalued mappings in the Menger space.
AMS Subject Classification : Primary 47H10, Secondary 54H25.

Introduction : There have been a number of generalizations of metric space. One such generalization is Menger space initiated by Menger [7]. It is a probabilistic generalization in which we assign to any two points x and y, a distribution function Fx,y. Schweizer and Sklar [9] studied this concept and gave some fundamental results on this space. Sehgal and Bharucha-Reid [11] obtained a generalization of Banach Contraction Principle on a complete Menger space which is a milestone in developing fixed point theory in Menger space. Recently, Jungck and Rhoades [5] termed a pair of self maps to be coincidentally commuting or equivalently weakly compatible if they commute at their coincidence points. Sessa [10] initiated the tradition of improving commutativity in fixed point theorems by introducing the notion of weak commuting maps in metric spaces. Jungck [4] soon enlarged this concept to compatible maps. The notion of compatible mapping in a Menger space has been introduced by Mishra [8]. Using the concept of compatible mappings of type (A), Jain et. al. [1, 2] proved some interesting fixed point theorems in Menger space. Afterwards, Jain et. al. [3] proved the fixed point theorem using the concept of weak compatible maps in Menger space. Using the concept of semi-compatible maps, Singh et. al. [12] proved a common fixed point theorem in Menger space.

2. Preliminaries

For terminologies, notations and properties of probabilistic metric spaces, refer to [9] and [11].

Definition 2.1. [3] A mapping $\mathbf{F} : R \to R^+$ is called a distribution if it is non-decreasing left continuous with $\inf\{\mathbf{F}(t) : t \in R\} = 0$ and $\sup\{\mathbf{F}(t) : t \in R\} = 1$.

We shall denote by L the set of all distribution functions while H will always denote the specific distribution function defined by

$$H(t) = \begin{cases} 0, & t \le 0, \\ 1, & t > 0. \end{cases}$$

Definition 2.2. [6] A triangular norm * (shortly t-norm) is a binary operation on the unit interval [0, 1] such that for all a, b, c, d ∈ [0, 1] the following conditions are satisfied :

(t-1) $a * 1 = a$;

(t-2) $a * b = b * a$;

(t-3) $a * b \le c * d$ whenever $a \le c$ and $b \le d$;

(t-4) $a * (b * c) = (a * b) * c$.

Examples of t-norms are $a * b = \max\{a + b - 1, 0\}$ and $a * b = \min\{a, b\}$.

Definition 2.3. [9] A probabilistic metric space (PM-space) is an ordered pair $(X, \mathbf{F})$ consisting of a non empty set X and a function $\mathbf{F} : X \times X \to L$, where L is the collection of all distribution functions and the value of $\mathbf{F}$ at $(u, v) \in X \times X$ is represented by $F_{u,v}$. The function $F_{u,v}$ assumed to satisfy the following conditions:

(PM-1) $F_{u,v}(x) = 1$, for all $x > 0$, if and only if $u = v$;

(PM-2) $F_{u,v}(0) = 0$;

(PM-3) $F_{u,v} = F_{v,u}$;

(PM-4) If $F_{u,v}(x) = 1$ and $F_{v,w}(y) = 1$ then $F_{u,w}(x + y) = 1$, for all $u, v, w \in X$ and $x, y > 0$.

A *Menger space* is a triplet $(X, \mathbf{F}, *)$ where $(X, \mathbf{F})$ is a PM-space and * is a t-norm such that the inequality

(PM-5) $F_{u,w}(x + y) \ge F_{u,v}(x) * F_{v,w}(y)$, for all $u, v, w \in X$ and $x, y \ge 0$.

Proposition 2.1. [11] If (X,d) is a metric space then the metric d induces a mapping $X \times X \to L$ defined by $F_{p,q}(x) = H(x - d(p, q))$, for all $p, q \in X$ and $x > 0$. Further, if the t-norm * is $a * b = \min\{a, b\}$ for all $a, b \in [0, 1]$, then $(X, \mathbf{F}, *)$ is a Menger space. It is complete if (X, d) is complete. The space $(X, \mathbf{F}, *)$ so obtained is called the *induced Menger space.*

Definition 2.4. [8] A sequence $\{x_n\}$ in a Menger space X is said to be *convergent* and converges to a point x in X if and only if for each $\varepsilon > 0$ and $\lambda > 0$, there is an integer $M(\varepsilon, \lambda)$ such that

$$F_{x_n x}(\varepsilon) > 1 - \lambda, \text{ for all } n \ge M(\varepsilon, \lambda).$$

Further the sequence $\{x_n\}$ is said to be *Cauchy sequence* if for $\varepsilon > 0$ and $\lambda > 0$, there is an integer $M(\varepsilon, \lambda)$ such that

* Ex. Prof. & ** Department of Mathematics, Govt. Madhav Science P.G. College, Ujjain (M.P.) INDIA

$F_{xn,xm}(e) > 1- l$, for all m, n ³ M(e, l).

A Menger space is said to be *complete* if every Cauchy sequence in X converges to a point in X.

Definition 2.5. [8] Self maps S and T of a Menger space (X, **F**, *) are said to be *compatible* if $F_{STx_n,TSx_n}(t) \to 1$ for all t > 0, whenever $\{x_n\}$ is a sequence in X such that $Sx_n, Tx_n \to u$, for some u in X, as $n \to \infty$.

Definition 2.6. [13] Self maps S and T of a Menger space (X, **F**, *) are said to be *weakly compatible (or coincidentally commuting)* if they commute at their coincidence points, i.e. if Sp = Tp for some $p \in X$ then STp = TSp.

Lemma 2.1. [] Let (X, F, t) be a Menger PM-space. Suppose that $\{p_n\} \subseteq X$ is such that

$$F_{p_n,p_{n+1}}(\phi^n(x)) \geq F_{p_0,p_1}(x)$$

for all x > 0, where the function $\phi : [0, \infty) [0, \infty)$ is onto, strictly increasing. Also assume

Then $\{p_n\}$ is a Cauchy sequence.

Lemma 2.2. [] Let (X, F, t) be a Menger PM-space and $F_{p,q}(t) = C$, for all t > 0 and

C = H(t) and p = q.

3. Main Result.

Theorem 3.1. Let (X, F, t) be a complete Menger space with t(x, y) = min{x, y} for all $x, y \in [0, 1]$. Let $T_n : X \to CB(X)$ $(n \in N)$ and continuous mapping $I : X \to X$ be such that $T_n(X) \subset I(X)$ where I commutes with T_n for every $n \in N$ and there exists $k \in (0, 1)$ such that

(3.1) $F_{\nabla T_iu, T_jv}(\phi(x)) \geq \min\{F_{Iu, Iv}(x), F^{\nabla}_{Iu, T_iu}(x), F^{\nabla}_{Iv, T_jv}(x), F^{\nabla}_{Iu, T_jv}((2 - \alpha)x, F^{\nabla}_{Iv, T_iu}(x)\}$,

for all $u, v \in X$, $\alpha \in (0, 2)$ and t > 0 for every $i, j \in N$ $(i \neq j)$, where the function

$\phi(x) : [0, \infty) \to [0, \infty)$ is onto, strictly increasing and satisfy condition (*).

Then there exists a common coincidence point of T_n and I, i.e. there exists a point z in X such that $Iz \in \cap T_nz$, $n \in N$.

Proof. Let x_0 be an arbitrary point in X and $x_1 \in X$ such that $Ix_1 \in T_1x_0$, $y_1 = Ix_1$ and

$$F_{X_n,y_1}(\phi(x)) = F_{x_n,Ix_1}(\phi(x)) \geq F^{\nabla}_{x_n,T_ix_0}(\phi(x)) - \varepsilon/2$$

$x_2 \in X$ such that $Ix_2 \in Bx_1$, $y_2 = Ix_2$ and

$$F_{y_1,y_2}(\phi(x)) = F_{Ix_1,Ix_2}(\phi(x)) \geq F^{\nabla}_{y_1,T_2x_1}(\phi(x)) - \varepsilon/2^2.$$

Inductively we construct a sequence $\{y_n\}$ in X such that

$$F_{y_n,y_{n+1}}(\phi(x)) = F_{Ix_n,Ix_{n+1}}(\phi(x)) \geq F^{\nabla}_{y_n,T_{n+1}x_n}(\phi(x)) - \varepsilon/2^{2n}.$$

Now we show that $\{y_n\}$ is a Cauchy sequence.

From (3.1) for all $x \geq 0$ and $\alpha = 1 - q$ with $q \in (0, 1)$, we write

$$\begin{aligned} F_{y_n,y_{n+1}}(\phi(x)) &\geq F^{\nabla}_{y_n,T_{n+1}x_n}(\phi(x)) - \varepsilon/2^n \\ &\geq F_{\nabla T_n x_{n-1},T_{n+1}x_n}(\phi(x)) - \varepsilon/2^n \\ &\geq \min\{F_{Ix_{n-1},Ix_n}(x), F^{\nabla}_{Ix_{n-1},T_nx_{n-1}}(x), F^{\nabla}_{Ix_n,T_{n+1}x_n}(x), \\ &\quad F^{\nabla}_{Ix_{n-1},T_{n+1}x_n}((2 - \alpha)x, F^{\nabla}_{Ix_n,T_nx_{n-1}}(x)\} - \varepsilon/2^n \\ &\geq \min\{F_{Ix_{n-1},Ix_n}(x), F_{Ix_{n-1},Ix_n}(x), F_{Ix_n,Ix_{n+1}}(x), F_{Ix_{n-1},Ix_{n+1}}((1 + q)x, \\ &\quad F_{Ix_n,Ix_n}(x)\} - \varepsilon/2^n \end{aligned}$$

Now using definition (2.1), we write

$$F_{y_n,y_{n+1}}(\phi(x)) \geq \min\{F_{y_{n-1},y_n}(x), F_{y_{n-1},y_n}(x), F_{y_n,y_{n+1}}(x), F_{y_{n-1},y_n}(x), F_{y_n,y_{n+1}}(qx), 1\} - \varepsilon/2^n.$$

Since t is a continuous T-norm and distribution function F is left continuous, letting $q \to 1$, we have

$$F_{y_n,y_{n+1}}(\phi(x)) \geq \min\{F_{y_{n-1},y_n}(x), F_{y_n,y_{n+1}}(x)\} - \varepsilon/2^n.$$

Since ε is arbitrary making $\varepsilon \to 0$, we obtain

$$F_{y_n,y_{n+1}}(\phi(x)) \geq \min\{F_{y_{n-1},y_n}(x), F_{y_n,y_{n+1}}(x)\}.$$

Similarly, one can show that

$$F_{y_{n+1},y_{n+2}}(\phi(x)) \geq \min\{F_{y_n,y_{n+1}}(x), F_{y_{n+1},y_{n+2}}(x)\}$$

which in turn yields

$$F_{y_n,y_{n+1}}(\phi(x)) \geq \min\{F_{y_{n-1},y_n}(\phi^{-1}x), F_{y_n,y_{n+1}}(\phi^{-1}x)\}.$$

By repeated application of the above inequality (for each m = 1, 2, …), we get

$$\begin{aligned} F_{y_n,y_{n+1}}(\phi(x)) &\geq \min\{F_{y_{n-1},y_n}(\phi^{-1}x), F_{y_{n-1},y_n}(\phi^{-2}x), F_{y_n,y_{n+1}}(\phi^{-2}x)\} \\ &= \min\{F_{y_{n-1},y_n}(\phi^{-1}x), F_{y_n,y_{n+1}}(\phi^{-2}x)\} \\ &\geq \ldots \geq \min\{F_{y_{n-1},y_n}(\phi^{-1}x), F_{y_n,y_{n+1}}(\phi^{-m}x)\}. \end{aligned}$$

Thus for each $\gamma \in (0, 1)$, we have

$$\begin{aligned} E_{\gamma, F(y_n,y_{n+1})} &= \inf\{x > 0 : F_{y_n,y_{n+1}}(x) > 1 - \gamma\} \\ &\leq \inf\{x > 0 : \min\{F_{y_{n-1},y_n}(\phi^{-1}x), F_{y_n,y_{n+1}}(\phi^{-m}x) \geq 1 - \gamma\} \\ &\leq \max\{x > 0 : F_{y_{n-1},y_n}(\phi^{-1}x)) \geq 1 - \gamma\}, \inf\{x > 0 : F_{y_n,y_{n+1}}(\phi^{-m}x) \geq 1 - \gamma\} \\ &\leq \max\{\phi(E_{\gamma, F(y_{n-1},y_n)}), \phi^m(E_{\gamma, F(y_n,y_{n+1})})\} \\ &\leq \max\{\phi(E_{\gamma, F(y_{n-1},y_n)}), \phi^m(E_{F(y_n,y_{n+1})})\} \end{aligned}$$

which on making $m \to \infty$, reduce to

$$E_{\gamma, F(y_n,y_{n+1})} \leq \phi(E_{\gamma, F(y_{n-1},y_n)}) \leq \phi^n(E_{F(y_0,y_1)})\}.$$

Therefore, by lemma 3, $\{y_n\}$ is a Cauchy sequence. Since X is complete, so $\{y_n\}$ converges to a point z in X.

Now by (1.1) with $\alpha = 1$, since I is continuous, we have

$$\begin{aligned} F^{\nabla}_{IIx_n,T_mz}(\phi(x)) &\geq F_{\nabla T_nIx_{n-1},T_mz}(\phi(x)) \\ &\geq \min\{F_{IIx_{n-1},Iz}(x), F^{\nabla}_{IIx_{n-1},T_nIx_{n-1}}(x), F^{\nabla}_{Iz,T_mz}(x), F^{\nabla}_{IIx_{n-1},T_mz}(x), \\ &\quad F^{\nabla}_{Iz,T_nIx_{n-1}}(x)\} \end{aligned}$$

$$\geq \min\{F_{IIx_{n-1}, Iz}(x), F_{IIx_{n-1}, IIx_n}(x), F^{\nabla}_{Iz, T_m z}(x), F^{\nabla}_{IIx_{n-1}, T_m z}(x), F_{Iz, IIx_n}(x)\}.$$

Since $\lim_{n\to\infty} F_{IIx_{n-1}, Iz}(x) = 1$, $\lim_{n\to\infty} F_{IIx_{n-1}, IIx_n}(x) = 1$, we have

$$\lim_{n\to\infty} F^{\nabla}_{IIx_{n-1}, T_m z}(x) = F^{\nabla}_{Iz, T_m z}(x).$$

Hence, for any $m \in N$, we write

$$F^{\nabla}_{Iz, T_m z}(\phi(x)) \geq F^{\nabla}_{Iz, T_m z}(x).$$

But $F^{\nabla}_{Iz, T_m z}(\phi(x)) \leq F^{\nabla}_{Iz, T_m z}(x)$ and hence $F^{\nabla}_{Iz, T_m z}(x) = C$ for all $x > 0$. So in view of Lemma 4, we have $H(x) = C$ for all $x > 0$ and hence $Iz \in T_m z$ and therefore

$$Iz \in \cap T_n z \text{ for } n \in N.$$

References

1. A. Jain and B. Singh, *Common fixed point theorem in Menger space through compatible maps of type (A),* Chh. J. Sci. Tech. 2 (2005), 1-12.
2. A. Jain and B. Singh, *A fixed point theorem in Menger space through compatible maps of type (A),* V.J.M.S. 5(2), (2005), 555-568.
3. A. Jain and B. Singh, *Common fixed point theorem in Menger Spaces,* The Aligarh Bull. of Math. 25 (1), (2006), 23-31.
4. G. Jungck, *Compatible mappings and common fixed points*, Internat. J. Math. and Math. Sci. 9(4), (1986), 771-779.
5. G. Jungck and B.E. Rhoades, *Fixed points for set valued functions without continuity,* Indian J. Pure Appl. Math. 29(1998), 227-238.
6. K. Menger, *Statistical metrics,* Proc. Nat. Acad. Sci. USA. 28(1942), 535 -537.
7. S.N. Mishra, *Common fixed points of compatible mappings in PM-spaces,* Math. Japon. 36(2), (1991), 283-289.
8. B. Schweizer and A. Sklar, *Statistical metric spaces*, Pacific J. Math. 10 (1960), 313-334.
9. S. Sessa, *On a weak commutativity condition of mappings in fixed point consideration,* Publ. Inst. Math. Beograd 32(46), (1982), 146-153.
10. V.M. Sehgal and A.T. Bharucha-Reid, *Fixed points of contraction maps on probabilistic metric spaces,* Math. System Theory 6(1972), 97- 102.
11. B. Singh, A. Jain and B. Lodha, *On common fixed point theorems for semi-compatible mappings in Menger space,* Commentationes Mathematicae 50(2), (2010), 127-139.
12. B. Singh and S. Jain, *A fixed point theorem in Menger space through weak compatibility,* J. Math. Anal. Appl., 301 (2005), 439-448.

****

Effect of Globalization on Employment Opportunities of Women in India

Dr. Richa Saxena*

Introduction - In today's world many alternatives of goods and services are available in front of consumer. Today the foreign trade links all the countries of the world together by the process of globalization. Due to foreign trade, the markets of the world have been unified. The globalization is meant the working of whole world together with co-operation and co-ordination in the form of a market. In India the liberalization started soon after 1991.

Globalization impacts the everyday lives of women in India. It's true that we are in the midst of a great revolution in the history of women. We see the evidence everywhere; the voice of women is increasingly heard in Parliament, courts and in the streets.

India today, a country where women still faces enormous pressure to conform to social mores conforming to traditional roles within families poses as much of a barrier to businesswomen in India as the still-too-thick glass ceiling at companies. Though women have made great strides in the corporate world in the last three decades.

According to the World's Women 2000:

- Women now comprise an increasing share of the world's labour force - at least one third in all regions except in Northern Africa and Western Asia.
- Self-employment and part-time and home-based work have expanded opportunities for women's participation in the labour force but are characterized by lack of security, lack of benefits and low income.
- The informal sector is a larger source of employment for women than for men.
- Women, especially younger women, experience more unemployment than men and for a longer period of time than men.
- Women remain at the lower end of a segregated labour market and continue to be concentrated in a few occupations, to hold positions of little or no authority and to less pay than men.
- Available statistics are still far from providing a strong basis for assessing both quantitative and qualitative changes in women's employment.

Source: United Nations, 2000.

Globalization has opened up broader communication lines and brought more companies as well as different worldwide organizations into India. This provides opportunities for both men and women, there are opportunities for higher pay, which raises self-confidence and brings about independence. Globalization has the power to uproot the traditional views towards women so they can take an equal stance in society. The Self-Employed Women's Association (SEWA) in India is a union of women laborers willing to work hard and seize any work opportunities they might get. Globalization aids the opportunities in various ways. SEWA has established a Women's Cooperative Bank with 125,000 members, and through the aid of globalization, they have even reached the women in the rural areas of India. Markets in different areas can now be reached by Indian women who have a part in businesses, or by craft-making women who have licenses to export their goods. With more freedoms and opportunities, these women are raising their standard of living by generating more income. Technology that may seem out-dated to the United States is viewed as modern technology to India. With the aid of satellites and computers, SEWA has been able to reach more women to share self-help knowledge. Even the telephone is advancement to many women in their business ventures. After one of the SEWA women took out a loan of four dollars to buy a telephone, her income was increased because she could reach more people.

Globalization helps the Indian women share ideas and network in the international markets (UNIFEM).The effect has a lot to do with liberalization. Globalization has given women a stronger voice. There has been a noticeable change in what women can do and what their opportunities are different non-profit organizations have been brought to India from around the globe. These organizations have given women the skills they need to advance, such as literacy and vocational skills. One organization, India corps, has brought in a range of programs to help women help themselves. One program in Ahmadabad, India has taught poor women how to create different crafts to generate income. With this program, women are able to earn their own personal money and enable the children to attend school instead of having to work to make more money. The women also gain business skills that inform them about career opportunities.

Possibilities and Opportunities

On the positive side globalization has contributed to bring about welcome changes in the lives of women who have been able to avail of the opportunities, which open up in the various

* Guest Faculty(Home Science), Subhadra Sharma Govt. Girls College, Ganj Basoda, Vidisha (M.P.) INDIA

sectors of development. These are:

- Prospects of higher and quality education have become feasible for those women who can afford them, economically and socially.
- Employment in technological and other advanced sectors.
- Augmentation of women's movements through exposures at the international level will help bring about major changes in the economic, social and political lives of women.
- Reduction in gender inequalities will have positive effect on women's empowerment in the socio-economic context.
- Attitudinal changes towards women's role in the family due to good education, benefits of family planning and health care, child care, good job Opportunities etc. will surely help in the development of more confident and healthy women.
- Positive approach to economic and cultural migration will facilitate women to be exposed to better prospects at the international level.

States	WOMEN				MEN			
	Rural		Urban		Rural		Urban	
	1991	2001	1991	2001	1991	2001	1991	2001
Andhra Pradesh	37	30.9	48.7	47.5	57.5	51.9	48.7	47.5
Bihar	10.8	9.2	4.3	4.6	48.5	41.1	41.8	37.9
Gujarat	17.7	18.9	6	7	54.4	50.4	50.9	52.6
Karnataka	27.4	24.7	12	13.5	55.4	52.3	49.6	51.2
Kerala	13.4	10.8	11.3	10.6	44.9	41	44.6	44.5
Maharashtra	36.1	33.6	50	49.8	52.1	47.8	50	49.8
Mizoram	39.2	37.6	27.8	26	51.3	51.7	47.6	46.8
Punjab	2.2	14	4.3	7.9	54.9	49.4	52.2	51.4
Rajasthan	15.3	20	5.4	6.2	49.2	43.7	46.4	44.2
Tamil Nadu	32	52.6	30.1	52.9	54.9	49.4	52.2	51.1
Uttar Pradesh	8.4	6.6	3.8	4	50.1	39.3	46.2	40.5
West Bengal	8.7	5.8	5.8	8.8	51.2	46	49.3	50.6
All India	18.6	16.8	8.1	9.1	51.8	44.5	48.6	47.5

An important feature of any society is its worker-population ratio or the work participation rate (WPR) for men and women. That is the proportion of the population which is reported as workers. We find from Table B 1, based on data from last two censuses held in 1991 and 2001, that for India as a whole and for most of the states in our Table, WPRs show a clear decline (except for female work participation rate (FWPR) in urban areas which shows a small gain between 1991and 2001). This is consistent with the known loss of employment associated at least partially with the impact of globalization. (It will be noticed that for Punjab, there is a substantial rise in the WPR for rural women, from two to 14 per cent. This rather unusual feature has been attributed to a modification in enumeration procedures in the census of 2001, which designates .production of milk for own consumption .as an economic activity. [Deshpande 2003]

Table B1: Men and women main workers as percentage of male and female population

India and selected states: 1991 and 2001

Source: COI 2001, Paper 3 of 2001, Annexure - 1(in CD released by the Directorate of Census

Operations, West Bengal, 2004).

The next two Tables, based on recent NSS data, show the disposition of rural workers (Table B 3) and urban workers (Table B 4), further classified into the nine sectors that comprise the economy: Agriculture; Mining and Quarrying; Manufacturing, Electricity, Water etc.; Construction; Trade, Hotels etc.; Transport etc.; Services such as financial, insurance etc.; and other Services such as public administration, education etc. The two Tables present the situation for India as a whole as well as that obtaining in 12 selected states. By and large, a comparatively high proportion of women workers are found in the agricultural sector (841 per thousand women workers as against 712 per thousand male workers) ; but for rural Punjab and rural West Bengal the picture is somewhat different, a relatively high proportion of women being involved in manufacture, due to widespread engagement in household industry. Women have low presence in Electricity and Water, Trade, Transport and Financial services though they are visible in the other components of the tertiary sector relating to education etc.

Table B2: Per Thousand distribution of usually working population by broad

Industry division: India and selected States: 1999-2000

Rural Areas (See Table No.1 Back Side)

Table B3: Per Thousand distribution of usually working population by broad

Industry division: India and selected states: 1999-2000

Urban Areas (See Table No.2 Back Side)

Conclusion

The impacts of globalization on women are more prevalent and more complicated. Highlighting the positive aspects of globalization, a number of economists believe that women have mainly acquired noticeable benefits from economic reforms. One of the opportunities that globalization provides for women is the increase in employment. By expanding mass communication Medias, globalization also boosts women's awareness level so that they have better chance to prove themselves. Women's employment helps boost their income level and therefore women have more access to human

development indicators such as (training, health, free access to information and communication, participation in social and political life).

Moreover, women's participation plays a vital part in service especially those services needing high level skill and specialized knowledge like programming, working at banks, airlines, insurance companies and productions. Since their trade is very much highlighted.

Besides having the positive effects, globalization also has negative impacts on the lives of women. Unfair deals in free market system of globalization especially in developing countries cause women to be the first to lose their jobs. Continuation in the Privatization and reduction of social services for women causes women to be more vulnerable than men in this case.

At the moment millions of women give up their residence in poor countries across the world so as to find employment.

References

- The Impact of Globalization on Women in India "Yathro Narianthu Poojyothay,Ramanthe thathra Devathey"
- Rajput, Pam,ed. Globalisation and Women. New Delhi; Ashish Publications, 1994.
- Goswami,P.R. Literacy, Information, and Governance in the Digital Era: An IndianScenario. Libr.Rev. 34;2002;255-70.
- Siwal,B.R Structural Adjustment Macro Perspective. Social Welfare.45;1;1998;6-8 & 48.
- Sood, A.D. How to wire Rural India : Problems and Possibilities of Digital Development Economic and Political Weekly. 27;2001;4134-41.
- Census of India (COI) 1991, Paper 2 of 1992.
- COI 2001, Paper 3 of 2004 (CD released by Directorate of Census Operations, West Bengal).
- Central Statistical Organisation (CSO), Ministry of Statistics and Programme Implementation,Govt. of India (GOI), Women and Men in India 2000, March 2001.
- CSO, Economic Census, 1998.
- Deshpande, Sudha . Changing Employment Structure in Large States of India.., Indian Journal of Labour Economics (IJLE), Vol. 46 (4),October -December 2003.

Table No.1

Rural Areas

States	Agriculture etc.		Mining & Quarrying		Manu-facturing		Electric-ity, Water etc.		Constru-ction		Trade Hotels etc.		Trans-port etc.		Financial, Business, Education, Services etc.		Public Insurance-e Admn.,	
	M	W	M	W	M	W	M	W	M	W	M	W	M	W	M	W	M	W
Andhra Pradesh	744	842	10	7	53	59	1	0	34	8	58	31	30	0	4	0	66	53
Bihar	789	843	6	1	53	92	1	0	28	6	53	20	19	1	3	1	48	35
Gujarat	741	902	4	5	101	27	3	0	33	24	55	17	39	2	4	0	46	23
Karnataka	785	878	9	6	52	57	1	0	21	6	57	24	24	0	6	0	45	29
Kerala	143	452	21	11	96	251	3	0	130	38	163	51	93	3	21	17	59	178
Maharashtra	739	941	2	1	69	18	4	0	34	10	58	13	33	0	6	0	56	17
Mizoram	835	850	5	0	5	17	0	0	14	4	19	55	2	1	10	0	118	73
Punjab	636	490	0	0	77	108	11	11	79	8	81	67	56	0	5	0	54	316
Rajasthan	672	901	19	8	54	35	3	0	120	29	55	8	30	0	5	0	41	19
Tamil Nadu	621	752	7	3	138	145	3	0	58	17	72	35	43	2	8	2	50	44
U.P.	713	836	2	0	84	83	2	0	45	4	68	23	30	0	4	1	52	52
West Bengal	663	572	4	0	110	305	1	0	27	6	3	0	43	0	4	1	45	83
India	712	841	6	4	73	77	2	0	45	12	68	23	32	1	5	1	56	42

Source: NSS Report No. 458; Employment and Unemployment Situation in India, 1999-2000,

Table No.2

Urban Areas

States	Agriculture etc.		Mining & Quarrying		Manu-facturing		Electricity, Water etc.		Construction		Trade Hotels etc		Transport etc.		Financial, Busines, Education, Services etc.		Public Insurance Admn.,	
	M	W	M	W	M	W	M	W	M	W	M	W	M	W	M	W	M	W
Andhra Pradesh	71	151	10	2	185	217	7	1	116	123	276	203	119	16	49	21	176	266
Bihar	87	174	45	35	179	171	13	8	52	34	311	195	81	4	36	21	195	358
Gujarat	72	151	6	1	267	160	6	1	84	72	292	161	98	27	40	24	134	404
Karnataka	81	196	3	3	218	289	7	0	116	51	296	156	97	7	51	53	132	244
Kerala	70	77	4	2	181	330	7	2	145	28	341	186	118	23	47	47	114	305
Maharashtra	35	152	4	1	252	148	9	1	88	42	272	193	130	27	59	54	150	383
Mizoram	238	415	18	12	43	30	0	0	119	39	142	245	43	7	25	14	372	238
Punjab	63	38	0	0	244	185	13	12	75	14	321	141	99	36	38	22	146	551
Rajasthan	66	237	27	20	206	256	8	0	115	82	251	80	94	12	44	9	188	305
Tamil Nadu	65	140	4	4	266	319	9	4	84	44	285	167	110	29	50	20	129	274
U.P.	74	122	0	0	244	310	5	0	71	16	325	115	87	13	31	10	163	414
West Bengal	32	22	9	6	253	262	14	0	72	22	278	132	132	17	47	16	162	524
India	65	146	9	4	225	232	8	2	88	55	293	164	104	20	44	28	165	350

Source: NSS Report No. 458; Employment and Unemployment Situation in India, 1999-2000.

किशोरियों के संवेगात्मक परिपक्वता स्तर का अध्ययन

डॉ. मंजु शर्मा * शारदा भिण्डे **

प्रस्तावना:-

किशोरों के जीवन में संवेगों का महत्वपूर्ण स्थान है संवेगों के कारण कभी-कभी व्यक्ति इतना प्रेरित हो जाता है कि वह जाति, धर्म, देश और मानवता के लिए बड़े-बड़े कार्य करने के लिए तत्पर हो जाता है और ऐसे कार्यो को भी कर जाता है।

संवेग प्राय: तीव्र अनियंत्रित अभिव्यक्ति वाले और विवेक शून्य होते है उनके संवेगात्मक व्यवहार में प्राय: प्रतिवर्ष सुधार होता है जैसे 14 वर्ष का किशोर चिड़चिड़ा होता है व अक्सर जल्दी उत्तेजित हो जाता है अपने भावों में नियन्त्रण करने के बजाय संवेगों में उन्मुक्त हो जाता है एक वर्ष अर्थात् 15 वर्ष की आयु में किशोर संवेगो को छुपाना प्रारम्भ कर देते है 16 वर्ष के किशोर चिंता करना कम कर देते है व अपनी सभी समस्याओं का सामना शान्त मन से करना प्रारम्भ कर देते है अब ये किशोर संवेगों पर नियन्त्रण रखने की इच्छा रखते है किशोर किशोरियों में संवेग के कारणों को जानने के लिए आवश्यक है कि हम आवश्यकताओं प्रेरणाओं इच्छाओं तथा लक्ष्यों को पूरा करने में सहयोग दे।

किशोरियों में संवेगों को उत्पन्न करने की परिस्थितियाँ है रूचि और भय, साथ ही कुछ संवेग ऐसे होते है जो व्यक्ति के विकास की प्रत्येक दशा में व्यक्ति द्वारा अनुभव किये जाते है। जैसे- डर आदि व कुछ ऐसे भी संवेग होते है जो किसी क्षेत्र तक सीमित रहते है व परिपक्वता प्राप्त करने के बाद उनकी अनुभूति व्यक्ति द्वारा होती है।

मार्गन (1965) का विचार है कि-

संवेगात्मक व्यवहार की परिपक्वता के लिए अन्त: स्त्रावी ग्रंथियों का विकसित होना आवश्यक है यह देखा गया हैं कि एड्रीनल ग्रंथि जन्म के कुछ समय बाद ही आकार में छोटी हो जाती है। इस ग्रंथि का तेज गति से विकास होती है साथ ही साथ इस अवधि में किशोर का शारीरिक विकास भी तीव्र गति से होता है पाँच से ग्यारह वर्ष की अवस्था तक इस ग्रंथि का और किशोर का शारीरिक विकास अपेक्षाकृत मन्द गति से होता है। एक बार पुन: इन दोनों का विकास ग्यारह से सोलह वर्ष की अवस्था में तीव्र गति से होता है। सोलह वर्ष की अवस्था में एड्रीनल ग्रंथि का आकार बढ़कर वही हो जाता है जो जन्म के समय होता है।

उद्देश्य:-

1. परम्परागत तथा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों में संवेगात्मक परिपक्वता को ज्ञात करना।
2. एकल तथा संयुक्त परिवार वाले परम्परागत शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों के संवेगात्मक परिपक्वता पर प्रभाव ज्ञात करना।

उपकल्पना:-

1. परम्परागत तथा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों में संवेगात्मक परिपक्वता में अंतर होगा।
2. एकल तथा संयुक्त परिवार वाली परम्परागत शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों के संवेगात्मक परिपक्वता पर प्रभाव होगा।

शोध प्रविधि:-

प्रस्तुत शोध कार्य में निदर्शन के चयन इन्दौर शहर को लिया गया जिसके के लिए 100 निदर्शन का चयन किया गया।

जिसमें 50 किशोर उसमें से 25 परम्परागत शिक्षा तथा 25 व्यवसायिक शिक्षा 50 किशोरियों जिसमें 25 परम्परागत शिक्षा तथा 25 व्यवसायिक शिक्षा को लिया गया। निदर्शन का चुनाव करने के लिए इन्दौर शहर को चार भागों में बाँटा गया तथा दैव निदर्शन पद्धति की लॉटरी विधि के द्वारा एक क्षेत्र का चुनाव किया गया।

उपकरण:-

किशोर एवं किशोरियों के सांवेगिक परिपक्वता का अध्ययन करने के लिए डॉ. यशवीर सिंग व डॉ. भार्गव के संवेगात्मक परिपक्वता परीक्षण का उपयोग किया गया। इस परीक्षण द्वारा किशोर व किशोरियों की संवेगात्मक परिपक्वता ज्ञात किया गया।

सांवेगिक अस्थिरता, सांवेगिक दमन, सामाजिक कुसमायोजन, नेतृत्वहीनता किशोरों में सांवेगिक परिपक्वता को ज्ञात करने के लिए डॉ. महेश भार्गव का सांवेगिक परिपक्वता की प्रश्नावली का प्रयोग सांवेगिक परिपक्वता को ज्ञात करने के लिए किया गया है।

इस परीक्षण की प्रश्नावली में 48 प्रश्न है जो सांवेगिक परिपक्वता व सांवेगिक विकास के विभिन्न पहलुओं से सम्बंधित है। प्रश्नावली के प्रत्येक प्रश्न के 5 विकल्प है अत्यधिक, बहुधा, अनिश्चित, प्राय: कभी नहीं। इनमें अत्यधिक को 5 बहुधा को 4 अंक अनिश्चित को 3 अंक प्राय: को 2 अंक और नकारात्मक उत्तर कभी नही को 1 अंक दिये गये है इसमें से किसी एक विकल्प को चुनना है।

प्रस्तुत शोध कार्य में 50 किशोर 50 किशोरियों से प्रपत्र भरवाये गये उसके लिए वैष्णो पोलीटेक्नीकल कॉलेज व ओल्ड जी.डी.सी. कॉलेज व आर्टस कॉमर्स कॉलेज में जाकर यह प्रपत्र भरवाये थे।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ:-

तथ्यों का विश्लेषण तथा परिणाम निकालने के लिए सांख्यिकीय परीक्षण किया गया जिसमें सार्थकता तथा असार्थकता का पता लगाया गया इसके लिए काई वर्ग परीक्षण व सांख्यिकीय तकनीकी का चयन शोधकर्ता अपने शोध उद्देश्यों के अनुसार करती हैं।

काई वर्ग परीक्षण-

$$x^2 = \sum \left\{ \frac{(Fo - Fe)^2}{Fe} \right\}$$

X^2 - काई वर्ग

F0 - निरीक्षण की आवृत्ति (Observed)

Fe - वास्तविक आवृत्ति (expected)

* प्राध्यापक ** शोधार्थी माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.) भारत

उपरोक्त तालिका क्र . 1 से ज्ञात होता है कि अत्यधिक स्थिर संवेग वाली परम्परागत शिक्षा प्राप्त किशोरियों की संख्या 5 व 20 प्रतिशत पाया गया जबकि व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों की संख्या 5 व 20 पाया गया।

आंशिक रूप से स्थिर संवेग वाली परम्परागत शिक्षा प्राप्त किशोरियों की संख्या 6 व 24 प्रतिशत पाय गया। जबकि व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों की संख्या 6 व 2 प्रतिशत पायी गई।

अस्थिर संवेग वाली परम्परागत शिक्षा प्राप्त किशोरियों की संख्या 10 व 40 प्रतिशत पाया गया। जबकि व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों की संख्या 10 व 40 प्रतिशत पाया गया।

अत्यधिक अस्थिर संवेग वाली परम्परागत शिक्षा वाली किशोरियों की संख्या 4 व 16 प्रतिशत पाया गया जबकि व्यावसायिक शिक्षा वाली किशोरियों की संख्या 4 व 16 प्रतिशत पाया गया।

इनके काई वर्ग का मान 0.00 प्राप्त हुआ जो 3 स्वतन्त्रता के अंश पर .05 सार्थकता स्तर के आवश्यक मान से कम है। अत: दोनों में अंतर सार्थक नही है।

उपकल्पना:-

''परम्परागत तथा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों में संवेगात्मक परिपक्वता में अन्तर होगा''

उपरोक्त उपकल्पना की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए इससे सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये गये तथा उनका काई वर्ग ज्ञात किया गया।

इसमें पाया गया कि परम्परागत शिक्षा व व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों की संवेगात्मक परिपक्वता में अन्तर सार्थक नहीं पाया गया। इसका कारण यह हो सकता है कि परम्परागत शिक्षा व व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों के संवेगात्मक परिपक्वता किशोरियों की शिक्षा से सम्बन्धित समस्या व व्यावसायिक समस्या से किशोरियां अपने भविष्य को लेकर काफी चिंतित रहती हैं। विचारों में असन्तुलन वाली स्थिति रहती हैं । अत: उपरोक्त उपकल्पना असार्थक सिद्ध हुई।

तालिका क्र . 2 के अवलोकन से ज्ञात होता हैं कि परम्परागत शिक्षा व व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों में एकल व संयुक्त परिवार में संवेगात्मक परिपक्वता में प्रभाव देखा गया। एकल व संयुक्त परिवार वाले परम्परागत व शिक्षा प्राप्त किशोरियों का मध्यमान क्रमश: 99.4 व 81.9 पाया गया। इनका मानक विचलन 16.60 तथा इसके टी का मान 2.57 प्राप्त हुआ जो कि 23 स्वतंत्रता के अंश के लिए .05 सार्थकता के स्तर के आवश्यक मान से अधिक है। अत: दोनों में अन्तर सार्थक हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि एकल तथा संयुक्त परिवार वाली व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों का मध्यमान क्रमश: 93.3 व 94 पाय गया। इनका मानक विचलन 24.78 तथा इसके टी का मान 0.01 प्राप्त हुआ जो कि 23 स्वतंत्रता के अंश के लिए .05 सार्थकता के स्तर के आवश्यक मान से कम हैं। अत: दोनों में अन्तर असार्थक है।

उपकल्पना:-

एकल तथा संयुक्त परिवार वाली परम्परागत शिक्षा व व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों की संवेगात्मक परिपक्वता में प्रभाव होगा। उपरोक्त उपकल्पना की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए इससे सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये गये तथा उनका टी परीक्षण ज्ञात किया गया।

इसमें पाया गया कि एकल तथा संयुक्त परिवार वाले परम्परागत शिक्षा प्राप्त व व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों की संवेगात्मक परिपक्वता में अंतर तो पाया गया परन्तु सार्थक नही पाया गया।

अत: उपरोक्त उपकल्पना आंशिक रूप से सिद्ध हुई। इसका कारण यह हो सकता है कि परम्परागत व व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों के माता -पिता उच्च शिक्षा को प्राप्त किए होंगे तो किशोरियों पर इसका प्रभाव पडेगा व एकांकी परिवार में अधिक।

सुझाव:-

अध्ययन में सर्वेक्षण के दौरान तथा परिणाम से कुछ मुद्दे स्पष्ट होते है जो किशोर व किशोरियों में संवेगात्मक परिपक्वता स्पष्ट होते है जो किशोरियों में संवेगात्मक परिपक्वता सांवेगिक विकास में बाधा डालती है इन्ही को दूर करने के लिए कुछ सुझाव प्रस्तुत है-

1. किशोरियों के लिए पारिवारिक वातावरण अच्छा बनाना चाहिए।
2. किशोरियों के शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान देना।
3. किशोरियों के अनुसार कार्य करने देना चाहिए जिससे उनका संवेगात्मक परिपक्वता का विकास हो सके।
4. अभिभावक को किशोरियों के कार्यो में बार-बार रोक-टोक नहीं करना चाहिए।
5. किशोरियों को नए-नए कौशलों को लिखने के अवसर तथा साधन उपलब्ध कराये।
6. शिक्षकों द्वारा विद्यालय की प्रत्येक गतिविधि में किशोरियों को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना।

सन्दर्भ ग्रन्थ:-

1. डॉ. वर्मा प्रीति (1996)- बाल मनोविज्ञान बाल विकास प्रकाशन विनोद पुस्तक आगरा
2. बिस्ट आभारानी- विशिष्ट बालक उनका मनोविज्ञान एवं शिक्षा प्रकाशन विनाद पुस्तक मंदिर आगरा
3. भाई योगेन्द्रजीत (1982)- विकासात्मक मनोविज्ञान विनोद आगरा
4. श्रीवास्तव डॉ. डी.एन- व्यक्तित्व का मनोविज्ञान प्रकाशन विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
5. कपिल डॉ. एच.के. कपिल (2009)- सांख्यिकी के मूल तत्व, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा-2
6. मुखर्जी रवीन्द्रनाथ (2007)- सामाजिक शोध व सांख्यिकीय, विवेक प्रकाशन, दिल्ली

****

परम्परागत तथा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों में संवेगात्मक परिपक्वता स्तर की तालिका
तालिका – 1

क्रमांक	संवेग श्रेणी	परम्परागत शिक्षा		व्यावसायिक शिक्षा		स्वतन्त्रता के अंश	काई–वर्ग	परिपक्वता सार्थक
		किशोरियों की संख्या	प्रतिशत	किशोरियों की संख्या	प्रतिशत			
1.	अत्यधिक स्थिर	5	20	5	20	3	0.00	असार्थक
2.	आंशिक रूप से स्थिर	6	24	6	24			
3.	अस्थिर	10	40	10	40			
4.	अत्यधिक अस्थिर	4	16	4	16			
योग		25	100	25	100			

- *01 सार्थकता स्तर*
- *05 सार्थकता स्तर*

एकल तथा संयुक्त परिवार वाले परम्परागत शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त किशोरियों के संवेगात्मक परिपक्वता में अंतर से सम्बन्धित तालिका क्रमांक 2

क्र	संवेग श्रेणी	परिवार का प्रकार				मानक विचलन (व)	स्वतंत्रता का अंश	T का मान	परिकल्पना का सार्थकता स्तर
		एकांकी		संयुक्त					
		किशोरियों की संख्या	मध्य मान	किशोरियों की संख्या	मध्य मान				
1.	परम्परागत	15	99.4	10	81.9	16.60	23	2.57	सार्थक
2.	व्यावसायिक	18	93.83	7	94	24.78	23	0.01	असार्थक

- *01 सार्थकता स्तर*
- *05 सार्थकता स्तर*

आदिवासी क्षेत्र के 6-14 वर्ष के बच्चों का पर्यावरण संबंधी ज्ञान का स्तर

डॉ. सीमा रजा* डॉ. गीताली सेनगुप्ता **

शुद्ध पर्यावरण के बिना जीवन असंभव है पर्यावरण प्रकृति प्रदत्त हवा, पानी, जमीन आदि से मिलकर बना है। इसके शाब्दिक अर्थ परि+आवरण से स्पष्ट है स्वच्छ आवरण। यह स्वच्छ साफ-सुथरा आवरण प्राणी के जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। पर्यावरण संतुलन बिगडने से जीवन खतरे में पड़ सकता है, इसके संतुलन को बनाये रखना मानव समाज का कर्तव्य है। पर्यावरण को दूषित बनाने में भी मनुष्य का ही बड़ा हाथ है।

प्रकृति की स्वाभाविक संरचना को अपनी सुविधाओं के लिए हानि पहुँचाकर बिगाड़ने का काम भी मनुष्य समाज द्वारा ही किया गया है, बढ़ती आबादी कल कारखाने, जल संसाधनों को सर्वाधिक हानि पहुँचा रहे है। साथ ही जंगल को नष्ट कर वर्षा के स्रोत को नष्ट करना, वन्य प्राणियों के जीवन को नष्ट करना ही पर्यावरण को असंतुलित बना रहा है। अत: आज आवश्यकता है इसके महत्व को समझ जन जागृति विकसित करना।

उद्देश्य -

* प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अक्षम बच्चों में पर्यावरण संबंधी जागरूकता का स्तर ज्ञात करना।
* अक्षम बच्चों में पर्यावरण संबंधी ज्ञान को विकसित करने हेतु रूचि जागृत करना।

परिकल्पना -

* 6 से 14 वर्ष के अक्षम बच्चों में पर्यावरण संबंधी ज्ञान का अभाव होगा।

कार्यविधि -

प्रस्तुत अध्ययन हेतु शोधकर्ता ने 180 आदिवासी क्षेत्र के संस्थागत बच्चों का चयन किया जिसमें बालक एवं बालिकाओं दोनों का ही समावेश किया गया है। ये बच्चे 6 से 14 वर्ष की आयु समूह के लिये गये है। इन बच्चों में तीनों प्रकार की अक्षमताएँ थी। दृष्टिबाधिता, श्रवण बाधिता एवं अस्थि बाधिता।

निदर्शन चुनाव -

निदर्शन चुनाव उद्देश्यपूर्ण याद्रच्छिक विधि द्वारा किया गया अत: प्राप्त बच्चों की संख्या में बालक एवं बालिकाओं की संख्या में असमानता पाई गई।

तथ्य संकलन -

तथ्य संकलन हेतु शोधकर्ता ने आदिवासी क्षेत्र के विभिन्न जिलों में धार, झाबुआ, बड़वानी, अर्न्तरवेलिया, झाकर, भाभरा, खरगोन, खण्डवा आदि स्थानों की पुनर्वास संस्थाओं में जाकर किया।

श्रवण बाधित एवं दृष्टि बाधित बच्चों से विषय संबंधित जानकारी भरने हेतु शिक्षकों, सांकेतिक भाषा, ब्रेलविधि तथा प्रादेशिक भाषा विशेषज्ञों की सहायता लेकर तथ्य संकलन का कार्य किया गया।

उपकरण -

शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित प्रश्नावली परीक्षण तैयार कर तथ्य संकलन हेतु उपयोग में लाई गई।

तथ्य विश्लेषण -

स्वनिर्मित प्रश्नावली द्वारा शोधकर्ता एवं सहयोगी सदस्यों द्वारा अक्षम बच्चों के पास जाकर व्यक्तिगत रूप से भरी गई। पर्यावरण ज्ञान संबंधी जानकारी के साथ उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि की भी जानकारी ली गई। तथ्यों के विश्लेषण में सिर्फ प्रतिशत द्वारा ही ज्ञान का स्तर ज्ञात किया गया।

निष्कर्ष -

प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण में पाया गया कि 180 अक्षम बच्चों में अक्षमता एवं लिंग के अनुसार पर्यावरण संबंधी ज्ञान का स्तर अलग-अलग पाया गया।

1. **अक्षम बच्चों में पर्यावरण संबंधी जानकारी का स्तर :-**

रेखाचित्र क्रं . 1

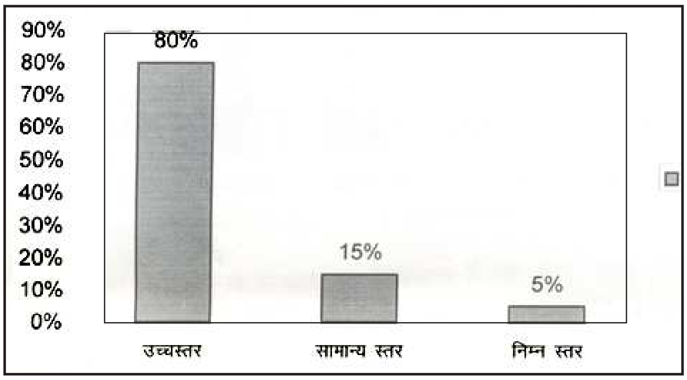

2. **लिंग के आधार पर अक्षम बच्चों में पर्यावरण संबंधी ज्ञान का स्तर**

रेखाचित्र क्रं . 2

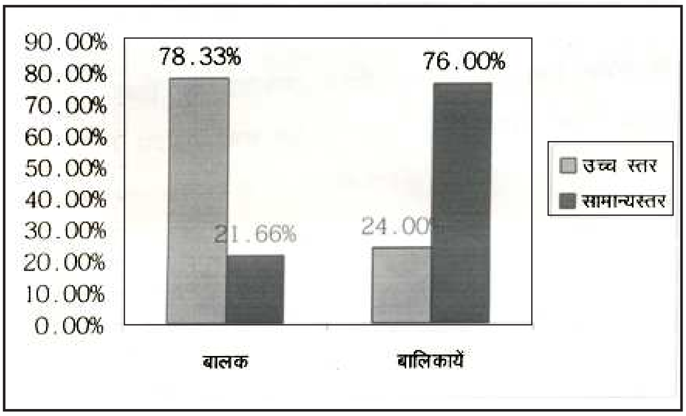

---

* सहायक प्राध्यापक, सरोजनी नायडू स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय भोपाल (म.प्र.) भारत
* प्राध्यापक विभागाध्यक्ष (गृह विज्ञान) माखनलाल चतुर्वेदी शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय खण्डवा (म.प्र.) भारत

3. अक्षमता के आधार पर अक्षम बच्चों का पर्यावरण संबंधी ज्ञान का स्तर–

रेखाचित्र क्रं . 3

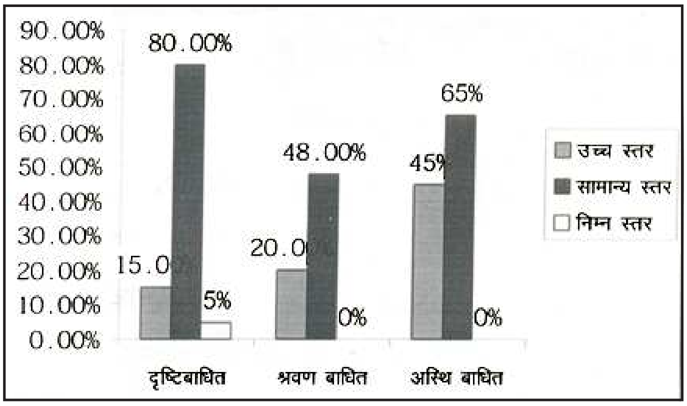

प्रस्तुत अध्ययन में इंदौर संभाग के आदिवासी क्षेत्र के 180 बच्चों के पर्यावरण संबंधी ज्ञान का अध्ययन किया गया। 180: बच्चों में वृक्षों एवं वातावरण संबंधी जानकारी का स्तर उच्च पाया गया। 15: बच्चों में जानकारी का स्तर सामान्य एवं शेष 5: बच्चों में जानकारी का स्तर बिल्कुल निम्न पाया गया। 24: बालिकाओं का पर्यावरण संबंधी जानकारी का स्तर उच्च था एवं शेष 76: बालिकाओं सामान्य था। बालिकाओं की अपेक्षा 78: बालकों में जानकारी का स्तर उच्च एवं 22: बालिकाओं में सामान्य पाया गया।

अत: परिणामों से यह निष्कर्ष निकलता है कि अक्षम बच्चों में भी पर्यावरण संबंधी ज्ञान सामान्य बच्चों की तरह ही पाया जाता है, परन्तु फिर भी अक्षमता का प्रभाव उनके ज्ञार्नाजन पर दिखायी देता है। दृष्टि बाधित बच्चों से प्रश्नावली भरते समय देखा गया कि वृक्षों के विषय में उन्हें मालूम सब कुछ था परन्तु जो जन्म से ही दृष्टि बाधित थे ऐसे बच्चों की अवधारणाओं में कमी देखी गई। इसका प्रभाव बच्चों के ज्ञान पर पाया गया। शेष श्रवणबाधित एवं अस्थि बाधित में ज्ञान का स्तर सामान्य बच्चों से कम देखा गया, परन्तु सामान्य तौर पर पर्यावरण संबंधी ज्ञान उनमें था।

सुझाव –

इन बच्चों को पर्यावरण संबंधी ज्ञान का विकास करने के लिये बच्चों को माडल्स, प्रत्यक्ष प्रदर्शन तथा पर्यटन स्थलों चिडियाघरों आदि भ्रमण के एवं उपयोग द्वारा ज्ञान के स्तर को बढ़ाने के प्रयास करना चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ :-

1- Environmental studies- DBN murthy
2. सामान्य शोध एवं सर्वेक्षण – रविन्द्र नाथ मुकर्जी

****

महाविद्यालय में अध्ययनरत् किशोर तथा किशोरियों का समायोजन का स्तर ज्ञात करना

कु. अन्तिमबाला नामदेव * डॉ. रश्मि वर्मा **

Abstract- अध्ययन का उद्देश्य महाविद्यालय में अध्ययनरत् किशोर तथा किशोरियों के समायोजन का स्तर ज्ञात करना था इस हेतु प्रो. ए.के.पी. सिन्हा (पटना) एवं प्रो. आर.पी. सिंह (पटना) द्वारा निर्मित **Adjustment inventory for college students** परीक्षण की सहायता से महाविद्यालय के छात्र (20) तथा छात्राएँ (20) को देव निदर्शन विधि से प्रयोज्यों के रूप में चयनित कर प्रदत्तों का संकलन किया गया। अध्ययन में उल्लेखित दोनों लिंग (छात्र तथा छात्राएँ) का समायोजन स्तर ज्ञात किया गया जिसमें 50 प्रतिशत किशोर मध्यम रूप से समायोजित पाये गये तथा 40 प्रतिशत अच्छा समायोजन कर पाते है। 10 प्रतिशत छात्र असंतुष्ट पाये गये। 35 प्रतिशत छात्राएँ मध्यम रूप से समायोजित पाई गई तथा 30 प्रतिशत छात्राएँ अच्छे रूप से समायोजित पाई गई तथा 35 प्रतिशत छात्राएँ असंतुष्ट पाई गई।

परिचय :-

किशोरावस्था आवेग जोश संवेदनशीलता व उत्साह से भरपूर एक परिवर्तन की अवस्था हैं। इस उम्र में शरीर आकार अनुपात आकृति शरीर क्रियाओं की दृष्टि से ही नहीं बदलता हैं बल्कि रूचियों अभिवृत्तियों और व्यवहार के तरीकों से भी बदलता है। अत: उनके लिये चिन्ता, भय, तनाव एवं अस्थिरता का प्रदर्शन स्वाभाविक हैं तथा जब किशोरावस्था में बालक-बालिकाएँ महाविद्यालय में प्रवेश करते हैं उनके सामने कई विपरीत परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। जिनसे उन्हें समायोजन करना पड़ता हैं। जो इन परिस्थितियों में परिवार, स्वास्थ्य, समाज, संवेगिक तथा शिक्षा के साथ अपने आप को समायोजित करना किशोर तथा किशोरियों के लिए एक चुनौती होती हैं, आइजनेक के अनुसार - ''समायोजन वह अवस्था है जिसमें एक ओर व्यक्ति की आवश्यकताएँ तथा दूसरी ओर वातावरण के अधिकारों में पूर्ण संतुष्टि होती हैं। अथवा यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा इन दो अवस्थाओं में सामंजस्य प्राप्त होता है ''।

संदर्भ साहित्य की विवेचना:-

Ray Ekka and Ara (2011) -के शोध अनुसार बालकों की अपेक्षा बालिकाओं का समायोजन उच्च पाया गया जबकि Lama (2010) - के शोध अनुसार किशोर बालक-बालिकाओं की अधिक समायोजित पाये गये । Enochs and Roland (2006) - के शोध अनुसार किशोर बालक-बालिकाओं की अपेक्षा अधिक सामाजिक रूप से समायोजित पाये गये। Rahum Tullah (2007) - के शोध अनुसार किशोर बालक-बालिकाओं की अपेक्षा अधिक संवेगात्मक रूप से समायोजित पाये गये।Denir Urbery (2004) - के शोध अनुसार किशोरों की अपेक्षा किशोरियाँ अधिक संवेगात्मक रूप से समायोजित पाई गई। शोध का उद्देश्य - किशोर बालक तथा बालिकाओं का समायोजन का स्तर ज्ञात करना।

चर -

1. **स्वतन्त्र चर -** लिंग (किशोर-किशोरियों) का प्रभाव उनके विभिन्न क्षेत्रों के समायोजन (घर, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज, संवेग) ।
2. **आश्रित चर -** प्रस्तुत शोध में किशोर तथा किशोरी आश्रित चर है, तथा किशोर-किशोरी महाविद्यालय के छात्र-छात्राएँ ही लिए गए है।

उपकल्पना - ''विभिन्न समायोजन पर किशोर किशोरियों में कोई सार्थक प्रभाव नहीं होगा'' ।

निदर्शन विधि :-

अध्ययन हेतु निदर्शन चयन हेतु देव निदर्शन उद्देश्यपूर्ण सुविधानुसार निदर्शन चयन विधि का प्रयोग किया गया। शोध अध्ययन क्षेत्र के रूप में नीमच जिले के महाविद्यालयों का चुनाव किया गया। शोध में महाविद्यालय में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं को ही लिया गया।

निदर्शन आकार एवं वर्गीकरण

कुल प्रतिदर्श (40)

↓

किशोर(20) किशोरियाँ(20)

शोध यंत्र-शोध अध्ययन हेतु प्रो. ए.के.पी. सिन्हा (पटना) एवं प्रो. आर.पी. सिंह (पटना) द्वारा निर्मित I Adjustment inventory for college students परीक्षण का प्रयोग किया गया।

तथ्य संकलन विधि :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राथमिक स्त्रोत के लिए I Adjustment inventory for college students परीक्षण का प्रयोग किया गया। तथ्यों को सांख्यिकी रूप से विश्लेषण करने के लिए औसत प्रतिशत, सांख्यिकी तकनीक का प्रयोग किया । (तथ्यों की सांख्यिकी तकनीक के विश्लेषण के लिये देखिए तालिका क्रमांक 1)

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 15 प्रतिशत किशोरियाँ तथा 25 प्रतिशत किशोरों का घर में श्रेष्ठ समायोजन कर पाते हैं तथा 25 प्रतिशत किशोरियाँ तथा 40 प्रतिशत किशोर घर में अच्छा समायोजन कर पाते हैं। 15 प्रतिशत किशोरियाँ तथा 20 प्रतिशत किशोर घर में मध्यम समायोजन कर पाते हैं। 45 प्रतिशत किशोरियाँ तथा 15 प्रतिशत किशोर घर में अत्यधिक असंतुष्ट पाये गये है। 25 प्रतिशत किशोर श्रेष्ठ समायोजित पाये गये। 55 प्रतिशत किशोर तथा 15 प्रतिशत किशोरियाँ स्वास्थ्य के प्रति अच्छी तरह समायोजित पाए गये। 10 प्रतिशत किशोर तथा 50 प्रतिशत किशोरियाँ स्वास्थ्य के प्रति मध्यम समायोजित पाए गये। 10 प्रतिशत किशोर तथा 15 प्रतिशत किशोरियों स्वास्थ्य के प्रति असंतुष्ट पाये गयें। 20 प्रतिशत किशोरियॉ स्वास्थ्य के प्रति अत्यधिक असंतुष्ट पाई गई।

5 प्रतिशत किशोर तथा 15 प्रतिशत किशोरियाँ समाज से श्रेष्ठ

* अतिथि विद्वान & ** सहायक प्राध्यापक (गृहविज्ञान) श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

समायोजन कर पाते है। 25 प्रतिशत किशोर तथा 40 प्रतिशत किशोरियाँ समाज से अच्छा समायोजन कर पाते है। 35 प्रतिशत किशोर तथा 10 प्रतिशत किशोरियाँ समाज से मध्यम समायोजित हो पाते है। 35 प्रतिशत किशोर समाज से असंतुष्ट पाये गये। जबकि 35 प्रतिशत किशोरियाँ समाज से अत्यधिक असंतुष्ट पाई गई। 5 प्रतिशत किशोरियाँ श्रेष्ठ संवेगिक समायोजित पाई गयी। तथा 35 प्रतिशत किशोर व 15 प्रतिशत किशोरियाँ संवेगात्मक रूप से अच्छे पाये गये। 45 प्रतिशत किशोर तथा किशोरियाँ मध्यम रूप से समायोजित पाये गये। 10 प्रतिशत किशोर तथा किशोरियाँ संवेगीक असंतुष्ट पाये गये। 10 प्रतिशत किशोर तथा 25 प्रतिशत किशोरियाँ अत्यधिक असंतुष्ट पाये गये।

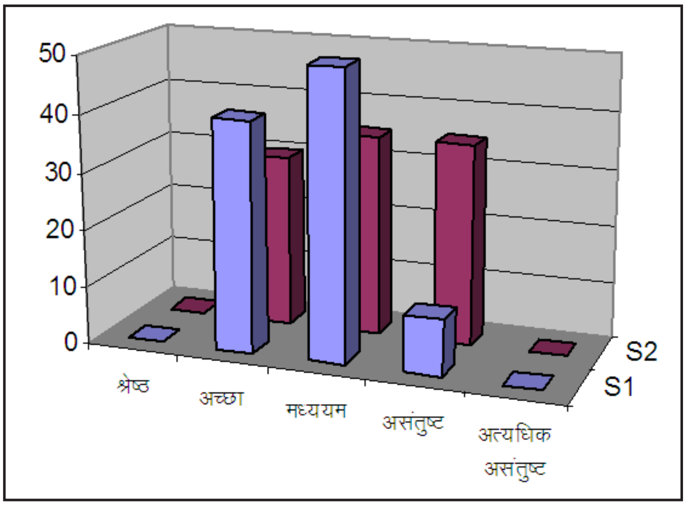

5 प्रतिशत किशोरियाँ शिक्षा के क्षेत्र में श्रेष्ठ संवेगिक समायोजित पाई गयी। 50 प्रतिशत किशोर व 20 प्रतिशत किशोरियाँ शिक्षा के क्षेत्र में अच्छा समायोजित पाए गये। 25 प्रतिशत किशोर तथा 40 प्रतिशत किशोरियाँ शिक्षा के क्षेत्र में मध्यम समायोजित पाये गये। 20 प्रतिशत किशोर तथा 10 प्रतिशत किशोरियाँ शिक्षा के क्षेत्र में असंतुष्ट पाये गये। 05 प्रतिशत किशोर तथा 25 प्रतिशत किशोरियाँ शिक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक असंतुष्ट पाये गये। चित्र अनुसार स्पष्ट होता है कि किशोरियों S2 की अपेक्षा किशोरो S1 का समायोजन श्रेष्ठ होता है।

निष्कर्ष :-

शोध अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि किशोरियों की अपेक्षा किशोरो का विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन श्रेष्ट है, तथा पूर्व Lama (2010) Enochs and Roland तथा RahunTullah के उपरोक्त परिणाम और पूर्व के द्वारा किये गये शोध अध्ययन मे परिणामों मे बहुत अधिक समानता पाई गई है, इस आधार पर हम निश्चित तौर पर कह सकते है कि विभिन्न क्षेत्रों मे किशोरियों की अपेक्षा किशोर ज्यादा श्रेष्ट रूप से समायोजित हो पाते है।

References :-

1. Denir Urbery (2004) - Friendship & adjustment among adolescents journal of experiemental child psychology volum 88.P.68-82.
2. Roland (2006) - Social adjustment of college freshment the importance of gendor and living environment college student journal march.
3. Rahamtullah (2007) - Adjustment among adolescents journal of social science research. 2:53:64.
4. Lama (2010) - Adjustment of college freshment 2: the importance of gendor and place of residence. International journal of psychologyicalstudies 2"1"142-150.
5. Roy Ekka and Ara (2011) - Adjustment among university students journal for social development. Vol.2.(2),ISDR.Ranchi.
6. श्रीमती गायत्री बर्मन एवं डॉ. शशि प्रभा जैन – किशोरावस्था, शिवा प्रकाशन, श्री गणेश मार्केट, खजूरी बाजार, इन्दौर
7. विरेन्द्र प्रकाश शर्मा – रिसर्च मेथडॉलॉजी, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
8. C.R. Kothari, Research Methodology, Methods & Techniques, Wishwa Prakashan

तथ्यों की सांख्यिकी तकनीक का विश्लेषण – तालिका क्रमांक-1

समायोजन श्रेणी	परिवार से समायोजन		स्वास्थ से समायोजन		समाज से समायोजन		संवेगो से समायोजन		शिक्षा से समायोजन	
	किशोर	किशोरियाँ	किशोर	किशोरियाँ	किशोर	किशोरियाँ	किशोर	किशोरियाँ	किशोर	किशोरियाँ
श्रेष्ठ	25%	15%	25%	-	5%	15%	-	5%	-	05%
अच्छा	40%	25%	55%	15%	25%	40%	35%	15%	50%	20%
मध्यम	20%	15%	10%	50%	35%	10%	45%	45%	25%	40%
असंतुष्ट	-	-	10%	15%	35%	-	10%	10%	20%	10%
अत्यधिक असंतुष्ट	15%	45%	-	20%	-	35%	10%	25%	05%	25%

****

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विभिन्न अभिकरणों द्वारा संचालित विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के कार्यसंबंधी प्रतिबल का तुलनात्मक अध्ययन

अलका नायक *

सार :- समाज में शिक्षक को छात्र का भविष्य निर्माता कहा गया है। अत: समाज में शिक्षक की भूमिका निर्विवाद रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब शिक्षक ही विभिन्न कारणों से तनावग्रस्त रहते हैं तब इनके दुष्परिणाम न सिर्फ छात्र एवं परिवार बल्कि पूरे समाज को प्रभावित करते है। कुछ कारण जैसे कार्य की अधिकता, अनिश्चित अवस्था, संघर्ष, राजनैतिक दबाब सहकर्मी से संबंध ठीक न होना स्वभाविक, अति उत्साही, लाभ से वंचित, जबाबदेही, कम आंकलन से शिक्षक अत्यधिक तनावग्रस्त रहते है तथा छात्रों को ठीक तरह से शिक्षित नही कर पाते हैं। लंबे समय तक तनावग्रस्त रहने के बाद शारीरिक व मानसिक बीमारियों की चपेट में आ जाते है। वर्तमान परिपेक्ष्य में समाज की स्थिति को देखते हुए हमारी सर्वोपरि आवश्यकता यह होगी चाहिए कि शिक्षक की तनावपूर्ण स्थितियों को कम या दूर करने के प्रयास किये जाये। जहां तक संभव हो शिक्षक को सिर्फ शिक्षण कार्य संबंधी जिम्मेदारी ही सौंपी जाये।

प्रस्तावना :-

चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में प्रतिबल शब्द का प्रयोग कठिनाई, मुश्किल, प्रतिकूल परिस्थिति,को दर्शाने के लिए किया जाता था। सत्रहवीं शताब्दी में प्रतिबल शब्द का प्रयोग हुक ने शरीर विज्ञान के संदर्भ में किया लेकिन इसकी वैज्ञानिकता बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में की गई वह घटना या स्थिति जो हमारे शरीर अथवा मन की संरचना में किसी प्रकार की बाधा या डर उत्पन्न करती है, प्रतिबल कहलाती है।

कोलमैन के अनुसार :-

''कोई भी परिस्थिति जो व्यक्ति पर दबाव डालती है जिसके कारण जिसके कारण व्यक्ति को समायोजन करना होता है, यही प्रतिबल है।''

नॉर्मन टेंलैण्ट के अनुसार :-

''प्रतिबल से दबाव का बोध होता है, जिससे व्यक्तित्व के पर्याप्त रूप से कार्य करते रहने की योग्यता एक प्रकार से संकटग्रस्त हो जाती है।

उद्देश्य :-

01. विभिन्न विद्यालयों के समस्त पुरूष एवं स्त्री शिक्षकों में कार्य संबंधी प्रतिबल का अध्ययन करना।
02. विभिन्न विद्यालयों के महिला शिक्षकों में कार्य संबंधी प्रतिबल का अध्ययन करना।
03. विभिन्न विद्यालयों के पुरूष शिक्षको में कार्य संबंधी प्रतिबल का अध्ययन करना।
04. विभिन्न विद्यालयों के पुरूष एवं स्त्री शिक्षको में कार्य संबंधी प्रतिबल का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाऐं :-

01. विभिन्न विद्यालयों के समस्त पुरूष शिक्षको एवं स्त्री शिक्षकों के कार्य संबंधी प्रतिबल (Occupational stress) स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।
02. नगर निगम विद्यालय के समस्त पुरूष एवं स्त्री शिक्षको के कार्यसंबंधी प्रतिबल स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।
03. सी.बी.एस.ई. विद्यालयों के समस्त पुरूष शिक्षकों एवं स्त्री शिक्षको एवं स्त्री शिक्षको के कार्यसंबंधी प्रतिबल स्तर में सार्थक अंतर सही है।
04. एम.पी.बोर्ड विद्यालय के समस्त पुरूष शिक्षको एवं स्त्री शिक्षको के कार्य संबंधी प्रतिबल स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।
05. वैदिक विद्यालय के समस्त पुरूष शिक्षको एवं स्त्री शिक्षकों के कार्य संबंधी प्रतिबल स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।

शोध विधि :- वर्तमान शोध में पूर्णता लाने के लिए प्रतिदर्श सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। कार्य संबंधी प्रतिबल मापन हेतु डॉ. ए.के. श्रीवास्तव और डॉ. ए.पी.सिंह की प्रमाणिक Occupational stress intex का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श :- इस शोधकार्य के प्रतिदर्श हेतु सागर शहर के विभिन्न विद्यालयों के उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के 200 शिक्षको को लिया गया हैं। चर के अनुसार प्रतिदर्श विभाजन इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :-

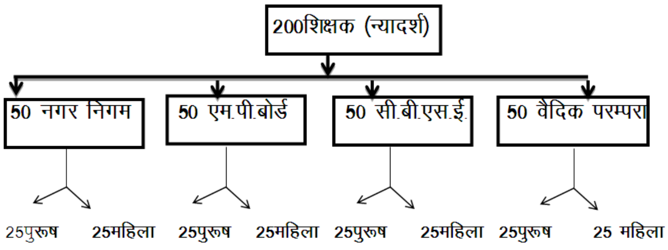

प्रदत्त संकलन- विद्यालयों में उपलब्ध शिक्षको को परीक्षण पत्रक प्रदान किये गये तथा निर्देश के बाद ही पत्रक भरने को कहा गया।

फलांकन एवं सारणीयन -पूरी तरह से भरी उत्तर पुस्तिकाओं का पूर्व निर्धारित फलांकन विधि से मूल्यांकन किया गया। तदुपरांत आंकडों का सारणीयन किया गया।

सांख्यिकीय विवेचना - प्रदत्त वर्गीकरण, सारणीयन के पश्चात् निम्न सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया। मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, मध्यमानों में अन्तर की सार्थकता। टी-मूल्य हेतु विश्वसनीयता स्तर .01 तथा .05 रखा गया।

परिणाम एवं व्याख्या-प्रस्तुत शोध के उपरांत जो मुख्य तथ्य सामने आये वे इस प्रकार है :-

1. विभिन्न विद्यालयों के समस्त शिक्षकों मे से 15.50 प्रतिशत शिक्षको का प्रतिबल स्तर उच्च तथा 9.5 प्रतिशत शिक्षको का प्रतिबल स्तर निम्न पाया गया। 75 शिक्षको का प्रतिबल स्तर औसत पाया गया।
2. नगर निगम विद्यालय के समस्त शिक्षको में से 6 प्रतिशत शिक्षको में उच्च प्रतिबल स्तर तथा 50 प्रतिशत शिक्षको में निम्न प्रतिबल स्तर तथा 39 प्रतिशत शिक्षको में औसत प्रतिबल स्तर पाया गया।
3. सी.बी.एस.ई. विद्यालय के समस्त शिक्षको में से 16 प्रतिशत शिक्षको में उच्च प्रतिबल स्तर, 28 प्रतिशत शिक्षको में निम्न प्रतिबल स्तर एवं

* शोधार्थी, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

56 प्रतिशत शिक्षको में औसत प्रतिबल स्तर पाया गया।

4. एम.पी.बोर्ड विद्यालय के समस्त शिक्षको में से 22 प्रतिशत शिक्षको में उच्च प्रतिबल स्तर 12 प्रतिशत शिक्षको में निम्न प्रतिबल स्तर तथा 66 प्रतिशत शिक्षको में औसत प्रतिबल स्तर पाया गया।
5. वैदिक विद्यालय के समस्त शिक्षको में से 46 प्रतिशत शिक्षको में उच्च प्रतिबल स्तर 24 प्रतिशत शिक्षकों में निम्न प्रतिबल स्तर तथा 30 प्रतिशत शिक्षको में औसत प्रतिबल पाया गया।

वैदिक विद्यालय के अधिकतम शिक्षको में उच्च प्रतिबल स्तर का कारण:-वैदिक विद्यालय के 50 प्रतिशत शिक्षको में से 23 शिक्षको में (46 प्रतिशत शिक्षक) उच्च प्रतिबल स्तर पाया गया इसका कारण है कि :-

1. वैदिक विद्यालय की महिला शिक्षको में रोलऑवर संबंधी प्रतिबल स्तर सर्वाधिक पाया गया क्योंकि शिक्षको से बहुत सारी प्रत्याशाऐं की जाती है। जिन्हें वे पूरा नहीं कर पाते।
2. दूसरा कारण अंडर पार्टीसीपेशन प्रतिबल क्षमता का उच्च स्तर पाया गया अर्थात् वैदिक विद्यालयो में शिक्षको से मशीन की तरह कार्य लिया जाता है संस्था के किसी भी निर्णय में उन्हें शामिल नहीं किया जाता है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण-

1. विभिन्न विद्यालयों के समस्त पुरूष शिक्षको एवं स्त्री शिक्षकों के कार्य संबंधी प्रतिबल (Occupational stress) स्तर में सार्थक अंतर नही है।

विभिन्न विद्यालयों के समस्त पुरूष एवं स्त्री शिक्षको में कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन (सारणी क्रमांक 1)

Group	No.	Mean	SD	SE	SED	Mean difference	tv	सार्थकता स्तर	
								0.05	0.01
पुरूष	100	130.5	18.76	1.87	2.87	7.2	2.50	1.97	2.60
महिला	100	123.3	20.59	2.05				सार्थक अंतर है।	सार्थक अंतर नही है।

उक्त सारणी क्र . 1 से स्पष्ट विभिन्न विद्यालयों के पुरूष एवं स्त्री शिक्षको के कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता का टी-मूल्य 2.50 है तथा टी तालिका को देखने से ज्ञात होता है। कि 200 पदों के लिए 0.05 स्तर पर टी-मूल्य 1.97 तथा 0.01 स्तर पर टी-मूल्य 2.60 है। अत: प्रदत्तों से प्राप्त टी-मूल्य तालिका के 0.05 स्तर पर टी-मूल्य से अधिक है तथा 0.01 स्तर पर टी-मूल्य से कम है अत: अंतर आंशिक रूप से सार्थक नही है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि विभिन्न विद्यालयों के पुरूष व स्त्री शिक्षकों के कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता में आंशिक समानता है।

अत: परिकल्पना एक की पुष्टि आंशिक रूप से स्वीकृत है। 2 नगर निगम विद्यालय के समस्त पुरूष एवं स्त्री शिक्षको के कार्यसंबंधी प्रतिबल स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।

नगर निगम विद्यालय के पुरूष एवं स्त्री शिक्षको में कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन (सारणी क्रमांक 2)

Group	No.	Mean	SD	SE	SED	Mean difference	tv	सार्थकता स्तर	
								0.05	0.01
पुरूष	25	131.7	16.85	3.37	4.81	3.2	0.66	2.01	2.68
महिला	25	128.5	17.20	3.44				सार्थक अंतर नहीं है।	सार्थक अंतर नही है।

उक्त सारणी क्रमांक 2 से स्पष्ट है कि नगर निगम विद्यालय के पुरूष एवं स्त्री शिक्षकों के कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता का टी-मूल्य 0.66 है तथा टी तालिका को देखने से ज्ञात होता है कि 50 पदों के लिए 0.05 स्तर पर टी-मूल्य 2.01 तथा 0.01 स्तर पर टी-मूल्य 2.68 है। अत: प्रदत्तो से प्राप्त टी-मूल्य तालिका के दोनों स्तरों के टी-मूल्य से कम है। अत: सार्थक अंतर नहीं है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नगर निगम विद्यालय के पुरूष व स्त्री शिक्षको के कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता में समानता है। अत: परिकल्पना 2 की पुष्टि होती है। इसे स्वीकृत किया जाता है। सी.बी.एस.ई. विद्यालय के समस्त स्त्री शिक्षक एवं पुरूष शिक्षक एवं पुरूष शिक्षको के प्रतिबल स्तर में सार्थक अंतर नहीं हैं।

सी.बी.एस.ई. बोर्ड विद्यालय के पुरूष एवं स्त्री शिक्षको में कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन (सारणी क्रमांक

Group	No.	Mean	SD	SE	SED	Mean difference	tv	सार्थकता स्तर	
								0.05	0.01
पुरूष	25	134.5	16.97	3.39	5.21	8.0	1.53	2.01	2.68
महिला	25	126.5	19.77	3.95				सार्थक अंतर नही है।	सार्थक अंतर नही है।

उक्त सारणी क्र . 3 से स्पष्ट सी.बी.एस.ई. विद्यालय के पुरूष एवं स्त्री शिक्षको के कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता का टी-मूल्य 1.53 है तथा टी तालिका को देखने से ज्ञात होता है। कि 50 पदों के लिए 0.05 स्तर पर टी-मूल्य 2.01 तथा .01 स्तर पर टी मूल्य 2.68 है। अत: प्रदत्तों से प्राप्त टी-मूल्य तालिका के दोनों स्तरों के टी-मूल्य से कम है। अत: सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी क्रमांक 3 से स्पष्ट है कि सी.बी.एस.ई.विद्यालय में समस्त स्त्री शिक्षक एवं पुरूष शिक्षको के कार्य संबंधी प्रतिबल में सार्थक अंतर नहीं है।

अत: परिकल्पना 3 की पुष्टि होती है इसे स्वीकृत किया जाता है। 04 एम.पी.बोर्ड विद्यालय के समस्त स्त्री शिक्षक एवं पुरूष शिक्षको के प्रतिबल स्तर में सार्थक अंतर नहीं हैं।

एम.पी.बोर्ड विद्यालय के पुरूष एवं स्त्री शिक्षको में कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन (सारणी क्रमांक 4)

Group	No.	Mean	SD	SE	SED	Mean difference	tv	सार्थकता स्तर	
								0.05	0.01
पुरूष	25	126	16.43	3.28	4.32	10.0	2.31	2.01	2.68
महिला	25	116	14.07	2.81				सार्थक अंतर है।	सार्थक अंतर नही है।

उक्त सारणी क्र . 4 से स्पष्ट एम.पी.बोर्ड विद्यालय के पुरूष एवं स्त्री शिक्षको के कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता का टी-मूल्य 2.31 है तथा टी तालिका को देखने से ज्ञात होता है। कि 50 पदों के लिए 0.05 स्तर पर टी-मूल्य 2.01 तथा 0.01 स्तर पर टी मूल्य 2.68 है। अत: प्रदत्तों से प्राप्त टी-मूल्य तालिका 0.05 स्तर से अधिक तथा 0.01 स्तर से कम पाई गई अत: 0.05 स्तर पर सार्थक अंतर है 0.01 स्तर पर सार्थक अंतर नहीं है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि एम.पी.बोर्ड विद्यालय के पुरूष एवं स्त्री शिक्षको की कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता में आंशिक असमानता है।

असमानता का कारण -

एम.पी.बोर्ड विद्यालय के पुरूष शिक्षकों में strenuous working संबंधी प्रतिबल क्षमता स्त्री शिक्षकों की अपेक्षा अधिक पाई गई तथा Under Participation प्रतिबल क्षमता स्त्री शिक्षकों में अधिक पाई गई। Unreasonable group के कारण पुरूषों महिलाओं की तुलना में अधिक अंतर पाया गया। 5 वैदिक विद्यालय के समस्त पुरूष शिक्षको एवं स्त्री

शिक्षको के कार्य संबंधी प्रतिबल स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।

वैदिक विद्यालय के पुरूष एवं स्त्री शिक्षकों में कार्य संबंधी प्रतिबल

Group	No.	Mean	SD	SE	SED	Mean difference	tv	सार्थकता स्तर	
								0.05	0.01
पुरूष	25	126.6	19.89	3.97				2.01	2.68
महिला	25	128.8	21.37	4.27	5.83	2.2	0.37	सार्थक अंतर नहीं है।	सार्थक अंतर नहीं है।

उक्त सारणी क्र . 5 से स्पष्ट वैदिक विद्यालय के पुरूष एवं स्त्री शिक्षको के के कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता का टी-मूल्य 0.37 है तथा टी तालिका को देखने से ज्ञात होता है। कि 50 पदों के लिए 0.05 स्तर पर टी-मूल्य 2.01 तथा .01 स्तर पर टी मूल्य 2.68 है। अत: प्रदत्तों से प्राप्त टी-मूल्य तालिका के दोनों स्तरों के टी-मूल्य से कम है। अत: सार्थक अंतर नही है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि वैदिक विद्यालय के पुरूष एवं स्त्री शिक्षको की कार्य संबंधी प्रतिबल क्षमता में समानता है।

निष्कर्ष :-

सभी विद्यालयों के कार्यसंबंधी प्रतिबल का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह पाया गया कि वैदिक पद्धति पर आधारित विद्यालयों में कार्यसंबंधी प्रतिबल Occupational Stress स्तर सर्वाधिक (46 प्रतिशत शिक्षक) पाया गया जिसके प्रमुख कारण (Role overload, Underparticipation, Unprofitability) संबंधी प्रतिबल क्षमता का स्तर उच्च पाया जाना था।

संदर्भ

- Alexander-stamations antoniou, Aikaterini Ploumpi, Marina Nta occupational Stress and Professional Burnout in Teachers of Primary and Secondary Education: The Role of Coping Strategies Authors (S) psychology 4,349-355, doi 10, 4236/psych.2013 43a051.
- Anderson , V.L. , Levinson, E.M., Barker, W., & Kiewra, K.R. (199). The effects of meditation on teacher perceived occupation stress, state and ttait anxiety,and burnout school Psychology Quatrerly, 14(I), 3-25.
- Ballet, K., & Kelchtermans. G. (2002) Intensification and beyond: Bringing Professional development back in the picture paper presented at the paper presented at the annual Meeting of the Educational Research Association. New Oriens, LA. April 1-5 , 2002.
- Brouwers, A., Evers, W.J.G., & Tomic, W. (2001). Self-efficacy in elicting social support and burnout among secondary school teachers. Journal of applied social psychology, 31(7), 1474-1491.
- Carlyle, D.E.E. (2002). Emotion and stress-related illness among secondary Teachers. Dissertation Abstracts International. C: Worldvide. 63(3), 415-C.
- DP Kaystha, R Kayastha, Study of occupational Stress on job satisfaction among Teachers with particular reference to corporate, higher Secondary school of nepal: empirical study.
- Dr. G. Loknandha Reddy and R. Vijaya Anuradha, Occupational Stress of Higher Secondary Teachers Working Vellore District.
- Dussault, M., Deaudelin. C., Royer, N. & Liselle. J. (1999), Professional isolation and occupational stress in teachers Psychological Reports. 84(3), 943-946.
- Easthope. C., & Easthope. G. (2000). Internsification, extension and complexity of teachers workload, British Journal of Sociology of Education. 21 (1). 43-58.
- Farwell, R.J. (1999). A Study of K-12 teachers in small school districts their levels of stress. the source of stress and the effects of initiating coping strategies. Dissertation Abstracts International A: The Humanities and social Sciences, 60(4), 1074-A.

****

बालिका का घटता अनुपात : चिंतनीय विषय

डॉ. रंजू गुप्ता *

किसी भी देश की जनसंख्या में स्त्री पुरूष का लिंग अनुपात काफी महत्वपूर्ण है। जो जन्मदर और मृत्यूदर को प्रभावित करता है। इससे विवाह दर एवं बच्चों की जनसंख्या भी प्रभावित होती है। तथा नैतिक व सामाजिक बुराइयां पैदा हो जाती हैं। स्त्री पुरुष की गणना 1000 के आधार पर की जाती है। इसका अर्थ यह है कि 1000 पुरूषों के पीछे कितनी स्त्रियां हैं। 2001 की गणना के अनुसार म. प्र. में प्रति 1000 पुरूष के पीछे 921 स्त्रियां हैं।

2011 की गणना के अनुसार म. प्र. में प्रति 1000 पुरूष के पीछे 921 स्त्रियां हैं। एक अध्ययन के अनुसार 130 देशों में भारतीय महिलाओं कि स्थिति 99वे स्थान पर पाई गई। इसका सीधा तात्पर्य है कि भारतीय समाज में महिलाओं को अभी तक निम्नस्तर ही प्रदान किया गया है परिणाम स्वरूप भारतीय नारी वह सम्मान नहीं प्राप्त कर सकी जिसकी वह वास्तव में हकदार है यह कहना गलत नहीं होगा कि गर्भ से लेकर कब्र तक वह उपेक्षित एवं तमाम वर्जनाओं की शिकार है ।

एक नारी का बाल्यकाल उसके जीवन की नीवं होती है जो उसके सम्पूर्ण जीवन को निर्धारित करता है। किन्तु दुर्भाग्यवश भारत सहित अनेक दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों में नारीयां अनेक समस्याओं से ग्रसित हैं।

उद्देश्य :– म. प्र. में बालिकाओं की संख्या कम होने के कारणों को जानकर उनसे होने वाली आर्थिक, नैतिक, सामाजिक, राजनीति व सांस्कृतिक, जनांककीय समस्याओं पर प्रकाश डालना तथा जागरूकता लाकर इस अनुपात में सुधार लाना है।

परिकल्पना :– यह परिकल्पना की गई कि स्त्रियों की पुरुषों से कम होने से विवाह दर, बच्चों की संख्या भी प्रभावित होती है, जो आगे चलकर एक बड़ी जनांककीय समस्या बन सकती है। कारणों पर प्रकाश डालकर इसके समाधान हेतु समाज को प्रेरित करना एवं लड़कियों को भी जीने का अधिकार देना सच्ची मानवीयता एवं सामाजिकता है।

अध्ययन की प्रविधि :– इस अध्ययन में द्वितियक समंकों को लिया गया है और परिणामों की विवेचना की गईं

म. प्र. में लिंगानुपात

1901	1911	1921	1931	1941	1951	1961	1971	1981	1991	2001	2011
990	986	974	973	970	967	953	943	941	932	921	930

म. प्र. में यह अनुपात क्रमशः घटता हुआ है क्योंकि 1901 में यह अनुपात 990 था जो 2001 में 921 रह गया। 2001 के जनगणना आयुक्त ने इस दु:खद तथ्य को पहचाना है कि बहुत सारे राज्यों में स्त्री पुरूष अनुपात में गिरावट आई। केवल त्रिपुरा, मिजोरम ऐसे राज्य हैं जहां दोनों उम्र समूहों 0-6 व 7 साल से अधिक में लिंग अनुपात में वृद्धि हुई है। 0-6 उम्र समूह के लिए लिंग अनुपात में सबसे दु:खद कमी पंजाब (798), हरियाणा (819), हिमाचल प्रदेश (896), चंडीगढ़ (845), गुजरात (882) आई। एक अध्ययन के अनुसार भारत में 140 लड़कों के मुकाबले 100 लड़कियां पैदा होती हैं 15-16 वर्ष के बाद यह अन्तर लगभग 100-100 के बराबर हो जाता है। इन आकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों में प्रतिरक्षा शक्ति पुरूषों की अपेक्षा अधिक होती है। ईश्वर से भले ही स्त्रियों को स्वयं को बचाने के लिए प्रतिरोधक शक्ति अधिक प्राप्त है। परन्तु कन्या भ्रूण स्वयं को अपनों से ही नहीं बचा पाती । भारत में प्रतिवर्ष 8 लाख से अधिक कन्या भ्रूण हत्याऐं होती हैं। प्रारंभिक उम्र समूह में असंतुलन की भरपाई करना असंभव है और यह काफी समय तक जनसंख्या पर प्रतिकूल प्रभाव डालती रहेगी।

परिणाम :–म. प्र. में महिलाओं की संख्या कम होने के निम्न कारण सामने आये हैं–

1. **शिक्षा में कमी :–** शिक्षा किसी भी देश के निवासियों की जागरूकता प्रबुद्धता व सामाजिक विकास का मापदण्ड होती है। म. प्र. की स्थिति भी अत्यन्त निराशाजनक है। पुरूषों की तुलना में स्त्रियों व शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत कम साक्षरता है। केरल, मिजोरम, में भ्रुण हत्या का प्रतिशत सबसे कम है इसका कारण वहां साक्षरता का प्रतिशत सर्वाधिक है।
2. **वंश चलाने एवं अंतिम संस्कार की चाह :–** आज भी 21 वीं सदी में वंश को चलाने के लिए लड़के का होना अनिवार्यहै। भारतीय समाज में अंतिम संस्कार का अधिकार बेटे को ही दिया गया है। तभी मोक्ष की प्राप्ति होती है इस वजह से भी बालिका भ्रूण हत्या की जाती है।
3. **कुपोषण, कम देखभाल एवं मातृ–मृत्युदर अधिक होना :–** महिलाओं की संख्या कम होने का एक कारण यह भी माना गया है। यद्यपि शहरों में जागरूकता, शिक्षा का स्तर बढ़ने जीवन स्तर एवं खानपान में सुधार होने से महिलाओं की मृत्युदर घटी है। चिकित्सा सुविधाओं की कमी एवं उपरोक्त सभी कारणों में ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी महिलाओं की मृत्युदर अधिक है।
4. **बुढ़ापे में असुरक्षा :–** वर्तमान समय में संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है। फिर भी आज बुढ़ापे में लाठी का सहारा लड़के को ही माना जाता है भले ही वह निकम्मा हो। सुरक्षा का भाव लड़कों से ही आता है।
5. **दहेज प्रथा :–** भ्रूण हत्या का प्रमुख कारण भारतीय समाज में दहेज प्रथा का प्रचिलित होना है। लड़कियों को पराया धन माना गया पढ़ा लिखा कर उसकी शादी करना है शादी में दहेज देना अनिवार्य है। इसलिए बालिका भ्रुण हत्या कर दी जाती है।
6. **पारिवारिक दबाव :–** महिलाओं ने यह स्वीकार किया है कि उन पर दबाव रहता है कि वे लड़कों को जन्म दे ताकि वंश चले तथा बुढ़ापे में उनका सहारा बनें।
7. **भ्रूण हत्या :–** स्वयं महिलाएँ यह स्वीकार करती हैं कि वे अधिक लड़कियां नहीं चाहती हैं। गरीबी, मंहगाई, दहेज प्रथा आदि के कारण अधिक लड़कियों का होना समस्या बन जाता है। विवाह के बाद लड़की के ससुराल चले जाने से लड़का ही उनका अंतिम सहारा माना जाता है इसलिए लड़की के गर्भ में होने का पता चलते ही गर्भपात (भ्रूण हत्या) करा लेती है। गर्भपात भ्रूण हत्या धार्मिक दृष्टि से प्रतिबंधित है। असामान्य रूप से गिरते लिंगानुपात से चिंतित सरकार ने अब धर्म गुरूओं की शरण

* सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञान, नेहरू शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर मालवा, जिला शाजापुर (म.प्र.) भारत

में जाने का फैसला किया है। अत्यधिक गुरू श्री - श्री रविशंकर माता अमृतानंदजी, आसाराम, बाबा रामदेव को पत्र लिखकर बेटियों को बचाने का अनुरोध किया है।

सरकार का मानना है कि धर्मगुरू अगर यह अभियान चलाते हैं तो निश्चित रूप से लोगों के मापदण्ड बदलेंगे और लोग बेटियों को लेकर संवेदनशील होंगे। मंत्रालय कन्या भ्रूण हत्या की हानियों के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिए 11 वीं पंचवर्षीय योजना में विशेष अभियानों और योजनाओं पर भी काम कर रहा हैं।

समस्याएँ :-

1. स्त्री - पुरूष अनुपात बिगड़ने से जनांककीय समस्याएँ बढ़ती हैं जिसके कारण नैतिक व सामाजिक समस्याएँ बढ़ रही हैं।
2. विवाह के इच्छुक जाति बंधन तोड़ने व सामाजिक बहिष्कार हेतु तैयार हो जाते हैं इससे कई जटिल समस्याएँ पैदा हो जाती है।
3. विवाह के लिए स्त्रियों की संख्या घटती जा रही है जिससे बलात्कार के मामले बढ़ रहे हैं।
4. परिवार व समाज में बहु पति प्रथा का प्रचलन बढ़ने से बहुत सामाजिक समस्याएँ बढ़ रही हैं।
5. प्रकृति में हमेशा संतुलन बना रहता है मनुष्य को कोई अधिकार नहीं हैं कि इस संतुलन को बिगाड़े।

सुझाव :-

1. महिला भ्रूण हत्या पर पूरे प्रतिबंध के साथ ऐसा करने वाले डॉक्टरों को कठोर दण्ड दिया जाये।
2. महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बनाया जाये ताकि वे अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति एवं आत्म विश्वास पैदा हो सके और वे लड़का - लड़की के भेद न कर सकें।
3. बालिका शिक्षा का प्रतिशत बढ़ना चाहिए उन राज्यों में जहां शिक्षा का प्रतिशत अधिक है वहां कन्या भ्रूण हत्या का प्रतिशत कम है।
4. टी. वी. नुक्कड़ नाटकों, पत्र - पत्रिकाओं, धर्मगुरूओं के माध्यम से लड़कियों का महत्व बताया जाये।
5. स्वास्थ्य सुविधाएँ महिलाओं के लिए बढ़ाई जाये, गरीबी कम की जाये।
6. समाज में महिलाओं को उचित स्थान एवं पारिवारिक निर्णयों में उनकी उचित भागीदारी स्वीकार की जाये। उन्हें बराबरी का दर्जा दी जाये ताकि प्राचीन समय में जिस ऊँचाई पर नारी का स्थान था वह पुन: वापस प्राप्त किया जा सके।
7. बाल विवाह, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियों को पूर्णत: समाप्त किया जाये।
8. नारी -नारी की दुश्मन बन जाती है। कई बार लड़की के जन्म पर मातम छा जाता है। आवश्यक है कि इस विचार धारा में परिवर्तन किया जाये।
9. हमारे समाज में किसी महिला को पुत्रियाँ पैदा होने पर हेय दृष्टि से देखा जाता है जबकि विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि लड़का अथवा लड़की पैदा करने के पीछे केवल पुरूष ही जिम्मेदार होता है अत: समाज में इसका भरपूर प्रचार प्रसार किया जाना चाहिए।
10. प्रिन्ट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया इस दिशा में सकारात्मक भूमिका निभायें।
11. बालिकाओं को समस्त शिक्षा (उच्च शिक्षा भी) नि:शुल्क प्रदान करना।
12. लिंगभेद को पूर्णत: समाप्त करने के लिए समाज में जागरूकता अभियान चलाए जाएँ। जबतक कि सम्पूर्ण समाज जागरूक नहीं होगा ।

यह घिनौना कृत्य बंद नहीं होगा। समाज में नारी के विकास की समुचित व्यवस्थाएँ की जाएँ, तमाम तरह के प्रतिबंध हटाए जाएँ समाज को अपनी मान्यता एवं दृष्टिकोण में परिवर्तन करना चाहिए ताकि वे बहु आयामी व्यक्तित्व को विकसित कर सकें। नारी के विकास से ही भारत अपनी प्रतिष्ठा, सम्मान, गौरव - गरिमा को पुन: प्राप्त कर सकता है। स्वामी विवेकानंद ने उचित कहा है '' स्त्रियों कि दशा में सुधार न होने तक विश्व का कल्याण उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार पक्षी का एक पंख से उड़ना।

संदर्भ :-

1. मध्य भारती, 5 3 मार्च 2003 पेज 73-80
2. दैनिक भास्कर 3 अगस्त 06, पेज 06
3. भारतीय नारी ! वर्तमान समस्यां और भावी समाधान डॉ. आर. जी. तिवारी एवं डॉ. डी. जी. शुक्ला पेज 24 - 25
4. अखण्ड ज्योति, नवम्बर 2004 पेज नं. 20
5. पत्रिका-परिवार 04 जनवरी 2012
6. जनांकी के मूल तत्व शिव नारायण गुप्त वृन्दा पब्लिकेशन

****

स्वास्थ्य संबंधी योजनाएँ एवं महिला सशक्तिकरण
(जननी सुरक्षा योजना खण्डवा जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. गीताली सेनगुप्ता *

वर्ष 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गया। इस वर्ष सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं के उत्थान तथा विकास के लिए अनेक गतिविधियाँ संचालित की गयी। कोपनहेगन में 1975 को प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन आयोजित किया गया। वस्तुत: नारी सशक्तिकरण का प्रश्न बहुआयामी है, किन्तु मूल रूप से यह महिलाओं के बुनियादी मानव अधिकारों का प्रश्न है। सर्वप्रथम महिला को मानव होने के नाते समान मानवाधिकार प्राप्त हो ताकि वह अपने अस्तित्व को स्थापित कर शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं राजनीति के क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त कर आत्मनिर्भर होकर आत्मविश्वास एवं सम्मान के साथ जीवन यापन करने योग्य बन सके। नवीनतम सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि भारत की 95: महिलाएँ कुपोषण की शिकार है। प्रसव पीडा के दौरान रक्त की अल्पता के परिणाम स्वरूप भी अनेक महिलाएँ मौत की गोद में समा जाती है। विकसित देशों की तुलना में भारतीय महिलाओं की गर्भावस्था के कारण मृत्यु की संभावना सौ गुना अधिक होती है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष एक लाख से अधिक महिलाएँ गर्भधारण के कारण मर जाती है। मातृ मृत्यु एवं शिशु मृत्यु न केवल परिवार के लिये अतीव पीडा की बात है बल्कि संपूर्ण समाज के लिए एक त्रासदी है।

भारत संयुक्त राष्ट्र (यू एन) द्वारा जारी एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार प्रत्येक 10 मिनट में एक मातृमृत्यु होती है और छह हर घंटे में रिकार्ड किया जाता है। रिपोर्ट के मुताबिक 2010 में भारत में मातृमृत्यु 57,000 थी। भारत एम एम आर के पक्ष में अच्छी तरह विकास कर रहा है। एम एम आर 1999 से 2009 के बीच मातृ मृत्यु में 38 फीसदी की गिरावट दर्ज की गई है।

वर्ष 2011-12 में रजिस्ट्रार जनरल और जनगणना आयुक्त के कार्यालय द्वारा हाल में जारी स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार मध्यप्रदेश में मातृमृत्यु अनुपात में 33 अंकों की कमी दर्ज की गई है। सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार ग्वालियर संभाग में गुना शिवपुरी, दतिया, अशोकनगर में 60 अंक की गिरावट दर्ज की गई है। मध्यप्रदेश में किए गए सर्वेक्षण में शिशु मृत्युदर में 2 अंकों की गिरावट देखी गई 2010-11 में 67 और 2011-12 में 65 शिशु मृत्यु देखी गई। 2010-11 में मध्यप्रदेश में 9000 से अधिक शिशुओं को मृत्यु के मुँह से बचाया गया, इसी वर्ष शिशु मृत्यु दर में पाँच अंक की गिरावट पंजीकृत किया गया है। पिछले पाँच साल के दौरान 25,000 शिशुओं को राज्य में बचा लिया गया। जन स्वास्थ्य विभाग ने वर्ष 2012 के लिए प्रति हजार 60 शिशु मृत्यु दर में कमी लाने के लिए लक्ष्य निर्धारित किया है। वर्तमान में नवजात गहन देखभाल इकाइयाँ 33 जिला अस्पतालों में उपलब्ध है। 2011 में मौजूदा इकाइयों में 29,446 नवजात शिशुओं को उपचार प्रदान किया गया 25,634 शिशुओं को मौत के मुँह से बचा लिया गया, इसके अतिरिक्त बीमार नवजात शिशुओं के उपचार के लिए 4 बिस्तर गहन देखभाल इकाइयों को भी चयनित कर सिविल अस्पतालों और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों में स्थापित किए जा रहे है।

मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में कमी लाने के लिए सरकार निरन्तर प्रयत्नशील है, आँकड़े यह साबित करते है कि शासकीय योजनाओं का प्रभाव जनसाधारण पर दिखायी दे रहा है। जननी सुरक्षा योजना राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अन्तर्गत एक सुरक्षित मातृत्व योजना है। जिसमें संस्थागत प्रसव को प्रोत्साहित कर गर्भवती महिलाओं में मातृ मृत्यु तथा नवजात शिशु मृत्यु दर को कम करने का प्रयास किया जा रहा है। भारत सरकार द्वारा शत प्रतिशत वित्त पोषित यह योजना मध्यप्रदेश में 15 अगस्त 2005 से लागू की गई है।

उद्देश्य :- प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि -

- ✻ मध्यप्रदेश सरकार द्वारा परिचालित इस योजना से सभी वर्ग की महिलाएँ किस सीमा तक लाभान्वित हो रही है।
- ✻ इस योजना का प्रचार प्रसार शहरी एवं ग्रामीण अंचलों की महिला पर क्या मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाल रहा है।
- ✻ सरकार की जननी सुरक्षा योजना से विभिन्न वर्ग की महिलाएँ कितनी संतुष्ट है?

प्राकल्पना :- मेरी प्राकल्पना रही है कि मध्यप्रदेश सरकार द्वारा परिचालित शासकीय योजनाओं का पूर्ण लाभ ग्रामीण शहरी अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की महिलाओं को वास्तविक तौर पर मिल पा रहा है।

अध्ययन पद्धति :- अध्ययन पद्धति के रूप में द्वैतियक स्त्रोत अर्थात पत्र-पत्रिकाओं, पेम्पलेट्स, सरकारी अभिलेखों एवं आँकडों साक्षात्कार, सर्वेक्षण तथा इंटरनेट का उपयोग किया गया। विस्तृत अध्ययन के माध्यम से निम्न जानकारी प्राप्त की गयी -

- ✻ इस योजना का उद्देश्य संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देकर मातृ एवं शिशु मृत्युदर को कम करना है।
- ✻ इसका लाभ सभी वर्ग की महिलाओं को सरकारी एवं चिन्हित गैर सरकारी संस्थान पर प्रसव कराने पर देय है।
- ✻ इस योजना के अन्तर्गत सरकारी अथवा मान्यता प्राप्त निजी अस्पताल में प्रसव कराने पर ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाली गर्भवती महिला को 1400 रूपए तथा शहरी क्षेत्र की महिला को 1000/- की आर्थिक सहायता की पात्रता होगी।
- ✻ मान्यता प्राप्त निजी स्वास्थ्य संस्थान में योजनान्तर्गत लाभ प्राप्त करने हेतु सामान्य वर्ग एवं अन्य पिछड़ा वर्ग की गर्भवती महिला को बी.पी.एल. का प्रमाण पत्र अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की गर्भवती महिला को जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना आवश्यक होगा। इसके साथ ही संबंधित संस्था हेतु मान्य रेफरल पर्ची भी प्रस्तुत करनी होगी जो आशा, आंगनवाडी कार्यकर्ता ए.एन.एम. अथवा चिकित्सक द्वारा जारी की गई हो।
- ✻ बी.पी.एल. कार्डधारी महिला को घर पर प्रसव कराने पर 500/- की आर्थिक सहायता की पात्रता है। यह राशि महिला को अधिकतम दो जीवित जन्म तक ही देय होगी।
- ✻ गर्भवती महिला को संस्थागत प्रसव हेतु लेकर आने वाली प्रेरक (आशा/आँगनवाडी कार्यकर्ता/अन्य समतुल्य कार्यकर्ता) को ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाली गर्भवती महिला के लिए 600/- तथा शहरी क्षेत्र में निवास करने वाली गर्भवती महिला के लिए 200/- की आर्थिक सहायता के अन्तर्गत रूपये 250/- परिवहन व्यय हेतु, रूपये 200/- प्रोत्साहन राशि तथा रूपये 150/- अन्य व्यय हेतु होंगे। शहरी क्षेत्र की हितग्राही के प्रकरण में आशा को मात्र प्रोत्साहन राशि ही दी जायेगी।

* प्राध्यापक/विभागाध्यक्ष (गृहविज्ञान) माखनलाल चतुर्वेदी शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत

- संस्थागत प्रसव के दौरान यदि प्रसूता/शिशु की मृत्यु भी हो जावे तो भी यह लाभ देय होगा।
- रेफरल परिवहन सुविधा सभी वर्गो की ग्रामीण प्रसुताओं को देय होगा।
- हितग्राही महिला को इस योजना के अन्तर्गत संस्थागत प्रसव के दौरान समस्त सेवाएँ (औषधि सामग्री आदि) संबंधित शासकीय संस्थान द्वारा नि:शुल्क प्रदान की जाती है।

खंडवा जिले के संदर्भ में जननी सुरक्षा योजना के तहत जो सर्वेक्षण एवं अध्ययन किया गया इसकी उपलब्धि के विषय में शासकीय अभिलेखों से जानकारी प्राप्त की गई।

वर्ष :- 2009-2010 (लाभान्वित हितग्राहियों का प्रतिशत 85:)

क्रमांक	लक्ष्य	पूर्ति	प्रतिशत
1	24927	21223	85%

वर्ष :- 2010-2011 (लाभान्वित हितग्राहियों का प्रतिशत 82:)

क्रमांक	लक्ष्य	पूर्ति	प्रतिशत
1	27715	22711	82%

वर्ष :- 2011-2012 (लाभान्वित हितग्राहियों का प्रतिशत 71:)

क्रमांक	लक्ष्य	पूर्ति	प्रतिशत
1	32646	23260	71%

वर्ष- 2012-13 (31 जनवरी 13) (लाभान्वित हितग्राहियों का प्रतिशत 71)

क्रमांक	लक्ष्य	पूर्ति	प्रतिशत
1	25888	18262	71%

निष्कर्ष :-अध्ययन के दौरान निम्न निष्कर्ष उभरकर सामने आए -

- महिलाओं एवं शिशु स्वास्थ्य की दिशा में मध्यप्रदेश सरकार की यह पहल नि:संदेह महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में अनूठा प्रयास है।
- इस योजना के माध्यम से ग्रामीण शहरी अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की महिला में जागरूकता अवश्य उत्पन्न हुई है।
- ग्रामीण स्तर एवं वनांचलों में सरकार द्वारा दी जा रही इन सुविधाओं के प्रचार प्रसार हेतु आँगनवाडी एवं आशा कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की गई है। जिसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव महिलाओं पर पड़ रहा है वे इस योजना का लाभ उठाने की दिशा में अग्रसर हो रही है।
- इस योजना का पूर्ण लाभ महिलाओं को कई बार असुविधाओं के कारण नहीं मिल पाता है।
- प्राप्त आँकडे यह दर्शाते है कि 2009-10 एवं 2010-2011 में इस योजना की उपलब्धि सराहनीय रही। किन्तु 2012-13 में जो लक्ष्य निर्धारित था उसकी पूर्ति अपेक्षाकृत कम देखी गई।
- अत: इन योजनाओं का संपूर्ण लाभ अनुसूचित जाति/जनजाति ग्रामीण महिलाओं को नहीं मिल पा रहा है।

सुझाव :-

- सरकारी योजनाएँ आरंभिक अवस्था में कारगर सिद्ध होती हैं, फिर धीरे धीरे दम तोड़ने लगती है। अत: इस हेतु निरन्तर सर्वेक्षण की आवश्यकता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों एवं वनांचलों तक इन योजनाओं की जानकारी शत प्रतिशत नहीं मिल पाती। अत: इन सुविधाओं का लाभ पूर्ण रूप से नहीं उठा पाते है।
- आशा एवं आँगनवाड़ी कार्यकर्ता अथवा भाषा विशेषज्ञ क्षेत्र विशेष की भाषा का उपयोग करते हुए उनको योजना के संदर्भ में जानकारी प्रदान करे।
- दूर दराज के अंचलों में अधिक से अधिक प्रचार प्रसार किया जाए।
- राष्ट्रीय सेवा योजना के विद्यार्थियों द्वारा भी इन लाभप्रद योजनाओं की जानकारी ग्रामीण क्षेत्र एवं आदिवासी बहुल क्षेत्रों में दी जा सकती है।
- इन योजनाओं के क्रियान्वयन के साथ ही उचित एवं निरन्तर मानिटरिंग होना चाहिए ताकि सार्थक परिणाम प्राप्त किए जा सके।
- सरकार द्वारा संचालित योजनाओं का क्रियान्वयन के साथ ही उचित ताकि सार्थक परिणाम प्राप्त किए जा सके।
- सरकार द्वारा संचालित योजनाओं का क्रियान्वयन वास्तविक धरातल पर नहीं हो पाता इस क्षेत्र में और अधिक प्रयास की आवश्यकता है।
- अक्सर समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलता है कि जननी एक्सप्रेस समय पर नहीं पहुँच पाती जिससे गर्भवती महिलाओं को अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।
- कोई भी योजना का लाभ पूर्ण रूप से तभी मिल पाता है जब वहाँ के लोग शत प्रतिशत साक्षर हो।

संदर्भ ग्रंथ :

1. चंद्रशेखर ममता एवं रायकवार चंद्रशेखर - महिला सशक्तिकरण की अवधारणा, यशी यथार्थ प्रकाशन इंदौर (म.प्र.) संस्करण 2002
2. कौशिक आशा -नारी सशक्तिकरण विमर्श एवं यथार्थ पोइन्टर पब्लिशर्स व्यास बिल्डिंग एस.एम.एस हाइवे, जयपुर
   सवलिया बिहारी वर्मा -महिला जागृति एवं सशक्तिकरण अविष्कार पब्लिशर्स, सोनी एम.एल. गुप्ता संजीव डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर 302003 (राज.)
3. जनसम्पर्क मध्यप्रदेश का प्रकाशन
4. राज्य स्वास्थ्य सूचना शिक्षा संचार ब्यूरो लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग मध्यप्रदेश भोपाल
5. http://translate/googleusercontent.com
6. दैनिक भास्कर - 10.12.2013
7. पत्रिका - 10.12.2013
8. दैनिक भास्कर - 27.12.2013

10.12.2013 दैनिक भास्कर

सुविधा का लाभ नहीं | अस्पताल प्रबंधन को शिकायत करने पर भी नहीं मिला वाहन, गरीब वर्ग की प्रसूताओं को हो रही दिक्कत

जननी एक्सप्रेस नहीं मिली निजी वाहन से जाना पड़ा घर

कॉल सेंटर को दे दी थी सूचना

नहीं मिल रहा जननी सुरक्षा योजना का लाभ

जननी चालक ने प्रसूता से मांगे पांच सौ रुपए

• कलेक्टर एवं बीएमओ से शिकायत

10/12/2013 पत्रिका

महिलाओं तथा किशोरियों के स्वास्थ्य की स्थिति

डॉ. कलिका डोलस *

विकास शब्द परिवर्तन का सूचक है न केवल परिवर्तन वरन् सकारात्मक परिवर्तन का सूचक है। जब हम महिलाओं के विकास, की बात करते है तो हमारा तात्पर्य चहूँमुखी विकास से है। संपूर्ण विकास सामाजिक विकास से घनिष्ठ रुप से संबंधित है तथा समाज परिवार का ही वृहत रुप है और इसी परिवार की आधारशिला है नारी, जिसके बिना परिवार रुपी पौधे के अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित तथा फलित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। और इसे पल्लवित करने के लिए स्वयं महिला का स्वस्थ होना आवश्यक है। किंतु प्रश्न उपस्थित होता है कि इस संदर्भ में वास्तविकता क्या है। भारतीय महिला तथा किशोरियों के स्वास्थ्य का स्तर अत्यंत ही निम्न है। जो नारी अन्नपूर्णा के नाम से जानी जाती है वह दूसरों को तो स्वादिष्ट और ताजा भोजन परोसती है परंतु स्वयं बचा-खुचा, बांसी भोजन ग्रहण करती है। इसके लिए स्वयं महिलाएं, जो कि स्वयं को गौण समझती है एवं कुछ हमारे सामाजिक संस्कार कि सबको भोजन कराने के पश्चात जो बचा हो वह गृहणी या महिलाओं को खाना चाहिए, वाली धारणाएं जिम्मेदार है। इस प्रकार महिलाओं के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले तत्वों में सर्वप्रथम पोषण आता है।

1. **पोषण आहार :-** हमारे निम्नस्तरीय समाज में निर्धनता मुँह बाए खड़ी रहती है। ऐसे समय में जबकि दो वक्त का खाना जुटाना भी एक बड़ी समस्या है पौष्टिक आहार की अपेक्षा करना तो व्यर्थ है। पेट भरना पोषाहार की तुलना में अधिक आवश्यक है। अत: हमारे देश की महिलाओं का अधिकांश प्रतिशत कुपोषण का शिकार है।

कुपोषण का कारण स्त्री व पुरुषों के आहार में भिन्नता होना भी है। अधिकांश परिवारों में महिलाओं को पुरुषों की तुलना में अत्यधिक क्रियाकलापों को सम्पादित करने के पश्चात भी पुरुषों की अपेक्षा गुणात्मक एवं गणनात्मक दोनों स्तरों पर कम खुराक दी जाती है। इसी प्रकार किशोरियों को दैनिक कार्य सम्पादन करने के पश्चात छोटे भाई बहनों की जिम्मेदारी उठाने के बाद भी कम खुराक दी जाती है।

महिलाओं के कुपोषित होने से खासकर गर्भवती महिला के कुपोषित होने से आने वाली पीढी भी कुपोषित हो जाती है। गर्भवती महिला के आहार में उचित मात्रा में कैलोरी, प्रोटीन, विटामिन व खनिज लवण, आयरन, कैल्शियम, आयोडीन की कमी होने से महिला स्वयं व आने वाली संतान को कई शारीरिक व मानसिक अयोग्यताओं से गुजरना पड़ता है। गर्भवती महिला को आयरन की कमी से प्रसव के समय दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। केस बिगडने पर कभी-कभी तो अतिरिक्त रक्त भी देना पड़ सकता है। जिससे उसकी जान को खतरा रहता है। इसी प्रकार वो पर्याप्त आयोडीन युक्त नमक आहार में न लेने पर आने वाली संतान मानसिक रुप से अपंग भी हो सकती है। एक अध्ययन के अनुसार लगभग 12 मिलियन बच्चे प्रतिवर्ष आयोडीन की कमी से मानसिक बीमारियों का शिकार होते है तथा 20000 बच्चे विटामिन ए की कमी से अंधे हो जाते है। 90 प्रतिशत महिलाएं आज भी भारत देश में एनिमिक है। आर्थिक रुप से सम्पन्न परिवारों की महिलाएं भी अज्ञानता के कारण एनिमिक पाई जाती है। महिलाओं को संतुलित आहार का महत्व व उसकी इसकी आवश्यकता को जानना चाहिए। ऐसी आहार सामग्रियों का पता लगाना चाहिए। जो कम धनराशि खर्च कर अधिक पोषण प्रदान कर सकें उसका स्वयं के आहार में समावेश करना चाहिए।

राष्ट्रीय कुपोषण रोकथाम विभाग, राष्ट्रीय कुपोषण रोकथाम संस्थान 1981 द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार भारत में महिलाओं की पौष्टिक स्थिति अत्यन्त ही दयनीय है एवं लगभग 140 मिलियन महिलाएं कुपोषित है।

2. **प्रजनन का स्तर :-** नेशनल कांफ्रेंस ऑफ वीमेन एंड चाइल्ड की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय महिलाएं औसतन आठ बार मातृत्व का गौरव प्राप्त करती है, औसतन 6 से 7 तक शिशुओं को जन्म देती है, जिनमें 4 या 6 बच्चे जीवित रहते है। इस प्रकार अपने पुनर्उत्पादन कालीन जीवन के 30 वर्षो में से 16 वर्ष केवल मातृत्व धारण करने में ही व्यतीत कर देती है।

आज जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का द्वितीय सबसे बड़ा राष्ट्र है और अभी भी देश की जनसंख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। जिसका सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ा है। हम दावा करते है कि महिलाओं की विकास की स्थिति सुधरी है परंतु आज भी महिला को मानवीय पुर्नउत्पादन की सुविधा प्रदान करने की मशीन मात्र ही माना जाता है परिणाम स्वरुप अपरिपक्व शिशु जन्म दर भी बहुत अधिक है। इस प्रकार भारत में बाल अपरिपक्व शिशु दर विकासशील देशों की तुलना में बहुत अधिक है और यही घटक महिलाओं के स्वास्थ को प्रभावित करने वाला महत्वपूर्ण घटक है।

इसके अतिरिक्त शिशु मृत्यु दर भी महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति को मापने का एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है। यह दर तत्वों जैसे स्वास्थ्य सुविधाएं, परिवार की आर्थिक स्थिति, महिला व उसके परिवारिक सदस्यों की साक्षरता दर आदि पर निर्भर करती है यूनिसेफ द्वारा किए गए एक विश्लेषण से पता चलता है कि भारत में लगभग 50 बच्चों की मृत्यु 0-4 वर्ष की आयु में ही हो जाती है। इसके अतिरिक्त पोषण के अभाव में बार बार गर्भपात या प्रसव के पश्चात उचित देखभाल का अभाव, देखभाल में असावधानी आदि कारणों से भी महिलाओं के स्वास्थ्य की स्थिति नाजुक बनी रहती है।

जन्म के समय जीवन की प्रत्याषा भी महिला स्वास्थ पर विपरीत प्रभाव डालती है। सामाजिक मान्यता यह भी है कि जन्म के समय यदि बालिका है तो उसे विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं होती जबकि बालक को होती है इसलिए जन्म के पश्चात जो उचित देखभाल दोनों को मिलनी चाहिए उसमें अधिकांश बालिकाएं वंचित रह जाती है।

3. **परिवार नियोजन में निर्णय का अभाव :-** महिला का स्वास्थ्य व परिवार नियोजन का आपस में सीधा संबंध है। नियोजित परिवार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों तरह से महिला के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। एक या दो संतान होने से महिला स्वयं के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए भी समय निकाल पाती है। अन्यथा 4-5 संतान होने से दिन के पूरे 24 घंटे बच्चों की देखभाल में ही व्यतीत हो जाते है। महिला थक के चूर होने के कारण स्वयं के स्वास्थ्य को नजर अंदाज कर देती है। परंतु अधिकांश परिवारों में यहॉं तक की सम्पन्न व पढ़े लिखे परिवारों में भी परिवार को नियोजित करने का निर्णय महिलाओं के हाथ में नहीं होता। उसकी कोख पर उसका ही अधिकार नहीं होता। सुसराल पक्ष या पति जो भी निर्णय ले वही मान्य होता है। ऐसी स्थिति में बार बार गर्भवती होना महिला के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। साथ ही दो बच्चों के बीच पर्याप्त अंतर न होने पर महिला और बच्चों दोनों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

4. **सामाजिक (कु) संस्कार :-** हमारा भारतीय समाज आज भी पुत्र प्राप्ति के मोह में इस कदर जकडा है कि प्रत्येक जन्म देने वाली जननी व गृहलक्ष्मी के स्वास्थ्य को दांव पर लगाकर वह किसी भी जगह पुत्र प्राप्त

* सहायक प्राध्यापक (गृहविज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.) भारत

करना चाहता है। इस हेतु महिला का बार बार गर्भवती होना एक आम बात हो गई है। जब तक कि पुत्र की प्राप्ति नहीं हो जाती।

साथ ही पुत्र मोह में कन्या भ्रूण हत्या जैसा महा पाप भी किया जाता है एवं इससे महिला शारीरिक व मानसिक रुप से अस्वस्थ हो जाती है। उसकी कोख का अंश चाहे वो लड़का हो या लड़की महिला को तो बराबरी से यातना सहकर उसे जन्म देना होता है और उसका पालन पोषण भी करना होता है परंतु प्रताड़ित होती है इसका उसके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

साथ ही समाज में महिलाओं के घर के बाहर जाने पर भी पाबंदी लगी रहती है। खासकर मुस्लिम समाजों में कई परिवारों में हमेशा बुर्के का प्रयोग किया जाता है। घर में भी पर्याप्त रोशन व हवा का अभाव होता है जिससे कि इन महिलाओं को पर्याप्त विटामिन डी नहीं मिल पाता फलस्वरुप लंबे समय के बाद शरीर में विटामिन डी का अभाव हो जाता है जिससे आस्ट्रियोपोरोसिस नामक बीमारी का होना संभव है। अत: इस प्रकार के कुसंस्कारों का महिलाओं को स्वयं के स्वास्थ्य में बेहतरी के लिए विरोध करना चाहिए।

5. **पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव :-** वर्तमान में बेहतर स्वास्थ सुविधाएं एवं बेहतर आर्थिक स्थिति दोनों में घनिष्ट संबंध है। यदि आप बेहतर स्वास्थ सुविधाएं पाना चाहते है तो आपको आर्थिक दृष्टि से बेहतर होना लाजिमी है। हांलाकि सरकार आर्थिक रुप से कमजोर वर्गो की महिलाओं के लिए, निम्न जाति की महिलाओं के लिए अनेक योजनाएं बना रही है। लेकिन जैसा कि सरकार की अधिकांश योजनाओं का अंजाम होता है इन योजनाओं का हश्र भी यही है कि योजनाएं कागजों पर है उसको अमली जामा नहीं पहनाया जा सका है। गरीब तबका आज भी बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए भटक रहा है, जिला चिकित्सालयों में उपकरण तो है जो अधिकांश बिगड़ी हुई हालत में या बंद हालत में मिलते है, समय पर डाक्टर उपलब्ध नहीं होते, नर्स का उपेक्षा पूर्ण अपमानजनक व्यवहार मिलता है, अस्पताल में दवाईयों का स्टाक खत्म हो चुका होता है। दवाईयां समय पर उपलब्ध होती है ऐसी स्थिति में निम्न वर्ग की महिलाएं सरकारी अस्पतालों में इलाज कैसे करवाएं। इन सबसे बचने के लिए निजी चिकित्सालय का रुख करें तो पैसे की समस्या मुंह बाए खड़ी रहती है फलस्वरुप कई बीमारियों को अपना दुर्भाग्य समझकर महिलाएं अपने ऊपर झेलती रहती है। और एक दिन यही विकट स्थिति हाथ से बाहर चली जाती है। साथ ही महिला स्वास्थ्य जागरुकता के अभाव में महिलाओं को ज्यादा चिकित्सकीय सुविधाएं देना विलासिता मानी जाती है। भारतीय समाज की महिला त्याग व सेवा की प्रतिमूर्ती मानी जाती है उसको स्वयं को किसी उपचार की आवश्यकता होती है यह बात आसानी से गले नहीं उतरती। बीमारी सहना और उसमें भी काम करते रहना उसकी नियति है। स्वयं महिला समस्त परिवारिक सदस्यों की परिचारिका बनती है परंतु उसे भी उपचार की आवश्यकता हो सकती है इस बात को सरासर नजर अंदाज किया जाता है। फलस्वरुप महिला स्वास्थ की स्थिति बद से बदतर होती जाती है।

6. **घरेलू हिंसा :-** घरेलू हिंसा से महिला शारीरिक व मानसिक दोनों स्तरों पर आहत होती है इससे सभी आर्थिक स्तरों की महिलाएं पीड़ित है। निम्न वर्गीय परिवारों में तो यह आम बात है परंतु दुख इस बात का है। जब मध्यम वर्गीय एवं उच्च आर्थिक स्थिति वाली महिलाएं भी घरेलू हिंसा का शिकार होती है। अभी हाल ही में भोपाल के एक होटल व्यवसायी को अपनी पत्नि को दहेज मामले में हत्या का दोषी पाया गया है। इसके अतिरिक्त कभी कभी महिला से इस कदर घरेलू हिंसा की जाती है कि उसे आत्महत्या के लिए मजबूर होना पड़ता है। क्या यही भारतीय सभ्यता की पहचान है? जिस समाज में किसी समय नारी को पूजा जाता था और आज भी हम नवरात्रि में नारी के विभिन्न रुपों की पूजा करते है उसी परिवार में वहीं नारी कुछ समय बाद घरेलू हिंसा का शिकार होती है यह समाज की कैसी विडंबना है।

घरेलू हिंसा से शारीरिक चोट के अतिरिक्त उसका 'स्व' भी आहत होता है। बच्चों के सामने इस प्रकार से प्रताड़ित होकर आत्मा तक आहत होती है। अपना स्वभिमान खो देती है घरेलू हिंसा को रोकने के लिए सरकार ने कुछ कानून बनाए है परंतु उनका हश्र भी अन्य कानूनों की तरह ही हो गया है।

7. **महिला उत्पीड़न :-** घरेलू हिंसा के अतिरिक्त महिलाएं परिवार, कार्यस्थल एवं अन्य जगहों पर यौन उत्पीड़न का शिकार होती है। महिलाओं के अतिरिक्त इस समस्या का सामना किशोरियों को ज्यादा करना पड़ता है फलस्वरुप उनमें कुंठा जन्म लेती है तथा उसके स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। हालांकि सरकार न हर कार्यालय में महिला उत्पीड़न नियंत्रण समिति गठित करवाई है एवं राज्य स्तर पर महिला उत्पीड़न आयोग का गठन भी किया गया है जिसमें कुछ मामले दर्ज भी हुए है एवं कुछ के धनात्मक परिणाम भी सामन आए है। आशा की जानी चाहिए कि और भी सकारात्मक परिणाम सामने आएंगे तथा महिलाएं एवं किशोरियॉ समाज व कार्यस्थल पर निर्भयता पूर्वक कार्य कर सकेंगी।

8. **तनाव :-** महिला स्वास्थ का सीधा संबंध तनाव से भी है। महिलाएं नैसर्गिक रुप से पुरुषो की तुलना में अधिक संवेदनशील होती है इसलिए वह तनाव ग्रस्त भी शीघ्र ही हो जाती है। वर्तमान समय में अधिकांश महिलाएं कामकाजी है। दोनों नाव पर सवार होकर दोनों के बीच संतुलन बनाते बनाते उन्हें कई प्रकार के तनाव का सामना करना पड़ता है। दोहरी जिम्मेदारी उठाते हुए उन पर आरोप यह है कि वे ठीक प्रकार से न तो परिवार की देखभाल कर पाती है और न ही अपने कार्य के साथ न्याय कर पाती है। हालांकि महिलाओं ने दोनों मोर्चो पर सफलता पाई है परंतु इन सबसे ये तनावग्रस्त जरुर हो जाती है। और इनका उनके स्वास्थ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उपसंहार :- भारत के स्वास्थ मंत्रालय द्वारा वर्तमान में एक सार्थक स्लोगन प्रकाशित किया जा रहा है जो कि भारतीय महिला को सम्बोधित किया गया है जिसे प्रचारित करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों की नामी महिलाओं का सहारा लिया गया है जो इस प्रकार है

''स्वस्थ भारत की शुरुआत होती है आपसे, आपके परिवार से''

भारत स्वस्थ तभी होगा जब भारतीय महिला एवं किशोरी स्वस्थ होगी क्योंकि महिला वर्तमान परिवार की एवं किशोरी कल के परिवार की धूरी है। उसके आस पास न केवल बच्चे व पति बंधे है वरन दो अन्य परिवार (सुसराल व मायका) भी उससे बंधे रहते है अत: महिला का स्वास्थ परिवार, समाज व राष्ट्र की प्रथम आवश्यकता होनी चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 90 के दशक को महिला दशक के रुप में मनाए जाने की घोषणा की गई थी जिसके परिणाम स्वरुप महिलाओं की स्थिति में नगण्य सा सुधार हुआ है और इससे महिलाओं को जागरुक करने का, अपनी स्थिति समझने का एक सुनहरा अवसर मिला है।

सुझाव :-

1. जिस प्रकार सरकार ने बच्चों की प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य किया है, उसी प्रकार बालिका स्वास्थ्य को प्राथमिकता देनी होगी, इस हेतु अलग से बजट निर्धारित किया जाना चाहिए।
2. समाज की मानसिकता में जागरुकता कार्यक्रमों के माध्यम से बदलाव लाया जाना चाहिए।
3. किशोरी स्वास्थ्य व प्रजनन स्वास्थ्य को स्वास्थ्य विभाग द्वारा सर्वोत्तम प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
4. किशोरी तथा महिला को स्वयं अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देना चाहिए किसी भी स्थिति में उसे नजर अंदाज नहीं किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मानव अधिकार व महिला उत्पीड़न – डॉ. सुधा रानी एवं रागिनी श्रीवास्तव
2. पंचायती राज एवं वंचित महिला समूह का उभरता नेतृत्व – ललित कुमावत
3. महिला विकास कार्यक्रम – डॉ. आशू रानी
4. किशोरावस्था – डॉ. प्रमिला पांडे

Perception of Employees towards Women Leaders

Prof. Harvinder Soni * Yashwant Singh Rawal**

Introduction: The status of women in India has been subject to many great changes over the past few decades. In modern India, women have held high offices in India including that of the President, Prime Minister, Speaker of the Lok Sabha and Leader of the Opposition. Indira Gandhi, who served as Prime Minister of India for an aggregate period of fifteen years, is the world's longest serving woman Prime Minister.*

The Constitution of India guarantees to all Indian women equality (Article 14), no discrimination by the State (Article 15(1)), equality of opportunity (Article 16), and equal pay for equal work (Article 39(d)). There are physical differences in men and women but as far as the mental abilities are concerned both are equal.

There exist behavioural and attitudinal difference in men and women due to which a question arises in the minds of employees whether women leaders are as good as men leaders. Women leaders are many a times not considered as efficient as men. With the rising education, advancement and liberal thinking, has there any change occurred in the perception of employees towards women leaders? To judge this thing a survey has been conducted at Udaipur.

We judged the perception of employees towards women leader so that strengths and weaknesses of women leadership can be known. There are so many notions in the management of various organizations before appointing a woman as a boss or leader. Whether the woman will be heard, whether she will command respect, whether the male employees' ego will be a barrier in her work. These research was conducted to understand all these complex phenomenon.

Research methodology :

Objectives of the research: The main objective of the research paper was to see the perception of society towards women leadership.

- To analyze the opinion of people regarding the traditional role of women as a house maker
- To assess whether women are good leaders or not
- To assess the perception of employees regarding the decision making ability of female bosses
- To judge the comfort level of employees regarding working with female bosses

The following hypothesis was framed to conduct the research

- H01. Women are weak leaders
- H02. Women should be solely house makers
- H03. Employees are uncomfortable in working under female bosses
- H04 Women cannot take rational decisions.

Type of study	Descriptive, partially analytical
Data Collection Method	random sampling method
Data Sources	Primary & Secondary
Sample Area	Private organizations
Sample Size	300
Type Of Questionnaire	Structured
Research Instrument	Questionnaire
Statistical Tools Used	percentage

The structured questionnaires were duly filled by the respondents. The data revealed by the research are presented in the following diagrams.

1. Opinion on women may be a good leader.

In response to the question whether women are good leaders. 52 % were agree,8% were strongly agree ,25% were disagree 4% were strongly disagree said they are not good leaders. And 11% could not make any comment.

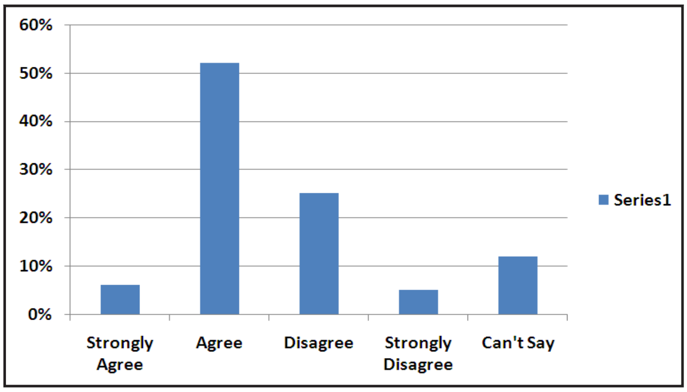

Women are good leader

2. Opinion on women might be solely house maker.

In response to the question whether women can only be a house maker and can't work in business organizations. The response of the male as well as female respondents was almost same as below:

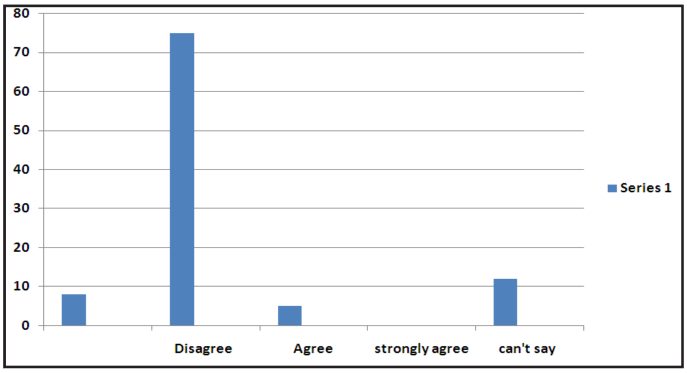

Women might be solely house maker

*** Prof., Pacific Business School ** Assistant Prof. Pacific Institute of Hotel Management, Udaipur (Raj.) INDIA**

Research shows 75% respondents were disagree and 8% were strongly disagree believe that women should not be confined to household work and they are good enough to work in business organizations. Merely 5 % were agree the women's work. Where 12% could not make any comments.

3. Opinion on feeling uncomfortable at job if leader is a woman.

"Is it comfortable to work under female leader". 63 % disagree,12% strongly disagree respondents replied they are quite comfortable to work under women leader. It clearly indicates that acceptance for female leader is there among employees and they are quite comfortable in working.

4. Perception on women leaders being busy merely at gossiping

When the question regarding the gossip by women was asked, 65%agree 8% strongly agree that female do gossip at work place. This is really a significant weakness of female at business organizations. Because of this females are many a times considered less productive.

5. Opinion on taking decision rationally and not emotionally

As the diagram below shows 37% respondents agree and 8% strongly agree they feel that women leaders take decisions rationally and not emotionally. While 35% were disagree 2% strongly disagree feel that women leaders take decisions emotionally and not rationally. 18% respondents could not make a statement on it.

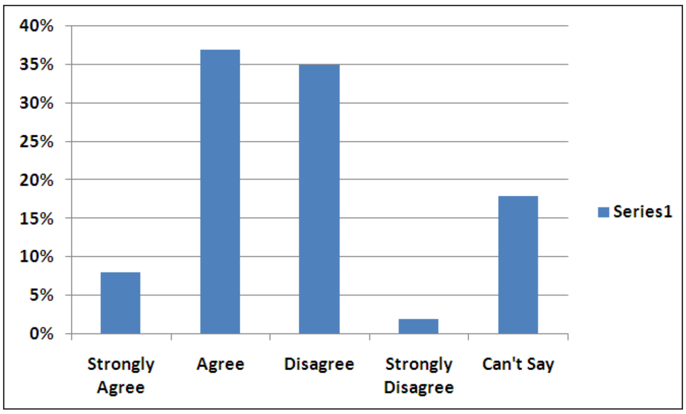

Women leader take decision rationally

This is also a serious issue that goes a bit against women leadership as they are not treated as rational decision maker unanimously.

6. Opinion on comfort level to communicate with women leader:

It has also been found that in an extrovert and frank society no one feel hesitation in interacting with the person of same or opposite sex the gender do not matter in interaction. Employees do freely speak out with each other; the gender is not a barrier at all. Our research data substantiate these facts as 53% agreed and 30% strongly agreed that employees feel comfortable to communicate with their female leader.

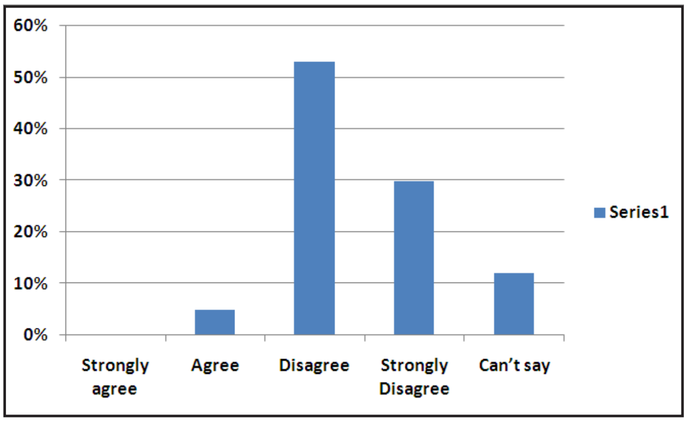

It is not comfortable to communicate with women leader.

7. Opinion on women leaders as weak leaders for any type of organization

When question regarding women leaders are weak leader were asked is not found correct as 52 % employees were disagree 30% were strongly disagree only 5% agree it indicates that female are good leaders can effectively work in business organization.

8. Opinion on women leader has not good decision making ability

When question regarding women leaders do not have good decision making ability were asked is also found not correct as 35% respondents were strongly agreed that women leaders have good decision making .55% of respondent were agree and only 10% responded were disagreed .

9. Opinion on women leaders are not very successful in leadership position:

When question regarding women leaders are not very successful in leadership position not found correct as 20% respondent were strongly disagreed that women leader are not very successful in leadership position.63% respondent were disagreed and 17% could not comment on this.

10. Opinion on not liking Women leading person :

When question regarding liking leading person women 50% respondent were neither agreed nor disagreed .40% of respondent said they like if their leading person is women and 10% respondent said they don't like women as leading person.

The result of the hypothesis designed for the research is as under:

1. The first hypothesis that 'Women are weak leaders ' is not found correct as 52 % employees said female are good leaders . 8 % respondents feel that women can effectively work in business organization.
2. The second hypothesis that women should be solely house makers found incorrect as Research shows 75% respondents were agree and 8% were strongly agree

believe that women should not be confined to household work and they are good enough to work in business organizations.

3. The third hypothesis that 'Employees find it uncomfortable to work under women leader' is not correct and rejected 75 % respondents replied they are quite comfortable to work under women leader it clearly shows the acceptability of women as a superior / senior / boss.
4. The fourth hypothesis that 'Women leaders are emotional and not rational as required' is partially accepted. As 45 % respondents feel that women leaders take decisions rationally and not emotionally. While 37% feel that women leaders take decisions emotionally and not rationally. It shows that women are considered as quite emotional and quite rational.

Research findings:

1. Workers' general notions about the effectiveness of male and female managers can be as important as their actual leadership abilities or business results.
2. As a result, women executives need to be exceptionally aware of their own leadership styles and strengths — as well as changes underway in their organizations — in order to make an impact.
3. Women executives are perceived as somewhat multi-tasking, emotional, intuitive, compassionate, relationship building, consensus building and gossipy.
4. Male leaders are perceived as somewhat strong, arrogant, dominant, and assertive.
5. It is a myth that Women are too emotional and hold bias/ grudges. They are also as professional and practical as men.
6. It is a misconception that men disparage women's performance at the most valued leadership competencies.

Here it is pertinent to quote few successful women leaders which were named and appraised by the respondents during the research. In 2006, Kiran Mazumdar-Shaw, who founded Biocon, one of India's first biotech companies.

A) Chanda Kochchar who heads ICICI Bank, began her career as a management trainee in 1984 and successfully rose through the ranks. She was conferred the Padma Bhushan, one of India's highest civilian honours this year.[3]

B) Shikha Sharma became the CEO of Axis Bank in 2009. Prior to this, she was head of ICICI Prudential Life Insurance Co.

C) Mallika Srinivasan joined her family business in 1986. She was the General Manager of Tafe (Tractors and Farm Equipment) Company.[4]

D) Vinita Bali was appointed as the managing director on May 31, 2006. Vinita joined as chief executive officer of the company in January 2005. She started her career with Voltas, where she launched Rasna soft-drink concentrate. In 1980, Vinita joined Cadbury India, where she had a successful career. Later she became the worldwide marketing director of the Coca-Cola Company in 1994.

In two decades, she has transformed the company through innovative products and processes.[5]

- In the software industry 30% of the workforce is female. In the workplace women enjoy parity with their male counterparts in terms of wages and roles.
- Women constitute 51% of the total employed in forest-based small-scale enterprises.
- One of the most famous female business success stories is the Shri Mahila Griha Udyog Lijjat Papad. Indian women find them in every business field - acquisitions, garnering profits, successful new ventures, pioneering concepts, snagging mega deals, etc.

Conclusion:

The culture of an organization, determine the degree to which a woman's own feminine or masculine traits fit. "If your leadership style is more feminine and you are in a masculine culture, you have role incongruity, and you may not be that effective because people will perceive you as not fitting,"

To the extent that women want to leave a leadership impact, they need to be strategic and analytical about the domain they are working in and understand their strengths as well as areas [that need work]. Organizational culture can be thought of like an iceberg with certain parts visible, but the bulk lying unseen beneath the surface.

The women are also good at understanding the organizational culture and work as per the requirement for the organizational development. Top women executives credited with responsibility for their own success can be viewed simultaneously as more competent and more relationship-oriented than men, leading them to be perceived as more effective leaders than their male counterparts.

However, they cautioned that female leaders should realize that their behaviors may be viewed differently at different levels of the organization. Men and women can exhibit the same results and accomplishments and the stereotyped perception towards women has changed considerably.

References:

1. Indira Gandhi Greatest Women- BBC News 1/12/1999. Retrieved 31/07/2013
2. Leadership skills & change management harsh Dwivedi & Ritu Dixit chapter2, ISBN 978-81-8142-468-6
3. Fortune India's November 2013
4. Business India August 2011
5. www.siliconindia.com 10 September 2013
6. http://elearning.vtu.ac.in/P3/CIP71/1.pdf

****

Role of Jawaharlal Nehru National Urban Renewal Mission (JNNURM) for the Infrastructural Development of Madhya Pradesh

Dr. Ashish Pathak * Reeta Chawla **

Introduction

The State of Madhya Pradesh is centrally located and is often called as the "Heart of India". The State is home to a rich cultural heritage and has practically everything; innumerable monuments, large plateau, spectacular mountain ranges, meandering rivers and miles and miles of dense forests offering a unique and exciting panorama of wildlife in sylvan surroundings. The State is fast emerging as one of the major destinations for the IT industry with lot of activity on e-Governance picked up in recent years. The present-day Madhya Pradesh state came into existence on 1 November 1956 following the reorganization of states. The On 1 November 2000, a new state, Chhattisgarh was carved out of Madhya Pradesh state. The present house; the Thirteenth Vidhan Sabha was constituted on 11 December 2008.

JNNURM

Reforms driven, fast track, planned development of identified cities with focus on efficiency in urban infrastructure/services delivery mechanism, community participation and accountability of Urban Local Bodies (ULBs)/Parastatals towards citizens.

The aim is to encourage reforms and fast track planned development of identified cities. Focus is to be on efficiency in urban infrastructure and service delivery mechanisms, community participation, and accountability of ULBs/ Parastatal agencies towards citizens.

Objectives of the Mission

The objectives of the JNNURM are to ensure that the following are achieved in the urban sector;

- Focused attention to integrated development of infrastructure services in cities covered under the Mission;
- Ensuring adequate funds to meet the deficiencies in urban infrastructural services;
- Planned development of identified cities including pre-urban areas, outgrowths and urban corridors leading to dispersed urbanisation;
- Special focus on urban renewal programme for the old city areas to reduce congestion; and
- Provision of basic services to the urban poor including security of tenure at affordable prices, improved housing, water supply and sanitation, and ensuring delivery of other existing universal services of the government for education, health and social security.

Role of Infrastructure

Infrastructure is basic physical and organizational structures needed for the operation of a society or enterprise, or the services and facilities necessary for an economy to function. It can be generally defined as the set of interconnected structural elements that provide framework supporting an entire structure of development.

It is an important term for judging a country or region's development. The term typically refers to the technical structures that support a society, such as roads, water supply, sewers, electrical grids, telecommunications, and so forth, and can be defined as "the physical components of interrelated systems providing commodities and services essential to enable, sustain, or enhance societal living conditions."

Cities covered under JNNURM in M.P

1- Indore
2- Bhopal
3- Jabalpur
4- Ujjain (Heritage city)

City Development Plans of Mission Cities & projects sanctioned under JNNURM

Rs. In Crores

S. N.	City	Proposed Investment	Sanctioned Project Cost
1	Indore	2745.75	851.18
2	Bhopal	2153.00	1563.25
3	Jabalpur	1929.00	281.41
4	Ujjain	1237.73	98.47
	Total	8065.48	2794.31

Sources:- Brochures (Urban Madhya Pradesh the JNNURM Impact) published by Government of Madhya Pradesh, Urban Administration & Development Department.

* Professor (Commerce) Shri Atal Bihari Vajpayee G.A.C College, Indore (M.P.) INDIA
** Asst. Professor (Commerce) MKHS Gujarati Girls College Indore (M.P.) INDIA

Objectives of Study

- To admire the affords of the government and the financial bodies for the development of the cities.
- To find the Impact of Infrastructure Development Scheme on the different sectors of the city. (Roadways, Water supply, Parking facilities, Solid Waste Management, etc.)
- JNNURM has blessed prosperity to the Cities that is providing business opportunity by connecting the city transportation with other cities and this affords bring the city in to the commercial field.
- To find the Impact of JNNURM Scheme on M.P.

Research Methodology

The information collected, produced & submitted by us is based on the information directly given by the responsible person available in the departments, from the Newspapers, Journal, Magazines, Budget Reports etc. that, have been published from time to time regarding the development of the city.

Indore

Indore City is one of the largest city of Madhya Pradesh and it has always been recognized as significant commercial and trade center for Western Madhya Pradesh touching both Malwa & the Nimar region. Urbanization process was very well organized in the city.

Indore (I.M.C) *Rs. in Crores*

S. No.	Project Title	Approved cost
1	Augmentation of Yeshwant Sagar Water Supply System	23.75
2	Indore Sewerage Project, Indore	307.17
3	Construction of 8 Important Roads, Indore.	40.83
4	Solid Waste Management, Indore	43.25
5	Construction of Multi Level Parking at different location in Indore	56.00
6	Purchase of buses for Urban Transport	59.75
7	Houses for Slum Dweller Phase-I	61.93
	Houses for Slum Dweller Phase-II	81.54
8	River Side Corridor	180.00
9	BRTS	868.15

Source: JNNURM project Report for Indore city and www.citybusindore.com

Bhopal

Bhopal is the capital of the Indian states of Madhya Pradesh and the administrative headquarters of Bhopal District and Bhopal Division.

It is known as the City of Lakes for its various natural as well as artificial lakes and is also one of the greenest cities in India. Bhopal is the 16th largest city in India and 134th largest city in the world.

Bhopal (B.M.C) *Rs. in Crores*

S. No.	Project Title	Approved cost
1	Water supply in Gas affected areas, Bhopal	14.18
2	Storm water drain/Channelization of Nallahs, Bhopal	30.57
3	Renewal of Basic Infrastructure New kabadkhana,Bhopal	8.11
4	Renewal of Basic Infrastructure in MP Nagar, Bhopal	18.94
5	BRTS Project Bhopal	237.76
6	Narmada Water Supply Phase I,	306.04
7	Water Distribution Network of Bhopal Municipal Area,	415.46
8	Purchase of buses for Urban Transport	88.75

Sources:- Brochures (Urban Madhya Pradesh the JNNURM Impact) published by Government of Madhya Pradesh, Urban Administration & Development Department

Jabalpur

Jabalpur, formerly known as Jubbulpore, is one of the major cities of Madhya Pradesh state in India. It is the third largest urban agglomeration in Madhya Pradesh and the 38th largest urban agglomeration in India as per the 2011 census statistics.

Jabalpur (J.M.C) *Rs. in Crores*

S. No.	Project Title	Approved cost
1	Sewerage and Sewage Treatment Construction Project Phase I, Jabalpur	78.01
2	Sewerage and Sewage Treatment Construction Project Phase II, Jabalpur	70.81
3	Rehabilitation of existing Pumping Station at Ranjhi Fagua & Construction of new Pumping Station at Bhogedawar WTP,	14.06
4	Purchase of buses for Urban Transport	31.00

Sources:- Brochures (Urban Madhya Pradesh the JNNURM Impact) published by Government of Madhya Pradesh, Urban Administration & Development Department

Ujjain

Ujjain was one of the prominent cities of ancient India which saw the rise and fall of empires like the Mauryas and the Guptas. One of the 12 Jyotirlingas in India, the lingam at the Mahakal is believed to be swayambhu (born of it) deriving currents of power (shakti) from within itself as against the other images and lingams which are ritually established and invested with mantra-shakti.

Ujjain (U.M.C) *Rs. in Crores*

S. No.	Project Title	Approved cost
1	Reorganization of Water Supply system, Ujjain	66.86
2	Purchase of buses for Urban Transport	14.20

Sources:- Brochures (Urban Madhya Pradesh the JNNURM Impact) published by Government of Madhya Pradesh, Urban Administration & Development Department

Water Supply

Water is an incomparable gift of God to humans. God thought of creating human as his form and he made possible an imagination of the most important liquid substance which can be a second name for life and that substance is water the creator of the universe embellished this divine liquid substance with various wonderful physical and chemical properties which are not found in any other liquid substance. So it is called that water is life.

Municipal Corporation is to supply this remarkable gift of god to the whole population of the city. It is a challenging duty for the Municipal Corporation to supply clean water to the common people according to their necessity and availability of the resources.

Solid Waste Management

It is estimated that out of total solid waste generated every day in the urban centers of India at present about 60% of generated are disposed of safely.

The uncollected solid waste remains present in and around the locality or find its way into the open drains. Proper solid waste disposal is also hampered by the non - availability of suitable land fill site, partly due to the high land costs and partly due to rapid growth. However the Municipalities in most states in India are not statuary responsible for collecting Garbage from the households.

Houses for Slum

The problems of unauthorized colonies these colonies lack in infrastructure facilities forcing the inhabitants to live in un-hygienic conditions.

Lack of development particularly to suit the requirement and economic means of squatters have created conditions which motivate unauthorized jhuggis. The housing strategies for the Urban Poor are focused on facilitating the proper land use providing a marketable and legal title to the land owner and providing all infrastructural services for an environmentally sustainable living place.

Construction of Multistoried Parking

With the increasing ownership and usage of private modes for performance of trips the issues related to parking are becoming prominent. In the immediate it is necessary that a parking plan and programme is developed and implemented on a concerted and continuous basis.

To prepare such a programme, a parking policy framework is necessary. Multi-level parking systems require careful planning and assessment of the space available traffic flows and the capacity utilization within that space.

These systems can be integrated within concrete structures. The individual components are installed inside this structure for its operation.

BRTS

Congestion has been named the number one frustration with the roadway network all around the world. Effectively addressing the congestion issue means not only adding new lanes (capacity) to the roadway system, it also means finding ways to make the existing roads work better.

Combining communications strategies and technology to accomplish this is known as Intelligent Transport Systems, or ITS. Bus Rapid Transit System is a new form of public transportation which is an emerging approach to using buses as an improved high-speed transit system. Bus Rapid Transit involves coordinated improvements in a transit system's infrastructure equipment operations and technology that give preferential treatment to buses on urban roadways.

Out Comes of JNNURM Schemes

JNNURM scheme is specifically for Infrastructural Development. Infrastructural Development includes the development of Road Ways, Water Supply, Sewerage, Solid Waste Management etc. which gives a comprehensive look of planned and clean city.

Infrastructural services contribute to poverty and improvement in living standard in several ways. First, these services have strong and direct link to improved health outcomes; Second, Infrastructural services are also associated with improved educational outcomes; Thirdly, it also contribute to improved productivity of business households and government services as improvement in the quality of Infrastructural Development has lower down the cost and also expanded the market opportunities for business.

- Commercial progress that is the business opportunities through export has also increased after infrastructural development.
- Standard of living has also increased as the income has increased.
- Basic facilities such as road ways, water supply, medical etc have increased.
- Education facilities also increased.

Probable Contribution

- Focused attention to integrated development of infrastructural services in the cities covered under the Mission.
- Ensure adequate investment of funds to fulfil deficiencies in the urban infrastructural services.
- Planned development of identified cities including pre-urban areas out growths urban corridors so that urbanization takes place in a dispersed manner.
- To take up urban renewal programme i.e. re-development

of inner (old) cities area to reduce congestion.

- This study helps any one to know more about the JNNURM value of Infrastructural Development.
- The study unfold the affords of Municipal Corporation towards the betterment of cities.

References

- Agrawal, A.N. & Lal, Kundan, Economics of Development & Planning, Vikas Publication House Pvt Ltd, 1994.
- Case Karl .E, Principles of Economics, Pearson Education Asia, 2002.
- Lutyens , Campbell, Infrastructure planning and management

Journals & Reports

- Title: The effects of geography and Infrastructure on Economic Development and International Business Involvement.
- Authors: John. Hill, Myung - su chae, and Jinseo Park.
- Title: Infrastructure Planning, Design, and Management for Big Events
- **Authors: Karlaftis, Matthew .G. Peeta, Srinivas**
- Quarterly Progress Reports of IMC.
- Quarterly Progress Reports of IDA.
- City Development Plan of Indore, Jabalpur, Ujjain, Bhopal.
- DPR of Yashwant Sagar Project of Indore.
- DPR of Slum Project of Indore.
- DPR of Project Solid Waste Management of Indore.
- DPR of Parking Project of Indore.
- DPR of Procurement of Buses Project of Indore
- DPR of BRTS Project of Indore, Bhopal
- Brochures (Urban Madhya Pradesh the JNNURM Impact) published by Government of Madhya Pradesh, Urban Administration & Development Department. page no.4-7

Web Reference

- http://www. Gogle.co.in
- http://www. Jnnurm.nic
- http://www. IMC.co.in
- http://www. Indore.com
- http://www. citybusindore.com
- http://www. adb.org/project
- http://www. Indiaurbanportal.in
- http://www. Indiatimes.com

****

Role Of Foreign Direct Investment In India

S.K. Maheshwari * Ankita Pipada **

Abstract: International Economic Integration plays a vital role in Economic Development of any country. Foreign Direct Investment is one and only major instrument of attracting International Economic Integration in any economy. It serves as a link between investment and saving. Many developing countries like India, are facing the deficit of savings. This problem can be solved with the help of Foreign Direct Investment. Foreign investment helps in reducing the defect of BOP. The flow of foreign investment is a profit making industry like insurance, real estate and business services and serving as a catalyst for the growth of economy in India. The present study is based on the objectives like (a) to know the requirement of amount of foreign investment by India, for its economic Development and (b) to analyze the trend and role of FDI & FIIs in improving the quality and availability of goods has been beyond doubt. To analyze all these objectives data has been gathered through secondary sources like reports and publication of Govt. and RBI relating to foreign Investment. After analyzing all the facts it may be concluded that maximum global foreign investment's flows are attracted by the developed countries rather than developing and under developing countries. Foreign investment flows are supplementing the scare domestic investments in developing countries particularly in India. Further this paper recommends that we should welcome the inflow of foreign investment because it enable us to achieve our cherished goal like making favorable the balance of payment, rapid economic development, removal of poverty, and internal personal disparity in the development and also it is very much convenient and favorable for Indian economy.

Introduction :- Foreign investment plays a significant role in development of any economy as like India. Many countries provide many incentives for attracting the foreign direct investment (FDI). Need of FDI depends on saving and investment rate in any country. Foreign Direct investment act as aa bridge to fulfill the gap between investment and saving. In the process of economic development foreign capital helps to cover the domestic saving constraint and provide access to the superior technology that promote efficiency and productivity of the existing production capacity and generate new production opportunity.

Objectives of Study :-

1. To study the significance of FDI for developing countries in bridging the gap between the saving and Investment.
2. To analyse the trends of FDI & FIIs in the recent past in developing country like India after economic reforms.
3. To study the impact of FDI & FIIs in improving the quality and availability of goods has been beyond doubt.
4. To know the requirement of amount of foreign investment by India, for its economic Development.

Foreign Direct and Indirect Investment :- FDI stands for Foreign Direct Investment, a component of a country's national financial accounts. Foreign direct investment is investment of foreign assets into domestic structures, equipment, and organizations. The FDI can take any route or form to enter into any nation. The three principal forms of FDI in India are joint ventures, acquisition of assets in a country and Greenfield ventures.

According to the international monetary fund, FDI is defined as :- Investment that is made to acquire lasting interest in an enterprise operating in an economy other than that of investor. The investor?s purpose is being to have an effective voice in the management of enterprise."

Foreign indirect investment as portfolioinvestment :- Portfolio investment does not seek management control, but it motivated by profit. Portfolio investment occurs when individual investors invest, mostly through stockbrokers in stocks of foreign companies in foreign land in search of profit opportunities. Foreign investment comes in host country in through various route and many forms. Rather than attracting as much FDI as possible host country governments would be well advised to focus their efforts in inviting the "right" kind of FDI.Among all various routes the two main routes are:

1. Foreign Direct investment (FDI)and
2. Foreign indirect investment (FIIs)

FDI POLICY IN INDIA :- Foreign Investment in India is governed by the FDI policy announced by the Government of India and the provision of the Foreign Exchange Management Act (FEMA) 1999. The Reserve Bank of India („RBI?) in this regard had issued anotification, which contains the Foreign Exchange Management (Transfer or issue of security by a person resident outside(India) Regulations, 2000. This

* Prof. of Commerce ** Research scholar S.V. Govt. Commerce College, Ratlam (M.P.) INDIA

notification has been amended from time to time. Department of Industrial Policy and Promotion (DIPP) under the Ministry of Commerce and Industry, Government of Indiais the nodal agency for monitoring and reviewing the FDI policy on continued basis and changes in sectoral policy/ sectoralequity cap which goes from 26% to 100% at present. The FDI policy is notified through Press Notes/ Policy Circulars by the Secretariat for Industrial Assistance (SIA), Department of Industrial Policy and Promotion (DIPP) Ministry of Commerce & Industry.

FDI is allowed under Direct Route and Government. The foreign investors are free to invest in India, except few sectors/activities, where prior approval from the RBI or Foreign Investment Promotion Board („FIPB?) would be required. FDI in retail sector is allowed through Government Route only.

INDIA FOREIGN DIRECT INVESTMENT :- Foreign Direct Investment in India decreased to 2133 USD Million in December of 2013 from 2381 USD Million in November of 2013. Foreign Direct Investment in India is reported by the Reserve Bank of India. Foreign Direct Investment in India averaged 960.77 USD Million from 1995 until 2013, reaching an all time high of 5670 USD Million in February of 2008 and a record low of 58 USD Million in April of 2003. This page provides - India Foreign Direct Investment - actual values, historical data, forecast, chart, statistics, economic calendar and news.

References-

(1) CMIE (2010), Monthly Review of Indian Economy, Economic Intelligence Service, July 2010, p. 7.
(2) http://www.economywatch/fdi
(3) http://www.epw.com
(4) http://www.imf.com
(5) http://www.indiastat.com
(6) http://www.isid.com
(7) http://www.NCAER.com
(8) http://www.rbi.co.in
(9) http://www.proquest.uni.com.
(10) http://www.ssrn.co.in
(11) http://www.tradechakra.com/indian

ACTUAL	PREVIOUS	HIGHEST	LOWEST	FORECAST	DATES	UNIT
2133.00	2381.00	5670.00	58.00	2022.93 | 2014/01	1995 - 2013	USD MILLION

TRADE	LAST		PREVIOUS	HIGHEST	LOWEST	FORECAST		UNIT
CURRENT ACCOUNT	-5.15	9/30/2013	-21.77	7.36	-37.9	-30	12/31/2013	USD BILLION
CURRENT ACCOUNT TO	-4.6	12/31/2012	-4.2	1.5	-4.6	-5.42	12/31/2013	PERCENT
EXTERNAL DEBT	390048	12/31/2013	345819	390048	75858	411502.68	6/30/2014	USD MILLION
FOREIGN DIRECT INVESTMENT	2133	12/15/2013	2381	5670	58	2022.93	1/31/2014	USD MILLION
REMITTANCES	9194.86	8/15/2013	9112.21	9194.86	5999.1	8088.06	11/30/2013	USD MILLION
TERMS OF TRADE	62	6/30/2013	63	100	62	60.64	12/31/2013	INDEX POINTS
TOURIST ARRIVALS	720000	1/15/2014	800000	800000	129286	687229.37	2/28/2014	
BALANCE OF TRADE	-9913.6	1/15/2014	-10140.3	258.9	-20210.9	-4553.25	2/28/2014	USD MILLION
EXPORTS	26752.4	1/15/2014	26346.06	30849.65	59.01	26475.62	2/28/2014	USD MILLION
IMPORTS	36665.9	1/15/2014	36486.3	45281.9	117.4	30984.59	2/28/2014	USD MILLION

The Career Opportunity in Human resource management

Dr. Nilofar Qureshi* Dr. R.B. Gupta**

Introduction: Human resource management (HRM) is a term used to describe a set of tasks aimed at effectively managing an organization's employees, commonly known as its human resources or human capital. HRM professionals oversee the business of managing people in an organization which includes compensation, benefits, training and development, staffing, strategic HR management and other functions. HR practitioners structure staffing programs to recruit and retain the best employees by making the company competitive in terms of its attractiveness to potential candidates, so that they will choose to accept a position with and remain working for an employer. In today's competitive environment, human capital management is critically important to remain viable in the global marketplace. As a result, HR plays a pivotal role in the world-because people are truly the only thing that differentiates one business from another. Organizations may replicate processes, materials and structures of other successful organizations, but only the talent of an organization makes it unique and distinguishes it from all its competitors.

HR spawned from the human relations movement, which began in the early 20th century due to work by Frederick Taylor (1856-1915). Taylor explored what he termed "scientific management" (later referred to by others as "Taylorism"), striving to improve economic efficiency in manufacturing jobs. He eventually keyed in on one of the principal inputs into the manufacturing process-labor-sparking inquiry into workforce productivity. The movement was formalized[when?] following the research of Elton Mayo and others, whose Hawthorne studies (1924-1932) serendipitously documented how stimuli unrelated to financial compensation and working conditions-attention and engagement-yielded more productive workers. Contemporaneous work by Abraham Maslow, Kurt Lewin, Max Weber (1864-1920), Frederick Herzberg, and David McClelland (1917-1998) formed the basis for studies in organizational behavior and organizational theory, giving room for an applied discipline.

During the latter half of the 20th century, union membership declined significantly, while workforce management continued to expand its influence within organizations. "Industrial and labor relations" began being used to refer specifically to issues concerning collective representation, and many companies began referring to the profession as "personnel administration". In 1948, what would later become the largest professional HR association-the Society for Human Resource Management (SHRM)-was founded as the American Society for Personnel Administration (ASPA).

Nearing the 21st century advances in transportation and communications greatly facilitated workforce mobility and collaboration. Corporations began viewing employees as assets rather than as cogs in a machine. "Human resources management", consequently, became the dominant term for the function-the ASPA even changing its name to SHRM in 1998.[5] "Human capital management" is sometimes used synonymously with HR, although human capital typically refers to a more narrow view of human resources; i.e., the knowledge the individuals embody and can contribute to an organization.

Importance of study

Are you considering human resource management as a career choice? Wise decision! Not only do HR professionals contribute to business viability and success through the strategic management of human capital, but the profession itself continues to increase its stature as a career choice, pursued by many in today's ever-changing, competitive marketplace. In fact, in 2007, Money magazine and Salary.com researched hundreds of jobs and ranked Human Resource Manager as number four on its list of the Top Ten Best Jobs in America based on a variety of factors, including job growth in the next decade, earnings potential, creativity and flexibility. This document strives to give you an overview of the profession, provides pathways for you to consider a career in HR, gives you guidance with regard to deciding to become an HR professional and discusses a very important career booster-pursuing a formal education in human resources. It also gives you an overview of the types of professional positions available so you can make the best career choice for your interests, knowledge, skills and abilities.

HR is a key component of any organization's senior management team. Though the human resources department is widely known for conducting interviews, explaining company benefits, managing employee relations, providing

*** Prof. of Commerce, School of Commerce DAVV, Indore (M.P.) INDIA, ** Prof. of commerce, Shri Atal Bihari Vajpayee Govt. Arts and Commerce College, Indore (M.P.) INDIA**

career development advice and helping hiring managers with performance and productivity expectations, the profession has a much larger role in business today. HR professionals have evolved from the behind-the-scenes administrative role of the 20th century to active involvement in shaping corporate policy. Senior management recognizes the significant contributions of HR to their organization's bottom line and overall success. This shift continues in the profession. To a more significant extent than ever before, many HR roles are consequently focused equally on contributing strategically and functionally to manage the organization's talent. This booklet highlights the various pathways you may choose in order to pursue the career in HR that best meets your needs. It is also important to note that HR professionals often progress to higher levels in an organization-and a career in HR can lead to a position as CEO.

HR has been depicted in several popular media. On the U.S. television series of The Office, HR representative Toby Flenderson is sometimes seen as a nag because he constantly reminds coworkers of company policies and government regulations. Long-running American comic strip Dilbert also frequently portrays sadistic HR policies through character Catbert, the "evil director of human resources".

In practice, HR is responsible for employee experience during the entire employment lifecycle. It is first charged with attracting the right employees through employer branding. It then must select the right employees through the recruitment process. HR then onboard new hires and oversees their training and development during their tenure with the organization. HR assesses talent through use of performance appraisals and then rewards them accordingly. In fulfillment of the latter, HR may sometimes administer payroll and employee benefits, although such activities are more and more being outsourced, with HR playing a more strategic role. Finally, HR is involved in employee terminations - including resignations, performance-related dismissals, and redundancies.

At the macro-level, HR is in charge of overseeing organizational leadership and culture. HR also ensures compliance with employment and labor laws, which differ by geography, and often oversees health, safety, and security. In circumstances where employees desire and are legally authorized to hold a collective bargaining agreement, HR will typically also serve as the company's primary liaison with the employee's representatives (usually a labor union). Consequently, HR, usually through industry representatives, engages in lobbying efforts with governmental agencies (e.g., in the United States, the United States Department of Labor and the National Labor Relations Board) to further its priorities. There are half a million HR practitioners in the United States and thousands more worldwide. The Chief HR Officer is the highest ranking HR executive in most companies and typically reports directly to the Chief Executive Officer and works with the Board of Directors on CEO succession.

Situation Analysis and Barriers

Numerous varied challenges confront HR professionals, who must be capable of handling situations that arise daily in the workplace. If you choose HR as your profession, patience and flexibility will be necessary as you interact with people of widely differing levels of experience, intelligence, emotional intelligence, education, knowledge, skills and abilities. In the early stages of your career, you also will be involved in compliance-related work that demands close attention to detail, a strong knowledge of business and well-developed communication skills. From the strategic viewpoint, when setting policies and practices, you will be the "voice of management" to the employees.

You will also be called upon to act as an advocate for employees to management, to ensure their viewpoint is represented. As a supporter of both the business and the people perspectives, diplomacy is a must. Sound judgment, good listening skills and tact are essential-as are influencing skills, the ability to link people strategies with business strategies, and the ability to prove the value that human capital add to the organization's bottom line.

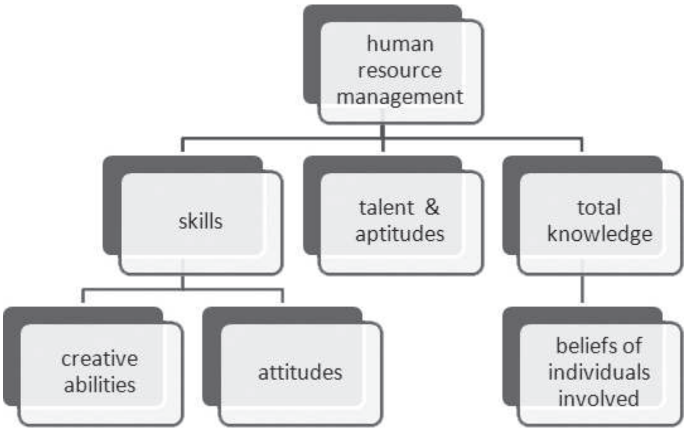

Objectives/ Purpose of Study: The main purpose or objective of research paper study is focuses career opportunities in resource human management.

Methodology of Study: - For methodology an extensive literature review of secondary data from various sources has been held as related to the stated objectives of the study as well as research study on internet survey basis.

Conclusion and findings Suggestions: Human resource management (HRM or simply **HR**) is the management

process of an organization's workforce, or human resources. It is responsible for the attraction, selection, training, assessment, and rewarding of employees, while also overseeing organizational leadership and culture and ensuring compliance with employment and labor laws. In circumstances where employees desire and are legally authorized to hold a collective bargaining agreement, HR will also serve as the company's primary liaison with the employees' representatives (usually a trades union).

HR is a product of the human relations movement of the early 20th century, when researchers began documenting ways of creating business value through the strategic management of the workforce. The function was initially dominated by transactional work, such as payroll and benefits administration, but due to globalization, company consolidation, technological advancement, and further research, HR now focuses on strategic initiatives like mergers and acquisitions, talent management, succession planning, industrial and labor relations, and diversity and inclusion.

In startup companies, HR's duties may be performed by trained professionals. In larger companies, an entire functional group is typically dedicated to the discipline, with staff specializing in various HR tasks and functional leadership engaging in strategic decision making across the business. To train practitioners for the profession, institutions of higher education, professional associations, and companies themselves have created programs of study dedicated explicitly to the duties of the function. Academic and practitioner organizations likewise seek to engage and further the field of HR, as evidenced by several field-specific publications. In the current global work environment, all global companies are focused on retaining the talent and knowledge held by the workforce. All companies are focused on lowering the employee turnover and preserving knowledge. New hiring not only entails a high cost but also increases the risk of the newcomer not being able to replace the person who was working in that position before. HR departments also strive to offer benefits that will appeal to workers, thus reducing the risk of losing knowledge.

HR education also comes by way of professional associations, which offer training and certification. The Society for Human Resource Management, which is based in the United States, is the largest professional association dedicated to HR,[10] with over 250,000 members in 140 countries.[20] It offers a suite of Professional in Human Resources (PHR) certifications through its HR Certification Institute. The Chartered Institute of Personnel and Development, based in England, is the oldest professional HR association, with its predecessor institution being founded in 1918.

Several associations also serve niches within HR. The Institute of Recruiters (IOR) is a recruitment professional association, offering members education, support and training.[21] World at Work focuses on "total rewards" (i.e., compensation, benefits, work life, performance, recognition, and career development), offering several certifications and training programs dealing with remuneration and work-life balance. Other niche associations include the American Society for Training & Development and Recognition Professionals International.

Bibliography

Human resource management by Chuahan by Arvind prakashan Udaipur 2014

* Research & Methodology By C.R. Kothari NAI.P New Delhi 2014
* Indian Economy problem By A.N. Agrawal Uni. Pub.Agra 2014
* Business statistics Shukla & Sahay SBP Agra 2014
* Entrepreneurship R.V. Badi and N.V. Badi Vrinda (P) Delhi 2014
* Business Environment Francis Cherunila HMP.H Mumbai 2014
* Magazines 2014
  * Kuruchatra Monthly Magazine New Delhi
  * India Today Monthly Magazine New Delhi
* News channels 2013 -14
  a. Aaj Tak
  b. NDTV
* News Paper 2014
  A. Nai Duniya Indore by Nai Duniya Group
  B. Times of India by Times of India Group Indore
  C. Bhaskar news paper by Bhaskar group indore
* Internet Websites
  * google search engine
  * rediffmail.com

****

Retail Marketing in Rural India

Dr. Devendra Singh Rathore*

Introduction : India has huge rural market with its gigantic size along with change in consumption pattern, increasing exposure to different lifestyles and products, and increasing purchasing power has attracted corporations and entrepreneur retailers with different retailing formats and models like ITC's Chou pal Sagar, HLL's project Shakthi and Mahamaza, DCM, Tata, Godrej etc in rural India. Reliance, Spencers, Subiksha are extending their reach in semi-urban areas, Unilever, LG, Duncan, Nokia, Sony Ericsson, Novartis are some of the manufacturers with unique marketing programs and special campaigns are very much successful in rural India and many more concepts are likely to be tested in the future.

Today level of penetration for consumer expendables goods like cooking oil, tea, electric bulbs, hair oil, shampoo, toilet soap, toothpaste, washing cakes, washing powder and beauty care product are growing fast compare to consumer durables and therefore, these products provide substantial opportunity to enter the rural markets, A CII and Yes Bank study indicates that rural retail is set to cross USD 60.43 billion by 2015; this figure is estimated to go further up and up. Today rural retail is growing at a much higher rate than urban retail and FMCGs are doing brisck business in rural India. With more than 4.1 million outlets, more than 87% of rural India is still not penetrated by organized retail. As per the 2001 census (Table-1)] around 72 percent of the population living in about 6,38,000 villages are scattered throughout the country and most of the villages having population of less than 1,000. However, few villages do have population of more than 10,000 which make retailers task more complicated in reaching their target customers.

Key Words : Rural population, purchasing power, opportunity to retailers.

Population	Number of Villages	Percentage of Total Villages
Less than 200	114267	17.9
200-499	155123	24.3
500-999	159400	25.0
1000-1999	125758	19.7
2000-4999	69135	10.8
5000-9999	11618	1.8
10000 & above	3064	0.5
Total	638365	100

Source: Census 2001

Scope of the Study : The rural population in India is dependent on agriculture product and therefore, rural retailing has its direct impact. The major crops of India are wheat, rice, pulses ,soya beans, tea, jute, mustard, buffalo milk, cow milk, sugar cane, mangoes, bananas, cotton, potatoes, fresh vegetables, tomatoes and eggs etc. The rural retailing is largely unorganized and dominated by the private traders. The topography of the country is diverse for the movement of the products. Besides, the infrastructure, procurement practices, marketing approaches and processing facilities are also observed as the major constrains in the rural retailing. Therefore, it is necessary to explore the rural retailing along with its challenges, in order to provide insight for existing and potential rural retailers.

Objective of the Study : In recognition of the vast scope that exists in rural India for retailer which intern will help in better availability of quantity goods and services for rural population, the study is designed covering literature on Indian rural retail. The specific objectives of the study will; to overview the overall rural retailing and challenges for rural retailers in India.

Methodology : The study is exploratory in nature and based on the review of literature and secondary data collected from various sources in reference to the above objectives to find out the existing status of rural marketing in the region and challenges for rural retailers in India.

Role of Rural Retailing: India offers a huge, sustainable and growing rural market which can be tapped effectively through innovative retailing. The incomes of rural Indians are dependent on agriculture produce. India has shown a steady average nationwide annual increase in the kilograms produced per hectare (table-2) for various agricultural items, over the last 60 years. Today rural spending is getting less dependent on farm income because of income remittance from migrant rural populations and increase in non -farm activities such as trading and agro processing. Government has also increased procurement price as farmer sail its farm produce to Government. Government has also increased spending in rural areas in order to uplift the standard of life for rural population.

1. Rural Malls (Chaupal Sagar) : - Located at 40-odd kilometers journey from Bhopal towards Sehore, Chaupal Sagar is one of the first organised retail forays into the neighbourhood. It is actually a warehouse for storing the farm products that ITC buys through its e-chaupal. The mall has come up in one part of this warehouse. It has been.

* Professor, Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

Table 2 Agriculture In India, Largest Crops By Economic

Sr. no.	Rank Produce	Economic Value	Unit Price	Average yield, India(2010)	World`s most productive farms (2010)	Country
		(2009 prices USD)	(USD/ Kilogram)	(Tons per hectare)	(Tons per hectare)	
1	Rice	D35.74 Billion	0.27	3.3	10.8	Australia
2	Buffalo Milk	D25.07Billion	0.4	1.7	1.9	Pakistan
3	Cow milk	D14.09 Billion	0.31	1.2	10.3	Israel
4	Wheat	D12.13 Billion	0.15	2.8	8.9	Neither lands
5	Sugar cane	D8.16Billion	0.03	66	125	Peru
6	Mangoes	D8.12Billion	0.6	6.3	40.6	Cape Verde
7	Bananas	D7.60Billion	0.28	37.8	59.3	Indonesia
8	Cotton	D5.81Billion	1.43	1.6	4.6	Israel
9	Potatoes	D5.31 Billion	0.15	19.9	44.3	USA
10	Fresh Vegetables	D5.28 Billion	0.19	13.4	76.8	USA
11	Tomatoes	D4.12 Billion	0.37	19.3	524.9	Belgium
12	Buffalo meat	D3.84 Billion	2.69	0.138	0.424	Thailand
13	Onions	D2.92 Billion	0.21	16.6	67.3	Ireland
14	Okra	D2.90 Billion	0.64	10.6	20.2	Cyprus
15	Chick peas	D2.83 Billion	0.4	0.9	2.8	China
16	Fresh fruits	D2.79 Billion	0.35	7.6	23.9	Israel
17	Eggs	D2.65 Billion	0.83	13.8	24.7	Jordan
18	Soybean	D2.61Billion	0.26	1.1	3.7	Turkey
19	Cattle meat	D2.39 Billion	2.7	0.1	0.42	Japan
20	Groundnuts	D2.33 Billion	0.42	1.1	5.5	Nicaragua

2. Haryali Bazaar: - Having successfully pioneered a new concept of Haryali Kissan Bazaars in 2002 in Hardoi, agri-inputs (Ladwa in Haryana, Ferozpur, Punjab, Kota in Rajasthan and four locations in UP)

3. Innovative Rural Retail Models: - Indian FMCG firms with rural experience have typically used three rural methods-direct distribution structures, van operations and super stockist structures.

Challenges : Although, Rural India presents a great opportunity to retailers; there are still many challenges that have to be overcome. Some of the challenges faced by retailers India are as follows;

1. Huge and Scattered Market : - The rural market of India is large and scattered in the sense that it consists of over 63crore consumers from 5,70,000 villages spread throughout the country, Mass media is having reach to only 57% of the rural population. Therefore, unconventional media including ambient media, events like fairs and festivals, Haats etc.

2. Low Standard of Living: - The consumers in the village area do have a low standard of living because of low literacy, low per capita income, social backwardness, low savings etc. Challenge is to ensure affordability of the product or service. Some companies have addressed the affordability problem by introducing small unit packs.

3. Traditional Outlook: - The rural consumers values old customs and tradition. They do not prefer challenges. Therefore, acceptability for the new product or service becomes challenging. There is a need to offer products that suit the rural market. LG electronics in 1998 developed a customized TV for the rural market and christened it Sampoorna, was a runway hit selling 1,00,000 sets in the very first year.

4. Inadequate Infrastructure Facilities: The infrastructure facilities like roads, warehouses, communications system and financial facilities are inadequate in rural areas. Hence, ensuring availability of the product or service for 6,27,000 villages are spread over 3.2 million sq.km; 700 million become challenging task.

5. Mass media at some point of time in the late 50's and 60's radio was considered to be a potential medium for communication to the rural people. Another mass media is television and cinemas. Statistics indicate that the rural areas account for hardly 2,000 to 3,500 mobile theatres, which is the far less when compared to the number of villages.

6. Availability of Spurious Brands: - For any branded product there are a multitude of "local variants", which are cheaper and therefore more desirable to villagers.

7. Different Lifestyle: - There is a vast difference in the lifestyles of the people. The kind of choices of brands that an urban customer enjoys is different from the choices available to the rural customer. The rural customer usually has 2 or 3 brands to choose from where as the urban one has multiple choices. The difference is also in the way of thinking. The rural customer has a fairly simple thinking as compared to the urban counterpart.

Conclusion: - The retailing in rural market is going to be one of the new avenue with lot of potential for retailers as there is lot of money in rural India. But there are hindrances at the same time. The greatest hindrance is that the rural market is still evolving and there is no set format to understand consumer behavior. The requirement and need of rural India is different from that of rest of the world and for that lot of study is still to require to be conducted in order to understand the rural consumer. The level of penetration except for certain products has been negligible so far. However, so far as the rural share in consumer expendables like cooking oil, tea, electric bulbs, hair oil, shampoo, toilet soap, toothpaste, washing cakes and washing powder is concerned, their share on an average is much higher than consumer durables. Though the rural -urban differentials are not so pronounced in the case of durables, the rural market penetration is low with respect to urban areas . however, in case of health beverages and cosmetics like shampoos, nail polish and lipstick, large gaps exist. Hence, these products provide substantial opportunity to enter the rural markets.

References :

1. Shukla Sunil & Tandon Neena ISSN: 0973-1466 (offline) Rural Marketing- Exploring New Possibilities In The Rural India, Gurukul Bussiness Review (GBR) Vol.7 (Spring 2011), pp125-130
2. Talwar Poonam Sangwan Sunita and Sharma Kuldeep, Retailing Prospects In Rural Market, International Journal of Computer Science and Communication Vol. 2, No.2 , July -December 2011, pp.527-529
3. Balakrishnan Mandira, Rural Market: End of a lng road for consumer marketers decision, July 1977, pp.177-184.
4. Anderson James and N Biliou, Serving the world's poor, innovation at the base of the economic pyramid, Jouranal of Business Strategy, 28(2), 2007

****

Trade & Export Policy and External Sector

S.K. Maheshwari* Ankita Pipada **

Introduction :- India was rated as the most favoured investment destination globally in 2013. During October 2013, foreign institutional investors (FIIs) invested more than Rs 12,100 crore (US$ 1.95 billion) in the Indian equity market. The Indian economy has inherent strengths which give it resilience from external pressures and the series of steps taken by the Government both on the fiscal and current account front have yielded positive results, said MrAnand Sharma, Union Minister for Commerce and Industry, Government of India.

With a focus on the Jawaharlal Nehru National Solar Mission (JNNSM) – Phase 1, the latest World Bank report highlighted that India is well poised to become a global leader in the development of solar power. India has also emerged amongst the lowest cost destinations for grid-connected solar Photovoltaic (PV) in the world.

Capital Inflows :- India's foreign exchange reserves (Forex) stood at US$ 286,264 million as on November 22, 2013. Foreign currency assets aggregated to US$ 258,665 million and the value of gold reserves stood at US$ 21,227 million, as on November 22, 2013, according to the weekly statistical data released by Reserve Bank of India (RBI).

Indian corporates raised Rs 1.7 trillion (US$ 27.37 billion) through commercial papers (CPs) during the first half of FY14. A total of 169 issuers raised this amount, according to a report by Prime Database. Remittances by non-resident Indians (NRIs) registered a growth of 27 per cent to touch US$ 6.5 billion during January–September 2013, as compared to 7 per cent growth during the same period last year.

Foreign Direct Investments (FDI) :- The total amount of FDI inflow into India (including equity inflows, 're-invested earnings' and 'other capital') from April 2000 to October 2013 stood at US$ 309,012 million, according to data released by Department of Industrial Policy and Promotion (DIPP). The cumulative amount of FDI equity inflows during April 2000 to October 2013 stood at US$ 205,885 million.

The Government of India has allowed 100 per cent FDI under automatic route in storage and warehousing, including warehousing of agricultural products with refrigeration (cold storage). The Government has also approved 20 FDI proposals amounting to Rs 915.83 crore (US$ 147.48 million), based on the recommendations of Foreign Investment Promotion Board (FIPB).

The Indian metallurgical sector attracted the maximum investment commitment, out of 38 sectors tracked by DIPP during January–October 2013 period, with projects worth Rs 1.1 trillion (US$ 17.71 billion); lined up under industrial entrepreneur memorandums signed between industrialists and various State Governments.

Foreign Institutional Investors (FII) :- The value of private equity (PE) transactions in India's real estate sector during the first nine months of 2013 increased by 26 per cent to Rs 4,716 crore (US$ 759.42 million), as per a report by real estate consultancy Cushman & Wakefield.

India is witnessing an increased interest from PE investors in the agri-logistics and cold chain industry. PE firms have invested about Rs 940 crore (US$ 151.37 million) in 11 companies in the sector in the past three years, according to Venture Intelligence.

An empowered group of ministers (EGoM) has cleared the mergers and acquisitions (M&A) guidelines for the telecommunication sector, in order to encourage consolidation in the sector. RBI has allowed foreign retail investors, including NRIs, to invest in rupee-denominated tax-free non-convertible bonds.

Exports :- Garment exports from India is expected to touch US$ 60 billion over the next three years, with the help of government support, said Dr A Sakthivel, Chairman, Apparel Export Promotion Council (AEPC). Exports of jute products from India is expected to touch Rs 2,800 crore (US$ 450.89 million) in value in 2013–14, up 33 per cent from Rs 2,094 crore (US$ 337.20 million) in 2012–13, as per data by the Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics (DGCIS).

Harley Davidson plans to export India-made Street 750 bikes to European countries like Italy, Portugal and Spain. Exports have been the lifeline for many Indian companies. There is potential for the electrical industry to increase exports to US$ 25 billion, especially in markets like Africa and Middle East, said Mr Raj Eswaran, President, Indian Electrical and Electronics Manufacturers' Association (IEEMA). In order to lend support to exports, Mr P Chidambaram, Union Minister for Finance, Government of India, has approved additional funds worth Rs 2,000 crore (US$ 322.06 million).

External Sector :- India is on its path to prove itself as an important destination globally. A snapshot of the same is

*** Prof. of Commerce ** Research scholar, S.V. Govt. commerce college, Ratlam (M.P.) INDIA**

highlighted below:

- ❖ The India–France Technology Summit, organized by Department of Science and Technology (DST), Confederation of Indian Industry (CII) and French Embassy has signed 11 memorandums of understanding (MoUs) between India and France in the field of science and technology and education.
- ❖ The bilateral trade between India and Japan is set to grow further with increased focus on areas such as agriculture, food processing and biotechnology, according to Mr Masaki Takaoka, Deputy Mayor of Miyoshi City, Japan.
- ❖ India and Belgium have agreed to work on signing a MOU to strengthen, promote and develop renewable energy cooperation between the two countries.
- ❖ Bilateral trade between India and Iran is expected to cross the US$ 20 billion mark, up from US$ 15 billion during 2012–2013.
- ❖ Bilateral trade between India and New Zealand is estimated to double by 2020, from NZ$ 1.2 billion (US$ 993.56 million) expected in 2013, as per Mr. Jan Henderson, New Zealand High Commissioner to India.
- ❖ India and the United Arab Emirates (UAE) have signed a bilateral investment promotion and protection agreement (BIPPA). UAE is India's largest trading partner. Trade between the two countries stood at US$ 75.45 billion in 2012–13.

Foreign Trade Policy :-

- ❖ India and the European Union (EU) have signed an agreement to facilitate development and non-discriminatory enforcement of competition laws. The two sides will exchange non-confidential information, experiences and views pertaining to competition policy and enforcement.
- ❖ The Government of India has approved the enhancement of the bilateral currency swap arrangement between RBI and Bank of Japan from US$ 15 billion to US$ 50 billion.
- ❖ India and Macedonia have signed a new double taxation avoidance agreement (DTAA) that provides for, among other things, exchange of banking information for tax administration purposes.

Road Ahead :- India is being identified as one of the most important players in the globally changing economic landscape. India also has a strong scientific and engineering talent base. There is a parallel process of business and industry in the country which brings forth new opportunities that economic developments in India have created. These opportunities give impetus to the Indian economy as global players try to carve a niche for themselves.

Exchange Rate Used: INR 1: US$ 0.01611 as on January 8, 2014

References:

- ❖ Department of Industrial Policy and Promotion (DIPP), Media Reports, Press Releases, Reserve Bank of India (RBI).

****

Role of Mobile Phones in Rural and Agricultural Development

Dr. Sanjay Prasad * Prof. Deepali Amb (Prasad) **

The study found evidence that mobiles are being used in ways which contribute to productivity enhancement. However, to leverage the full potential of information dissemination enabled by mobile telephony will require significant improvements in supporting infrastructure and capacity building amongst farmers to enable them to use the information they access effectively. As mobile penetration continues to increase among farming communities and information services continue to adapt and proliferate, the scope exists for a much greater rural Agricultural productivity impact in the future.

Key words: - Mobile phones, Farmers and Agricultural productivity

Introduction:- The Indian agricultural sector has been characterised by low productivity growth despite periods of strong growth in the past. Serious challenges must be addressed in order to achieve faster productivity growth. These include infrastructure constraints, supply chain inefficiencies and significant problems in the diffusion of and access to information. The challenge for the government and policy makers is to regain agricultural dynamism. To achieve a higher agricultural growth rate, the next generation green revolution in India must be preceded by the next generation of technology and infrastructure development. Small and marginal farmers, who are the vast majority of Indian farmers, are often unable to access information that could increase yields and lead to better prices for their crops. The sector also faces problems arising from a shortage of investments in rural infrastructure, which adversely affects farm productivity growth. A push towards higher agricultural productivity will require an information-based, decision-making agricultural system (precision agriculture). This is often described as the next great evolutionary step in agriculture. Precision agriculture, in turn, is heavily dependent on an efficient information dissemination system – GPS and mobile. Mobile phones are rapidly spreading all over the world. The global mobile user rate was estimated at about 87%. Poor developing countries are increasingly part of this widespread use of mobile phones and mobile phones are also making quick inroads to rural areas where most of the poor live. This rapid spread of mobile phones over's new possibilities for poor rural and agricultural households in developing countries as they allow users to overcome important barriers of physical distance and improve access to information and services. Mobile phones are increasingly used in rural areas in India to disseminate daily Prices of agricultural commodities. Better and timely price information may improve the welfare for small farmers in deferent ways.

- First, better information may lead farmers to make better allocation of production factors. When the farmers receive clear production incentives, they can better market opportunities through the adjustment of production plans.
- Second, information can improve the bargaining position of the small farmers and improve competition between traders.
- Thirdly, given the provision of alternative nearby markets, farmers can use the information to switch between end markets. And farmers can use the information to make choices around the timing of marketing. Consequently, erratic price variations should be reduced as arbitrage over time and space becomes easier and more widespread. Together a series of case studies on the use of telecommunications for development and poverty reduction.

Objective of the Study:- The study tests the hypothesis that mobile phones help reduce the information asymmetry that exists in the agricultural sector and improve farm productivity and profitability. Profitability would improve through a reduction in (i) transaction costs with respect to both inputs and output; (ii) information search costs by saving on time and (iii) travel cost. We expect farmers' revenue to increase because of both increased access to information on prices and reduced wastage/spoilage, including that from crop infection. Better and timely decision-making on the optimal cropping pattern to be adopted and the use of better inputs, particularly improved seeds varieties, are expected to deliver better yields and profits. The key argument here is that that information received through mobile phones could play a complementary role to extension activities and would have a better impact than other one-way information sources (e.g. radio, television, newspapers etc.). The recent introduction of a number of mobile-enabled information services suggests it is time to take a fresh look at their impact on agriculture in India. These services deliver a wide range of information to farmers. This study is the first to look

* H.O.D & Assistant Professor, Commerce, Govt. Degree College, Sanwer, Indore (M.P.) INDIA
** H.O.D & Assistant Professor, Zoology, S. V. Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

at the impact of mobile phones on the crop sector in India with a focus on small farmers. The results are based on information collected through focus group discussions and interviews with farmers carried out in Madhya Pradesh, Uttar Pradesh, Rajasthan, Maharashtra and the National Capital Region of New Delhi. The study does not cover all regions of India nor is it fully representative of rural India. The purpose of this study is to ascertain, at the micro level, whether the distribution of agricultural information through mobile phones generates important economic base. It's in rural and agricultural settings. We largest and best established private provider of agricultural price information services in India at the time of the experiment.

Impact of Mobile on Agriculture:- While most farmers reported that they used their mobile phones primarily for social purposes, the information accessed by interviewees on their mobile phones and compares it with information accessed from other sources as reported in the Information regarding seeds is the most frequently accessed information in our sample. The market price is the second most important piece of information accessed by farmers in our sample, followed by plant protection and fertiliser application. While the rankings between our survey and the differ somewhat, information on fertiliser application and plant protection are crucial in both surveys. Operating in Madhya Pradesh and other Indian states, distributes market price information, Weather updates and crop advisory information through Mobil phone. We opened Producer price dispersion across markets an important perishable cash crop in Niger. In contrast, for a storable subsistence crop such as millet, the mobile phones on farm-gate price dispersion are limited to those markets located within a certain radius. They do not evidence that mobile phones led to higher farm-gate prices. The number of the communities covered by the mobile phone network was increasing rapidly. After the expansion of the mobile phone coverage, the proportion of the farmers who sold banana increased in communities more than 20 miles away from district centres. These results suggest that mobile phone coverage induces the market participation of farmers who are located in remote areas and produce perishable crop. An agricultural price radio broadcast on the spread of market information in Uganda. They a significant impact on farm prices of having access to radio information. Who focus on poorly developed agricultural markets, we focus on a part of India where small scale commercial farming has been on the rise, with a growing emphasis on horticulture for urban domestic consumption. Because these crops are still relatively new to small farmers and markets are rapidly evolving in response to the growth of the economy, we expect price and crop information to be particularly useful to study farmers. Customer satisfaction data collected by report that information on prices in distant markets enables them to insist on higher prices from traders and to monitor the performance of commission agents. The areas where farmers benefited from improved access to information included seed variety selection, best cultivation practices, protection from weather-related damage, handling plant disease and price realisation. 'Best cultivation practices' was the most significant category across both information services. The impact of market price and demand information was mostly reported among Mobil subscribers. Market information influenced farmers to alter where and when they sold their crop in order to maximise revenues and in some cases, provided ammunition to farmers to negotiate better pricing terms from local traders.

Conclusion:- Mobil information platform to receive sms or voice message information, mobiles provides the ability to get connected to new knowledge and information sources not previously available with the possibility of real-time, highly tailored information delivery. Mobile phones are being used in Indian agriculture and are starting to deliver agricultural productivity improvements, an impact that is enhanced by the new mobile-enabled information services. The most common benefit of mobile telephony found in the research was derived from the use of mobile phones as a basic communications device as for many of the farmers interviewed, it was the only convenient phone access they had. To improve agricultural productivity growth. Increased public and private investment will be necessary to resolve critical infrastructure gaps. Policy changes may also be needed to encourage better access to high-quality inputs and credit for small farmers. Increased extension services and capacity-building efforts can complement information dissemination via mobile phones and associated services to accelerate the adoption of new techniques. Social networks may play an important role in building the trust and confidence required to influence the adoption of new mindsets and actions by small farmers. Additionally, basic information will need to be supplemented by a range of other activities such as demonstrations and broader communication efforts. A stronger effect on crop quality may be obtained if price information is detailed by variety and grade, and farmers are provided with complementary information on how to produce high price varieties and grades. These suggestions should help steer policy intervention towards regions and markets where the effect of price

information may be beneficial, and avoid wasting resources on markets where it is unlikely to matter.

References:-

1. Aker, J.C and M. Fafchamps (2011), .Mobile Phones and Farmers.Welfare in Niger., University of California, Berkeley.
2. Abraham, Reuben: "Mobile Phones and Economic Development: Information Technology and International Development, Volume 4, (2007).
3. Goyal, A. (2010), "Information, Direct Access to Farmers, and Rural Market Performance in Central India", American Economic Journal: (July 2010).
4. Marcel Fafchampsy Bart Mintenz,Impact of SMS-Based Agricultural Information on Indian Farmers September 2011
5. Bertolini, Romeo: "Making Information and Communication Technologies Work for Food Security in Africa. 2020", Washington, USA, October 2004.
6. World Bank (2010), India Economic Update, June 23 2010.
7. Socio-Economic Impact of Mobile Phones on Indian Agriculture - Surabhi Mittal, Sanjay Gandhi, Gaurav Tripathi, February 2010
8. "The Role of Mobile Phones in Sustainable Rural Poverty Reduction report", World Bank Report - ICT Policy Division, Global Information and Communications Department, The World Bank, June 2008.
9. Economic Survey, 2010-2011, Ministry of Finance, Government of India.
10. "Agricultural Research and Productivity Growth in India", Research Report No 109, International Food Policy Research Institute, Washington, D.C.
11. Kumar, Praduman and Surabhi Mittal (2006), "Agricultural productivity trends in India: Sustainability issues", Agricultural Economic Research Review.
12. Mittal, Surabhi and Praduman Kumar (2000), "Literacy, technology adoption, factor demand and productivity: An econometric analysis", Indian Journal of Agricultural Economics.
13. "Situation Assessment Survey of Farmers", National Sample Survey organization (June, 2005).

****

Management and Institutional Planning

Meenu Ghazala Khan *

Higher education has become a challenge in terms of students, staff and resources. It has responsibility of imparting quality in the fields of literacy. Numeracy and skills for life and knowledge in different areas like health, nutrition, science and technology, economic social and political. But now our department is lacking the elite and recruiting contact teachers who may be sometimes under-qualified.

The higher education institutions are either public or private. Public Institutions get government grants as well as generate funds from fees etc. while private institutions get money from high fees and external aids. We see that private colleges are scattered everywhere like Mushrooms and they appoint under-qualified teachers who are low paid and who can bring only results in masses, scores only marks and no knowledge. Hence, the education has become merely result oriented for getting marks, certificates and degrees only. Hence, quality has become an issue that cannot be avoided. It bring efficiency, effectiveness and specialty, which nourish and adorn the personality of student. Education must be meaningful, worthwhile, responsive to students for fulfilling the social needs and requirements.

Remedies and Recommendations :-

- Education must be modern and diversified.
- It must be more competitive, attractive, job oriented and relevant to society.
- The syllabus must be interesting and attractive rather that stressful and bore. It should be regularly renewed to make it more practical and job oriented produce skilled students for economic development.
- Multi media Aids must be are helpful.
- Regular attendance of students can be encouraged by their involvements in various joyful curricular activities.
- Mind mapping methods can be used to nourish and sharpen the memory.
- Humorous atmosphere should be provided for learning and communication for reducing the stress and strain of studies.
- Language labs having posters, charts, movies, models, games and quiz etc. should be developed in the institutes.
- Different types of clubs and socio-cultural societies of student's interest and benefits may be formed.
- The education must be practical rather than theoretical.
- The institution must concentrate on achieving goals and mission for competition and enriching economy.
- The mission, goals, strategies and plans must be communicated to the students deliberately. So that they also participate in achieving their goals through courses and learning.
- Efforts should be done what students actually learn and how well they learn.
- Emphasis on what the students should know understand demonstrate and become.
- Outcome should be achieved by the end of teaching-learning process, which fulfill real life needs and ensure integration of knowledge, progress and responsibility.

I would like to recommend the change in semester pattern. As the first two semesters must cover basic knowledge of all disciplines may be of Arts, Science or Commerce along with the thorough knowledge of languages (Hindi and English). Next two semesters will have theoretical knowledge of technical and vocational education and the last two semesters must have practical knowledge of above courses.

Suggestions of Students -

- Good atmosphere and facilities like water, medical, power, well furnished buildings should be provided.
- Recruit more staff, so that students are put in small manageable groups.
- Examination records should be communicated to individual through net on PCS. Tabs and Mobiles.
- Remunerations for office and other staff should be revised so that they give friendly and valuable services.
- Mandatory counseling should be encouraged to help students cope with the social academic and bureaucratic challenges.

Conclusion :- As the world is advancing into a phase of highly competitive environment in all aspects of day to day life, the students need to be well educated to cope up with the innovations. Hence, the prepared system will shape the students and furnish their personalities and allow them to move up in the world, seek better jobs and high positions in the society.

New data also reveal the importance of good education for social mobility and access to good and well paid jobs. The earning gap and employment rate between people with higher education and the less educated continued to rise during global recession. 24-64 years old man with higher education earned 67% more in 2011 than rise in with upper secondary education up from 58% in 2010 for women, the earning premium grew in 59% in 2012 from 54% in 2010.

References -

1. CBSE Institute and IT Colleges.
2. IPS College students (4th Jan.) Indore
3. Kothari Institute Indore (30th Dec. 2013)

* Asst. Professor (English) Govt. College, Maksi Distt. Shajapur (M.P.) INDIA

Role of women entrepreneurs in india

Dr. Vimmi behal* Dr. Anil shivani **

Abstract : The aim of present paper is to prove a fixed point theorem on three complete Menger spaces which extend the result of Sharma et. al. [11] **AMS Subject Classification :** Primary 47H10, Secondary 54H25.

Introduction :- What is an entrepreneurs? A entrepreneurs is some one who is a risk taker and is ready to face challenges. women entrepreneurs may be define das the women or a groop of women who initiate,organise and operate a business enterprise. Government of India has defined women entrepreneurs as an enterprise owned and controlled by a women having a minimum financial interest of 51 % of the capital and giving at least 51 % of the capital and giving at least 51 % of the employment generated in the enterprise to a women. They must be made part of the economic development, because it will ensure the economic and social development of the women along with providing more human resources to strengthen the economy of the country . The economic status of women is now accepted as an Indicator of a society's stage of development.

Role of a women as a entrepreneurs

Role of a women as a entrepreneurs imaginative attribute to hard work persistence ability and desire to take risk profit earning capacity.

Imaginative - It refer to the imaginative approach or original ideas with competitive market. well planned approach is needed to examine the existing situation and to identity the entrepreneurial opportunities.

Attribute to work hard - Attribute to work hard enterprising women have further ability to hard work. The imaginative ideas have to come to a fair play. Hardwork is needed to build up an enterprise.

Persistence - Persistence women entrepreneurs must have an intention to fulfil their dreams. They have to make a dream transferred into an idea enterprise, studies show that successful women work hard.

Ability and desire to take risk - The Desire refers to the willingness to take risk and ability to the proficiency in planning making forecast estimates and calculations.

Profit earning capacity - Profit earning capacity she should have a capacity to get maximum return out invested capital.

Women entrepreneurs of India.-

" My vision is to grow into a global bio therapeutics company with very innovative and proprietary products and technologies - kiran mazumdar shaw, CEO, Biocon.

" Seeing your own production being aived is a great kick and the fact that most of them figure among the top ten TRP rating makes me feel wonderful."-Ekta kappor, Creative director, Balaji Telefilms.

" I don't sell products . I sell an entire civilization in a jar. "-Shahnaz Hussain.

Problems of women entrepreneurs :-

Problem of finance scarcity of raw material, Male dominated society, tough competition with large scale units, lack of education, low risk bearing ability, lack of business training, Non-awareness of facilities provided by Government question licensing authorities marketing.

Suggestions :- Procedure of getting finance should be simple effective propagation of programmes and yojans. linkages between product, services and market centers. Encouragement to technical and professional education.

According to Indian Approach - when women more forward , the family moves, the village moves and the nation moves - Pandit Jawaharlal Nehru .Earlier there were 3ks , kitchen, kids, knitting. Then came 3ps , powder,papad pickles, At present there are 3Es]electronics energy, engineering.

Conclusion - Women entrepreneur are those women who think of a business enterprise, initiate it organize and combine the factors of production, operate the enterprise, undertakes risk and handle economic uncertainties involved in running a business enterprise.

Reference :-

1) Kurukshetra June 1998
2) Women management review in vol 90
3) women entrepreneurship in India vol 2

****

* Prof. Govt. College, Kala pipal (M.P.) INDIA **Prof., Hindi university, Bhopal (M.P.) INDIA

Analysis Of The Infrastructure Development And Management Of Mid Day Meal Scheme In Madhya Pradesh

Dr. Satish Maheshwari * Madan Mohan Vishwakarma **

Introduction And Brief History:

The Mid Day Meal is the world's largest school feeding programme reaching out to about 12 crore children in over 12.65 lakh schools/EGS centres across the country. Mid Day Meal in schools has had a long history in India. In 1925, a Mid Day Meal Programme waszintroduced for disadvantaged children in Madras Municipal Corporation. By the mid 1980s three States viz. Gujarat, Kerala and Tamil Nadu and the UT of Pondicherry had universalized a cooked Mid Day Meal Programme with their own resources for children studying at the primary stage By 1990-91 the number of States implementing the mid day meal programme with their own resources on a universal or a large scale had increased to twelve states.

The National Programme of Mid Day Meal (MDM) was formally launched on 15th August, 1995. The implementation of MDM was started in Madhya Pradesh in 1995. Initially the scheme, provided for distribution of dry rations or Daliya/ Porridge as per availability of financial resources with implementation agency. In the year 2004, the State Government decided to replace 'Daliya' or 'Porridge' by cooked meal in the form of Dal-Roti /Dal-Sabji or Dal-Rice /Dal-Rice-Sabji to students of government /government aided primary schools.

Later in the academic year 2004-05 Government of India, Ministry Of Human Resources Development also issued instructions and provided assistance for cooking cost to serve the cooked food for primary schools under MDM. The menu and quantity of MDM for primary school children was revised and improved (Dal-Roti-Sabji in wheat predominant area and Dal-Rice-Sabji in Rice predominant area).

In Madhya Pradesh from 15th August 2006, consequent to the increased assistance for cooking cost from Rs. 1.00 to 1.50 per child per day made available by the Govt. of India. In the academic year 2007-08, the implementation of MDM has also been started in middle schools of Educationally Backward Blocks of Madhya Pradesh, as well as year 2008-09 the implementation of MDM has been started in all blocks of Madhya Pradesh, as per instructions of Government of India. The menu prescribed for middle schools is same as that for primary schools but with increased quantity. The Mid day meal scheme has helped in giving a boost to achieve the goal of Universalisation of elementary education, by increasing retention rate and attendance and improving creating additional nutrition of students in target schools. It has also helped in creating additional livelihood opportunities for rural poor engaged in its implementation.

Objectives Of MDMS :

The objectives of Mid Day Meal Scheme are:

1. Universalisation of education
2. To provide cooked Mid-Day Meal to the students of the government and government aided schools of the State
3. To improve the nutritional health standard of growing children.
4. To increase retention and attendance and reduce dropout rate of children in government and government aided schools.
5. To attract poor children to school by providing Mid-Day Meal to them.
6. To increase the employment opportunities at the village level by linking rural poor with income generating activities related to revised Mid Day Meal Scheme.

Management Structure Of MDMS:

1. State Level

(See- sManagement Structure)

Roles And Responsibilities Of SHGS/ SMCS:

SHGs / SMCs are responsible for implementation of MDM at School level. In the urban area Bhopal, Jabalpur, Indore, Ujjain, Gwalior, Khandwa, Katni and cooked food through centralized kitchen facility set up by NGOs. The rate of cooking cost per child per day provided at school level is Rs. 3.11 (primary level) and Rs. 4.65 (Upper primary level and NCLP schools). For cooking food, fuel wood/cooking gas/kerosene etc. are used as per local availability. Adequate cooking devices have been made available in all schools. Cooks are engaged by the SMCs and preference is given to SC/ST women for the same. Gradually the work of management is being given to woman's SHGs who undertake cooking and management of the Programme. The arrangements for utensils e.g. plates, table spoons, serving bowls, glasses etc. are being made with the help of central assistance and funds provided by State Government. To ensure that the stipulations regarding hygiene, quantity and quality of cooked food are maintained,

* Professor Of Commerce, Swami Vivekanand Govt. Commerce College Ratlam (M.P.) INDIA
**Ph.D. Scholar, Swami Vivekanand Govt. Commerce College Ratlam (M.P.) INDIA

appropriate supervisory mechanisms have been established at the local level. The SMCs, Gram Panchayat, Cluster Resource Coordinators and District/Block level officials carry out the supervision of the Programme on regular basis.

The major roles and responsibilities of SHGs/ SMCs are as follows:

1. Procurement / Transportation of food grains from nearest Fare Price Shop to Primary school.
2. Finalization of menu in such a manner that maximum nutrition can be provided with the per capita food grains and cooking cost made available.
3. Storage of Food Grains {
4. Getting the wheat grinded
5. Procurement of cooking ingredients such as fuel, vegetables, salt, chilies, condiments etc. from the local market and to ensure the quality of materials purchased is of desired standard for children's consumption
6. To ensure that the cooks/member of SHGs are issued the rations as per the strength of students.
7. To ensure that the food is cooked in hygienically clean conditions.
8. To ensure that the food is served regularly
9. To maintain regular records and inventory
10. To ensure that the quality of food supplied is as per children likes and there is no wastage of material.

Lifting And Transportation Of Food Grains:

After receiving allocation of food grains from Government of India the State Government reallocate the food grains on the basis of average attendance and number of educational days of the districts. District Collector / CEO Zila Panchayat release 3 monthly Release Orders are issued to the SHGs / SMCs on the basis of which the food grains are lifted from Fare Price shops by the SHGs / SMCs. Records & registers are maintained at the school level with respect to food grains received and utilized by implementing agency.

Appropriate arrangements have been established between FCI depots and SHGs. / SMCs of schools in each district to ensure timely lifting and transportation of food grains up to the school.

The lifting and transportation of food grains is carried out as follows:

FCI Depot

⇩

MP State Civil Supplies Corporation Ltd. District centre

⇩

Lead Society

⇩

Fare Price Shop (Link Society)

⇩

SHGs / SMCs

After lifting food grains from FCI depot, suitable arrangement has been made at all levels for its secured storage. M.P. State Civil Supplies Corporation Ltd and representatives of District Collector carry out joint inspections of food grains for monitoring Fair Average Quality (FAQ) of the supply.

The FAQ monitoring is also done at the level of lead society, link society and SHGs / SMCs. After inspection District Manager, MP State Civil Supplies Corporation Ltd. submits a monthly report to the State Coordinator, MDM with regard to FAQ Food grains supply. Besides FCI also maintains the sample of food grains lifted by MP State Civil Supplies Corporation Ltd., so that they can be used for inspection and verification in case of complaints.

Analysis of monthly progress reports of FCI & M.P. State Civil Supplies Corporation Ltd is carried out at State level with regard to food grain lifting and enquiries are made from districts where the off take percentage is less than 80%.

The status of lifting and utilization of food grain allocated during 2012-13 upto the period of 31st December 2012 is as given below :-

(Quantity in MTs.)

Food Grains	Primary	Upper Primary	Total
allocation	138285.86	97423.73	235709.59
Opening balance	21500.98	2860.84	24361.82
lifted	85802.51	60486.10	146288.61
utilized	85250.37	63786.26	149036.63
Balance as on 31.12.12	22053.13	-439.32	21613.81
% of Utilization	62	65	63

The 3rd Review Mission has recommended that the rice in the form of vegetable khichri / Pulav should be included at least one day in the menu of wheat dominated areas as well in order to have variety in the diet of children.

Therefore the State had provided one day rice in wheat dominated areas from the year 2012-13.

From the bigning the District Chattarpur is considered as rice dominated areas but actually the district lies in Bundel khand region where students prefer wheat instead of rice. The District Collector has also sent proposal to consider Chattarpur district as wheat dominated areas.

System And Mode Of Payment Of Honorarium:

System and mode of payment of honorarium to cook-cum-helpers and implementing agencies viz. NGOs / SHGs / trust / centralized kitchen etc.

The system for payment of honorarium to cook-cum-helper is carried out as a follow :-

MDM Parishad

⇩
CEO Zila Panchayat
⇩
NGOs/Centralized Kitchen shed
SHGs / SMCs
⇩
By cheque
Cook cum helper's bank A/c

President and Secretary of SHGs / SMCs given cheque to cooks for payment of honorarium to cook-cum-helper every month till the date of 10 of the following month. NGOs / trust / centralized kitchen has appointed one cook- cum-helper on basis Of 100 per students.

Honorarium of cook-cum-helper Central and State Share (April 12 to Dec. 12)

(Rs. In Crore)

Cooks	Primary			Upper Primary		
	Central	State	Total	Central	State	Total
Allocation	153.22	51.07	204.30	53.12	17.70	70.83
Opening	27.72	10.23	37.95	5.95	2.09	8.05
Released	72.62	24.21	96.83	25.18	8.39	33.57
Total	100.34	34.44	134.78	31.13	37.87	69.00
Expenditure	88.04	29.35	117.38	34.10	11.37	45.46
% ofExpenditure	57.46	57.47	57.45	64.19	64.24	64.18

Primary 2.04 Lakh Approved, 1.73 Lakh Engaged

Upper 0.71 Lakh Approved, 0.66 Lakh Engaged

Utilization of Cooking Cost Central and State Share 2012-13:

(Rs. In Crore)

Cooking cost Primary	Primary			Upper		
	Central	State	Total	Central	State	Total
Allocation	319.84	106.61	426.45	224.98	74.99	299.97
Opening	37.83	14.90	52.73	21.79	7.01	28.80
Received	154.83	51.71	206.54	109.20	36.35	145.55
Available Total	192.66	66.61	259.27	130.99	43.36	174.35
Expenditure	196.51	65.56	262.07	147.85	49.22	197.07
% of Expenditure	61.44	61.50	61.45	65.72	65.63	65.70

Procedure And Status Of Construction Of Kitchen-Cum-Store:

i) Funds released under the Mid Day Meal Scheme for construction of kitchen-sheds:

The Government of India has provided total assistance of Rs. 598.33 Crore for construction of kitchen-sheds in 98462 primary & Upper Primary schools upto 2012-13. Out of this total assistance, an amount of Rs. 556.80 Crore has been utilized for construction of 92937 kitchen sheds upto 31st December 2012. Remaining Remaining KS in 5525 schools are under construction with an expenditure of Rs. 41.53 Crore. Government of Madhya Pradesh has made following arrangements for the quality construction of kitchen-sheds:-

1. The drawing and design of kitchen-shed is adopted on the basis of the drawing included in the Programme guidelines of Government of India.
2. Gram Panchayat has been appointed as implementation agency. The technical support to Gram Panchayats is being provided by the staff of Rural Engineering Services.
3. Instruction have been issued to all Gram Panchayats regarding their responsibilities.
4. The supervision of construction of kitchen-sheds is also being carried out by the staff of Rural Engineering Services.
5. The monitoring of construction of kitchen-sheds is being done by Chief Executive Officers of Zila Panchayats, Chief Executive Officers and Janpad Panchayats and Executive Engineers (RES).
6. Time line has been given to all districts for completion.

ii) Funds from other development programmes for construction of kitchen-sheds:

In Madhya Pradesh the kitchen-sheds are being constructed with the help of resources available in the various rural development schemes such as, SGRY, Rashtriya Sum Vikas Yojna, Backward Grant Region Fund (BRGF), funds from finance Commission by in addition to this Tribal Welfare Department has also provided funds from the state resources for construction of kitchen-sheds.

The status of construction of kitchen-sheds out of these funds during the year 2006-07 to 2012-13 is as given below :-

(Rs. in lakh)

Completed		In progress		Total Achievement		Yet to be started	
Physical	Financial	Physical	Financial	Physical	Financial	Physical	Financial
18584	5104.60	-	-	18584	5104.60	-	-

Procedure of procurement of kitchen devices from

(i) funds released . under the Mid Day Meal Programme

(ii) (ii) other sources.

a) Funds released under the Mid Day Meal Programme:

Primary and Upper Primary Schools

1. Govt. of India provided Rs. 53.77 Crore for procurement of cooking equipments/kitchen devices in 107531 primary and Upper Primary schools upto 2010-11.
2. Rs. 53.46 Crore has been utilized and procurement of cooking equipments/kitchen devices is completed in 107231 primary and Upper Primary schools upto 31st December, 2012.
3. Procurement in remaining 300 schools is under progress.
4. State Government has provided Rs. 14.70 Crore for 8735

upper primary schools for procurement of kitchen devices.

b) Other Sources :

from other sources e.g. State Budget of Tribal Welfare Department, School Contengency Fund and Community Contribution,

The status of procurement of kitchen devices/serving utensils during 2006-07 to 2012-13 is as given below :-

(Rs. in lakh)

Completed		In progress		Total Achievement		Yet to be started	
Physical	Financial	Physical	Financial	Physical	Financial	Physical	Financial
26572	1132.96	-	-	26572	1132.96	-	-

Conclusion:

The MDM Scheme is directed towards improving various school indicators such as regular attendance, school retention and reduction in drop out of students. It has been noted that students, availing services of MDM Scheme are more regularly attending schools. The scheme has improved retention of students in schools.

It has been unanimously reported that before MDM, the retention of children was quite low after the lunch break. But after the implementation of MDM student stayed in the school premises and resumed classes smoothly after taking meals. The scheme has played a crucial role in reducing school drop outs, especially among girls. Parents responded that Mid Day Meal had reduced the burden of providing one meal to their children.

They did not compel their children to leave school and considered MDM as a great support to the poor families. It has been noted from the responses of the teachers that the scheme has made considerable impact on the scholastic capabilities of the children, though it was crudely estimated. Mid Day Meal scheme has played a significant role in bringing social equity to some extent. The scheme has reduced the gender gap in education by boosting attendance of girls besides providing employment opportunity to needy women.

References:

(1) www.ecommerce.com

(2) www.mdm.nic.in,

(3) www.indiabudget.nic.in,

(4) www.india.gov.in,

(5) www.wikipedia.com,

(6) www.rural.nic.in,

(7) www.mpprd.nic.in,

(8) www.drd.nic.in,

(9) Pratiyogita darpan/ pratiyogita nirdeshika/ sodhganga

(10) Annual report on MDMS of Madhya Pradesh,

Management Structure Of MDMS:

1. State Level

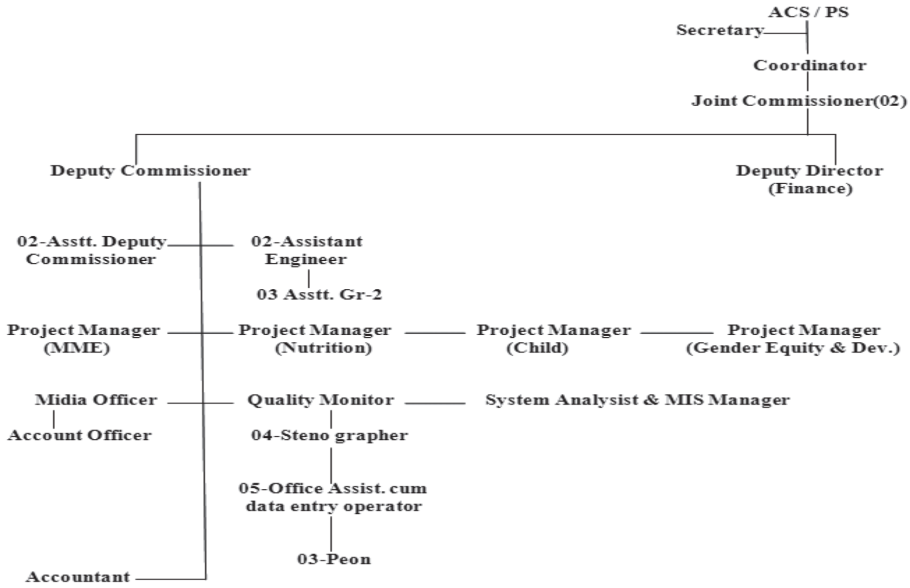

2. District Level

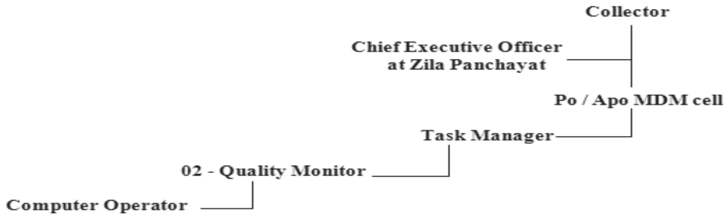

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान

डॉ.लक्ष्मण परवाल *

प्रस्तावना – कृषि ऐसी जीवन पद्धति और परम्परा है, जिसने भारत के लोगों के विचार, दृष्टिकोण, संस्कृति और आर्थिक जीवन को पुरातन काल से संवारा है। भारतीय आयोजन में कृषि को सामाजिक-आर्थिक विकास की सभी कार्यनीतियों का केन्द्र बिन्दु माना गया है। कृषि वैज्ञानिकों द्वारा किये गये महत्वपूर्ण कार्य और किसानों के प्रयासों से 60 के दशक में कृषि क्षेत्र में शानदार सफलता प्राप्त करने में मदद मिली थी जिसे ''हरित क्रांति'' के रूप में प्रमुखता से जाना गया। पूर्ववर्ती वर्षो में प्राप्त उच्च कृषि उत्पादन और उत्पादकता ने काफी हद तक खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, परन्तु इसके बाद से कृषि में कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं देखी गई।

भारत में कृषि प्राचीन काल से ही किसानों और खेतिहर मजदूरों की जीविका का साधन रही है । वर्तमान में भी कृषि पर लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या निर्भर है। जबकि देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि और उससे सम्बद्ध क्षेत्रों का योगदान लगभग 22 प्रतिशत है । बढ़ते शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण की वजह से कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल दिनोंदिन घटता जा रहा है तो दूसरी तरफ किसानों की मानसून पर निर्भरता और जलवायु परिवर्तन के चलते कृषि उत्पादन में जोखिम और अनिश्चितता हमेशा बनी रहती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान –

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। इसे भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ की हड्डी भी कहा जाता है। ऐसा होने के लिये सबसे महत्व की बात इस पर आजीविका के लिये निर्भर लोगों की मात्रा से प्रमाणित होती है। भारत कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता की दृष्टि से काफी धनी देश है। यहाँ कुल क्षेत्रफल का लगभग 47 प्रतिशत भाग शुद्ध बोया जाने वाला क्षेत्र है। 1950-51 में भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 52.02 प्रतिशत था जो 2011-12 में घटकर 13.09 प्रतिशत रह गया। इंग्लैंड, अमेरिका एवं कनाडा में यह क्रमश: 2 प्रतिशत, 4 प्रतिशत एवं 8 प्रतिशत ही है। भारत में खेतों का औसत आकार काफी छोटा (लगभग 1.7 हेक्टेयर) है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के योगदान का मूल्यांकन निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर किया गया है :-

1. सकल घरेलू उत्पाद में योगदान
2. राष्ट्रीय आय में योगदान
3. रोजगार में योगदान
4. विदेशी व्यापार में योगदान
5. औद्योगिक विकास में योगदान

1. सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान- कृषि और सम्बद्ध क्षेत्रों में विकास अभी भी भारतीय अर्थव्यवस्था के समग्र निष्पादन में महत्वपूर्ण कारक है। केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय द्वारा जारी 2011-12 के दूसरे अग्रिम अनुमानों के अनुसार कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र का हिस्सा वर्ष 2004-05 की स्थित कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद का 13.09 प्रतिशत था।

तालिका क्र . 01 कृषि का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान

मद	2009-2010	2010-2011	2011-12 प्रथम आंकलन
सकल घरेलू उत्पाद हिस्सा तथा वृद्धि	8.0	7.9	3.6
(2004-05 की कीमतों पर) कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों में सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि			
सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सा- कृषि व सम्बद्ध क्षेत्र	14.6	14.5	14.1
कृषि	12.3	12.3	12.0
वानिकी तथा वृक्ष कटाई	1.5	1.4	1.4
मात्स्यिकी	0.8	0.8	0.7

स्त्रोत :- केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय तथा कृषि सहकारिता विभाग, नई दिल्ली

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 2009-10 में कृषि क्षेत्र का हिस्सा सकल घरेलू उत्पाद का 14.60 प्रतिशत है। अगले वर्षो में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा तेजी से घटा है। वर्ष 2004-05 से वर्ष 2010-11 के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में 8.40 प्रतिशत के औसत से वृद्धि दर्ज हुई है, वहीं कृषि क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद में इसी अवधि के दौरान केवल 7 प्रतिशत तक ही बढ़ोत्तरी दर्ज हुई है। अग्रिम आकलन में वर्ष 2011-12 में कृषि क्षेत्र में 2.5 प्रतिशत वृद्धि रहने की उम्मीद है, जबकि समग्र घरेलू उत्पाद में 6.9 प्रतिशत की वृद्धि अनुमानित है। इसके अलावा कृषि क्षेत्र की सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण भूमिका रही है, क्योंकि यह देश में लगभग 58 प्रतिशत लोगों को रोजगार प्रदान कर रहा है। कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों के लिये वर्ष 2009-10 में सकल घरेलू उत्पाद के 14.6 प्रतिशत के कुल भाग में से कृषि का हिस्सा अकेले 12.3 प्रतिशत है, इसके बाद वानिकी एवं वृक्ष से कटाई का हिस्सा 1.5 प्रतिशत तथा मात्स्यिकी का 0.8 प्रतिशत है।

2. राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान- देश की राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र का योगदान अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नियोजित विकास एवं औद्योगीकरण के फलस्वरूप यद्यपि धीरे-धीरे इस क्षेत्र के योगदान में कमी आती जा रही है फिर भी राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा अभी भी अपेक्षाकृत अधिक है। गत् 50 वर्षो में देश की राष्ट्रीय आय में कृषि के योगदान को निम्न तालिका के द्वारा प्रदर्शित किया गया है :-

तालिका क्र . 02 राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान

वर्ष	प्रतिशत में
1950-51	56.46
1960-61	52.13
1970-71	45.77
1980-81	39.60
1990-91	32.91
1995-96	30.66
2000-02	26.10
2011-12	13.90

स्त्रोत :- आर्थिक समीक्षा 2012-13

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र का योगदान 1950-51 में जहाँ 56.46 प्रतिशत था वह घटकर वर्ष 2011-12 में मात्र 13.90% ही रह गया। यह देश के आर्थिक विकास का सूचक है। तालिका से यह भी ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान आज भी महत्वपूर्ण बना हुआ है। इस संदर्भ में दो महत्वपूर्ण बातें ध्यान देने योग्य हैं :-

* प्राध्यापक, (वाणिज्य विभाग), शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

1. भारत की राष्ट्रीय आय में आज भी कृषि का बड़ा हिस्सा है।
2. राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा लगातार घट रहा है, जो अल्पविकसित अर्थव्यवस्था से देश को विकसित अर्थव्यवस्था की ओर ले जाने का सूचक है।

3. रोजगार में कृषि का योगदान- भारत में कृषि प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अधिकांश जनसंख्या के जीवन-यापन का महत्वपूर्ण साधन है। लगभग देश की 58 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से कृषि व्यवसाय में लगी है। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत से लोग कृषि पदार्थों के व्यापार, परिवहन आदि में लगकर अपनी आजीविका कमा रहे हैं। इस तरह अन्य सब व्यवसाय मिलकर भी रोजगार की दृष्टि से कृषि से बहुत पीछे हैं।

तालिका क्र. 03 कृषि का रोजगार में योगदान

विवरण	1951 (करोड़ में)	प्रतिशत	2001 (करोड़ में)	प्रतिशत	वृद्धि (करोड़ में)	वृद्धि का प्रतिशत
कुल जनसंख्या	36.1	-	102.8	-	66.7	185
ग्रामीण जनसंख्या	29.9.	83	72.2	70	42.3	141
कृषक	7.0	50	12.8	32	5.8	83
कृषि श्रमिक	2.7	20	10.7	27	8.0	296
अन्य श्रमिक	4.3	30	16.7	41	12.4	288
कुल कार्यकारी जनसंख्या	14.0	47	40.2	56	26.2	187
कुल कामगारों के भाग के रूप में कृषि क्षेत्र में रोजगार	9.8	70 कुल कार्यकारी जनसंख्या से प्रतिशत	23.5	58 कुल कार्यकारी जनसंख्या से प्रतिशत	13.7	140

स्त्रोत :- केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय तथा कृषि और सहकारिता विभाग, नई दिल्ली

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 1951 की तुलना में वर्ष 2001 में देश की कुल जनसंख्या में 66.7 करोड़ की वृद्धि हुई है, जो वर्ष 1951 की तुलना में 185 प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार ग्रामीण जनसंख्या में भी इस अवधि में 42.3 करोड़ की वृद्धि हुई है जो वर्ष 1951 की तुलना में लगभग 141 प्रतिशत अधिक है। कुल कार्यकारी जनसंख्या में भी गत 50 वर्षो में 26.2 करोड़ की वृद्धि हुई है, जो प्रतिशत के मान से 187 प्रतिशत के लगभग है। देश की कुल कार्यकारी जनसंख्या की तुलना कुल जनसंख्या से की जाये तो यह वर्ष 1951 से वर्ष 2001 तक कुल जनसंख्या के अनुपात में 39 प्रतिशत के लगभग ही स्थिर रही है। ग्रामीण जनसंख्या की कुल कार्यकारी जनसंख्या से तुलना की जाय तो यह वर्ष 1951 में 47 प्रतिशत के लगभग थी, जो बढ़कर वर्ष 2001 में 56 प्रतिशत के बराबर हो गई। इन 50 वर्षो में इसमें लगभग 9.0 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

वर्ष 1951 में कुल मुख्य श्रमिकों का लगभग 70 प्रतिशत भाग कृषि तथा सम्बद्ध क्रियाओं में संलग्न था जो घटकर वर्ष 2001 में लगभग 58 प्रतिशत हो गया। कृषि क्षेत्र में जहाँ वर्ष 1951 में 9.8 करोड़ व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध हो रहा था वहीं वर्ष 2001 में कुल 23.5 करोड़ व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराया गया था। यह बात निराशाजनक है कि वर्ष 1951-2001 के दौरान कृषि श्रमिकों व अन्य श्रमिकों के अनुपात में तो वृद्धि हुई है और यह 20 प्रतिशत से 27 प्रतिशत व 30 प्रतिशत से 41 प्रतिशत हो गया, किन्तु कृषकों की मात्रा में इस अवधि में कमी देखी गई है। यह 50 प्रतिशत से घटकर 32 प्रतिशत ही रह गई है।

4. विदेशी व्यापार में कृषि का योगदान- विदेशी व्यापार की दृष्टि से भी कृषि का स्थान महत्वपूर्ण है। देश के कुल निर्यात का लगभग 11% भाग कृषि पदार्थों तथा कृषि से सम्बंधित पदार्थों का होता है। भारत द्वारा किये जाने वाले कृषि उत्पादों के निर्यात को निम्न तालिका द्वारा प्रदर्शित किया गया है :-

तालिका क्र. 04 कृषि का विदेशी व्यापार में योगदान

वर्ष	देश का कुल निर्यात (हजार करोड़ में)	कृषि उत्पादों का निर्यात (हजार करोड़ में)	देश के कुल निर्यात में कृषि उत्पादों का हिस्सा
1990-91	32.55	6.3	19.4
1995-96	106.4	21.1	19.8
1996-97	118.8	24.2	20.4
1997-98	130.1	25.4	19.5
1998-99	139.75	26.1	18.6
1999-2000	159.56	24.30	15.2
2000-01	203.57	28.58	13.5
2010-11	1142.6	113.12	9.9
2011-12	1459.28	132.50	9.08

स्त्रोत :- आर्थिक समीक्षा 2012-13

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 1990-91 से लेकर वर्ष 2011-12 तक प्रतिवर्ष देश के कुल निर्यात में वृद्धि परिलक्षित हो रही है। कृषि उत्पादों के निर्यात में भी वर्ष 1998-99 तक प्रतिवर्ष वृद्धि होती रही किन्तु वर्ष 1999-2000 में इसमें मामूली कमी रही। इसके पश्चात् अगले वर्षो से पुन: कृषि उत्पादों के निर्यात मूल्य में वृद्धि पाई गई है।

देश के कुल निर्यात में कृषि उत्पादों का भाग वर्ष 1990-91 से लेकर वर्ष 1997-98 तक लगभग 20 प्रतिशत के आसपास रहा। इसके पश्चात् इसमें शनै: - शनै: कमी होती चली गई। वर्ष 2011-12 में यह सबसे कम 9.08 भाग के रूप में गत् 20 वर्षो में सबसे निचले स्तर पर पहुँच गई।

भारत से निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तुएं :- कॉफी, चॉय, चॉवल, तेल, निष्कर्षण, काजू, गरम मसाले तथा कपास आदि हैं। विगत कुछ वर्षो में भारत के कृषि उत्पादों के निर्यात की मात्रा व मूल्य दोनों में वृद्धि परिलक्षित हुई है। यह वृद्धि विकास के लिये भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। चिन्ता की बात यह है कि देश के कुल निर्यात में कृषि उत्पादों का हिस्सा गत् 10 वर्षो में आधा ही रह गया है।

5. औद्योगिक विकास में कृषि का योगदान- भारतीय उद्योगों का विकास बहुत हद तक कृषि पर निर्भर है। भारत में प्रमुख उद्योगों के लिये कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होता है। सूती और पटसन वस्त्र उद्योग, चीनी, वनस्पति तथा बागान उद्योग आदि प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर रहते हैं। इसके अलावा कृषि औद्योगिक उत्पादों के लिये बाजार भी प्रदान करता है।

निष्कर्ष :-भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि और उससे संबंधित क्षेत्रों का योगदान लगभग 22 प्रतिशत है जबकि 65-70 प्रतिशत जनसंख्या वर्तमान में कृषि पर निर्भर है। ऐसी स्थिति के फलस्वरूप बेहतर कृषि प्रबंधन पर जोर देना नितांत आवश्यक हो गया है। बेहतर कृषि प्रबंधन के द्वारा ही बारहवीं पंचवर्षीय योजना में निर्धारित प्रतिशत की वृद्धि दर को प्राप्त किया जा सकता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये भारत के सभी राज्यों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी क्योंकि कृषि राज्य का विषय है। राज्य सरकार के प्रयासों में तेजी लाने के उद्देश्य से केन्द्र द्वारा पोषित कई योजनाएं भी समय-समय पर लागू की गई जिससे देश के कृषि उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि की जा सके और देश को भविष्य में खाद्य संकट की स्थिति से बचाया जा सके।

संदर्भ सूची :-

1. भारतीय अर्थव्यवस्था अरिहंत पब्लिकेशन्स (इण्डिया) लि. मेरठ
2. भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांक, आगरा कोड नं. 791
3. समसामयिक वार्षिकी 2013, प्रतियोगिता दर्पण, आगरा कोड नं. 862
4. कुरूक्षेत्र जुलाई 2011, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली
5. भारत 2013, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली

****

जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित मंदसौर की वित्तीय स्थिति का विश्लेषण एवं अध्ययन

डॉ. अनुभा गुप्ता बड़ेरा *

प्रस्तावना :-

मंदसौर जिले में सन् 1918 से जिला सहकारी बैंक कार्य कर रही है। अपनी स्थापना के बाद से ही बैंक निरंतर प्रगति कर रही है। वर्तमान में बैंक की 35 शाखाएं कार्यरत है। संरचनात्मक दृष्टि से वर्तमान में 172 कृषि साख सहकारी संस्थाएँ, 13 कृषि विपणन संस्थाएँ, एक उपभोक्ता भण्डार, 32 बुनकर व औद्योगिक तथा 84 अन्य सहकारी संस्थाएँ स्थापित है। जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक का कार्यक्षेत्र मंदसौर एवं नीमच जिला है जो 13 तहसीलों एवं 8 विकासखण्डों में विभाजित है।

बैंक द्वारा विभिन्न ऋण योजनाओं के अंतर्गत स्वीकृत किये जाने वाले ऋणों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। इससे बैंक की वित्तीय स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ा इसी जिज्ञासा के वशीभूत होकर यह शोध कार्य किया गया है।

अध्ययन का क्षेत्र व अवधि :-

शोध पत्र का अध्ययन क्षेत्र 'मंदसौर जिले की जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक है।' जिसकी वित्तीय स्थिति के अध्ययन के लिये वर्ष 2005-06 से 2009-10 तक 5 वर्ष के समंकों को आधार बनाया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य :-

बैंक के वित्तीय कार्यकलाप एवं उपलब्धियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य है।

शोध परिकल्पना

जिला सहकारी केन्द्रीय मर्यादित बैंक मंदसौर की आर्थिक स्थिति निरंतर सुदृढ़ हुई है।

शोध प्रविधि :-

शोध कार्य में मुख्यत: द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। आंकड़ों के प्रस्तुतीकरण के लिये तालिका का निर्माण कर विश्लेषण किया गया है।

जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक की वित्तीय स्थिति का विश्लेषण :-

वित्तीय विवरण व्यवसाय का दर्पण होता है जिससे उस व्यवसाय की आर्थिक स्थिति का पता लगाया जा सकता है। बैंक की वित्तीय स्थिति को तालिका क्रमांक 1.0 में प्रदर्शित किया गया है। (देखिए तालिका 1)

तालिका के विश्लेषण से निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आए :-

अंशपूँजी -

बैंक अपने अंशों का क्रय विक्रय करके अंशपूँजी प्राप्त करती है। अंशपूँजी के संबंध में बैंक के उपनियम में दिये गये प्रावधानों का पालन किया जाता है। बैंक की अधिकृत अंशपूँजी 25 करोड़ रूपये है। वर्ष 2005-06 में बैंक की अंशपूँजी 1006.28 लाख रूपये थी जो कि वर्ष 2009-10 में बढ़कर 1866.52 लाख रूपये हो गई। जिससे स्पष्ट है कि बैंक की अंशपूँजी में निरंतर वृद्धि की प्रवृत्ति हैं।

निधियाँ :-

जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक अपने कोष तथा निधियों का निर्माण निम्न कोषों से करते है। 1. रक्षित कोष 2. संदिग्ध तथा डूबत ऋण पूर्ति हेतु कोष 3. विशेष डूबत ऋण कोष 4. कृषि साख स्थिरीकरण निधि 5. अन्य निधियां

यह कोष तथा निधियां महत्वपूर्ण होती हैं क्योंकि बैंक प्रतिवर्ष अपने लाभ में से एक निश्चित राशि इस कोष में हस्तान्तरित करने के बाद ही अपने अंशधारियों को लाभांश देती है। इस कोष की राशि जितनी अधिक होती है, बैंक की आर्थिक स्थिति उतनी ही मजबूत होगी।

तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि वर्ष 2005-06 में 1698.61 लाख रूपये की निधियां थी जिसमें प्रतिवर्ष निरंतर वृद्धि की प्रवृत्ति रही और वर्ष 2009-10 में ये बढ़कर 4046.49 लाख रूपये हो गये। निधियों की प्रतिशत वृद्धि दर वर्ष 2006-07 में 19.22 प्रतिशत थी जो वर्ष 2009-10 में बढ़कर 27.81 प्रतिशत हो गई।

कार्यशील पूँजी :-

संस्था की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति कार्यशील पूँजी से होती है। कार्यशील पूँजी का बड़ा आकार बैंक की आर्थिक सुदृढ़ता और संपन्नता का प्रतीक है। तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कार्यशील पूँजी में निरंतर वृद्धि की प्रवृत्ति है। वर्ष 2005-06 में यह 25915.64 लाख रूपये थी जो वर्ष 2009-10 में बढ़कर 51004.04 लाख रूपये हो गई।

अमानतें :-

अमानतें बैंक की प्राणवायु के समान होती हैं। बैंक द्वारा अपनी अमानतों में वृद्धि के लिये निंरतर प्रयास किये जाते है क्योंकि इस क्षेत्र में वाणिज्यिक बैंकों से सहकारी बैंक को कठिन प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। तालिका के विवेचन से ज्ञात होता है कि वर्ष 2005-06 में अमानतें 17808.20 लाख रूपये थी जो वर्ष 2009-10 में बढ़कर 30003.47 लाख रूपये हो गये। यदि अमानतों की प्रतिशत वृद्धि दर का विश्लेषण करें तो ज्ञात होता है कि सर्वाधिक वृद्धि दर वर्ष 2007-08 में 18.52 प्रतिशत रही है।

विनियोग :-

विनियोग बैंक की संपत्ति के रूप में होते है। तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि विनियोग में कमी एवं वृद्धि की प्रवृत्ति रही है। वर्ष 2006-07 में विनियोग में वृद्धि दर सर्वाधिक 51.20 प्रतिशत थी जो कि वर्ष 2007-08 में घटकर -13.87 प्रतिशत रह गई। वर्ष 2008-09 एवं 2009-10 में वृद्धि दर लगभग बराबर ही थी जो कि क्रमश: 39.68 एवं 39.25 प्रतिशत रही।

ऋणार्जन :-

बैंक द्वारा अन्य वित्तीय संस्थाओं या शासन से ऋण लिया जाता है तो

* अतिथि विद्वान, शासकीय माधव विज्ञान महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

वह ऋणार्जन या गृहित ऋण होता हैं। बैंक द्वारा सर्वाधिक ऋणार्जन वर्ष 2006-07 में 110.59 प्रतिशत रहा जो कि वर्ष 2008-09 में घटकर -3.54 प्रतिशत हो गया इसकि वजह वर्ष 2008-09 में ऋण विवरण का कम होना भी है। तालिका के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि बैंक द्वारा ऋणार्जन में कमी एवं वृद्धि की प्रवृत्ति रही है।

ऋण वितरण :-

बैंक द्वारा अल्पकालीन, मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण वितरण किया जाता है। ऋण वितरण के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्ष 2005-06 में 10388.2 लाख रूपये का बैंक द्वारा ऋण वितरित किया गया जो वर्ष 2009-10 तक बढ़कर 26087.89 लाख रूपये हो गया। वर्ष 2008-09 को छोड़कर ऋण वितरण की दर निरंतर वृद्धि की है। वर्ष 2008-09 में ऋण वितरण की दर मात्र -6.69 प्रतिशत रही है।

शुद्ध लाभ :-

बैंक की वित्तीय स्थिति को ज्ञात करने के लिये लाभ हानि पत्रक बनाया जाता है। जिससे बैंक की लाभ एवं हानि की स्थिति ज्ञात होती है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2005-06 में शुद्ध लाभ 241.00 लाख रूपये था जो वर्ष 2009-10 में बढ़कर 511.32 लाख रूपये हो गया। बैंक द्वारा अर्जित सर्वाधिक लाभ वर्ष 2006-07 में 485.88 लाख रूपये रहा। शुद्ध लाभ के प्रतिशत वृद्धि दर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि शुद्ध लाभ में कमी एवं वृद्धि की प्रवृत्ति रही हैं।

परिकल्पना की पुष्टि एवं निष्कर्ष

शोध पत्र मुख्यत: इस परिकल्पना पर आधारित है की ''बैंक की आर्थिक स्थिति निरंतर सुदृढ़ हुई है।'' बैंक से संकलित समंको के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि बैंक की अंशपूंजी, कार्यशील पूँजी, निधियों, अमानतों में निरंतर वृद्धि हुई है। जिससे की शोधार्थी की परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि बैंक की वित्तीय स्थिति निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है। ऋणार्जन, ऋण वितरण एवं लाभ में कमी एवं वृद्धि की प्रवृत्ति रही है। जिसकी वजह वाणिज्यिक एवं निजी बैंकों से सहकारी बैंक की प्रतिस्पर्धा भी है। सहकारी बैंकों को अपनी योजनाओं का प्रचार-प्रसार कर अन्य वित्तीय संस्थाओं से प्रतिस्पर्धा करनी चाहिए ताकी बैंक द्वारा, ऋण वितरण एवं लाभ में निरंतर वृद्धि की प्रवत्ति बनी रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्रीमती रश्मि गुप्ता, ''जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक उज्जैन का कृषि साख में योगदान'' 1995
2. कु. कुसुम श्रीवास्तव, ''उज्जैन संभाग के कृषि विकास में जिला सहकारी केन्द्रीय बैंकों के योगदान का आर्थिक विश्लेषण'' (वर्ष 1995 से 2001 तक)
3. 'जिला सहकारी बैंक झाबुआ की आर्थिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन'', डॉ. एस.के. शर्मा, प्रो. राजेन्द्र परमार, शोध समीक्षा और मूल्यांकन (अंतराष्ट्रीय शोध पत्रिका)
4. ''इलाहाबाद बैंक एक सामान्य अध्ययन ''शिवेन्द्र शर्मा 99.
5. वार्षिक प्रतिवेदन, जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित मंदसौर।
6. उपनियम, जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, मंदसौर।

तालिका क्रमांक 1.0

जिल सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, मंदसौर की वित्तीय स्थिति

(राशि लाखों में)

क्र.	मद	2005-06		2006-07		2007-08		2008-09		2009-10	
		राशि	प्रतिशत वृद्धि	राशि	प्रतिशत वृद्धि	राशि	प्रतिशत वृद्धि	राशि	प्रतिशत वृद्धि	राशि	प्रतिशत वृद्धि
1.	अंशपूँजी	1006.28	10.08	1138.55	13.14	1263.48	10.97	1500.72	18.53	1866.52	24.37
2.	निधियाँ	1698.61	40.35	2025.03	19.22	2712.25	33.94	3166.07	16.79	4046.49	27.81
3.	कार्यशील पूँजी	25915.64	11.82	32189.75	24.21	39811.08	23.67	43281.64	8.72	51004.04	15.14
4.	अमानते	17808.20	9.84	20242.94	13.67	23991.33	18.52	26773.39	11.60	30003.47	12.06
5.	विनियोग	8635.96	20.27	13057.31	51.20	11245.85	-13.87	15708.33	39.68	21873.22	39.25
6.	ऋर्णाजन	2456.7	37.92	5173.66	110.59	8422.57	62.79	8124.49	-3.54	11268.99	38.70
7.	ऋण वितरण	10388.2	26.187	14165.81	36.36	19611.60	38.78	18299.59	-6.69	26087.89	42.55
8.	शुद्ध लाभ	241.00	-12.97	485.88	101.60	674.31	38.8	488.30	-27.58	511.32	4.71

****

म.प्र. मूल्यवर्धित कर प्रणाली एवं वाणिज्यिक कर प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. महेन्द्र कुमार जैन * डॉ. अनिता पंवार **

म.प्र. वाणिज्यिक कर : म.प्र. में 1 अप्रैल 1995 से 'वाणिज्यिक कर अधिनियम, 1994 लागू हुआ। वाणिज्यिक कर म.प्र. सरकार की राजस्व प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण स्रोत बन गया। राज्य के लिए महत्त्वपूर्ण इस कर अधिनियम में व्याप्त विसंगतियों और भ्रष्टाचार के कारण वाणिज्यिक कर सदैव विवाद का विषय बना रहा। क्योंकि इसमें कर की दरें अधिक थी। जिससे व्यापारियों को अधिक कर चुकाना पड़ता था, जिससे भ्रष्टाचार बढ़ने लगा और राज्य सरकार को राजस्व की हानि होने लगी।

वाणिज्यिक कर से राज्य की आय निरन्तर घटती रही और अनेक बार संशोधनों के परिणाम स्वरूप कर प्रणाली जटिल बन गई, जो व्यापारियों और सरकार दोनों के लिए परेशानी का कारण बन गई। भ्रष्टाचार और कर चोरी आम बात हो गई इससे तंग आकर व्यापारियों द्वारा अकसर वाणिज्यिक कर समाप्त करने की मांग की गई। अंतत: मध्यप्रदेश में 31 मार्च 2006 को वाणिज्यिक कर को समाप्त किया गया और 1 अप्रेल 2006 से वाणिज्यिक कर का स्थान मूल्यवर्धित कर ने ले लिया।

मूल्यवर्धित-कर अधिनियम-2006 : वस्तुओं की बिक्री या व्यावसायिक वितरण पर करारोपण के क्षेत्र में मूल्यवर्धित कर, जिसे वेट के नाम से जाना जाता है, एक नवीनतम अवधारणा है। भारत में भी विभिन्न राज्यों में (VAT) लागू किया गया है। मध्यप्रदेश में 1 मई 1997 से आंशिक रूप से एवं 1 अप्रैल 2006 से पूर्ण रूप से वेट लागू किया गया। अत: 31 मार्च 2006 तक लागू म.प्र. वाणिज्यिक कर का स्थान 1 अप्रैल 2006 से म.प्र. मूल्यवर्धित-कर (VAT) ने ले लिया।

म.प्र. वेट अधिनियम, 2002 : दिनांक 12 नवम्बर 2002, को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई। अनुमति मध्यप्रदेश राजपत्र में दिनांक 28 नवम्बर 2002 को प्रथम बार प्रकाशित की गई। अधिकांश राज्यों द्वारा वेट अपनाने एवं केन्द्र सरकार के दबाव के कारण मध्यप्रदेश सरकार ने अंतत: वेट लागू करने का निर्णय लिया एवं बजट 2006 में मध्यप्रदेश में 1 अप्रेल 2006 से वाणिज्यिक कर के स्थान पर वेट लागू करने की घोषणा की। इसके लिये म.प्र. वेट अधिनियम 2002 कुछ संशोधनों के साथ लागू किया गया।

वेट की परिधि में आने वाले व्यवसायी : वेट अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक ऐसे व्यापारी को लिया गया है, जिसकी वार्षिक बिक्री 5 लाख रु. से अधिक हो।

वेट के अन्तर्गत कर की दरों के खण्ड : वेट के अन्तर्गत करयोग्य माल पर लागू होने वाली कर की दरों के मुख्य रूप से दो खण्ड रखे गए हैं।

1. 4% की दर से करयोग्य माल,
2. 12.5% की दर से करयोग्य माल।

अपवाद स्वरूप कुछ वस्तुओं पर कर की विभिन्न दरें लागू की गयी है। जैसे-सोना चाँदी पर केवल 1% कर लगेगा तो डीजल-पेट्रोल पर 28.75% कर लगेगा।

पुराने कर ढाँचे और नये कर में परिवर्तन :

वाणिज्यिक-कर : वाणिज्यिक-कर एक बिन्दु कर है। यदि प्रदेश में किसी व्यापारी ने इसे एक बार चुका दिया तो ऐसे कर चुके माल की पुन: बिक्री की दशा में दोबारा करारोपण नहीं होता था। अर्थात् कर चुके माल की बिक्री पर व्यापारी को छूट मिलती थी।

मूल्यवर्धित-कर : मूल्यवर्धित-कर (वेट) बहुबिन्दु-कर है। किसी वस्तु को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचाने में जितने स्तरों पर इसका हस्तान्तरण होता है, उतने स्तरों पर यह कर वस्तु के बड़े हुए मूल्य पर लगता है। अन्य कर जैसे आवर्तकर, अधिभार, अतिरिक्त सरचार्ज आदि समाप्त हुए हैं।

अपनाया गया है, अर्थात् व्यापारी द्वारा जो विवरणी प्रस्तुत की जाएगी, उसे विभाग मान्य करेगा और व्यापारी को वाणिज्यिक-कर विभाग के चक्कर नहीं काटने पडेंगे़। इस प्रकार मूल्यवर्धित-कर प्रणाली वाणिज्यिक-कर के दोषों एवं कमियों के निवारण के उपाय के रूप में अपनाई गई है।

मध्यप्रदेश में वाणिज्यिक-कर से प्राप्तियाँ : मध्यप्रदेश में वाणिज्यिक-कर राज्य की आय का प्रमुख स्रोत रहा है। वर्ष प्रतिवर्ष इस मद से सरकारी खजाने में जमा होने वाली राशि में वृद्धि दर्ज की गई है। वाणिज्यिक-कर की सफलता का मूल्यांकन करने के लिए यह आवश्यक होगा कि मध्यप्रदेश में मूल्यवर्धित-कर लागू होने से पूर्व के वर्षों में इस कर से राज्य शासन की प्राप्ति की क्या स्थिति रही। निम्नलिखित तालिका से यह स्पष्ट हो सकेगा।

तालिका क्रमांक - 1.1

मध्यप्रदेश वाणिज्यिक-कर वसूली

(वर्ष 2001-02 से 2005-06 तक)

(आय करोड़ रु. में)

वर्ष	म.प्र. वाणिज्य कर	केन्द्रीय	प्रवेश कर	अन्य	योग	प्रतिशत में
1	2	3	4	5	6	7
2001-02	2060.50	332.94	262.45	172.71	2828.60	-
2002-03	2520.47	403.15	350.78	188.34	3462.74	22.42
2003-04	2916.73	454.02	392.71	188.79	3952.25	14.14
2004-05	3365.60	612.28	468.23	153.11	4599.22	16.37
2005-06	3951.43	615.68	578.32	157.5	5302.93	15.30

स्रोत : वाणिज्यिक-कर-विभाग, उज्जैन।

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मध्यप्रदेश शासन को वाणिज्यिक-कर से प्राप्त कुल राशि में निरन्तर वृद्धि परिलक्षित हो रही है। जहाँ वर्ष 2001-02 में शासन द्वारा इस कर के माध्यम से 2828.60 करोड़ रु. वसूल किए गए थे वहीं यह वसूली उत्तरोत्तर बढ़ते हुए सन् 2005-06 में 5302.93 करोड़ रु. तक पहुँच गई है।

* सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य शासकीय माधव कला, वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, शासकीय माधव कला, वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.) भारत

मध्यप्रदेश में मूल्यवर्धित-कर से प्राप्तियाँ : उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मध्यप्रदेश में मूल्यवर्धित कर लागू होने के पश्चात् सरकार द्वारा इस कर से प्राप्त कुल राशि में निरन्तर वृद्धि दर्ज की गई है। सन् 2006-07 में जहाँ राज्य शासन को 6242.94 करोड़ रु. की आय प्राप्ति हुई थी, वहीं वर्ष 2010-11 में आय बढ़कर 12342.16 करोड़ रु. हो गई है।

तालिका क्रमांक - 1.2 मध्यप्रदेश मूल्यवर्धित-कर वसूली
(वर्ष 2006-07 से 2010-11 तक)

(आय करोड़ रु. में)

वर्ष	म.प्र.मूल्य वद्वित कर	केन्द्रीय विक्रय कर	प्रवेश कर	अन्य कर	योग	प्रतिशत में
1	2	3	4	5	6	7
2006-07	4763.63	565.84	745.16	168.31	6242.94	17.73
2007-08	5603.87	556.93	916.37	191.77	7268.94	17.43
2008-09	6439.35	519.77	1331.44	181.7	8472.27	18.55
2009-10	7299.01	569.98	1333.19	214.14	3416.32	11.14
2010-11	9679.91	682.72	1745.78	233.75	12342.16	31.07

स्रोत : वाणिज्यिक-कर-विभाग, उज्जैन।

तालिका क्रमांक - 1.3 वाणिज्यिक-कर एवं मूल्यवर्धित-कर (C.T. & V.T.) में तुलनात्मक अध्ययन करने पर
(वर्ष 2006-07 से 2010-11 तक)

(आय करोड़ रु. में)

Year	Commercial Tax (C.T.)	Value Added Tax (V.T.)	D	A=75.41 X - A= dx D-A=dD dD	dD2
2006-07	77.25	152.66	75.41	00	00
2007-08	82.75	183.19	100.44	25.03	626.50
2008-09	90.38	181.49	91.11	15.7	246.49
2009-10	101.18	226.32	125.14	49.73	2473.07
2010-11	115.98	260.76	144.78	69.37	4812.19
	467.54	1004.42	D= 536.88	dD= 159.83	dD2= 8158.25

$$N = 5$$

$$D = \frac{\Sigma D}{N} = \frac{536.88}{5} = 107.4$$

$$s = \sqrt{\frac{\Sigma dD^2}{N-1}}$$

$$\sqrt{\frac{8158.25}{4}}$$

$$s = 45.16$$

$$t = \frac{D\sqrt{N}}{S}$$

$$= \frac{107.4\sqrt{5}}{45.16}$$

$$t = 5.32$$

D.F. 4 की table value = 2.776 है।

चूंकि table value से t की value अधिक है अत: test सार्थक है। दोनों value में तुलनात्मक अध्ययन कर विश्लेषण के उपरान्त तथ्यात्मक रूप से यह सिद्ध होता है कि 't' की value 5.39 है D.F. की 't' table value 2.776 है। चूंकि अनुमानित मान +5 माना था तथा t का मान 5.39 है जो कि +5 से अधिक है। अत: सांख्यिकीय गणना के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मूल्यवर्धित-कर प्रणाली लागू होने से राजस्व में वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष : मध्यप्रदेश में मूल्यवर्धित कर प्रणाली के प्रभाव पर शोध कार्य करते समय एक आदर्श कर प्रणाली का भी विवेचनात्मक दृष्टिकोण रखा गया है। मूल्यवर्धित कर प्रणाली को प्रभावी करने के समय यह लक्ष्य था कि यह प्रणाली विश्वसनीय होगी, राजस्व आय में वृद्धिकारक होगी, देश के सभी राज्यों में एक समान कर संरचना निर्मित करेगी, पूर्ववर्ती कर प्रणाली वाणिज्यिक कर की कमियों को दूर करेगी, आधुनिक विश्वस्तरीय अर्थव्यवस्था के अनुरूप होगी, उद्योगों एवं व्यापार के विकास में सहायक होगी, कर अपवंचना को रोकने में स्वत: उपयोगी होगी एवं एक सफल कर प्रणाली के रूप में सभी संबंधित वर्ग, शासन, उद्यमी, व्यापारी, कर सलाहकार, उपभोक्ता आदि के लिए उपयुक्त मानी जाएगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. रवीन्द्रनाथ मुखर्जी : सामाजिक शोध व सांख्यिकी, विवेक प्रकाशन, दिल्ली 2009
2. श्रीपाल सकलेचा :केन्द्रीय विक्रय कर एवं म.प्र. वेट राज्य वाणिज्य कर, सतीश एण्ड पब्लिशर्स 2007
3. पारसनाथ राय : अनुसंधान परिचय, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा 2008
4. डॉ. एस.आर. वाजपेयी : सामाजिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण, 2007
5. एम.सी. शर्मा : सामाजिक सर्वेक्षण, विवेक प्रकाशन, दिल्ली
6. अग्रवाल एण्ड अग्रवाल : प्रबंधकीय लेखांकन, रमेश बुक डिपो, जयपुर
7. डॉ. श्याम गोपाल शर्मा : शोध प्रविधियाँ एवं सांख्यिकीय तकनीकें, रमेश बुक डिपो, जयपुर

****

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का कृषि पर प्रभाव (रतलाम जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. मालसिंह चौहान *

प्रस्तावना :- यह सर्वविदित है कि भारत एक विकासशील, कृषि प्रधान और गाँवों का देश है और इस की लगभग 72 प्रतिशत जनसंख्या आज भी गाँवों में निवास करती है। जिनके विकास का आधार सड़के ही हैं। क्योंकि सभी मौसमों में परिवहन के लिए उपयुक्त सड़कों के अभाव में एक और किसान को अपनी उपज का लाभप्रद मूल्य नहीं मिल पाता और दूसरी और उसे अपनी जरूरत का अधिकांश सामान महगें दामों पर खरीदना पड़ता है। अच्छी सड़के की कमी के कारण कुछ क्षेत्रों विशेष रूप से पर्वतिय क्षेत्रों में किसानो को बेमौसम कि सब्जि,मटर,गाजर,शिमला मिर्च फल जैसे कि सेब,अनार,आलू खुमानी औन-पौने द्दामों में बेचनी पडती है।

दुर्गम स्थानों से ऐसे माल को मंड़िया नगरों तक लाने में इतना खर्च आता है कि वह प्रतियोगिता में ठहर नहीं पाता। यही नहीं कुछ क्षेत्र तो एसे भी थे जहाँ आधुनिक कृषि यंत्रों एवं उपकरणों के नहीं पहुँचनें से वहॉ की उबड़ खाबड़ पूसो से ढ़की हुई झाड़ युक्त, दलदली एवं बंजर भूमि का उपयोग नहीं हो पा रहा था। परिणामस्वरूप वहाँ कृषि का क्षेत्रफल भी कम था। उक्त तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सड़कों के अभाव में ग्रामिण और शहरी भारत के बीच खाई काफी बढ़ गई थी। फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी न तो देश की प्रगति में अपना सहयोग प्रदान कर पा रहे थे, न ही कृषि विकास संबंधी योजनाओं का पूर्ण लाभ उठा पा रहे थे।

हाँलाकि स्वतंत्रता के पश्चात विभिन्न योजनाकालों में ग्रामिण क्षेत्र में सड़को का निमार्ण हुआ, परन्तु फिर भी 40 प्रतिशत गाँव ऐसे थे जहाँ हर मौसम में आवागमन योग्य सड़को का अभाव थाा। सर्दी और गर्मी के मौसम में तो इन गाँवों मे तो किसी तरह जाया जा सकता था परन्तु बरसात के चार महीनों में इन गाँवों का बाहरी दुनिया से सम्पर्क टूट जाता था। यह एक बहुत ही महत्वपुर्ण एवं जटिल समस्या थी जिनका समाधान केन्द्र सरकार ने 25 दिसम्बर 2000 को प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना लागू कर किया है। इस योजना का मुख्य लक्ष्य शुभारम्भ तिथि से अगले तीन वर्ष के भीतर अर्थात 2003 तक 1000 से अधिक और दसवीं पंचवर्षीय योजना अर्थात 2007 के अंत तक 500 से अधिक की अबादी वाले समस्त गाँवों को बारहमासी सड़को (मुख्य मार्गो) से जोड़ना था।

पहाड़ी राज्यों (उतर-पुर्व सिक्किम,हिमाचल प्रदेश, जम्मु एवं कश्मीर, उत्तरांचल) और रेगिस्तानी क्षेत्रों (जैसा कि रेगिस्तान विकास कार्यक्रम में अभिज्ञात किया गया है) तथा जनजातीय (अनुसूची -6) क्षैत्रों के मामले में उद्देश्य 250 और इससे अधिक आबादी वाले गाँवो को बारहमासी सड़को (मुख्यमार्गो) से जोड़ना था। इस योजना के लिए धन की व्यवस्था डीजल पर एक रूपये प्रति लीटर के उपकर में से की जा रही है। वर्ष 2003.04 से हाइस्पीड पर कर 0.50 रूपये की वृद्धि की गई है। अतिरिक्त डीजल पर उपकर का 0.50 प्रतिशत ग्रामीण सड़को के निर्माण हेतु दिया जा रहा है।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का दुसरा चरण:- प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का दूसरे चरण में 50,000 किलोमीटर सड़के बनाई जायेगी। अधिक लाभ उन राज्यों कों मिलेगा जहाँ पहले चरण की सड़क पूर्ण हो चूकी है। योजना के दूसरे चरण में बनने वाली ग्रामीण सड़कों का 25 प्रतिशत खर्च राज्यों को उठाना होगा। इसमें लिंक रोड़ के साथ योजना की पुरानी सड़कों के उन्नयन और उच्चीकरण पर अधिक ध्यान दिया जायेगा। वर्तमान वित्त वर्ष 2013-14 में इसके लिए 400रू. करोड़ आवंटित किये गये है। याजना के पहले चरण में इन ग्रामीण सड़कों के निर्माण का पूरा खर्च केन्द्र सरकार ने वहन किया गया।

पी. एम.जी. एस. वाई के दूसरे चरण की इन सड़को का निर्माण हर हाल मे 2016-17 तक पूरा करने का लक्ष्य है। कुल 50,000 किलोमिटर लम्बाई की सड़कों के निर्माण और उन्नयन व उच्चीकरण पर कुल 19000 कारोड़ रूपये खर्च होने का अनुमान है। गाँव को जुड़ने वाली प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना में उ.प्र. को जहां 7575 किलोमीटर लम्बी सड़कों का उपहार मिलेगा।वही बिहार में 2465 किलोमीटर और झारखण्ड में 1650 किलोमीटर लम्बाई की सड़कों का उन्नयन व उच्चीकरण किया जायेगा।

इस अवधि में उन सड़कों को भी शामिल किया जायेगा, जिन्हें किन्हीं कारणों से पहले चरण में नहीं लिया था। ग्रामीण विकास मंत्री श्री जयराम रमेश ने 8 मई 2013 को नई दिल्ली मे बताया की पी. एम.जी. एस.वाई. की उन सड़कों को इस योजना में अवश्य लिया जायेगा, जिन पर यातायात का बोझ अधिक है। उनकी चौडाई बढ़ाने के साथ उनका अपग्रेडेशन किया जायेगा। सड़कों की चौड़ाई 5.5 मीटर तक की जा सकती है। नक्सल प्रभावित जिलों की सड़के बनाने की जा लागत आयेगी उसका 90 प्रतिशत केन्द्र सरकार देगा और 10 प्रतिशत खर्च राज्य को उठाना होगा।

मध्यप्रदेश में इस योजना के कियान्वयन में कोई कसर नहीं छोडी गई है। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के क्रियान्वयन तथा सड़क निर्माण के क्षेत्र में समन्वय बनाने के लिए मध्यप्रदेश ग्रामीण सड़क प्राधिकरण का गठन किया गया है। योजना के तीव्र एवं सफल क्रियान्वयन हेतु राज्य में लगभग 40 परियोजना क्रियान्वयन इकाईयाँ गठित कि गई हैं। इनमें से उक परियोजना क्रियान्वयन इकाई रतलाम में स्थित हैं। प्रस्तुत पत्र रतलाम जिला जो कि 4 विकासखण्डों पर पडने वाले प्रभाव को दर्शाया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य :-

अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि :-

1. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अंतर्गत जो गाँव सड़क से जुड़ गये हैं, क्या वहाँ कृषि के क्षेत्रफल एवं उसके स्वरूव में बदलाव आया है?
2. सड़क बनने के बाद क्या इन गाँवों की कृषि में खाद,बीज एवं दवाइयों के प्रयोग में तथा उत्पादन में वृद्धि हुई है?
3. सड़क बनने के बाद क्या इन गाँवों में शीघ्र नष्ट होनेवाले खाद्य पदार्थो के उत्पादन में भी वृद्धि हुई है?
4. सड़क बनने के बाद क्या इन गाँवों से फसल एवं खाद्य पदार्थो को मंडी ले जाने में सुविधा हुई?

समंक संकलन :- प्रस्तुत पत्र में रतलाम जिले के विशेष संदर्भ में

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय सैलाना, जिला रतलाम(म.प्र.) भारत

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का कृषि पर प्रभाव दर्शाया गया हैं।

उक्त अध्ययन प्राथमिक समंको पर आधारित हैं। जिनके संकलन हेतु रतलाम जिले के अन्तर्गत आनेवाले 4 विकासखण्डों (रतलाम,सैलाना, जावरा,बाजना) का चुनाव किया गया है। तथा प्रत्येक विकासखण्ड से5-5 गाँव जो प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अन्तर्गत बारहमासी सड़को (मुख्य मार्गो) से जुड़कर लाभान्वित हो रहे है, का चयन किया गया है। यही नहीं प्राथमिक समंकों के संग्रहण हेतु प्रत्येक गाँव से 11-11 ग्रामीण सुचना दाताओं का चयन किया गया है।

इस प्रकार प्रत्येक विकासखण्ड से 5, तथा कुल 220 सुचनाढाताओ से समंक एकत्रित कर उनका अध्ययन किया गया है, इस योजना के कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव को जानने का प्रयास किया है।

विश्लेषण:- ''यदि यह सत्य है कि थल सेना की शक्ति के सूचक उसके पैर है, तो यह भी सच होगा कि कृषि की शक्ति हमारी सड़कों पर निर्भर करती है।'' इस पत्र के माध्यम से विशेषत: रतलाम जिले में प्राधनमंत्री ग्राम सड़क योजना का कृषि पर प्रभाव जैसे कि इस योजना के अन्तर्गत सड़क बनने के बाद गाँवों में कृषि के क्षेत्रफल एवं उसके स्वरूप में क्या बदलाव आया है? क्या सड़क बनने के बाद कृषि मे खाद, बीज एवं दवाईयों के प्रयोग में तथा साथ ही इससे उत्पादन में वृद्धि हुई है? सड़क बनने के बाद क्या शीघ्र नष्ट होने वाले खाद्य पदार्थो का उत्पादन बढ़ा है? सड़क बनने के बाद गाँव के फसल एवं खाद्य पदार्थो को मंडी ले जाने में सुविधा हुई है? को अग्रलिखित तालिका द्धारा विश्लेषित किया गया है।

तालिका क्रं.1

कृषि के क्षेत्रफल में वृद्धि की स्थिति

क्र.	विवरण	रतलाम				योग	प्रतिशत
		रतलाम	सैलाना	जावरा	बाजना		
1	हाँ	44	31	31	36	142	64.55
		-80	-56.36	-56.36	(65.,45)		
2	नही	11	24	24	19	78	35.45
		-20	-43.64	-43.64	-34.55		
योग		55	55	55	55	220	100
		-100	-100	-100	-100		

स्त्रोत: सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्व-निर्मित। कोष्ठक में प्रतिशत दर्शाया गया है।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 64.5 प्रतिशत सूचनाढाताओं का कहना है कि सड़क बनने से कृषि के क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है, जबकि 35.45 प्रतिशत सूचनाढाताओं का कहना है कि सड़क बनने से कृषि के क्षेत्रफल में वृद्धि नहीं हुई है।

विकासखण्ड स्तर पर देखे तो ज्ञात होता है कि बाजना के 64.45 प्रतिशत तथा रतलाम के 80 प्रतिशत सूचनाढाताओं का कहना है कि सड़क बनने से कृषि के क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है।सैलाना एवं जावरा विकासखण्डमें ऐसे सूचनाढाताओं का प्रतिशत समान अर्थात 56.36 है। जबकि बाजना के 34.55 प्रतिशत तथा रतलाम के 20 प्रतिशत सूचनाढाताओं का कहना है कि सड़क बनने से कृषि के क्षेत्रफल में वृद्धि नहीं हुई है।

सैलाना एवं जावरा विकासखण्ड में ऐसे सूचनाढाताओं का प्रतिशत समान अर्थात 43.64 है। अध्ययन क्षेत्र में सूचनाढाताओं से सड़क बनने के बाद भी कृषि के क्षेत्रफल में वृद्धि नहीं होने के कारण जानना चाहा तो उनका कहना था कि हमारे यहॉ की अधिकांश भूमि पहले से ही कृषि योग्य है। कुछ भूमि अगर पड़त के रूप में है भी तो हम चाहकर भी उसे कृषि भूमि में बद नहीं सकते क्योंकि इससे पशुओं को चारे की प्राप्ति होती है।

तालिका क्रं.2

कृषि के स्वरूप में बदलाव की स्थिति

क्र.	विवरण	रतलाम				योग	प्रतिशत
		रतलाम	सैलाना	जावरा	बाजना		
1	हाँ	55	46	46	48	192	88.64
		-100	-83.64	-83.64	-87.27		
2	नही	0	9	9	7	25	11.36
		0	-16.36	-16.36	-12.73		
योग		55	55	55	55	220	100
		-100	-100	-100	-100		

स्त्रोत: सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्व-निर्मित। कोष्ठक में प्रतिशत दर्शाया गया है।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 88.64 प्रतिशत सूचनाढाताओं का कहना है कि सड़क बनने से कृषि करने के स्वरूप में बदलाव आया है, जबकि 11.36 प्रतिशत सूचनाढाताओं का कहना है कि सड़क बनने से कृषि करने के स्वरूप में किसी प्रकार का कोई बदलाव नहीं आया है, अर्थात कृषि कार्य मे जो साधन पहले प्रयोग किये जाते थे, सड़क बनने के बाद भी उन्ही साधनों का प्रयोग किया जा रहा है।

विकासखण्ड स्तर पर देखे तो ज्ञात होता है कि बाजना के87.27 प्रतिशत तथा रतलाम विकासखण्ड के शत्-प्रतिशत सुचनाढाताओं का कहना है कि सड़क बनने से कृषि करने के स्वरूप में बदलाव आया है, अर्थात अब नलकूपों, डीजल इंजनों तथा ट्रेक्टरों की संख्या बढ़ गई है जिससे कृषि कार्य तेजी से हो रहा है।

12 विकासखण्ड में ऐसे सूचनाढाताओं का प्रतिशत समान अर्थात 83.64 है। जबकि बाजना विकासखण्ड के 12.73 प्रतिशत सूचनाढाताओं का कहना है कि सड़क बनने से कृषि में जो साधन (कुएँ,नदी, बिजली से चलने वाली मोटर, हल, बक्खर आदि) पहले प्रयोग कये जाते जाते थे। सड़क बनने के बाद भी उन्ही साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। सैलाना एवं जावरा विकासखण्ड में ऐसे सूचनाढाताओं का प्रतिशत समान अर्थात्16.36 है। रतलाम विकासखण्ड में ऐसे सूचनाढाताओं का प्रतिशत 0 है।

तालिका क्रं.3

खाद, बीज एवं दवाईयों के प्रयोग में वृद्धि स्थिति

क्र.	विवरण	रतलाम				योग	प्रतिशत
		रतलाम	सैलाना	जावरा	बाजना		
1	हाँ	43	46	40	42	172	77.73
		-78.18	-83.64	-72.73	-76.36		
2	नही	12	9	15	13	49	22.27
		-21.82	-16.36	-27.27	-23.64		
योग		55	55	55	55	220	100
		-100	-100	-100	-100		

स्त्रोत: सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्व-निर्मित। कोष्ठक में प्रतिशत दर्शाया गया है।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 77.73 प्रतिशत सूचनाढाताओं का कहना है कि सड़क बनने से पहले की तुलना में नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयों का प्रयोग बढा है। जबकि 22,27 प्रतिशत

सूचनादाताओं का कहना है कि सड़क बनने से पहले की तुलना में नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयों का प्रयोग नही बढा है। वरन् इनके प्रयोग की मात्रा एवं किस्म पहने के समान ही है।

विकासखण्ड स्तर पर देखें तो ज्ञात होता है कि रतलाम के 78.18 प्रतिशत सैलाना के 83.64 प्रतिशत, जावरा के 72.73प्रतिशत एवं बाजना के 76.36 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि सड़क बनने से पहले की तुलना में नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयों का प्रयोग बढा है।

जबकि रतलाम के 21.82 प्रतिशत , सैलाना के 16.36 प्रतिशत ,जावरा के 27.27 प्रतिशत तथा बाजना के 23.64 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि सड़क बनने से पहले की तुलना में नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयों का प्रयोग नही बढा है। वरन् इनके प्रयोग की मात्रा एवं किस्म पहले कि ही समान है। अर्थात खाद, बीज एवं दवाईयों की जो मात्रा एवं किस्म पहले प्रयोग कर रहे थे वही अब भी प्रयोग कर रहे है।

अध्ययन क्षेत्र में जब सूचनादाताओं से इसका कारण जानना चाहा तो उनका कहना था कि नये-नये खाद,बीज एवं दवाईयॉ जहॉं एक ओर अधिक महँगी पड़ती है, वहीं दूसरी ओर इनका अधिक मात्रा में प्रयोग करना पड़ता है। जो कि हमारी आर्थिक स्थिति के अनरूप नहीं है।

यहॉ यह बताना उचित होगाा कि अध्ययन क्षेत्र में जिन सूचनादाताओं का यह कहना था कि सड़क बनने से पहले कि तुलना में नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयों का प्रयोग बढा है। उन सूचनादाताओं से यह भी जानने का प्रयास किया है कि नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयों के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई है। या नहीं? इस संदर्भ में सूचनादाताओं से जो जानकारी प्राप्त हुई है, उसे अग्रलिखित तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका क्रं.4

खाद, बीज एवं दवाईयों के प्रयोग में उत्पादन में वृद्धि की स्थिति

क्र.	विवरण	रतलाम				योग	प्रतिशत
		रतलाम	सैलाना	जावरा	बाजना		
1	हॉं	41	43	36	40	160	93.57
		-95.35	-93.48	-90	-95.24		
2	नही	2	3	4	2	11	6.43
		-4.65	-6.52	-10	-4.76		
योग		43	46	40	42	171	100
		-100	-100	-100	-100		

स्त्रोत: सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्व-निर्मित। कोष्ठक में प्रतिशत दर्शाया गया है।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 93.57 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयों का प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि हुई है।

जबकि 6.43 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयों के प्रयोग से उत्पादन मे कोई खास वृद्धि नही हुई है। विकासखण्ड स्तर पर देखे तो ज्ञात होता है कि रतलाम के 93.35 प्रतिशत, सैलाना के 93.48 प्रतिशत,जावरा के 90 प्रतिशत तथा बाजना के 95.24 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयाँ के प्रयोग में वृद्धि हुई है।

जबकि रतलाम के 4.65 प्रतिशत, सैलाना के 6.52 प्रतिशत, जावरा के 10.00 प्रतिशत, तथा बाजना क 4.76 प्रतिशत, सूचनादाताओं का कहना है कि नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयों का प्रयोग से उत्पादन में कोई खास वृद्धि नही हुई है।

सूचनादाताओं से जब नये -नये खाद,बीज एवं दवाईयों के प्रयोग से उत्पादन में आशानुरूप वृद्धि नहीं होने का कारण पूछा, तो उन्होंने कहा कि इसके पीछे कुछ प्रमुख कारण है जैसे कभी समय पर वर्षा न होना, कभी आवश्यकता से अधिक वर्षा हो जाना आदि।

ऐसी स्थिति निर्मित होने पर कृषि में नये-नये खाद, बीज एवं दवाईयों के प्रयोग से निश्चित ही उत्पादन में कोई खास वृद्धि नही होती ।

तालिका क्रं.5

शीघ्र नष्ट होने वाले खाद्य पदार्थो के उत्पादन में वृद्धि की स्थिति

क्र.	विवरण	रतलाम				योग	प्रतिशत
		रतलाम	सैलाना	जावरा	बाजना		
1	हॉं	41	47	43	42	173	78.64
		-74.55	-85.45	-78.18	-76.36		
2	नही	14	8	12	13	47	21.36
		-25.45	-14.55	-21.82	-23.64		
योग		55	55	55	55	220	100
		-100	-100	-100	-100		

स्त्रोत: सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्व-निर्मित। कोष्ठक में प्रतिशत दर्शाया गया है।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है, कि अध्ययन क्षेत्र में 78.64 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि सड़क बनने के बाद शीघ्र नष्ट होनेवाले खाद्य पदार्थो के उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। जबकी 21.36 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि सड़क बनने के बाद शीघ्र नष्ट होने वाले खाद्य पदार्थो के उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई है।

वरन् इनके उत्पादन की स्थिति पूर्व के समान ही है। इसी बात को विकासखण्ड स्तर पर देखें तो ज्ञात होता है कि रतलाम के 74.55 प्रतिशत सैलाना के 85.45 प्रतिशत, जावरा के 78.18 प्रतिशत तथा बाजना के 76.36 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है, कि सड़क बनने के बाद शीघ्र नष्ट होने वाले खादय पदार्थो के उत्पादन में वृद्धि हुई है। जबकी रतलाम के 25.45 प्रतिशत, सैलाना के 14.55 प्रतिशत, जावरा के 21.82 प्रतिशत, तथा बाजना के 23.64 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है, कि सड़क बनने के बाद शीघ्र नष्ट होने वाले खादय पदार्थो के उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई है। वरन् इनके उत्पादन की स्थिति पूर्व के समान ही है।

अध्ययन क्षेत्र में जिन सूचनादाताओं ने इस बात को स्वीकार किया था कि सड़क बनने के बाद शीघ्र नष्ट होने वाले खादय पदाथौ के उत्पादन में वृद्धि हुई है । उन सूचनादाताओं से जब यह पूछा गया कि कौन-कौन से खाद्य पदार्थो में भी वृद्धि हुई है?

इस प्रश्न के उत्तर में अधिकांस सूचनादाताओं का कहना था कि मुख्यत: दूध, साग-सब्जी और फल के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है यहाँ यह बताना भी उचित प्रतीत होगा कि सड़कों का निर्माण हो जाने पर गाँवों से कृषि उत्पादन को पास के कस्बों, मण्डियों, शहरों, बडे-बडे नगरों और बंदरगाहों तक ले जाने में आसानी होती है और इसी बात का दृष्टिगत रखते हुए अध्ययन क्षेत्र में समस्त सूचनादाताओं से यह जानने का प्रयास किया है कि सड़क बनने से विभिन्न प्रकार कि फसलों एवं खाद्य पदार्थो की मंडी ले जाने में सुविधा हुई है या नहीं ? इस संदर्भ में सूचनादाताओं से जो जानकारी प्राप्त हुई है उसे अग्रलिखित तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका क्रं.6

फसल एवं खाद्य पदार्थों को मण्डी में ले जाने में सुविधा

क्र.	विवरण	रतलाम				योग	प्रतिशत
		रतलाम	सैलाना	जावरा	बाजना		
1	हाँ	55	49	55	55	214	97.27
		-100	-89.09	-100	-100		
2	नही	0	6	0	0	6	2.73
		0	-10.91	0	0		
योग		55	55	55	55	220	100
		-100	-100	-100	-100		

स्त्रोत: सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्व-निर्मित। कोष्ठक में प्रतिशत दर्शाया गया है।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 97.27 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि सड़क बनने से विभिन्न प्रकार की फसलों एवं खाद् पदार्थों की मंडी में ले जाने में सुविधा हुई है। जबकि 2.73 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि सड़क बनने से विभिन्न प्रकार की फसलों एवं खाद् पदार्थों की मंडी में ले जाने में बहुत ज्यादा सुविधा नहीं हुई है।

विकासखण्ड स्तर पर देखे तो ज्ञात होता है कि सैलाना के 89.09 प्रतिशत तथा रतलाम, जावरा एवं बाजना विकासखण्ड के प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि सड़क बनने से विभिन्न प्रकार की फसलों एवं खाद् पदार्थों की मंडी में ले जाने में सुविधा हुई है। जबकि सैलाना विकासखण्ड के 10.91 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि सड़क बनने से विभिन्न प्रकार की फसलों एवं खाद् पदार्थों की मंडी में ले जाने में बहुत ज्यादा सुविधा नहीं हुई है।

निष्कर्ष:- उपरोक्त अध्ययन के आधार रूप में यह कहा जा सकता है, कि कुछ आंशिक अपवादों को छोड़ दिया जाये तो निश्चय ही प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना कृषि पर बहुत ही प्रभावशाली रही है। क्योंकि इस योजना के अन्तर्गत जो गाँव बारहमासी सड़क (मुख्यमार्ग) से जुड़ चुके हैं।

उन गॉवों में नये-नये आधुनिक कृषि यंत्रों के पहुँचने से जहाँ एक ओर कृषि के क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है। वहीं दुसरी ओर उसके स्वरूप में भी तेजी से बदलावा आय है अर्थात् अब नलकूपों,डीजल, इंजनों तथा ट्रेक्टरों की संख्या बढ़ गई है। इसके साथ ही इन गाँवों के कृषक अधिकाधिक उत्पादन करने के लिये नये-नये खाद,बीज, एवं दवाईयों के प्रयोग हेतु भी प्रोत्साहित हुए हैं ।

परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। यही नहीं बारहमासी सड़क (मुख्यमार्ग) से जुड़ जाने के पश्चात् इन गांवों में शीघ्र नष्ट होनेवाले खाद्य पदार्थो विशेषत: दूध, साग-सब्जी और फल के उत्पादन में भी काफी वृद्धि हुई है। इन सबसे ऊपर उठकर ग्रामीण कृषकों की एक महत्वपूर्ण समस्या अपने उत्पादन को मंडी ले जाने की थी?

वह भी अब पूर्णत: हल हो चुकी है। अर्थात् दूरस्थ क्षेत्रों में रहनेवाले कृषकों को न केवल फसल का वरन् शीघ्र नष्ट होनेवाले खाद्य पदार्थों का भी अब उचित मूल्य मिल रहा है। जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है। अत: कहा जा सकता है कि प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ कृषि क्षेत्र के तीव्र विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है।

संदर्भ-सूची

1 रस्तोगी, कृष्ण कुमार (1975.76) ''ग्रामीण एवं कृषि अर्थशास्त्र'' केदारनाथ रामनाथ प्रकाशक, मेरठ।

2. पंत, नवीन (फरवरी 2003) ''योजना'' प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पटियाला हाउस, नई दिल्ली।

3. डॉ. मामोरिया, चतुर्भुज एवं डॉ. जैन, एस. सी (2004) ''भारतीय अर्थशास्त्र '' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

4. डॉ. माहेश्वरी, पी. डी. एवं डॉ. जोशी वी. डी. (2003) '' यूनीफाइड अर्थशास्त्र '' कैलाश पुस्तक सदन भोपाल।

5. डॉ. मिश्र, मोहनलाल (1969) ''परिवहन अर्थशास्त्र '' भारती पब्लिकेशन्स प्रायवेट लिमिटेड 71, जवाहर मार्ग इन्दौर।

****

राष्ट्रीय आवास बैंक का ग्रामीण आवास में योगदान - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. सतीश माहेश्वरी * किशोर मोरे **

पृष्ठभूमि : आवास मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। गाँव के लोगों के लिए यह काफी महत्व रखना है। जिनकी निराश्रयता को दूर कर उन्हें गरिमामय जीवन का आधार प्रदान करता है। आवास उन्हें एक विशिष्ट एवं सुरक्षित पहचान दिलाता है। अत: आवास की कमी समस्या का समाधान भारत में गरीबी उन्मूलन की एक अहम् रणनीति है। वर्ष 2011 की 15वीं राष्ट्रीय जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 121 करोड़ से अधिक है जिसमें से शहरी जनसंख्या 37.7 करोड़ है यानि 31.2: है और जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में 83.3 करोड़ यानि 68.8: है।

देश में कुल 33 करोड़ से अधिक भवन निर्मित है जिसमें से शहर में 11 करोड़ एवं ग्रामीण क्षेत्र में 22 से अधिक करोड़ अवस्थित है। इन मकानों (आवासों) के निर्माण हेतु वित्त की आवश्यकता होती है। जिन्हें व्यक्ति अपने विभिन्न वित्तीय स्त्रोतों के माध्यम से प्राप्त कर बनवाता है। जिसमें से ऋण एक प्रमुख माध्यम है। इस उद्देश्य हेतु भारतीय रिजर्व बैंक ने अपने सम्पूर्ण स्वामित्व में वर्ष 1988 में राष्ट्रीय आवास बैंक की संसद के एक अधिनियम के तहत आवास वित्त संस्थानों को बढ़ावा देने और उन वित्तीय संस्थानों को वित्तीय एवं अन्य सहायता प्रदान करने के लिए प्रारम्भ की।

राष्ट्रीय आवास बैंक की स्थापना एवं उद्देश्य : पूर्ण रूप से भारतीय रिजर्व बैंक के निजी सहायक राष्ट्रीय आवास बैंक (एन.एच.बी.) की स्थापना 1987 में संसद अधिनियम के द्वारा की गई थी। एन.एच.बी. आवास के लिए एक शीर्ष वित्तीय संस्था है। इसने अपनी प्रक्रिया 9 जुलाई 1988 को प्रारम्भ की थी। स्थानीय व क्षेत्रीय दोनों स्तरों पर आवास वित्त संस्थाओं को मुख्य शाखा के रूप में बढ़ाने और ऐसी संस्थाओं और उससे सम्बन्धित मामलों को वित्तीय एवं आनुषंगिक समर्थन देने के उद्देश्यों से एन.एच.बी. की स्थापना की गई है। एन.एच.बी. आवास वित्त कम्पनी (एच.एफ.सी.) को पंजीकृत, नियंत्रित व संचालित करता है, स्थल व स्थलोत्तर प्रक्रिया द्वारा निगरानी करता है और अन्य नियंत्रकों के साथ मिलकर काम करता है। राष्ट्रीय आवास बैंक का वित्तीय वर्ष जुलाई से जून तक रहता है।

एन.एच.बी. का मिशन निम्न और मध्य आय आवास पर जोर देते हुए जनता के सभी वर्गों की आवास आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बाजार क्षमताओं को तलाशना एवं विकसित करना है। यह बैंक देश में स्वस्थ आवास वित्त सेक्टर के लिए सहायता जारी रखने और सभी के लिये किफायती आवास लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है।

ग्रामीण आवास निधि : ग्रामीण आवास सेक्टर में एन.एच.बी. बैंक की पुनर्वित्त गतिविधियों को बढ़ाने के लिये केन्द्र सरकार द्वारा ग्रामीण आवास निधि का सृजन किया गया। इस निधि में अंशदान अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों द्वारा उनके ऋण देने के प्राथमिकता क्षेत्र में कम पड़ने की सीमा तक किया जाता है। ग्रामीण आवास निधि में वर्ष 2008-09 से 2012-13 तक किया गया तालिका 1.1 बजटीय नियतन और तालिका 1.2 वितरित की गई राशि को नीचे दर्शाया गया है।

1.1 नियतन बनाम उपयोग (राशि करोड़ रू.में)

वर्ष	आर.एच.एफ नियतन	राशि
2008-2009	2000	1778
2009-2010	2000	2000
2010-2011	2000	2000
2011-2012	3000	3000
2012-2013	4000	4000

1.2 वितरित की गई राशि (राशि करोड़ रू. में) :

संस्थान	वर्ष		
	2010-11	2011-2012	2012-2013
एच.एफ.सी.	1686.54	2125.25	931.87
बैंक (एसबी)	316.12	877.78	728.63
कुल	2003.66	3003.03	1560.50

माननीय वित्त मंत्री जी ने अपने वर्ष 2008-09 के बजट भाषण में यह घोषित किया है कि ग्रामीण आवास निधि का सृजन किया जायेगा ताकि ऋण देने वाले प्राथमिक संस्थानों को ऐसी धन राशि प्राप्त हो सके जिसे वे ग्रामीण क्षेत्रों में लक्षित समूहों को प्रतिस्पर्धी दर पर आवास वित्त हेतु मुहैया करा सके। वर्ष 2008-09 के दौरान धन राशि का कापर्स 1778.18 करोड़ रूपये था जिसमें वर्ष 2009-10, 2010-11 प्रत्येक को 2000 करोड़ रूपये और 2011-12 में 3000 करोड़ रूपये की और आगे 2012-13 में 4000 करोड़ रूपये की वृद्धि की गई थी।

केन्द्रीय बजट 2013-14 में की गई घोषणा के अनुसार रा. आ. बैंक को ग्रामीण आवास निधि के तहत 6000 करोड़ रू. की राशि आवंटित की गई। निधियों का उपयोग रा. आ. बैंक प्राथमिक ऋणदाता संस्थानों को पुनर्वित्त देकर वित्तीय सहायता देते हैं और आवास के लिये ऋण प्रदान करने हेतु उन्हें प्रोत्साहित करते हैं। पुनर्वित्त सहायता विभिन्न प्राथमिक ऋणदाता संस्थानों यथा अनुसूचित बैंकों, आवास वित्त कंपनियों, सहकारी क्षेत्र के संस्थानों को उन्हें व्यैक्तिक ऋण देने के लिये दी जाती है।

राष्ट्रीय आवास बैंक का ग्रामीण आवास में योगदान का विश्लेषण :-

वर्ष 2010-11 से 2012-13 (जुलाई से दिसम्बर 2012 तक) वर्ष-वार ग्रामीण आवास के लिए संवितरित राशि (करोड़ रूपये में) को निम्न तालिका में प्रदर्शित किया जा रहा है। राष्ट्रीय आवास बैंक का वित्तीय वर्ष जुलाई से जून तक रहता है। :-

वर्ष 2010-11(जुलाई से जून) के दौरान जारी राशि की तालिका

संस्थान	नियमित योजना	आर.एच.एफ	जी.जे.आर. आर.एच.आर.एस.	कुल
एच.एफ.सी.	1139.21	1686.54	481.92	308.67
बैंक (एसबी)	4798.00	316.12	3300.00	414.12
कुल	5937.21	2003.66	3781.92	11722.79

* प्राध्यापक (वाणिज्य) ** पीएच.डी. (शोधार्थी) स्वामी विवेकानंद शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय रतलाम (म.प्र.) भारत

वर्ष 2011-12 (जुलाई से जून) के दौरान जारी राशि की तालिका

संस्थान	नियमित योजना	आर.एच.एफ	जी.जे.आर. आर.एच.आर.एस.	कुल
एच.एफ.सी.	2772.37	2125.25	404.51	5302.13
बैंक (एसबी)	6010.00	877.78	2200.00	9087.78
कुल	8782.37	3003.03	2604.51	14389.91

वर्ष 2012-13 (दिसम्बर 2012 तक) के दौरान जारी राशि तालिका

संस्थान	नियमित योजना	आर.एच.एफ	जी.जे.आर. आर.एच.आर.एस.	कुल
एच.एफ.सी.	1769.23	831.87	1836.72	4437.82
बैंक (एसबी)	3936.78	728.63	350.00	5015.41
कुल	5706.01	1560.50	2186.72	9453.41

ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक उत्तरदाता संस्थाओं (पीएलआई) द्धारा दिये गये ऋणों के संबंध में वर्ष 2010-11 के दौरान पुनर्वित्त हेतु जारी की गई कुल 11722.99 करोड़ रूपये की राशि में से ग्रामीण आवास निधि (आर.एच.एफ.) के और स्वर्ण जयंती ग्रामीण आवास पुनर्वित्त योजना (जी.जे.आर.आर.एच.आर.एस.) के अन्तर्गत 5785.58 करोड़ रूपये की राशि जारी की गई जो कुल राशि का 49.35: होती है।

वर्ष 2011-12 के दौरान जारी की गई कुल 14389.91 करोड़ रूपये का पुनर्वित्त संवितरित किया गया था, जिसमें से 5607.54 करोड़ रूपये स्वर्ण जयंती ग्रामीण आवास पुनर्वित्त योजना और ग्रामीण आवास निधि के तहत ग्रामीण आवास के लिए संवितरित किया गया है।

वर्ष 2012-13 (जुलाई से दिसम्बर 2012) में कुल 9453.23 करोड़ रूपये संवितरित किये गये थे, जिसमें से 3747.22 करोड़ रूपये ग्रामीण आवास के लिए (स्वर्ण जयंती ग्रामीण आवास पुनर्वित्त योजना में 2186.72 करोड़ रूपये और ग्रामीण आवास निधि के तहत 1560.50 करोड़ रूपये की राशि) संवितरित किये गये थे जो कुल राशि का 39.64: होती है। बैंक इस पूरी राशि का लक्षित समूहों के ग्रामीण आवास हेतु वित्त-पोषण करने में समर्थ हुआ है।

निष्कर्षत: कहा जायगा कि ग्रामीण आवास बैंक ने वर्ष 2010-11 में 49.35: राशि जारी की है। वहीं वर्ष 2011-12 के दौरान 38.97: और वर्ष 2012-13 (दिसम्बर 2012 तक) 39.64: जारी किये हैं जो पिछले वर्ष 2010-11 की तुलना में अपनी कुल वितरित की गई राशि का कुछ अंश कमी पर है किन्तु लक्षित समूहों के ग्रामीण आवास हेतु वित्त-पोषण में समर्थ हुआ है।

संदर्भ सूची-

✻ पत्र-पत्रिकाएँ-दि इकोनोनिक टाइम मुंबई, टाइम्स ऑफ इण्डिया, कुरूक्षैत्र, भारत सरकार, नई दिल्ली

वेबसाइट्स

- www.finmin.nic.in
- www.nhb.org.in
- www.rural.nic.in
- www.planningcommission.nic.in
- www.wikipedia
- www.censusindia.gov.in

****

औद्योगिक रूग्णता : (पीथमपुर औद्योगिक क्षेत्र की रुग्ण औद्योगिक इकाइयों के विशेष संदर्भ में)

डॉ. राकेश माथुर * गौरव राठौर **

प्रस्तावना:– रूग्णता अर्थात् विकार अथवा दोष। जिस प्रकार एक स्वस्थ मानव शरीर जब विकार से ग्रस्त हो जाता है तो वह अपनी पूर्णरूपेण क्षमता से कार्य करने में कठिनाई का अनुभव करने लगता है। यदि समय पर उस रोगकारक विकृति का पता कर, प्रतिकारक औषधि अथवा उपाय का प्रयोग कर लिया जाये तो संभव है कि उस विकृति,दोष,रूग्णता पर स्वस्थता अधिकार पा ले । परंतु समय अत्याधिक व्यतीत हो जाने पर उस विकार का निवारण असंभव हो जाता है परिणाम स्वरूप रोग की सादृश्यता नकारात्मकता में परिणीत हो जाती है।

उपरोक्त स्थिति एक मानव शरीर के संबंध में थी, इसी के समकक्ष आर्थिक जगत में औद्योगिक इकाइयों के संदर्भ में भी समान स्थिति दृष्टिगोचर होती हैं। उद्योग किसी भी देश की आर्थिक प्रगति,स्वावलंबन एवं उत्तरोत्तर विकास के सूचक होते हैं। यदि किसी भी विकसित देश के आर्थिक प्रगति का विश्लेषात्मक अध्ययन किया जाय तो निश्चित रूप से औद्योगिक इकाइयों का योगदान प्रमुखता से दृष्टिलब्ध होगा। इसका कारण यह है कि उद्योग देश की अर्थव्यवस्था को :-

- व्यय हेतु राजस्व उपलब्ध कराते हैं।
- देश में उपलब्ध संसाधनों का समुचित दोहन करते हैं।
- देश में लोगों को रोजगार उपलब्ध कराते हैं।
- देश को आर्थिक स्वालंबन प्रदान करते हैं।
- आयात को हतोत्साहित कर,निर्यात को प्रोत्साहित करते हैं।

उपरोक्त बिंदुओं के आधार पर औद्योगिक इकाइयों को महत्व स्पष्टत: निरूपित होता है। किंतु जिस प्रकार हर सिक्के के दो पहलू होते हैं वैसे ही इस औद्योगिक इकाइयों का एक अन्य पक्ष भी कुप्रबंध के कारण रूग्ण हो जाना संभव हो जाता हैं।

यदि एक सारगर्भित एवं व्यवस्थित रूग्णता के मापक परिभाषा का अध्ययन किया जाय तो यहाँ पर रूग्णता से आशय :- ए. फारूख खान के अनुसार - 'औद्योगिक रूग्णता वह स्थिति है जब संस्था का राजस्व उसकी लागत से कम हो जाता है एवं पूंजी लागत पूंजी से कम हो जाती है या इस संस्था में जो धन निवेशित किया गया है वह वापिस न हो।' इस स्थिति के उत्पन्न होने से कोई भी संस्था का संचालन अलाभदायक हो जाता है तथा राजस्व की प्राप्ति पूंजी की मूल्य ये कम हो जाती है।

भारतीय उद्योगों में औद्योगिक रूग्णता की स्थिति पर्याप्त गंभीर बनी हुई। विगत चार दशकों में इसका अत्यंत विस्तार हुआ है। इन्हीं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए भारत शासन में औद्योगिक रूग्णता की परिभाषा के विषय में सहमति नहीं थी। भारतीय रिजर्व बैंक, दीर्घकालीन ऋण देयक संस्थाऐं एवं भारतीय स्टेट बैंक रूग्ण उद्योगों की परिभाषा भिन्न-भिन्न ढ़ग से करते थे, लेकिन 'औद्योगिक रूग्णता कम्पनी अधिनियम 1985 के बन जाने के पश्चात् इस संबंध में अधिक मतभेद नहीं रहे। मुक्त संचय से तात्पर्य उस संचय से है जिसकी व्यवस्था लाभ और अंश प्रब्याजि लेखे से हुई हो, इसमें कम्पनी की परिसम्पत्ति के पुर्नमूल्यन, मूल्य ह्यस के पश्चात् की गई व्यवस्था और कम्पनी समामेलन द्वारा जो भी निधियां जुटाई गयी हो, शामिल नहीं होगी। इसके अतिरिक्त यदि वर्षो में से कोई भी वर्ष नष्ट हो गया हो तो उसे प्रारंभिक रूग्ण कम्पनी की श्रेणी में रखा जाएगा।

औद्योगिक रूग्णता के कारणों का संक्षिप्त वर्णन:

(1) **जन्मजात रूग्णता–** एक सर्वेक्षण एवं शोध अध्ययन दल के अनुसार 50 प्रतिशत इकाईयाँ स्थापना के 3 वर्ष के अंदर ही रूग्णता को प्राप्त हो जाती है। अर्थात् यह सिद्ध है कि वे भविष्य में पूर्णत: स्वस्थ हो यह अत्यंत दुर्बल संभावना है।

(2) **अनुभव का अभाव–** उद्योग के संचालनकर्ताओं के तत्संबंधी अनुभव का न होना, गलत चयन, एवं उसका त्रुटिपूर्ण प्रबंधन इत्यादि कारण भी इकाई को रूग्ण बनाते हैं।

(3) **परियोजना शुरू करने में विलंब–** इकाई की रूग्णता परियोजना शुरू करने में विलंब करने से ऋण राशि पर देय ब्याज में शिथिलता नहीं प्राप्त होती है। इस कारण इकाई को बिना लाभ कमायें ही पूंजी में से देय ब्याज का भुगतान करना पड़ता है जो कि रूग्णता के बीज बोने जैसा सिद्ध होता है।

(4) **वित्त की कमी–** कई इकाइयों को अपने बड़े आकार माल क्रय करने हेतु वित्त की आवश्यकता होती है परन्तु वे अल्प समय में वित्त प्राप्त नहीं कर पाते है। जिससे की वह आदेश प्रतिस्पर्धा इकाइयों को प्राप्त हो जाता है। एवं लाभ तभी प्राप्त होगा, जबकि संस्थान नियमित रूप से उत्पादन कर माल का विक्रय कर पाये, आदेश न होने से इकाई की शिफ्ट क्रमश: कम होते-होते 3 से 1 पर आ जाती है। किन्हीं-किन्हीं परिस्थितियों यह सप्ताह में कई दिन बंद भी करना पड़ती है। यह वित्त की समय पर अनुपलब्धता का परिणाम है।

(5) **आंतरिक कारण–**किसी भी इकाइयों की सफलता हेतु परम आवश्यक वित्तीय प्रबंध, विपणन, मानव प्रबंधन, नियोजन इत्यादि प्रबंधकीय तत्वों को व्यवस्थित रूप से प्रबंध न होने से प्रबंध कुप्रबंध में बदल जाता है। एवं औद्योगिक इकाई रूग्ण हो जाती है।

(6) **मांग में कमी –** उद्योग द्वारा उत्पादित इकाइयों की मात्रा में कमी आ जाने से एवं अन्य विकल्प न होने से भी इकाई रूग्ण हो जाती है।

(7) **शक्ति संकट–** औद्योगिक इकाइयाँ बहुत सीमा तक शक्ति पर आश्रित हैं। यदि शक्ति न हो तो श्रमिक बेकार बैठे रहते हैं, एवं उन्हें अकारण मजदूरी देना पड़ती है जिससे कि लागत बढ़ती है वहीं दूसरी ओर शक्ति जैसे कोयला, तेल एवं बिजली दरों में वृद्धि भी इस रूग्णता को बलशाली बनाती है।

औद्योगिक रूग्णता को रोकने हेतु उपचार:–

(1) **रियायती वित्त:–** रूग्ण इकाइयों को स्वस्थ करने हेतु रियायती दर पर वित्त उपलब्ध करवाना चाहिए।

* प्राध्यापक (वाणिज्य) ** शोधार्थी, शासकीय स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

(2) यदि औद्योगिक रूग्णता का कारण समूचे विशेष उद्योग जगत पर व्याप्त है एवं बैंक इत्यादि भी प्रभावी सिद्ध नहीं हो रहें हों तो सरकार को कर एवं उत्पादन कर सकती है।

(3) **वृहद स्वस्थ इकाइयों में संविलयन:-** सरकार द्वारा रूग्ण इकाइयों को स्वस्थ इकाइयो में विलयन को प्रोत्साहित किया है जिससे कि रूग्ण इकाइयों को करो में छूट मिलती है।

(4) **परामर्श सहायता:-** यदि रूग्ण इकाई को कोई तकनीकी समस्या के कारण बाधा आ रही है या विशेष समस्या से जूझना पड़ रहा है तो सरकारी रूग्ण प्रकोष्ठ या अन्य एजेंसियाँ मिल कर दीर्घकालीन अनुभव, रूग्ण इकाइयों से साँझा कर समस्या से छुटकारा पा सकती है।

भारत में औद्योगिक रूग्णता का प्रभाव वर्ष	औद्योगिक इकाईयाँ (लाखों में)	रूग्ण औद्योगिक इकाईयाँ (लाखों में)	प्रतिशत
1998	89.71	2.21	2.46
1999	93.96	3.06	3.26
2000	97.15	3.04	3.13
2001	101.1	2.49	2.46
2002	105.21	1.77	1.68
2003	109.49	1.67	1.53
2004	113.95	1.43	1.25
2005	118.59	1.38	1.616
2006	123.42	1.26	1.02
2007	261.01	1.14	0.43
2008	272.79	0.85	0.31
2009	285.16	1.04	0.36
2010	298.08	0.78	0.26
2011	311.52	0.9	0.29

स्त्रोत:-भारत सरकार,सूक्ष्म एवं मध्यम,लघु उद्योग मंत्रालय वार्षिक प्रतिवेदन 2011-2012
भारतीय रिजर्व बैंक सांख्यिकी भारतीय अर्थव्यवस्था 2010-2011

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं समस्याएँ,नागर विष्णुदत्त 1980।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था, नागर डॉ.विष्णुदत्त, मेहता डॉ.वल्लभदास 2009।
3. आधुनिक व्यावसायिक संगठन,अग्रवाल आर.सी.2001
4. व्यावसायिक पर्यावरण,वार्षेय.डॉ.जे.सी.2003
5. भारत औद्योगिक अर्थव्यवस्था,डॉ.कुलश्रेष्ठ आर.एस.साहित्य भवन आगरा 1984
6. भारत की आर्थिक समस्याएँ,शर्मा कालीचरण,शर्मा एन.एम.साहित्य भवन आगरा 1999
7. उद्योगों का संगठन एवं वित व्यवस्था,डॉ.सःसेना एवं गुप्ता
8. भारतीय अर्थव्यवस्था के संसाधन एवं विकास,मामेरिया चतुर्भुज आर.एस.
9. जर्नल ऑफ म.प्र. अर्थशास्त्र एसोसियेशन, फरवरी 2009
10. मध्यप्रदेश का आर्थिक सर्वेक्षण 1984-85,1988-89 एवं 1992-94,1999-2000, आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय, मध्यप्रदेश।
11. मध्यप्रदेश सांख्यिकी संक्षेप 1982,1984,1987,1992 एवं 2002 आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय, मध्यप्रदेश।
12. An Overview Of Sickness In Micro, Small & Medium Enterprises In India - DR. K.A. GOYAL, DR. NITIN GUPTA, NEETA GUPTA

****

जनसंख्या वृद्धि और पर्यावरण पर उसका प्रभाव

डॉ. किशोर कुमार डावर * डॉ. अर्जुन सिंह बघेल **

परिचय :- जनसंख्या वृद्धि से तात्पर्य उस स्थिति से है जिससे देश में मृत्यु दर में तो गिरावट आती है लेकिन जन्मदर के उच्च होने के कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होती है। जनसंख्या वृद्धि धरातलीय संतुलन बिगाड़ने पर अमादा है। संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 2010-11 में 7 अरबवें बच्चे के जन्म को खुशी का अवसर न मानकर चिंता का सबक मान रहा है। यह विडंबना है कि बढ़ती आबादी को 'बोझ' और 'संकट' जैसे उलाहना भरे शब्दों से नवाजा जा रहा है। भारत में विश्व के कुल क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत भू-भाग है, जिस पर विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। वर्तमान में चीन के बाद भारत विश्व का दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या वाला राष्ट्र है। 2001-2011 के दशक में भारत की जनसंख्या में 181 मिलियन से अधिक की वृद्धि हुई है। 2011 में जनसंख्या वृद्धि की सालाना दर 1.64 प्रतिशत हो गई है। यह दर चीन के 1.0 प्रतिशत का लगभग दुगुना है।

जनसंख्या वृद्धि का सीधा प्रभाव प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय का वितरण बेरोजगार, शिक्षा, आवास और स्वास्थ्य सुविधाओं और अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति पर पड़ता है। विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के पिछड़ने का कारण जनसंख्या वृद्धि के वितरीत प्रभाव के रूप में देखा जाता है। 18वीं सदी अर्थात् 1804 तक दुनिया की आबादी 1 अरब को पार कर गई। 2 अरब होने में 123 साल लगे, 3 अरब होने में 33 साल, 4 अरब होने में 14 साल, 5 अरब होने में 13 साल और 6 अरब होने में महज 12 साल लगे हैं। वर्ष 2012 तक विश्व की आबादी 7 अरब हो गई। आबादी को 6 अरब से 7 अरब होने में केवल 13 साल ही लगे। अत: स्पष्ट होता है कि बढ़ती आबादी के कारण प्राकृतिक संसाधनों का दबाव बढ़ता जा रहा है। आज भारत की जनसंख्या 1 अरब से अधिक है। इसी वृद्धि का प्रभाव मानव पर्यावरण पर पड़ता नजर आ रहा है। जनसंख्या वृद्धि के कारण राज्य पीड़ित लोगों एवं समाज को पर्याप्त मात्रा में न्यूनतम आवश्यकता में रोटी, कपड़ा और मकान भी उपलब्ध नहीं करा पाता है।

परिकल्पना :- 1. जनसंख्या वृद्धि को मानव संसाधन की शक्ति के रूप में सहायक माना है। 2. जनसंख्या वृद्धि को आर्थिक विकास के साधन के रूप में सार्थक माना है। 3. तीव्र जनसंख्या वृद्धि प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण के विभिन्न घटकों पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है।

उद्देश्य :- 1. जनसंख्या वृद्धि एवं पर्यावरण प्रभाव से जन सामान्य को परिचित कराना। 2. जनसंख्या वृद्धि एवं पर्यावरण पर प्रभाव का अध्ययन करना। 3. पर्यावरण के लिए सचेत करना, नए बोध का विकास करना, पर्यावरण के पतन के प्रति लोगों की चिंता को दर्शाना, जनसंख्या वृद्धि के कारण बढ़ती हुई अक्षमताओं का अध्ययन करना है।

आँकड़ो के स्त्रोत एवं प्रविधि :- शोध पत्र के माध्यम से जनसंख्या वृद्धि एवं पर्यावरण को मद्दे नजर रखते हुए हमने इस अध्ययन में भारत, विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वृद्धि वाला राष्ट्र चीन तथा विश्व की कुल आबादी में लगातार वृद्धि एवं पर्यावरण पर प्रभाव विषय पर ध्यान केन्द्रित किया है। इस शोध पत्र के अंतर्गत विश्व जनसंख्या रिपोर्ट, केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय भारत सरकार की रिपोर्ट तथा संयुक्त राष्ट्र रिपोर्ट से प्राप्त द्वितीयक समंकों का तालिका द्वारा वर्गीकरण कर विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है तथा जो निश्कर्ष आये हैं उनको इस शोध पत्र में शामिल किया गया है।

विश्लेषण :- अध्ययन कारकों के मानो का विश्लेषण करते हुए विश्व में जनसंख्या का विवरण निम्न सारणी से स्पष्ट है-

वर्ष	जनसंख्या करोड़ में	दुगुना होने की अवधि (वर्ष में)
प्रथम ईसवीं (ई)	25	-
1650	50	1650
1800	100	150
1930	200	130
1975	400	45
2025	800	50

स्त्रोत: विश्व जनसंख्या रिपोर्ट

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि ईसा पूर्व से 1650 तक जनसंख्या वृद्धि दर बहुत कम रही है। 1650 में विश्व जनसंख्या बढ़कर 50 करोड़ हो गई। 1800 में विश्व जनसंख्या 100 करोड़ थी, जो अगले 30 साल अर्थात् 1930 में 200 करोड़ हो गई। इसे दुगुना होने में मात्र 45 वर्ष लगे। इस प्रकार विश्व जनसंख्या के दुगुना होने की अवधि निरन्तर घटती जा रही है। 1975 में विश्व जनसंख्या 400 करोड़ हो गई। जनसंख्या वृद्धि दर से यह कहा जा सकता है कि 2025 तक जनसंख्या 800 करोड़ होने की सम्भावना है। भारत में जनसंख्या वृद्धि दर अन्य विकासशील राष्ट्रों की भाँति ऊँची है। केवल 20वीं शताब्दी में ही भारत की जनसंख्या में लगभग 4 गुना वृद्धि हुई। वर्ष 1951 में देश की जनसंख्या लगभग 35 करोड़ थी, जो 2001 में 102.87 करोड़ हो गई।

1991 से 2001 के मध्य 1 दशक के अंतराल में 21.54 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1951 से 2011 के बीच 28.92 प्रतिशत की वृद्धि होकर 2011 में देश में 1.21 करोड़ की जनसंख्या हो गई। इस तरह विगत वर्षो में लगातार जनसंख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है। लगातार इसी तरह जनसंख्या में वृद्धि की मौजूदा प्रवृत्तियों के चलते वर्ष 2028 में भारत विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जायेगा।

(तालिका क्रं. 02) 1950 से 2100 की स्थिति में जनसंख्या का तुलनात्मक विवरण

विवरण	1950	2013	2025	2050	2100
विश्व	2.53	7.16	8.08	9.55	10.85
भारत	0.38	1.25	1.42	1.62	1.55
चीन	0.54	1.39	1.45	1.38	1.09

स्त्रोत : संयुक्त राष्ट्र रिपोर्ट 2013

उपरोक्त तालिका एवं रेखाचित्र के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि विश्व की कुल जनसंख्या वर्तमान में 7.2 अरब है, जो 2025 तक बढ़कर 8.1 अरब, 2050 तक 9.6 अरब तथा 2100 ई. तक 10.9 अरब होने की

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय,सैलाना , रतलाम (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.) भारत

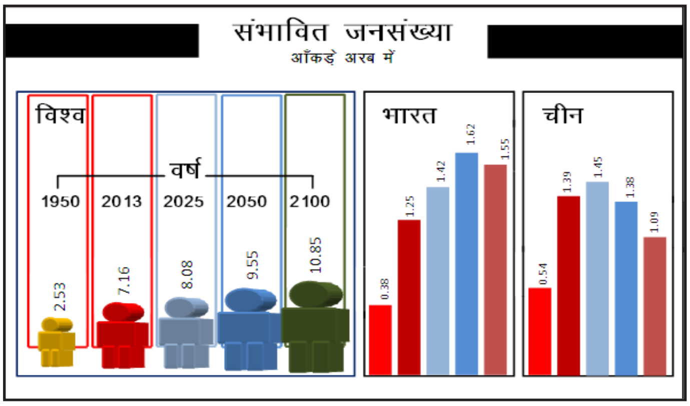

संभावना है। वर्ष 2025 के पश्चात् चीन की जनसंख्या में 1.45 अरब के पश्चात् कमी होने का संकेत स्पष्ट होता है, जबकि भारत की जनसंख्या इसी अवधि में 1.6 अरब के उच्चतम स्तर पर पहुँचने को अग्रसर दिखाई देती है। जनसंख्या वृद्धि की मौजूदा प्रवृत्तियों के चलते वर्ष 2028 में भारत देश की जनसंख्या 1.45 अरब होगी। इस प्रकार 2028 के पश्चात् भारत विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश की श्रेणी में प्रथम पायदान पर होगा। अभी भी भारत में लगातार जनसंख्या वृद्धि बनी हुई है व उसकी जीवन प्रत्याशा में भी वृद्धि हुई है।

भारत में जन्म पर जीवन प्रत्याशा का विवरण निम्नानुसार है-

तालिका क्रं. 03 भारत में जन्म पर जीवन प्रत्याशा की अवस्था (वर्ष में)

वर्ष	पुरूष	महिला
1951-1960	41.9	40.6
2001-2005	63.8	66.1
2006-2010	65.8	68.1
2021-2025	69.8	72.3

स्त्रोत : केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार रिपोर्ट

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत देश में जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ जन्मदर पर जीवन प्रत्याशा की अवधि भी बढ़ रही है। वर्ष 1951 से 1960 के बीच जन्म पर जीवन प्रत्याशा पुरूष वर्ग में 41.9 थी जो बढ़कर 2010 तक 65.8 हो गई। इन 60 वर्षों में पुरूष वर्ग में 23.9 वर्ष का अन्तर स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसी अवधि में महिला वर्ग के जीवन प्रत्याशा की अवस्था 40.6 से बढ़कर 68.1 हो गई अर्थात् 27.5 प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। उक्त अवधि में पुरूष की तुलना में महिला की प्रत्याशा दर 6.6 वर्ष की वृद्धि दर्ज हुई है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि में जीवन प्रत्याशा का असर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। वर्ल्ड पॉपुलेशन प्रॉस्पेक्ट्स 2013 की रिपोर्ट के अनुसार जन्म के समय जीवन प्रत्याशा 1950-55 के दशक में औसतन 47 वर्ष थी, जो बढ़कर 2005-2010 में 69 वर्ष हो गई थी, 2045-2050 में यह 76 वर्ष तथा 2095-2100 में यह 82 वर्ष होने की सम्भावना को इंगित किया गया है।

प्रभाव :- वर्तमान समय में विश्व की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है, यदि लगातार वृद्धि होती रही तो एक अनुमान के अनुसार 2025 तक 800 करोड़ जनसंख्या हो जायेगी। विश्व जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण पर्यावरण असंतुलन होने का भय लगने लगा है। जनसंख्या बढ़ने के साथ ही मनुष्य की दैनिक आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। फलत: आर्थिक उद्देश्य से वनों का अति दोहन किया जाने लगा है। बड़े पैमाने पर वनों की अंधाधुंध कटाई से वन विनाश की सम्भावना उत्पन्न हुई है। वन विनाश का दुष्प्रभाव समस्त जीव मण्डल पर पड़ा है। भू-पृष्ठ पर वन विनाश जारी रहने से वनों का क्षेत्र निरन्तर संकुचित होता जा रहा है। लगभग 11,000 वर्ष पूर्व स्थल भाग (अंटार्कटिका को छोड़कर) का लगभग 45 प्रतिशत वनाच्छादित था। जनसंख्या वृद्धि के कारण भोजन की पूर्ति हेतु, कृषि विस्तार हेतु, नगरीकरण एवं औद्योगीकरण आदि कारणों से पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। जनसंख्या की बसाहट और निवास स्थल के लिए विश्व स्तर पर वनों का कम से कम 2 लाख वर्ग कि.मी. क्षेत्र प्रतिवर्ष नष्ट होता है, जो कि भारत के कर्नाटक अथवा गुजरात राज्य के क्षेत्रफल के बराबर है। इस तरह बढ़ती जनसंख्या समस्त पृथ्वी वासियों के लिए खतरे की घंटी है। 1952 में घोषित वन नीति के अनुसार कम से कम 33 प्रतिशत क्षेत्र पर वन होने चाहिए। पर्वतीय क्षेत्रों में 65 प्रतिशत तथा मैदानी भागों में 20 से 25 प्रतिशत क्षेत्र वनों के अंतर्गत रखने की अपेक्षा की गई है। 60 वर्षों के बाद भी बढ़ती जनसंख्या वृद्धि के कारण लक्ष्य अर्जित नहीं हो पा रहा है। नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण नगरों और उद्योग केन्द्रों की जनसंख्या में बहुत वृद्धि हुई है। इस ही वृद्धि के कारण मानव पर्यावरण के कारण वितरीत प्रभाव पड़ रहा है। उपभोग की शैली को बढ़ावा मिलते जाने और औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के विस्तार होने जैसी वजहों से करीब 70 लाख हे. वन हर साल समाप्त हो रहे हैं। परिणामस्वरूप ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ रहा है। हर साल लोग वायु प्रदूषण की वजह से मर रहे हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण धीरे-धीरे वन सम्पदा समाप्त हो रही है। पर्यावरण की समस्या उत्पन्न हो रही है, पारिस्थितिकीय असंतुलन बढ़ रहा है। वर्तमान समय में भारत की जनसंख्या 1 अरब को पार कर गई है। विकास और कल्याण कार्यक्रमों का लाभ इस जनसंख्या वृद्धि के कारण अनुमान से बिल्कुल निम्न है। जनसंख्या वृद्धि के कारण निर्धनता, बेरोजगारी, निरक्षरता, कुपोषण, भिक्षावृत्ति में वृद्धि हुई है। जनसंख्या वृद्धि का बोझ राष्ट्रीय वित्ता व्यवस्था पर बहुत बढ़ गया है, इस कारण सरकार ठीक से स्वास्थ्य शिक्षा रोजगार, ग्रामीण एवं नगरीय विकास, महिलाओं, युवाओं और बेरोजगारों आदि के लिए कल्याणकारी कार्यक्रम एवं समाज सेवाओं को नहीं चला पा रही है। इन कार्यक्रमों पर जनसंख्या वृद्धि का प्रतिकूल प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है।

निष्कर्ष :- विगत दशक के मध्य के जनसंख्या समंकों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि प्रतिवर्ष 1.9 करोड़ जनसंख्या की वृद्धि हो रही है। इसलिए कहा जा सकता है कि भारत प्रतिवर्ष एक ऑस्ट्रेलिया उत्पन्न करता है। जनसंख्या में तेजी से वृद्धि के कारण प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव पड़ रहा है तथा पर्यावरण को गम्भीर क्षति हुई है। तीव्र जनसंख्या वृद्धि से देश में बेरोजगारी, भूखमरी, जलसंकट एवं उर्जासंकट जैसी अनेक समस्याओं ने विकराल रूप धारण कर लिया है। विकास योजनाऐं तथा औद्योगिक व कृषि उत्पादन में वृद्धि के प्रयास जनसंख्या वृद्धि के कारण बौने नजर आते हैं। जनसंख्या वृद्धि ने प्रकृति से विरासत में मिले बहुमूल्य संसाधनों वायु व भूमि को प्रदूषित किया है, वनस्पति एवं जल का संकट उत्पन्न किया है, कुल मिलाकर पर्यावरण चक्र ही डगमगा दिया है। अत: कहा जा सकता है कि जनसंख्या वृद्धि पर्यावरण पर कुप्रभाव डालती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. पर्यावरण अध्ययन - डॉ. रतन जोशी, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा पृ.क्रं. 17-18 एवं 223-225
2. पर्यावरणीय अध्ययन - डॉ. मिलिन्द कोठारी, आर.बी.डी. पब्लिकेशन्स, रमेश बुक डिपो, जयपुर-नईदिल्ली, पृ.क्रं. 69
3. विजार्ड करेन्ट अफेयर्स 2013 - मनोज कुमार सिंह, केरियर क्लासिक बी-19, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली, पृ.क्रं. 144, 275
4. विवास पनोरमा - विजय कुमार रॉय, विवास पनोरमा प्रकाशन बी-105, दिलशाद कॉलोनी, दिल्ली, पृ.क्रं. 164, 179
5. भारतीय समाज मुद्दे और वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, समस्याओं के परिपेक्ष्य में जयपुर प्रकाशन, पृ.क्रं. 338
6. प्रतियोगिता दर्पण अगस्त 2013 -2/11 स्वदेशी बीमा नगर, आगरा, पृ.क्रं. 33
7. परीक्षा मंथन वार्षिक सर्वेक्षण - अनिल अग्रवाल, 7 आर/5 ताशकंद मार्ग, इलाहाबाद, पृ.क्रं. 29

दुग्ध उत्पादन व्यवसाय से आय एवं स्वरोजगार का अध्ययन

डॉ. सतीश माहेश्वरी * प्रो.मोहनसिंह वास्केल **

प्रस्तावना- भारत एक कृषि प्रधान देश है यहां की अधिकांश जनसंख्या कृषि कार्य एवं कृषि से संबंधित लघु व्यवसाय करती है। यहां की कृषि पिछड़ी हुई अवस्था में है। देश की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या कृषि का पिछड़ापन,पूँजि की कमी एवं विकसित तकनीक का अभाव आदि के कारण यहां का पर्याप्त औद्योगिक विकास नहीं हुआ है। इन सभी कारणों से एक और जहां जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही वहीं दूसरी ओर इस अनुपात में रोजगार कार्यक्रम चलाये जाते है वे सभी बढ़ती हुई जनसंख्या के सामने पूरी कोशिशों के बाद भी समस्त रोजगार चाहने वालों को रोजगार उपलब्ध कराने में नाकामयाब रही है। सिर्फ नौकरियों के द्वारा बेरोजगारी की समस्या का समाधान संभव नहीं है। चाहे वह शासकीय क्षेत्र में हो या निजी में। बेरोजगारी से पूर्णत: निपटने का एकमात्र उपाय अपने लिये स्वयं रोजगार की व्यवस्था करना अर्थात स्वरोजगार ही है। बेरोजगारी की समस्या से निपटने के लिये सरकार द्वारा स्वरोजगार हेतु समय-समय पर कई योजनाएँ बनाई गयी है। एवं बेरोजगार युवक इन योजनाओं की ओर आकृष्ट हो इस हेतु उन्हें प्रोत्साहन एवं ऋण भी उपलब्ध कराती है। सरकार द्वारा रोजगार हेतु चलाई जाने वाली योजनाओं में से एक है 'दुग्ध उत्पादन' या 'दुग्ध डेयरी' दुग्ध उत्पादन एक ऐसा उद्धम है जो कि छोटे पैमाने पर भी किया जा सकता है। एवं दुग्ध डेयरी फार्म के रूप में बढ़े पैमाने पर भी किया जा सकता है। इस हेतु सरकार द्वारा दो पशु खरीदने हेतु ऋण उपलब्ध (छोटे पैमाने पर) कराया जाता है। आज हमारे देश में दूध की मांग का लगभग 30 प्रतिशत भाग कृत्रिम दूध द्वारा पूरा किया जाता है। इसके अलावा कई मुनाफाखोर व्यवसायी सिंथेटिक दूध बनाकर बेचने से भी नहीं हिचकिचाते एवं तमाम नियम कायदों को एक ओर रखकर मनमानी करते है। इन सभी बातों को दृष्टिगत रखते हुए सरकार ने दुग्ध उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया है। दुग्ध उत्पादन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे अनपढ़ व्यक्ति भी ठीक तरीके से चला सकता है यह गांव व शहर दोनों ही जगह बेरोजगार युवकों को रोजगार प्रदान करता है। परन्तु फिर भी शहरी क्षेत्रों में दूध की कमी होने से इस उद्योग के फलने फुलने के अच्छे अवसर है। झाबुआ जिले की तेजी से बढ़ती जनसंख्या आदर्श जलवायु,विस्तृत बाजार, दुग्ध की निरंतर एवं पर्याप्त मांग आदि दुग्ध डेयरी फार्म के अनुकूल है। एवं इस उद्योग को विकास के अवसर प्रदान करते है। झाबुआ जिले में अनेक युवा उद्यमियों ने इस उद्योग की स्थापना की है।

अध्ययन का औचित्य- दुग्ध उत्पादन उद्योग से कहां तक रोजगार उपलब्ध हो सकता है। इससे संबंधित अन्य व्यवसायियों के लिये भी लाभदायक हो सकता है एवं इस व्यवसाय से जुड़नेवाले अन्य नवउद्यमियों के लिये भी मार्गदर्शन का कार्य करता है।

अध्ययन का उद्देश्य- प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य डेयरी फार्म से होने वाली आय को ज्ञात करना है।इस प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति हेतु कुछ सहायक उद्देश्य इस प्रकार है-

1. दुग्ध उत्पादन उद्योग को प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी प्रारम्भिक आवश्यकताओं को जानना।
2. दुग्ध डेयरी से रोजगार के अवसरों का पता लगाना।
3. लागत व आय का विश्लेषण करना।

परिकल्पना:- दुग्ध उत्पादन एक रोजगारोन्मुखी व लाभकारी व्यवसाय है जो अन्य लोगों को भी रोजगार उपलब्ध कराता है।

अध्ययन की विधि एवं क्षेत्र-प्रस्तुत शोध की रचना प्राथमिक समंक पर आधारित है। प्राथमिक समंक पेटलावद तहसील के विभिन्न क्षेत्रों से किया गया है। जो पेटलावद एवं थांदला रोड़ पर स्थित है। जिसमें लगभग 30000 लीटर दुध का प्रतिदिन उत्पादन किया जाता है। अध्ययन हेतु सिर्फ 20 दुग्ध उत्पादन केन्द्रों का चयन किया है। चयन करने में देव निदर्शन पद्धति अपनाई गई। दुग्ध उत्पादन का संक्षिप्त इतिहास-हमारे देश में दुग्ध उत्पादन आदि सनातन काल से चला आ रहा है। जिसका वर्णन हमारे धार्मिक ग्रंथों में मिलता है कहा गया है कि पुरातन काल में हमारे देश में दूध की नदियां बहती थी। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं गोपालक थे परन्तु उस समय दूध का उत्पादन सिर्फ अपनी आवश्यकताओं की पुर्ति हेतु किया जाता था व्यवहारिक तौर पर नहीं इसका प्रमुख कारण लगभग सभी घरों में दुग्ध उत्पादन होना है कृषि प्रधान देश होने के कारण हमारे कृषकों के पास गाय,भैंस पाले जाते है। जिनसे उन्हें एक और दूध प्राप्त होता है तो दूसरी ओर बैल जो बडे होकर कृषि कार्य में काम आते है। दूध का उत्पादन मुख्यत: गाय, भैंस एवं बकरियों से किया जाता है। धीरे-धीरे दूध का व्यवसायिक उत्पादन किया जाने लगा दूध का उत्पादन साधारण: दही, घी, चाय, काफी एवं मिष्ठान बनाने में किया जाता है। आज जो मिठाईयां बनाई जाती है उन सभी की दूध के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती। हमारे दैनिक जीवन में उनसे निर्मित पदार्थो का एक विशिष्ट स्थान है। साधारणत: दूध का उत्पादन गाय एवं भैंसों से किया जाता है। परन्तु व्यवसायिक तौर पर दूध उत्पादन के लिये भैसों को पाला जाता हैं। इसका प्रमुख कारण भैंस से उत्पादित दूध में घी की मात्रा अधिक होती है। एवं प्रतिलिटर मावा अधिक प्राप्त होता हैं अत: सभी जगह भैंस के दूध को प्राथमिकता दी जाती है हमारे यहां भैंस की कई प्रजातियां पाई जाती है परन्तु दूध उत्पादन के लिये मालवा क्षेत्र की भैंस अधिक उपयोगी होती है जो कम लागत पर अधिक दूध देती है। प्रस्तुत अध्ययन में सिर्फ भैंसों से दुग्ध उत्पादन का अध्ययन किया गया है एवं उसके रखरखाव पर होनेवाले व्यय तथा दूध से होने वाली आय का विश्लेषण किया गया है। उत्पादन लागत व आय का विश्लेषण-उत्पादन लागत व आय का विश्लेषण उद्यमी के लिये महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। किसी भी वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली प्रत्यक्ष सामग्री की लागत ही संयुक्त रूप से उत्पादन लागत कहलाती है। दुग्ध उत्पादन उद्योग में अन्य उद्योगों से भिन्न है दुग्ध उत्पादन उद्योगों में दूध का उत्पादन भैंस की नस्ल की नहीं है तो वह दूध अधिक नहीं देगी चाहे उसे कितना ही आहार क्यों नहीं किया जाये। डेयरी फार्म उद्योग की प्रत्यक्ष सामग्री-किसी भी उद्योग में वस्तु के उत्पादन हेतु कच्चे माल या प्रत्यक्ष सामग्री की भूमिका महत्वपूर्ण होती है क्योंकि उत्पादन काफी हद तक इसी पर निर्भर करता है। डेयरी फार्म उद्योग की प्रत्यक्ष सामग्री भैंसों का आहार है। जिसमें खली, भूसा एवं चारा आता है। इसके अलावा इसके लिये अधिक दूध उत्पादन हेतु पशु आहार भी मिलता है जो विभिन्न प्रकार की पौष्टिक सामग्री को मिलाकर बनाया जाता है। अत: भैंसों को उचित पौष्टिक आहार देकर अधिक मात्रा में उत्पादन किया जा सकता है एवं उत्पादन लागत को न्यूनतम

* प्राध्यापक, स्वामी विवेकानंद शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय रतलाम (म.प्र.)भारत
** पीएच.डी., (शोधार्थी), शासकीय महाविद्यालय, थांदला (म.प्र.) भारत

रखा जा सकता है।

अप्रत्यक्ष सामग्री– जिस प्रकार अन्य उद्योगों में उत्पाद के निर्माण हेतु कच्ची सामग्री के अलावा अन्य अप्रत्यक्ष सामग्री आईल, विद्युत एवं अन्य देखरेख की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार डेयरी फार्म के सफल संचालन में पशुओं को समय पर पानी देना, टीका लगवाना, दवा देना आदि की आवश्यकता पड़ती है।

दुग्ध उत्पादन की प्रक्रिया– दुग्ध उत्पादन की प्रक्रिया अत्यन्त सरल है इस व्यवसाय का प्रारम्भ उद्यमी द्वारा दूध देने वाली भैंसों को खरीदकर किया जाता है जो सामान्यत: 12 माह तक दूध देती है। अच्छा दुग्ध उत्पादन करने हेतु पशुओं को समय पर चारा, भुसा, खली एवं पौष्टिक पशु आहार देने की आवश्यकता होती है। साथ ही समय–समय पर उनकी चिकित्सा कराना एवं टीका लगाना होता है। इस हेतु किसी भी प्रकार के विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती हैं।

दुग्ध उत्पादन हेतू प्रारम्भिक वित्तिय आवश्यकताओं का अनुमान

क्रं.	मद	राशि
1	भूमि (कृषि क्षेत्र की) 5000 वर्ग फुट 20 रू. प्रति वर्ग फुट	100000
2	ट्यूब बेल	40000
3	होज पानी पिलाने एवं नहलाने के लिए	20000
4	भैंसों के लिए शेड	180000
5	स्टोर रूम	50000
6	खली, एवं आहार हेतु बर्तन	8000
7	दुग्ध निकालने हेतु एवं इकठ्ठा करने हेतु बर्तन	10000
	कुल पूंजी की आवश्यकता	**408000**

कार्यशील पूंजी

भैंसों की कीमत 20×40000	800000
चारा व भूसा 50रू. प्रतिदिन (प्रति भैंस)	365000
खली 60रू. प्रतिदिन (प्रतिभैंस) 6 माह तक एवं अगले 6माह 50रू.	402600
विद्युत व पानी खर्च 10रू. प्रतिदिन (प्रतिभैंस)	73000
दवा 80रू. प्रति भैंस (प्रतिमाह)	19200
वेतन तीन मजदूर 150रू. प्रतिदिन (प्रति मजदूर)	164250
कार्यशील पूंजी प्रतिवर्ष	**1824050**

डेयरी फार्म उद्योग के अंदर आने वाली उत्पादन लागत तथा होने वाली आय का अध्ययन की कुछ प्रमुख बातें इस प्रकार है–

1. प्रस्तुत प्रतिवेदन एक वर्ष के लिये है।
2. प्रतिवेदन में दिये गये समंक सर्वेक्षण से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित है।
3. ब्याज, दर, मजदूरी, विद्युत दर तथा पानी का व्यय वास्तविक एवं स्थिर है।
4. अच्छी दुग्ध उत्पादन के लिए भैंसों को सिर्फ एक वर्ष के लिए खरीदा जायेगा एवं एक वर्ष पश्चात जब वे दूध देना बंद या कम कर देती है। उस स्थिति में उन्हें बेचकर नयी भैंसे खरीदी जायेंगी। ताकि दुग्ध उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़े इसलिए भैंसों की कीमत को कार्यशील पूंजी में ही दिखाया गया है।
5. प्रारम्भिक वित्तीय आवश्यकता 2232050रू. की आवश्यकता होगी जिसमें 75 प्रति. ऋण द्वारा 1674038रू. एवं 25 प्रति. निजी पूंजी द्वारा 558012रू. लगाये जायेंगें एवं ऋण पर ब्याज की दर 10 प्रति. एवं स्वयं की पूंजी की गणना की गई है।
6. प्रारम्भिक आवश्यकता कुल 2232050रू है जिसमें से 408000रू. स्थायी विनियोग एवं शेष कार्यशील पूंजी है।
7. प्रथम 6माह तक भैंस 5लीटर प्रति समय दो बार दूध देगी एवं अगले 6 माह तक धीरे–धीरे दूध देना कम कर देती है जो कि औसत 4.5 लीटर प्रति समय हो जाता है। इस प्रकार प्रति भैंस प्रतिदिन औसत प्रथम 6 माह 12 लीटर प्रतिदिन दूसरे 6माह 9लीटर दूध देगी।

वार्षिक ब्याज :– प्रारम्भिक वित्तीय आवश्यकता 2232050रू. की है जिसमें से 75 प्रति. ऋण द्वारा एवं 25 प्रति. स्वयं की पूंजी द्वारा उपलब्ध करायी जायेगी। ऋण पर ब्याज 10 प्रति. वार्षिक होगा जो 1674038×10प्रति.=167404 रू. होगा। एवं स्वयं की पूंजी पर 10.5प्रति. वार्षिक जो 558012×10 प्रति.= 55801रू. होगा।

दुग्ध से गोबर खाद से आय :– भैंस खरीदने के प्रथम छह माह अच्छा दूध देती है जो औसत 12 लीटर प्रतिदिन होता है एवं धीरे–धीरे भैंस दूध देना कम देती है जो दूसरे छह माह में मात्र 9 लीटर प्रतिदिन औसत हो जाता है और एक साल बाद दूध देना लगभग बंद कर देती है इसलिए उत्पादक इन्हें बेचकर नई भैंस पुन: खरीद लेता है दूध सामान्यत: 30रू प्रति लीटर के भाव बिक जाता है। भैंस से एक अन्य उत्पाद गोबर की खाद प्राप्त होती है जो औसतन 10 रू प्रति भैंस प्रतिदिन दे देती है।

आय व्यय का लेखा

आय			व्यय		
क्रं.	मद	राशि	क्रं.	मद	राशि
1	भैंसों की कीमत	800000	1	दूध	2300400
2	आहार	365000	2	खाद	150000
3	खली	402600	3	भैंस पुन: बेचने पर	200000
4	विद्युत पानी	73000			
5	वेतन	164250			
6	दवा	19200			
7	ब्याज ऋण पर	167404			
	स्वयं की पूंजी	55801			
योग		2047255	योग		2650400

इस प्रकार कुल आय = 2650400

कुल व्यय = 2047255

अत: कुल शुद्ध आय 603145 रू. होगी आय व्यय के लेखे के अध्ययन से निम्न बातें स्पष्ट होती है।

1. डेयरी फार्म की आय का मुख्य साधन दूध ही है।
2. सबसे अधिक व्यय घास, भूसा एवं खली पर हो रहा है।
3. डेयरी फार्म से प्रतिमाह 603145/12=50262 की शुद्ध आय हो रही है।

निष्कर्ष–

1. लागत का मुख्य हिस्सा भैंसों के आहार है जो भूसे एवं खली पर खर्च होता है।
2. दुग्ध उत्पादन उद्योग एक पूर्णत: कृषि उद्योग ही है इसे सहायक या मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया जा सकता है।
3. इस व्यवसाय के लिये विशेष तकनीकी ज्ञान आवश्यक नहीं है ।
4. साथ ही यह व्यवसाय पौष्टिक आहार भी उपलब्ध कराता है।
5. इस व्यवसाय से जुड़े अधिकांश व्यवसायी भैंसों को सिर्फ एक साल के लिए ही रखते है एवं दूध देना बंद कर देने पर बेच देते है।

इस प्रकार पेटलावद क्षेत्र के आसपास के ग्रामीण क्षेत्र की पृष्ठभूमि में बनायी गयी है। एवं प्रत्यक्ष रूपये, मजदूर एवं उत्पादक को रोजगार उपलब्ध करा रही है। इसके साथ अप्रत्यक्ष रूप में निम्न अन्य लोगों को भी रोजगार प्राप्त होगा। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट है कि डेयरी फार्म एक लाभकारी व रोजगारोन्मुखी व्यवसाय है जो अन्य लोगों को भी आंशिक रोजगार उपलब्ध कराता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. भारत में पशुपालन : पत्रिका
2. भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था : भटनागर
3. डेयरी फार्म उद्योग : पत्रिका

भारत में जल संसाधन के संरक्षण एवं शुद्धता संधारण की आवश्यकता -एक अध्ययन

डॉ. रश्मि शर्मा * डॉ. पी. एस. पटेल **

शोध सारांश- भारत में जल संरक्षण एवं शुद्धता संधारण की अनिवार्य आवश्यकता उत्पन्न हो रही है तथा इस हेतु समुचित नियमन एवं परिष्कृत नीति बनाकर क्रियान्वित करना भी वांछित है। देश में प्राकृतिक जल संसाधन के रूप में नदियों का वार्षिक प्रवाह लगभग 1869 घन कि.मी. है, इसमें से 690 घन किमी. जल का ही उपयोग हम कर पाते है। इस प्रकार 36.92 प्रतिशत वर्षा जल ही संचय होता है, शेष 63.08 प्रतिशत जल राशि सागर के खारे पानी में मिल कर अनुपयोगी हो जाती है। इसे संचित कर उपयोग में लाया जा सकता है।

शब्द कुंजी - जल संरक्षण, जल शुद्धता संधारण, जल नीति, जल प्रदूषण।

प्रस्तावना- प्राणीमात्र का शरीर पंच तत्वों से बना है-धरती, जल, वायु, अग्नि और आकाश। यहां यह उल्लेखनीय है कि जल तत्वजीवन का आधार है। जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती हैइसलिए जल का संरक्षण तथा शुद्धता हेतु प्रदूषण मुक्त होना भी आवश्यक है।

पृथ्वी के 70 प्रतिशत भाग पर जल है, लेकिन पृथ्वी पर मात्र 2.5 प्रतिशत ही स्वच्छ जल मौजूद है। इस स्वच्छ जल का 70 प्रतिशत सिंचाई, 22 प्रतिशत इंडस्ट्री और 8 प्रतिशत घरेलू कार्यो में उपयोग किया जाता है। अंधाधुंध विकास के कारण भूजल स्तर नीचे जा रहा है और पानी प्रदूषित हो रहा है। विश्व की आबादी 20वीं सदी में 3 गुना बढ़ी है जबकि ''विश्व जल परिषद के अनुसार''अक्षय जल संसाधनों के उपयोग में 6 गुनी वृद्धि हुई है।अगले 50 वर्षो में विश्व की आबादी 40 से 50 प्रतिशत तक बढ़ने का अनुमान है। इस जनसंख्या वृद्धि के कारण औद्योगीकरण और शहरीकरण के साथ और अधिक जल की मांग उत्पन्न होगी और जल प्रदूषण की समस्या भी बढ़ेगी।

शोध का उद्देश्य- वर्तमान परिस्थितियों में जल संसाधन के संरक्षण हेतु सरकार द्वारा नवीन एवं परिष्कृत जलनीति बनाकर लागू करने की आवश्यकता का अध्ययन करना प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है।

अध्ययन की उपयोगिता - प्रस्तुत अध्ययन से जल संरक्षण एवं शुद्धता संधारण हेतु अद्यतन नियमन एवं नीति निर्धारण की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित होगा तथा सुनियोजित व समावेशी विकास की दिशा में आगे बढ़ने हेतु सहायता मिलेगी।

शोध का अपेक्षित परिणाम- पुष्टि की प्रत्याशा में परिकल्पना की जाती है कि वर्तमान परिस्थितियों मे जल संसाधन के संरक्षण हेतु सरकार द्वारा नवीन एवं परिष्कृत जलनीति बनाकर लागू करने की आवश्यकता है।

शोध प्रविधि - यहां शोध जानकारी हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक समंको का उपयोग किया गया है। प्राथमिक सर्वेक्षण हेतु उद्देश्यीकृत न्यादर्श का आकार 200 उत्तरदाता तक सीमित रखा गया है तथा द्वितीयक सूचनाओं के लिए सन्दर्भित पुस्तक, समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं एवं इन्टरनेट माध्यम का उपयोग किया गया है।

पूर्व साहित्य समीक्षा - जल संसाधन मंत्रालय भारत सरकार कीजल नीति 2012 तथा अनिरूद्ध प्रसाद : पर्यावरण एवं पर्यावणीय संरक्षण विधि की रूपरेखा, (2009) का अध्ययन किया गया है।

विषय-विस्तार एवं पल्लवन- भारत में जल संकट का परिदृश्य-भारत में जल संकट की समस्या विकराल हो रही है, शहरी क्षेत्रों के अलावा ग्रामीण अंचलों में भी जल संकट बढ़ा है। वर्तमान में 20 करोड़ भारतीयों को शुद्ध पेयजल नहीं मिल पा रहा है। जल के भूमिगत स्रोतों के स्तर में नलकूपों की बढ़ती संख्या तथा जल संग्रहण की समुचित व्यवस्था न होने के कारण स्थाई गिरावट दर्ज की गई है। पिछली सदी के मध्य तक लोग नदियों का जल बेहिचक पी लिया करते थे परन्तु आज स्थितियाँ पूरी तरह बदल गई है। शहर के निकट की नदी या झील में उस शहर का सारा गंदा पानी और कारखानों से निकला कूड़ा-कचरा तथा रासायानिक अपशिष्ट पदार्थों को जल-स्रोतों में गिराने से प्रदूषण के साथ-साथ झीलों और सरोवरों में गाद जमने के कारण उथलेपन की समस्या भी उत्पन्न हो गई है। जल प्रदूषण के कारण जल-जीवों का जीवित रह पाना भी कठिन होता जा रहा है। जल प्रदूषण विषय पर गोष्ठियॉ तथा सेमीनार आयोजित हुए हैं परन्तु इस विश्वव्यापी समस्या का कोई स्थायी समाधान अभी तक नहीं मिल पाया है। साथ ही जल संचय और इसके रख-रखाव के प्रयासो में भी कमी है। वर्षा में कमी या असमान वर्षा, वृक्षों की अंधाधुध कटाई, जनसंख्या विस्फोट, बढ़ता शहरीकरण और औद्योगिकीकरण, भोगवादी जीवनशैली आदि अनेक ऐसे कारण हैं जिनकी वजह से भारत में जल संकट बढ़ा है। इसके अलावा भूगर्भीय जल का अनियंत्रित दोहन करना और रिचार्ज हेतु प्रयासो में कमी, पारंपरिक जल संग्रहण स्रोतों व जल संरक्षण उपायों की उपेक्षा एवं जल के रखरखाव हेतु शिक्षा का अभाव जैसे प्रमुख कारणों से जल संकट बना हुआ है।

पूरे विश्व में जल उपभोग में चीन के बाद भारत का स्थान दूसरा है। भारत की जनता जल उपभोग के लिए वर्षा जल, भू-गर्भीय जल, नदियों व जल के अन्य परंपरागत स्रोतों पर निर्भर हैं। यह सर्वज्ञात है कि मेघ वर्षा के रूप में हमें पर्याप्त मात्रा में जलराशि प्रदान करते हैं फिर भी इसके अपर्याप्त संचय, अनिश्चित वितरण और सही प्रबंधन न हो पाने के कारण हमें जल संकट से जूझना पड़ता है। भारत में नदियाँ जल की प्रमुख स्रोत है। केन्द्रीय जल आयोग के आँकड़ों के अनुसार भारत में प्राकृतिक जल संसाधन के रूप में नदियों का वार्षिकप्रवाह लगभग 1869 घन कि.मी. है, इनमें से 690 घन किमी. जल का ही उपयोग हम कर पाते है। इस प्रकार 36.92 प्रतिशत वर्षा जल ही संचय होता है। शेष 63.08 प्रतिशत जल राशि सागर के खारे पानी में मिल कर अनुपयोगी हो जाती है। परंपरागत जल स्रोतों की उपेक्षा एवं उचित रख-रखाव न होने के कारण इनका भी ढ़ांचा सिकुड़ा है। भू-जल पर हमारी निर्भरता बढ़ी है क्योंकि घरेलू पानी की आपूर्ति और कृषि कार्यों में सहायता भी इसी स्रोत से होती है। अधिक दोहन का यह परिणाम है कि भू-

*18, राजेन्द्र मार्ग, महिदपुर, जिला-उज्जैन (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक वाणिज्य विभाग, शासकीय महाविद्यालय महिदपुर, जिला- उज्जैन (म.प्र.) भारत

जल का स्तर तेजी से नीचे जा रहा है। पुनर्भरण का प्रतिशत दोहन की तुलना में बहुत कम है। इससे स्थिति और बिगड़ी है। चिंता की बात यह है कि हमारे देश में भू-जल संरक्षण, वितरण, दोहन व पुनर्भरण के प्रबन्धन हेतु समुचित कानून का अभाव है। भारत में कृषि व सिंचाई कार्यों में और औद्योगिक व घरेलू क्षेत्रों में प्रतिवर्ष कुल 829 अरब घनमीटर पानी का उपयोग किया जाता है। वर्ष 2025 तक खपत में 40 प्रतिशत बढ़त संभावित है,जिसे वैज्ञानिक भीषण जल संकट का पूर्वानुमान बता रहे है। भारत में जल की खपत तो बढ़ रही है, किन्तु इसकी उपलब्धता निरंतर घट रही है। अत: महानगरों की स्थिति तो ऐसी है कि उन्हें जरूरत के अनुसार पानी नहीं मिल पाता है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि ''अगला विश्वयुद्ध पानी के लिए हो सकता है।''

देश के 604 जिलों में से 246 जिले सूखे की चपेट में है जबकि प्रदेश की सरकारें केवल जिलों को सूखाग्रस्त घोषित कर एवं सांत्वना राशि वितरण कर अपना कर्तव्य पूर्ण समझती है। नासा की रिपोर्ट के अनुसार भारत में जल के अंधाधुंध दोहन के कारण देश के कई राज्यों में जल स्तर तेजी से गिरा है। सन् 2000 से 2008 के दौरान किए गए अध्ययन के अनुसार नासा ने बताया है किराजस्थान,पंजाब और हरियाणा हर साल औसतन 17.7 अरब क्यूबिक मीटर जल का दोहन कर रहे है, जबकि केन्द्र के अनुमान के अनुसार इन राज्यों द्वारा प्रतिवर्ष 13.2 अरब क्यूबिक मीटर पानी ही निकाला जा रहा है। रिपोर्ट के अनुसारभारत में भूजल का 58 फीसदी हिस्से का ही नवीनीकरण हो पाता है ऐसे में बहुराष्ट्रीय निगम जल के कारोबार हेतु प्रयासरत है लेकिनपर्यावरणविदों की पहल से ही इस पर बाजारवाद हावी नहीं हो पाया है जबकि जल संसाधान मंत्रालय द्वारा तैयार जल नीति प्रारुप 2012में जल के उचित प्रबंध एवं संरक्षण हेतु सार्वजनिक-निजी भागीदारी की बात की गई है। लेकिन विश्व में किसी भी स्थान पर जल का निजीकरण व व्यवसायीकरण संपूर्णविश्व के लिए खतरा है। चूँकि जल जीवन के लिए एक बुनियादी आवश्यकता है इसलिए अनमोल जल की बूँद-बूँद की रक्षाका प्रयत्न प्रत्येक मनुष्य का दायित्व बनता है, साथ ही यह हमारासाझा राष्ट्रीय उत्तरदायित्व भी है और अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से भी ऐसी ही जिम्मेदारी की अपेक्षा है। अत: जल के संग्रहण, संरक्षण व शुद्धता हेतु उपाय करना आवश्यक है।

प्राथमिक शोध की प्रक्रियाकरण एवं विश्लेषण।

अग्र प्रस्तुत प्रश्न के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गो के चयनित न्यादर्श से प्राप्त अभिमत तालिकानुसार प्रदर्शित है।

प्रश्न - क्या वर्तमान परिस्थितियों मे जलसंरक्षण हेतु सरकार द्वारा नवीन एवं परिष्कृत जलनीति बनाकर लागू करने की आवश्यकता है?

तालिका- 1 जल संरक्षण हेतु नवीन और परिष्कृत जलनीति बनाने के सम्बन्ध में सर्वेक्षित उत्तरदाताओं का अभिमत

क्र	अभिमत हेतु सर्वेक्षित वर्ग की श्रेणी	सर्वेक्षित वर्ग का अभिमत						समग्र	
		हाँ		नहीं		ज्ञात नहीं		योग	प्रति शत
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत		
1	उद्यमी	04	02	06	03	02	01	12	06
2	अभिभाषक	40	20	05	2.5	02	01	47	23.5
3	महाविद्याल यीन शिक्षक	15	7.5	00	00	00	00	15	7.5
4	वाणिज्य एवं विधि के छात्र	72	36	08	04	22	11	102	56
5	सामाजिक कार्यकर्ता	19	9.5	01	0.5	04	02	24	12
	योग	150	75	20	10	30	15	200	100

स्रोत- प्राथमिक सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर - वर्ष 2014

तालिका - 1 का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है किप्रस्तुत प्रश्न के उत्तरदाताओं से प्राप्त अभिमत भी सर्वाधिक सकारात्मक रहा है। यहां कुल 200 समग्र आकार में से 75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जल संरक्षण एवं शुद्धता संधारण हेतु सरकार द्वारा नवीन व संशोधित जल नीति बनाने के लिए आवश्यकता बतायी है जबकि मात्र 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस नीति को अपरिवर्तित रखने हेतु अभिमत दिया है तथा 15 प्रतिशत न्यादर्श अभिमत में 'ज्ञात-नहीं' उत्तर मिला है।

यहां यह ज्ञातव्य है कि अधिसंख्य सर्वेक्षित वर्ग नवीन एवं परिष्कृत जलनीति बनाकर लागू करने के पक्ष में है।

भारत में जल संरक्षण एवं शुद्धता संधारण की आवश्यकता -

जलसंसाधन हेतु रेन वाटर हार्वेस्टिंग जरूरी है। इसके तहत हम कृत्रिम तरीके से वर्षा जल को धरती के भीतर पहुँचाते हैं जिससे हमारा भू-जल भंडार बढ़ता है।गांवों औरशहरों में बारिश के पानी को बहने से रोककर उसे घरेलू जरूरतों और सिंचाई आदि में इस्तेमाल करने के लिए रेन वाटर हार्वेस्टिंग आवश्यक है। साथ ही यह भी जरुरी है कि पहले से ही स्थित तालाबों और पोखरों की जलसम्पदा कोसंरक्षित व प्रदूषण मुक्त करें। ये पोखर-ताल जहां एक ओर बाढ़ के खतरों को नियंत्रित करते हैं वहीं दूसरी ओर पानी की जरुरत होने पर जल आपूर्ति भी करते है। यह भी देखने में आ रहा है कि जो जमीन पानी के लिए आरक्षित होना चाहिए, उसे भी बसाहटें निगल रही है।

हमारी परंपरागत जल-संरचनाएँ उपेक्षा की शिकार होकर कूड़े और गंदगी की शरणस्थली बन रही है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि हम वर्षाजल के संरक्षण के अपने परंपरागत ज्ञान को न भूले। पुराने समय में तो आने वाली पीढ़ियों को ध्यान में रखते हुए जलस्त्रोतों का निर्माण किया जाता था। 'मत्स्यपुराण' में इस बात का उल्लेख है कि कुएँ-बावड़ियाँ इत्यादि का निर्माण कराना अवश्वमेघ यज्ञ कराने के बराबर का पुण्यकार्य है लेकिन यहाँ भूलवश लोग जलस्त्रोतों का निर्माण करना तो दूर, इनके विनाश में लगे है। यदि आज हमने जलस्त्रोतों को नहीं सहेजा, तो आने वाली पीढ़ियां हमें कभी माफ नहीं करेंगी।

शोध के अपेक्षित परिणाम का सत्यापन -

पुष्टि की प्रत्याशा में परिकल्पना की गयी थी कि- वर्तमान परिस्थितियों में जल संसाधन के संरक्षण हेतु सरकार द्वारा नवीन एवं परिष्कृत जलनीति बनाकर लागू करने की आवश्यकता है। तालिका क्र.1 के अनुसार इस परिकल्पना के पक्ष में सर्वाधिक सर्वेक्षित अभिमत है इसलिए परिकल्पना का सत्यापन हो रहा है। जल संग्रहण स्त्रोतों को संरक्षित रखकर एवं जल की शुद्धता का संधारण कर हम जल संकट का मुकाबला कर सकते है। व्यर्थ बह रहे जल के संग्रह हेतु क्षमता कोबढ़ाना भी आवश्यक है। संचित जल राशि का सदुपयोग करने के लिए एक सुव्यवस्थित वितरण प्रणाली एवं नियमन व्यवस्था भी जरूरी है, साथ ही जल की शुद्धता के लिए प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय करना भी वांछित है।

जल संरक्षण एवं शुद्धता संधारण के उपाय-

जल की प्रत्येक बूँद को अनमोल मानकर उसका संरक्षण व संचय किया जाए तो निश्चित तौरपर समाधान मिलेगा। जल संकट से निपटने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित है -

1. जल के उपभोग में मितव्ययिता अपनाना आवश्यक हैं।
2. औद्योगिक इकाईयों में 'ट्रीटमेंट प्लांट' लगाना अनिवार्य कर देना चाहिए। इसका तत्परता से पालन न करने वाले उद्योगों पर दंडात्मक कार्यवाही की जाए और अत्यधिक प्रदूषण फैलाने वाले कल-कारखानों का

लाइसेंस निरस्तर कर दिया जाए।

3. जल संकट से निपटने के लिए हमें वर्षा जल भण्डारण एवं समुचित प्रबंधन को बढ़ावा देना चाहिए और इससे जुड़े शोध कार्यों को प्रोत्साहित करनाचाहिए।
4. जल संकट को दूर करने के लिए विभिन्न बड़ी नदियों को आपस में जोड़ने के लिए भविष्य हेतु एक निवेश योजना बनाकर क्रियान्वित करनी चाहिए।
5. सिंचाई कार्यों के लिए स्प्रिंकलर और ड्रिप सिंचाई जैसी पानी की कम खपत वाली विधियों को प्रोत्साहित करना चाहिए।
6. पर्यावरण असंतुलन भी जलसंकट का एक बड़ा कारण है अत: जल संरक्षण हेतु पर्यावरण संरक्षण के उपाय करना चाहिए।
7. लवणीय और खारे पानी को मीठा बनाकर उपयोग में लाने की मितव्ययी विधियाँ और तकनीके विकसित करनी चाहिए।
8. जल संरक्षण हेतु सरकार द्वारानवीन व परिष्कृत जल नीति अनिवार्य रुप से बनाई जानी चाहिए।
9. भारतीय संविधान में जल के मुद्दे को केन्द्र सरकार के अधिकार क्षेत्र में रखा जाना चाहिए।
10. किसी भी प्रकार से जल को दूषित करने वालों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही की जानी चाहिए।

निष्कर्ष–

जल मानव की आधारभूत आवश्यकता है और यह मूलभूत मानवाधिकार भी है। अत: उपर्युक्त सुझावों को ध्यान में रखते हुए हमें जल संरक्षण और शुद्धता संधारण के पर्याप्त एवं समुचित उपाय करने ही होंगे, तभी वैश्विक जल संकट का समाधान ढूँढ़ा जा सकेगा।

सन्दर्भ– स्त्रोत

1. अनिरूद्ध प्रसाद : पर्यावरण एवं पर्यावणीय संरक्षण विधि की रूपरेखा, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद पंचम संस्करण 2009
2. परीक्षा मंथन – राष्ट्रीय मासिक पत्रिका 2013–14 भाग 6–7
3. पर्यावरण विकास – राष्ट्रीय मासिक पत्रिका अक्टोबर 2010
4. दैनिक भास्कर– समाचार पत्र।
5. नईदुनिया– समाचार पत्र।
6. दैनिक अग्निपथ –समाचार पत्र।

****

भारत के संदर्भ में महिला उद्यमिता - एक अध्ययन

डॉ. संजय पंडित *

विगत वर्षो में महिलाओं के घर-परिवार तक सीमित रहने के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। आज उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाऐं पुरूषों से पीछे नही है। वर्तमान समय में भारत की महिलाएँ प्रबंध, संचालन व उद्यमिता के क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर रही है। महिलाऐं परिवार की धुरी होती है, उन्हें आर्थिक स्वावलम्बन प्रदान करने और विकास में हिस्सेदार बनाने के लिए उद्यमिता के क्षेत्र में प्रवेश करना अत्यावश्यक है व उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है और सफलता की दृष्टि से महिला, उद्यमियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है, जो केवल महानगरों या नगरों तक ही सीमित नही है अपितु इसकी झलक देश के कस्बों और ग्रामीण अंचलों में भी दिखाई देने लगी है। महिला उद्यमियों के उज्जवल भविष्य की असीम संभावनाएं देश में दृष्टिगोचर हो रही है। उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता निश्चित रूप से भारत के औद्योगिक व आर्थिक विकास में सहायता सिद्ध होगी।

प्रस्तावना -

यह एक सर्वमान्य तथ्य है, कि कोई भी देश उपलब्ध एक अध्ययन संसाधन का पूर्ण उपयोग करके ही आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। चूँकि मानव शक्ति का आधा भाग महिलाऐं है, इसलिए कोई भी राष्ट्र महिलाओं की सहभागिता के बिना आर्थिक विकास का सपना पूरा नही कर सकता है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र में आर्थिक विकास की गति को प्रोत्साहन करने में महिलाओं की भूमिका बढ़ती जा रही है। जहां तक भारत का प्रश्न है यहां पर आदिकाल से महिलाऐं उपेक्षित रही है, उनका कार्यक्षेत्र का दायरा केवल घर-परिवार तक ही सीमित रहा है, जबकि सत्यता यह है कि महिलाऐं अपने घर-परिवार का प्रबंध संचालन अत्यन्त कुशलतम ढंग से करती है। उन्हें प्रबंध की योग्यता जन्म से ही प्राप्त रहती है। इसीलिए वे किसी भी व्यावसायिक संस्था का प्रबंध करने में सक्षम करती है विगत वर्षो में महिलाओं के घर-परिवार तक सीमित रहने के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। आज उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाऐं पुरूषों से पीछे नही है।

अध्ययन के उद्देश्य -

1. महिलाओं में श्रेष्ट उद्यमी के गुण विकसित करना।
2. महिलाओं में उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना।
3. महिलाओं में परियोजनाओं का चुनाव करने की योग्यता का विकास करना।
4. महिलाओं को उद्यम आरंभ करने तथा उद्यम को विकसित करने के संबंध में आवश्यक परामर्श देना।
5. महिलाओं श्रेष्ठ नियोजक, श्रेष्ट संगठक, श्रेष्ठ संचालक व श्रेष्ठ नियंत्रक बनने की क्षमता का विकास करना।
6. महिलाओं में अभिप्रेरणा की क्षमता का विकास करना।
7. महिलाओं की प्रभावी सम्प्रेषण कला का विकास करना।
8. औद्योगिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता बढ़ाना।
9. महिला उद्यमिता के द्धारा लघु, मध्यम एवं कुटीर उद्योगों का विकास करना।
10. पिछड़े क्षेत्रों में नवीन महिला उद्यमियों के प्रवेश को प्रोत्साहन करना।

शोध प्रविधि -

इस शोध पत्र में यह बताने की कोशिश की गई है कि देश के आर्थिक विकास में महिलाओं की बराबरी की सहभागिता है महिलाऐं उद्यमिता के क्षेत्र में कई कठिनाई व पेरशानियों का सामना करते हुए अपना उज्जवल भविष्य बना रही है और सफलता पूर्वक अपने व्यवसाय का संचालन कर रही है। महिलाऐं ग्रामीण क्षेत्र, शहरी क्षेत्र सभी में दिखाई दे रही है और निरंतर विकास में सहायक है।

महिला उद्यमिता की आवश्यकता -

वर्तमान में महिला उद्यमिता से महिलाओं की व्यवसाय में सहभागिता बढ़ रही है। जिससे महिलाऐं व्यावसायिक क्षेत्र में प्रवेश के लिए प्रोत्साहन हो रही है। साथ ही महिलाओं को स्वरोजगार प्राप्त हो रहा है व निजि और सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाऐं स्वरोजगार की और अग्रसर हो रही है और महिलाओं की पुरूषों पर निर्भरता कम हो रही है वे आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन रही है।

महिलाओं में साहस तथा उद्यमी गुणों का विकास हो रहा है और वे व्यावसायिक जोखिमों का सामना करने में समर्थ हो रही है। महिलाओं की आय में वृद्धि हो रही है। जिससे महिलाऐं आर्थिक रूप से सशक्त बन रही है। पहले लोग उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी पसंद नही करते थे। परन्तु, उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं के प्रवेश और उनकी सफलताओं से सामाजिक दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है।

आज महिला उद्यमियों को आदर तथा सम्मान के साथ देखा जाता है। सन् 1991 के बाद आरंभ हुये आर्थिक सुधारों से महिला उद्यमियों की संख्या में वृद्धि हुई है। उद्यमिता तथा प्रबंध के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है और इस क्षेत्र में महिलाऐं नये कीर्तिमान स्थापित कर रही है।

महिला उद्यमिओं की समस्याएँ -

राष्ट्र के आर्थिक विकास को प्रोत्साहन करने में महिलाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के बावजूद भी महिलाओं को उद्यमिता के क्षेत्र में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिसके परिणाम स्वरूप वर्तमान परिवर्तित सामाजिक परिवेश में महिला उद्यमियों को अपना व्यवसाय आरंभ करने और उसे चलाने में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

महिलाऐं आज भी घर की चार दीवारों तक सीमित है, जिससे महिलाऐं पूर्णत: उद्यमिता की ओर अग्रसर नहीं हो पा रही है। आज भी समाज की रूढियों व कुरीतियां महिलाओं के उद्यमिता विकास में बाधक है। उद्यमिता के क्षेत्र नवप्रवर्तन की समस्या महिला उद्यमिता के विकास में बाधक होती है। महिलाओं को उत्पादन तकनीक में होने वाले नवीन परिवर्तनों की समुचित जानकारी नहीं रहती है, जिससे उद्यमी विकास में बाधा उत्पन्न होती है। अग्रसर यह देखा जाता है कि महिला उद्यमी में जोखिमता का आभाव पाया पाया है, चूंकि वर्तमान समय प्रतिस्पर्धा व प्रतियोगिताओं का समय है महिलाऐं को संचालन में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।

* विभागाध्यक्ष (वाणिज्य) माता जीजाबाई शासकीय कन्या महाविद्यालय मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.) भारत

साथ ही महिलाओं को वित्तप्रबंध के सिद्धांतों की संपूर्ण जानकारी न होने के कारण महिलाऐं अपने उपक्रम का कुशलता पूर्वक वित्तप्रबंध नहीं कर पाती व उनमें वित्तीय दूरदर्शिता का अभाव पाया जाता है।

वे प्रबंधकीय प्रक्रिया से अपरिचित रहती है। इसलिए वे अपने उपक्रम का नियोजन सही तरीके से नहीं कर पाती है। और लागते अधिक होने, मूल्य अधिक होने और पर्याप्त विज्ञापन न होने के कारण महिला उद्यमियों को अनेक प्रकार की विपणन समस्याओं की सामना करना पड़ता है। साथ ही उद्यमिता के संबंध में महिलाओं को समुचित प्रशिक्षण सुविधाऐं उपलब्ध नहीं है। प्रशिक्षण के अभाव में वे श्रेष्ठ उद्यमी सिद्ध नहीं हो पाती है।

महिला उद्यमिता संबंधी समस्याओं का समाधान –

महिला उद्यमिता को प्रोत्साहित करने के लिए सर्वप्रथम औद्योगिक परिवेश बदलना होगा तथा उसके साथ ही महिलाओं को विभिन्न रियायतों एवं कर से छूटें प्रदान करनी होगी तथा महिला प्रधान उद्योगों को महिलाओं के लिए आरक्षित करना पडेगा। साथ ही बैंकिंग तथा वित्तीय सुविधाओं में वृद्धि करते हुए महिला उद्यमिता के लिये कम दर पर साख सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिये जिससे महिला उद्यमियों को समय पर पर्याप्त वित्त प्राप्त हो सकें। महिला उद्यमियों को श्रेष्ठ प्रबंधक बनाने के लिये प्रबंधकीय शिक्षा अत्यावश्यक है। उन्हें एक सफल उद्यमी बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम लाभप्रद होते है।

अतः देश के विभिन्न भागों में समय-समय पर औद्योगिक प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए देश में अनेक औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किये जाने चाहिए। महिलाओं को नवीन तकनीकों की जानकारी भी दी जानी चाहिए। महिला उद्यमिता के विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश के समस्त राज्यों में जिला स्तर पर महिला उद्यमिता हेतु एक ऐसा पृथक प्रकोष्ठ स्थापित किया जाऐं, जिसमें सिर्फ महिलाऐं ही अधिकारी कर्मचारी हों। इसका लाभ यह होगा कि महिलाएं बिना किसी संकोच के ऐसे प्रकोष्ठ से आवश्यक मार्गदर्शन व सहायता प्राप्त कर सकेंगी।

महिला उद्यमिता की सम्भावनायें –

समान्यता उद्यमिता लिंग के आधार पर पुरूष तथा महिलाओं में कोई भेद नहीं करती है। फिर भी पुरूषों की तुलना में महिलाओं को उद्यमिता के क्षेत्र में अनेक प्रकार की कठिनाईयों को सहने व बाधाओं से जूझने के बाद महिलाऐं पहले से अधिक सशक्त व जागरूक हुई है, जिसके परिणामस्वरूप उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, ओर सफलता की दृष्टि से महिला उद्यमिता की संख्या में निरन्त वृद्धि हुई है।

जो केवल महानगरों तथा नगरों तक सीमित नहीं है, अपितु इसकी झलक देश के कस्बों और ग्रामीण अंचलों में भी दिखाई देने लगी है। इसमें महिलाओं उद्यमियों के उज्जवल भविष्य की असीम संभावनाऐं देश में दृष्टिगोचर हो रही है।

महिला उद्यमियों द्वारा विभिन्न प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण की इकाईया स्थापित की जा सकती है इनके अंतर्गत दैनिक उपभोग की वस्तुऐं जैसे – आचार, चटनी, पापड़, बरी, जूस, जैम, जैल, साबुन, मंजन इत्यादि की इकाइयां शामिल की जा सकती है। साथ ही महिला विभिन्न सेवाओं जैसे हेल्थ, क्लब फिटनेस सेंटर, पेंटिंग क्लासेस, कुकिंग क्लासेस, कोचिंग, डेकोरेशन, कनसल्टेशन, कम्प्यूटर्स ट्रेनिंग आदि प्रदान की जा सकती है। साथ ही रेडिमेड वस्त्र निर्माण, हॉजरी, स्वेटर निर्माण आदि की इकाईयों को शामिल किया जा सकता है इनका संचालन महिला उद्यमियों द्वारा सफलता पूर्वक किया जा सकता है और महिलाओं द्वारा ब्यूटी पार्लर का संचालन सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

फैशन डिजाईनिंग को प्रोत्साहित करने के लिए महिलाओं द्वारा फैशन, डिजाईनिंग के विभिन्न कोर्स के लिए प्रशिक्षण दिये जाते है। महिलाऐं इनसे संबंधित उत्पादों का निर्माण कर सकती है। महिलाऐं कुटरी उद्योग, सहकारी उपभोक्ता भण्डार आदि का संचालन कर सकती है। महिला उद्यमियों द्वारा कम्प्यूटर्स प्रशिक्षण, शार्ट हैण्ड तथा टाइपिंग, फोटोकॉपी, एस.टी.डी. स्क्रीन, प्रिंटर्स, इन्टरनेट कैफे, कम्प्यूटर्स रिपेरिंग, टी.वी. रिपेयरिंग, टेलीफाने एवं मोबाईल रिपेरिंग का संचालन सफलता पूर्वक किया जा सकता है। इनमें विकास की अपार संभावनाऐं है।

निष्कर्ष :–

वर्तमान समय में भारत की महिलाऐं प्रबंध, संचालन व उद्यमिता के क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर रही है। महिलाऐं परिवार की धुरी होती है, उन्हें आर्थिक, स्वावलम्बन प्रदान करने और विकास में हिस्सेदार बनाने के लिए उद्यमिता के क्षेत्र में प्रवेश कराना अत्यावश्यक है। उद्यमिता के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता निश्चित रूप से भारत के औद्योगिक व आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होगी, साथ ही महिलाएं स्वरोजगार द्वारा स्वावलम्बी बन रही है और देश के औद्योगिक विकास में अपनी रचनात्मक भूमिका का निर्वहन कर रही है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. उद्यमिता विकास -डॉ.वी.के अग्रवाल, डॉ. अभय पाठक
2. उद्यमिता विकास-डॉ. एच.एन. मिश्रा, डॉ. अरूण मिश्र, डॉ. रामनाथ झारिया
3. इकोनोमिक्स सर्वे रिपोर्ट - 2011-12
4. पत्रिका ईयर बुक -2012
5. विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाऐं,

****

गैर प्रतिचयन त्रुटियाँ

डॉ.प्रकाश कुमार जैन * श्रीमती अस्मिता श्रीमाल (जैन)**

प्रस्तावना. :- किसी वास्तविक स्थिति का या घटित घटना उसके आभास या वर्णन से भिन्न होने की स्थिति को भ्रम कहा जाता है। जैसे रेगिस्थान की मृगमरीचिका एक प्रकार का दृष्टि भ्रम है। विभ्रम, भूल, त्रुटि इत्यादि इसी भ्रम के समानार्थी शब्द हैं। साँख्यिकी में संमक संकलन के फलस्वरूप प्राप्त मूल्यों एवं समग्र के वास्तविक मूल्यों के मध्य उत्पन्न अन्तर को त्रुटि कहा जाता है। इस त्रुटि की मात्रा जितनी अधिक होती है यह माना जाता है कि संकलित संमक समग्र का उतना ही कम प्रतिनिधित्व करते हैं।उदाहरण के लिए 100 शिक्षकों के स्टॉफ में एक महिला शिक्षक का होना एवं उसके द्वारा पुरुष शिक्षक के साथ शादी कर लेना।

इससे यह निष्कर्ष निकालना कि 100 प्रतिशत महिला शिक्षक अपने सहकर्मी पुरुष शिक्षक के साथ शादी कर लेती है। चूंकि सांख्यिकी की त्रुटियाँ का सीधा संबंध संमक संकलन से होता है, अत: संमक दो प्रकार की त्रुटियाँ से प्रभावित हो सकते हैं। जिनमें से एक प्रतिचयन की त्रुटियाँ है तो दूसरी गैर प्रतिचयन की त्रुटियाँ है। दोनों के ही परिणामस्वरूप अगणित या अवलोकित मूल्य वास्तविकता से भिन्न स्थिति प्रकट करते हैं।

इस प्रकार सांख्यिकी की कुल त्रुटियॉ = प्रतिचयन त्रुटियाँ + गैर प्रतिचयन की त्रुटियाँ भी समझा जा सकता है। प्रतिचयन की त्रुटियाँ वे होती है, जो प्रत्यक्ष रूप से न्यादर्श के आकार एवं किंचित रूप से न्यादर्श या प्रतिदर्श के प्रकार से सम्बन्धित होती है। न्यादर्श या नमूने के आकार में जितनी वृद्धि की जाती है, प्रतिचयन त्रुटियों के कम होने की संभावनाएँ उतनी ही बढ़ जाती हैं। अर्थात् प्रतिचयन की त्रुटियाँ उतनी ही कम होती है।

ऊपर के उदाहरण में 1000 शिक्षकों के स्टॉफ में 200 महिला शिक्षक का होना ,एवं उसमें से 50 महिला शिक्षकों के द्वारा पुरुष शिक्षकों के साथ शादी कर लेना। इससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि 25 प्रतिशत महिला शिक्षक अपने सहकर्मी पुरुष शिक्षक के साथ शादी कर लेती है। साँख्यिकी की त्रुटियाँ ज्ञात होने से समकों के मानक होने के साथ ही संमक संकलन के या प्रदायक स्त्रोतों की विश्वसनीयता का स्तर भी पता चलता है।

साँख्यिकी त्रुटियों को विशेष साँख्यिकी विश्लेषणों द्वारा प्रकट किया जाता है। गैर प्रतिचयन की त्रुटियों का शाब्दिक अर्थ ऐसी त्रुटियाँ होना है, जो प्रतिचयन की त्रुटियाँ से भिन्न होती हैं। अर्थात् ये त्रुटियाँ न्यादर्श के चयन से सम्बन्धित तथ्यों के अतिरिक्त अन्य कारणों से उत्पन्न होती है। जब सर्वेक्षित ईकाईयों से प्राप्त संमक ईकाइयों के वास्तविक मूल्यों से मेल नहीं खाते, फिर चाहे सर्वेक्षण समग्र का हो या न्यादर्श का, सविचार हो या दैव निदर्शन ऐसा भ्रम अन्तर गैर निदर्शन त्रुटि कहलाता है।

प्रतिचयन त्रुटियाँ केवल न्यादर्श के माध्यम से चयनित ईकाईयों के सर्वेक्षण में ही उत्पन्न होती हैं किंतु गैर प्रतिचयन की त्रुटियाँ न्यादर्श सर्वेक्षण हो या समग्र ईकाईयों का सर्वेक्षण दोनों ही स्थितियों में उत्पन्न हो सकती है।

उदाहरण के लिए एक कॉलेज के सभी 2000 विद्यार्थियों का अध्ययन समग्र इकाईयों का अध्ययन होगा जबकि उसमें से मात्र् 100 विद्यार्थियों का अध्ययन न्यादर्श सर्वेक्षण होगा। गैर प्रतिचयन की त्रुटियॉ उपर्युक्त दोनों ,समग्र ईकाईयों का सर्वेक्षण और न्यादर्श सर्वेक्षण की दशाओं में होगी, जबकि प्रतिचयन त्रुटियाँ मात्र दूसरी दशा, न्यादर्श सर्वेक्षण की स्थिति में होगी।

जैसे जिले के 'औद्योगिक विकास में बैंक ऋण का योगदान' विषय में जिले के औद्योगिक विकास में अन्य उतरदायी घटकों को ले लेना जैसे उत्तम अधोसरंचना होना, कच्चे माल की सुगम आपूर्ति होना आदि असम्बद्ध घटकों को अभिकल्प में ले लेना अर्थात् इन कारणों को भी केवल बैंक ऋण का योगदान मान लेना व्यर्थ होगा। अर्थात् सारे औद्योगिक विकास का कारण केवल बैंक ऋण मानना गैर प्रतिचयन की त्रुटियाँ होगी।

गैर प्रतिचयन की त्रुटियों के प्रकार. :- गैर प्रतिचयन की त्रुटियों के प्रकार की कोई सीमा निश्चित नहीं की जा सकती हैं, क्योंकि जितने प्रकार के शोध होते है, उतने ही प्रकार के विविध सर्वेक्षण भी होते हैं। सर्वेक्षण की विविधता ही गैर प्रतिचयन की विभिन्न त्रुटियॉ की जन्मदाता है। इसी कारण गैर निदर्शन की त्रुटियाँ सर्वेक्षण के प्रारम्भ से लेकर अंत तक किसी भी चरण पर उत्पन्न हो सकती है। तथापि सर्वेक्षण के अग्राकिंत तीन महत्वपूर्ण चरणों में निम्नाँकित गैर प्रतिचयन की त्रुटियाँ होने की संभावनाएँ अधिक रहती है -

अ) शोध अभिकल्प एवं सर्वेक्षण की तैयारी करना

ब) संमक संकलन

स) संमक वर्गीकरण एवं विश्लेषण

शोध अभिकल्प एवं सर्वेक्षण की तैयारी करना – इस चरण, में किए जाने वाले वास्तविक शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया का खाका, नक्शा, रूपरेखा तैयार की जाती है। शोध अभिकल्प तैयार होने के पश्चात् शोध कार्य को व्यवहारिक रूप से सर्वेक्षण के माध्यम से प्रारम्भ किया जाता है। जिसके लिए सर्वेक्षण की पूर्व तैयारी जैसे - न्यादर्श/समग्र की ईकाईयों का चुनाव प्रश्नों का निर्धारण इत्यादि शोध अभिकल्प के निर्माण एवं सर्वेक्षण की पूर्व की तैयारी में उत्पन्न होने वाली गैर प्रतिचयन की त्रुटियाँ शोध के लिए अत्यन्त हानिकारक साबित होती है, इनमें कुछ त्रुटियों को कारण निम्नलिखित है-

1) **अस्पष्ट शोध की अवधारणा –** यहॉ अवधारणा से आशय शोध विषय से है। यदि शोध के विषय/शीर्षक को समझने में भूल हो गई तो उससे सम्बन्धित ईकाईयाँ भी गलत चुन ली जाएगी। जैसे - जिले के औद्योगिक विकास में अपरम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का योगदान इस विषय पर औद्योगिक विकास के समस्त उत्तरदायी कारकों को अभिकल्प में लेना व्यर्थ है। क्योंकि ऐसा करने से शीर्षक के दूसरे भाग की मुख्यता गौण हो जाएगी। शोध अवधारणा की पुष्टि के लिए ईकाईयों का स्पष्टीकरण अपरिहार्य होता है। जैसे - फेरीवालों की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने के पूर्व यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि फेरी वाला कौन है? वो जो ठेले पर सामान बेचता है, वो साईकल पर बेचता है,या वो जो फुटपाथ पर सामान बेचता है?

2) **सर्वेक्षण की ईकाईयाँ गुणात्मक रूप से त्रुटिपूर्ण या अपूर्ण होना –** सर्वेक्षण के लिए ईकाईयाँ चाहें पूरे समग्र की या चयनित न्यादर्श की उनमें शोध उद्देश्य की पूर्ति का गुण आवश्यक है। यदि ईकाईयाँ उस प्रकार की नहीं है, जिनसे शोध शीर्षक की पुष्टि होती हो, तो ऐसी ईकाईयों का सर्वे करने प्रश्न चिन्ह लग जाएगा। जैसे- यदि उपरोक्त

* प्राध्यापक ** शोधार्थी, शासकीय माधव कला वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

शीर्षक के अन्तर्गत केवल अपरम्परागत विद्युत ऊर्जा योग करने वाले उद्योगों को सर्वे के लिए चुने तो यह अपूर्ण ईकाई चयन होगा क्योंकि ऊर्जा केवल विद्युत ऊर्जा रूप का ही प्रयोग उद्योगों द्वारा नहीं किया जाता है।

इसी प्रकार जहाँ उद्योगों के साथ व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को भी अपरम्परागत ऊर्जा प्रयोग करने कारण, सर्वे के लिए चुन लिया जाए या केवल एक ही प्रकार के उद्योग चुन लें अथवा एक ही प्रकार के अपम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों का योग करने वाली ईकाईयाँ चुनी जाएँ तो वहाँ त्रुटिपूर्ण ईकाईयों के कारण ऐसे सर्वेक्षण द्वारा पक्षपाती परिणाम आएँगे।

3) **त्रुटिपूर्ण प्रश्न –** शोधानुसार उपर्युक्त प्रकार की ईकाईयों से यदि सर्वेक्षण में गलत प्रश्न या गलत प्रकार की संरचना वाले पूछे जाते है, तो इससे प्राप्त उत्तर भी शोध को गलत दिशा में मोड़ देगें। त्रुटिपूर्ण प्रश्नों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है-

1. **स्मरण शक्ति आधारित प्रश्न :–** गतवर्ष में आपने कितनी बार मोबाईल रिचार्ज करवाया था ?
2. **सामाजिक उत्तदायित्व आधारित प्रश्न :–** खरीददारी के लिए आप घर से कपड़े की थैली ले जाते हैं या बाजार से पोलीथीन में सामान रखकर लाते है ?
3. **वास्तविकता से कम संख्या या आकार में उत्तर देने के लिए प्रोत्साहन देने वाले प्रश्न (Under Reporting)** :- आपके घर में कितने गैस कनेक्शन है?
4. **वास्तविकता से अधिक संख्या या आकार में उत्तर देने के लिए प्रोत्साहन देने वाले प्रश्न (Over Reporting)**:-आप सुबह कितनी जल्दी उठते है?
5. **समसामयिक प्रश्न :–** सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट के बारे में आपके क्या विचार है?
6. **दो तरफा (द्विमुखी प्रश्न) :–** क्या आप रेल्वे की आरक्षण सेवा एवं यात्री किराया भाड़ा से सन्तुष्ट है?
7. **भाम्रक विकल्प :–** जैसे उपर्युक्त दो तरफा प्रश्न के लिए विकल्प -
   1) दोनों में से एक 2) दोनों सही 3) दोनों में से कोई नहीं।

उपर्युक्तानुसार गलत प्रश्न या प्रश्नों का गलत क्रम, उत्तर के त्रटिपूर्ण विकल्पों से सर्वेक्षण प्रक्रिया दूषित हो जाती है।

समंक संकलन – सटीक एवं उचित प्रश्नों की प्रश्नावली या अनुसूची लेकर उपयुक्त ईकाईयों का साक्षात्कार लिया जाता है। सर्वेक्षण की वास्तविक प्रक्रिया यहीं पूर्ण होती है। चूंकि यहाँ शोध की तथ्य सामग्री आँकड़ों के रूप में संग्रहित की जाती हैं अत: यहाँ होने वाली गलतियाँ या त्रुटि प्रत्यक्ष रूप से शोध के निष्कर्षो को गलत दिशा में मोड़ देती है। संमक प्राप्ति के समय होने वाली त्रुटियाँ निम्नांकित प्रकार की होती है-

(1) सर्वेक्षण प्रक्रिया का अधूरा जान या अनदेखी :– अल्पज्ञ, अज्ञानी से अधिक हानिकारक होता है। यह कथन सर्वेक्षण करने वालों पर सही प्रतीत होता है। सर्वेक्षण कार्य स्वयं शोधार्थी करे या उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति द्वारा किया जाए। यदि उन्हें सर्वेक्षण/शोध का उद्देश्य नहीं पता सर्वेक्षण कला को समस्त पहुलुओं का ज्ञान नहीं है या फिर उचित सर्वेकार्य की जानकारी होते हुए भी वे सर्वेक्षण में लापरवाही करते है, तो ऐसी स्थिति में प्राप्त आँकड़े कृत्रिम हो सकते हैं। जैसे-प्रश्नकर्ता मौखिक सर्वेकार्य मे प्रश्न तोड़-मरोड़कर पूछे, उनका क्रम गड़बड़ा जाए या कुछ प्रश्न पूछना ही भूल जाए अथवा कुछ प्रश्नावलियाँ स्वयं अपने मन-मर्जी से भर दे।

(2) अप्राप्त आँकड़े :– सर्वे की सही पूर्व तैयारी होने एवं ईमानदार सर्वेक्षक के बावजूद कभी-कभी कुछ ईकाईयों से आँकड़े प्राप्त नहीं हो पाते हैं। इसके सामान्यतया निम्नलिखित दो कारण होते हैं-

1. **उत्तरदाता की अनुपस्थिति:–** जैसे कि औद्योगिक इकाईयों के सर्वे के दौरान किसी किसी उद्योग में सम्बन्धित व्यक्ति का न मिलना या फिर शोध के क्षेत्र में सम्बन्धित ईकाई ही न मिलना उदाहरण के लिए उज्जैन जिले में मेट्रो ट्रेन का न मिलना, सौर-ऊर्जा का औद्योगिक अनुपयोगी संयन्त्र न मिलना।
2. **उत्तरदाता का असहयोग :–** जैसे रूग्ण उद्योगों की आर्थिक स्थिति के अध्ययन से सम्बन्धित शोध के लिए सर्वेक्षण के दौरान ऐसे उद्योग के कर्मचारियों द्वारा कानूनी कार्यवाही या नौकरी लूट जाने के भय से आँकड़े नहीं देना।
3. **त्रुटिपूर्ण आँकड़े :–** सर्वेक्षण के दौरान समंक (अधिकांशतया प्राथमिक संमक) वास्तविक स्थिति उजागर नहीं कर पाते हैं। आँकड़े की अपर्याप्तता या अशुध्दता के बहुत से कारण हो सकते है? जैसे कि जानकारी न होते हुए भी उत्तर देने का प्रयास करना, जानबूझकर गलत संमक, तथ्य बताना आदि। उत्तरदाता के अतिरिक्त कभी-कभी सर्वेक्षक की असावधानी के कारण अंकात्मक तथ्य गलत लिख लेता है। जैसे - सात को साठ या उन्नीस को 29 लिख लेना।

(स) संमक वर्गीकरण एवं विश्लेषण – यदि संकलित आँकड़ो को भली भाँति वर्गीकृत एवं विश्लेषित न लिया जाए तो इस भूल के परिणाम स्वरूप उपयुक्त रीति से ईमानदारी पूर्वक लिए गए सर्वेक्षण कार्य की सारी मेहनत पर पानी फिर जाएगा। ऐसी स्थिति निम्नांकित जैसी त्रुटियों से उत्पन्न होती हैं।

गैर प्रतिचयन त्रुटियों से सुरक्षा :– उस रोग के निदान की जटिल प्रक्रिया होती है, जिसका पता लगाना कठिन होता है। इसी प्रकार गैर प्रतिचयन की त्रुटियों की पहचान करना अत्यन्त जटिल कार्य है ,किन्तु यह असंभव नहीं हैं। हालांकि इन त्रुटियों की उत्पन्न होने के पश्चात सुधारने की संभावना मंहगी एवं लम्बी है एवं सुधार की प्रक्रिया में अधिक मात्रा में अर्थ एवं समय लगता है। तथादि पूर्ण शोध ज्ञान के द्वारा सावधानीपूर्वक शोधकार्य सर्वेक्षण करने से अधिकांश गैर प्रतिचयन की त्रुटियों को उत्पन्न होने से रोक सकते हैं। कहा भी जाता झीशलरींळीं रश्रुरी लर्शींशी िंहरी लींश गैर न्यादर्श की त्रुटियों के उत्पन्न होने से कारणों को रोकना ही इनसे बचने का उपाय हैं।

(4) उपसंहार. :– गैर प्रतिचयन की त्रुटियाँ प्रतिचयन की त्रुटियाँ से तुलनात्मक रूप से कहीं हानिकारक होती है। क्योंकि न्यादर्श की त्रुटियाँ को तो नमूने का आकार बढ़ाकर कम किया जा सकता है, लेकिन गैर न्यादर्श त्रुटियों तो समग्र में भी उपस्थित रहती है। सामान्य तौर पर इन त्रुटियों की उपस्थिती घरेलू उपयोग के या व्यक्तिगत ईकाई जैसे कृषक आदि के सर्वेक्षण में अधिक पाई जाती हैं। यह एक विडंबना ही है कि शोधकार्य की योजना से लेकर परीक्षण व निष्कर्ष तक को प्रभावित करने वाली इस त्रुटि के नियन्त्रण हेतु शोधार्थी एवं सर्वेक्षणकर्त्ता विशेष प्रयास नहीं करते हैं। गैर प्रतिचयन की त्रुटियों को गंभीरतापूर्वक नहीं लेते हैं। गैर प्रतिचयन त्रुटियों का एक बडा उदाहरण सरकार की सामाजिक आर्थिक जाति गणना 2011-12 के दौरान हुआ प्रगणक, सुपरवाईजर, डाटा इंट्री आपरेटर, एवं उत्तरदाता परिवार के सदस्य की गलत फहमी के कारण उत्तर गलत आये जिससे उस आधार पर बनी जानकारी भी गलत हो गई।

संदर्भ सूची :–

1. Non sampling errors in surveys – Touqueer Ahmad(Indian Agricultural statistics Research Institute, New Delhi)
2. Non sampling errors in surveys – Jeremiah P. Banda (Review the draft handbook on designing of household sample surveys 3 to 5 dec. 2003)

भारतीय परिदृश्य में उद्यमियों की चुनौतियाँ एवं अवसर

डॉ. राकेश माथुर * प्रो. विकास बक्षी **

प्राक्कथन :– किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में उस देश के औद्योगिक ढाँचे का महत्वपूर्ण स्थान होता है एवं औद्योगिक ढाँचे के विकास के लिए उस राष्ट्र के नागरिकों में उद्यमिता का गुण होना अतिआवश्यक है। कोई भी उद्योग चाहे वह लघु हो या वृहद के विकास में उसके प्रवर्तक के अथक प्रयासों व योगदान की एक लम्बी कहानी होती है, जिसके कारण ही वह उद्योग उन ऊँचाईयों पर पहुँच पाता है।

महान दार्शनिक इमर्सन भी कहते है कि ''एक संस्था एक व्यक्ति की ही लम्बी छाया होती है।'' उद्यमिता का अर्थ व्यवसाय से जुड़ी हुई व इसके सम्बद्ध अनेक प्रकार की समस्याओं व इनके हल करने की योग्यता से है। फ्रेंच एन. नाईट के अनुसार ''उद्यमिता जोखिम उठाने की योग्यता, इच्छा तथा अनिश्चितता के विरूद्ध गारण्टी प्रदान करने की शक्ति है।'' प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे.बी. से. के अनुसार ''उद्यमिता वह आर्थिक घटक है जो उत्पादन के समस्त साधनों को संगठित करता है।''

इतिहास गवाह है कि हेनरी फोर्ड, जे.आर.डी. टाटा, जी.डी. बिडला, किर्लोस्कर, डालमिया, धीरूभाई अम्बानी आदि ने अपने संघर्ष, लगन, जोखिम, नवीन विचारों के सृजन इत्यादि के द्वारा अपने उद्योग को नई दिशा प्रदान की एवं 'उद्यमिता' शब्द को सार्थक किया। 21वी शताब्दी में जिस प्रकार से इन नवीन साहसियों को समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जा रहा हैं, वहाँ उद्यमिता के मायने एवं अर्थ भी बदल गये हैं।

इस प्रकार से विकसित, विकासशील एवं अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में उनकी अर्थव्यवस्था के अनुरूप उद्यमिता के अलग-अलग अर्थ निकाले गये है। 21वी शताब्दी में मुकेश अम्बानी, सुनील भारती मित्तल, इंदिरा नुई, किशोर बियानी, बिल गेट्स इत्यादि के योगदान को सहर्ष ही देखा जा सकता है। इस प्रकार से किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में उद्यमियों के योगदान का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

सफल उद्यमी होने की आवश्यकताएँ :– उद्यमी का व्यक्तित्व विभिन्न गुणों से मिलकर बनता है। उद्यमी के चिन्तन एवं व्यवहार पर उसके व्यक्तित्व का गहन प्रभाव पड़ता है। व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के लिए उद्यमी में कुछ व्यक्तिगत गुणों एवं पूर्व प्रेक्षित बातों का होना आवश्यक है।

उद्यमी छोटे-छोटे गुणों के आधार पर ही व्यवसाय में उच्च उपलब्धियों को प्राप्त कर सकता है। गार्डन बी. बेट्टी लिखते है कि ''उद्यमी होने का आशय व्यक्तिगत गुणों को वित्तीय संसाधनों के साथ संयोजित करना है।''

इस प्रकार व्यवसाय में सफल नेतृत्व, प्रभावी छवि तथा तीव्र विकास के लिए साहसी के पास निजी गुणों का विपुल भण्डार होना चाहिए। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से एक सफल उद्यमी के गुणों एवं पूर्वापेक्षाओं का वर्णन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है -

1. शारीरिक एवं मानसिक गुण।
2. सामाजिक एवं चारित्रिक गुण।
3. व्यावसायिक एवं नेतृत्व गुण।

शारीरिक एवं मानसिक गुण :–

▷ **परिश्रमी –** उद्यमी की सफलता उद्यमी के कठोर परिश्रम पर निर्भर करती है। कड़ी मेहनत से दूर रहने वाले व्यक्ति के लिए लक्ष्य की प्राप्ति मात्र एक कल्पना ही बनी रहती है। एडीसन ने कहा है कि किसी भी कार्य की सफलता में प्रतिभा एक प्रतिशत काम करती है, जबकि परिश्रम निन्यानवे प्रतिशत।'' अत: उद्यमी कोई भाग्य पर भरोसा न करके परिश्रम पर विश्वास करना चाहिये।

▷ **सर्तकता –** प्रतिस्पर्धा के इस युग में व्यवसाय का संचालन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। अत: उद्यमी को प्रत्येक क्षण सतर्क होकर कार्य करना होता है। उसे सदैव अपने प्रतिस्पर्धियों की क्रियाओं, नवीनतम आविष्कारों व प्रवृत्तियों का सफलतापूर्वक अवलोकन करना चाहिए। उसे अपने व्यावसायिक वातावरण का सजगता से मूल्यांकन करते रहना चाहिए। सर्तकता के अभाव में उद्यमी लाभ के अवसरों को भी गँवा देता है।

▷ **कल्पना शक्ति –** दूरदर्शी कल्पना एवं रचनात्मक चिन्तन उद्यमी का एक महत्वपूर्ण मानसिक गुण है। कल्पना शक्ति के द्वारा ही उद्यमी नये-नये सृजनात्मक विचारों को जन्म देता है।

कल्पना शक्ति का प्रयोग करके उद्यमी लाभप्रद योजनाएँ बनाता है तथा उन्हें क्रियान्वित करता है। कल्पनाशील उद्यमी व्यवसाय की प्रत्येक समस्या का सृजनात्मक हल ढूँढ सकता है। चिन्तनशील उद्यमी उत्पादक कार्यो में ही अपनी मनोवैज्ञानिक ऊर्जा का प्रयोग करता है।

▷ **प्रखर बुद्धि –** उद्यमी में प्रखर बुद्धि का होना अत्यन्त आवश्यक है, तभी वह व्यवसाय का सफल संचालन कर सकता है तथा व्यावसायिक अवसरों का सही उपयोग कर सकता है। प्रखर बुद्धि वाला साहसी ही दूसरे व्यक्तियों पर अपना प्रभाव डाल सकता है तथा प्रत्येक बात, व्यक्ति एवं स्थिति को सही रूप में समझ सकता है। कुशाग्र बुद्धि के कारण वह प्रत्येक स्थिति का तर्कपूर्ण विश्लेषण कर सही निष्कर्ष निकाल सकता है।

▷ **आत्मविश्वास –** उद्यमी को अपना आत्मविश्वास कभी नहीं खोना चाहिए। उसमें व्यावसायिक चुनौतियों का सामना करने तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अड़िग बने रहने की शक्ति होना चाहिए। महर्षि विवेकानन्द का कथन है कि ''आत्मविश्वास सरीखा कोई दूसरा मित्र नहीं है। आत्मविश्वास ही भावी उन्नति की प्रथम सीढ़ी है।'' स्पष्ट है कि उद्यमी आत्मविश्वास के बल पर ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इमर्सन ने कहा है कि ''आत्मविश्वास सफलता का मुख्य रहस्य है।''

▷ **दूरदर्शिता –** दूरदर्शिता के द्वारा उद्यमी भावी घटनाओं का पूर्व-मूल्यांकन कर सकता है। अपनी भावी योजनाओं के सम्भावित परिणामों का विश्लेषण कर सकता है। दूरदर्शी उद्यमी भविष्य-उन्मुख होकर कार्य करता है, अत: वह अपने उपक्रम को भावी संकटों से बचाकर रखता है।

▷ **चुनौती की इच्छा** - उद्यमी में नयी-नयी चुनौतियों को स्वीकार करने का गुण होता है। वह चुनौतीपूर्ण कार्यो को प्राथमिकता देता है। जेम्स बर्ना लिखते है कि ''उद्यमी में उद्यम की भावना होनी चाहिए।'' इसी प्रकार

* प्राध्यापक (वाणिज्य), स्वामी विवेकानंद शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य), श्री वैष्णव वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

लुई.एल. ऐलन का कथन है कि ''सच्चा उद्यमी वही है जो सुरक्षा एवं चुनौती में से चुनौती को सहर्ष स्वीकार कर लेता है।''

▷ **आशावादिता –** उद्यमी को हमेशा आशावान होना चाहिए। उसे असफलताओं से निराश नहीं होना चाहिए, वरन् इन्हें सफलता की ओर जाने वाली सीढ़ियाँ माननी चाहिये। ग्रेविल ने कहा है कि ''निराशा का गहरा धक्का मस्तिष्क को वैसा ही शून्य बना देता है जैसा कि लकवा शरीर को।'' अत: उद्यमी को निराशा से सदैव बचना चाहिए तथा भविष्य के प्रति आशावादी रहना चाहिये। व्यवसाय में निहित जोखिमों का सामना केवल आशावान उद्यमी ही कर सकता है।

सामाजिक एवं नैतिक गुण :–

▷ **विनम्रता –** जॉन रास्किन का कथन है कि ''मेरा विश्वास है कि किसी महान् व्यक्ति की प्रथम परीक्षा उसकी विनम्रता है।'' अत: उद्यमी को सदैव विनम्र होना चाहिये। विनम्रता से वह अपने कर्मचारियों को प्रसन्न रख सकता है तथा स्वयं की प्रतिष्ठा बढ़ा सकता है। कहावत भी है कि ''विनम्रता का कुछ मूल्य नहीं लगता, किन्तु इसका फल मीठा होता है।''

▷ **सुदृढ़ चरित्र –** उच्च चरित्र का व्यवसायी के लिए बहुत महत्व है। चरित्रवान व्यक्ति अपने आप में दृढ होता है, स्वयं की कीर्ति बढ़ाता है तथा संगठन की नींव को मजबूर करता है। जे. हावेज लिखते है कि ''चरित्र एक शक्ति है, एक प्रभाव है, वह मित्र उत्पन्न करता है, सहायता तथा संरक्षण प्राप्त करता है और धन एवं सुख का निश्चित मार्ग खोल देता है।''

▷ **सहयोगी –** संगठन सहयोग का ही परिणाम है। उद्यमी को व्यवसाय के विभिन्न वर्गो के साथ मिलकर कार्य करना चाहिए। सहयोग के द्वारा उद्यमी सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों का निर्माण कर सकता है तथा पारस्परिक सद्भावना को प्रोत्साहित कर सकता है। उसे अपने प्रतिस्पर्धियों एवं लघु साहसियों के साथ सहयोगपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

▷ **निष्ठावान –** उद्यमी को अपने संगठन, कार्य एवं सभी व्यक्तियों के प्रति पूर्ण निष्ठावान होना चाहिए। निहित स्वार्थो को त्याग कर उसे ग्राहकों, विनियोजकों, सरकार व अन्य फार्मो के प्रति निष्ठा की भावना रखनी चाहिये। कार्य ही पूजा है यह उसका आदर्श, संगठन सर्वोपरि है यह उसका लक्ष्य तथा कर्मचारी अमूल्य सम्पदा है यह उसकी नीति होनी चाहिये। उसे अपने उपक्रम में कार्य संस्कृति का निर्माण करना चाहिए।

▷ **आदरभाव** – उद्यमी को मानवीय दृष्टिकोण रखते हुए उपक्रम के विभिन्न पक्षों के साथ आदरपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। उसे सभी व्यक्तियों के विचारों व सुझावों का सम्मान करना चाहिए। उसके निर्णय मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित होने चाहिये।

▷ **राष्ट्रीय चरित्र –** उद्यमी का व्यक्तित्व चरित्र से भी ओत-प्रोत होना चाहिए। उसे अपने व्यवसाय का संचालन राष्ट्र की प्राथमिकताओं व लक्ष्यों के अनुरूप करना चाहिए। राष्ट्र के विकास कार्यक्रमों एवं आर्थिक योजनाओं के क्रियान्वयन में सरकार को पूर्ण सहयोग प्रदान करना चाहिये। उसे राष्ट्र की प्रतिष्ठा के विरूद्ध कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

व्यावसायिक एवं नेतृत्व गुण :– प्रत्येक उद्यमी में कछ व्यावसायिक गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि ये उद्यमी की सफलता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है। हेनरी पी डटन लिखते है कि ''वह व्यक्ति जिसने एक बार भी व्यवसाय के कार्यो का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो जिसने संगठन, आर्थिक प्रबन्ध, लेखाकर्म, सहयोगियों के साथ कार्य करने, उनका नेतृत्व करने तथा क्रय-विक्रय के मूल सिद्धातों को सीख लिया हो, वह बहुत शीध्र ही व्यवसाय में कुशलता एवं सफलता प्राप्त कर लेता है।'' इसी प्रकार जे.बी.से. का कथन है कि ''उद्यमी को बाह्य जगत का ज्ञान होने के साथ-साथ व्यवसाय का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।''

▷ **साहसिक योग्यता** - व्यवसाय का मुख्य आधार साहसिक योग्यता ही है। ''बिना साहस के व्यवसाय नहीं किया जा सकता'' वस्तुत: साहस ही व्यवसाय है तथा साहस के बिना उत्पादन के सभी साधन निष्क्रिय रह जाते है। व्यवसाय में साहसिक व्यक्तित्व एवं व्यवहार से ही व्यक्ति अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है। उद्यमी को सदैव साहसिक दृष्टिकोण एवं साहसिक विचार रखने से ही उसे लक्ष्य प्राप्ति के लिए शक्ति प्राप्त होती है।

यद्यपि व्यवसाय में सफलताएँ विद्यमान होती है, किन्तु फिर भी उद्यमी उन्हें एक ज्ञान अनुभव की भाँति स्वीकार करता है। उद्यमी प्रत्येक असफलता से सीखता है तथा पुन: लक्ष्य प्राप्ति के लिए एक नयी ऊर्जा से भर जाता है। साहसिक दृष्टिकोण उद्यमी को अपने लक्ष्यों एवं दायित्व के प्रति सचेत रखता है। अपने व्यवहार एवं विचारों को साहसिक बनाने के लिए उद्यमी को सदैव किसी आदर्श उद्यमी की छवि ध्यान में रखना चाहिए।

▷ **नेतृत्व क्षमता –** उद्यमी अपनी नेतृत्व शक्ति के द्वारा उपक्रम में एक दलीय भावना का विकास करता है, कर्मचारियों को प्रेरणा एवं निर्देशन देता है तथा उनमें आत्मबल बनाये रखता है। अत: उद्यमी में नेतृत्व की क्षमता होनी चाहिए। मार्शल ने ठीक कहा है कि ''उद्यमी अपने उद्योग का कप्तान होता है।'' उद्यमी अपने कार्य की प्रकृति के कारण ही मूल रूप से नेता होते है। क्योंकि वे अवसरों की खोज करते है। नयी योजनाएँ प्रारंभ करते है। भौतिक, मानवीय व वित्तीय साधनों को एकत्रित करते है।

अपने तथा दूसरे के लिए लक्ष्यों का निर्धारण करते तथा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए दूसरों का मार्गदर्शन करते है। मेरेडिथ तथा नेलसन लिखते है कि ''सफल उद्यमी सफल नेता होते है चाहे वे कुछ अथवा कई सौ कर्मचारियों का नेतृत्व करें।'' नेतृत्व का तात्पर्य आज्ञा देना मात्र नहीं है।

नेतृत्व कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त करने, उनके व्यवहार को प्रभावित करने, उनकी आवश्यकताओं को समझने तथा उन्हें लक्ष्यों की ओर प्रेरित करने की योग्यता है। साहसी एक नेता के रूप में उपक्रम के निरन्तर विकास, उन्नत कार्य-कुशलता तथा सतत् सफलता में विश्वास रखता है वह सदैव चुनौतियों को स्वीकार करने, अधिक जोखिम उठाने, कार्य की नयी विधियाँ खोजने के लिए तत्पर रहता है।

▷ **जोखिम वहन क्षमता –** जोखिमों में जीना उद्यमी का आधारभूत गुण है। अनिश्चितताओं व जोखिमों का सामना करने के लिए उद्यमी सदैव तत्पर रहता है। किन्तु उद्यमी सफल होने के लिए हमेशा वास्तविक जोखिमें ही वहन करते है। अर्थात कठिन एवं चुनौतीपूर्ण किन्तु वास्तविक योजनाओं को ही हाथ में लेते है जिन्हें पूरा किया जा सके। मेरेडिथ एवं नेलसेन लिखते है कि ''उद्यमी सुविचारित उद्यमी अल्प जोखिम वाली स्थितियों से भी बचते है क्योंकि वे सफल होना चाहते है।

वे निष्पाद्य चुनौतियों को पसन्द करते है।'' वास्तव में सन्तुलित व व्यावहारिक जोखिमों को वहन करना ही उद्यमी का ढंग है। जोखिमपूर्ण स्थिति क्या है ? यह वह स्थिति है जिसमें उद्यमी दो या अधिक विकल्पों जिसके परिणाम अनिश्चित एवं अज्ञात होते है, में से किसी एक का चयन करता है। इस प्रकार उद्यमों को सम्भावित सफलता व हानि को सन्तुलित करते हुए अनिश्चितता के वातावरण में निर्णय लेने होते है। उद्यमी प्रत्येक स्थिति को पूर्ण मूल्यांकन करते हुए ही जोखिम उठाता है।

▷ **निर्णयन क्षमता** - उद्यमी में तत्काल एवं सुदृढ़ निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए तभी वह व्यवसायिक अवसरों का पूरा लाभ उठा सकता है।

इमर्सन का कथन है कि ''जो व्यक्ति निर्णय ले सकता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है ।''निर्णयों को टालने वाला उद्यमी व्यवसाय में कोई उपलब्धियों प्राप्त नहीं कर सकता है ।

फ्रेडरिक इरबिसन लिखते है कि ''गलत निर्णन से भी बुरी बता है - कोई भी निर्णय लेने से बचना।'' उद्यमी सृजनात्मक एवं लाभप्रद निर्णयों के द्वारा अपने उपक्रम की सफलता को सुनिश्चित कर लेते है । उद्यमी क निर्णयों का संगठन के भविष्य पर गहरा प्रभाव पडता है । निर्णय लेना किसी समस्या का समाधान खोजना है । अत: उद्यमी को वैज्ञानिक विधि के द्वारा ही किसी समस्या को हल करके निर्णय लेना चाहिए ।

▷ **व्यवसायिक नियोजन की योग्यता** - उद्यमी अपनी कल्पनाशक्ति एवं सृजनात्मकता के द्वारा व्यवसाय की स्थापना तथा उसके संचालन की योजना बनाता है । व्यावसायिक नियोजन की योग्यता के द्वारा ही उद्यमी कल्पित विचारों को साकार रूप प्रदान करता है ।

साधनों को उपयोगी वस्तुओं में रूपान्तरित करता है तथा पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर लेता है । नियोजन का कार्य व्यवसाय में नियमित रूप से चलते रहना है । इस हेतु उद्यमी को बाजार, अनुसन्धान, उत्पादकता शोध, विभिन्न संस्थाओं से सम्पर्क, बजट निर्माण आदि कार्य करने होते है । नियोजन के द्वारा उद्यमी उपक्रम के विशिष्ट लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का निर्धारण करता है तथा इन्हीं के आधार पर कर्मचारियों की क्रियाओं एवं प्राप्त किये जाने वाले परिणामों का निश्चय किया जाता है। नियोजन के माध्यम से उद्यमी उपक्रम के भविष्य पर विचार करता है, वातावरण - प्रवृत्तियों का पूर्वानुमान करता है, भावी व्यूह रचनायें तैयार करता है तथा कर्मचारियों के लिए निष्पादन मापदण्डों का निर्धारण करता है ।

व्यवसाय में बढती हुई जटिलताओं के कारण योजना निर्माण की योग्यता का महत्व बढ गया है । उद्यमी को अपने व्यवसाय के विकास के लिये उपयुक्त योजना तैयार करनी होती है । नियोजन क्षमता के द्वारा ही वह संगठन में एक उचित व्यवस्था का निर्माण कर सकता है ।

▷ **समय प्रबन्ध योग्यता –** समय उद्यमी का सबसे दुर्लभ साधन है । सृजनात्मकता, समस्या समाधान तथा अवसरों की खोज उद्यमी के महत्वपूर्ण कार्य है। किन्तु समय के अभाव में ये कार्य अधुरे ही रह जाते है । समय का उचित प्रबन्ध करके ही साहसी महत्वपूर्ण कार्यो को पूरा कर सकता है । समय के उचित प्रबन्ध हेतु उद्यमी के लक्ष्यों एवं समय-सीमाओं के निर्धारण तथा प्रत्येक क्रिया के लिये समय का उचित आवंटन कर देना चाहिए ।

▷ **व्यावसायिक वातावरण का ज्ञान –** उद्यमी अपनी क्रियाएँ समाज में ही सम्पादित करता है, अत: उसे व्यावसायिक वातावरण का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। मुख्यत: उद्यमी को निम्नलिखित के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी रखनी चाहिए ।

▷ **नवप्रवर्तन योग्यता –** उद्यमी में रचनात्मक चिन्तन करने तथा इन विचारों का व्यावसायिक उपयोग करने की योग्यता होनी चाहिए । नवप्रवर्तन सृजनात्मक विचारों का किसी नयी वस्तु, नयी उत्पादन विधि, नये बाजार तथा नयी उपयोगिता के सृजन हेतु उपयोग करना है । नवप्रवर्तन के द्वारा उद्यमी अपने व्यवसाय को सदैव नवीन एवं प्रगतिशील बनाये रखता है । वह उपक्रम में नये-नये सुधार एवं परिवर्तन कर सकता है ।

भारत के उद्यमियों की चुनौतियॉं :–

▷ **सामाजिक चुनौतियॉं –** किसी भी व्यवसाय का मूल उद्देश्य सामाजिक लक्ष्यों की उपेक्षा नहीं कर सकता । उद्यमी के लिये यह एक चुनौती है कि वह व्यवसायिक उद्देश्यों के साथ-साथ समाज के प्रत्येक वर्ग की अपेक्षाओं को भी समाहित करे । समाज में नवीन उद्योगों की स्थापना के परिणामस्वरूप अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही है जैसे प्रदूषण में वृद्धि, प्राकृतिक असन्तुलन, मानवीय मूल्यों का ह्रास आदि ।

सामाजिक परिवर्तन के परिणाामस्वरूप नयी मान्यताओं का जन्म हुआ है। अत: उद्यमी के लिये नवीन एवं प्राचीन परम्पराओं में सामंजस्य व समन्वय की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है साथ ही किसी भी उद्यम का सामाजिक वातावरण समाज की मानवीय इच्छाओं, आकांक्षाओं, बौद्धिक स्तर, मूल्यों व रीति रिवाजों से निर्मित होता है । उद्यमी इन तत्वों की उपेक्षा नहीं कर सकता है । अत: ''सामाजिक संचेतन का निर्माण'' उद्यमिता की एक अहम समस्या है ।

▷ **अभिप्रेरण की चुनौतियाँ –** उद्यमिता के द्वारा किसी भी व्यवसाय के उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण दोहन किया जा सकता है, किन्तु इसके लिये समर्पण एवं समर्पण के लिये अभिप्रेरण का होना नितांत आवश्यक है । अभिप्रेरण के अभाव में उद्यमी अपनी पूर्ण क्षमताओं का उपयोग नहीं कर पाता परिणामस्वरूप उद्यम को कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है ।

▷ **वित्तीय चुनौतियाँ –** वित्त व्यवसाय का जीवन रक्त है । अत: विवेकशील वित्तीय योजना का अभाव उद्यम को मृतप्राय: कर देता है । पूँजी की अनुपलब्धता या अधिक लागत पर पूँजी के निर्माण द्वारा उद्यम का अस्तित्व गंभीर खतरे में पड़ सकता है ।

पूँजी लागत में वृद्धि का प्रभाव सीधा उपभोक्ता पर पड़ता है, परिणामस्वरूप उसे अधिक विक्रय मूल्य चुकाना होगा साथ ही संचित लाभो व कोशों में भी कमी होना इसके दुष्परिणाम है । सन्तुलित पूँजी की उपलब्धता होने के साथ यह भी एक चुनौती है कि किस प्रकार उसका दोहन किया जाए ताकि अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके । किसी भी व्यवसाय में अल्पपूँजीकरण एवं अतिपूँजीकरण प्रमुख समस्याएँ है ।

▷ **तकनीकी एवं नवप्रवर्तन की समस्याएँ –** आज के युग में जहां उद्यम का विस्तार बहुत तीव्र गति से हो रहा है, वही तकनीकी क्रान्ति ने संचार के द्वारा सभी क्षेत्रों को एक-दूसरे के बेहद समीप ला दिया है । वर्तमान में बाजारीकरण के मायने बहुत तीव्र गति से बदल रहे है । आज हमें ओ.एल.एः.स, फ्लिपकार्ड, नापतौल, क्विकर आदि ई-कॉमर्स वेबसाईट्स के द्वारा ऑनलाईन बाजार उपलब्ध है ।

अत: प्रतिस्पर्धा के इस दौर तकनीकी परिवर्तन एवं उपभोक्ता के माँग में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे है । अत: इसके परिणामस्वरूप उद्यमी को कई जोखिमों का सामना करना पड़ता है । इसमें प्रतिस्पर्धा का स्तर, प्रतिद्वंदीयों की व्यूहरचना, नवीन तकनीकों का ज्ञान आदि अनेक कार्यो के प्रति सजगता एवं अनुकूलन बड़ी समस्या है ।

▷ **अन्य समस्याएँ –** वर्तमान में उद्यमिता के प्रत्येक स्तर चाहे वह प्रबन्ध हो, तकनीकी हो या वित्तीय उचित प्रशिक्षण नितांत आवश्यक एवं चुनौतिपूर्ण है। अत: उचित प्रशिक्षण एवं समय प्रबन्ध के अभाव में उद्यमिता का विकास नहीं हो पा रहा है । वर्तमान परिदृष्य में उद्यमी को केवल संस्था के हितों का ध्यान रखना ही आवश्यक नहीं है अपितु उसे व्यवसाय से जुडे प्रत्येक वर्ग का ध्यान रखना आवश्यक है, इसके लिये इन सभी के हितों में एक उचित सामंजस्य, समन्वय व तालमेल की समस्या बेहद आवश्यक हो जाती है ।

वर्तमान में भारत के उद्यमियों के लिये उपलब्ध अवसर :– वर्तमान परिदृष्य में भारतीय उद्यमियों को ना केवल अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है अपितु उनके निदान हेतु अनेक अवसर भी उपलब्ध है । इन अवसरों का पूर्ण उपयोग कर भारत में अनेक अम्बानी, बिड़ला, टाटा तथा

अन्य कुशल व्यावसायी हो सकते है। भारत में व्यावसायिक दृष्टिकोण से निम्नलिखित अवसर उपलब्ध है -

▷ **विस्तृत बाजार** - देश की बढती हुई आबादी प्रत्यक्ष रूप से देश को विस्तृत बाजार उपलब्ध करा रही है। परिणामस्वरूप विदेशी कम्पनियाँ भारत को एक बहुत बड़े बाजार के रूप में देख रही है। इस प्रकार से आबादी में वृद्धि उद्यमियों के लिये कई अवसर उपलब्ध करा रही है।

▷ **बढता हुआ जीवन स्तर –** पिछले दशक मे भारतीयों की आय में अनुपातिक रूप से वृद्धि हुई है जिसके कारण उनका जीवन स्तर भी बढ़ा है। बढता जीवन स्तर भारतीय उद्यमियों के लिये एक सुअवसर है।

▷ **प्रौद्योगिकी का बढता उपयोग –** वर्तमान आकडों के अनुसार भारत एक ऐसा देश है जहाँ इन्टरनेट एवं सोशल साईट्स का सबसे ज्यादा उपयोग किया जा रहा है। इन्टरनेट ने विश्व के सभी बाजारों को जोडकर समीप ला दिया है जिसके कारण व्यक्तियों के जीवन स्तर व जीवन शैली में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ है। भारतीय उद्यमियों के लिये यह भी एक प्रमुख अवसर है।

▷ **सहयोगी सरकारी नीतियाँ –** पिछले कुछ वर्षो में राजनीतिक दलों की बदलती सोच ने सरकारी नीतियों को भी उद्योगों के लिये हितकारी बना दिया है, जिसके कारण से नवीन औद्योगिक सोच का विकास हुआ है जो उद्यमियों के लिये कई असवर उपलब्ध करा राह है।

▷ **सस्ते श्रम की उपलब्धता –** बढती हुई जनसंख्या जहा एक ओर विस्तृत बाजार उपलब्ध करा रही है वही दूसरी ओर आसान व सस्ता श्रम भी उपलब्ध करा रही है। यह भी एक अवसर है जो किसी भी उद्योग की सफलता के लिये नितांत आवश्यक है।

▷ **आधारभूत सुविधाओं का विकास –** विगत 5 वर्षो में भारत में बिजली, पानी, सड़को एवं अन्य आधारभूत सुविधाओं की तेजी से उपलब्धता बढ़ी है जिसके कारण औद्योगिक विकास के लिये अच्छे अवसर उपलब्ध हुए है।

निष्कर्ष :– भारतीय उद्योगों के उपरोक्त चुनौतियों एवं अवसरों को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उद्यमियों के लिये चुनौतियों से अधिक अवसर उपलब्ध है।

भारतीय उद्यमी इन अवसरों का लाभ उठाकर नौकरी करने के बजाय सेवा प्रदाता बनकर अनेक लोगो को रोजगार प्रदान कर सकते है तथा राष्ट्र के लिये बहुमूल्य विदेशी मुद्रा का अर्जन कर राष्ट्र के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते है और अगर ऐसा होता है तो भारत को विकासशील देश से विकसीत देश होने से कोई नहीं रोक सकता है।

भारत सरकार एवं प्रादेशिक सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं एवं दी जा रही सुविधाओं के कारण औद्योगिक परिदृष्य लगातार बेहतर होता जा रहा है एवं अब समय की प्रबल मांग है कि भारतीय युवा नौकरी के बजाय उद्यमी बन कर अपने एवं दूसरो के लिये रोजगार के अवसर पैदा करें।

संदर्भ सूची :–

पुस्तकें - (1) ''भारत में उद्यमिता विकास'' - डॉ. एस. पी. माथुर, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस
(2) ''उद्यमिता विकास'' - डॉ. रमेश मंगल, डॉ. अशोक तिवारी, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स

जर्नल - ARTHSHASTRA : INDIAN JOURNAL OF ECONOMIC AND RESEARCH – NEW DELHI

पत्रिकाएँ - (1) मध्यप्रदेश सन्देश - मध्यप्रदेश शासन द्वारा मासिक प्रकाशन
(2) स्वदेशी पत्रिका - धर्म क्षेत्र, नई दिल्ली द्वारा मासिक प्रकाशन
(3) उद्यमिता - उद्यमिता विकास केन्द्र मध्यप्रदेश (सेडमैप), भोपाल।

समाचार पत्र - (1) आई नेक्स्ट, नईदुनिया
(2) डी.बी. भास्कर, दैनिक भास्कर

वेबसाईट्स - (1) www.india.gov.in,
(2) www.indiaimage.nic.in,
(3) www.business.gov.in

****

भारत में वैश्वीकरण एवं उच्च शिक्षा

डॉ. संजय पंडित *

वैश्वीकरण एवं शिक्षा व्यवस्था : वैश्वीकरण समाजों के बीच समरूपता व एकीकरण का विकास करता है, जिसमें एक वैश्विक समाज एवं संस्कृति के विकास का मार्ग प्रशस्त यह समाज के विविध पक्षों (आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदि) में व्यापक एवं तेज गति से बदलाव लाता है। बदलाव की इस प्रक्रिया की पहल अर्थव्यवस्था में उदारीकरणामुख परिवर्तनों से होती है।

अर्थव्यवस्था में ये परिवर्तन अन्य उपव्यवस्थाओं (जैसे राजनैतिक, शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विधिक आदि) में परिवर्तन को प्रेरित करते है। किंतु सभी उपव्यवस्थाओं में परिवर्तन समान रूप से नहीं होता। उदाहरण के लिए, तुलनात्मक रूप से गुणात्मक रूप से गुणात्मक एवं स्थायी होने के कारण सामाजिक व्यवस्था एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में परिवर्तन धीमा व मुश्किल से होता है, जबकि राजनैतिक एवं शैक्षिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन धीमा व मुश्किल से होने के कारण सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन तुलनात्मक रूप से तेज एवं आसानी से होता है।

अर्थव्यवस्था में उदारीकरण से आशय बाजार के स्वतंत्र होने से होता है किंतु इसके लिए राज्य के अधिकारों को परिसीमित किया जाना जरूरी होता है यदि ऐसा होता है तो जैसा कि ऊपर कहा गया है, इसकी स्वाभाविक परिणति अन्य उपव्यवस्थाओं, विशेष रूप से शिक्षा व्यवस्था में भी अर्थव्यवस्था की भांति उदारीकरण एवं निजीकरण को बढावा दिए जाने और राज्य के अधिकारों को परिसीमित किए जाने के रूप में होती है।

अत: जिस प्रकार आर्थिक वैश्वीकरण अर्थव्यवस्था का राज्य के नियंत्रण एवं प्रभाव से मुक्त होकर स्वतंत्र बाजार के नियमों द्वारा संचालित एवं नियंत्रित होना है, उसी प्रकार शैक्षिक वैश्वीकरण भी शिक्षा व्यवस्था का राज्य के नियंत्रण एवं प्रभाव से मुक्त हो कर स्वतंत्र बाजार द्वारा संचालित एवं निर्देशित होना है।

भारत में उच्च शिक्षा की स्थिति :- अगर हम भारत में उच्च शिक्षा की स्थिति, उसका स्वरूप, उद्देश्य, दर्शन, नीति, योजनाऐं, नामांकन की स्थिति, विषयसूची तथा पठन-पाठन एवं शोध की गुणवत्ता देखें तो तस्वीर मिश्रित स्वरूप की है। हमें निराशा एवं प्रसन्नता दोनों होती है। राष्ट्रीय स्तर पर हम प्रसन्न होते है :योंकि विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या, नामांकन की स्थिति, उच्च शिक्षा में छात्राओं के नामांकन की दर इत्यादि में व्यापक पैमाने पर वृद्धि हुई है।

उदाहरण के लिए 1947-48 में देश में मात्र 20 विश्वविद्यायलय थे जिनकी संख्या 1955-56 में बढकर 32 हो गई और इस समय इनकी संख्या बढकर 504 हो गई है। 1960 के पश्चात इस क्षेत्र में तेजी से वृद्धि हुई है। 1960-61 में पूरे देश में कुछ 5.50 लाख विद्यार्थी नामांकित थे, जिनकी संख्या बढकर 1969-70 में 18 लाख हो गई और उस समय से प्रतिवर्ष 5 प्रतिशत की दर से विद्यार्थियों की संख्या बढती गई है।

ज्ञात हो कि 1947-48 में बंबई विश्वविद्यालय में कुल 43,000 विद्यार्थी नामांकित थे, जिनकी संख्या 2008-09 में बढकर 3 लाख 50 हजार हो गई। ऐसी ही स्थिति लगभग हर विश्वविद्यालय के साथ हुई है। 1990 से तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में छात्र-छात्राओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। राष्ट्रीय स्तर पर पिछले वर्षो में महसूस किया गया कि बढ़ती छात्र-छात्राओं की संख्या की तुलना में वर्तमान में देश में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या पर्याप्त नही है।

संभवत: इसी परिदृश्य को देखकर राष्ट्रीय ज्ञान आयोग 2009 ने विचार दिया कि वर्तमान के 350 शासकीय विश्वविद्यालयों की संख्या को वर्ष 2015 आते-आते 1500 कर दिया जाए। इससे वर्तमान में जो उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिवर्ष 7 प्रतिशत की नामांकन दर है, वह बढ़कर 15 प्रतिशत हो जाए। आयोग ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शासन के साथ-साथ निजी हाथों को आगे आने की भरपूर अनुशंसा की है, जिसका परिणाम वर्तमान में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। मानव संसाधन विकास विभाग, भारत सरकार (2009-10) का आंकड़ा बतलाता है कि वर्तमान में देश में सभी प्रकार के कुल 504 विश्वविद्यालय हो गये है।

केन्द्रीय विश्वविद्यालयों, आई.टी.आई., एन.आई.टी, एन.आई.आई.टी.,आई.आई.एस.ई.आर., आई.आई.एम., एस.पी.ए की संख्या भी बढ गई है। देश में आज 25951 विश्वविद्यालय है, जिसमें लगभग 2565 महिला विश्वविद्यालय सम्मिलित है। 2009-10 में सभी विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में कुल 136.42 लाख विद्यार्थी नामांकित थे, जिसमें 16.69 लाख (12.24 प्रतिशत) विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में तथा 119.73 लाख (87.76 प्रतिशत) विद्यार्थी महाविद्यालयों में नामांकित थे। छात्राओं की संख्या में भी लगातार वृद्धि हुई है। उदाकरण के लिए 2009-10 में कुल नामांकित विद्यार्थियों में से छात्राओं की संख्या 65.49 लाख अर्थात् 41.40 प्रतिशत हो गई है। 2007-08 में सभी विषयें में 13237 विद्यार्थियों को पीएच.डी की उपाधि प्रदान की गई।

उच्च शिक्षा का प्रसार :- यह निर्विवाद सत्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात उच्च शिक्षा को देश में तेजी से फैलाव हुआ है। आज उन भौगोलिक क्षेत्रों एवं सामाजिक समूहों के विद्यार्थियों को भी उच्च शिक्षा के केन्द्रों में देखा जा सकता है, जिनकी उपस्थिति लगभग दो दशक पूर्व नगण्य थी। इसी प्रकार छात्राओं की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है। परंतु अभी भी हजारों की संख्या में नवयुवक एवं नवयुवतियां उच्च शिक्षा के द्वार से काफी दूर है। आर्थिक एवं गैर-आर्थिक कारणों से अनुसूचित जाति एवं जनजाति संवर्ग के छात्र-छात्राओं की संख्या काफी कम है।

इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या काफी कम है और निवास स्थान से उनकी दूरी काफी अधिक है जिसमें दाखिला लेना तथा पढाई करना आर्थिक दृष्टि से संभव नही है। अत: आयोग ने इस समस्या से निजात दिलाने के लिए अनुशंसा की कि काफी संख्या में महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय खोले जाएं। यह भी सुझाव दिया कि कम-से-कम 50 और केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की स्थापना होनी चाहिए।

शिक्षा में गुणवत्ता का स्तर :- जब हम शिक्षा को शक्ति के स्त्रोत के

* विभागाध्यक्ष (वाणिज्य) माता जीजाबाई शासकीय कन्या महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.) भारत

रूप में देखते है तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम उच्च कोटि एवं श्रेणी की शिक्षा सुनिश्चित करे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बिन्दु पर सभी विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय समान रूप से सचेत एवं गंभीर नहीं है। पिछले वर्षो में कई नए पाठ्यक्रम प्रारंभ किए गए है। सैकड़ों विषय मे डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी चलाया जा रहा है।

आवश्यकता इस बात की है कि प्रशासनिक एवं अकादमिक प्रबंधन इस ढंग से हो कि संस्था अपने महत्व एवं उपस्थिति को न केवल बनाए रखे बल्कि प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना एवं उसके फैलाव के लिए काम करे। महाविद्यालयों में विशेष तौर पर यह देखने में आता है कि हम पाठ्यक्रम पूर्ण करने, परीक्षा आयोजित करने, परिणाम प्रकाशित करने इत्यादि में अधिक रूचि लेते है। अत: महाविद्यालय उत्कृष्टता तथा ज्ञान सृजन का स्थान नही हो पाता है। हम विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम एवं प्रश्नोत्तर रटने एवं परीक्षा उत्तीर्ण करने तक ही सीमित रखते है, परंतु वे मानवतापूर्ण मनुष्य कैसे बने।

ज्ञानी कैसे बने फप्रजातांत्रिक कैसे बने, उनकी वैज्ञानिक एवं तार्किक सोच कैसे बढे, वे उन गुणों से परिपूर्ण कैसे हो जो नियोक्ताओं को आकर्षित कर सके इत्यादि बिन्दुओं पर अपेक्षाकृत कम ध्यान देते है।

दुर्भाग्यवश भूमण्डलीयकरण ने इस दिशा में आग में घी का काम किया है। शिक्षा के प्रबंधन से संबंधित वर्तमान प्रक्रिया ने इसे मात्र एक मशीन बना दिया है, जिसका काम उत्पादन देना है और अगर कोई शिक्षा भौतिक रूप में उत्पादन नही देती है तो उसे बेकार की शिक्षा समझा जाता है, भले ही उसमें मानवतावादी गुण कितना भी अधिक :यों न हो तथा वह कितना भी अधिक गुणवत्तपूर्ण क्यों न हो।

वैश्वीकरण : शिक्षा-व्यवस्था में बदलाव : उदारीकरण विकास को उत्प्रेरित करता है - आर्थिक वैश्वीकरण के इस सूत्र का शिक्षा के क्षेत्र में विस्तार शिक्षा-व्यवस्था में भी मौलिक परिवर्तन को अभिप्रेरित करता है। इसमें मुख्य रूप से तीन बातें सहायक होती है।

एक तो यह कि आर्थिक क्षेत्र में राज्य की सत्ता को विस्थापित करने के साथ बाजार की शक्तियां जीवन के अन्य क्षेत्रों जिनमें शिक्षा प्रमुख है, से भी राज्य के प्रभाव को समाप्त या शिथिल करने की कोशिश करती है ताकि आर्थिक क्षेत्र में बाजारवादी सुधारों को लागू करने में अन्य क्षेत्रों की ओर से किसी प्रकार की कोई कठिनाई पैदा किए जाने की कोई गुंजाइश नहीं रहे। दूसरी यह कि आर्थिक क्षेत्र में सुधारों को स्वाभाविक व स्थायी बनाने की दृष्टि से सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में इसके अनुकूल परिवर्तन लाना उपयोगी होता है क्योंकि शिक्षा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन की एक सशक्त माध्यम होती है।

तीसरी यह कि शिक्षा व्यवस्था के राज्य की जगह स्वतंत्र बाजार के अधीन होने से लोगों की सोच और मानसिकता को आर्थिक सुधारों के अनुकूल ढालने में सहूलियत होती है, जिससे समाज में आर्थिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया मजबूत व पक्की होती है।

निष्कर्ष :- किसी राष्ट्र में जब तक शिक्षक और सैनिक योग्य, प्रतिबद्ध और निष्ठावान है तब तक वह उन्नत और महफूज होगा। वैश्विक शैक्षिक परिदृश्य एवं अतीत के अनुभव के आधार पर हम कह सकते है कि बाजार आधारित शिक्षा व्यवस्था तभी कारगर व उपयोगी हो सकती है जब कि राष्ट्र संपन्न, समृद्ध व सशक्त हो । अत: एक राष्ट्र के रूप में अगर हम अपना अस्तित्व कायम रखना चाहते है तो फिलहाल शिक्षा एवं सुरक्षा व्यवस्था को पूरी तौर पर निजी हाथों में सौंपना हमारे लिए विद्या तक हो सकता है, क्योंकि सम्पन्नता, समृद्धि और विकास के न्यूनतम मानदंड से अभी हम काफी दूर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. शिक्षा और शिक्षकीय दायित्व - म.प्र. हिन्दी ग्रथ अकादमी, भोपाल।
2. रचना - म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी अकादमी भोपाल।
3. वार्षिक प्रतिवेदन 2009-10, मानव संसाधन विकास, विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली।

****

Estimation Of Input Elasticies In Indian Agricultural Sector

Dr. Vinod Kumar Sharma *

Introduction

After independence India has made tremendous progress in agricultural sector. The progress of agricultural sector was about 1 percent per annum during the fifty years before Independence, has grown at the rate of about 2.6 percent per annum in the post-Independence era. Expansion of area in the period of fifties and sixties and later increase in productivity became the main source of growth in agricultural production. Agriculture sector has had to go through different phases of growth, embracing a wide variety of institutional interventions, technology and policy regimes such as: Landreforms, Commission for Agricultural Cost and Prices, new agricultural strategy, provision of credit facilities, and improving rural infrastructure etc.Several studies has been analysed the implications of institutional, technological and policy variations on agricultural growth such as Rao (1996), Radhakrishna (2002) and Chand and Raju (2009). Presently we have come a long way from Independence and now we have long-terms data pertaining to Indian agriculture. So, the present study makes an attempt to find out determinates (elasticities) of agricultural production by using production function approach and verifies the results of decomposition of agricultural growth.

Data and Methodology

The study is based on the secondary data compiled from diverse sources. The data used in the estimation of production function were country level agricultural output and inputs for estimating the Cobb-Douglas production function of Indian agriculture from 1950-51 to 2010-11. Most previous studies on Indian agriculture used gross value of agricultural output (GVAO) as the total value of agricultural production. The data on GVAO were taken from the National Account Statistics published from Central Statistical Organization, Government of India. Labour, land, and capital are considered the three main inputs in agricultural production. Labour input is measured as workforce involved in agriculture. The data of workforce in agriculture is given in Agricultural Statistics at a Glance (2012) published from Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, Government of India only for census year. This series was interpolated for making time series data. Land input refers to the net cultivated area and is measured by net sown area. The data were taken from Agricultural Statistics at a Glance (2012). Capital is measured in terms of net fixed capital stock in agriculture and data related to net fixed capital stock are taken from Nation Account Statistics. Indian agriculture by now is well-endowed with the estimates of Cobb-Douglas production function and our aim is to analyse theimpact of production variables (inputs) on agriculturaloutput growth. For this purpose we used Cobb-Douglas Production Function specified as:

$Q = AL^{\alpha} K^{\beta} M^{\Upsilon} U$

May be written as

$\log Q = \log A + \alpha \log L + \beta \log K + \Upsilon \log M + \log U$…(1)

where Qis gross value of agricultural output;

L is agricultural land ;

K is capitalinput;

M is agricultural labourforce ;

Coefficients α, β and Υ are the elasticities of the respective variables with respect to agricultural production, with the assumption that α, β and Υ >0.

Results and Discussion

Theestimated agricultural production function for Indian agriculture based on data during

1950-51 to 2010-11 can be expressed in the following mathematical form:

$$\log Q = 0.66 + \underset{(0.161)}{0.511} \log L + \underset{(0.087)}{0.487} \log K + \underset{(0.048)}{0.616} \log M \quad R^2 = 0.99$$

From the above equation, we can see that in Indian agriculture during 1950-51 to 2010-11,the output elasticities of land, capital and labour, were 0.51, 0.49, and 0.62 respectively. In other words , holding the other inputs constant (capital & lobour), a one percent increase in the land input leads on the average to about 0.51 percent increase in the output. Similarly, β = 0.62, and Υ = 0.49 can be interpreted in the same way. The sum (α, β and Υ) gives information about the returns to scale, that is,response of output to a proportionate change in the input, in our case adding the three output elasticities we obtain 1.62 , which gives the value of the returns to scale parameter.As we can see the sum is greater than 1, thus there are increasing returns to scale. As isevident, over the period of the study, the Indian agriculture is characterized by increasingreturns to scale doubling the inputs will more than double the output. From a

* Professor Govt.P.G. Arts & Science College, Ratlam (M.P.) INDIA

purely statistical viewpoint, the estimated regression line fits the data quite well. The R2 value of 0.99 means that 99 percent of the variation in the (logarithmic of) grossvalue of agricultural output is explained by the (logarithmic of) land, labour, and capital.For adjusted R2 the relation is 99 percent. This shows the statistical dependence of the(logarithmic of) gross value of agricultural output on the (logarithmic of) labour, land andcapital, and β and ϒ are statistically significant at the 1 percent level and ? is significant at 5 percent level.

The dw-statistic is equal to 1.540. From the Durbin-Watson tables, we found that for 60observation and three explanatory variables, dL= 1.48 and dU= 1.69 at the 5 percentlevel. Since the computed dw-statistics lies between dL, and dU, auto correlation is inconclusive.

Bibliography

- Balakrishnan, Pulapre (2000): "Agriculture and Economic Reforms: Growth and Welfare",
- Economic & Political Weekly, Vol 35 (12), pp 999-1004.
- Bhalla, G S and Gurmail Singh (2001): Indian Agriculture: Four Decades of Development (New Delhi: Sage).
- Government of India (2012), Agricultural Statistics at a Glance.Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, New Delhi.
- Government of India (2012), National Account statistics . Central Statistical Organization, Ministry of statistics and Programme Implementation, New Delhi.
- Gujrati, D. N. (2004), Basic Econometrics.New Delhi: Tata McGraw - Hill.

****

मंदसौर जिले के कृषि वित्त पोषण में सहकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों का योगदान-एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अनुभा गुप्ता बड़ेरा *

प्रस्तावना : मंदसौर जिले में जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, मंदसौर अपनी 35 शाखाओं एवं 172 कृषि साख सहकारी संस्थाओं के माध्यम से कृषि कार्यों के लिये ऋण प्रदान कर रहा है। वहीं दूसरी ओर 13 राष्ट्रीयकृत बैंकें अपनी 42 शाखाओं के माध्यम से कृषकों को कृषि वित्त से पोषित कर रही हैं। कृषि वित्त पोषण के विभिन्न स्रोतों में सहकारी बैंकों तथा वाणिज्यिक बैंकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई है। यद्यपि देशी महाजन, साहुकार तथा और अन्य एजेन्सियाँ जैसे भूमि विकास बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा भी कृषि कार्यों हेतु ऋण प्रदान किये जाते है किंतु इन एजेन्सियों का व्यापक प्रभाव नहीं है। मंदसौर जिला कृषि प्रधान जिला होने की वजह से कृषकों को कृषि कार्यों में वित्त की आवश्यकता अधिक मात्रा में होती है। अस्तु इस कारण से तथा शोध उद्देश्यों को ध्यान में रखकर जिले में सहकारी बैंकों तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कृषि वित्त पोषण में की गई भागीदारी का तुलनात्मक अध्ययन शोध पत्र में किया गया।

अध्ययन का उद्देश्य :

1- कृषिगत वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपलब्ध संस्थागत स्त्रोतों का अध्ययन करना।

2- सहकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा मंदसौर जिले में प्रदत्ता ऋणों की स्थिति का तुलनात्मक मूल्यांकन करना।

3- कृषि वित्त पोषण संबंधित कठिनाईयों को ज्ञात कर आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करना।

परिकल्पना : सहकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा स्वीकृत किये जाने वाले ऋण की प्रक्रिया में जटिलता है।

समंक आधार एवं संकलन विधि : प्रस्तुत शोध पत्र को पूर्ण करने के लिये शोधार्थी द्वारा विगत 5 वर्षों के द्वितीयक समंकों को आधार बनाया गया है। प्राथमिक समंकों के संकलन के लिये मंदसौर जिले की आठों तहसीलों से कुल 400 कृषक हितग्राहियों का सर्वेक्षण किया गया है। न्यादर्शों का चयन दैव योग पद्धति के आधार पर किया गया है। द्वितीयक समंकों के संकलन, बैंक के वार्षिक प्रतिवेदन, अग्रणी बैंक कार्यालय विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, शोध पत्रों, इन्टरनेट के माध्यम से किया गया है।

विश्लेषण उपकरण : प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों के माध्यम से तालिकाओं एवं आलेख का निर्माण किया गया है। तालिकाओं के विश्लेषण के लिये उपयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियों यथा औसत, प्रतिशत, काई वर्ग परीक्षण का उपयोग किया गया है।

सहकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा स्वीकृत कृषि ऋण वितरण की तुलनात्मक स्थिति का मूल्यांकन :- सहकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा फसल ऋण कृषकों को प्रदान किये जाते है जिसकी तुलनात्मक स्थिति को तालिका क्रमांक 1.0 में स्पष्ट किया गया है।

सहकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा स्वीकृत कृषि ऋण वितरण की तुलनात्मक स्थिति का मूल्यांकन :- सहकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा फसल ऋण कृषकों को प्रदान किये जाते है जिसकी तुलनात्मक स्थिति को तालिका क्रमांक 1.0 में स्पष्ट किया गया है।

तालिका क्रमांक 1

मंदसौर जिले में सहकारी बैंक एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा फसल ऋण योजना के अन्तर्गत स्वीकृत कृषि ऋण वितरण की तुलनात्मक स्थिति

(राशि लाख में) वर्ष	स्वीकृत ऋण		कुल	स्वीकृत ऋणों का प्रतिशत	
	सहकारी बैंक	राष्ट्रीयकृत बैंक		सहकारी बैंक	राष्ट्रीयकृत बैंक
2004-05	30287	28502	58789	51.5188	48.4812
2005-06	41212	36570	77783	52.98362	47.01638
2006-07	65784	48559	114343	57.53201	42.46799
2007-08	11896	7709	19605	60.6784	39.3216
2008-09	98966	104859	203826	48.55451	51.44549
2009-10	159308	130435	289743	54.98248	45.01752

तालिका क्रमांक 1.0 के विवेचन से स्पष्ट होता है कि जिले में सहकारी बैंक द्वारा स्वीकृत किये गये फसल ऋण के प्रतिशत में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। वर्ष 2004-05 में जहाँ यह प्रतिशत जिले में स्वीकृत कुल ऋण के 51.5188 प्रतिशत था जो वर्ष 2009-10 के अंत में 54.98248% तक पहुंच गया है।ऋण के आकार पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट होगा कि वर्ष 2004-05 में जिला सहकारी बैंक द्वारा फसल ऋण योजना के अन्तर्गत कुल 30287 लाख रूपये स्वीकृत किये गये थे जो कि वर्ष 2009-10 तक बढ़कर 159308 लाख रूपये तक पहुंच गये हैं अर्थात् इस प्रकार इन ऋणों में 5 गुना से भी अधिक वृद्धि परिलक्षित हो रही है। ठीक इसके विपरीत स्थिति राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा वर्ष 2004-05 में कुल 28502 लाख रूपये फसल ऋण के रूप में स्वीकृत किये गये थे। यह राशि वर्ष 2009-10 तक बढ़कर 130435 लाख रूपये तक पहुंच गई है। अर्थात् आकार की दृष्टि से फसल ऋण के रूप में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा स्वीकृत ऋण में 4 गुना से भी अधिक वृद्धि दर्ज की गई है। ऋण के आकार पर दृष्टिपात करने पर स्पष्ट होता है कि वर्ष 2004-05 में सहकारी बैंक द्वारा स्वीकृत फसल ऋण की कुल मात्रा 30287 लाख रूपये थे एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा स्वीकृत ऋण तुलनात्मक रूप से कम दिये गये जिनकी मात्रा 28502 लाख रूपये थी।

सहकारी बैंकों द्वारा वर्ष 2008-09 को छोड़कर विगत सभी वर्षों में राष्ट्रीयकृत बैंकों की तुलना में अधिक ऋण स्वीकृत किये गये। वर्ष 2008-09 में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा 104859 लाख रूपये स्वीकृत किये गये एवं सहकारी बैंकों द्वारा 98966 लाख रूपये स्वीकृत किये गये। वर्ष 2008-09 में कुल स्वीकृत फसल ऋण में जिला सहकारी बैंक का योगदान 48.55 प्रतिशत रहा है जबकि शेष 51.44549% ऋण राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा स्वीकृत किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2004-05 में कुल स्वीकृत फसल ऋण में 51.5188% भाग सहकारी बैंकों का था जबकि शेष 48.4812% भाग राष्ट्रीयकृत बैंकों का रहा है। दोनों बैंकों के तुलनात्मक अध्ययन की यह प्रवृत्ति निरंतर जारी रही है। तालिका के विवेचन से स्पष्ट होता है कि फसल ऋण योजना के अंतर्गत सहकारी बैंक द्वारा

* अतिथि विद्वान, शासकीय माधव विज्ञान, महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

राष्ट्रीयकृत बैंकों की तुलना में अधिक ऋण स्वीकृत किये गये हैं। स्वीकृत फसल ऋणों की कुल प्रवृत्ति विगत 6 वर्षों में निरंतर वृद्धि की रही है। सहकारी बैंक एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कृषि सावधि ऋण योजना की तुलनात्मक स्थिति को तालिका क्रमांक 1.1 में स्पष्ट किया गया है। -

तालिका क्रमांक 1.1

मंदसौर जिले में सहकारी बैंक एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कृषि सावधि ऋण योजना के अन्तर्गत स्वीकृत कृषि ऋण वितरण की तुलनात्मक स्थिति्

(राशि लाख में) वर्ष	स्वीकृत ऋण		कुल	स्वीकृत ऋणों का प्रतिशत	
	सहकारी बैंक	राष्ट्रीयकृत बैंक		सहकारी बैंक	राष्ट्रीयकृत बैंक
2004-05	1046	21374	22420	4.665415	95.33459
2005-06	64	26170	26234	0.245857	99.75414
2006-07	461	25414	25875	1.781636	98.21836
2007-08	1003	26740	3677	27.27767	72.72233
2008-09	2073	20748	22821	9.084854	90.91515
2009-10	992	27885	28878	3.435834	96.56417

तालिका क्रमांक 1.1 के विवेचन से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2004-05 में सहकारी बैंक द्वारा स्वीकृत ऋण 1046 लाख रूपये थे जो कि वर्ष 2009-10 में घटकर 992 लाख रूपये रह गए। वर्ष 2004-05 में मियादी ऋण योजना के अंतर्गत राष्ट्रीयकृत बैंक द्वारा कुल 21374 लाख रूपये के ऋण प्रदान किये गये थे। यही क्रम 2009-10 तक बदस्तुर जारी रहा और इस वर्ष में राष्ट्रीयकृत बैंक द्वारा 27885 लाख रूपये के ऋण स्वीकृत किये गये। सहकारी बैंकों तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सावधि ऋण के रूप में स्वीकृत राशि के तुलनात्मक प्रतिशत पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि वर्ष 2004-05 में कुल कृषि सावधि ऋणों का केवल 4.665415% भाग सहकारी बैंकों का रहा है अर्थात् 95.33459% भाग राष्ट्रीयकृत बैंकों का रहा है। वर्ष 2009-10 में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कुल सावधि ऋणों के 96.56417% भाग का वितरण किया गया जबकि इस शीर्षक के अंतर्गत सहकारी बैंक का योगदान केवल 3.435834% रहा है। तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि सहकारी बैंक द्वारा सावधि ऋण योजना के अंतर्गत तुलनात्मक रूप से कम ऋण स्वीकृत किया गया एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सहकारी बैंक की तुलना में अधिक ऋण स्वीकृत किया गया है। परिकल्पना का परीक्षण परिकल्पना परिक्षण के लिये शोधार्थी द्वारा मंदसौर जिले की आठो तहसीलों से 400 कृषक हितग्राहियो का चयन देवनिर्दशन पद्धति आधार पर करके हितग्राहियों से अनुसूची के माध्यम से जानकारी संग्रहित की गयी। परिकल्पना के परीक्षण के संदर्भ में सर्वेक्षित कृषकों से सहकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों की ऋण प्रक्रिया की जटिलता के संबंध में अभिमत लिया गया परिकल्पना परिक्षण के लिये सांख्यिकी प्रविधि काई वर्ग परीक्षण का उपयोग किया गया जिसे तालिका क्र. 1.2 में दर्शाया गया है।

तालिका क्रमांक 1.2

ऋण प्रक्रिया की जटिलता के संबंध में कृषकों के अभिमत का काई वर्ग परीक्षण	Yes	No	Total
Co-operative Bank	115 (118)	120 (116)	235
Nationalized Bank	87 (83)	78 (82)	165

Not significant at .01 level; x^2 = .645, df. = 1

तालिका क्र. 1.2 के विश्लेषण से काई वर्ग परीक्षण का मान .645 प्राप्त हुआ जो कि .01 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: परिकल्पना सत्य सिद्ध हुई।

समस्याएँ एवं सुझाव–सर्वेक्षण के दौरान केसीसी योजना के क्रियान्वयन में आ रही कुछ कठिनाईयाँ एवं समस्याएँ भी प्रकाश में आई हैं। सहकारी बैंकों तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों की ऋण स्वीकृत करने की प्रक्रिया बहुत लम्बी एवं जटिल है। सर्वेक्षण के दौरान यह तथ्य भी प्रकट हुआ कि बैंकों द्वारा स्वीकृत की जाने वाली ऋण राशि अपर्याप्त रहती है। बैंकों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं लाल फीता शाही के कारण कृषक इनसे ऋण लेने से हतोत्साहित होते हैं। कृषि विपणन की अनेक समस्याएँ हैं। मूल्यों में उच्चावचन, भण्डारण समस्या, कृषकों का अशिक्षित होना आदि के कारण कृषकों की अपनी उपज का पूरा मूल्य नहीं मिल पाता है और वह सदैव ही वित्तीय समस्याओं से जूझता रहता है। दलालों एवं मध्यस्थों की उपस्थिति के कारण कृषकों पर ऋण लेने का अतिरिक्त भार आता है।

उपर्युक्त समस्याओं के संदर्भ में शोधार्थी द्वारा निम्न सुझाव दिये गये है – बैंकों द्वारा ऋण स्वीकृत करने की प्रक्रिया सरल एवं संक्षिप्त होना चाहिये। राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा सहकारी बैंकों की ऋण स्वीकृत करने की प्रक्रिया एक समान होनी चाहिये। कृषकों को कृषि ऋण प्रक्रिया, विभिन्न योजनाओं की विशेषकर पुनर्भुगतान की शर्तों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी देने हेतु स्थान-स्थान पर 2-3 दिवसीय शिविर आयोजित किये जाने चाहिये।ऋण पुनर्भुगतान की समय सीमा व्यावहारिक होनी चाहिये दलालों एवं मध्यस्थों की भूमिका समाप्त करने के लिये आवश्यक कार्यवाही की जानी चाहिये छोटे एवं सीमान्त कृषकों को आवश्यक वित्त उपलब्ध कराने हेतु विशेषकर योजनाएँ बनायी जानी चाहिये।

निष्कर्ष: शोध पत्र के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि जिले के कृषि विकास में राष्ट्रीयकृत बैंक एवं सहकारी बैंक दोनों ही अपनी-अपनी भूमिका निभा रही है। सहकारी संस्थाओं के माध्यम से सहकारी बैंक गांव-गांव तक विस्तारित है साथ ही फसल ऋण वितरण में सहकारी बैंक तुलनात्मक रूप से अग्रणी स्थान पर है। वही दूसरी ओर राष्ट्रीयकृत बैंकें सावधि ऋण वितरण में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। राष्ट्रीयकृत बैंकों को अपनी शाखाओं का विस्तार और अधिक करना चाहिए एवं सहकारी बैंकों में राजनैतिक हस्तक्षेप कम होना चाहिए ताकि जिले का कृषि विकास और उन्नत हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची : प्रस्तुत शोध पत्र, पीएच.डी. शोध प्रबंध ''मंदसौर जिले के कृषि वित्त पोषण में सहकारी एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों का योगदान : एक तुलनात्मक अध्ययन (मंदसौर जिले के विशेष संदर्भ में) 2004-05 से 2009-10 तक से लिया गया है।'' जिस पर शोधार्थी अनुभा गुप्ता को वर्ष 2013 में पीएच.डी. उपाधि प्रदान की गई हैं।

आलेख क्रमांक-1 –मंदसौर जिले में सहकारी बैंक एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा फसल ऋण योजना के अन्तर्गत स्वीकृत कृषि ऋण वितरण की तुलनात्मक स्थिति

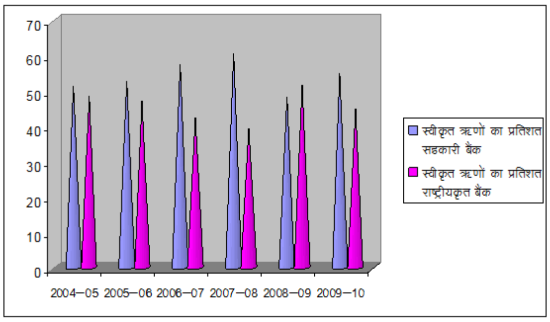

आलेख क्रमांक-2 –मंदसौर जिले में सहकारी बैंक एवं राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कृषि सावधि ऋण योजना के अन्तर्गत स्वीकृत कृषि ऋण वितरण की तुलनात्मक स्थिति

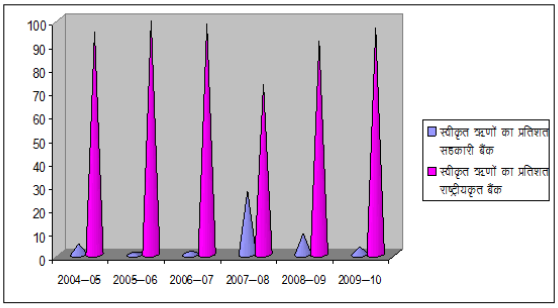

जैविक खेती को प्रभावित करने वाले घटक

कु. सुरेखा यादव * डॉ. कमला गुप्ता **

प्रस्तावना:- भारतीय कृषि प्रणाली का स्वरूप 1960 के दशक में परिवर्तित हुआ है। 1960 के दशक के पूर्व भारतीय कृषि प्रणाली में कृषक अपने खेतों में गाय का गोबर गौमूत्र से बनी खाद, हरी खाद का उपयोग करते थे। 1960 के दशक में भारत में हरित क्रांति आई जिसमें रासायनिक उर्वरक, उन्नत किस्म के बीज आदि उपयोग कर उत्पादन बढ़ाया गया। वर्तमान में भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के क्षेत्र में एक नई अवधारणा का विकास हो रहा है जिसे जैविक खेती का नाम दिया जा रहा है। यह किसानों द्वारा 1960 के दशक से पूर्व की जाने वाली परम्परागत खेती के समान है। परंतु वर्तमान में इस खेती का वैज्ञानिक तरीके से किया जा रहा है, इसलिये जैविक खेती के घटकों (नाडेप, केचुआ खाद आदि) का प्रयोग कृषकों के लिये नया प्रयोग है। परंतु कुछ कृषक जैविक खेती करने के लिए उत्साहित भी है तो कृषक जैविक खेती से अनभिज्ञ भी है। जैविक खेती का सीधा संबंध जैविक खाद से है या यह कहे कि ये दोनों एक सिक्के के ही पहलू है। रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को हतोत्साहित करते हुए जैविक खेती को प्रोत्साहन देना समय की मांग है जैविक खेती रासायनिक उर्वरक के उपयोग के बिना स्थानीय रूप में उपलब्ध संसाधनों (गोबर, गौमूत्र, सड़ने योग्य कचरा, जीवाणु खाद, कम्पोस्ट आदि) का उपयोग कर की जाती है। भारत में वर्ष 2003-04 में जैविक खेती को लेकर गंभीरता दिखाई गई और 42000 हेक्टेयर क्षेत्र में जैविक खेती की शुरूआत हुई थी। वर्ष 2008-09 के दौरान भारत ने करीब 18.78 लाख टन प्रमाणित जैविक उत्पादों का उत्पादन किया है। इसमें से 591 करोड़ रूपये के करीब 54000 टन खाद्य पदार्थों का निर्यात किया गया है।

उद्देश्य:-शोध पत्र के निम्न उद्देश्य है :-

1. म.प्र. के बैतूल जिले में जैविक खेती के घटकों के उपयोग की वर्षवार जानकारी का अध्ययन करना।
2. जैविक खेती को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना।

शोध प्रावधि:- शोधकर्ता ने प्रस्तुत शोध पत्र में म.प्र. के बैतूल जिले का अध्ययन किया है तथा अध्ययन हेतु प्राथमिक व द्वितीयक समंकों का संग्रहण किया गया है। शोधकर्ता ने द्वितीयक समंक किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग जिला बैतूल से संग्रहित किये है एवं प्राथमिक समंक बैतूल जिले के 4 विकासखंड (बैतूल, मुलताई, भैंसदेही, चिचोली) से संग्रहित किये है। प्रत्येक विकासखंड में जैविक ग्राम के कृषकों से अनुसूची द्वारा सर्वे किया गया है। कुल 400 कृषकों का सर्वे किया गया है, समंक संग्रहण के पश्चात् आंकलों का सारणीयन कर विश्लेषण किया गया है। समंक संग्रहण वर्ष 2011-12 से संबंधित है। अध्ययन क्षेत्र में सर्वेक्षण के दौरान ज्ञात हुआ कि शत्-प्रतिशत् जैविक खेती अपनाने वाले कृषकों की संख्या नगण्य है इस स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए जैविक खेती के निर्धारण हेतु शोधकर्ता द्वारा एक पैमाने का निर्णारण किया गया है, इस हेतु एक जजमेंट शीट में कृषि विज्ञान केन्द्र तथा किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग के कृषि विशेषज्ञों के मतानुसार आंकड़े एकत्रित किये गये है। प्राप्त जजमेंटशीट में विशेषज्ञों द्वारा दी गई अनुसंशित मात्रा व उसके समक्ष दिये गये प्रत्येक जैविक खेती के घटकों के औसत की गणना की गई तथा प्राप्त औसत से व्यक्तिगत कृषक द्वारा जैविक खेती के घटकों की गणना कर निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग कर कृषकों को तीन श्रेणीयों में- निम्न जैविक खेती, अंगीकारक कृषक, मध्यम जैविक खेती अंगीकारक तथा उच्च जैविक खेती अंगीकारक कृषकों में बांटा गया है।

तालिका विश्लेषण :- जिले में जैविक खेती के विभिन्न घटकों के उपयोग की वर्षवार जानकारी निम्न तालिका में प्रस्तुत है :-

तालिका क्रमांक 1 - जैविक खेती के विभिन्न घटकों के उपयोग की वर्षवार जानकारी (इकाई-संख्या)

वर्ष	नाडेप		बायो गैस संयंत्र	वर्मी कम्पोस्ट पिट
	कच्चा	पक्का		
2007-08	7816	1070	90	386
2008-09	7500	894	426	561
2009-10	8000	960	170	217
2010-11	5195	470	471	650
2011-12	6190	460	498	470
औसत	6940.2	770.8	331	456.8

स्त्रोत :-*किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग बैतूल।*

तालिका क्रमांक 1 से स्पष्ट है कि जिले में सबसे अधिक कृषकों ने कच्चा नाडेप (6940.2) औसत संख्या में निर्मित किये है। जिसकी तुलना में पक्के नाडेप की संख्या कम है और बायोगैस संयंत्र सबसे कम निर्मित किये गये है। बायो गैस संयंत्र बनाना कठिन प्रक्रिया है। वर्मी कम्पोस्ट पिट 456.8 भी औसतन कम निर्मित हुए हैं जिससे प्राप्त खाद बहुत पोषण युक्त है। जिले में जैविक खेती के घटकों का प्रसार कम है।

तालिका क्रमांक 2

जैविक खेती को प्रभावित करने वाले घटकों की जानकारी

क्र.	जैविक खेती को प्रभावित करने वाले घटक	जैविक खेती करने वाले कृषक वर्ग		
		निम्न जैविक अंगीकारक कुल कृषक 28	मध्यम जैविक अंगीकारक कुल कृषक 328	उच्च जैविक अंगीकारक कुल कृषक44
1	पशुधन की कम संख्या	20.00 (70.12)	(71.42) 6.00	230.00 (13.63)
2	जानकारी का अभाव	3.00 (75.30)	(10.71) 27.00	247.00 (61.36)
3	जैविक खेती की जटिल प्रक्रिया	28.00 (100.00)	(100.00) 44.00	328.00 (100.00)
4	जोत का आकार अधिक होना	6.00 (12.19)	(21.42) 0.00	4.00 (0.00)
5	पर्यावरण जागरूकता का अभाव	16.00 (75.30)	(54.14) 33.00	247.00 (75.00)

स्त्रोत :- सर्वेक्षण पर आधारित

* शोधार्थी ** प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) सरोजनी नायडू शासकीय स्नातक कन्या महाविद्यालय (स्वशासी) शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) भारत

नोट :- कोष्ठक में प्रतिशत संख्या दर्शाई गई है।

प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट है कि उच्च जैविक अंगीकारक कृषक वर्ग में मात्र 13.63 प्रतिशत कृषकों को कम पशुधन की समस्या है जबकि निम्न जैविक खेती अंगीकारक कृषकों में 71.42 प्रतिशत कृषकों को यह समस्या है। मध्यम व उच्च जैविक खेती अंगीकारक कृषक वर्ग में क्रमश: 75.30 प्रतिशत तथा 61.36 प्रतिशत कृषकों को जैविक खेती की जानकारी नहीं है। तीनों वर्ग के कृषकों को जैविक खेती करना जटिल प्रक्रिया लगती है। उच्च जैविक खेती अंगीकारक कृषक वर्ग में एक भी कृषक को जोत के आकार की समस्या नहीं है। अर्थात् छोटी जोत (दो हेक्टेयर से कम) वाले कृषक जैविक खेती अधिक अपनाते है। मध्यम व उच्च जैविक खेती अपनाने वाले कृषकों में 75 प्रतिशत कृषक पर्यावरण सुरक्षा के प्रति जागरूक नहीं है। अत: उपरोक्त कारक जैविक खेती अंगीकरण को प्रभावित कर रहे है।

समस्याऐं :- कृषकों को जैविक खेती अपनाने में निम्न समस्याऐं आ रही है।

1. पशुधन संख्या कम होना भी कृषको की समस्या है।
2. जैविक खेती के घटकों का निर्माण करने का प्रशिक्षण कृषको को नहीं दिया जाता।
3. कृषको को पर्यावरण सुरक्षा के प्रति जागरूकता नहीं है।

सुझाव :- जिले में जैविक खेती के प्रसार हेतु निम्न सुझाव दिये जा रहे है।

1. पशुपालन में वृद्धि जैविक खेती के प्रसार हेतु आवश्यक है। अत: कृषको को पशुपालन हेतु सुविधाएं दी जाए।चूंकि जैविक खेती का आधार गोबर व गौमूत्र है।
2. जो कृषक उच्च जैविक खेती अपना रहे है उनके द्वारा अन्य कृषको को जैविक खेती के घटकों के निर्माण का प्रशिक्षण दिया जाऐं
3. कृषको को रासायनिक उर्वरकों से पर्यावरण को होने वाली हानियों से अवगत कराए। जिससे वे जैविक खेती अपनाने के लिये अग्रसर होंगे।

निष्कर्ष :- जैविक खेती का प्रसार वर्तमान में बढ़ रहा है। इसके प्रसार में कृषकों को कुछ समस्याऐं है जिनका निराकरण संभव है। अत: जेविक खेती के प्रसार हेतु पशुधन में वृद्धि व कृषकों को जैविक घटकों के निर्माण व उपयोग की जानकारी देना अति आवश्यक है। ये तथ्य जैविक खेती अंगीकरण में वृद्धि करेंगे।

संदर्भ-

* कोशल डॉ. जी.एस. (2008) ''श्रद्धा के फूलों से सोना'' मध्यप्रदेश विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद विज्ञान भवन नेहरू नगर भोपाल।
* ओझा एस.के. (2012-13) ''कृषि एवं प्रौद्योगिकी'' बौद्धिक प्रकाशन इलाहाबाद।

****

बैंकिग क्षेत्र द्वारा कृषि साख - (नीमच जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. रिखब चन्द्र जैन *

अल्पविकसित देशों में कृषि सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सबसे पिछड़ा हुआ क्षेत्र होने के कारण कृषि विकास का अर्थव्यवस्था में निर्णायक महत्व है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि पर देश की जनसंख्या का एक बड़ा भाग निर्भर है, कृषि एवं भारतीय अर्थव्यवस्था परस्पर इतने सम्बद्ध है कि एक से अलग दूसरे का विचार करना मुश्किल है। इसी तरह यदि कृषि मंदगति से चलती हैं तो औद्योगीकीरण अवरूद्ध हो जायेगा अत: अर्थव्यवस्था की स्थिरता के लिए कृषि विकास की एक न्यूनतम दर का होना परम आवश्यक हैं कृषि का योगदान सकल घरेलू उत्पाद में दिनोंदिन कम होता हुआ लगभग 17% पर भी पहुंच गया हैं अत: कृषि विकास अति आवश्यक हो गया है।

आज कृषि की मूल समस्या साख उपलब्धि की है आज भी अधिकांश कृषक गैर संस्थागत वित्त स्त्रोत साहूकार, महाजन, व्यापारी एवं अन्य से ऋण लेते है जिसका मुख्य कारण पूर्व में परिचय एवं आसान शर्तो पर ऋण हैं भारत सरकार ने कृषि विकास हेतु साख सुविधाओं को बढ़ाने तथा संस्थागत वित्त के ढ़ांचे को मजबुत बनाने के उद्देश्य से संस्थागत बैंकिग को अधिकाधिक प्रोत्साहित करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से विगत चार दशकों में बैंकिग सुविधाओं का तेजी से विस्तार हुआ तथा सामाजिक बैंकिग के रूप में बैंकिग को एक नया आयाम प्राप्त हुआ है। बैंकिग की शाखाऐं भी ग्रामीण अंचलो में खोली जा रही है। नीमच जिले में व्यावसायिक बैंक क्षेत्रिय ग्रामीण बैंक, सहकारी बैंक एवं जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की 76 शाखाऐं कार्यरत है जो कृषि विकास में महती भूमिका अदा कर रही है। देश में कृषि विकास के लिए तरह-तरह के उपाय सुझाये जाते हैं उन उपायों को मोटे रूप से दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. **संस्थागत उपाय**
2. **तकनीकी उपाय**

संस्थागत उपायों, जैसे कि भूमि सुधार पर अधिक बल देते हैं और कुछ तकनीकी उपायों पर जिनका सम्बंध बीज, खाद, कृषि उपकरण आदि की व्यवस्था से हैं वास्तव में यह दोनों एक दूसरे के पूरक है और इन उपायों के लिए बैंकिंग संस्थाओं द्वारा साख प्रदाय की जाना है। कृषि में तकनीकी ज्ञान का प्रसार, उन्नत किस्म के बीजो का आविष्कार, उर्वरक एवं कीटनाशक दवाईयों का कृषि में अधिक उपयोग, कृषि में यंत्रीकरण, सिचाई के लिए विद्युत का उपयोग आदि के कारण कृषि में पूंजी की आवश्यकता पहले की अपेक्षा कई गुना अधिक हो गई इस प्रकार कृषि के लिए वित्त की आवश्यकता होती हैं और यह आवश्यक वित्त बैंकिंग संस्थाओं पर काफी निर्भर करता हैं कृषि वित्त की आवश्यकता निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए होती हैं :-

1. भूमि क्रय हेतु
2. भूमि को कृषि योग्य बनाने हेतु
3. बीज क्रय करने हेतु
4. खेत पर आवश्यक भवन बनाने हेतु
5. कृषि कार्यो हेतु
6. विशिष्ट कृशिक्षत फसलो हेतु
7. कीटनाशकों के क्रय हेतु

नीमच जिले में विभिन्न बैंकों की शाखाओं की स्थिति सन् 2012-13

क्र.	बैंको के नाम	विकास खण्डवार शाखाएँ			योग
		नीमच	जावद	मनासा	
1	व्यावसायिक बैंक	28	9	07	44
2	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	5	3	6	14
3	जिला केन्द्रिय सहकारी बैंक	6	5	4	15
4	जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक	1	1	1	3
	कुल योग	40	18	18	76

स्पष्ट है नीमच जिले में कुल 76 बैंक शाखाऐं हैं जिनमें व्यावसायिक बैंक की 44, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की 14, केन्द्रिय सहकारी बैंक की 15 तथा जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की 3 शाखाऐं कार्यरत है।

नीमच जिले में कृषि ऋण -

कृषि ऋण दो प्रकार के होते हैं :-

1. **फसल ऋण :-** नीमच जिला कृषि प्रधान जिला हैं जिले की 72: जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जिले में लगभग 68.4: कामकाजी व्यक्ति कृषक या खेतीकर मजदूरी के रूप में कृषि कार्य से जुडे हुए हैं इस प्रकार कृषि कार्य जिले में आजिविका का प्रमुख साधन है। जिले में मुख्य रूप से कृषको द्वारा खरीफ के अन्तर्गत सोयाबीन, ज्वार, बाजरा, मक्का, दलहन तथा रबी के अन्तर्गत गेहूँ, चना, अलसी, सरसो, गन्ना तथा औषधीय फसलों के अन्तर्गत अजवाइन, मैथी, कुसुम प्रमुख फसले उगाई जाती है।
   व्यावसायिक फसलों के अन्तर्गत जिले में अफीम बोई जाती हैं। इसी वजह से यह क्षेत्र काला सोना उत्पादन के नाम से भी प्रसिद्ध है। विकास खण्ड मनासा में पान की खेती भी की जा रही है।
2. **सावधि ऋण :-** बैंकिंग संस्थाओं द्वारा कृषि हेतु सावधि ऋण निम्न क्षेत्रों में दिये जाते है।
   1. लघु सिचाई
   2. कृषि यंत्रीकरण
   3. पौध एवं उद्यानिकी
   4. अन्य कृषि-जिसमें बायोगेस प्लांट भी है।, दुग्धपालन, मुर्गी पालन, भेड़पालन, सुअर पालन, बकरी पालन, मछली पालन है।

तालिका क्र. 1 से स्पष्ट हैं कि कूल कृषि क्षेत्र में ऋण वितरण विगत तीन वर्षो में बढ़ रहा है। जो प्रतिवर्ष लगभग 20: ऋण वितरण राशि बढ़ रही है। लक्ष्य से उपलब्धि का प्रतिशत 93: रहा है। प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र- कृषि और उद्योग क्षेत्रो के विकास के साथ व्यवसाय एवं सेवा क्षेत्र का भी विकास जुड़ा हुआ है। उपरोक्त दोनो क्षेत्रों के विकास से उत्पादन में वृद्धि होती है जिसको विपणन करने हेतु परिवहन साधनों की पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति आवश्यक है।

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

इसी प्रकार बढ़ती मांग की आपूर्ति हेतु अलग-अलग व्यवसाय, सेवाओं की इकाईयां की स्थापना की संभावनाऐ भी निर्मित होती हैं ।

इस क्षेत्र को सामान्य भाषा में अन्य प्राथमिकता क्षेत्र कहा जाता हैं जिसके अन्तर्गत छोटे परिवहन, खुदरा व्यापार, उपभोक्ता की वस्तुऐं, परचुन दुकाने, भवन निर्माण आदि हेतु वित्त पोषण सामान्यत शासन द्वारा प्रायोजित विभिन्न कार्यकमों के अन्तर्गत होता है।

तालिका क्र. 2 में प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र में ऋण वितरण की स्थिति विगत तीन वर्षो की प्रदर्शित की गई हैं जिससे केन्द्रीय सहकारी बैकों का योगदान अच्छा है। इससे स्पष्ट है कि जिले में प्राथमिक सहकारी समितियों द्वारा साख व्यवस्था अच्छी हो रही है ।

नीमच जिल में बैंकिग संस्थाओं में कुल जमा एवं कुल अग्रिम की बैंकवार स्थिति-

जिले की बैंकिग संस्थाओं के अन्तर्गत व्यावसायिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, सहकारी बैंक, जिला सहकारी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक की कुल जमा विगत तीन वर्षों में बढ़ रही है। जो ग्राहकों में जमाओं के प्रति रूझान को स्पष्ट करती हैं तथा अग्रिम में भी वृद्धि हो रही हैं जो ऋण वितरण की वृद्धि को स्पष्ट करती है।

तालिका क्र. 03 में कुल जला व कुल अग्रिम दोना बढ़ रहे हैं। परन्तु साख जमा अनुपात सत्र 2010-11 में 63: हैं जिसे और बढ़ाया जाना चाहिए।

बैंकिग संस्थाओं द्वारा कृषि साख में सुधार हेतु सुझाव :-

1. सर्वागीण विकास हेतु सभी क्षेत्रो में समग्र रूप से संकल्पित व समन्वित प्रयास करने चाहिए।
2. वसूली हेतु बैंक शाखा द्वारा दायर आर.आर.सी. राजस्व अधिकारियों को समय पर प्रेषित करें एवं समयबद्ध कार्य योजना तैयार कर राजस्व वसूली अधिकारीयों के सहयोग से वसूली के अच्छे परिणाम प्राप्त करें।
3. शासकीय विभागों से प्राप्त प्रकरणों का निरारण गुण-दोषों के आधार पर निर्धारित समय सीमा में करे।
4. प्रकरणों को अपने स्तर पर लम्बित न करें।
5. गरीबी उन्मूलन एवं ग्रामीण विकास की योजनाओं के क्रियान्वयन में सकारात्मक सोच, समाज एवं संस्था के लिए नितान्त आवश्यक है।
6. फार्म पाण्डस बनाये जिससे भूमि में जल स्तर बढ़ता हैं।
7. लघु एवं मध्यम कृषकों को स्वयं सहायता समूह बनाकर ट्रेक्टर, थ्रेसर हेतु वित्त पोषित किया जाना चाहिए।
8. उद्यानिकी में विशेष रूची नहीं लेते हैं क्योंकि यह फसल तीन-चार वर्ष बाद आती हैं और उनमें इतनी क्षमता नहीं हैं जिससे बड़े कृषक अल्पकालिन फसलों गेहूँ, सोयाबीन आदि में रूची लेते हैं फलों के संरक्षण हेतु शीतगृहों का निर्माण हो लघु पैमाने पर फलों के रस निकालने/प्रसंस्करण इकाई ईसबगोल, भूसी निमार्ण इकाई, मसाला ग्राइडिगं इकाईयों की स्थापना हेतु पहल की आवश्यकता है ताकि स्थानीय कच्चे माल का उपयोग हो सके। पुष्पोत्पादन की पर्याप्त संभावनाऐ हैं किन्तु पुष्प निर्यात हेतु कोई अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा पास में न होने से निर्यातोन्मुखी इकाईयॉ लगाने में कठिनाई है।
9. पशुपालन को व्यावसायिक दृष्टि से संचालित करें।
10. गांवों में बायों गैस प्लांट लगाये ताकी वृक्षों की कटाई कम हो सके।

संदर्भ :-

1. वार्षिक साख योजना लीडबैंक नीमच सत्र 2009,2010,2011।
2. विक्रमविश्व वियालय का शोधप्रबन्ध :- रतलाम जिले के कृषि एवं ग्रामिण विकास में बैंकिग संस्थाओं में योगदान सन् 2004
3. दैनिक भास्कर रतलाम संस्करण ।

****

विनियोग के क्षेत्र में म्यूचुअल फंड का अध्ययन

डॉ. सचिन शर्मा * सतीश जायसवाल **

प्रस्तावना :– वर्तमान समय में निवेशकों के लिए निवेश के अलग - अलग तरीके उपलब्ध हैं। उनमें से म्यूचुयल फण्ड भी एक है। जो निवेशकों को निवेश करने के बेहतर से बेहतर अवसर प्रदान करता है। निवेश करने के लिए इच्छुक व्यक्तियों की अल्प बचतों को एकत्रित कर, तकनीकीपूर्ण ढ़ंग से विनियोजित करता है , जिससे निवेशकर्ता को उसके छोटे से निवेश पर सुरक्षा के साथ उचित लाभ प्राप्त हो। इस प्रकार से कार्य करते हुए म्यूचुअल फंड विकासशील देशों के विकास के लिए सुखद मार्ग प्रशस्त करते हैं। भारत में म्यूचुअल फंड पर विचार 1963 में किया गया था, जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय यूनिट ट्रस्ट के रूप में पहले म्यूचुअल फंड की स्थापना की गई। जिसकी शुरूआत 1964 में की गई। भारत सरकार द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको और नवीन संस्थाओं को भी शुरूआत करने के लिए सन् 1990 में म्यूचुअल फंड की अनुमति दी गई। जिससे विकासशील देशो में बचतों में बहुत अधिक वृद्धि हुई। म्यूचुअल फंड संबंधी विनिमय 1993 में भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (सेबी) द्वारा जारी गये।

फंड का प्रबंध करने वाली संस्था को सेवी द्वारा जारी किये गये नियमों का पालन करना अतिआवश्यक होता है। इसलिए इकाईयों को जारी करने से लेकर उनका आवंटन करने तक हर कार्य नियमानुसार ही होता है। अंशो के विनिमय के द्वारा धन एकत्र करने का तरीका सरल व तकनीकीपूर्ण था किन्तु इसमें वही व्यक्ति विनियोग कर सकता था, जिसके पास अधिक धन हो, इसमें विनियोग करने में विनियोक्ता को विनियोग सम्बन्धी तकनीकी का ज्ञान होना एक अनिवार्य शर्त है। ऐसे में म्यूचुअल फण्ड ने छोटे-छोटे निवेशकों को बचत करने के लिए प्रेरित किया है। आज म्यूचुअल फंड का बाजार विस्तृत है, ऐसी स्थिति में विनियोक्ताओं को संतुष्टि व सुरक्षा दोनों उपलब्ध करवाना भी इन संस्थाओं के लिए उनकी ख्याति का प्रष्न है। जिसका सकारात्मक परिणाम यह है, कि विनियोक्ता, को अधिक लाभ प्राप्त होता है।

म्यूचुअल फंड से क्या तात्पर्य है ?:– म्यूचुअल फंड का पूर्ण अर्थ पारस्परिक कोष है, जोकि निवेशकों को यूनिट्स जारी करके संसाधन एकत्रित करने कि विधि है। जिसके द्वारा निवेशकों ने निर्धारित किये गये उद्देश्यों के अनुसार कोषों का निवेश प्रतिभूतियों के नियमानुसार पोर्टफोलियों में किया जाता है। इसके अंतर्गत मुद्रा बाजार के उपकरणों जैसे वाणिज्यिक प्रपत्र, विनिमय बिल, परिवर्तनीय बॉण्ड्स, सरकारी प्रतिभूतियाँ आदि शामिल किया जा सकता है। म्यूचुअल फंड में छोटी-छोटी बचतों के निवेश के प्रबंधन हेतु वित्तीय क्षेत्र के विशिष्ट अनुभवी व्यक्तियों को ही नियुक्ति किया जाता है, जो लोगों के द्वारा निवेश किये गये धन की सुरक्षा प्रदान करते हुए स्थिर लाभ देना इनका मुख्य कार्य है।

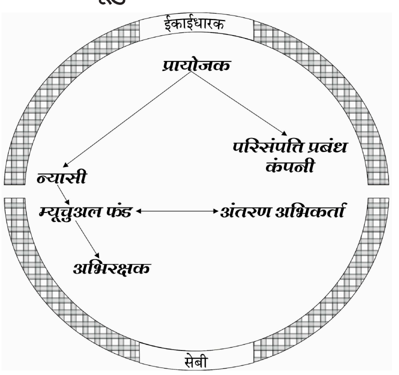

स्त्रोत –बैकिंग चिंतन–अनुचिंतन (व्यवसायिक जर्नल), 2009 अंक 2 से

अध्ययन के उद्देश्य :– प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य विनियोग के क्षेत्र में म्यूचुअल फण्ड के योगदान का अध्ययन करना है। इसके मुख्य उद्देश्य की पूर्ति करने हेतु कुछ सहायक उद्वेष्य निम्न हैं :-

1. म्यूचुअल फण्ड के क्षेत्र में विनियोक्ता की संतुष्टि का अध्ययन करना।
2. विभिन्न प्रकार के विनियोग के माध्यमों का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पना :– प्रस्तुत शोध पत्र निम्नलिखित परिकल्पनाओं पर अधारित हैं।

1. म्यूचुअल फण्ड के विकास के माध्यम से विनियोग गतिशील है।
2. म्यूचुअल फण्ड की नीतियां एंव भूमिका प्रभावशाली है।

अध्ययन की विधि :– प्रस्तुत शोध पत्र में सूचना के लिये द्वितीय संमको पर आधारित है। शोधपत्र में द्वितीयक संमको के रूप में विभिन्न प्रकाशित शोध जर्नल्स के लेख, वित्तीय बाजार और भारतीय अर्थव्यवस्था की विभिन्न पाठयपुस्तकों का प्रयोग, विभिन्न प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं के लेख, सारणी, तथा मानचित्र एवं वेबसाईट्स का उपयोग किया गया है।

म्यूचुअल फंड के प्रकार :– एक ही प्रकार के विधियों के होने पर सभी तरह के निवेशकों को संतुष्ट नहीं कर सकते है इसलिए अनेक प्रकार की विधियां निवेशकों का उपलब्ध है। यह निवेशकों के विवेक पर निर्भर है कि अपने जोखिम संभालने की स्थिति के अनुसार उसमे से किसी एक को चुने। म्यूचुअल फंड को निम्न भागों मे विभाजित किया जा सकता है -

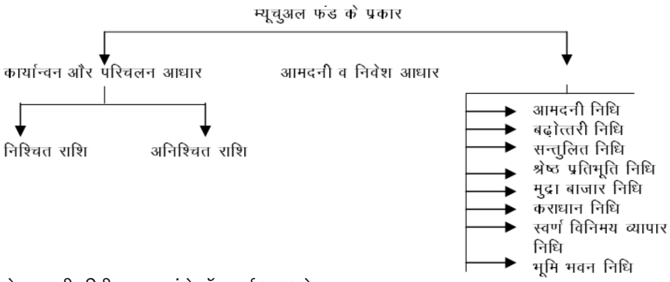

स्त्रोत –भारतीय वित्तीय बाजार एवं सेवाएँ, मुम्बई 2008 से

निवल परिसंपत्ति मूल्यः–म्यूचुअल फंड के तहत आने वाली प्रतिभूतियों का बाजार मूल्य है। एनएवी की गणना कारोबारी दिन के अंत में की जाती है। एनएवी मूल्य की गणना करने के लिए आस्तियों के कुल बाजार मूल्य को इसमें से सभी देयताओं को घटाने के बाद शेष इकाईयों की संख्या से विभाजित कर ज्ञात किया जाता है :-

$$\text{निवल परिसंपत्ति मूल्यः–} \quad \frac{\text{आस्तियों का बाजार मूल्य-देयताएँ}}{\text{शेष इकाईयाँ का मूल्य}}$$

म्यूचुअल फंड मे निवेश से मिलने वाला रिटर्नः– म्यूचुअल फंड में निवेश से निम्नानुसार रिटर्न प्राप्त किये जा सकते है :-

1. म्यूचुअल फंड में निवेशक यूनिट्स को उनके द्वारा खरीदे गए मूल्य से अधिक पर बेचकर लाभ प्राप्त कर सकते है।
2. निवेशक इकाईयों से लाभांश भी प्राप्त कर सकते है।

* प्राचार्य ** शोधार्थी (वाणिज्य) संस्कार कॉलेज, धार रोड़, इन्दौर (म.प्र.) भारत

म्यूचुअल फंड योजना के पोर्टफोलियों की जानकारी :–पोर्टफोलियों की जानकारी तीन माह, छः माह और एक वर्श के आधार पर गणना करके दी जाती है जिसमें प्रतिभूतिवार निवेश ए णपत्र, इक्विटी, मुद्रा बाजार की लिखतों में निवेश परिसंपत्ति मूल्यों में उनका प्रतिशत आदि की जानकारी दी जाती है। समय-समय पर समाचार पत्र, त्रैमासिक न्यूजलेटर आदि के माध्यम से भी अपने पोर्टफोलियों की सूचना इकाईधारकों तक पहुँचाते है।

म्यूचुअल फंड योजना से सम्बन्धित प्रश्न के समाधान, शिकायत या गलती की स्थिति में संपर्क किया जा सकता है। निवेशक अपनी शिकायतों के समाधान के लिए सेबी में भी जा सकते है।

म्यूचुअल फंडो द्वारा संसाधन संग्रहण (निवल) के रूझान

(रू. करोड़)

	क्षेत्र	2009-10	2010-11	2011-12	2012+13 #
1	भारतीय यूनिट ट्रस्ट	15653	-16636	-3184	10617
2	सरकारी	12499	-13555	-3394	8746
3	निजी	54928	-19215	-22024	100906
	जोड़ (1+2+3)	83080	-49406	-28602	120269

स्त्रौत :- सेबी × टिप्पणी 31 दिसम्बर 2012 की स्थिति के अनुसार

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि दो वर्ष के मोचन दबावों के पश्चात 2012-13 में म्यूचुअल फंडो द्वारा बाजार से 120269 करोड़ रूपए जुटाए गए (सारणी) प्रंबधनाधीन आस्तियों का बाजार मूल्य 31 मार्च 2012 की स्थिति के अनुसार 5,87,217 करोड़ रूपए की तुलना में 31 दिसम्बर 2012 की स्थिति के अनुसार 759995 करोड़ रूपये था जो 29.4 प्रतिशत वृद्धि करता है।

सारांश/निश्कर्ष :– उपर्युक्त विषय पर चर्चा के उपरान्त यह निश्कर्ष निकलता है कि वर्तमान में मध्यमवर्गीय निवेशकों द्वारा इस विकल्प का प्रयोग विनियोग के लिए कर रहे है। यह विकल्प अल्प बचतों को निवेश का अवसर प्रदान करता है। निम्न आय वर्ग के लोगों के निवेश के लिए यह बेहतर विकल्प साबित होगा।

वर्तमान में कई निजी कम्पनियों के म्यूचुअल फंड्स कार्यरत है। म्यूचुअल फंड्स, विनियोग को गतिशील बनाने का कार्य तो कर रहा है, किन्तु इसकी गति धीमी है। आशा है, आने वाले समय में इसकी योजनाओं के समुचित प्रचार प्रसार कर वर्ग विशेष तक पहुँचा कर विनियोग को अधिक प्रभावी रूप से गतिशील बनाने के प्रयास होगें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, ओम प्रकाश, ई.गोर्डन, के. नटराजन, (2008) ''भारतीय वित्तीय बाजार एवं सेवाएँ'' हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई, पेज न. 240-256।
2. भोले, एल.एम. ''फाईनेंशियल इंस्ट्रियूशंस एण्ड मार्केट्स'', (2007) टाटा मैक्ग्रा हिल्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पेज नं. 12.1-12.43।
3. दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम के.पी.एम. ''भारतीय अर्थव्यवस्था'', (2009), एस.चन्द एण्ड कम्पनी प्रा.लि., नई दिल्ली, पेज नं. 153-160।
4. गुप्ता, डॉ. रमाकांत, ''बैकिंग चिंतन-अनुचितंन (व्यवसायिक जर्नल), (2009), प्रकाशित मयूर ट्रेडिंग कॉरपोरेशन, मुम्बई, पेज नं. 29-33, वर्ष 21 अंक - 2
5. गुप्ता, डॉ. रमाकांत, ''बैकिंग चिंतन-अनुचितंन (व्यवसायिक जर्नल), (2012), प्रकाशित मयूर ट्रेडिंग कॉरपोरेशन, मुम्बई, पेज नं. 24-32, वर्ष 24 अंक - 2
6. मिश्र, एस.के.एवं वी.के. पुरी ''भारतीय अर्थव्यवस्था'', (2008), हिमालय पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई, पेज नं. 143-154।
7. मचिराजू, एस.आर, इण्डियन फाईनेशियल सिस्टम'', (2010), विकास भवन पब्लिकेशन, नई-दिल्ली, पेज नं. 202-227।
8. मैयर कॉन, ''फाईनेशियल इंस्टिट्यूशंस एण्ड मार्केट्स'', (2007), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई-दिल्ली, पेज नं. 289-300।

समाचार पत्र :- नई दुनिया, दैनिक भास्कर, इकॉनामिक टाईम्स

वेबसाईट – www.indiabudget.nicin
www.sebi.gov.in/me
www.yojana.gov.in

विभिन्न प्रकार की म्यूचुअल फण्ड योजनाएं :–

म्यूचुअल फण्ड में कई तरह की योजनाएं संचालित होती हैं, जिसका वर्गीकरण निम्नानुसार हैं।

फंड का वर्गीकरण

स्वामित्व के आधार पर	**क्रिया योजना के आधार पर**	**उद्देश्य के आधार पर**	**जोखिम के आधार पर**	**स्थान के आधार पर**	**स्थान के आधार पर**
1. सार्वजनिक क्षेत्र 2. निजी क्षेत्र	1. खुले छोर की योजनाए, बन्द छोर की योजनाएं 2. मध्यान्तर योजनाएं 3. भारित व अभारित योजनाएं	1. आयफंड योजना 2. वृद्धि फंड 3. सन्तुलित फंड 4. समता फंड 5. बाण्ड फंड 6. विशेषीकृत फंड 7. हायब्रिड फंड	1. ऋण फंड 2. गिल्ट फंड (सोना चढ़ा हुआ) 3. मनी मार्केट फंड	1. देशी फंड 2. विदेशी फंड	1. कमोडिटी फंड 2. रियलइस्टेट फंड

****

राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा प्रदत्ता कृषि ऋणों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन (मंदसौर जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. अनुभा गुप्ता बड़ेरा *

प्रस्तावना – मंदसौर जिला कृषि प्रधान जिला है। यहाँ पर कृषि वित्त के क्षेत्र में व्यवसाय की अपार सम्भावनाएँ हैं। अधिकांश भूमि खेती योग्य एवं उपजाऊ होने तथा जलवायु एवं मौसम के प्राय: अनुकूल रहने के कारण कृषक रबी एवं खरीफ दोनों फसलों के माध्यम से उपज प्राप्त करते हैं। यही कारण है कि वर्ष पर्यन्त उनकी वित्तीय आवश्यकताऐं बनी ही रहती हैं।

जिले के तमाम कृषकों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति किसी एक स्रोत से नहीं की जा सकती है। कृषक भी अपनी सुविधानुसार उपलब्ध विकल्पों में से किसी उचित विकल्प का चुनाव करता है। मंदसौर जिले के कृषि विकास के लिये पोषण में राष्ट्रीयकृत बैंकें अग्रणी भूमिका निभा रही हैं। जिले के कृषकों का एक बड़ा भाग राष्ट्रीयकृत बैंकों से कृषि विकास एवं कृषि कार्यों के लिये ऋण लेता है।

उद्देश्य :–

1- मंदसौर जिले में राष्ट्रीयकृत बैंकों की स्थिति का अध्ययन करना।

2- मंदसौर जिले में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा प्रदत्त कृषि ऋण वितरण की स्थिति का मूल्यांकन करना।

परिकल्पना:– बैंक द्वारा फसल ऋण योजना में अधिक ऋण वितरण किया गया है।

शोध उपकरण :– शोध पत्र द्वितीयक समंकों पर आधारित है जिनके लिये वर्ष 2004-05 से 2009-10 तक, 6 वर्षो के समंकों को संकलित कर तालिका द्वारा प्रस्तुत एवं विश्लेषित किया गया है।

तालिका क्रमांक 1.0

मंदसौर जिले में राष्ट्रीयकृत बैंकों की शाखावार स्थिति्

क्रमांक	बैंक का नाम	शाखाएं
1	सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया	11
2	भारतीय स्टेट बैंक	16
3	यूको बैंक	3
4	पंजाब नेशनल बैंक	3
5	ओरिएण्टल बैंक ऑफ कामर्स	1
6	यूनियन बैंक	1
7	बैंक ऑफ बड़ौदा	1
8	देना बैंक	1
9	बैंक ऑफ इण्डिया	1
10	सिन्डीकेट बैंक	1
11	इलाहाबाद बैंक	1
12	कार्पोरेशन बैंक	1
13	इंडियन बैंक	1
	योग :–	**42**

मंदसौर जिले में राष्ट्रीयकृत बैंकों की स्थिति :– मंदसौर जिले के कृषि विकास में राष्ट्रीयकृत बैंक का अमूल्य योगदान रहा है। वर्तमान में मंदसौर जिले में 13 राष्ट्रीयकृत बैंकें कार्यरत हैं। मंदसौर जिले की राष्ट्रीयकृत बैंक एवं उनकी शाखाओं की स्थिति तालिका क्रमांक 1.0 में दर्शायी गई है –

मन्दसौर जिले में वाणिज्यिक बैंकों में भारतीय स्टेट बैंक, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, देना बैंक, ओरियंटल बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, यूनियन बैंक, यूको बैंक तथा बैंक ऑफ बड़ौदा प्रमुख हैं। इन बैंकों द्वारा इनकी स्थापना के समय से ही कृषिगत कार्यो के लिये विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत ऋण स्वीकृत किये गये हैं।

राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा प्रदत्त कृषि वित्त पोषण हेतु योजनाएँ – राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कृषि वित्त के लिए विभिन्न ऋण योजनाएँ लागू की गई हैं। आमतौर पर सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों की ऋण योजनाएँ एवं प्रावधान समान होते हैं।

ऋणों को मूल रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है –

1. अल्पावधि ऋण
2. मध्यावधि/दीर्घावधि ऋण

अल्पावधि ऋण –वे सभी ऋण जिनका पुनर्भुगतान समय 36 माह से कम है, अल्पावधि ऋण कहलाते हैं। फसली ऋण का पुनर्भुगतान समय अधिकतम 18 माह है। निम्न ऋण अल्पावधि ऋण हैं -

फसली ऋण

1- किसान क्रेडिट कार्ड

2- उत्पाद विपणन ऋण

3- पशु पालन गतिविधि हेतु कार्यशील पूंजी

4- डेयरी क्रेडिट

5- आढ़तिया प्लस

मध्यावधि/दीर्घावधि ऋण –वे सभी ऋण जिनका पुनर्भुगतान का समय 36 माह या अधिक है, मध्यावधि/दीर्घावधि ऋण कहलाते हैं।

निम्न सभी प्रकार के ऋण मियादी ऋण हैं जैसे –

1- कृषि उपकरण, मशीन, ट्रैक्टर, बैल, गाड़ी खरीदना।

2- सिंचाई के साधन हेतु ऋण देना।

3- भूमि को विकसित करके कृषि योग्य बनाना हेतु ऋण देना।

4- पशु पालन, भेड़/बकरी, मत्स्य पालन, सूअर पालन, डेयरी, फल वृक्ष एवं हेतु ऋण देना।

5- बायो गैस प्लान्ट, कृषि :लीनिक लगाने हेतु ऋण देना।

सभी कृषि ऋणों को और दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है –

1- प्रत्यक्ष कृषि ऋण

2- अप्रत्यक्ष कृषि ऋण

जो ऋण सीधे किसान को मिलते हैं, प्रत्यक्ष कृषि ऋण कहलाते हैं। उदाहरणार्थ फसली ऋण, ट्रेक्टर ऋण, भैंस पालन, बैल खरीदने आदि हेतु ऋण। जो ऋण सीधे किसान को न मिलकर किसी अन्य व्यक्ति/संस्था को मिलते है और अंत में उस व्यक्ति/संस्था से किसान को ही फायदा होता है, ऐसे ऋण अप्रत्यक्ष कृषि ऋण कहलाते हैं। जैसे खाद विक्रेता,ट्रेक्टर/पम्पसेट

* अतिथि विद्वान, शासकीय माधव विज्ञान महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

विक्रेता को, सहकारी समिति को, राज्य विद्युत मण्डल आदि को ऋण देना। राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा प्रदत्त कुछ प्रमुख ऋण योजनाओं का विस्तृत विवेचन किया गया है :-

फसल ऋण – यह ऋण सभी किसानों को उनकी कृषि उपज में वृद्धि के उद्देश्य से आवश्यक वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये प्रदान किये जाते हैं। इस ऋण का उद्देश्य प्रति एकड़ उत्पादकता एवं कुल उत्पादन में वृद्धि करना है। मुख्यत: ये ऋण अधिक उत्पादन देने वाले बीजों को क्रय करने, आवश्यक मात्रा में खाद एवं कीटाणुनाशक दवाइयाँ क्रय करने एवं मजदूरी का भुगतान करने के लिये प्रदान किए जाते हैं।

विभिन्न फसलों की कुल लागत का एक अनुमान लगाने के पश्चात् कुल लागत के 75 प्रतिशत तक की वित्त की पूर्ति राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा की जाती है। इस योजना के अन्तर्गत बीज, दवाई तथा उर्वरक के लिए स्वीकृत ऋण प्रत्यक्ष रूप से कृषक को न देकर विक्रेता को इस शर्त के साथ दिया जाता है कि बैंक द्वारा भुगतान के तुरन्त पश्चात् वह कृषक को आवश्यक सामग्री की पूर्ति कर देगा।

सावधि ऋण योजना – कृषि को एक लाभप्रद व्यवसाय में परिवर्तित करने के लिये आधुनिक यंत्रों का पर्याप्त प्रयोग उत्पादन में करने की दृष्टि से ट्रेक्टर, थ्रेशर व अन्य उपकरण क्रय करने के लिये बैंकों द्वारा ऋण स्वीकृत किया जाता है। इसी प्रकार कृषि भूमि को समतल करने के यंत्र, कटाई मशीन, गहराई करने की मशीन, पैराई करने की मशीन आदि क्रय करने के लिये राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सावधि ऋण स्वीकृत किया जाता है।

फसल पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण हेतु खेत में ही मकान बनाने हेतु बैंकों द्वारा ऋण प्रदान किया जाता है। कृषक ऋण के लिये योजना व्यय का अनुमानित विवरण प्रस्तुत करता है। बैंक इस प्रकार के ऋण में कुल व्यय का 50 प्रतिशत तक राशि ऋण के रूप में स्वीकृत करता है। शेष 50 प्रतिशत राशि कृषक अपने स्वयं के साधनों से जुटाता है। ये ऋण अधिक से अधिक तीन वर्ष से लेकर सात वर्ष की अवधि के लिये प्रदान किये जाते हैं।

मंदसौर जिले में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कृषि ऋण वितरण की स्थिति – मंदसौर जिले में राष्ट्रीयकृत बैंकें अपनी विभिन्न शाखाओं के माध्यम से कृषकों को वित्त उपलब्ध करा रही है। विगत 6 वर्षों में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा फसल ऋण एवं कृषि सावधि ऋणों की स्थिति को तालिका क्रमांक 1.1 में दर्शाया गया है। **(देखिए तालिका क्रमांक 1.1)**

तालिका क्रमांक 1.1 से स्पष्ट है कि मंदसौर जिले में वर्ष 2004-05 में उपलब्धि का प्रतिशत 275.82% 6 वर्षों में सर्वाधिक रहा। वर्ष 2004-05, 2005-06, 2006-07, 2007-08, 2008-09, 2009-10 में लक्ष्य क्रमश: 10333, 37052, 54364, 8313, 99757, 117316 लाख रूपये थे। लक्ष्यों में निरंतर वृद्धि की प्रवृत्ति रही। वर्ष 2004-05,2005-06, 2006-07, 2007-08, 2008-09 व 2009-10 की उपलब्धि फसल ऋणों में क्रमश: 28502, 36570, 48559, 7709, 104859, 130435 लाख रूपये रही। उपलब्धि में 6 वर्षों में वृद्धि की प्रवृत्ति रही। वर्ष 2006-07 में उपलब्धि का प्रतिशत 6 वर्षों में सबसे न्यूनतम 89.32% रहा। राष्ट्रीयकृत बैंक द्वारा कृषि सावधि ऋण में उपलब्धि का प्रतिशत सर्वाधिक वर्ष 2004-05 में 127.23% रहा।

वर्ष 2004-05, 2005-06, 2006-07, 2007-08, 2008-09, 2009-10 में लक्ष्य क्रमश: 16799, 27768, 22700, 3386, 33760, 36023 लाख रूपये रही। स्पष्ट है कि 6 वर्षों में लक्ष्यों में कमी एवं वृद्धि की प्रवृत्ति रही। वर्ष 2005-06 में उपलब्धि 26170 लाख रूपये, वर्ष 2006-07 में यह घटकर 25414 लाख रूपये हो गई। वर्ष 2007-08 में उपलब्धि बढ़कर 26741 लाख रूपये हो गई। 2008-09 व 2009-10 में उपलब्धि क्रमश: 20748, 27885 लाख रूपये हो गई। 6 वर्षों में उपलब्धि में कमी एवं वृद्धि की प्रवृत्ति रही।

राष्ट्रीयकृत बैंक के कृषि सावधि ऋण के उपलब्धि का प्रतिशत वर्ष 2005-06 में 94.18%, 2006-07 में 111.96% रहा। वर्ष 2007-08, 2008-09 व 2009-10 में क्रमश: 78.97, 61.45, 77.41% रहा। वर्ष 2008-09 में उपलब्धि का प्रतिशत 6 वर्षों में न्यूनतम रहा। वर्ष 2007-08 व 2009-10 में उपलब्धि का प्रतिशत 78.91% व 77.41% रहा जो लगभग बराबर ही रहा। उपलब्धि के प्रतिशत में कमी एवं वृद्धि की प्रवृत्ति रही। राष्ट्रीयकृत बैंक द्वारा कुल कृषि ऋणों के लक्ष्य 27133 लाख रूपये वर्ष 2004-05 में थे जो वर्ष 2005-06, 2006-07, 2007-08, 2008-09, 2009-10 में बढ़कर क्रमश: 64839 77064, 11699, 133518, 15339 लाख रूपये हो गए।

स्पष्ट है कि 6 वर्षों में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कुल कृषि ऋणों में निरंतर वृद्धि की प्रवृत्ति रही। वर्ष 2004-05 में उपलब्धि 49876 लाख रूपये रही। वर्ष 2005-06 में बढ़कर 62741 लाख रूपये हो गई। वर्ष 2006-07, 2007-08, 2008-09 व 2009-10 में क्रमश: उपलब्धि 73973, 10383 , 125607 , 158321 लाख रूपये हो गई। उपलब्धि में भी 6 वर्षों में निरंतर वृद्धि की प्रवृत्ति रही है। राष्ट्रीयकृत बैंकों का कुल कृषि ऋण में उपलब्धि का प्रतिशत वर्ष 2004-05, 2005-06, 2006-07, 2007-08, 2008-09, 2009-10 में क्रमश: 183.82%, 96.76%, 95.99%, 88.75%, 94%, 103.24% रहा।

वर्ष 2004-05 में उपलब्धि का प्रतिशत सर्वाधिक 183.82% रहा व सबसे न्यूनतम 88.75% वर्ष 2007-08 में रहा। वर्ष 2005-06, 2006-07 व 2008-09 का प्रतिशत लगभग बराबर रहा। वर्ष 2004-05 व 2009-10 में राष्ट्रीयकृत बैंकों के कुल कृषि ऋणों में लक्ष्यों की तुलना में उपलब्धि अधिक रही। वर्ष 2005-06, 2006-07, 2007-08 व 2008-09 में लक्ष्यों की तुलना में उपलब्धि कम रही। राष्ट्रीयकृत बैंकों के कुल कृषि ऋणों में फसल ऋण का प्रतिशत, कृषि सावधि ऋणों की तुलना में अधिक था।

परिकल्पना की जाँच एवं निष्कर्ष :– समंकों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जिले में फसल ऋण वितरण में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा अधिक ऋण वितरण किया गया है जिससे शोधार्थी की परिकल्पना सत्य हुई है। जिले के समुचित कृषि विकास के लिये राष्ट्रीयकृत बैंकों को सावधि ऋणों पर भी ध्यान देना होगा। राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सावधि ऋण वितरण में वृद्धि करने एवं कृषकों को सावधि ऋण लेने के लिये प्रोत्साहित करने हेतु प्रमुख सुझाव निम्नानुसार है :-

- बैंकों द्वारा केन्द्रीय कृषि यंत्रीकरण संस्थान, भोपाल द्वारा आधुनिक कृषि यंत्रों में से कम से कम दो यंत्र खरीदने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये जिससे ट्रेक्टरों का समुचित इस्तेमाल हो सकें।
- नाबार्ड द्वारा रतनजोत एवं बांस की मॉडल स्कीम बैंकों को दी गई है। बैंकों को इन मॉडल स्कीम का लाभ लेकर ऋण स्वीकृत करना चाहिए। वानिकी एवं बजंर भूमि विकास के लिये बैंकों द्वारा कार्यशाला आयोजित करना चाहिए।
- नाबार्ड द्वारा ग्रामीण भण्डारण, शीत गृह निर्माण, रेग्युलेटेड मार्केट आदि की मॉडल स्कीम सभी बैंकों को उपलब्ध कराई गई हैं। इस हेतु बैंकों को तकनीकी स्टाफ की नियुक्ति करनी चाहिए ताकि कृषकों में गोदाम,

मार्केट यार्ड एवं शीत भण्डारण के लिये वित्त पोषण के प्रति रूझान पैदा हो सके।

- इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकृत बैंकों को कृषि पंजीकरण, बागान एवं बागवानी, डेयरी, मुर्गीपालन, मत्स्य पालन, भण्डार गोदाम, विपणन केन्द्र, भूमि विकास, लघु सिंचाई आदि अन्य योजनाओं के अंतर्गत वित्ता पोषण बढ़ाने के लिये सुदुढ़ प्रचार-प्रसार और प्रशिक्षण प्रणाली को अपनाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. प्रो. के.एन. सुबह्मण्या Modern Banking in India दीप एण्ड दीप प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992
2. प्रो. डी.एन. घोष Banking Policy in India एलाइट पब्लिशर्स, नईदिल्ली, 1994
3. डॉ. गजेन्द्र पारख ''ए स्टडी ऑफ लीड बैंक स्कीम विद् स्पेशल रिफरेन्स टू उज्जैन डिस्ट्रिक्ट'', 1981
4. विमला जैन ''रूरल क्रेडिट पॉलिसी इन मंदसौर डिस्ट्रिक्ट'', 1980 वार्षिक
5. साख योजना, अग्रणी बैंक कार्यालय, मंदसौर 2004-05 से 2009-10 तक
6. बैंकिंग प्रश्नोत्तरी, भारतीय स्टेट बैंक, स्टेट बैंक ज्ञानार्जन केन्द्र, आगरा
7. सम्भाव्यतायुक्त ऋण योजना 2009-10, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास
8. केन्द्र मध्यप्रदेश क्षेत्रीय कार्यालय, भोपाल

आलेख क्रमांक-1

तालिका क्रमांक 1.1)

मंदसौर जिले में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कृषि ऋण वितरण की स्थिति

वर्ष	फसल ऋण			कृषि सावधि ऋण			कुल कृषि ऋण		
	लक्ष्य	उपलब्धि		लक्ष्य	उपलब्धि		लक्ष्य	उपलब्धि	
	राशि	राशि	प्रतिशत	राशि	राशि	प्रतिशत	राशि	राशि	प्रतिशत
2004—05	10333	28502	275.82	16799	21374	127.23	27133	49876	183.82
2005—08	37052	36570	98.70	27786	26170	94.18	64839	62741	96.76
2006—07	54364	48559	89.32	22700	25414	111.96	77064	73973	95.99
2007—08	8313	7709	93	3386	2674	78.97	11699	10383	88.75
2008—09	99757	104859	105	33760	20748	61.45	133518	125607	94.00
2009—10	117316	130435	111.18	36023	27885	77.41	15339	158321	103.24

मंदसौर जिले में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा कृषि ऋण वितरण की स्थिति (राशि लाख में)

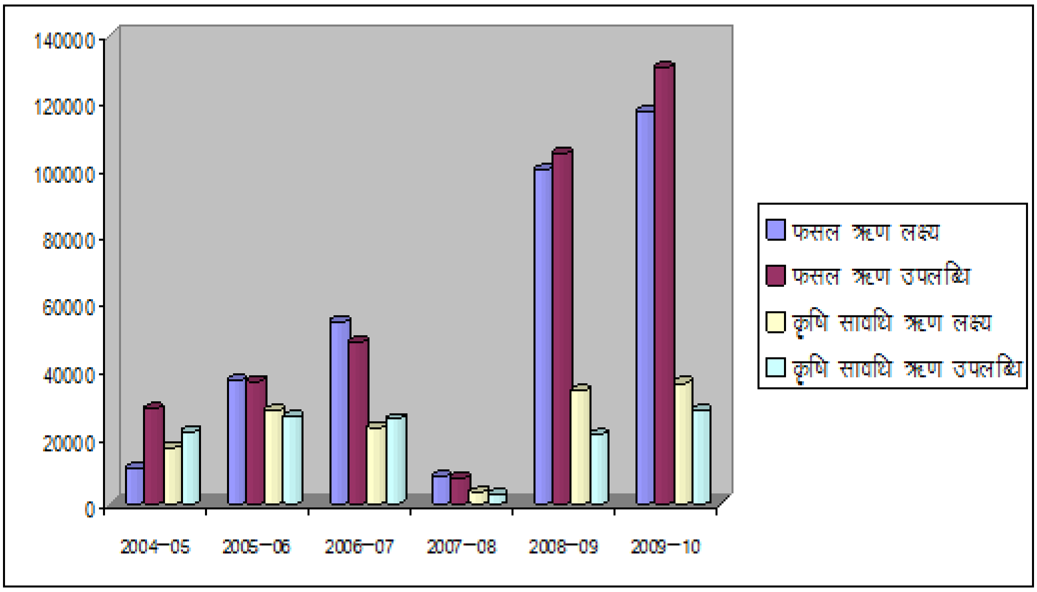

अनुसूचित जाति की महिलाओं में उद्यमिता विकास

डॉ. मीना मटकर *

देश की सरकार अधिकतम सामाजिक कल्याण का उद्देश्य पूरा करने का प्रयास करती है इसी लक्ष्य के साथ समय समय पर लोक कल्याणकारी योजनाएं भी निर्मित करती है। वर्तमान में देश में लगभग 21% लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। देश की जनसंख्या का एक चौथाई हिस्सा अनुसूचित जाति एवं अनु. जनजाति का है।

ऐसी स्थिति में सरकार का इन पर ध्यान देना आवश्यक है। वैसे भी स्वतंत्रता के बाद अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, असमर्थ एवं अशक्त जनों के विकास एवं उनमें सामाजिक समानता लाने हेतु भारतीय संविधान में भी प्रतिबद्धता प्रतिस्थापित है। वंचितों एवं पिछड़ो को सामाजिक न्याय उपलब्ध करवा कर उन्हें विकास हेतु प्रेरित किया जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शासकीय एवं अशासकीय स्तरों पर विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी एवं विकास परक नीयितों का निर्माण किया जाता है और ऐसे ही कार्यक्रमों का संचालन किया जाता हैं। इन नीतियों का मूल उद्देश्य :-
(i) शिक्षा के विकास एवं प्रसार द्धारा समाज का सशक्तिकरण करना
(ii) गरीबी निवारण एवं रोजागार सृजन द्धारा आर्थिक सशक्तिकरण लाना एवं
(iii) अलाभान्वित समूहों को दमन, अत्याचार एवं शोषण से मुक्त करने हेतु निर्मित नियम एवं कानूनों का प्रभावकारी तरीके से क्रियान्वयन करना एवं उन्हें उनके अधिकारों के प्रति शिक्षित बनाना है। आबादी का आधा हिस्सा महिलाओं का है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक चौथाई जनसंख्या जो अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति से निर्मित है उनका आधा हिस्सा महिलाएं हैं। महिलाओं का तो समाज में प्राचीन काल से ही शोषण होता रहा है। यह तय है कि यदि देश का सर्वांगीण विकास करना है तो महिलाओं को निर्बल से सशक्त बनाना ही होगा।

इसी कारण सरकार द्धारा निर्मित योजनाओं का लाभ अनुसूचित जाति की महिलाएं जो गरीबी रेखा के नीचे हैं, उठा रहीं हैं। इन महिलओं के सशक्तिकरण की क्रिया तभी पूर्ण होगी जब ये शिक्षित होंगी (वैसे भी शिक्षा सशक्तिकरण का एक प्रभावशाली उपकरण है।) तथा आर्थिक रूप से स्वनिर्भर होंगी। अर्थात रोजगार प्राप्त करके आय निर्मित करने में समाज का योगदान करेंगी। शिक्षा एवं रोजगार सृजन हेतु सरकार द्धारा कई योजनाएं बनाई गई है लेकिन यहाँ पर सरकार द्धारा प्रस्तावित चुनिंदा शासकीय योजनाओं का उल्लेख करना उचित होगा।

शासन की कई महत्वपूर्ण योजनाएं ऐसी है जो आधारित शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक की अपेक्षाओं को पूरा करती है। विशेषकर अनुसूचित जाति की छात्राओं के लिये तो पूर्णत: निशुल्क शिक्षा उपलब्ध करवाती है और शिक्षा प्राप्त करना सुविधा जनक भी बनाती है। रोजगार प्राप्त करने के लिये आवश्यक कौशल निर्मित करने में भी सहायता प्रदान करती है। शासन द्धारा अलाभान्वितों के आर्थिक सशक्तिकरण हेतु रोजगार एवं आय निर्माण के कई कार्यक्रम चलाए जा रहे है। अनु. जाति के लिये बनाये गये SCA (स्पेशल सेन्ट्रल असिस्टेंस) को विस्तृत करके 100% अनुदान तक कर दिया गया है। यह केन्द्र सरकार से राज्य सरकार को दी जाने वाली सहायता है। यह योजना मूलत: गरीबी रेखा के नीचे वाले जन समुदाय के लिये है।

विशेष वित्तीय संगठन :- नेशनल फायनेंस एंड डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन की स्थापना निर्बल वर्ग के लिये की गई है जो उन्हें टर्म लोन, ब्रिज लोन, मार्जित मनी, माइक्रो क्रेडिट, रोजगार एवं आय निर्माण और कौशल उन्नयन हेतु सहायता करता है। ऐसे संगठनों में नेशनल शिड्यूलड कास्ट फायनेंस एंड डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन (NSEDC), नेशनल सफाई कर्मचारी फायनेंस एंड डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन (NSKEDC), नेशनल माइनॉरिटीज डेवलपमेंट एंड फायनेंस कॉर्पोरेशन (NMDEC), और नेशनल बैकवर्ड :लास फायनेंस एंड डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन (NBCEDC) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त राज्य स्तरीय वित्तीय संगठन है। ये संगठन बेरोजगार युवाओं को स्वयं सहायता समूह हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करते है तथा बहुत कम ब्याज दर पर स्वीकृत करते है। जो उनमें उद्यमिता विकास को प्रेरित करता है।

बुनियादी साक्षरता किसी व्यक्ति के लिये तब ही सार्थक हो सकती है, यदि वह उनका अपने दिन - प्रतिदिन के जीवन में उपयोग कर सके और केवल तब जब इससे उसे अपनी आजीविका कमाने में मदद मिले। प्रस्तुत शोध में शासकीय योजनाओं की भूमिका को पुष्ट करने की दृष्टि से मध्य प्रदेश के इंदौर जिले में स्थित जन शिक्षण संस्थान की विभिन्न गतिविधियों में से अनुसूचित जाति की महिलाओं पर केन्द्रित गतिविधि के उदाहरण को प्रस्तुत किया गया है। जन शिक्षण संस्थान, इन्दौर, व्यावसयिक - सह - सामान्य शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र है। इसकी स्थापना 16 मई 1960 को वर्कर्स इंस्टीट्यूट (श्रम प्रतिष्ठान) के रूप में हुई थी। वर्ष 1980में श्रमिक विद्यापीठ के रूप में और वर्ष 2000 में यह जन शिक्षण संस्थान के रूप में परिवर्तित हुआ। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार का स्कूल शिक्षा एवं साक्षरता विभाग संस्थान का प्रायोजक है। यह संस्थान सम्पूर्ण इन्दौर जिले में अपने कार्यक्रम और गतिविधियाँ संचालित करता है।

मुख्य रूप से यह संस्थान, सुविधा वंचितों के लिए अनौपचारिक, प्रौढ़ तथा सतत् शिक्षा कार्यक्रमों को संस्थागत स्वरूप में प्रस्तुत करता है। साक्षर भारत योजना के क्रियान्वयन में जन शिक्षण संस्थान की महत्वपूर्ण भागीदारी है। जन शिक्षण संस्थान को मुख्य रूप से असाक्षर, नवसाक्षर ओर ऐसे लोगों पर ध्यान केन्द्रित करना है, जिन्होने साक्षरता का प्रारम्भिक स्तर हासिल किया है, लेकिन वह नवसाक्षर नहीं हो सके। सम्पूर्ण कार्यक्रम के केन्द्र बिन्दु में मुख्य रूप से महिलाएँ शामिल की गई है।

जन शिक्षण संस्थान का मुख्य उद्देश्य प्रशिक्षार्थियों की व्यावसायिक दक्षताओं और तकनीकी जानकारी में सुधार करना तथा कार्य कुशलता बढ़ाना एवं उत्पादक योग्यता में वृद्धि करना है। अग्रलिखित सारणीयाँ संस्थान की गतिविधियों की जानकारी पर आधारित है।

सारणी - 1 लिंग एवं जाति आधारित प्रशिक्षार्थी संख्या

लिंग	जाति					
	SC	ST	OBC	Minorities	Others	Total
पुरुष	-	-	-	-	-	-
महिला	1552	770	271	163	66	2822
Total	1552	770	271	163	66	2822

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र), सुगनीदेवी कन्या महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत

सारणी – 2

हितग्राहियों का आयु वर्ग

लिंग	आयु वर्ग		
	15 – 35	Above – 35 years	Total
पुरूष	–	–	–
महिला	2777	45	2822
योग	2777	45	2822

सारणी – 3

हितग्राहियों का आय स्तर

Family Income (Economic Status)	Number
Below Poverty Line (BPL)	2672
Above (APL)	150
Total	2822

उक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि वर्ष 2012 – 13 में संस्थान से पुरूष प्रशिक्षार्थी की संख्या शून्य है। यह इस बात को इंगित करता है कि संस्थान मूलत: महिलाओं के लिये कार्य करता है। दूसरी बात यह परिलक्षित होती है कि कुल 2822 में से अनुसूचित जाति की 1552 महिलओं ने प्रशिक्षण प्राप्त किया अर्थात 50% से ज्यादा हितग्राही अनुसूचित जाति की महिलाएं थी। यह तथ्य सामाजिक चेतना को प्रदर्शित करता है। अर्थात अब समाज का यह वर्ग भी अपने आप को मुख्य धारा में सम्मिलित होने के लिये तैयार कर रहा है। सारणी 2 व 3 भी इसी बात की पुष्टि कर रही है कि 15 से 35 आयु वर्ग की महिलाएं ज्यादा उत्साहित है और गरीबी रेखा के नीचे के ज्यादा प्रशिक्षार्थी कार्यक्रम में सम्मिलित हो रहे है।

संस्थान से व्यावसायिक कौशल के विकास हेतु प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात प्रशिक्षु को कार्य का अभाव नही रहता है। कौशल से संबंधित रोजगार या तो उन्हें विभिन्न कंपनियों एवं फैक्टरियो में उपलब्ध हो जाता है या स्वरोजगार के रूप में विकसित कर लिया जाता है। कुछ महिलाएं स्व सहायता समूह का निर्माण कर लेती है जिसके माध्यम से वे अपनी जरूरतों को पूरा करने के साथ अपने व्यवसाय की आवश्यकताओं की भी पूर्ति कर लेती है। स्व सहायता समूह के माध्यम से इन्हें बहुत कम ब्याज पर मिल जाते है जिनकी वापसी की शर्तें भी लचीली होती हैं।

इन समूहों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री के लिये भी सरकार मदद करती है। बिक्री मेलों का आयोजन भी करती है। इस प्रकार यह पाया गया कि प्रशिक्षण प्राप्त करने वाली अनुसूचित जाति की गरीब महलाओं में से 90% से अधिक रोजगार से जुड़ गई है। इस कारण उन्हें आय प्राप्त होने लगी हैं। विभिन्न कंपनियों एवं व्यवसायों से जुड़ने के कारण वे आस पास की गतिविधियों से जुड़ने लगी हैं जिससे उनमें आत्मविष्वास उत्पन्न होने लगा है। यह आत्मविश्वास उन्हें कर्मशील रहने के लिये प्रेरित करता है। इसी के कारण वे स्वयं से जुड़े निर्णय स्वयं लेने लगी है। रोजगार प्राप्त करने के पश्चात महिलाओं की सहभागिता समाज में बढ़ने लगती है।

आर्थिक रूप से सशक्त होने से उनकी आधुनिक व उन्नत समाज के साथ पारस्परिक क्रियाओं के फलस्वरूप संपर्क बढ़ता है जिससे इन महिलाओं का भी बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास होता है। स्वास्थ संबंधी चेतना का विकास होने से उनमें रूढिवादिता एवं कुरीतियों की बदलने का साहस उत्पन्न होता है।

शिक्षा एवं रोजगार के कारण उत्पन्न हुई समर्थता से इनकी पारिवारिक स्थिति सुदृढ़ होती है जिससे आगामी पीढ़ी भी लाभान्वित होती है और विकास के नये सोपान खुलते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिये शासन जो योजनाएं उनमें उद्यमिता विकास प्रेरित करने हेतु निर्मित करता है उससे इन महिलाओं के सशक्तिकरण में मदद मिलती है।

सशक्तिकरण हेतु यह आवश्यक है कि –

1. अलाभान्वितों के लिये इस तरह का वातावरण निर्मित किया जाय जिसमें वे अपने अधिकारों का स्वतंत्रता पूर्वक उपयोग कर सकें एवं विशेषाधिकारों का उपभोग कर अपने जीवन में आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान भर सकें।
2. अलाभान्वितों के लिये असमानताओं एवं शोषण एवं दमन को दूर कर उन्हें सुरक्षा प्रदान की जाए।
3. इस बात की खात्री करना होगी कि न्यायासंगत वितरण के द्वारा विकास के लाभ वंचितों तक भी पहुँचे।
4. वंचितों को सरकारी योजनाओं से लाभ मिले, मात्र इतना पर्याप्त नहीं है। होना यह चाहिये कि जब आवश्यकता आधारित कार्यक्रम एवं परियोजनाएं निर्मित होती है तब उनमें समाज के इस वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
5. समाज के इस पिछड़े एवं शोषित वर्ग के लिये निर्मित जो योजनाएं इनके सामाजिक – आर्थिक उन्नयन के लिये बनी है और जो नीतियाँ निर्धारित की गई है, उनका असर कारक क्रियान्वयन हो सके ताकि अलाभान्वितों को समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित किया जा सके।

संदर्भ :

1. इन्टरनेट
2. जनशिक्षण संस्थान इंदौर

****

म.प्र. में महिला सशक्तिकरण से लिंगानुपात पर प्रभाव एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. प्रभावती भावसार *

जनांकिकीय अध्ययन का एक महत्वपूर्ण घटक लिंग संरचना है जिसे लिंग अनुपात भी कहा जाता है। किसी भी देश में लिंग संरचना को देख कर ही उस देश की सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति का एक निश्चित सीमा तक अनुमान लगाया जा सकता है। महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य यह है कि समाज के हर स्तर पर उसको स्वतंत्रता, समानता तथा आर्थिक सुरक्षा प्राप्त हो ताकि वो अपना सम्मानपूर्वक जीवन जी सके। महिलाएँ आर्थिक रूप में, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक रुप में शक्ति सम्पन्न हो।

भारतीय संसद ने महिलाओं की दशा सुधारने के लिए कुछ अधिनियमों को कानून के तौर पर लागू किया। सन् 1954 में विशेष विवाह अधिनियम, 1956 में हिन्दू उत्तराधिकारी नियम ,1961 प्रसुति सुविधा अधिनियम,1976 बाल विवाह निषेध अधिनियम, 1986 दहेज निषेध अधिनियम, 2005 मे बनाया गया घरेलू हिंसा अधिनियम है।

शासन द्वारा समय-समय पर महिलाओं की समृद्धि तथा विकास के लिए महत्वपूर्ण याजनाओ का निर्माण किया गया 1992 में किशोरी बालक योजना, 1992 की ही बाल व शिशु कार्यक्रम योजना, 1993 की महिला समृद्धि योजना, 1995 की इंदिरा गांधी योजना, 1996 की ग्रामीण महिला विकास योजना, 1997 की बालिका समृद्धि योजना जो माँ तथा बालिका को पौष्टिक आहार प्रदान करने की व्यवस्था करती है।

मध्यप्रदेश में महिला सशक्तिकरण के लिए सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाएँ निम्न है–

1. लाड़ली लक्ष्मी योजना– प्रदेश में बालिकाओं के शैक्षणिक तथा स्वास्थय की स्थिति में सुधार लाने, अच्छे भविष्य की आधारशिला रखने, बालिका भ्रूण हत्या रोकने और बालिकाओं के जन्म के प्रति जनता में सकारात्मक सोच लाने एवं बाल विवाह रोकने के उद्देश्य से लाड़ली लक्ष्मी योजना आरम्भ की गई है। योजना 1 जनवरी 2006 के बाद जन्मी बालिकाओं के लिए हैं।

- हितग्राही के नाम पर लगातार 5 वर्षो तक 6000रु के राष्ट्रीय बचत पत्र क्रय किऐ जाएंगे।
- बालिका के कक्षा 6 वीं मे प्रवेश लेने पर 2000 रु, कक्षा 9वीं में प्रवेश लेने पर 4000 रु.,11 वीं मे प्रवेश लेने पर 7500 रु का एक मुश्त भुगतान किया जाएगा।
- कक्षा 11 वीं में प्रवेश लेने के पश्चात् आगामी 2 वर्ष तक 200 रु. प्रतिमाह का भुगतान बालिका को किया जाएगा।
- बालिका की आयु 21 वर्ष होने पर तथा कक्षा 12 वीं में सम्मिलित होने पर शेष एक मुश्त राशि का भुगतान किया जाएगा, किन्तु शर्त यह होगी कि बालिका का विवाह 18 वर्ष की आयु के बाद हुआ हो।
- योजना के मध्य अर्थात् 21 वर्ष की आयु पूर्ण होने से पूर्व बालिका के आवेदन पर उस दिनांक तक देय राशि का समय पूर्ण भुगतान किया जाएगा, शर्त यह होगी कि बालिका की आयु 18 वर्ष की हो, कक्षा 12 वीं की परीक्षा में सम्मिलित हो व 18 वर्ष की आयु के बाद उसका विवाह हुआ हो।
- योजना का लाभ लेने के लिए क्षेत्र की आँगनवाड़ी कार्यकर्ता, सेक्टर पर्यवेक्षक, बाल विकास परियोजना अधिकारी एवं जिला महिला एवं बाल विकास अधिकारी से सम्पर्क किया जा सकता है।

2. जननी सुरक्षा योजना– इस योजना की शुरुआत 1 अप्रेल 2005 को निर्धनता रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली गर्भवती महिलाओं के लिए की गई है। यह योजना 19 वर्ष से अधिक आयु की अनुसूचित जाति एवं जनजाति की महिलाओं के लिए हैं।

इस योजना के तहत सरकारी या निजी अस्पताल में प्रसव कराने पर गर्भवती महिला को 1400 रु. तथा इसके लिए प्रोत्साहन करने वाली महिला को 1000 रु. दिए जाते हैं। इसके साथ ही प्रसव का सारा खर्च भी वहन किया जाता है। इस योजना के द्वारा प्रदेश सरकार ने मातृत्व मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर को कम करने मे सफलता प्राप्त की है।

3. नि:शुल्क साइकिल वितरण योजना– इस योजना का मुख्य उद्देश्य बालिकाओं को प्राइमरी स्तर से आगे शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना है। इस योजना मे सभी वर्गो की ऐसी बालिकाओं को मुफ्त साइकिल दी जाती है, जिन्होंने किसी दूसरे गाँव के स्कूल मे कक्षा 9वीं में प्रवेश लिया हो। यह योजना राज्य सरकार द्वारा चलाई जा रही है।

4. गाँव की बेटी योजना– इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण प्रतिभाशाली लड़कियों को उच्च शिक्षा के लिए प्रेरित कर सहायता करना है। इस योजना के तहत 12 वीं कक्षा को प्रथम श्रेणी से पास करने वाली ग्रामीण लड़कियों को 10 महीने तक 500 रु. प्रति महीने दिए जाते हैं।

5. प्रतिभा किरण योजना– इस योजना का मुख्य उद्देश्य ऐसे शहरी बीपीएल परिवारों की बालिकाओं के शैक्षिक स्तर में सुधार लाना है, जिन्होंने कक्षा 12वीं प्रथम श्रेणी से पास करने के बाद उसी वर्ष उच्च शिक्षा में प्रवेश ले लिया है। इस योजना में पात्र बालिकाओं को दस महीने के लिए 300 रु. प्रति माह तथा तकनीकी पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने पर 750 रु. प्रति माह प्रोत्साहन राशी के रुप मे दिए जाते हैं।

6. मुख्यमंत्री कन्यादान योजना– इस योजना का मुख्य उद्देश्य गरीब जरुरतमन्द, निराश्रित परिवारों को अपनी बेटियों, विधवाओं या तलाकशुदा के विवाह के लिए वित्तीय मदद उपलब्ध करवाना है।

यह वित्तीय मदद सामूहिक विवाह समारोह द्वारा विवाह की सही उम्र मे लड़की का विवाह करने पर दी जाती है। वित्तीय मदद के तहत 10 हजार रु. दिए जाते हैं, जिसमें से 9 हजार घर के सामान खरीदने के लिए दिए जाते हैं। इस योजना में सभी धर्मो के विवाह एक ही सामूहिक विवाह समारोह में सम्पन्न कराए जाते है, जो कि साम्प्रदायिक सौहार्द्र को भी बढ़ावा देता है।

7. साक्षर भारत योजना- प्रदेश मे केन्द्र प्रवर्तित इस योजना का शुभारम्भ 19 अप्रैल 2010 को किया गया। इस का उद्देश्य 15 वर्ष से अधिक आयु की

* प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

निरक्षर महिलाओं को कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करना एवं अध्ययनशील समाज का निर्माण करना है। यह योजना प्रदेश के श्योपुर, झाबुआ, मन्दसौर, मण्डला, मुरैना, कटनी, दतिया, बैतूल, टीकमगढ़ व खरगोन जिले मे शुरु की गई है। इस योजना का लक्ष्य प्रतिवर्ष 10 प्रतिशत की दर से महिला साक्षरता को बढ़ाना है। इस योजना मे केंद्र व राज्य की भागीदारी क्रमश: 75:25 प्रतिशत के अनुपात में है।

8. राजीव गांधी किशोरी अधिकारिता योजना– इस योजना की शुरुआत 19 नवम्बर 2010 को की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य 11 से 18 वर्ष आयु वर्ग की किशोरियों के सही मानसिक व शारीरिक विकास में मदद करना है। यह योजना मध्य प्रदेश के 15 जिलों सहित देश के 200 जिलों मे शुरु की गई है।

9. मुख्यमंत्री निकाह योजना– मुस्लिम कन्याओं के विवाह कराने के लिए मुख्यमन्त्री कन्यादान योजना के तहत ही मुस्लिम समुदाय के लिए मुख्यमंत्री निकाह योजना का शुभारम्भ किया गया है।

म.प्र. में तीन दशक में लिंगानुपात एवं प्रतिशत वृद्धि तालिका

	मध्य प्रदेश		भारत	
वर्ष	प्रति हजार पुरुषो पर महिलाओ की संख्या	प्रतिशत वृद्धि	प्रति हजार पुरुषो पर महिलाओं की संख्या	प्रतिशत वृद्धि
1991	912	-	927	-
2001	919	0.76%	933	0.65%
2011	931	1.31%	940	0.75

म.प्र. की महिला सशक्तिकरण की विभिन्न योजनाओं का सकारात्मक प्रभाव हुआ है। जैसा कि तालिका से स्पष्ट हैं कि पिछले दो दशक में म.प्र. में लिंगानुपात बढ़ा है। भारत की तुलना में म.प्र. का लिंगानुपात कम है, लेकिन प्रतिशत वृद्धि म.प्र. में अधिक रही है।

म.प्र. में 2001 में लिंगानुपात 919 था जो बढ़कर 2011 में 931 प्रति हजार पुरूष हो गया है। म.प्र. में प्रतिशत वृद्धि दर बढ़ीं है। साथ ही महिला साक्षरता में वृद्धि दर 2001 में 50.30 प्रतिशत एवं 2011 में बढ़कर 60 प्रतिशत हो गई। राज्य सरकार महिलाओं के आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक सशक्तिकरण के लिए काम कर रही हैं। सरकार ने बेटियों के प्रति भेदभाव दूर करने के लिए कई योजनाएं शुरू की है। महिलाओं ने सृष्टि की सुरक्षा का दायित्व निभाया है।

लाड़ली लक्ष्मी, मुख्यमंत्री कन्यादान योजनाओं ने समाज की मानसिकता बदली है। आज प्रदेश में 16 लाख लाड़ली लक्ष्मी है। महिला-पुरूष अनुपात में आंशिक सुधार हुआ है। महिलाओं के प्रति समाज में सकारात्मक बदलाव है। इसी कड़ी में 24 जनवरी 2014 को स्वागत लक्ष्मी योजना इस दिशा में अभिनव कदम है।

हमारे ग्रामीण परिवेष में अभी भी बालविवाह अंधविश्वास, रूढ़िवाद, छुआछूत, परम्पराओं का दोगलापन, पर्दा प्रथा इत्यादि कुरीतियाँ व्याप्त है। जो महिलाओं को अपने अधिकारों को प्राप्त करने से वंचित कर रही है। अत: अत्यअधिक जनजागरण, सामाजिक परिवर्तन, पुरुष प्रधान समाज की सोच में बदलाव की पहल मानवीय समाज में करना आवष्यक होगी।

संदर्भ–

1. प्रो. एस.एन. लाल, डॉ. एस.के. लाल- भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षण तथा विश्लेषण
2. जबर सिंह परमार- मध्यप्रदेश दिग्दर्शन
3. डॉ. वी. कुमार- जनांकिकी
4. नवीन शोध संसार- अप्रैल-जून 2013

****

जनसंख्या वृद्धि और बढ़ता लिंगानुपात (झाबुआ जिले के संदर्भ में)

प्रो. हेमता डुडवे *

जनसंख्या के प्रति मानव की जिज्ञासा विभिन्न उद्देश्यों को दृष्टि रखते अस्तित्व काल से ही रही है। आर्थिक विकास की ओर तीव्रता से उन्मुख वर्तमान गतिशील विश्व के समस्त देश अपने उपलब्ध संसाधनों का यथासंभव अनुकूलतम उपयोग कर मानव संसाधनों के विकास के प्रति सचेत है और अपने देश में उपलब्ध जनसंख्या के गुणात्मक एवं संख्यात्मक दृष्टि से जानकारी प्राप्त करना चाहते है।

भारत की जनसंख्या में तीव्रगति से वृद्धि हो रही है। बढ़ती हुई जनसंख्या देश के आर्थिक विकास में प्रमुख अवरोध बनकर खडी हो गई है, इसके परिणाम स्वरूप नियोजित आर्थिक विकास के प्रयास निष्फल सिद्ध हो रहे है तथा देश में भोजन,वस्त्र तथा आवास की कमी की समस्या विकराल होती जा रही है। किसी देश के आर्थिक विकास एवं जनसंख्या की वृद्धि में उस देश का लैंगिक गठन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सामान्यत: यह देखा जाता है कि पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में कार्य करने की शारीरिक शक्ति कम होती है अत: ये उत्पादन के कार्यों में उतना हाथ नहीं बंटाती है जितना कि उपभोग में बटाँती है जिससे प्रति व्यक्ति आय सामान्यत: कम रहती है।

अन्य शब्दों में किसी देश की प्रति व्यक्ति आय इस बात पर निर्भर करती है की वहां की स्त्री जनसंख्या उत्पादन में कितना हाथ बंटाती है। इसी तरह, जिस देश में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक होती है वहां जनसंख्या वृद्धि दर की संभावना कम होने पर समाज में वेश्यावृत्ति,व्यभिचार,बलात्कार तथा संमलैगिकता आदि सामाजिक बुराइयों को बढावा मिलता है।

इससे मनुष्य का नैतिक पतन हो जाता है। इसके अतिरिक्त पुरूषों की संख्या अधिक रहने से बाल-विवाह प्रथा को प्रोत्साहन मिलता है बाल विवाह के कारण पति-पत्नी की आयु में काफी अन्तर हो जाता है जो वैधव्य का कारण बनता है।

भारत में विवेकपूर्ण जनसंख्या नियोजन तत्कालीन आवश्यकता है अर्थात् जनसंख्या वृद्धि आर्थिक प्रगति को पूरी तरह निगल जाएगी। वर्तमान में भारत में जनसंख्या संबंधी स्थिति एवं जनसंख्या की वृद्धि दर वास्तव में चिंताजनक है।

तालिका क्र. 01 मध्यप्रदेश जनसंख्या 2011 में

वर्ष	2001	2011
कुल जनसंख्या	60385118	72597565
पुरूष	31456873	37612920
महिलाएँ	28928245	34984645
लिंगानुपात प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाएँ	920	930

तालिका -02 मध्यप्रदेश में लिंगानुपात

वर्ष	स्त्री पुरूष अनुपात प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओं की स्थिति
1901	990
1911	986
1921	974
1931	973
1941	970
1951	967
1961	953
1971	941
1981	941
1991	931
2001	920
2011	930

तालिका -क्र.03 झाबुआ जिले की जनसंख्या

वर्ष	2001	2011
कुल जनसंख्या	784286	1024091
पुरूष	396141	5154830
महिलाएँ	388145	5090261
लिंगानुपात प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाएँ	986	990

तालिका- क्र.04
झाबुआ जिले की लिंगानुपात

वर्ष	स्त्री पुरूष अनुपात प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओं की स्थिति
1991	977
2001	986
2011	990

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि झाबुआ जिले में स्त्रियों की तुलना में पुरूषों की संख्या अधिक है।

वर्ष 1991 से 2011 तक लगातार स्त्रियों का अनुपात निरंतर बढ़ता ही जा रहा है जो मध्यप्रदेश के अन्य जिलों की तुलना में प्रसंशनीय है।

* सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय महाविद्यालय, थांदला, जिला-झाबुआ (म.प्र.) भारत

झाबुआ जिले में लिंगानुपात वृद्धि के कारण:-

1. **दहेज प्रथा के स्वरूप में भिन्नता:-**भारत में प्रचलित दहेज की कुप्रथा से स्त्रियों की मृत्यु दर को बढ़ाने में सहायक है शिक्षा के प्रसार एवं आर्थिक स्तर में सुधार के बावजूद समाज दहेज की श्रृंखलाओं से लगातार कसता जा रहा है अधिक दहेज प्राप्त करना समाज में प्रतिष्ठा की बात मानी जाती है। अत: कम दहेज लेकर घर में आयी बहुओं को दहेज लोलुप व्यक्ति सुहाग सेज से चिंता के आग में धकेल देते है ताकि पुन: विवाह कर अधिक दहेज वाली बहू लायी जा सके। इस तरह यह अभिशप्त प्रथा भी स्त्रियों की मृत्यु दर को बढाने में अपना योगदान दे रही है। परन्तु झाबुआ जिले में दहेज प्रथा इसके विपरीत है यहां पर वर पक्ष द्वारा वधु पक्ष को दहेज देना पडता है दहेज के रूप में रूपये, आभूषण, अनाज एवं पशु के रूप में भी हो सकती है। इस कारण दहेज का प्रभाव लड़के पर पडता है क्योंकि यहां पर वधु पक्ष से कुछ भी राशि नहीं देनी पडती है इस कारण यहां दहेज के नाम पर वधु हत्या नहीं होती है।
2. **जनजातीय महिलाओं का महत्व:-** जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति सर्वोपरी है धार्मिक कार्य से लेकर आर्थिक, सामाजिक कार्य में महिलाओं का योगदान रहता है इस समाज में महिलाओं का अधिक महत्व होने के कारण मृत्यु दर कम होती हैं
3. **पारिवारिक रीति-रिवाजों में जनजाति महिलाओं की विशेष भूमिका :-** जनजातियों में महिलाओं की स्थिति परिवार में महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ पारिवारिक रीति-रिवाजों जैसे-धार्मिक रीति-रिवाज से लेकर विवाह संस्कार एवं अन्य कार्यक्रम में भी विशेष भूमिका रहती है। इस कारण इनको परिवार का अभिन्न अंग माना जाता हैं यहां पर बहन,बेटी एवं बुआ के बिना कोई भी शुभ कार्य एवं संस्कार सम्पन्न नहीं होता है इस कारण भी जनजातियों में कन्या का जन्म शुभ माना जाता है।
4. **कन्या के चाहत में लड़को की संख्या में वृद्धि :-** जनजाति समाज में कन्या के जन्म की चाहत को लेकर कुछ परिवारों में लड़कों की संख्या अधिक होती जा रही है। प्रत्येक परिवार में कम से कम एक कन्या का होना महत्पवूर्ण माना जाता है।
5. **जनजातियों समाज में भ्रूण परीक्षण एवं कन्या भ्रूण हत्या का अभाव:-**प्राचीन काल से आज तक जनजातीय समाज पिछड़ा हुआ है आधुनिक तकनीकों से दूर है इस कारण से भ्रूण परीक्षण एवं कन्या भ्रूण हत्या नहीं होती है।
6. **आर्थिक कार्यों में महिलाओं की सहभागिता :-** जनजातीय महिलाएँ परिश्रमी होती है वे गृहकार्य के अलावा पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कृषि एवं अन्य आर्थिक कार्य में निपूर्ण होती है। इस लिए भी कन्या जन्म को महत्वपूर्ण माना जाता है

निष्कर्ष:- भारतीय समाज में एक ओर जहां नारी की स्थिति दोयमदर्जे की होकर कई प्रकार की उपेक्षा की जाती है तथा पुरूषों के वर्चस्व के चलते कन्या जन्म को अभिशाप माना जाता है जिसके कारण देश में लिंगानुपात कम होता जा रहा है वहीं झाबुआ जिले में महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी है। जिले के विकास में उनकी सहभागिता प्रसंषनीय है जिसका प्रमाण यहां का बढता लिगांनुपात है।

संदर्भ सूची:-

1. जनांकिकी डॉ.जयप्रकाश मिश्र साहित्य भवन पब्लिेशन्स 2012
2. जनांकिकी बघेल कैलाश पुस्तक सदन भोपाल 2011
3. इंटरनेट के माध्यम से।

****

रिटेल बाजार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश

डॉ. प्रभावती भावसार * डॉ. अंजू जगधारी **

भूमिका– भारत में खुदरा व्यापार सामाजिक व सांस्कृतिक परम्परा का एक अहम् हिस्सा है जो लोगों के बीच संबंधों को मधुर बनाता है साथ ही देश के एक बड़े तबके को रोजी रोटी के रूप में रोजगार व सामाजिक सुरक्षा भी प्रदान करता है। भारत में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का कोई भी पहलू आधुनिकता, पूंजीवाद, दिखावे एवं बनावट गलाकाट प्रतिस्पर्धा के अभाव से अछूता नहीं रह गया है तथा समाज इसके पक्ष–विपक्ष में बंटा हुआ प्रतीत होता है। ठीक इसी तरह खुदरा व्यापार में भी विदेशी पूंजी का प्रचार प्रसार इस समय विवाद का विषय बना हुआ है।

खुदरा बाजार में विदेशी पूंजी का समर्थन न केवल सरकार कर रही है अपितु बड़े उद्योगपति, पूंजीपति, उद्योग संगठन तथा विदेशी सलाहकार सभी कर रहे हैं।

खुदरा बाजार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के सरकारी प्रस्ताव की व्यवस्थाएँ–

1. सिंगल ब्रांड रिटेल में 100 प्रतिशत जो पहले 51 प्रतिशत था तथा मल्टीब्रांड रिटेल में 51 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की भागीदारी की अनुमति देना।
2. मल्टीब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की अनुमति इस शर्त पर दी गई है कि प्रत्येक विदेशी रिटेलर 10 करोड़ डॉलर का न्यूनतम निवेश करेगा जिसमें से 50 प्रतिशत, आधारभूत ढाँचा जैसे–कोल्ड स्टोरेज विकास तथा अन्य सहायक कार्यों के विकास पर लगाना होगा, जिसमें भूमि की लागत या किराया सम्मिलित नहीं होगा।
3. 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों में ही मल्टीब्रांड विदेशी रिटेलरों को कारोबार खोलने की अनुमति देना।
4. सिंगल व रिटेल ब्रांड रिटेलरों को विक्रय हेतु 30 प्रतिशत विनिर्मित या प्रोसेस किया हुआ सामान देश में स्थित लघु उद्योगों से क्रय करना होगा परन्तु फल–सब्जी के क्रय पर पहला अधिकार सरकार का होगा। रिटेलर्स ताजा सामान स्थानीय स्त्रोतों से ही क्रय करेंगे, न कि विदेशों से आयात करेंगे।

इस प्रकार भारत में जो विदेशी कम्पनियाँ निवेश करना चाहती हैं उनमें से प्रमुख हैं – वालमार्ट (यू.एस.ए)., टेस्को (यू.के.),मेट्रो एजी (जर्मनी) तथा कारफूर (फ्रांस) आदि तथा भारत में पहले से ही काम कर रही कम्पनियाँ जारा स्पेन समूह टामा हिलफिजर आदि हैं।

खुदरा व्यापार में विदेशी निवेशकों की भागीदारी के पक्ष में दिए जाने वाले कुछ प्रमुख तर्क

1. **विदेशी पूंजी के प्रवाह में वृद्धि–** रिटेल बाजार से विदेशी मुद्रा का अधिक प्रवाह होगा, जिससे भारत सरकार को अपने विदेशी ऋण एवं घाटे को कम करने का आसान उपाय मिल जाएगा तथा रूपये के विदेशी विनिमय मूल्य में हो रही कमी को भी रोकना संभव हो जाएगा।
2. **तकनीकी ज्ञान का आयात–** रिटेल व्यापार से विदेशों से विकसित टेक्नोलॉजी ज्ञान, विपणन की कुशलता का अनुभव आदि भी देश में आएगा जिससे बड़े पैमाने के लाभ प्राप्त होंगे।
3. **आधारभूत ढांचे की दृढ़ता –** प्रत्येक निवेशक जो रिटेल व्यापार में भाग लेगा वह देश में 10 करोड़ डॉलर की पूँजी लगाएगा साथ ही वह इसमें 50 प्रतिशत बैंक व इन्फ्रास्ट्रक्चर में निवेश करेगा जिससे देश में आधारभूत ढांचा – कोल्ड स्टोरेज, सड़क मार्ग का निर्माण व संबंधित विकास होंगे और देश के विकास में विशेष रूप से कृषि के विकास में मदद मिलेगी।
4. **रोजगार में वृद्धि–** रिटेल बाजार रोजगार सृजित करेंगे। चूँकि ये मेट्रोपालिटन शहरों में ही होगे अत: गाँवों तथा कस्बों में फेले खुदरा व्यापारियों के बेरोजगार होने का भय नहीं है, बल्कि इनके खुलने से युवाओं को रोजगार प्राप्त होगा और ये छोटे–छोटे खुदरा व्यापारी सप्लाई चेन के अपरिहार्य अंग साबित होंगे। यदि थोड़ी सी प्रतिस्पर्धा का भय इनकी कुशलता में थोड़ी वृद्धि ला दे तथा इनके लाभ मार्जिन में थोड़ी कमी ला दे तो ये और अपरिहार्य हो जाएंगे क्योंकि इनके लोकेशन च उपभोक्ताओं तक इनकी पहुंच व उनसे व्यक्तिगत संबंधों को मल्टीब्रांड से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता।
5. **बिचौलियों की समाप्ति –** मल्टीब्रांड नीति के बारे में डॉ. कौशिक बसु का कहना है कि खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष निवेश से मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण लगेगा। इस व्यवस्था में कृषिक्षत माल बिना बिचौलियों के प्रत्यक्ष रूप से माल्ट व स्टोर्स में पहुचेंगे जिससे कृषकों को भी उचित मूल्य मिलेगा तथा उपभेक्ताओं को भी इनके लिए कम कीमत देनी होगी अत: मूल्य स्तर में कमी होगी।
6. **बेहतर भंडारण व संग्रहण –** प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से अधिकाधिक कच्चा व ताजा माल का भंडारण व संरक्षण संभव हो पाएगा, जिसका सीधा लाभ किसानों को मिलेगा। कई बार अधिक कृषि वस्तुएं या उत्पाद, फल, सब्जी उचित भंडररण के अभाव में नष्ट हो जाते हैं लेकिन नई व्यवस्था में ऐसा नहीं होगा ।
7. **मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने में मदद –** मल्टीब्रांड नीति की समीक्षा करते हुए डॉ. कौशिक बसु का मत है कि खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से मुद्रा स्फीति को नियंत्रित कर उचित भंडारण व बिचौलियों की समाप्ति के फलस्वरूप प्रभावी लागत में कमी होगी जिससे कीमतों में भी कमी होगी।
8. **कृषकों की आय में वृद्धि –** मल्टीब्रांड रिटेल नीति में यह व्यवस्था है कि इन्हें 30 प्रतिशत माल लघु उद्योगों व छोटे रिटेल उत्पादको से खरीदना होगा जिससे रोजगार व आय में वृद्धि होगी और साथ ही ताजा माल इन्हें स्थानीय उत्पादको से क्रय करना होगा न कि आयात द्वारा, इससे कृषकों की आय में वृद्धि होगी।
9. **उपभोक्ता की सार्वभौमिकता –** प्रत्येक आर्थिक क्रिया में उपभोक्ता सर्वोपरि होता है। मल्टीब्रांड रिटेल की यदि उपभोक्ता की दृष्टि से समीक्षा की जाए तो इससे उपभोक्ता को अच्छी व उत्तम गुणवत्ता का सामान

* प्राध्यापक अर्थशास्त्र, ** अतिथि विद्वान अर्थशास्त्र, स्वामी विवेकानन्द शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

प्रतिस्पर्धी सस्ती दर पर उपलब्ध होगा।

10. **सामाजिक कल्याण में वृद्धि –**रिटेल व्यापार का विदेशी निवेशकों तथा व्यापारियों के लिए खुलना आर्थिक सुधारों की दिशा में एक वांछित और ठोस कदम होगा। इसके कारण सामान्य रूप से औद्योगिक क्षेत्र पर, विशेष रूप से छोटे व लघु उद्योग, कृषक तथा उपभोक्ताओं को लाभ होगा जिससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी।

विपक्ष में तर्क :-

1- **असंगठित क्षेत्र को हानि –** भारत एक श्रम प्रधान देश है और रोजगार की अवसरहीनता से जूझ रहा है वहीं असंगठित व्यापार का हिस्सा कुल व्यापार में 90 प्रतिशत से घटकर 75 प्रतिशत ही रह गया है जबकि 5000 लाख श्रम शक्ति में से 5 लाख लोग असंगठित क्षेत्र पर निर्भर हैं, देश में लगभग 1.5 करोड़ खुदरा दुकानें या व्यवसाय हैं जिससे आम जनता को किसी तरह आजीविका का सहारा है। विदेशी रिटेल कम्पनियों के आने से असंगठित क्षेत्र को नुकसान होगा।

2. **सामाजिक विषमता –** भारी और बड़ी मात्रा में पूंजी निवेश करने की इच्छुक विदेशी रिटेल कम्पनियाँ सामाजिक विषमता को और अधिक भयानक बना देगी।

3. **रोजगार में कमी –** खुदरा व्यापारी जो अपने पीढियों से अपने धंधे में लगे हुए हैं , वे अपना व्यापार खो देंगे जिससे खुदरा व्यापार को क्षति होगी एवं रोजगार में कमी होगी।

4. **राजनैतिक हस्तक्षेप –** प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के माध्यम से अंतिम रूप में देश की पूंजी विदेशों की ओर प्रवाहित होगी, ऐसे में ये कंपनियाँ देश की राजनीति में हस्तक्षेप कर सकती हैं जो वांछनीय नहीं होगी।

5. **उद्देश्यों के प्रति उदासीनता –** हम विनिर्माण, औद्योगीकरण, कृषि उत्पादन, विस्तृत रोजगार, स्वपोषणीय एवं समावेशी विकास के उद्देश्यों को अधूरा छोड़कर रिटेलीकरण, वित्तीयकरण एवं सट्टेबाजी की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

निष्कर्ष :-रिटेल व्यापार का विदेशी निवेशकों तथा व्यापारियों के लिए खुलना आर्थिक सुधारों की दिशा में एक वांछित तथा ठोस कदम है, इससे सामान्य रूप से औद्योगिक क्षेत्र पर विशेष रूप से छोटे एवं लघु उद्योग, कृषक और उपभोक्ता लाभान्वित होंगे। इसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में विदेशी पूंजी तकनीकी, विपणन व्यवस्था व सप्लाई चेन में सुधार होगा तथा उपभोक्ता की सार्वभौमिकता से सम्पूर्ण सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी।

वास्तविकता यह है कि इस आर्थिक सुधार से संबंधित कदम का विरोध आर्थिक आधार पर न होकर राजनैतिक आधार पर हो रहा है जो ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसी स्थिति में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया आगे ही नहीं बढ़ेगी तथा गठबंधन की राजनीति में आर्थिक सुधार संबंधी कदम दब जाएंगे जो कि वास्तव में देश के लिए व देश के विकास के लिए अहितकर होगा।

संदर्भ

❊ भारतीय अर्थव्यवस्था-रूद्रदत्त व सुन्द्रम
❊ भारतीय अर्थव्यवस्था- मिश्र व पुरी
❊ भारतीय अर्थव्यवस्था- सर्वेक्षण तथा विश्लेषण- प्रो. एस.एन. एवं एस.एन. लाल
❊ योजना पत्रिका- नवम्बर 2013

****

भ्रष्टाचार में डूबे देश के लिए लोकपाल विधेयक कितना आवश्यक : एक विश्लेषण

डॉ.प्रदीपसिंह राव *

भारत को स्वाधीन हुए आधी से अधिक शताब्दी बीत चुकी है। हम विकसित राष्ट्र होने का सपना देख रहे हैं। लेकिन मूलभूत आवश्यकताओं के अभाव ने हमें उन्नति की एक सीमा से आगे बढ़ने ही नहीं दिया है। देश का समग्र और विविध प्रदेशों का विकास एक हद तक हुआ तो है लेकिन भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति ने हमारी प्रगति के पहिए जाम कर रखे हैं। इसलिए ये चलने के बजाय घसीट रहे हैं।

पीछे मुड़कर देखें तो हमने अनेक उपलब्धियॉ पाई हैं, जैसे बहुदलीय लोकतांत्रिक व्यवस्था का बने रहना, बड़े वैज्ञानिक प्रतिभा संपन्न समुदाय का उदय, अंतरिक्ष, कम्प्यूटर, उद्योग और व्यापार आदि में प्रगति आदि। लेकिन गरीबी, अज्ञान, बिमारियों और अवसरों की विषमता मिटाने की जिन बातों को स्वाधीनता की शुरूआत में संकल्प के रूप में लिया गया था वे आज भी अधूरे हैं।

14 अगस्त 1947 को पं.जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि ''आज हम जिस स्वाधीनता का उत्सव मना रहे हैं, यह तो उन महान उपलब्धियों और मंजिलों, जो हमारी प्रतीक्षा कर रही हैं, की ओर अग्रसर होने की दिशा में एक पहला कदम हैं - उस ओर चलने का एक पहला अवसर मिलना मात्र है।'' दुर्भाग्यवश हम सुनहरे अवसर का लाभ नहीं उठा सके। केन्द्र से जो 1 रूपया गरीबों, आदिवासियों के उत्थान के लिये 1950 से लगातार पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से दिल्ली से चलता है वह झाबुआ, सैलाना, सरगुजा या बस्तर जैसे क्षेत्रों में पहुंचते-पहुंचते 5 या 10 पैसे रह जाता है। इस बात को बड़ी करूणा-वेदना के साथ पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गॉधी ने भी स्वीकार किया था। यह भ्रष्टाचार का असली चेहरा है।

कहा जाता है कि लोक सेवाओं में भ्रष्टाचार या अपने पद के उपयोग का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी की स्वयं लोक सेवाए। स्वाधीन भारत में भ्रष्ट लोकसेवकों के विरूद्ध कार्यवाही करने की कोशिश की गई परन्तु जिन विधियों को अपनाया गया उनसे इस विश्वास को बल मिला कि सरकार भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए गंभीर नहीं है। भ्रष्टजन प्रतिनिधियों ने भी इस मैली गंगा में हाथ धोए और भ्रष्ट सेवकों का एक ऐसा गठबंधन विकसित हो गया जिसने सभी सीमाए-मर्यादाए तोड़ दी। भारत भ्रष्टतम राष्ट्रों में अग्रणी बन गया।

भ्रष्टाचार के इस तूफान को रोकने के लिए डेनमार्क में, स्वीडन की पद्धति पर सन 1955 में आम्बुड्समेन पद की स्थापना की गई थी। नार्वे, न्यूजीलैण्ड और ब्रिटेन में भी आयुक्तों के पद सृजित किए गए। भारत में इस दिशा में 1963 में इस तरह का प्रस्ताव रखा गया और 1966 में प्रशासनिक सुधार आयोग ने दो इकाईयों के गठन का सुझाव दिया। इन्हें लोकपाल और लोकायुक्त नाम दिया गया। डॉ.लक्ष्मीमल सिंघवीं (प्रख्यात संविधान विशेषज्ञ वरिष्ठ सांसद) ने एक विधेयक तैयार किया। प्रशासनिक सुधार आयोग 1966 की संस्तुति को समान रूप से स्वीकार करते हुए केन्द्र सरकार में लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक 1968 लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। यह विधेयक तब से आज तक कई बार संसद के पटल पर प्रस्तुत किया गया लेकिन पिछले 44 वर्ष से यह अधर में लटक रहा है। वर्ष 1998 में पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी के कार्यकाल में भी इसे संसद के पटल पर रखा गया था लेकिन लोकसभा ही भंग हो गई और यह अटक गया। लोकपाल विधेयक यदि कानून बन जाता है तो एक स्वतंत्र निकाय द्वारा प्रधानमंत्री से लेकर एक चतुर्थ वर्ग का कर्मचारी निष्पक्ष जाँच की परिधि में आ सकता है। पता नहीं इस विधेयक को भी लटकाने के लिए लेन-देन चलता हो तो कोई आश्चर्य नहीं होगा।

''केन्द्र और राज्यों में मंत्रियों तथा सचिवों के प्रशासकीय कृत्यों के विरूद्ध शिकायतों के निराकरण हेतु एक इकाई होनी चाहिए। इसी प्रकार राज्यों और केन्द्र में अन्य अधिकारियों के कृत्यों के विरूद्ध शिकायतों के निराकरण हेतु एक इकाई होनी चाहिए। ये सभी इकाईयॉ कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के नियंत्रण से स्वतंत्र होनी चाहिए।'' - प्रशासनिक सुधार आयोग की अंतरिम रिपोर्ट

स्वतन्त्र भारत में भ्रष्टाचार को रोकने हेतु निर्मित किये गये प्रयास

भारत सरकार द्वारा भी इस दिशा में प्रयास किये गये। सन् 1947 में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम कानून बन गया। भ्रष्टाचार की जाँच-पड़ताल और इनके निवारण के लिए परामर्श देने हेतु अनेक आयोगों/समितियों की नियुक्ति की गई। जैसे-टेकचन्द समिति (1949), रेल भ्रष्टाचार जाँच समिति या कृपलानी समिति 1953, विवियन बोस आयोग 1956 आदि। सन् 1955 में प्रशासकीय सतर्कता आयोग की स्थापना की गई। सन् 1962 में सरकार ने भ्रष्टाचार को रोकने हेतु सुझाव देने हेतु एक समिति नियुक्त की गई जिसमें 6 सांसद और 2 वरिष्ठ अधिकारी सदस्य बनाये गये। इस समिति का अध्यक्ष के.संथानम को बनाया गया। सन् 1962 के केन्द्रीय सतर्कता आयोग का गठन किया गया। अनेक राज्यों में भी इस पद्यति पर सतर्कता अधिकारियों की नियुक्ति की गई। लेकिन भ्रष्टाचार निवारण की दिशा में इसका कोई खास असर नहीं हो सका। इसके अनेक कारण थे - चूंकि भ्रष्टाचार विरोधी विभाग पुलिस संगठन का ही हिस्सा था अतएव इसकी कोई विश्वसनीयता नहीं बन सकी। सतर्कता आयोग का कोई विधिक आधार नहीं था। अत: इसकी अपनी सीमाए थी। कुछ लोगों का विचार था कि सतर्कता आयोग ने प्राय: अपने को गैर महत्वपूर्ण मसलों में उलझाये रखा जबकि कुछ अन्य की यह सोच थी कि आयोग को अन्य स्त्रोतों से समुचित सहयोग नहीं मिल पा रहा था।

लोकपाल विधेयक 1988

3 अगस्त 1988 को प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा बहुचर्चित लोकपाल विधेयक को लोकसभा के विचारार्थ किया गया। चूँकि लोकपाल विधेयक के क्रम में नवीनतम विधेयक है अतएव इसक किंचित विस्तार से यथोचित होगीं। वैसे यह विधेयक भी पूर्व की भांति ही लोकसभा भंग होने के कारण पारित नहीं हो सका।

विधेयक की मुख्य विशेषताएँ निम्न थीं :-

1. लोकपाल संस्था त्रिसदस्यीय होंगी, जिसमें अध्यक्ष के अतिरिक्त दो अन्य सदस्य होगें। सर्वोच्च न्यायालय के सेवारत या अवकाश प्राप्त

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (राजनीति विज्ञान विभाग) शासकीय महाविद्यालय, सैलाना जिला-रतलाम (म.प्र.) भारत

न्यायाधीश को ही इसका अध्यक्ष बनाया जा सकेगा। इसके सदस्य सर्वोच्च न्यायाल के पीठासीन या पूर्व न्यायाधीश हो सकते हैं। विधेयक में यह प्रावधान था कि इसकी नियुक्ति सात सदस्यीय चयन समिति की सिफारिश के आधार पर राष्ट्रपति द्धारा की जावेगी। उपराष्ट्रपति इस समिति का उपाध्यक्ष होगा जबकि प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, संसद के सदस्य, संसद के उस सदन का नेता जिसका प्रधानमंत्री सदस्य न हो तथा राज्यसभा एवं लोकसभा में विपक्ष के नेता इसके अन्य सदस्य होंगे। लोकपाल संस्था का अध्यक्ष अथवा सदस्य रह चुकने पर व्यक्ति की न तो पुन: नियुक्ति होगी और न ही वह कोई लाभ का पद धारण कर सकेगा।

2. अध्यक्ष एवं सदस्यों का कार्यकाल 3 वर्ष या 70 वर्ष की आयु (इनमें से जो पहले हो) तक रहेगा।
3. विधेयक की व्यवस्था के अनुसार लोकपाल को सेवारत एवं पूर्व प्रधानमंत्रियों, मंत्रियों, संसद के दोनों सदनों के सदस्यों एवं पूर्व सदस्यों के विरूद्ध भ्रष्टाचार की जाँच का अधिकार होगा। किन्तु राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, लोकसभा के अध्यक्ष, सम्प्रेषण एवं महालेखा परीक्षक, मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं निर्वाचन आयुक्त, सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीशों तथा संघ लोक सेवा आयोगक के सदस्यों के विरूद्ध जाँच का अधिकार इसे नहीं होगा।
4. लोकपाल के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों का वेतन क्रमश: मुख्य न्यायाधीशों एवं अन्य न्यायाधीशों के समकक्ष होगा।
5. लोकपाल राज्य या केन्द्र सरकार के मंत्री या सचिव द्धारा या उसकी स्वीकृति से किये गये प्रशासकीय कार्य के विरूद्ध किसी ऐसे व्यक्ति द्धारा जिसे उस कार्य से कोई हानि हुई हो, द्धारा की गई शिकायत की जाँच पड़ताल कर सकता है। वह स्वयं भी कुप्रशासन संबंधि कोई जाँच कर सकता है।
6. लोकपाल निम्न विषयों से संबंधित शिकायतों की जाँच नहीं कर सकता
   1. केन्द्र सरकार या किसी विदेशी सरकार या अंतर्राष्ट्रीय संगठन के बीच लेन-देन का प्रश्न।
   2. प्रत्यर्पण या विदेशियों से संबंधित विषय।
   3. राज्य की सुरक्षा से संबंधित विषय।
   4. व्यापारिक प्रकृति के विषय।
   5. लोक कर्मचारियों की सेवा से संबंधित विषय।
   6. उपाधियों एवं मान-पत्र देने से संबंधित विषय।

   अत: डॉ.वेदप्रताप वैदिक ने नए लोकपाल विधेयक को बिना दांतों का शेर कहा था।

लोकपाल विधेयक 2001 की मुख्य विशेषताएँ

14 अगस्त 2001 को एक नया लोकपाल विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत किया गया। लोकपाल संस्था स्थापित करने की मंशा से इस प्रकार का प्रस्तुत किये जाने वाला यह आठवां विधेयक है। इससे पूर्व सात बार ऐसे विधेयक लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत किये जा चुके हैं। लोकपाल विधेयक 2001 की निम्नांकित विशेषताए हैं :-

1. गठन :- प्रस्तावित लोकपाल त्रिसदस्यीय होगा जिसमें अध्यक्ष के अतिरिक्त दो अन्य सदस्य होंगे। उच्चतम न्यायालय के सेवारत या पूर्व मुख्य न्यायाधीश या उसके किसी न्यायाधीश को ही लोकपाल का अध्यक्ष बनाया जा सकेगा। जबकि इसके सदस्य के रूप में उच्चतम न्यायालय के सेवारत या पूर्व न्यायाधीश को नियुक्त किया जा सकेगा।

2. नियुक्ति - विधेयक के अनुसार लोकपाल की नियुक्ति सात सदस्यीय चयन समिति की संस्तुति के आधार पर राष्ट्रपति द्धारा की जाएगी। जिसके अध्यक्ष उपराष्टपति होंगे। इस समिति के सदस्यों में प्रधानमंत्री, लोकसभा के अध्यक्ष, गृहमंत्री, संसद के उस सदन के नेता जिसके प्रधानमंत्री सदस्य न हों तथा लोकसभा एवं राज्यसभा में विपक्ष के नेता शामिल होंगे।

3. कार्यकाल- लेकपाल के अध्यक्ष एवं सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष प्रस्तावित किया गया है। तथा वे 70 वर्ष की आयु तक ही इस पद पर रहेंगे। एक बार लोकपाल संस्था का अध्यक्ष या सदस्य रहने वाले व्यक्ति की न तो उस लोकपाल में पुन: नियुक्ति होगी और न ही उसे केन्द्र या किसी राज्य सरकार में लाभ के किसी पद पर नियुक्त किया जा सकेगा। दुर्व्यवहार या अक्षमता सिद्ध होने पर लोकपाल के अध्यक्ष या किसी सदस्य को राष्ट्रपति द्धारा ही उसके पद से हटाया जा सकेगा।

4. सेवा-शर्ते - विधेयक में यह भी प्रावधान किया गया है कि लोकपाल संस्था के अध्यक्ष अथवा किसी सदस्य को तब तक उसके पद से नहीं हटाया जा सकता, जब तक कि उनके विरूद्ध कदाचार अथवा असमर्थता के आरोपों की जाँच भारत के मुख्य न्यायाधीश और उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों से मिलकर बनी समिति द्धारा सही साबित न हो जाये। इस जांच के दौरान उन्हें भी अपने उपर लगे आरोपों के बारे में अपना पक्ष रखने का मौका दिये जाने का विधेयक में प्रावधान है। उसके बाद भी राष्ट्रपति उन्हें पद से हटाने के आदेश दे सकते हैं। लोकपाल के अध्यक्ष एवं सदस्यों के वेतन एवं भत्ते क्रमश: उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एवं न्यायाघीश के बराबर होगें।

5. क्षेत्राधिकार - मंत्रीपरिषद के सभी सदस्यों, सांसदों व सरकारी कर्मचारियों के साथ-साथ प्रधानमंत्री को भी लोकपाल की जांच के दायरे में रखा गया है। किन्तु उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों एवं निवार्चन आयुक्तों आदि संवैधानिक पदाधिकारियों को इससे बाहर रखा गया है।

विधेयक में यह सुनिश्चित किया गया है कि लोकपाल स्वतंत्र रूप से कार्य कर सके और अपने दायित्वों का निर्वाह बिना किसी भय और पक्षपात से करने में समर्थ हो सके।

निष्कर्ष :- भारतीय प्रशासन में केन्द्र से राज्यों तक जिस तरह भ्रष्टाचार के अणु बिखर गए हैं और गांव-गांव तक जन साधारण इससे त्रस्त हैं। इस परिस्थिति में भारतीय लोकपाल से अनेक उम्मीदें हैं। हालांकी इसे मौलिक स्वरूप में अमल में लाने के लिए कई गतिरोध लांघने पडेंगें। प्रजातंत्र के सफल संचालन के लिए भ्रष्टाचार मुक्त भारत लोकपाल से ही संभव हैं नियम या कानून कैसा भी हो, इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसे क्रियान्वित करने वाले लोग ईमानदार हैं या नहीं ?

सन्दर्भ सूची -

1. नवभारत टाईम्स, 20 अप्रेल 1997
2. डॉ.लक्ष्मीकांत सिंघवी, लोकसभा भाषण 1989
3. संविधान के प्रसंग डॉ.पी.के.जैन।
4. लोकपाल (लोकप्रशासन) पी.डी.शर्मा।
5. अंतरिम रिपोर्ट ऑफ एडमिनिस्टेशन रिफॉर्म्स कमिशन पेज-18
6. भारत विकास की दिशाएं : प्रो.अमर्त्यसेन
7. लोक प्रशासन : डॉ.बी.एल.फडिया
8. लोक प्रशासन : डॉ. राव पी.एस. एवं डॉ.स्वाति पाठक।

****

भारतीय विदेश नीति निर्माण में जनमत की भूमिका

अनिल कुमार चन्देल *

विदेश नीति निर्माण एक निरन्तर गतिशील प्रक्रिया होती है। हम देखते है कि जब किसी देश में सत्ता परिवर्तन होता है तो उसकी विदेश नीति एकाएक परिवर्तित नहीं होती है क्योंकि प्रत्येक देश के अपने कुछ स्थायी व अस्थायी हित होते है, जिसके कारण विदेश नीति में विशेष या अधिक परिवर्तन की संभावना कम ही रहती है लेकिन यदि देश में किसी मुद्दें पर व्यापक आन्दोलन या क्रांति (जैसा कि मिस्र ओर ट्यूनीशिया में हुआ) हो जाये तो हम विदेश नीति में परिवर्तन देख सकते है।[1] किसी देश की विदेश नीति का निर्धारण, राष्ट्र के राष्ट्रीय हितों, आंतरिक तथा बाहरी वातावरण तथा राष्ट्रीय मूल्यों पर आधारित होती है। इसमें विभिन्न कारकों का विश्लेशण करते समय नीति निर्धारकों की अपने अधिमान एवं धारणाऐं होते है इस हेतु कई कारकों को दृष्टिगत रखते हुए सफल व सशक्त विदेश नीति का निर्धारण किया जाता है।[2] जिनमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भौगोलिक स्थिति, आर्थिक विकास, घरेलू स्थिति, विचारधारा, अंतर्राष्ट्रीय परिवेश, सैन्य क्षमता, अंतर्राष्ट्रीय संगठन[3] और जनमत[4] आदि।

इस शोधपत्र में मुख्य रूप से जनमत की भूमिका का परीक्षण करने का प्रयास किया गया है। किसी भी लोकतांत्रिक देश में लोक नीति और जनमत के बीच अप्रत्यक्ष और कमजोर कड़ी होती है जिसे आज अनदेखा नहीं किया जा सकता। जनमत जानने हेतु मतदाताओं के मतों और समय-समय पर मीडिया व अन्य माध्यमों द्वारा स्पष्ट रूप से इसका अनुमान लगाया जा सकता है।[5] जनमत संबंधी विचार विमर्श केवल दार्शनिक ही होते थे। अधिकांश शासन व्यवस्थाओं में जनता की प्रत्यक्ष सहभागिता के अभाव में जनमत की व्यवहारिक चर्चा का प्रश्न ही नहीं उठता था लेकिन लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में जनमत को महत्व दिया जाने लगा विशेषकर 1930 के बाद गेलप पोल्स के शुरू होने के साथ ही जनमत का नये अर्थो में प्रयोग होने लगा।[6]

भारत के संदर्भ में एक लंबे समय से शोधकर्ताओं का यह मानना रहा है कि विदेश नीति के मुद्दों पर आम जनता चर्चा नहीं करते है यही स्थिति कभी-कभी अमेरिकी विदेश नीति के संदर्भ में भी कहीं जाती है।[7] लेकिन 20 वीं और वर्तमान सदीं में जनमत विदेश नीति निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण कारक सिद्ध हुआ है जिसका सीधा उदाहरण हम 1935 में ब्रिटेन के विदेश मंत्री सैमुअल होर ने देश की जनता को विश्वास में लिये बिना ही फ्रांस के विदेश मंत्री से एक समझौता किया था, जिसका ब्रिटिश जनता ने घोर विरोध किया जिसके चलते उन्हें अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा।[8]

बांग्लादेश संकट 1971 के समय भी अंतर्राष्टीय जनमत पाकिस्तान के विरोध में था लेकिन अमेरिकी समर्थन के चलते पाकिस्तान ने जनमत को अनदेखा किया और जिसके परिणामस्वरूप पाकिस्तान से बांग्लादेश अलग हो गया।[9] 1956 में फ्रांस-इजरायल द्वारा मिस्र पर आक्रमण, वियतनाम संघर्श में अमेरिकी हस्तक्षेप या 1956 हंगरी में सोवियत संघ की सैन्य कार्यवाही, या 1962 का क्यूबा प्रक्षेपास्त्र संकट हो या अफगानिस्तान पर सोवियत संघ कब्जा हो इन सभी घटनाओं की विश्व जनमत ने घोर निंदा की जिसके चलते अंतर्राष्ट्रीय परिस्थियों में परिवर्तन संभव हो सका।[10] कश्मीर के प्रश्न पर भी भारतीय आम जनता का स्पष्ट मत है कि चाहे कितनी भी बड़ी आर्थिक युद्ध की कुर्बानी क्यों न देनी पड़े लेकिन भारत का विखंडन नहीं होना चाहिए।[11] भारतीय जनमत का प्रभाव साम्राज्यवाद व नस्लवाद के विरोध के साथ-साथ सैन्य गठजोड़ के समर्थन में भी देखने को मिलता है। 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ में दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद नीति के खिलाफ भारत को भरपूर जन समर्थन प्राप्त हुआ साथ ही 1947 से 1950 (नईदिल्ली में एशियाई देशों के सम्मेलन) में इंडोनेशिया के संघर्ष व स्वतंत्रता तथा कई एशियाई राष्ट्रों की आजादी के समर्थन में भारतीय जनमत ने भारत सरकार की नीतियों का समर्थन किया जो कि 1950 से 1960 के बीच भी देखने को मिला। भारतीय विदेश नीति पर जनमत की तीव्र प्रतिक्रिया विशेष रूप से भारत-पाक युद्ध (1947-48, 1965, 1971, 1999), भारत-चीन पंचशील सिद्धांत समझौता 1954, दलाई लामा को भारत में शरण 1959, भारतीय सेना का गोवा ऑपरेशन 1961, चीन से सीमा युद्ध 1962, भारत-रूस संधि 1971, भारत का बांग्लादेश मुक्ति युद्ध 1971, शिमला समझौता 1972, सिक्किम का विलय 1976, तथा जनता सरकार के द्वारा चीन व पाक से द्विपक्षीय संबंधों के प्रश्न पर देखने को मिलती है तथा इन पर भारत सरकार को भरपूर जन समर्थन प्राप्त हुआ। चार दशकों तक भारत ने इजराइल के साथ इसलिये राजनयिक संबंध स्थापित नहीं किये क्योंकि इससे भारत को चिंता थी कि देश का एक अल्पसंख्यक वर्ग नाराज न हो जाये।[12]

अध्ययन के उद्देश्य :

1. 21 वीं सदी में भारतीय विदेश नीति निर्माण में जनमत की भूमिका का विश्लेषण करना।
2. भारत की विदेश नीति निर्माण में जनता की राय के महत्व का समसामयिक विश्लेषण करना।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय विदेश नीति पर जनमत के प्रभावों को जानने के लिए द्वितीयक समंकों में भारतीय विदेश नीति के निर्धारक तत्वों से संबंधित पुस्तकों, समाचार-पत्रों में प्रकाशित लेखों-आलेखों, सोशल नेटवर्किंग साइटस और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से प्राप्त जनता की अभिव्यक्ति के माध्यम से शोध के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए विश्लेशणात्मक अध्ययन किया गया है।

साहित्य समीक्षा : देवेश कपूर ने अपने शोध पत्र ''पब्लिक ओपिनियन एंड इंडियन फॉरेन पॉलिसी'' में जनमत का भारतीय विदेश नीति पर प्रभाव का अध्ययन किया। साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि किसी देश की विदेश नीति को निर्धारित करने वाले कई निर्धारक होते है जिनमें जनमत को लेखक ने प्रमुख स्थान दिया है। अहमद आरिफ-अल-कर्फनह ने अपने शोध-पत्र ''डिसीजन मेकिंग इन फॉरेन पॉलिसी में समकालीन अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं को मद्देनजर रखते हुए कहा है कि किसी देश का विकास तभी संभव होगा जब उसकी राजनीतिक व्यवस्था में विदेश नीति के संदर्भ में निर्णय लेने की उच्चतम क्षमता हो साथ ही कहा कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनमत की भूमिका किसी देश की राजनीतिक व्यवस्था के स्तर पर निर्भर

* शोधार्थी (राजनीति विज्ञान एवं लोकप्रशासन) अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

करती है। जे.एन. दीक्षित ने अपनी पुस्तक ''भारतीय विदेश नीति और इनके पड़ोसी'' में भारत ने 20 वी सदीं के आखिरी दशक तथा 21 वीं सदीं के शुरूआती दशक के दौरान वैदेशिक संबंधों और सुरक्षा सरोकारों को किस प्रकार संभाला है इसका विश्लेषण किया है। वी.एन. खन्ना एवं लिपाक्षी अरोड़ा ने अपनी पुस्तक ''भारत की विदेश नीति'' में भारतीय विदेश नीति के उद्देश्य और सिद्धांतों के साथ-साथ, राष्ट्रीय हित तथा विदेश नीति के निर्धारक तत्वों का उल्लेख किया है तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठन और विश्व जनमत की अभिव्यक्ति का भी अनेक देशों की विदेश नीति पर शक्तिशाली प्रभावों का विश्लेशण किया।

विश्लेषण : विश्व के सभी देशों विशेषकर लोकतांत्रिक देशों में विदेशी हितों को पाने के लिये प्रभावी घरेलू राजनीतिक समर्थन की आवश्यकता होती है। कई बार यह माना जाता है कि जनमत का विदेश नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। हाल के वर्षो में वैश्वीकरण के इस दौर में कुछ ऐसे मुद्दे उभरे है जो घरेलू राजनीति को सीधे प्रभावित करते है। भारतीय इतिहास में पहली बार भारत-अमेरिकी परमाणु समझौते के समय विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच विदेश नीति को लेकर बहुत सारे मतभेद उभरकर सामने आये थे तथा भारत अमेरिकी परमाणु समझौते के कारण माना जा रहा था कि जनता, सरकार का विरोध करेगी लेकिन 2009 के आम चुनाव में जनमत सरकार के पक्ष में रहा। वर्तमान समय में बीटी कपास के बीज का मुद्दा, मुंबई में आतंकी घटना, बीमा बैंकिंग सेक्टर खोलने का मुद्दा, श्रीलंका में लिट्टे के अंत, अरूणाचल में चीनी घुसपैठ, पाकिस्तानी सेना द्वारा बार-बार सीमा उल्लंघन जैसे आदि मुद्दों के साथ-साथ पाकिस्तान, चीन, बांग्लादेश, श्रीलंका, नेपाल, म्यांमार, मालदीव व भूटान जैसे पड़ोसी देशों के साथ भारतीय विदेश नीति पर जनमत के प्रभाव को देखा जा सकता है।

हाल ही में चर्चा में आए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के मुद्दें, कुडनूकुलम परमाणु संयंत्र, चीनी सैनिकों की दौलत बेग ओल्डी में घुसपैठ, पाकिस्तानी सेना द्वारा भारतीय सैनिकों के सिर काटने की घटना के विरोध में जनता ने सोशल नेटवर्किंग साइटस व अन्य संचार माध्यमों द्वारा अपनी राय व्यक्त की है जिससे सरकार को अपनी नीतियों के प्रति पुन: विचार करने के लिये विवश होना पड़ा। विदेश नीति और बदलते अंतर्राष्टीय परिवेश के बीच राष्टीय राजनीतिक सर्वसम्मति जरूरी है और अधिक बड़े लोकतंत्र जहाँ सरकारों को लगातार जनता के विचारों का लोकप्रिय कानून बनाने की अनिर्वायता के साथ सामना करना पड़ता है वहाँ जनमत की लोकतंत्र में केन्द्रीय भूमिका होती है। वहीं लोकतांत्रिक व्यवस्था सफल व सार्थक मानी जाती है, जिसमें जनमत का सम्मान किया जाता है तथा जनता के हितों का पूरा ध्यान रखा जाता है। जनमत ही सरकार को दिशा-बोध कराता है।

21 वी सदीं के प्रारंभ में लगने लगा था कि भारतीय विदेश नीति निर्माण में जनमत लगातार विशेष भूमिका निभा रहा है। जनमत की भूमिका को हम लोकतंत्र के पाँचवें स्तंभ के रूप देख सकते है। जनता समाचार पत्रों, सार्वजनिक सभाओं, राजनीतिक दलों, राजनीतिक साहित्य, रेडियो, दूरदर्शन, शिक्षण संस्थाऐं, निर्वाचन और सोशल नेटवर्किंग साइटस जैसे - फेसबुक, ट्विटर, वॉटस अप, ब्लॉग के माध्यम से सरकार द्वारा बनाई गई किसी भी नीति या अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में किये गये कार्यो पर अपनी राय जरूर व्यक्त करती है।

निष्कर्ष : वर्तमान समय में हमें कई राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम देखने को मिल रहे है जिनमें दो राष्ट्रों के बीच सीमा विवाद, सीमा सुरक्षा, परमाणु हथियारों की होड़, आतंकवादी गतिविधियां, नि:शस्त्रीकरण आदि घटनाऐं विदेश नीति को सीधे-सीधे प्रभावित कर रही है साथ ही इससे अधिक विदेश नीति आंतरिक तत्वों व घरेलू स्थिति से अधिक प्रभावित हो रही है। वैश्विक घटनाक्रमों में ट्यूनीशिया, लीबिया व मिस्त्र जैसे देशों में जनक्रांति की भूमिकाऐं भी महत्वपूर्ण रही है।

आज हम भारत में चल रहे विभिन्न घटनाक्रमों में पाते है कि जनता अपनी राय अवश्य व्यक्त करती है चाहे वह मुंबई हमले का प्रश्न हो, चीन द्वारा दौलत बैग ओल्डी में किये गये अतिक्रमण का प्रश्न हो या प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का मुद्दा हो इन सभी मामलों पर जनता बहुत संवेदनशील है तथा वह अपने विचारों से सोशल नेटवर्किंग साइट्स जैसे- फेसबुक, ट्विटर, वॉटस अप, ब्लॉग, मीडिया व अन्य संचार माध्यमों द्वारा सरकार को अवगत कराती रहती है आमतौर पर किसी भी देश या समाज में घरेलू नीति के मुद्दों की अपेक्षा विदेश नीति निर्माण में अभिजात वर्ग का वर्चस्व देखने को मिलता है साथ ही बहुत से ऐसे साक्ष्य हमें देखने को मिल रहे है कि आम जनता अभी भी विदेश नीति निर्माण को लेकर अनभिज्ञ है।

नीति निर्माता चाहते है कि नीति निर्धारण में जनमत मुख्य भूमिका निभाऐं जो कि वह संचार माध्यमों के द्वारा उनका मत जानने का भी प्रयास करते है परन्तु हित समूह अड़चन पैदा करते है बहरहाल अभी भी ज्यादा समय नहीं हुआ है तथा ऐसे कई साक्ष्य बताते है कि भारतीय विदेश नीति को जनमत सीधे-सीधे प्रभावित करता है जिसका प्रभाव हम निर्वाचन में देख सकते है जैसे 2005 में भारत-अमेरिकी परमाणु समझौते के रूप में देख चुके है कि किस प्रकार इस समझौते के पश्चात् हुए लोकसभा चुनावों में जनता ने सरकार का पहले की अपेक्षा अधिक समर्थन करते हुए सरकार को बहुमत प्रदान किया। अत: 21 वीं सदीं को भारत की सदीं बनाना है तो देश में अंकुरित हो रहे जनमत के प्रति सरकार को सकारात्मक प्रतिक्रिया देनी ही होगी तथा घरेलू राजनीतिक झगड़े व स्वार्थ की राजनीति में कमी लाकर व देश की आंतरिक सुरक्षा एवं जनमत को विशेश महत्व देकर भारतीय विदेश नीति को सुदृढ़, शक्तिशाली तथा सफल बनाया जा सकता है।

संदर्भ :

1. वी.एन.खन्ना एवं लिपाक्षी अरोड़ा : भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग हाउस, नोएडा, 2013 पृ.क्र. 10-11।
2. यू.आर. घई : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सिद्धांत और व्यवहार, जालंधर, न्यू ऐकेडमिक पब्लिशिंग कं. 2008 पृ.क्र. 239।
3. आर.एस. यादव : भारत की विदेश नीति, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद 2002, पृ.क्र.37-38।
4. वी.एन.खन्ना एवं लिपाक्षी अरोड़ा : (पूर्वोक्त) पृ.क्र. 15।
5. देवेश कपूर : पब्लिक ओपिनियन एंड इंडियन फॉरेन पॉलिसी, इंडिया रिव्यू, वॉल्यूम 8, नं. 3, जुलाई-सितंबर 2009 पृ.क्र. 286।
6. गेना, सी.बी. : तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाऐं, वाणी एजुकेशन बु:स, नईदिल्ली,1985, पृ.क्र. 922।
7. देवेश कपूर : (पूर्वोक्त) पृ.क्र. 286-287।
8. वी.एन.खन्ना एवं लिपाक्षी अरोड़ा : (पूर्वोक्त) पृ.क्र. 15।
9. पुष्पेश पंत : भारत की विदेश नीति, टाटा मै:ग्रा हिल एजु.प्रा.लि., नईदिल्ली, 2013, पृ.क्र. 4.21।
10. वी.एन.खन्ना एवं लिपाक्षी अरोड़ा : (पूर्वोक्त) पृ.क्र. 17।
11. जगत मेहता : भारत की विदेश नीति (कल, आज और कल), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नईदिल्ली, 2008, पृ.क्र. 128।
12. जे. बंधोपध्याय : द मेकिंग ऑफ इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, नईदिल्ली, एलाइड पब्लिशर्स प्रा.लि. 1979 पृ.क्र. 132-133।

भारत में जन-आंदोलन एवं संवैधानिक मर्यादाऐं

डॉ. आभा तिवारी *

दुनिया में भारत एक सफल लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में पहचाना जाता है, हमने अपनी नीतियों से लोकतंत्र के परचम को बुलंदी तक पहुचाने में महती भूमिका निभाई है। लोकतंत्र के प्रति सम्मान हमारी सांस्कृतिक पहचान है। जिसे राजा-महाराजाओं ने भी स्वीकार किया और जनता की सेवा, सम्मान और रक्षा को सर्वोपरि समझा।

इसका गवाह हमारा स्वर्णिम इतिहास है। हमारे संविधान निर्माताओं ने लोक कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना के अनुरूप एक लोकतंत्रात्मक आदर्श विधान की रचना की। स्वतंत्र भारत में नागरिकों ने अपनी राजनीतिक जागरूकता, परिपक्वता एवं लोकतंत्र के प्रति अपनी गहरी आस्था का परिचय तो दिया लेकिन विभिन्नताओं वाले विशाल राष्ट्र में जनता की अभिव्यक्ति जनआंदोलनों के रूप में सामने भी आई।

लोकमत राजनैतिक दलों का आधार है। भारत में लोकतंत्र को मजबूत करने में राजनैतिक दलों ने प्रमुख भूमिका तो निभाई है, लेकिन उसके समानांतर जनआंदोलन ने भी समाज और राष्ट्र प्रभावित किया है। जातीय आंदोलन, भाषायी आंदोलन, पर्यावरण आंदोलन, जनजातीय आंदोलन, किसान आंदोलन, महिला आंदोलन, भ्रष्ट्रचार विरोधी आंदोलन और महिला उत्पीडन के खिलाफ उभरे जनआंदोलनों में जनता के रूख और उनके व्यवहार की अभिव्यक्ति लोकतांत्रिक व्यवस्था को चुनौती देती प्रतीत होती है। जनआंदोलन विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समूहों के लिए अपनी बात एवं समस्याएं रखने का बेहतर माध्यम बनकर तो उभरे लेकिन दूसरी ओर इन जनआंदोलनों में संसदीय लोकतंत्र के प्रति असंतोष की भावना भी प्रदर्शित हुई। इसी लोकतांत्रिक राष्ट्र में जनआंदोलन, नागरिक अधिकार और नागरिक स्वतंत्रता की भावना तो प्रदर्शित करते हैं, लेकिन लोकतांत्रिक संस्थाओं के प्रति अविश्वास चुनौतीपूर्ण प्रतीत होता है।

हमारे देश में जनआंदोलन की राजनीति के सूत्रपात का श्रेय महात्मा गांधी को दिया जा सकता है। गुलाम भारत की जनता को सत्याग्रह के माध्यम से जाग्रत करने का कार्य महात्मा गांधी ने किया। दुनिया की सबसे बड़ी जनक्रांति हमारी आजादी की लडाई ही थी जिसमें महात्मा गांधी के नेतृत्व में लाखों लोग अहिंसात्मक आंदोलन में उतरे। उनकी एक आवाज पर लोग सड़कों पर आ जाते थे। वे उपवास करते तो आधा देश उपवास करता। ऐसे अद्भुत, चमत्कारित व्यक्तित्व वाले महात्मा गांधी जिन्होंने अहिंसात्मक अनशन व आंदोलन से एक ऐसे साम्राज्य जिनका सूर्य अस्त नहीं होता था उसका सूर्य अस्त कर देश को आजादी दिलवाई।

इस तरह जनआंदोलन के माध्यम से विश्व इतिहास में एक नए युग की शुरूआत हुई। आज भी अत्याचार के विरूद्ध, भ्रष्ट सरकार के विरूद्ध जनक्रांति के लिए गांधी के बताए अहिंसावादी सिद्धांत का पालन किया जाता है। स्वतंत्रता के पश्चात देश में कई जनआंदोलन हुए लेकिन राष्ट्रीय जनआंदोलन भ्रष्टाचार के विरूद्ध था। जब देश में भ्रष्ट अधिकारियों एवं भ्रष्ट राजनेताओं ने देशवासियों पर अत्याचार एवं शोषण करना प्रारंभ कर दिया तो जनता में यह भावना बलवती हो गई कि भ्रष्टाचार के विरूद्ध आंदोलन किया जाए। जयप्रकाश नारायण ने इसका बीडा उठाया ओर उन्होंने बिहार के मुख्यमंत्री के विरूद्ध जनआंदोलन प्रारंभ किया।

बिहार की जनता का भरपूर समर्थन मिला और इसी प्रेरणा में गुजरात के नवयुवक भी इस आंदोलन में शामिल हो गए और देखते-देखते संपूर्ण देश के युवा जे.पी. के साथ हो गए। जे.पी. जननायक बन गए। जयप्रकाश का जनआंदोलन संपूर्ण क्रांति में परिवर्तित हो गया। इस आंदोलन को दूसरी आजादी का नाम दिया गया। 20 माह के आपातकाल के पश्चात चुनाव हुए और सत्तारूढ सरकार का पतन हो गया। जेपी का आंदोलन सफल हुआ। सत्ता परिवर्तन हुआ और मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने।

यह भारत के राजनीतिक इतिहास का सबसे बड़ा बदलाव था जो कि जनता की ताकत को जनआंदोलन के रूप में साबित करता है। जनआंदोलन जनता का ऐसा आक्रोश होता है जो विभिन्न या कुछ विशेष समस्याओं के प्रतिक्रियास्वरूप सामने आता है। जब विभिन्न राजनैतिक प्रमाण विफल हो जाते है और आगे सुनवाई की कोई आशंका नही रह जाती तब जनआंदोलन संयमित या असंयमित भीड के रूप में जो कभी अनुशासित भी होती है, कभी अवज्ञा रूप भी, कभी हिंसक भी हो सकती है, तो कभी अहिंसक रूप में सामने आती है। यदि इतिहास पर दृष्टिपात करें तो कई ऐसे जनआंदोलन हुए जिनका सकारात्मक प्रभाव देश की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र पर पड़ा। पिछले 65 वर्षो से भारत की शासन पद्धति संसदीय ढांचे की लोकतांत्रित व्यवस्था के अंतर्गत संचालित हो रही है।

अब तक 15 चुनावों में हमारी संसदीय राजनीतिक प्रणाली को शक्ति व स्थायीत्व प्रदान किया है। संसदीय लोकतंत्र में जनता सर्वोपरि है। संविधान सभी में जब संसदीय शासन प्रणाली का केन्द्र बिंदु राष्ट्र की संसद है। प्रशासन की बागडोर चाहे किसी भी वर्ग या दल के हाथ में हो जब तक संसद के अधिकर अक्षुण और कार्य क्षेत्र एवं कार्य संचालन की दृष्टि से उसका स्वरूप संप्रभु है वह राष्ट्र बडे से बडे संकट का सामना कर सकता है। ''भारत में संसद नींव का वह पत्थर है जिस पर लोकतंत्र की इमारत टिकी है। संसद हमारे देश का ऐसा केन्द्र बिंदु है जहां जनता की आत्मा निवास करती है। संसदीय व्यवस्था के संबंध में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का यह कथन भी महत्वपूर्ण है कि ''संसद की असली संप्रभुता इसी में निहित है कि वह अपने और जनता के अधिकारों के मध्य भेद न करे।

यदि प्रजातंत्र को स्थिर एवं सफल बनाना है तो संसद को अपने अधिकारों की रक्षा के साथ प्रजा की आवाज सुनने को भी सदैव तैयार रहना चाहिए।'' लोकतांत्रिक व्यवस्था में जनआंदोलन सिविल सोसायटी द्वारा सरकार पर नैतिक नियंत्रण स्थापित करने का सर्वश्रेष्ठ प्रयास होता है। राज्य का नैतिक नियंत्रण हेतु जनआंदोलन का सर्वप्रथम उल्लेख प्लेटो ने किया, जिसको व्यवहाकिर एवं प्रचलित स्वरूप जॉन लॉक ने दिया। भारतीय संदर्भ में महात्मा गांधी, जयप्रकाश नारायण एवं अन्ना हजारे द्वारा जनआंदोलनों का सार्थक प्रयोग किया गया है। वर्तमान में अन्ना हजारे, बाबा रामदेव एवं अरविंद केजरीवाल द्वारा संचालित जनआंदोलनों में सोशल मीडिया का महत्वपूर्ण

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान), शासकीय माधव कला वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

योगदान है। सोशल मीडिया द्वारा संचालित यह जनआंदोलन केन्द्रीय नेतृत्व के स्थान पर अनेक समूहों एवं वर्गो द्वारा संचालित किए जा रहे है। फलस्वरूप संवैधानिक मर्यादाओं के अतिक्रमण का खतरा उत्पन्न हो रहा है। युवा शिक्षित वर्गो के इन जनआंदोलनों में अभी ग्रामीण कृषक एवं मजदूर वर्ग की सहभागिता नगण्य है जो हमारी जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत है।

उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णयों में कहा है कि स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति के अधिकार किसी भी जनतांत्रिक संस्था की जीवनरेखा है। इसका दमन या उपहास करना जनतंत्र की मौत की घंटी ही नहीं, तानाशाही का खुला निमंत्रण है। एक नागरिक का आलोचना करने का अधिकार अनुच्छेद 19 (1) (अ) द्वारा प्रदत्त मूलभूत अधिकारों का अभिन्न अंग है। हमारा संविधान विचार और विचारधाराओं से मुक्त संचार व्यापार की अनुमति देता है। विचारों के नियंत्रण को हमारी संवैधानिक योजना में कोई स्थान नहीं है। न्यायपालिका के बाद यदि हम जनआंदोलन में प्रजातंत्र के चौथे और सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ मीडिया की भूमिका पर प्रकाश डाले तो हम कह सकते है कि जेपी आंदोलन के समय आपातकाल के कारण मीडिया काली कोठरी में कैद थी जिसके चलते आंदोलन के परिपेक्ष्य में उसकी भूमिका संक्षिप्त हो गई। यदि उस समय मीडिया स्वतंत्र होती तो शायद उस आंदोलन से देश की तस्वीर कुछ और होती।

''भारतीय संविधान हम भारत के लोगों द्वारा बनाया गया है। हम भारत के लोग चाहे संसद में हो या विधानसभा में सत्ता में या विपक्ष में जनप्रतिनिधियों या सड़कों पर चलने वाले आमजन सभी का आचरण हम भारत के लोगों द्वारा बनाए गए संविधान से मर्यादित है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता स्वच्छंदता न बन जाए एवं बहुमत का शासन निरंकुश ना हो, यह दोनों ही बातें जरूरी है। लोकतंत्र में असहमति का अवसर नहीं दिया जाता या आलोचनाओं को कुचलने का प्रयास होता है तो जनभावनाएं जनआंदोलन के रूप में अभिव्यक्त होती है। महात्मा गांधी ने कहा है कि ''जनतंत्र ऐसा मंच नहीं है जिसमें लोग भेड़ों जैसा अभिनय करते है''।

जनतंत्र में मानवीय अभिव्यक्ति एवं चेतना को दमित करने की अनुमति नहीं हो सकती। वर्तमान में भारत में कई ऐसे मुद्दे या परिस्थितियां निर्मित हुई जिनमें सुधार के लिए जनआंदोलन प्रांरभ किए गए। हाल ही में 5 अप्रैल 2011 और 16 अगस्त 2011 को अन्ना हजारे का जनलोकपाल विधेयक के लिए जनआंदोलन दिल्ली में गैंगरेप के संदर्भ में इंडिया गेट पर जनसैलाब का उमडना आदि जनआंदोलन सरकार को सुशासन में कमी या सोंध की ओर अंकित करते है पर कुछ राजनैतिक दबाव सकारात्मक परिवर्तन लाने वाले इन आंदोलनों को या तो 144 धारा, अश्रुगैस या लाठियों के माध्यम से अभिव्यक्ति को मौन रूप प्रदान कर देते है जो लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली को जनता द्वारा जनता के लिए जनता का शासन ना होकर विपरीत रूप से परिभाषित करते है। इन जनआंदोलनों के माध्यम से जो मुद्दे उठाए जाते है। यदि उन पर गौर किया जाए और सुधार किया जाए तो वह दिन दूर नहीं जब जनआंदोलन लोकतंत्र के अस्तित्व के लिए खतरा ना होकर परिवर्तन लाने वाला एक शस्त्र सिद्ध होगा।

स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की दूरी का सही आंकलन कर राष्ट्रीय चेतना ऊर्जा का समुचित उपयोग परिणाममूलक सकारात्मक नीतिसंगत, गरिमामय जनआंदोलन जनसमस्याओं के निराकरण में महती भूमिका निभाने में सक्षम है। यह वह संगठित प्रयास है जो जनसमूह में वैचारिक क्रांति लाने और समस्या निराकरण उपायों का स्वमेव अनुपालन संभव बनाते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अग्रवाल गोपालकृष्ण, शर्मा श्रीनाथ, भारत में सामाजिक परिवर्तन एव समस्याऐं, आगरा बुक स्टोर, आगरा, 1987
2. इण्डिया टुडे, स्वतन्त्रता दिवस विशेषांक, अगस्त, 2012
3. कश्यप,सुभाष, हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,नई दिल्ली,1995
4. चौहान श्यामसुंदर, भारत में नक्सलवाद, प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर 2010
5. जयप्रकाश नारायण, राजनैतिक और समाजिक विचार, रुपा बुक्स जयपूर1987
6. पाण्डेय,श्याम कृष्ण, भारतीय छात्र आन्दोलन का इतिहास स्वतन्त्रता के बाद भाग-2,दिल्ली साहित्य सम्मेलन प्रयाग इलाहाबाद, 2008
7. फड़िया बी.एल., फड़िया कुलदीप, राजनीति विज्ञान, प्रतियोगिता साहित्य,2006
8. फड़िया, बी.एल.,भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन, आगरा,2003
9. भारत का संविधान एक परिचय : डी.डी. बसु
10. भारत का संविधान, विधि, न्याय एवं कम्पनी कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, विधायी विभाग, राजभाषा खण्ड, नयी दिल्ली, 1991
11. मिश्रा (2011) : महिला सशक्तिकरण : कानून, नीतियां एवं कार्यक्रम, समाज कार्य एवं महिला सशक्तिकरण, न्यू रॉयल बुक कम्पनी लखनऊ, पृ0156-177,
12. सिंह, बी.एन. एवं जन्मेजय (2005) : भारत में सामाजिक आन्दोलन, रावत पब्लिकेशन,
13. सोनी, डी0के0 (2012) : महिला सशक्तिकरण में महिला आन्दोलनों की भूमिका, ए जर्नल ऑफ एशिया फॉर डेमोक्रेसी एण्ड डेवलेपमेंट, वाल्यूम 12, 2, पृ0 106-108,
14. श्रीवास्तव ए.आर.एन., भारतीय सामाजिक समस्याऐं, के.के. पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद

****

भारत में नक्सलवाद का इतिहास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

जगदीश मासोदकर *

भारतीय समाज के आर्थिक एवं सामाजिक परिदृष्य पर नजर डाले तो हमें पता चलता है कि आज तक पिछड़ी जनजातियों का विकास नहीं हो पाया है। भारत में नक्सलवाद के इतिहास को जानने के लिए साम्यवाद का आरंभ जानना होगा इसके लिये विश्व में हमें साम्यवाद के विस्तृतीकरण के इतिहास को भी जानना होगा और विश्व में साम्यवाद की शुरूआत औद्योगिक क्रांति से हुई है जो 19 वीं शताब्दी की घटना मानी जाती है जिसमें पूँजीपतियों द्वारा मजदूरी वर्गो का सामाजिक, आर्थिक शोषण भी किया गया। साथ ही मजदूरों के अशिक्षित होने के कारण पूँजीपति इन पर अधिकार करते थे।

इस शोषण के कारण ही कार्लमार्क्स ने संपूर्ण परिस्थितियों के अध्ययन में एंजिलस की भी सहायता ली और दास कैपिटल में मजदूरों व पूँजीपतियों की वास्तविक स्थिति का उल्लेख किया है। इसकी प्रेरणा के कारण ही नवचेतना का संचार हुआ और सन् 1950 में चीन में च्यांग काई शेक को माओत्से तुंग के नेतृत्व में हुई क्रांति के द्वारा पदच्युत कर दिया।[1] इसके पश्चात् मार्क्सवादी, लेनिनवादी हिंसा को अपना धर्म बना लिया और उनका मानना था कि हम हिंसा के माध्यम से ही हम अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकते है और इसके बाद चीनी नेतृत्व ने इस कुकृत्य का ''पीकिंग रिव्यू'' में प्रकाशित लेख में स्पष्ट समर्थन किया और इसी के साथ ही साम्यवाद की स्थापना हुई।[2]

आजादी के तीन साल बीत जाने के बाद डॉ. अंबेडकर ने कहा कि राजनीतिक स्वतंत्रता तब तक अर्थहीन है जब तक कि आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय की स्थापना नहीं की जा सकती।[3] स्वतंत्रता के पूर्व भी 150 साल तक विभिन्न जनजातियों, किसानों द्वारा अपने अधिकारों के विद्रोह हुए है इसलिये पिछड़ी हुई जनजातियों के विकास को प्राथमिकता देनी चाहिये। लेकिन ऐसा नहीं हुआ और आजादी के इतने वर्षो बाद भी पिछड़ी जनजातियों की अनदेखी कि जा रही है। इसमें हमारे शासन की अनुचित नीतियों के कारण ही हमारे देश में नक्सलवाद का उदय व्यवस्था की परिणिति है साथ ही प्रशासन ने इन पिछड़े क्षेत्रों के साथ दुर्व्यवहार के कारण ही नक्सलवाद शब्द की शुरूआत 500 वर्ग किमी. में फैले पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के छोटे से गॉव से हुई है और यह 3 पुलिस थानों के अधीन था - नक्सलबाड़ी, खासीबाड़ी और फांसीदेवा[4] ये स्थान अतिसंवेदनशील एवं महत्वपूर्ण है क्योंकि इन स्थानों पर उक्त मानव समुदायों की कला, संस्कृति बसती है।

यहां पर नक्सलवाद का उद्‌भव एवं विकास व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं से आरंभ जीविकोर्पाजन हेतु आदिवासियों में विशेषकर संथाल, ओरांव, मुण्डा और राजवंशी समुदाय के लोग जमींदारों के स्वामित्व वाली जमीन पर ठेके पर काम करते थे।[5] जमींदारों द्वारा आदिवासी मजदूरों, सामाजिक, आर्थिक, मजदूरों को उचित पारिश्रमिक नहीं दिया जाकर उनका शोषण किया जाता था। कभी-कभी आदिवासी मजदूरों को भूखे ही रहना पड़ता था और जमींदार द्वारा सरकार की सहायता से आदिवासियों की जमीन पर जबरन कब्जा किया जाता था, और इन्हीं परिस्थितियों के कारण 2 मार्च 1967 को पश्चिम बंगाल के छोटे से गॉव नक्सलबाड़ी में एक आदिवासी किसान बिमल को कोर्ट से आदेश मिलने के बावजूद उसकी स्वयं की जमीन पर कब्जा नहीं मिला और जमींदारों ने उसकी जमीन पर जबरन कब्जा कर लिया। इस घटना के विरोध में पूरे गॉव वालों ने जमींदार के कब्जे वाली भूमि को अपने अधीन कर लिया और जमींदार ने प्रशासन के साथ मिलकर गाँव वालों पर कार्यवाही की जिसमें आदिवासी लोग मारे गए इससे गाँव के किसानों का विरोध और तेज व हिंसात्मक हो गया। इनके सहयोग के लिये सिलीगुड़ी किसान सभा के प्रमुख जंगल संथाल ने ग्रामीणों का नेतृत्व किया और उनके अधिकारों व हक तथा भूमिहिनों को जमीन दिलाने का आंदोलन चलाया और किसी कारण से नक्सलबाड़ी की इस घटना के कारण ही इसका नाम नक्सलवाद पड़ा।[6] साथ ही पिछड़े आदिवासी क्षेत्रों में जो कालान्तर में आंदोलन का प्रतिरूप ले लिया। यह नक्सलवादी गतिविधियां आगे बड़ी जिसके आदर्श नक्सलवाद की त्रिमूर्ति- चारू मजूमदार, जंगल संथाल, कानू सन्याल ने नक्सलबाड़ी के इस आंदोलन को आगे बढ़ाया।

2. अध्ययन के उद्देश्य :-

1. भारत में नक्सलवाद के इतिहास का विश्लेषण करना।
2. भारत में नक्सलवाद का आदिवासियों पर प्रभावों का अध्ययन करना।

3. शोध प्रविधि - प्रस्तुत शोध पत्र में भारत नक्सलवाद का इतिहास व आदिवासियों पर प्रभावों को जानने के लिए द्वितीयक समंकों में नक्सलवाद के इतिहास से संबंधित, पुस्तकों, समाचार-पत्रों में प्रकाशित लेखों-आलेखों के द्वारा अध्ययन कर शोध के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए भी सभी पहलुओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

4. साहित्य समीक्षा :- भारत में जब नक्सलवाद का प्रभाव और विस्तार बढ़ने लगा तब इस क्षेत्र में भी शोध कार्य व अध्ययन किये जाने लगे। सुमंत बैनर्जी ने अपनी पुस्तक ''भारत में नक्सलवाद'' इस पुस्तक में नक्सलवाद की उत्पत्ति अति पिछड़े तथा दूर-दराज गाँव नक्सलबाड़ी में घटित घटना तथा प्रभावशाली बाहरी व्यक्तियों, भू-स्वामियों, सूदखोरों-महाजन तथा व्यापारी द्वारा आदिवासियों के शोषण का उल्लेख किया।

सच्चिदानंद पाण्डे ने अपने पुस्तक ''नक्सल-वायलेंस : एसोशियो पॉलिटिकल स्टडी'' में बिहार राज्य के संदर्भ में समाज में व्याप्त भ्रान्तियों को समाप्त करने के प्रयास साथ ही नक्सलवादी आंदोलन का एक एकल विषयक अध्ययन और क्रान्तिकारी आंदोलन के संबंध में जो नकारात्मक विचार है उनका अध्ययन किया।

विप्लव दासगुप्ता ने अपनी पुस्तक ''द नक्सलाइट मूवमेंट'' नामक पुस्तक में कई मौलिक प्रश्नों को उठाने की कोशिश की जिनमें नक्सली कौन थे, चीनी विचारधारा आदि नक्सली इतिहास के संबंध में अपने विचार रखें है और आदिवासी मजदूरों, किसानों की दुर्दशा के लिए प्रशासन जिम्मेदार है व नक्सलवादी आंदोलन के शुरूआत के कारणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया। नागेश्वर प्रसाद की पुस्तक ''रूरल वायलेंस इन इंडिया'' में ग्रामीण भारतीय जीवन और भूमिहीन मजदूरों का पूँजीपतियों के द्वारा शोषण और जाति आधारित कारणों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है।

* शोधार्थी– अध्ययन शाला, राजनीति शास्त्र, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

शिव कुमार मिश्र की पुस्तक ''काकोरी से नक्सलबाड़ी'' में उत्तरप्रदेश के नक्सलवादी आंदोलन के प्रारंभिक चरणों के कारण व समाजवाद का उल्लेख करते हुए बताया है कि नक्सलवादी आंदोलन में बढ़ती जनभागीदारी का उल्लेख किया गया। वीरेन्द्रसिंह बघेल ने अपनी पुस्तक ''नक्सलवाद समस्या और समाधान'' में नक्सलवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व प्रारंभिक कारणों व राजनीतिक विस्तार, नक्सली मोर्चो का वर्णन और नक्सली हिंसा आदि का उल्लेख किया है।

जनजाति क्षेत्रों की आर्थिक सामाजिक व्यवस्था और नक्सली संगठन, केन्द्र-राज्य संबंध, नक्सलवाद के वर्तमान कारणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। उपरोक्त साहित्य समीक्षा से स्पष्ट है कि भारत में नक्सलवाद के इतिहास, संगठन, किसान, मजदूर व आदिवासियों के आंदोलनों और शासन द्वारा आर्थिक सामाजिक शोषण के फलस्वरूप ही आज नक्सलवाद का विस्तार इतना फैलता जा रहा है इस क्षेत्र में अध्ययन और शोध कार्य जारी है।

भारत में नक्सलवाद का आदिवासियों पर प्रभाव – देश में नक्सलवाद का आदिवासियों पर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक प्रभाव पड़ा और धीरे-धीरे आज नक्सलवाद भारत के किसी एक राज्य में नहीं बल्कि भारत के बहुत बड़े भू-भाग पर फैल चुका है और इसीलिये हमारे देश के प्रधानमंत्री को कहना पड़ा की यह वामपंथी उग्रवाद का बढ़ता विस्तार देश के आंतरिक सुरक्षा के लिये चुनौती है।7 और आज देश के 20 राज्यों के 223 जिलों में फैल चुका है। [8]

स्त्रोत - *www.naxaliteinindiamaps.com*

यदि हम देश के मानचित्र पर देखें तो नक्सलवाद मुख्यत: छत्तीसगढ़, झारखण्ड बिहार, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, म.प्र. व महाराष्ट्र इसके प्रमुख केन्द्र है। केरल, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश, गुजरात, उत्तरांचल, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल तथा हरियाणा भी नक्सलवाद की चपेट में आ चुके है।[9]

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत में नक्सलवाद, आदिवासी क्षेत्रों में विकास कार्यो का क्रियान्वयन न होना व उनकी जमीनों, जंगलों पर शासन के अधिकार करने व उनको शोषण के कारण ही नक्सलवाद आज भारत के कोने-कोने में फैलता ही जा रहा है। आदिवासी क्षेत्रों में नक्सलवाद का बढ़ता प्रभाव सरकार की चिंता का मुख्य विषय है लेकिन आज भी भारत में नक्सलवादी आंदोलन वहीं है जहां जल, भूमि, जंगल और खनिज संपदा है।[10] इसके बावजूद आज भी देश में बहुत बड़ा ग्रामीण आदिवासी क्षेत्र विकास से महरूम है। विकास के नाम पर जल, जंगल, जमीन से आदिवासियों को हटाया जा रहा है जबकि आदिवासियों का जीवन, जंगलों में ही पलता बसता है साथ ही जंगलों में ही रहना पसंद करते है।

इन्हीं के सहारे वे अपनी सभ्यता संस्कृति को सहेजते है। आदिवासी व जंगल की जमीनों को कार्पोरेट जगत को दिया जाता है इससे आदिवासियों का तो शोषण होता है11 साथ में आज जल-जंगल-जमीन तेजी से लुप्त होते जा रहे है जिससे संपूर्ण मानव जीवन पर खतरा बढ़ता जा रहा है। वह इन क्षेत्रों में सरकारी अधिकारियों का अपने कर्तव्यों का सही से निर्वाह व विकास ना होने के कारण इन क्षेत्रों में नक्सलवाद का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है और आदिवासियों पर इनके प्रभाव के कारण अपने अधिकारों के लिये आज हिंसा का रास्ता अपनाता जा रहा है।

भारत में नक्सलवाद का इतिहास देखें तो माओवादियों का नेटवर्क वैश्विक है और जर्मनी में इनकी बढ़ी बैठकें होती है। साथ ही ये पूरी दुनिया में लाल झण्डे फहराना चाहते है। विदेशों में भारतीय माओवाद के पक्ष में बैठकें होती रहती है।12 इससे पता चलता है कि आज वर्तमान में नक्सलवाद का नेटवर्क देश व दुनिया में फैलता जा रहा है और नक्सलवादियों के आदिवासी क्षेत्रों में आज इनके प्रभाव के कारण कोई भी सरकारी अधिकारी इन लोगों का शोषण व भ्रष्टाचार करने से डरता है व नक्सलवाद के कारण ही आज आदिवासी समुदाय अपने अधिकारों और हक की लड़ाई लड़ रहा है तथा नक्सलियों को विदेषों से आर्थिक मदद मिल रही है।[13] इससे ज्ञात होता है कि नक्सलवाद का जनाधार व नेटवर्क हमारे देश में कितना फैल चुका है।

निष्कर्ष व सुझाव – भारत एक कृषि प्रधान देश है भारत की 80 प्रतिशत आबादी गॉव में निवास करती है। देश में विभिन्न जाति, संप्रदाय के लोग निवासरत है। भारत एक लोकतांत्रित देश है फिर भी नक्सलवाद का विस्तार बढ़ता ही जा रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है क्या आज भी हम पूर्ण रूप से लोकतांत्रिक देश की संकल्पना को पूर्ण नहीं कर पाये? या फिर किन्हीं निजी व सामूहिक स्वार्थो के चलते हम अति पिछड़े आदिवासियों को मुख्यधारा से नहीं जोड़ पाये?, क्यों आज ये लोग अपने अधिकारों व आधारभूत विकास के लिये हथियार उठाने पर मजबुर हुए है?

समस्या व समाधान इसी प्रश्न के मूल में है। यह यक्ष प्रश्न बहुत सारी संभावनाओं और समाधानों की ओर संकेत कर रहा है। तथा प्रशासन की लापरवाही के कारण जल, जंगल व जमीन पर आदिवासियों का स्वामित्व नहीं होने व आदिवासियों के आधारभूत विकास हेतु पुर्नवास परियोजनाओं व रोजगारोन्मुखी विकास पर अत्यधिक ध्यान नहीं दिया गया इसी कारण से नक्सलवाद का प्रारंभ हुआ और निरंतर आज नक्सलवाद का प्रभाव देश के आदिवासियों पर प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

संदर्भ:-

1. मिश्रा ,एस.के : नक्सलवाद, के, डब्ल्यू. पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2010 पृष्ठ.क्र. 37-38।
2. दीनमान, 8 नवम्बर 1970
3. चतुर्वेदी, प्रतिमा : नक्सलवाद आतंक या आंदोलन, वाईकिंग बुक्स प्रकाशक, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2011, पृ.क्र. 10।
4. पंड़िता, राहुल : सलाम बस्तर, गोपसंस पेपर्स लि., नोएडा, 2011 पृ.क्र.15।
5. पूर्वोक्त (पंड़िता, राहुल) पृ.क्र. 10, 14।
6. बघेल, वीरेन्द सिंह : नक्सलवाद, समस्या और समाधान, स्वास्तिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण,नई दिल्ली, 2011, पृ. क्र. 115।
7. सक्सेना विवेक, राजेश सुशील : नक्सली आतंकवाद, प्रभात प्रकाशन, नईदिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ.क्र. 15।
8. पूर्वोक्त (कुन्दन, लालेन्द्र कुमार) पृ.क्र. 1।
9. पूर्वोक्त (मिश्रा, एस.के.) पृ.क्र. 2।
10. पूर्वोक्त (मिश्रा, एस.के.) पृ.क्र. 151।
11. राय, अरूंधति : वॉकिंग विद द कॉमरेड्स, पेंग्विन बुक्स पब्लि. नईदिल्ली, 2010, पृ.क्र. 3,8,10।
12. नईदुनिया 2 जून 2013 पृ.क्र. 1।
13. नईदुनिया 3 जून 2013 पृ.क्र. 10।

- लालेन्द्र कुमार कुन्दन : नक्सलवाद, उद्भव और विकास, बी.के. तनेजा, क्लासिकल पब्लि. नईदिल्ली, 2010।
- नागेश्वर प्रसाद : रूरल वायलेंस इन इंडिया, वोहरा पब्लिशर्स, इलाहाबाद, 1985।
- शिव कुमार मिश्र : काकोरी से नक्सलबाड़ी, विनय प्रकाशन, कानपुर, 2007।

****

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (सार्क) 1985-2011

डॉ. नरेन्द्र ओझा *

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्राय: यह कहा जाता है कि नस्ल, संस्था, आर्थिक हित, राजनीतिक हित, सांस्कृतिक हित आदि बातों में समानता रखने वाले राज्यों का संगठन विश्वव्यापी संगठन की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ और शांति को बनाये रखने वाला होता है और यदि उपरोक्त समानता रखने वाले राज्य एक ही क्षेत्र में हो संगठन तुलनात्मक रूप से अधिक सक्षम होता है। यही कारण है कि विश्वव्यापी सामूहिक सुरक्षा की तुलना में एक विशिष्ठ प्रदेश की सुरक्षा का संगठन बनाना अधिक सुगम होता है।

इस प्रकार के अनेक प्रादेशिक संगठन विश्व की शांति में बड़े सहायक सिद्ध हो सकते हैं। यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की धारा 52 में विभीन्न क्षेत्रों और प्रदेशों के लिए संघ के उद्देश्यों और सिद्धांतों के अनुकूल प्रादेशिक संगठनों की न सिर्फ सत्ता स्वीकार की गई है बल्कि इन्हें संघ के चार्टर में भी स्थान दिया गया है। पिछले कुछ दशकों में विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात विश्व के अधिकांश हिस्सों में ऐसे संगठन बहुतायत में बने है। दक्षिण एशिया के भी सात देशों भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, मालदीव ने मिलकर 1985 में एक संगठन की स्थापना की। भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से समानता रखने वाले इन देशों ने अपने संगठन का नाम दिया- दक्षिण एशियाई सहयोग संगठन'' इस संगठन की स्थापना के समय इसके सदस्य देशों के सम्मुख यही मुख्य उद्देश्य था कि परस्पर सहयोग एवं मैत्री द्वारा न सिर्फ स्वयं की आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक समस्याओं को सुलझाया जाय वरन् अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के संदर्भ में भी समान दृष्टिकोण अपनाया जाए।

'सार्क' (दक्षेस) का पूरा नाम 'साउथ एशियन ऐसोसिएशन फॉर रीजनल को-ऑपरेशन अर्थात दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ है। 7 एवं 8 दिसम्बर 1985 को ढाका में दक्षिण एशिया के 7 देशों के राष्ट्राध्यक्षों का सम्मेलन हुआ तथा 'सार्क' की स्थापना हुई। ये देश है भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका एवं मालदीव। यह दक्षिण एशिया के सात पड़ोसी देशों की विश्व राजनीति में क्षेत्रीय सहयोग की पहली शुरूआत है। बांग्लादेश के तत्कालीन राष्ट्रपति एच.एम. इरशाद को प्रथम अध्यक्ष बनाया गया।

घोषणा पत्र में संगठन के उद्देश्यों तथा इसको प्राप्त करने के सिंद्धातों का वर्णन किया गया। सदस्य राष्ट्रों के बीच सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक, तकनीकी, सहयोग के विकास को उद्देश्य माना गया। सार्क का द्वितीय शिखर सम्मेलन बैंगलोर में 16-17 नवम्बर 1986 को सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन मे नशीले पदार्थो की तस्करी को रोकने, पर्यटन के विकास, रेडियो दूरदर्शन प्रसारण पर जोर दिया गया।

सार्क का तीन दिवसीय तृतीय शिखर सम्मेलन नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में 4 नवम्बर 1987 को हुआ। इस सम्मेलन की मुख्य विशेषता रही, आतंकवाद की समस्या पर सभी राष्ट्रों ने खुलकर विचार किया।

सार्क का चतुर्थ शिखर सम्मेलन (29-31 दिसम्बर 1988) को सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में परमाणु नि:शस्त्रीकरण पर सभी राष्ट्रों ने बल दिया।

सार्क का पांचवा शिखर सम्मेलन 23 नवम्बर 1990 को मालदीव की राजधानी माले में 5वां शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में एशियाई देशों के क्षेत्रीय सहयोग पर सभी राष्ट्र एकजूट थे।

सार्क का छठा शिखर सम्मेलन 21 दिसम्बर 1991 को कोलम्बों में छठा शिखर सम्मेलन संपन्न हुआ मानव अधिकार, गरीबी उन्मूलन मुख्य बिंदु रहे।

सार्क का सातवां शिखर सम्मेलन 10 अप्रैल 1993 को बांग्लादेश का राजधानी ढाका में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन में दक्षिण एशियाई पड़ोसियों के अन्तर क्षेत्रीय व्यापार पर बल दिया।

सार्क का आठवां शिखर सम्मेलन 3-4 मई 1995 को भारत की राजधानी नई दिल्ली में संपन्न हुआ, आतंकवाद एवं गरीबी के खिलाफ युद्ध की घोषणा दिल्ली घोषणा का मुख्य उद्देश्य था।

सार्क का नौवा शिखर सम्मेलन 12-14 मई 1997 को मालदीव की राजधानी माले में संपन्न हुआ, दक्षिण एशियाई क्षेत्र में शांति एवं स्थिरता का समर्थन किया।

सार्क का दसवां शिखर सम्मेलन 29-31 जुलाई 1998 को कोलम्बों में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन में व्यापार एवं निवेश के प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने के महत्वपूर्ण निर्णय दिये गये।

सार्क का ग्यारवां शिखर सम्मेलन जनवरी 2002 में काठमांडू में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन में आतंकवाद को समाप्त करने पर जोर दिया गया।

सार्क का 12वां शिखर सम्मेलन 4 से 6 जनवरी 2004 को इस्लामाबाद में आयोजित किया गया, गरीबी उन्मूलन, जनसंख्या नियंत्रण, महिलाओं के सशक्तीकरण पर जोर दिया गया।

सार्क का 13वां शिखर सम्मेलन 12-13 नवम्बर 2005 को ढाका में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन में आतंकवाद की समाप्ति, निर्धनता निवारण पर फोकस केन्द्रित किया गया।

सार्क का 14वां शिखर सम्मेलन 3-4 अप्रैल 2007 को नयी दिल्ली में आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में खाद्यान्न भंडार बनाने एवं सार्क का विकास पर जोर दिया।

सार्क का 15वां शिखर सम्मेलन 2-3 अगस्त 2008 को कोलम्बों में सम्पन्न हुआ। आतंकवाद इस सम्मेलन पर छाया रहा।

सार्क का 16वां शिखर सम्मेलन 28-29 अप्रैल 2010 को भूटान की राजधानी थिम्पू में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन में सदस्य राष्ट्र आतंकवाद से निपटने, क्षेत्रीय व्यापार प्रतिबंध समाप्त करने पर एक जूट थे।

संगठन से सम्बन्धित विभीन्न गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता रहा है। सार्क शिखर सम्मेलन की सिफारिशों को भारत एवं अन्य देशों के द्वारा संयुक्त रूप से क्रियान्वित की गयी है। लेकिन आज आवश्यकता इस बात की है कि सार्क के सभी राष्ट्र एकजूट होकर के अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर सार्क देशों द्वारा सर्व सम्मत दृष्टिकोण अपनाये एवं द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय सहयोग को बढ़ावा देवे एवं आतंकवाद जैसे नासूर को समाप्त करने के लिए एकजूट होकर के कार्य करें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति - डॉ. प्रभुदत्त शर्मा
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध - डॉ. हरिदत्त वेदालंकार
3. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध - डॉ. मथुरावाला शर्मा
4. एशियन रिकार्डर, इंडिया क्रालेली, रीजनलिज्म इन इंटरनेशनल पॉलिटिक्स, फ्रन्टलाईन, न्यूजवीक, इंडिया टूडे, हिन्दुस्तान टाईम्स

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र), शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर (म.प्र.) भारत

भारत में संसदीय लोकतंत्र का विकास

डॉ. अनिल कुमार जैन *

भारत में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना सिर्फ आधुनिक राजदर्शन की देन नहीं है। हमारे यहां प्रजातंत्रीय शासन व्यवस्था वैदिककाल से निरन्तर चली आ रही है। वैदिककाल (3000 ई.पू.) में हमें लोकतंत्र एवं लोकतांत्रिक संस्थाओं के दर्शन की विवेचना वेद साहित्य में उपलब्ध होती है। इसके बाद भी ऐतरेय ब्राह्मण पाणिनि के अष्टाध्यायी आदि में भी गणतंत्र शासन प्रणाली के उल्लेख मिलते है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तो विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका की संसदीय परम्परा की अवधारण का विस्तार से विवरण उपलब्ध है। महाभारत और मनुस्मृति में भी उत्तर वैदिक काल के गणतंत्रों का उल्लेख मिलता है।

ऐतिहासिक रूप से भी यह प्रमाणित है कि भारत में संसदीय प्रणाली प्राचीनकाल में थी। बौद्धधर्म से संबंधित जातक कथाओं से ज्ञात होता है कि राज्य में जनप्रतिनिधियों का चुनाव खुली सभा में होता था। सदस्य संघागार नामक स्थल पर उपस्थित होते थे और अपने ''गोपा'' का निर्वाचन करते थे। यही गोपा शासन अधिकारी के रूप में अपनी मंत्री परिषद् की सहायता से राज कार्य करता था।[1]

प्राचीन भारत की ग्राम सभाओं, धर्म परिषदों तथा स्थानीय संस्थाओं के नियमों व कार्यप्रणाली को देखते हुए लगता है कि सामूहिक कार्य के लिये आम जनता की मेघा पूरी तरह स्वशासित संस्थाओं की नीति व विविधतापूर्ण कार्यप्रणाली में अभिव्यक्त हुई है। उल्लेखनीय है, इन सभी के संविधान एवं कार्य पर्याप्त रूप में स्वविकसित थे। आधुनिक संसदीय संस्थानों के विधि विधान में बहस, मुद्दे, समितियों का गठन कई परमपराऐं और स्थाई आदेशों से प्राचीन भारत की संस्थाओं की समानता आश्चर्यजनक है।[2]

प्राचीन भारत में बुद्ध और महावीर दोनों ही गणतंत्रों से आये थे। बौद्ध-भिक्षु संघों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे वस्तुत: संसद (संघ) ही थे, और वे आधुनिक संसदीय प्रणालियों की कई व्यवस्थाओं और नियमों का तब अनुपालन भी करते थे। उदाहरण के लिये संघों में बैठक व्यवस्था, प्रस्ताव, गणपूर्ति तथा ध्यानाकर्षण आदि। यह यद्यपि अपने प्रारंभिक रूप में ही था, तदापि संसदीय प्रणाली की आत्मा इनमें दृष्टिगोचर होती है।

भारत के इतिहास का मध्यकाल विदेशी आक्रमणों से आक्रांत रहा। जाति आधारित समाज व्यवस्था में भी क्षत्रिय-क्षत्रपों और राजाओं, सुल्तानों की अपनी बाहुबल आधारित शासन व्यवस्था की प्रधानता रही है। परन्तु इस अवधि में भी मंत्री परिषद आधारित जनमुखी राजव्यवस्था को हम लोकतंत्री स्वरूप में स्वीकार कर सकते है।[3] सारे भारत में ग्राम पंचायतों तथा जाति पंचायतों की उपस्थिति, प्राचीनकाल से लगाकर अंग्रेजों के आगमन तक, स्वरूप में थोड़े बहुत अंतर के साथ पाई जाती है।

जाति प्रथा के कारण इनमें उच्च वर्ग का महत्वपूर्ण स्थान अवश्य था, परन्तु ये संस्थाऐं भी धर्म, नैतिकता, रूढ़ि तथा परम्परा के आधार पर ही सत्ता का तथा सामाजिक व्यवस्था संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती थी। इनके निर्णय प्राय: न्याय रूप में होते थे। इनमें मत भिन्नता होने पर भी सर्वानुमति के प्रयास का आग्रह रहता था। पंचों को परमेश्वर स्वरूप मान्यता दी जाती थी और इनका निर्णय सर्वमान्य होने से, इससे असहमति दण्डनीय अपराध माना जाता था। इस तरह का यह सामाजिक लोकतंत्र पूरी तरह न्याय नीति लोक आस्था व परम्परा पर आधारित रहा है। निर्वाचन के माध्यम से सदस्यों का चयन नहीं होने पर भी, वंश परम्परा तथा समाज में प्राप्त प्रतिष्ठा के आधार पर इन संस्थाओं का गठन होता था। अत: पंचों की प्रतिष्ठा तथा ईश्वर व धर्म के भय से, इनके निर्णय प्राय: सत्य व लोकमत की ही अभिव्यक्ति करते थे। इसलिये समाज द्वारा इनका इच्छा या अनिच्छा से पालन अनिवार्य था। यह स्थिति आज भी देखने में आती है।[4]

भारत में संसदीय लोकतंत्र की परम्परा का आधुनिक स्वरूप, ब्रिटिश शासनकाल में ही देखने को मिलता है। लोकतंत्र सबसे पहले स्थानीय संस्थाओं में लागू किया गया था। इसके पश्चात् इसे प्रान्तीय और केन्द्रिय प्रशासन में लिया गया। इन प्रतिनिधि संस्थाओं के अधिकारों और कृत्यों का क्षेत्र सीमित था। इसका सिर्फ सुफल यह रहा कि ब्रिटिश पद्धति लोकतंत्र से न केवल भारतीय परिचित हुए बल्कि इसके अभ्यस्थ होने का भी अवसर उपलब्ध हुआ। इसी कारण संविधान, संसदीय लोकतंत्र व कानून के शासन के आदर्श को भारत ने सहज स्वीकार कर लिया।

आधुनिक भारत में संसदीय सरकार तथा अन्य लोकतांत्रिक संस्थाओं का अस्पष्ट रूप में श्रीगणेश सन् 1833 के चार्टर द्वारा स्थापित केन्द्रिय विधानसभा के द्वारा होता है। इस चार्टर द्वारा भारत में गवर्नर जनरल को गवर्नमेंट ऑफ इंडिया कहा गया और इसकी परिषद् को भारतीय परिषद्। इस परिषद् को भारत में ब्रिटिश क्षेत्रों के लिये अखण्ड कानूनी शक्ति प्राप्त थी। यह परिषद् कानून बनाने, संशोधित करने तथा कानून को समाप्त करने के लिये सक्षम थी। इस तरह 1833 के चार्टर में विधान परिषद् की स्थापना के द्वारा ब्रिटिश शासन में संसदीय परम्परा के रूप में श्रीगणेश हुआ।

इसके पश्चात् सन् 1853 तथा 1858 के अधिनियम द्वारा भी लोकतंत्र की दिशा में प्रगति परिलक्षित होती है। सन् 1861 के अधिनियम द्वारा पहली बार संसदीय परम्पराओं के रूप में जिन संस्थाओं की स्थापना हुई उन्हें 20 वीं शताब्दी की भारतीय विधान संस्थानों का चार्टर कहा जा सकता है। यद्यपि यह कसौटी पर पूरी तरह खरा नहीं उतरती है। तदापि इसका ऐतिहासिक महत्व है।

सन् 1892 में ब्रिटिश सरकार ने भारत परिषद् अधिनियम पारित किया। इसका उद्देश्य भारत सरकार का कार्य आधार विस्तृत करना था। इसके माध्यम से स्थानीय लोगों एवं गैर सरकारी लोगों को सरकार के काम में भाग लेने का अवसर प्रदान किया गया था। इस अधिनियम द्वारा परिषदों में प्रतिनिधित्व के तत्व का समावेश हुआ। निर्वाचित सदस्यों को शामिल करने से परिषदों में लोकतांत्रिक तत्व का समावेश हुआ है और उन्हें जन से जोड़ने की नई परम्परा के रूप में लोकतंत्र की दिशा में एक नया अध्याय जुड़ गया।

भारतीय परिषद् अधिनियम 1909 मार्ले मिन्टो सुधार द्वारा विधान परिषदों के गठन में सुधार किया गया तथा उनके अधिकारों व कार्यो में वृद्धि करते हुए उसे जनमुखी रूप देने का प्रयास किया गया। जहाँ परिषदें नहीं थी

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

वहां उनकी स्थापना की गई तथा स्थानीय स्वशासन के विकास को गति दी गई। उसे स्वशासन का रूप देने के प्रयास हुए।

यह उल्लेखनीय है कि इस अधिनियम को लार्ड सभा में प्रस्तुत करते समय लार्ड मार्ले ने यह कहा था कि ''यदि इस अधिनियम के द्वारा हम भारत में संसदीय प्रणाली स्थापित करने जा रहे हैं अथवा यह समझा जा रहा है कि इन सुधारों के माध्यम से सीधे या अप्रत्यक्ष रूप में भारत में संसदीय प्रणाली की स्थापना की जा रही है, तो मेरा इन सबसे कोई वास्ता नहीं है।'' सत्य यह है कि सन् 1892 के अधिनियम से सन् 1909 का अधिनियम भारत में संसदीय प्रणाली विकसित करने में अगला कदम ही रहा है। परन्तु इसे भारत में संसदीय सरकार की उपलब्धि के रूप में नहीं माना गया है।[5]

सन् 1919 के अधिनियम द्वारा भारत में भारतीय विधान परिषद् के स्थान पर द्विसदनीय व्यवस्थापिका का प्रारंभ हुआ। एक का नाम राज्य परिषद् तथा दूसरे का नाम विधानसभा रखा गया। इन दोनों सदनों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि की गई तथा मताधिकार का भी पहले की तुलना में विस्तार किया गया। इसके आधार पर सन् 1920 में चुनाव हुए देश में सत्ता के लिये ये प्रथम चुनाव थे। नवगठित विधानसभा का सन् 1921 में ड्यूक ऑफ कनाट ने उद्घाटन किया।

इस अधिनियम के द्वारा जनप्रतिनिधियों को सरकार की नीतियों को प्रभावित करने और कानून बनाने का भी अधिकार दिया गया। यह भारत में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की दिशा में नींव का पत्थर कहा जा सकता है। केन्द्रिय विधानसभा के पहले स्पीकर सर फेडरिक व्हाइट ने कहा था कि ''1919 के ये परिवर्तन एक क्रांतिकारी निर्णय है। नई संस्थाऐं मात्र परामर्शदात्री समितियाँ नहीं बल्कि अधिक अधिकार वाली संस्थाऐं है।'' भारत में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की दिशा में यह महत्वपूर्ण कदम था।

सन् 1935 के अधिनियम द्वारा भारत में संघ राज्य की स्थापना होकर, राज्यों को वास्तविक अधिकार दिये गये थे। इसके द्वारा लोकतंत्र के आधार तत्व मताधिकार का विस्तार किया गया और लगभग एक लाख भारतीयों को मताधिकार दिया गया।[6]

इस प्रकार संसदीय लोकतंत्र भारत की भूमि पर क्रमशः धीरे-धीरे पल्लवित पुष्पित होता रहा। संक्रमण कालीन परिस्थितियों में भी इसकी मूल धारा अक्षुण्य रही। अंतोगत्वा केबिनेट मिशन योजना के अंतर्गत आधुनिक भारत के लिये संविधान सभा का निर्माण किया गया और संविधान सभा ने भारत के राजनीतिक ढाँचे के अनुरूप प्रतिनिधि संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था ''न सिर्फ इसलिये कि यह एक हद तक हम हमेशा ही इस लाइन पर सोचते थे यह हमारी परम्पराओं के अनुरूप भी है।'' नेहरूजी का विचार था'' अन्य प्रणालियों की तुलना में संसदीय प्रणाली इस मामले में अधिक सफल होती, अन्य प्रणालियों में एक सीमा तक प्रभुत्ववाद की ओर विकसित होने का रूझान था। संसदीय प्रणाली में जीवन के बदलते स्वरूप के साथ सामन्जस्य बैठाने का गुण है।''[7]

भारत में अतीत से वर्तमान तक राज्य और समाज व्यवस्था में लोकतंत्रीय आदर्शो का सदैव आग्रह रहा है। लोकतंत्र के स्वरूप में परिस्थितिनुसार बदलाव अवश्य परिलक्षित होता है, परन्तु इसकी आत्मा और उसके प्रति विश्वास जन में सदैव विद्यमान रहा है।

वर्तमान में विश्व में एशिया और अफ्रीका में इसको अपेक्षित सफलता नहीं मिली है। भारत में अनेकता में भी एकता पाई जाने के कारण नैतिक मूल्यों में पूरे राष्ट्र की आस्था रही है और हमारा धर्म भी ''वसुदैव कुटुम्बकम्'' के दर्शन पर विश्वास करता हैं। अतः लोकतंत्र हमारे खून में हैं।

भारत में संसदीय लोकतंत्र होने पर भी नायक पूजा की परम्परागत प्रवृत्ति के कारण यथार्थ में इसके व्यवहारिक स्वरूप में, लगभग आम आदमी को आज भी अपेक्षित महत्ता नहीं मिल पाई है। आम आदमी संसदीय लोकतंत्र की धड़कन होता है। इसी संदर्भ में 18 जनवरी 1943 को पूना में रानाडे जयंति के अवसर पर बोलते हुए डॉ. अम्बेडकर ने ठीक ही कहा था ''भारत में नायक पूजा ने दम नहीं तोड़ा है। यहां धर्म में मूर्ति पूजा है, यहां राजनीति में मूर्ति पूजा है। भले ही दुर्भाग्य की बात हो, पर भारत में राजनीतिक जीवन में नायक और नायक पूजा एक जीता जागता सत्य है।[8]

भारत के संसदीय लोकतंत्र में यह नायक पूजा की प्रवृत्ति एक बड़ी विडम्बना है। हमारे यहां आज भी नायक में प्रतिभा खोजी जा रही है या उसे प्रतिभा मंडित कर एक आदर्श के रूप में स्थापित करने के प्रयास हो रहे है। कुछ भी होता रहे, लोकतंत्र को आज सिर्फ वोट की राजनीति का रूप मिल गया है, फिर भी आम आदमी जाग गया है। सच तो यह है कि सोया कब ? इसके समय-समय के निर्णय हमें चौंकाते रहे है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. मिश्र डॉ. सच्चिदानंद : भारत में संसदीय संस्कृति और प्रजातंत्र : वसुंधरा गोरखपुर (1996) पृष्ठ 16-20
2. जैन प्रो.धर्मचन्द : भारतीय लोकतंत्र : रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर (2001) पृष्ठ 27
3. तिवारी डॉ. सुनील कुमार : भारत में संसदीय लोकतंत्र की परम्परा : रचना भोपाल (जनवरी से अप्रेल 2007) पृष्ठ 100
4. नारंग ए.एस. : भारत में लोकतंत्र : राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नईदिल्ली (जून 2003) पृष्ठ 146.
5. तिवारी डॉ. सुनील कुमार : भारत में संसदीय लोकतंत्र की परम्परा : रचना (जनवरी से अप्रेल 2007) म.प्र.हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, पृष्ठ 101
6. तिवारी डॉ. सुनील कुमार : भारत में संसदीय लोकतंत्र की परम्परा : रचना (जनवरी से अप्रेल 2007) म.प्र.हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, पृष्ठ 103
7. मंडावी डॉ. श्रीमती वेदवती - भारत में संसदीय लोकतंत्र ए जनरल ऑफ एशिया फॉर डेमोक्रेसी मुरैना (जन. जून 2004) पृष्ठ 41.
8. अम्बेडकर संपूर्ण वांगमय खण्ड-1, नईदिल्ली (1993) पृष्ट 276

****

भारत में बालश्रम की समस्या एवं समाधान

अंजना बुन्देला *

प्रस्तुति –मैं देश के हर बच्चे की आँख में आने वाले हिन्दुस्तान की तस्वीर देखता हूँ ''पं. जवाहरलाल नेहरू की इस कथन से स्पष्ट होता है कि बच्चे देश का भविष्य होते है। भारत जैसे देश में बच्चों को भगवान का रूप माना जाता है। यदि इन्हीं बच्चों से श्रम करवाया जाता है। तो नि:सन्देह यह सबसे बड़ा मानवीय अपराध होगा। सम्पूर्ण मानव समाज के लिए कलंक बन चुकी यह समाज अपना विकट रूप होगा। भारत में ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गम्भीर रूप ले चुकी इस समस्या का समाधान व प्रभाव पूर्व निदान अत्यंत आवश्यक है। भारत में पिछले इस समस्या पांच दशकों के निरन्तर योजना,कल्याणकारी कार्यक्रमों, विधि निर्माण और प्रशासनिक कार्य के उपरांत भी भारत में अधिकांश बच्चों दु:ख एवं कष्ट झेल रहे है। बालश्रम आज की शताब्दी की दे नहीं है बल्कि यह प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। लेकिन वैश्वीकरण के बाद यह अपने और बदत्तर रूप में सामने आयी है। इसे दूर करने के लिए सरकार और गैर सरकारी संगठन आज भी प्रयासरत है।

बाल श्रमिक कौन है ? संयुक्त राष्ट्र शोध के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक कहलाता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार 15 वर्ष या उससे कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक है। अमेरिकी कानून के अनुसार 12 वर्ष या कम आयु तथा इंग्लैण्ड एवं अन्य यूरोपीय देशों में 13 वर्ष या कम आयु के श्रमिकों को बाल श्रमिकों की श्रेणी में रखा गया है। भारतीय संविधान इस मुद्दे पर प्रारम्भ से ही स्पष्ट है। 5 से 14 वर्ष के बीच के बालक/बालिका को वैतानिक श्रम करते है या श्रम द्वारा पारिवारिक कर्ज चुकाते है,बाल श्रमिक है। बाल श्रम का उद्‌भव तब हुआ, जब पूँजीवादी वर्ग द्वारा मुनाफा बढ़ाने के उद्देश्य से बच्चों का सामाजिक व अमानवीय शोषण किया गया। मानव श्रम की सही मूल्य न देकर अधिक काम लेने की पूँजीवादी प्रकृति की देन है बाल श्रमिकों का इस्तेमाल। **बाल श्रम एक विकट बुराई है ये भारत में मुख्यत: दो क्षेत्रो में पाई जाती है:-**

1. **असंगठित क्षेत्र–**होटल,ढाबा,फैक्ट्री,दुकान,वर्कशॉप,हॉकर,कचरा चुनना,हथकरघा,घर में नौकर का काम आदि।
2. **संगठित क्षेत्र–**कालीन बुनाई, दियासलाई, आतिशबाजी, हथकरघा चमड़ा, कॉच भवन निर्माण, रत्न उद्योग तथा ताला उद्योग आदि।

हमारे देश की कुल आबादी का 15.42 प्रतिशत बच्चे है और अन्य देशों की ही तरह भारत में बाल श्रम की समस्या अत्यंत गम्भीर होती जा रही है। प्रत्येक वर्ष देश में दिग्गज विद्वान एवं राजनेता मिलकर अनेक रणनीति तैयार करते है लेकिन दुख की बात यह है कि, ये रणनीतियॉं सिर्फ उसी दिन तक सीमित रह जाती है। यहॉं तक की यूनस्कों ने भारत का उन देशों में शामिल कर दिया है। जो सबको शिक्षा देने का लक्ष्य अभी पूरा नही कर पाये है। यूनेस्कों ने भी ये स्वीकर किया है कि' सबके लिए शिक्षा' के मार्ग मे सबसे बड़ी बाधा है। बालश्रम से सम्बन्धित अधिकांश बच्चे ग्रामीण क्षेत्रों के है और उनमें भी लगभग 60 प्रतिशत 10 वर्ष से कम आयु के है।

व्यापार एवं व्यवसाय क्षेत्र में 23 प्रतिशत तथा घरेलू,कार्यो में 37 प्रतिशत बाल श्रमिक कार्यरत है जहॉं तक शहरी क्षेत्रों की स्थिति का सवाल है वहॉ उन बच्चों की संख्या अधिक है, जो केन्टीन,रेस्टोरेन्ट और फेरी लगाने मे संलग्न है। कुछ बच्चे तो खतरनाक उद्योग मे भी कार्यरत है जैसे तमिलनाडू के कुछ जिलों में पटाखा और माचिस के कारखानों में लगभग 50000 बच्चे कार्यतर है। उत्तरप्रदेश के फिरोजाबाद के कॉच करखाने में लगभग 46000 बच्चे और कॉलीनों के कारखानों में 91 लाख बच्चों काम कर रहे है।

इसी तरह बनारस में 5000 बच्चे रेशम बुनने के कार्य में तथा दिल्ली में 60000 से अधिक बच्चे ढाबों या चाय स्थलों पर कार्य कर रहे है। काम करने वाले लाखो बच्चे भागने की कोशिश में पीटे जाते है। और इन्हें वर्षो वेतन भी नसीब नहीं होता है। भारत सरकार के श्रम मंत्रालय द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार 4.4 करोड़ बाल श्रमिक है,राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के मुताबिक भारत में बाल श्रमिकों की संख्या 1 करोड़ 73 लाख बताई गई है वही वर्ष 2001 की जनगणना के आंकडो के अनुसार वर्तमान में 6 से 14 वर्ष तक के कुल बच्चें की संख्या 22 करोड़ है। एक अन्य अनुमान के अनुसार भारत में 2 करोड़ 26 लाख बच्चे पूर्णकालिक श्रमिक के रूप में तथा 1 करोड़ 85 लाख बच्चे अंशकालिक श्रमिक के रूप में कार्यरत है। देश में बाल श्रमिकों की बढ़ती हुई संख्या और उनके शोषण को रोकने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित ने उद्योगों को खतरनाक उद्योगो की श्रेणी में रखा है :-

1. माचिस एवं पटाखा निर्माण उद्योग,शिवकाशी (तमिलनाडू)
2. डायमंड पॉलिशिंग उद्योग,सूरत (गुजरात)
3. कॉच एवं चूडी उद्योग,फिरोजाबाद (उ.प्र)
4. पीतल के बर्तन एवं कलात्मक वस्तु विनिर्माण उद्योग,मुरादाबाद (उ.प्र)
5. हस्तनिर्मित कालीन उद्योग,मिर्जापुर (भदोही,उ.प्र)
6. ताला उद्योग एवं चाकू उद्योग,अलीगढ (म.प्र)
7. स्लैट उद्योग,मंदसौर (म.प्र)।

उपर्युक्त सभी उद्योगों के पूंजीपतियों द्वारा बाल श्रमिकों का जमकर शोषण किया जाता है। इन कारखानों द्वारा नियमों का उल्लंघन भी अधिक किया जाता है। बच्चे दरिद्राता के कारण नौकरी करता है क्यों कि उनकी कमाई के बिना उनके परिवारो का जीवनयापन कठिन हो जाता है। बाल श्रम के सम्बध में पूजीपतियों का यहा तर्क है कि नौकरी बच्चों को भूखा मरने से रोकती है। बाल श्रमिक (निषेध एवं नियमन) कानून 1986 में घरेलू नौकर के काम को खतरनाक नहीं मानते हुए वर्णित श्रेणियों की परिधि से बाहर रखा गया है। घरेलू नौकरों की ठीक-ठीक संख्या कितनी है न तो राष्ट्रीय सर्वेक्षण नमूना द्वारा 1979 में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार देश के कुल बाल श्रमिकों में से 10 से 20 प्रतिशत घरेलू नौकर है। भारत सरकार की एजेन्सियों ने घरेलू कार्य करने वाले बच्चों को अपने आंकडे में स्थान नहीं दिया है। बाल श्रमिक की भयानकता व अमानवीयता को आंकडो से नापा नहीं जा सकता इनमें लाखों बच्चों ऐसे पेशों व उद्योगों में लगे है जो रिक्त भरा,खतरनाक और शोषणकारी है, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने 20 देशो में सर्वेक्षण किया, जिससे निष्कर्ष निकाला कि करीब 70% श्रम जीवी बच्चे गंभीर जोखिमों का सामना करते है। घरेलू सर्वेक्षण से भी पता चलता है कि 80% बच्चे सप्ताह के पूरे सात दिन काम करते है। विकासशील देशों में श्रमजीवी बच्चो का दो तिहाई ग्रामीण क्षेत्रों मे रहता है और इनमें करीब तीन चौथाई कृषि व कृषि सम्बन्धित कार्याकलापों में लगे है। 70% श्रम जीवी बच्चों अवैतनिक है। और ग्रामीण क्षेत्रों में यहॉं प्रतिशत 81 है।

अधिकांश कार्यरत बच्चे ग्रामीण क्षेत्रों में केन्द्रित है। उनमें से लगभग 60 प्रतिशत दस वर्ष की आयु से कम के है। शहरी क्षेत्रो में उन बच्चों की संख्या की संख्या जो केन्टीन और रेस्तरॉं में काम करते है या जो चिथडे उठाने और माल की फेरी लगाने में लगे हुए है, विशाल है।अनेक बच्चे जोखिम वाले उद्योगो में कार्यरत है। तमिलनाडू में रामानाथपुरम जिले के शिवकाशी मे पटाखों और

* शोधार्थी, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन अध्ययनशाला विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

माचिस की इकाईयों में 45 हजार बच्चे कार्यरत है। उत्तरप्रदेश में फिरोजाबाद के शीषे के कारखानों में 45 हजार बच्चे और गलीचे के कारखानों मे एक लाख बच्चे काम करते है। मुरादाबाद के पीतल के बर्तनों के उद्यम में, अलीगढ में ताले बनाने में, मर्कापुरा (आंध्रप्रदेश) और मंदसौर (म.प्र) के स्लेट के उद्यम में और जम्मु एवं कश्मीर, राजस्थान और कई प्रान्तों में गलीचे बनाने में कार्यरत है। 1

महानगरों में स्थिति और गम्भीर है। मुम्बई में सर्वाधिक बाल श्रमिक है। सहारनपुर में 10 हजार बाल श्रमिक लकडी की नक्काशी के उद्यम में लगे हुए है और उन्हे 14 घंटे प्रतिदिन काम करने के उपरांत केवल एक रूपया प्रतिदिन मिलता है। वाराणसी में 5 हजार बच्चे रेशम के बुनने के उद्यम में कार्यरत है। दिल्ली में 60 हजार बच्चे दो या तीन रूपये प्रतिदिन की मजदूरी पर ढाबों, चाय के स्टालों और रेस्तराँ में कार्य करते है।

बाल श्रम का प्रभाव – बाल श्रम केवल मानव अधिकारों का हनन ही नहीं है बल्कि यह बच्चों को स्वास्थय की दृष्टि से भी प्रभावित करती है। कारखानों मे काम करने वाले बच्चे अनेक प्रकार की बीमारियों का शिकार हो जाते है। और उसके बाद पूंजीपति इन श्रमिकों का धक्के मारकर बाहर निकाल देते है। कारखाने में कार्यरत बच्चे तपेदिक जैसी गंभीर बीमारी का शिकार हो जाते है। कारखानों में भटिटयाँ 1400 डिग्री सेल्सियस के तापमान तक जलती हैं। मिल मालिक आर्सेनिक और पोटेशियम जैसे खतरनाक रसायनों का प्रयोग करते है जो बच्चों के फेफड़ों पर सीधा असर डालते है। दिल्ली , तमिलनाडू, महाराष्ट्र के कारखानों से यह पता चलता है कि बड़ी संख्या में बच्चों की संख्या अत्यंत दयनीय है, वे जीवित कंकाल नजर आते है। शरीर में खाज खुजली हो जाती है। श्रम करने के कारण व निर्धनता के कारण बच्चे स्कूल भी नहीं जा पाते। कुछ बच्चे कारखानों में होने वाली दुर्घटनाओं के शिकार हो जाते है। बाल मजदूरों का शारीरिक शोषण भी किया जाता है। सिर पर बोझा ढोने, ज्वलनशील भट्टियों में काम करने, कोई चीज खींचने के लिए अंतिम दम तक जोर लगाने, गंदे व बदबूदार कार्यो के कारण बच्चों की आयु एक तिहाई रह जाती है। खानों व खदानों में बच्चें जब बड़े होते हे तो इनकी छँटनी कर दी जाती है। शोर करने वाली मशीनों पर बच्चे प्राय: बहरे हो जाते है और धूल के कारण अनेक परेशानियाँ उठाते है।

बाल श्रम सम्बन्धी अधिनियम कानूनी प्रावधान:-

अधिनियम

1901	खदान अधिनियम
1911	फैक्ट्री अधिनियम
1923	भारतीय खाद्य अधिनियम
1926	फैक्ट्री संशोधित अधिनियम
1931	भारतीय बंदरगाह अधिनियम
1932	चाय बगान मजदूर अधिनियम
1933	बाल बंधुआ श्रम अधिनियम
1934	फैक्ट्री अधिनियम
1935	भारतीय खदान अधिनियम
1938	बाल रोजगार अधिनियम
1948	फैक्ट्री अधिनियम
1951	बाल रोजगार अधिनियम
1952	खदान अधिनियम
1958	व्यापारिक जहांजरानी अधिनियम
1961	मोटर ट्रान्सपोर्ट मजदूर अधिनियम
1966	बीडी और सिगार मजदूर अधिनियम
1978	बाल रोजगार अधिनियम
1966	बाल श्रम (नियमन एवं उन्मूलन अधिनियम)

बच्चों के लिये संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान

1	संविधान का अनुच्छेद 24	14 वर्ष की आयु से कम के बच्चे को किसी भी कारखाने, खान य अन्य खतरनाक व्यवसाय में लगाने पर प्रतिबन्ध।
2	संविधान का अनुच्छेद 39 (ड)	सरकार द्वारा अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करना कि सुनिश्चित रूप से बालकों की सुकुमार करना अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से मजबूर होकर उन्हें ऐसे रोजगार मे न जाना पडे जो उनकी आयु व शक्ति के अनुकूल हो। 1
3.	संविधान का अनुच्छेद 39 (च)	सरकार द्वारा यह सुनिश्चित करना कि बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधायें उपलब्ध हो तथा बालकों की शोषण से रक्षा हो।
4	संविधान का अनुच्छेद 21 (क)	संविधान के 86 वे संशोधन, 2002 के माध्यम से बच्चों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान किया है।
5	भारतीय दण्ड सहिता धारा (82)	7 वर्ष या इससे कम आयु के बच्चों की शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है।
6	दण्ड प्रक्रिया संहिता धारा 125	संतान और साथ में बच्चों चाहे वे वैध अथवा अवैध संतान हो, भरण पौषण के भत्ते के हकदार।
7	संरक्षक एवं परिपाल्य अधिनियम 1890	न्यायालय की संस्तुति पर अवयस्क के हित को ध्यान मे रखते हुए उसकी या उसकी सम्पत्ति अथवा दोनों की बारे में संरक्षक नियुक्त करने की व्यवस्था।
8	कारखाना अधिनियम 1996	बच्चों को अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में श्रम पर लगाना प्रतिबन्धित।
9	शिशु अधिनियम 1961 तथा संशोधित 1978	बच्चों को श्रम साध्य या खरतनाक कार्यो में सेवायोजन पर प्रतिबन्ध।
10	किशोर न्याय अधिनियम 1986	बच्चों के हित के लिए तथा उपेक्षित एवं अपचारी बच्चें की देखभाल, विकास एवं पुनवास के (संशोधित-2000) साथ समुचित न्याय व्यवस्था सुनिश्चित करने हेतु प्राथमिक कानून।
11	राष्ट्रीय बाल आयोग (प्रस्तावित)	बच्चों के विकास और उनसे सम्बन्धित समस्यों के सभी पहलुओं के अध्ययन और समस्यों के निराकरण के लिए आवश्यक कदम उठाना।

भारत में बालश्रम की समस्या नई नहीं है। यह अंग्रेजो के शासन से ही प्रचलित रहा हैं इसलिए उसी समय ब्रिटीश सरकार द्वारा राजकीय श्रम आयोग का गठन किया गया। वर्ष 1901 में बनाये गये खदान अधिनियम मे सरकार द्वारा 12वर्ष से कम आयु बच्चे को काम पर लगाना अपराध माना जाने लगा।

1922 में कारखाना एक्ट बना जिसमें 15 वर्ष से कम व्यक्ति को बालक माना और उनके कार्य का अवधि 6 घंटे व आधा घंटे इसमें विश्राम निश्चित की गई। स्वतंत्रता के पश्चात् से भारत सरकार बच्चों को संरक्षण देने का प्रस्ताव निरन्तर कर ही है। बच्चों को बाल श्रम से बचाने के लिए हमारे संविधान में अनेक प्रावधान किये गये है। संविधान के अनुच्छेद 15 राज्य की महिलाओं व बच्चों की सुरक्षा के लिए विशिष्ट प्रावधान करने की शक्ति देता है। अनुच्छेद 24 में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों एवं अन्य जोखिम पूर्ण कार्य में नियोजन का प्रतिरोध किया गया। अनुच्छेद 23 के द्वारा बालको को क्रय विक्रय एवं उनके द्वारा अनैतिक कार्य करने पर प्रतिबन्ध लगाने के बाद संविधान मे कि गई। संविधान के निति निर्देशक तत्वों में भी बाल श्रम पर रूके सम्बधित प्रावधान है।

जैसे अनुच्छेद 39 (ई) मे सरकार बच्चों के बचपन की रक्षा करने तथा किसी भी ऐसे कार्य से उन्हें बचाने का प्रयास किया है। जो उनके स्वाथ्य के लिऐ अनुचित है। अनुच्छेद (एफ) में यह प्रावधान है कि राज्य ऐसी सुविधाओं का प्रावधान करेगा जिससे बच्चे स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान के साथ विकसित हों। संवैधानिक प्रावधानों के अतिरिक्त अनेक महत्वपूर्ण विधान है जो बच्चों को विभिन्न व्यवसायों से कानूनी सुरक्षा देते है। फेक्ट्री 1998 किसी भी फेक्ट्री में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को रोजगार के संबंध में निषेधात्मक व्यवस्था कराता है। बागान श्रम एक्ट 1951, 12 वर्ष से कम आयु के बच्चों को चाय काफी और रबर के बागानों में रोजगार निशेधित करता है। खान एक्ट 1952, खानों में काम करने के लिये न्युनतम आयु 15 वर्ष निर्धारित करता है। विभिन्न समितियों के सुझाव के बाद सरकार ने बाल श्रम उन्मुलन के लिये 1986 में एक विस्तृत अधिनियम बाल श्रम निषेध एवं नियमन अधिनियम 1986 बनाया जिसके माध्यम से 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खतरनाक उद्योगों तथा भारी उद्योगो में नहीं लगाया जा सकेगा। 1987 की राष्ट्रीय बाल श्रम नीति के अन्तर्गत बाल श्रमिकों को शोषण से बचाने और उनकी शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन तथा सामान्य में विकास पर जो देने की व्यवस्था की गई है। बाल मजदुरी उन्मुलन प्राधिकरण की स्थापना भी सरकार का एक सराहनीय कदम है जिनकी बाल श्रम निषेध हेतु व कार्यक्रमों का आयोजन कराता है इसके कार्यो में बच्चों की सुरक्षा हेतु कानुन लागू करना बच्चों को काम से हटाकर ऐसे विशेष स्कुलों में भेजना जहां उन्हें अनौपचारिक शिक्षा एवं व्यवसायिक प्रशिक्षण के साथ-साथ पोषक आहार एवं छात्र वृत्ति उपलब्ध है। बाल मजदुरी से युक्त कराये गये बच्चों के अभिभावकों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाने हेतु रोजगार प्रदान करना एवं उनकी आमदनी बढ़ाना सितंबर 1990 में राष्ट्रीय श्रमिक संस्थानों के श्रम मंत्रालय और युनिसेफ के सहयोग से बाल श्रमिकों के संबंध में अध्ययन, शिक्षण और प्रशिक्षण शोध परियोजनाएँ चलाने हेतु ''बाल श्रमिक सेल'' की स्थापना की गई। भारत सरकार ने बच्चों के लिए राष्ट्रीय चार्टर 2003 भी अपनाया।

कोई की बच्चा भूखा अशिक्षित या बीमार न रहे। राष्ट्रीय मानव अधिकार की तर्ज पर देश में एक ''राष्ट्रीय बाल आयोग'' गणित किया गया है, जो बच्चों के विकास सम्बन्धी योजना बनायेगा। विपत्ति में कैसे बच्चों के सहयोग के लिए सरकार द्वारा नि:शुल्क चाईल्ड फोन सेवा 2001 में चालू कि गई। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भी सरकार ने बाल श्रमिकों के उत्थान हेतू कई प्रयत्न किय गये। उपर्युक्त समस्त प्रयासों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि देश में लाखो बच्चों के अपने अधिकार प्राप्त करने का मार्ग खुल गया है, इस संबंध में उपलब्ध आँकडे यह बताते है कि वर्तमान में भारत सहित समूचे विश्व में इस बुराई को दुर करने के प्रस्ताव सफल रहे है और धीरे-धीरे ही सही परन्तु सकारात्मक प्रयास सामने आ रह है अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा जारी एवं रिर्पोट (2005) के अनुसार विश्व स्तर पर पहली बार इस समस्या में कमी दर्ज की गई है। रिपोर्ट के अनुसार 2000 से 2001 के बीच विश्वभर में बालश्रमिकों की संख्या 11 प्रतिशत की कमी आई है। 5-17 वर्ष की आयु वर्ग के खतरनाक कार्यो में लगे बच्चों की संख्या में 26 प्रतिशत कमी आई है। सराकारी और गैर सरकारी संगठनों का प्रयास इसी तरह जारी रहेगा तो समस्या से पूर्ण छुटकारा मिलना आसान होगा।

बाल श्रम के समाधान से मुक्ति हेतु व्यवहारिक उपाय- हर समस्या का कोई न कोई समाधान अवश्य होता है। बालश्रम भी अपवाद नहीं है। ज्ञान समस्या के गहन अध्ययन, विश्लेषण और इसे समझने के गंभीर प्रयासों के फलस्वरूप कुछ व्यवहारिक हल ढुंढें जा सकतें है। बाल मजदूरी के कारणों में गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी और कम मजदूरी दर आदि प्रकरण है। इसलिए विभिन्न विभागों के सहयोग से कार्यक्रम का सीधा बाल मजदूरों को दिलाने का प्रयास करना चाहिए जिससे उन परिवारों को वैकल्पिक आय का स्त्रोत मिल सके, जो इन बाल मजदूरों की कमाई पर निर्भर हो, ऐसे गरीब परिवार की स्वास्थय, पोषहार, सार्वजनिक वितरण के माध्यम से जीवन उपयोगी अन्य आवश्यक वस्तुऐं उपलब्ध कराई जाये। बाल श्रमिकों को इस समस्या से मुक्ति हेतु उनके पूनर्वास पर ध्यान दिया जाना चाहिए। पारस्परिक व्यवसायों को बढ़ावा देना चाहिए। व्यवसाय में लगे छोटे सदस्यों को प्रशिक्षण देकर उनकी स्थिति मजबूत रखनी चाहिए।

कुछ प्रमुख उपाय है :-

1. सरकार द्वारा काम करने की स्थितियों में सुधार किया जाये।
2. न्यूनतम मजदूरी, स्वास्थ्य और शिक्षा की व्यवस्था सरकार द्वारा की जाये।
3. न्यूनतम कार्यक्रमों योजना का लाभ बाल श्रमिक परिवारों को प्राप्त हो।
4. असंगठित क्षेत्रों में बच्चों का संरक्षण किया जावे।
5. बच्चों की रोटी कपड़ा और मकान की अनिवार्य आवश्यकता सरकार द्वारा पूरी की जाये।
6. बाल श्रम कानून का उल्लंघन करने वालो को कठोर दण्ड दिया जावे।
7. बाल श्रम के विरोध में जन जागरूकता फैलाई जानी चाहिए।
8. बालश्रम निषेध सम्बन्धी पाठ्यक्रम शिक्षा में शामिल किया जाये।

बालश्रम बच्चों से जीवन के प्रारम्भ में ही मानव अधिकारों से वंचित करता है। यदि हम बच्चों के संरक्षण के उपाय समय रहते नहीं कर पायेंगे तो देश का भविष्य कही अंधेरो मे खो जायेगा। इसलिए सरकार के साथ-साथ प्रत्येक मानव का यह कर्तव्य बनता है कि इन नौनिहालों को बाल मजदूरी जैसे घोर अभिशाप से मुक्त करायें। क्योंकि विभिन्न संवेधानिक प्रावधानों और सरकारी व गैर सरकारी उपायों के बावजूद हम बालश्रम की समस्या को जड से उखाडने में असफल रहे है। वस्तुत: बावजूद हम बालश्रम की समस्या से जड से उखाडने के असफल रहे हैं। वस्तुत: इसके लिए जिस संकल्प शक्ति की आवश्यकता है उसकी कमी अभी तक हमारे प्रयासों में बनी हुई है। सरकारी कानून द्वारा बच्चों की सुरक्षा नहीं प्रदान की जा सकी जो ग्रमीण दरिद्रता व शहरी क्षेत्रों में जीवन संघर्ष के कारण कमाई करने के लिए बाध्य होते है। यही नही समाज में बाल श्रमिकों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण पैदा करके हम इस समस्या का सबसे बेहतर ढंग से निवारण कर सकते है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बालश्रम अपराध एवं समाधान - हरिदास रामजी सुदर्शन
2. बालश्रम समस्या एवं समाधान - ऋचा साहनी
3. भारतीय सामाजिक समस्याएँ - क्र ानिकल संपादकीय समूह
4. चाइल्ड लेबर इन इण्डिया - एन.ए. शाह अनमोल पब्लिकेशन, दिल्ली
5. भारत में बालश्रमिक - मंजूपाण्डेसन्दर्भित समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ
6. इण्डिया टूडे
7. दैनिक भास्कर
8. वेब दुनिया - समाचार हिन्दी (इन्टरनेट)

****

आधुनिक जीवन शैली से जल प्रदूषण

डॉ. वंदना मालवीया *

''पर्यायवरण कोई तकनीकी समस्या नहीं है। दोष विज्ञान या प्रायोगिक का नहीं है बल्कि समकालीन विश्व के मूल्यों के बोध का है, जो कि अन्य लोगों के अधिकारों की उपेक्षा करता है और वृहत्तर परिपेक्ष्य को भूला देता है''। ***स्व. श्रीमती इन्दिरा गांधी।***

पर्यावरण प्रदूषण आज विश्व की सबसे बडी समस्या बन गयी है। मानव सभ्यता आज प्रदूषण की दिन-प्रतिदिन विकराल होती समस्या से जूझ रही है वही दुर्भाग्य से आज प्रदूषण की कोई परिधि भी निर्धारित नहीं की जा सकती है। प्रदूषण आज सर्वव्यापी है, प्रश्न यह है कि पर्यावरण और प्रदूषण का गहरा अन्त:संबंध है। ''प्रकृति ने हमें जल, थल, वायु, नभ, पर्वत, खनिज, वन्यजीव, वन संसाधन आदि नि:शुल्क उपहारस्वरूप प्रदान किये थे और साथ ही इनकी रक्षा व संरक्षण का उत्तरदायित्व भी हमें सौपा था। स्वार्थी मनुष्य ने पर्यावरणीय घटकों का अंधाधुध दोहन तो अपना अधिकार मान लिया, लेकिन पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारी, अपनी प्रतिबद्धता को वह भूल गया। मनुष्य के इसी स्वार्थ में पर्यावरणीय असंतुलन को जन्म दिया है''। आज विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों ने सामान्य जन-जीवन दुर्भर कर रखा है, यदि यह कहा जाये कि करोडों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर पैदा हुआ 'जीवन' आज मौत के कगार पर है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आधुनिक विकास की ही देन है जिस आधुनिक युग को बडे गर्व के साथ हम विज्ञान और तकनीकी युग कहते है उसे पर्यावरण के संदर्भ में विनाशकारी युग कहना अधिक युक्तियुक्त होगा। ईश्वर की तरह प्रदूषण भी आज सर्वव्यापी हो गया है। इस प्रकार प्रकृति और जीव के बीच गहरी खाई विज्ञान निर्मित कर रहा है। नित नये अनुसंधानों और औद्योगिकरण के द्वारा अपनी भौतिक सुख-सुविधा जुटाने में मानव इतना अधिक व्यस्त हो गया है कि पर्यावरण पर हो रहे अत्याचार पर उसका ध्यान नहीं गया। मनुष्य जाति लगभग 20 लाख वर्ष पूर्व अस्तिव में आई और उसके बाद से लगातार उसकी संख्या में वृद्धि का क्रम तेज ही होता गया।

ऐतिहासिक तथ्य बताते है कि अस्तित्व में आने के बाद से ही मानव प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग द्वारा अपनी आवश्यकताओं की दृष्टी से प्रकृति को समझने और नियंत्रित करने की लगातार कोशिश कर रहा है। पर्यावरण दशाओं की प्रारंभिक स्थितियों की पर्याप्त जानकारियों के अभाव में मानव प्रभावों को समझना सरल नहीं है। बल्कि कुछ क्षेत्रों में तो आज भी हमारी जानकारियॉ सीमित ही है। पिछली कुछ शताब्दियों से मानव जनक, पर्यावरणीय परिवर्तन मनुष्य के क्रियाकलापों की बढती जटिलता के कारण भी हुये है। आज की भोगवादी, उपभोक्तावादी संस्कृति ने तो मनुष्य की सोच को बदल दिया है। भोगवादी सभ्यता की सोच है कि प्रकृति तो खरीद-फरोक्त की वस्तु है, खरीदों और भोगों।

दूसरा मनुष्य सोचता है कि धरती पर रहने का हक केवल मनुष्य को मिला है। उसी सोच की वजह से जंगल व वन पशुओं को भारी हानि हो रही है।'' प्रकृति के साथ छेड-छाड करना उतना ही घातक है जितना कि हमारे शरीर में किसी अंग के साथ छेडछाड करके विकलांग बनाना, जो असंतुलन का कारण बन जाता है। पर्यावरण जनित संसाधन जल तथा वायु जीवन के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है, किन्तु औद्योगिक देशों में ये इतने दूषित हो रहे है कि स्वस्थ जीवन पर एक प्रश्न चिन्ह बन गया है। जल मनुष्य के लिये एक अनिवार्य संसाधन है किन्तु तीव्र औद्योगिकरण, जनसंख्या वृद्धि, जल स्त्रोतों का दुरूपयोग, लगातार वर्षा में कमी एवं अन्य मानवीकृत और प्राकृतिक कारणों से इसके प्रदूषण की समस्या ने विकराल रूप ले लिया है।

रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सूना।
पानी गए न उबरै मोती मानस चून ।।

रीतिकालीन कवि रहीम की ये पक्तियॉ मानव, मोती और आटे के लिये पानी के महत्व को रेखांकित करती है। परिस्थितिकीय संतुलन में जल एक आवश्यक संघटक है। ''मानव की बडी सभ्यताएँ पानी के किनारे ही विकसित हुई है। यदि पृथ्वी पर पानी न होता तो वह भी अन्य खगोलिय पिण्डों की भॉति एकदम जीवन रहित होती और उस पर जीव पैदा ही नहीं होते, इसलिये कहा जाता है कि जल ही जीवन है।'' जनसंख्या विस्फोट से उपजी परिस्थितियों से सारे विश्व में जल की खपत अत्यधिक बढ गई है। जल की बढती मांग को पूरा करने के लिये सतही जल, बरसात का जल, नदियों-तालाबों, झीलों एवं भूमिगत जल दोनों ही प्रकार के स्त्रोतों का भरपूर दोहन हो रहा है। हमारे रक्त में 90 प्रतिशत भाग और मॉसपेशियों का लगभग 85 प्रतिशत भाग पानी है।

एक वयस्क व्यक्ति एक वर्ष में औसतन एक टन पानी पी जाता है। पृथ्वी के 71 प्रतिशत भाग में पानी (सागर) है इन सागरों में इतना पानी है कि अगर पृथ्वी एकदम समतल हो जाये एवं उस पर खाइयाँ और पर्वत नहीं रहे तो वह पानी पूरी पृथ्वी पर 500 मीटर की उंच्चाई तक भर जायेगा। पृथ्वी पर इतना पानी होने के बाद भी पृथ्वी के अनेक क्षेत्र आज पानी की कमी से बंजर हो गये है। इसका कारण है कि पृथ्वी पर उपलब्ध पानी का 97 प्रतिशत भाग सागरो में है जिसका हम सीधा उपयोग नहीं कर पाते है। थल का अधिकांश पानी नदियों से बहकर सागरों में मिल जाता हैं। इस प्रकार पृथ्वी पर पानी का वितरण असमान है।

जल प्रदूषण की समस्या कोई नहीं है, जल की घुलनशीलता 'जीवन' के लिये अत्यधिक आवश्यक है, लेकिन जल की यह अत्यधिक घुलनशीलता ही उसके अत्यधिक प्रदूषित होने का एक कारण है। आदिकाल से ही मानव अपशिष्ट पदार्थो को जलस्त्रोतों में विसर्जित करता चला आ रहा है, किन्तु वर्तमान में तीव्र औद्योगिकरण, जनसंख्या वृद्धि, जल स्त्रोतो का दुरूपयोग, वर्षा की मात्रा में कमी आदि मानवीकृत एवं प्राकृतिक कारणों से जल प्रदूषण की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है।

जल प्रदूषण के मुख्य कारण –

1. **सीवेज –** कूडा करकट, मलमूत्र आदि का नदियों, तालाबों, झीलों में छोडा जाना। सीवेज में अनेक रसायनिक क्रियॉए होती है जिनसे विषाक्त पदार्थ पैदा होते है जैसे यूरिया का अपघटित होकर अमोनिया तथा अन्य नाइट्रोजनी पदार्थो का बनना।
2. **सूक्ष्म जीव –** जल में अनेकों रोगों के कीटाणु, कृमि व जीवाणु भी होते है, जिनमें प्रदूषण फैलता है। बडे-बडे नगरों में मल-मूत्र को बहा दिया

* प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र) शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

जाता है। परिणमत: जल में विभिन्न विषाणु जन्म लेते है। विषाणु सजीव व निर्जिव के मध्य कडी है। वैसे विषाणु की निष्क्रिय निर्जीव भाग होते है, किन्तु कोशिकाओं में प्रवेश करते ही जीवित हो जाते है और जल के माध्यम से मानव में कई प्रकार गंभीर रोग फैलते है।

3. **कृषि पदार्थो का जल में मिलना –** उर्वरकों और कीटनाशकों को खेती में डालने से फसलें अच्छी होती है, किन्तु फसलें इन रसायनों का पूरी तरह प्रयोग नहीं कर पाती। वर्षा जल व सिचाई के साथ ये कीटनाशक भूमि में गहराई तक घुलकर मृदा प्रदूषण करते है। वायुयानों द्वारा भी कीटनाशक दवाइयों के छिडकाव के कारण वायुमण्डल में ये कण तैरते रहते है।
4. **खनन –** विभिन्न प्रकार के खनिजों के उत्खनन से निकलने वाले पदार्थ भी जल प्रदूषण के कारक होते है। सागरीय तली में खनिज तेल खुदाई के समय तेजी से निकलने वाला विस्तृत तेल समुद्री जल को दूषित करता है। इससे समुद्री जीव-जंतु तो प्रभावित होते ही है साथ ही सागरीय वनस्पतियॉ व तटीय नगर क्षेत्र भी प्रभावित होते है।
5. **भारी धातुऍं :–** उद्योगों से निकले जल में उपस्थित भारी धातुऍं जैसे - कैडमियम, क्रोमियम, कॉपर, लैड (सीसा), पार, आयरन, एल्यूमिनियम, जिंक, निकल, जल में मिलकर प्रदूषण का कारण बनती है। ये भारी धातुऍं अत्यन्त विषैली होती है और मानव स्वस्थ पर अत्यंत विपरित प्रभाव डालती है। भारी धातुओं के मुख्य अपशिष्ट पदार्थ - घरेलू अपशिष्ट एवं औद्योगिक अपशिष्ट जल में मिलकर पानी को दूषित करते है।
6. **उष्मीय या तापीय प्रदूषण :–** उद्योगों के अतिरिक्त वाष्प परमाणु शक्ति चलित विद्युत उत्पादन संयंत्रों द्वारा भी उष्मीय प्रदूषण होता है। ऊर्जा संयंत्रों में द्रवणित्रों के शीतलीकरण के लिये पर्याप्त प्रकृतिक जल का उपयोग किया जाता है। उष्मीय प्रदूषण का विशेष प्रभाव जलजीवों पर पडता है। जल के तापमान में वृद्धि होने के कारण ऑक्सीजन की घुलनशीलता में भी कमी आ जाती है तथा लवणों की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। उष्मीय प्रदुषण के प्रभाव से जीवाणुओं के शरीर पर अनेक भौतिक, रासायनिक परिवर्तन दिखाई देने लगते है।
7. **दहन :–** पैट्रोलियम, कोयल, लकडी और अन्य ईधनों के जलने से वायु में कार्बनडाय- आक्साईड, नाइट्रोजन, सल्फर डाइआक्साईड, अन्य गैसे उत्पन्न होती हैं जो वर्षा के जल में घुलकर अम्ल और अन्य लवण बनकर जल को उपयोग के काबील नही रहने देते है।
8. **रेडियोएक्टिव अपशिष्ट तथा अवपात :–** आदमी प्रकृति पर विजय पाने और दुनियॉ को जीत लेने के लिये नित नये-नये प्रयोग करता है। परिणामस्वरूप विकसित राष्ट्र सम्पूर्ण प्राणीजगत के हितों को नजरअंदाज कर परमाणु एवं हाईड्रोजन बमों के परिक्षणों, नाभीकीय संस्थाओं, रेडियोधर्मी अवशिष्ट पदार्थो, रेडियो आइसोटोप्स आदि होने वाले विकिरण के भंयकर प्रदूषण से ग्रसित हो रहा है। रेडियोधर्मी विकिरण न तो दिखाई पडते है और न ही इससे किसी प्रकार की गंध आती है, किन्तु शरीर पर इसका घातक प्रभाव तुरन्त पडने लगता है। यह कैंसर, बॉझपन, अपंगता आदि के रूप में सामने आता है।

जल प्रदूषण के प्रभाव :– योजना आयोग के अनुसार ''उत्तर की डल झील से लेकर दक्षिण की पेरयार एवं चेलियार नदी तक, पूरब में दामोदर एवं हुगली से लेकर पश्चिम की ठाना उपनदी तक पानी के प्रदूषण की स्थिति एक सी भयानक है। जल प्रदूषण के मामले में देश का जल कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक एक सा है। '' जल प्रदूषण का प्रभाव जलीय जीवन एवं मनुष्य दोनों पर पडता है। एक अनुमान के अनुसार भारत में दो तिहाई बीमारियॉ प्रदूषित जल से होती है। पेयजल के साथ रोगवाहक बैक्टेरिया, वायरस, प्रोटोजोवा एवं कृमि मानव शरीर में पहुँच कर हैजा, टाईफाईड, पेचिश, अतिसार, पीलिया, यकृत, एक्जीमा, नारू, स्टोमिएसेन जैसे भयंकर रोग उत्तपन करते है। साथ ही जल के साथ रेडियाधर्मी पदार्थ भी मानव शरीर में प्रविष्ट कर यकृत, गुर्दे एवं मानव मस्तिष्क पर विपरित प्रभाव डालते है।

जल प्रदूषण का गंभीर परिणाम समुद्री जीवों पर भी पडा है। प्लास्टिक और पॉलीथीन नए जमाने के आविष्कार है और आजकल इनका प्रयोग इतना अधिक बढ गया है कि यदि हम कहें कि हम प्लास्टिक युग में जी रहे हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। प्लास्टिक का जैविक विधि से अपघटन नही होता है, फलस्वरूप पृथ्वी पर प्लास्टिक कचरा अत्यधिक बढ गया है।

इसके जलने से उत्पन्न विषैली गैस वायुमण्डल की जहॉ दूषित करती है वही मानव स्वास्थ्य व जीव जन्तु भी उससे प्रभावित होते ही है साथ ही नदियों का प्रवाह भी धीमा हो जाता है और सागरीय जीवन भी उससे बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। जीवों द्वारा निगली गई प्लास्टिक उनकी असमय मौत का कारण भी बन रही है।

बढते औद्योगिकरण के कारण लगभग सभी नदियॉ प्रभावित हो गई है। अधिकांश बडे उद्योग धंधे नदी या नहर के किनारे ही स्थापित किये जाते है ताकि अपशिष्टों को नदियों में बहाया जा सके। अधिकांश: औद्योगिक इकाईयॉ बिना उपचार के ही पानी को नदियों में मिला देती है परिणामत: नदियॉ भी प्रदूषित हो गयी है।

औद्योगिक बहि:स्त्राव के साथ अनेक विषैले रसायन जल स्त्रोतों में आ जाते है, अधिकांश जलीय जीव इन जलीय विषों तथा प्रदूषक पदार्थो को सहन नहीं कर पाते और पानी के आवश्यक बैक्टेरियॉ खत्म हो जाते है। समुद्रों के तैलीय प्रदूषण से मछलियॉ, जलपक्षी (बतख, जलमुर्गी) और वनस्पति खत्म होने लगती है। समुद्री जल में ऑक्सीजन की कमी एवं तेल के कारण जल विहार करने आये पक्षियों के पंखों में तेल से चिपचिपे हो जाते है तथा पक्षी उडने में अक्षम होकर मर जाते है।

उद्योगों से निकले बहि:स्त्रोतों में अत्यंत विषैले रसायन होते है, इनके प्रदूषित जल को पीकर अनेक पालतु जानवर जैसे गाय, बैल, भैंसे, बकरियॉ इत्यादि मर जाते है।

नदी, तालाब इत्यादि में प्राकृतिक जल में परजीवी होते है। नहाने-धोने तथा अन्य कार्यवश जब मनुष्य इन स्त्रोतों से जल के सम्पर्क में आता है तो ये परजीवी चर्म को भेदकर शरीर में प्रविष्ट हो जाते है तथा अनेक रोगों का कारण बनते है। भारत के 34,000 गॉवों के लगभग 2.5 करोड लोग हैजा से विशेष रूप से पीडित है। इसी प्रकार 3000 गॉवों में लगभग 18 लाख लोगों में नारू का संक्रमण है। शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में पेचिस से होने वाली मृत्यु की दर क्रमश: 9.6 तथा 16.5 प्रति हजार व्यक्ति है। इन रोगों की व्यापकता प्रदूषित जल का ही परिणाम है। हमारे यहॉ स्वस्थ जल की कमी का अनुमान इसी तथ्यलगाया जा सकता है कि 2600 शहरी क्षेत्रों में से सिर्फ 2000 से तथा 5,76,1000 गॉवों में से केवल 64000 में सामान्य से कुछ अच्छे जल प्रदाय की व्यवस्था है।

एक आंकलन के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष पानी के कारण होने वाली बीमारियों की वजह से 7 करोड 30 लाख जीवन नष्ट हो रहे है। दूषित जल से होने वाली बीमारियों के इलाज का खर्च एवं उनसे होने वाली हानि का अन्दाजा 600 करोड रूपयें वार्षिक आंका गया है।

इस तरह जल प्रदूषण से उत्पन्न उपरोक्त समस्याओं के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रदूषित जल से उस स्त्रोत का सम्पूर्ण जल परिस्थितिकीय तंत्र ही अव्यवस्थित हो जाता है।

जल प्रदूषण नियंत्रण के बचाव के उपाय :-

1. घरों से निकलने वाले मलिनजल तथा वाहित मल को एकत्रित कर शोधन संयत्रों से पूर्ण उपचार के पश्चात ही नदी या तालाब से विसर्जित किया जाना चाहिये। पेयजल के स्त्रोत तालाब, नदी इत्यादि के चारों ओर दीवार बनाकर विभिन्न प्रकार की गंदगी के प्रवेश को रोका जाना चाहिये। साथ ही जलाशयों के आसपास नहाने, कपड़े धोने, गंदगी करने पशुओं को नहलाने आदि पर पांबदी लगाना चाहिये।
2. नगरीय और औद्योगिक गन्दे जल को नदियों में मिलाने से पहले साफ करना और निथारना एक बडा ही खर्चीला काम है। अत: ठोस व अवशिष्ट पदार्थो जैसे - कूडा करकट, सीवेज (मल-मूत्र) और अवशिष्ट जल से रासायनिक विधियों द्वारा अन्य उपयोगी पदार्थ बनाकर हानि को कम लाभ में बदलने का प्रयास करना चाहिये। इस दिशा में अभी काफी अनुसन्धान की आवश्यकता है।
3. कृषि कार्यो में आवश्यकता से अधिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के प्रयोग को हतोत्साहित किया जाना चाहिये। डी.डी.टी. तथा स्थायी प्रकृति के कीटनाशकों एवं पेस्टीसाइड्स के उपयोग पर पाबन्दी लगाना चाहिये। यदि रोक लगना संभव न हो तो, वहा इनका प्रयोग नियंत्रित ढंग से किया जाना चाहिये।
4. उद्योगों आदि को कानूनन बाध्य किया जाना चाहिये कि वे अपने अपशिष्टों को उपचारित करने के बाद ही प्राकृतिक जलस्त्रोतों में छोडें। तीव्र औद्योगिकीकरण को रोका जाना चाहिये। इसके विपरित वर्तमान उद्योगों की कार्यक्षमता और उत्पादकता में वृद्धि के लिये उपाय किये जाने चाहिये। कल-कारखानों से निकलने वाले प्रदूषणकारी पदार्थो की निकासी को नियंत्रित किया जाना चाहिये।
5. जलकूभी में भारी धातुओं को शोषित करने की अभूतपूर्व क्षमता होती है। इसलिये मल-जल में जलकुंभी उगने देना चाहिये। यह सीवेज के फास्फोरस और नाइट्रेट को अवशोषित करके मल जल को कम हानिकारक बना देता है। इस तरह जलकुंभी का पौधा BOD और COD स्तर में भी काफी कमी लाता है।
6. कुछ जाति विशेष की मछलियों एवं मच्छरों में अंडे, लार्वा तथा जलीय खपतवार का भक्षण करती है। फलत: जल में ऐसी मछलियों के पालने से जल की स्वच्छता कायम रखने में सहायता मिलती है।
7. जन साधारण को भी जल प्रदूषण के कारणों, दुष्प्रभावों एवं रोकथाम की विधियों के बारे में जागरूकता बढाना चाहिये ताकि जल का उपयोग करने वाले लोग जल को कम से कम प्रदूषित करें तथा जल संरक्षण में सहयोग करें। जल प्रदूषण के नियन्त्रण हेतु समय-समय पर सरकार द्वारा जल प्रदूषण नियन्त्रण कानून बनाये गये।
   1. जल कर (प्रदूषण निरोधक एवं नियन्त्रण) अधिनियम 1974
   2. जल कर (प्रदूषण निरोधक एवं निरोधन) अधिनियम, 1979
   3. पर्यावरण (रक्षण) अधिनियम 1980

आवश्यकता इस बात की है कि इन कानूनों का पालन करने हेतु सख्ती से निपटा जाये और पालन न करने वालों के विरुद्ध सख्त कार्यवाही की जाये। स्वयंसेवी संस्थाओं ने भी जल प्रदूषण से उत्पन्न समस्याओं का समाधान करने के लिये समय-समय पर जनचेतना जागृत कर जल प्रदूषण रोकने में सराहनीय कार्य किये है।

निष्कर्ष :- यह बात निर्विवाद सत्य है कि समय रहते सिकुडते स्वच्छ पानी के स्त्रोतों पर ध्यान नहीं दिया गया तो तेजी से गिरती प्रति व्यक्ति पानी उपलब्धता के कारण एक महासंकट खडा हो जायेगा। निसन्देह पानी का बेहतर संरक्षण और प्रबन्धन करने से ही इस सदी के मध्य तक तो दुनिया की दस खरब आबादी ठीक-ठाक रह सकेगी, लेकिन इसके बाद भी मानव को पानी प्राप्त होता रहे इसके लिये ठोस और पुख्ता उपाय करने होगें।

परमार्थ हेतु स्वार्थ को भूलने की आवश्यकता है। जल के संकट से सामूहिक रूप से निपटना होगा जिसमें हम सभी का स्वार्थ समाहित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. रघुवंशी डॉ. अरूण, रघुवंशी डॉ चन्द्रलेखा, पर्यावरण तथा प्रदूषण, म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. सिंह निशांत, पर्यावरण और जल प्रदूषण, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
3. मिश्रा एस.पी., जल संसाधन प्रबंधन एवं संरक्षण, अविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर।
4. गोस्वामी सुबिद्धि, पर्यावरण संरक्षण, श्याम प्रकाशन, जयपुर।
5. भट्टाचक्रवर्ती डॉ. पुरोषोत्तम, पर्यावरण चेतन, म.प्र.हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
6. जोशी डॉ. रतन, पर्यावरण अध्ययन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

पत्र पत्रिकाएॅ :-

1. रचना - म0प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. इण्डिया टुडे - पाक्षिक पत्रिका।
3. नई दुनिया, दैनिक, समाचार-पत्र।
4. योजना - मासिक पत्रिका (नई दिल्ली), जून 2005।

****

भारत में पंचायतों को स्वायत्ता : एक मूल्यांकन

डॉ. अनिल कुमार जैन *

ग्रामीण विकास के बिना देश के विकास की कल्पना अधूरी है। हमारा देश जो ग्राम प्रधान रहा है, अतीतकाल से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में, ग्राम पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा था कि '' यदि हमारी वर्तमान स्वतंत्रता को जनता की आवाज की प्रतिध्वनि बनाना है, जो पंचायतों को जितनी अधिक शक्ति मिले जनता के लिए उतना ही लाभदायक है।''[1] राजीव गांधी ने इस ''पंचायती राज व्यवस्था'' को न केवल पुनर्जीवित करने का प्रयास किया अपितु स्थायित्व प्रदान करने का ठोस प्रयास किया। उन्होंने संविधान के 64 वें संशोधन के माध्यम से विद्यमान मृत प्राय: पंचायतों को न केवल नवजीवन प्रदान करने का प्रयास किया बल्कि संवैधानिक दर्जा प्रदान कर इनका अस्तित्व भी सुरक्षित रखने का प्रयास किया। राजीव गांधी का यह प्रयास संसद में बहुमत न हो पाने के कारण पूर्ण न हो सका। इसे 73 वें संविधान संशोधन के द्वारा प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने पूरा किया।

इस संविधान संशोधन के द्वारा राजीव गांधी के सपने को पूरा किया गया, इससे पंचायतों को जहां प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हुए वहीं वित्तीय संसाधनों की गारंटी भी प्राप्त हो गई। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि वित्तीय रूप से सशक्त तथा स्वावलम्बी होने पर ही पंचायती राज की ग्रामीण विकास में सशक्त प्रभावी भूमिका की हम आशा कर सकते है।[2]

हमारे संविधान निर्माताओं ने भी स्थानीय स्वशासन के महत्व को स्वीकार करते हुए संविधान के अनुच्छेद 40 में प्रावधान किया कि ''राज्य ग्राम पंचायतों के लिए कदम उठाएगा और उसको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।''[3] तद्नुसार सरकार ने समय-समय पर अनेक समितियों और संवैधानिक संशोधनों द्वारा पंचायती राज को प्रभावी बनाने के लिए प्रयास किये है। उनमें बलवन्त राय मेहता समिति (1957), अशोक मेहता समिति (1977), जी.के.राव समिति (1988) की रिपोर्ट तथा 64 वाँ संविधान संशोधन(1989), 73 वाँ संविधान संशोधन विधेयक (1992) और 110 वाँ संविधान संशोधन विधेयक (2009) महत्वपूर्ण है।[4]

सन् 1992 के 73 वें संविधान संशोधन विधेयक द्वारा संविधान में भाग 9 जोड़ा गया। इस भाग में 16 नए अनुच्छेद (243-243) और एक अनुसूची (11 वीं अनुसूची) जोड़ी गई है। इस भाग में ग्राम पंचायतों के गठन, उसके निर्वाचन, शक्तियाँ और उत्तरदायित्व के लिये पर्याप्त उपबंध किये गये हैं। अनुच्छेद 243 (क) द्वारा प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की स्थापना करते हुए ''ग्रामसभा'' गठन का एक अभिनव प्रावधान किया गया है।

उल्लेखनीय है कि ग्राम पंचायत और ग्रामसभा दो अलग-अलग संगठन है। ग्राम पंचायत से तात्पर्य है निर्वाचित प्रतिनिधियों की संस्था और ग्रामसभा का तात्पर्य संपूर्ण गांव के उन सभी सदस्यों की संस्था जिनकी आयु 21 वर्ष हो तथा जो चुने जाने पर पंचायत के सदस्य बनने के पात्र हो। ग्रामसभा अनुच्छेद 243 (क) के अनुसार ग्राम स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का पालन कर सकेगी जो किसी राज्य के विधान मण्डल से विधि द्वारा उपबंधित किये जाए। इस तरह प्रतिनिधियों के स्थान पर जनता को सीधे अधिकृत किया गया।[5]

यहां यह उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा कि संविधान निर्माता बाबा साहेब अम्बेडकर पंचायती राज के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि छोटे स्तर की इन स्वायत्त संस्थाओं पर धन-बल या बाहुबल के अपने आतंक गांव का उच्च वर्ग अधिकार करके सत्ता के अधिकारों का दुरूपयोग करेगा।

अत: 73 वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं में महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा समाज के कमजोर वर्ग के लिये आरक्षण के माध्यम से जगह प्रदान की गई ताकि उनकी सक्रिय भागीदारी स्थानीय शासन में सुनिश्चित हो सके। महिलाओं को तैंतीस प्रतिशत से लगाकर कतिपय राज्यों में पचास प्रतिशत तक आरक्षण देने से महिलाओं के सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त भी हुआ है।[6]

आज देश की 72.2 प्रतिशत आबादी लगभग 2.35 लाख ग्राम पंचायतों के माध्यम से ग्राम सभाओं से जुड़ी हुई है। ग्रामीण स्वशासन का इतना बड़ा तंत्र, संवैधानिक अधिकारों से सुसम्पन्न विश्व के ओर किसी देश में नहीं है। 73 वाँ संविधान संशोधन लागू हुए दो दशक का समय व्यतीत हो चुका है। इसलिये अब समय आ गया है कि पंचायतीराज की स्वायत्त संस्था के रूप में, मूल्यांकन किया जावें। प्रजातंत्र की बुनियादी पाठशाला के रूप में स्वायत्त संस्थाओं की गणना होती है। इनको राज्य शासन के कानून द्वारा कार्य व शक्तियाँ प्रदान की जाती है।

इन कार्यो को करने के लिये पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध कराने का प्रावधान है। यह आवश्यक है कि इनके पास परिभाषित कार्यो को पूरा करने के लिये पर्याप्त कर्मी हो। पंचायत प्रतिनिधियों की क्षमतावर्धन का प्रावधान हो एवं पंचायत के कार्यो में पारदर्शिता हो। पंचायतों में स्वायत्ता के स्तर को इसी आधार पर परखा जा सकता है।[7] भारत में पंचायतों को राज्य स्तर पर अधिकारों व शक्तियों का कितना हस्तान्तरण हुआ है, इसके लिये पंचायतराज मंत्रालय ने भारतीय लोकसेवा संस्था, नईदिल्ली से अध्ययन करवाया है। इस अध्ययन के निष्कर्ष अवलोकनीय है। संस्थान द्वारा विभिन्न 6 आयामों के आधार पर सूचनांक तैयार किये। यथा -

फ्रेमवर्क - इसके अंतर्गत संविधान के निर्देशों के अनुसार अनिवार्य पहलूओं जैसे राजवित्त आयोग का गठन, राज्य चुनाव आयोग का गठन, जिला नियोजन समितियों का गठन तथा महिला अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा कमजोर वर्ग के लिये आरक्षण आदि आते है। इनका प्रावधान राज्यों को यथावत् करना था, परन्तु देश में शत प्रतिशत के स्थान पर इस कार्य का राष्ट्रीय औसत सिर्फ 51.4 है। इस कार्य में हरियाणा राज्य प्रथम 70.39 तथा अंतिम कश्मीर 15.38 है। म.प्र. में 60.37 कार्य हुआ हैं।

पंचायत के कार्यो का हस्तान्तरण - अर्थात् राज्यों, द्वारा पंचायतों को कितने कार्य व शक्तियाँ हस्तान्तरित की गई। इसमें भी स्थिति निराशाजनक है। राष्ट्रीय औसत सिर्फ 34.06 है। स्पष्ट है जितने कार्य पंचायतों को देना थे, उनमें सिर्फ एक तिहायी दिये गये है। इसमें कर्नाटक 57.90 सबसे ऊपर तथा मणीपुर 12.22 सबसे नीचे है। म.प्र.का स्कोर 52.61 पर रहा है। देश

* सहायक प्राध्यापक, (राजनीति विज्ञान), शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

के 15 राज्य राष्ट्रीय औसत को स्पर्श करते है।

वित्तीय संसाधनों का हस्तान्तरण – स्पष्ट है कि बिना वित्त कोई भी कार्य संभव ही नहीं हैं। राष्ट्रीय स्तर पर इसका स्कोर मात्र 29.45 है। महाराष्ट्र का स्कोर 55 है। सबसे कम स्कोर पंजाब का 17.37 है। म.प्र. का स्कोर 34.44 है। देश के सिर्फ 12 राज्यों ने ही राष्ट्रीय स्तर स्पर्श किया है। वित्त के बिना पंचायत राज्य मात्र किताबी व दिखावा तथा लोकतंत्र के ढोल का प्रचार साधन है।

पंचायत में कर्मियों की स्थिति – कार्यो के संपादन में कर्मियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। इसका स्कोर भी मात्र 37 है। सबसे श्रेष्ठ महाराष्ट्र 75.37 है। सबसे कम अरूणाचल प्रदेश 10.14 है। म.प्र. का स्कोर 39.45 है। कुल 13 राज्य ही राष्ट्रीय स्तर के चिंताजनक स्कोर को पार करते है।

पंचायतों में क्षमतावर्धन – अर्थात् पंचायत सदस्यों व कर्मियों का प्रशिक्षण। इसके अभाव में क्या करना है ? कैसे करना है ? का ज्ञान नहीं होने से कोई भी कार्य संभव नहीं है।

राष्ट्रीय स्तर 49.33 है। इसमें बंगाल का स्कोर सबसे ऊपर 81.18 तथा उड़ीसा का सबसे नीचे 19.14 है। म.प्र. का स्कोर 51.41 है। देश में 28 प्रतिशत पंचायतों के पास ऑफिस की इमारत नहीं है। उसका तात्पर्य यह है कि वहां सरपंच की अलमारी में पंचायत बंद रहती है, अथवा यह पंचायत सचिव के थैले में रहती है।

जवाबदेही – पंचायत के कार्यो में पारदर्शिता व जवाबदेही से ही जनता को दी गई सत्ता की सार्थकता है। किन्तु ग्रामसभा के प्रावधान भी पूरी तरह सफल नहीं रहे हैं। इसका राष्ट्रीय अंक 43.33 है। इसमें महाराष्ट्र का स्कोर 76.46 सबसे आगे है तथा बिहार 21.61 सबसे पीछे है। म.प्र.का स्कोर 62.5 है।[8] उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि देश में स्थापित पंचायतीराज अपने को स्वायत्त शासन की कसौटी पर पूरी तरह सार्थक नहीं कर पाया है। इसका मुख्य कारण राज्य सरकारों में सत्ता के विकेन्द्रिकरण के लिये ईच्छा शक्ति का अभाव रहा है।

पंचायतों को राज्यों ने वांछित अधिकार व शक्तियां प्रदान नहीं की है तथा जहां कार्यो का दायित्व दिया भी गया वहाँ उन्हें आर्थिक दृष्टि से सक्षम बनाने की दिशा में ध्यान नहीं दिया गया। पंचातयें भी स्थानीय कार्यो के संपादन के लिये, अपने साधनों से अपेक्षित धन जुटाने में असफल रही है। अधिकार, कार्य, शक्तियाँ, आर्थिक साधन तथा क्षमता के अभाव में पंचायतों से स्वशासन में सफल होने की आशा, दिवा स्वप्न ही सिद्ध हो रही है। राज्य सरकारें संविधान द्वारा पंचायतों को पूरी स्वायत्ता देने के स्पष्ट आदेशों के बाद भी येन-केन नौकरशाही के माध्यम से पंचायतों के पूरे ढाँचे पर अपना अंकुश बनाये रखना चाहती है।

दूसरी तरफ प्रभावशाली नौकरशाही भी ग्रामीण परिवेश के खुरदरे नेतृत्व के अधीन कार्य करने में असहजता अनुभव होती है। स्थिति यह बन गई है कि जमीनी स्तर पर वर्तमान में पंचायतें मुख्यत: राज्य सरकारों की सिर्फ एक एजेन्सी की तरह कार्य कर रही है।[9]

पंचायतें सशक्त हो, स्वायत्त हो, लोकतंत्र की पाठशाला के रूप में अपने को सार्थक सिद्ध करे इसके लिये आवश्यक है कि पंचायत प्रतिनिधि जो अब 30 लाख से अधिक है, संगठित होकर राज्य सरकारों तथा केन्द्र से अपने संवैधानिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिये खड़े होगें।

संदर्भ ग्रंथ।

1. पंत डॉ.डी.सी. : भारत में ग्रामीण विकास : कॉलेज बुक डिपो जयपुर, पृष्ठ-45
2. शर्मा डॉ. के.के. : भारत में पंचायतीराज : कॉलेज बुक डिपो जयपुर (2009) पृष्ठ-34
3. बसु दुर्गादास : भारत का संविधान - एक परिचय : प्रिंटवेल नईदिल्ली (सातवां संस्करण) पृष्ठ 271
4. सिंह संतोष कुमार : ग्राम सभा जमीनी लोकतंत्र का सशक्त आधार : कुरूक्षेत्र, जनवरी 2014, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत शासन नईदिल्ली, पृष्ठ 28
5. गुप्त अंजलि : परिवर्तन की ओर उन्मुख भारतीय ग्राम : कुरूक्षेत्र अक्टूबर 2007, पृष्ठ 23
6. डॉ. महीपाल : पंचायतों का स्वायत्ता स्तर : एक मूल्याकंन : कुरूक्षेत्र जनवरी 2014 ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत शासन नईदिल्ली, पृष्ठ 13
7. शर्मा श्री नाथ, सिंह डॉ.मनोजकुमार : पंचायतीराज और ग्रामीण विकास अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नईदिल्ली.
8. भारत में पंचायतों का सशक्तिकरण : राज्यवार हस्तान्तरित अनुभाविक मूल्याकंन 2012-13 भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नईदिल्ली अप्रेल 2013.
9. राठौड़ डॉ. गिरवरसिंह : भारत में पंचायतीराज : पंचशील प्रकाशन जयपुर (2004) पृष्ठ 197.

****

भारतीय राजनीति की उभरती हुई प्रमुख प्रवृत्तियां एवं उनका निदान

डॉ. नरेन्द्र ओझा *

भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ, एक लम्बे स्वतंत्रता संघर्ष के पश्चात् हमें आजादी प्राप्त हुई है। लेकिन आजादी प्राप्त होना ही पर्याप्त नहीं है, भारतीय राजनीति में जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता, सांप्रदायिकता, दल-बदल, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, आदि अनेक विकृतियां इन बीते हुये वर्षो में प्रवेश कर गयी है, जिसके कारण भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था चरमराने लगी है एवं भारतीय प्रजातंत्र के समक्ष भी आज प्रश्नचिन्ह लगने लगा है। ये समस्यायें भारतीय लोकतंत्र के लिये घातक ही नहीं अपितु विनाशकारी भी है, अगर इन प्रवृत्तियों को भारतीय राजनीति से दूर नहीं किया गया तो भारतीय लोकतंत्र, तंत्र विहीन हो जायेगा, इन समस्याओं के कारण भारत की राष्ट्रीय एकता, अखण्डता एवं संप्रभुता के लिये भी संकट उत्पन्न हो गया है। संविधान के द्वारा भारत को एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है, हम धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना तो कर पाये लेकिन धर्म निरपेक्ष समाज की स्थापना नहीं हो सकी है, यह तो सही है कि, हिंदू स्वतंत्रता पूर्वक मंदिर जाता है, मुस्लिम मस्जिद जाता है, सिख गुरूद्धारा जाता है उसे किसी भी प्रकार से रोक-टोक नहीं है। सभी धर्मो के लोग हिंदु दीपावली, मुस्लिम ईद, अपने-अपने त्यौंहार खुशहाली के साथ मनाते है, लेकिन इसके बाद भी काश्मीर से कन्या कुमारी तक, गुजरात, बिहार, महाराष्ट, मध्यप्रदेश, राजस्थान, नयीदिल्ली में साम्प्रदायिक दंगे हुए है, जिससे भारतीय लाकतंत्र पर प्रश्नचिंह लग गया है। साम्प्रदायिक आधार पर राजनीति दलों का निर्माण होना भी भारतीय लोकतंत्र के लिये एक खतरनाक संकेत है।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान ऐसा दिखता था कि जनता पर जातिवाद का प्रभाव कम हो रहा है, किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत जातिवाद ने फिर से जोर पकड़ा आरंभ में तो सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टि से उच्च अथवा श्रेष्ठ जातियां ही राजनीति से प्रभावित रही और राजनीतिक लाभ उन्हीं तक सीमित रहे, समय के साथ-साथ मध्यम एवं निम्न समझी जाने वाली जातियां आगे आने लगी और अपने राजनीतिक प्रभाव बढ़ाने में प्रयत्नशील रहने लगी। भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू ''जातिवाद'' है। जाति व्यवस्था के कारण ही प्राचीन समाज विभिन्न वर्गो में विभाजित था। भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के तीव्र होने के कारण ऐसा माना जाता था कि प्रजातांत्रिक मूल्यों का लोप हो जाएगा, परन्तु ऐसा हुआ नहीं तथा जाति का प्रभाव भारतीय राजनीति पर दिनोंदिन बढ़ता ही गया। राज्यों की राजनीति पर जातिवाद का प्रतिकूल प्रभाव बहुत अधिक रहा है। भारतीय राजनीति में जाति प्रथाओं ने राजनीतिक नेतृत्व के स्वरूप को भी प्रभावित किया है।

चुनाव क्षेत्र में जिस जाति का बाहुल्य है उस जाति का प्रत्याशी प्राय: चुनाव में विजयी होता है और फिर सरकार बनाते समय जातीयता को गौण नहीं समझा जाता है। क्योंकि बहुमत दल में जातियता घुसी रहती है, उत्तर प्रदेश, बिहार इसके उदाहरण है। भारतीय संविधान के निर्माता जाति व्यवस्था के दुष्परिणामों से परिचित थे। अत: उन्होंने ऐतिहासिक अनुभवों का लाभ उठाते हुए जाति व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया, संविधान का निर्माण सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता, भातृत्व के महत्वपूर्ण सिद्धांतों के आधार पर किया गया, पृथक निर्वाचन प्रणाली के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को अपनाया गया, वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की गयी, जाती, धर्म, भाषा के आधार पर भेदभाव को समाप्त कर दिया गया, छुआछूत को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया, धर्म निरपेक्षता के सिद्धांत को संवैधानिक रूप से मान्यता प्रदान की गई।

आज सबसे अधिक दुर्भाग्य पूर्ण यह है कि भारत में सभी राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियों का चयन करते समय जातिगत आधार पर निर्णय लेते हैं। प्रत्येक दल किसी भी चुनावी क्षेत्र में प्रत्याशी मनोनीत करते समय जातिगत् गणीत का विश्लेषण करते है, यहां तक कि सरकार बनाते समय मंत्रीमंडल में भी जाति का प्रभार रहता है। भारतीय राजनीति में धर्म, जाति के साथ-साथ क्षेत्रीयता की प्रवृत्ति भी उभरकर सामने आयी है, तमिलनाडू मे अन्नाद्रमुक एवं द्रमुक, पंजाब में अकालीदल, जम्मूकाश्मीर में नेशनल कांन्फ्रेस, आसाम में गण संग्राम परिषद आदि। अनेक क्षेत्रीय राजनीतिक दल जिसके कारण भारतीय लोकतंत्र के लिये खतरा उत्पन्न हो गया है।

वर्तमान में तेलगांना का उदाहरण हमारे समक्ष है। भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार एक नासूर बन गया है। यह तो स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार की समस्या केवल भारत में ही नहीं है, यह तो सम्पूर्ण संसार की समस्या है, लेकिन पिछले एक दशक में हिन्दुस्तान में भ्रष्टाचार इतना अधिक बढ़ा है कि, भारतीय लोकतंत्र ने भी शर्म से सिर झुका लिया है, चाहे वह दिल्ली में हो या भारत के किसी भी प्रदेश में। भ्रष्टाचार का सबसे बढ़ा कारण यह है कि बढ़ती हुयी आर्थिक आवश्यकताऐं एवं कमजोर कानून व्यवस्था भी इसके लिए जिम्मेदार है।

भ्रष्टाचार की समस्या आज सार्वजनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। रेलों में आरक्षण, नौकरी, पदोन्नति, स्थानांतरण आदि सभी क्षेत्र में भ्रष्ट व्यवस्था ने अपने पैर जमा लिये है, और अब यह आम बात हो गयी है, दुर्भाग्य यह है कि न तो देने वालें को शर्म महसूस होती है और नहीं लेने वाले को। भारतीय लोकतंत्र में बेरोजगारी समस्या भी अत्यंत ही गंभीर बनी हुयी है, गांव हो या शहर, शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों ही बेरोजगार है। भारत की आजादी के बाद मंहगाई, गरीबी की समस्या भी आज अत्यंत ही गंभीर बनी हुयी है। आज रोटी, कपड़ा, मकान आदि समस्या लोगों के समक्ष है। बेशक, भारतीय लोकतंत्र में इन राजनीतिक विकृतियों ने भारतीय राजनीति को कलंकित कर दिया है। आज सभी राजनीतिक दल सत्ता प्राप्त करने की लालसा में लगे हुए है। निष्कर्ष रूप में इन राजनीतिक विकृतियों ने भारतीय ससंदीय शासन प्रणाली एवं संसदीय लोकतंत्र पर ही प्रश्नचिंह लगा दिया है। दरअसल ससंदीय शासन प्रणाली असफल नहीं हुई है, इसको चलाने वाले लोग बेकार हो गये है। आवश्यकता है राष्ट्रीय चरित्र की, राष्ट्रीय चरित्र का पतन हो रहा है, इसे रोकना होगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि कुछ कठोर कदम उठाने कि आवश्यकता प्रतीत हो रही है। जैसे भारतीय राजनीति में दलबदल की प्रवृत्ति पर रोक लगाना होगी, भारतीय निर्वाचन में काले धन के प्रयोग पर नियंत्रण करना होगा, क्षेत्रवाद के आधार पर नये राज्यों का निर्माण नहीं करना होगा, गरीबी, मंहगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार को कम करने के प्रयास करना होगा।

निर्वाचन में निष्पक्षता एवं पारदर्शिता हो तथा निर्वाचन आयोग स्वतंत्र संस्था हो, केन्द्रीय जांच ब्यूरो सरकार के अधीन नहीं रहे, दलबदल एवं भ्रष्टाचारी के खिलाफ सख्त कानून हो, जन प्रतिनिधि अगर भ्रष्ट हो जाये, जनता की समस्याओं का समाधान नहीं करते है तो उन्हें वापस बुलाने का अधिकार जनता को प्राप्त हो सके, जनप्रतिनिधियों के लिये शैक्षणिक योग्यता अनिवार्य की जावे। बेशक अगर इन सुधारों को लागू किया जाता है तो भारतीय लोकतंत्र मजबूत होकर खरा उतरेगा एवं भारत की राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता भी मजबूत होगी।

संदर्भ :-
जौहरी. जे.सी. - भारतीय शासन एवं राजनीति
गेना.सी.बी. - तुलनात्मक राजनीति
नागपाल ओम - भारतीय राजनीति
कोठारी रजनी - कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स
दोषी एस.एल. - भारतीय सामाजिक व्यवस्था
माहेश्वरी एस.आर. - तुलनात्मक राजनीति
अवस्थी ए.पी. - भारतीय शासन एवं राजनीति
सिहंल एस.सी. - भारतीय शासन एवं राजनीति

* सहायक प्राध्यापक, राजनीति शास्त्र, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर (म.प्र.) भारत

मानव अधिकार विकास एवं चुनौतियाँ (भारत के विशेष संदर्भ में)

डॉ. संजय सोहनी *

मानव सभ्यता के अभ्युदय एवं विकास के साथ ही मानव अधिकार के इतिहास की कहानी की शुरूआत होती है। मानव जाति की प्राचीनतम आकांक्षा एक मानवीय समाज की अतीत के इतिहास की गहराईयों में छुपी हुई है। मानव कल्याण एवं मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए संघर्ष की परम्परा ईसा मसीह के पूर्व से चली आ रही है। मानव कल्याण एवं मानवीय मूल्यों या मानव समाज के संबंध में विभेद हो सकता है, लेकिन मौलिक मानवीय अवधारणा सभी तरह के समाज के वाद-विवाद में समान रूप से रही है, समकालीन समाज में इसे मानव अधिकार के रूप में जाना जाता है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि अधिकार मानव जीवन की आवश्यकता है, इसके बिना मानव अपना सर्वांगीण विकासनहीं कर सकता है।

समस्त सभ्य समाजों के लिए मूलभूत होने के कारण इन अधिकारों को मौलिक अधिकार मूलभूत अधिकार प्राकृतिक अधिकार और सबसे ऊपर मानव अधिकार के रूप में जाना जाता है। प्राचीन काल के धर्मो में मानवतावादी मूल्यों को महत्व देकर मानव अधिकारों का समर्थन किया था। यूनानी राजदर्शन की मुख्य समस्या विश्व की व्यवस्था में मानव का स्थान था। रोमन राजदर्शन प्राकृतिक विधि में प्राकृतिक अधिकारों का मूल स्वीकरता है । प्लेटों, अरस्तु, सिसेरा, संत थॉमस एक्वीनास, जॉनलॉक, जैफरसन से जॉनलॉक तक के राजनीतिक विचारों में मानव समाज के मानव कल्याण व अधिकारों की कल्पना की गई है।

ऐतिहासिक रूप से मानव अधिकार संघर्ष का परिणाम 15 जून 1215 ईस्वी में ब्रिटिश सम्राट जॉन द्वारा घोषण पत्र पर हस्ताक्षर से मिलता है जो मैग्नाकार्टा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके माध्मम से सामन्तों के परम्परागत विशेषाधिकार कालान्तर में आम जनता को हस्तांतरित हो गये। ब्रिटिश संविधान मेंग मैग्नाकार्टा को अधिकारों का बाईबिल माना जाता है एवं 1628 के अधिकार याचना पत्र के अतिरिक्त ब्रिटिश कॉमन लॉ हेबियसकॉपर्स एक्ट 1679 (बन्दी प्रत्यक्षीकरण) एवं पिटीशन ऑफ राईट में भी मानव अधिकारों के मूल सिद्धान्त निर्मित हुए है।

विश्व की तीन महान क्रांतियाँ (ब्रिटेन, फ्राँस, रूस) विभिन्नता लेते हुए भी एक लक्ष्य अधिकार पर केन्द्रित है। ब्रिटिश क्रांति बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं पर, फ्राँस राज्य क्रांति स्वतंत्रता समानता, एवं बंधुत्व पर रूसी क्रांति आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक अधिकार शून्य पर आधारित होकर अधिकारों के प्रति प्रतिबद्धताओं को प्रकट करती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में मानव अधिकारों के आदर्श को स्वीकार करने के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकार आयोग को मानव अधिकारों के मूलभूत सिद्धान्तों का मसविदा तैयार करने को सौंपा गया, लगभग तीन वर्षो के प्रयत्नों के बाद मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा का मसविदा तैयार किया गया। महासभा ने कुछ संशोधनों के साथ प्रस्ताव सहित 30 अनुच्छेदों के इस मसविदे को 10 दिसम्बर 1948 को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया। इस कारण 10 दिसम्बर को मानव अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह पहला दस्तावेज है जो स्त्री पुरूष को समान अधिकार देता है। मानव अधिकारों की प्रस्तावना में मानव जाति की जन्मजात गरिमा और सम्मान तथा अधिकारों पर बल दिया गया है। वर्तमान में मानव अधिकारों का क्षेत्र व्यापक हो गया है। मानव जाति के विकास के लिए सभी अधिकारों को लागू करना एवं उन्हें संरक्षित करना अनिवार्य है।

विश्व में कार्यरत प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनो में एमनेस्टी इन्टरनेशनल, ह्यूमन राईट्स वाच, डिफेन्स फॉर चिल्ड्रन इन्टरनेशनल, इन्टरनेशनल एसोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक लायर्स, डॉक्टर विदाउट बोर्ड्स प्रमुख है। प्राचीन भारतीय सभ्यता में धर्म की अवधारणा में ही मानवीय सामाजिक व्यवस्था के रूप में मानव अधिकारों की चर्चा की गई थी।

ऋग्वेद में मानवाधिकारों के विकास की अवधारणा मिलती है। वैदिक कालीन साहित्य में ''सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:'' की अवधारण मानव एवं मानवता को मान्यता देती है कि भारत प्राचीन काल से ही मानव संकल्पना की जड़े मौजूद है। मानव अधिकार की संकल्पना पश्चिमी सभ्यता एवं विचारों की देन हैं, उपनिवेशवादी मानसिकता की उपज है, इतना स्पष्ट है कि मानव अधिकार की अवधारणा प्राचीन भारतीय सभ्यता में भी चिंतनीय व विचारणीय थी। प्राचीन भारतीय अवधारणा या सौच का स्वरूप क्या था? इसका दृष्टिकोण क्या था ? यह प्रश्न महत्वपूर्ण है।

महावीर स्वामी ने जैन धर्म के रूप में तीर्थंकर के रूप व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर जोर दिया है। चाणक्य (कौटिल्य) ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक विधान का निर्धारण किया है। उसने इस बात पर जोर दिया कि ''प्रजा के हित में ही राजा का हित है।'' अशोक के राजदर्शन का आधार तो दया, मानवता, करूणा, प्रेम जैसे मानवीय सिद्धान्त पर आधारित था। मुगलकालीन भारतीय इतिहास में अकबर एवं जहाँगीर की न्यायप्रियता इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

अकबर ने दीन ए इलाही धर्म से अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया था। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन भी मानवीयता के लिए हुए था, यह आन्दोलन न केवल धार्मिक स्तर पर वरन् सामाजिक स्तर पर समतावादी, मानवतावादी, दृष्टिकोण पर व्यापक आन्दोलन था। धार्मिक भेदभाव को नकारता यह आन्दोलन सबके साथ प्रेम एवं सहयोग पर आधारित था।

आधुनिक युग जो पुनर्जागरण कल से प्रारंभ होता, जिसे नये भारत के उदय का काल भी कहा जाता है, ने प्रारंभ में मध्यकालीन सामाजिक बुराईयों, जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, जाति प्रथा जैसी अन्य अमानवीय परम्पराओं के विरूद्ध जबरदस्त प्रतिकारात्मक आन्दोलन किया था।

राजा राममोहनराय, स्वामी दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, ज्योतिबा फूले, नारायण गुरू, गुरू जम्भेश्वर जैसे धार्मिक-सामाजिक सुधारकों ने हमेशा मानवीय गरिमा के लिए संघर्ष किया । दुनिया के अन्य सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव भारतीय नेताओं पर हुआ । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने सदैव शोषण के खिलाफ संघर्ष किया था, गहरे स्तर पर यह संघर्ष मानवता

* सहायक प्राध्यापक-भूगोल भेरूलाल पाटीदार शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत

के लिए था। भारत में मानव अधिकारों का विकास एक जटिल किन्तु संगठित प्रकिया के अन्तर्गत हुआ है, विविध संस्कृतियों के जीवन आदर्शों, परम्पराओं एवं दर्शन से मिलकर हमारी अपनी लम्बी परम्परा में एक समन्वित (मिला-जुला) मानवीय अधिकार का विकास हुआ है।

भारतीय दृष्टिकोण सदैव अधिकारों के साथ-साथ मनुष्य के कर्तव्यों पर भी बल देता रहा हैं। भारत में अधिकार व कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू समझे गये हैं। भारतीय संदर्भ में मानव अधिकार व्यक्ति से समाप्त तक फैला था। हमारे यहाँ चिन्तकों एवं विचारकों ने यह विचार किया है कि मनुष्य अधिकारों का हित व्यापक अर्थ में सामाजिक हित में मिला हुआ है।

मानव अधिकारों को सुरक्षित व संरक्षित करने के लिए भारत सरकार ने कमजोर वर्ग के हितों के लिए अल्प संख्यक आयोग, पिछड़ा वर्ग आयोग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग का गठन किया है, किन्तु इनसे बढ़कर 12 अक्टूबर 1993 को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन किया है, जिसके पास खोज एवं सिफारिश का अधिकार है। मानव अधिकार पर वर्तमान में व्यापक विचार मंथन हो रहा है। सभ्य और असभ्य मानवीय सभ्यता से लगातार विकसित और अविकसित देशों तक मानव अधिकारों को चुनौती मिल रही है। एक मानव का अन्य मानवों से श्रेष्ठ समझने की सोच ने मानव अधिकार व अस्तित्व को झंझोड़ा है।

भारतीय समाज में व्याप्त गहरी सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक विषमता को कम करना मानव अधिकार एवं गरिमा के लिए अनिवार्य है एवं भारतीय राज्य व्यवस्था के समक्ष गंभीर चुनौती है। व्यक्तिगत हित से ऊपर सामाजिक हित को स्थापित करना इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. मानव अधिकार डॉ. जय जय राम उपाध्याय
2. भारत का राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, अरूण कुमार पलाई
3. भारत शासन व उसका विकास, राय हरि प्रसाद
4. भारत सरकार व राजनीति, सुभाष कश्यप व एम.पी. रॉय
5. सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल

****

लोकपाल से लगे भ्रष्टाचार पर लगाम

डॉ. संजय सोहनी * डॉ. अनिता राय बाथम **

भ्रष्टाचार के संबंध में सन् 1948 में महात्मा गांधी द्वारा की गई यह टिप्पणी अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि, भ्रष्टाचार जैसे मसलों के प्रति उदासीन रहना अपराध है। महात्मा गांधी का उक्त कथन भ्रष्टाचार के प्रति उनके गंभीर दृष्टिकोण एवं ह्रदय की वेदना को अभिव्यक्त करता है। अनुभव से यह परिलक्षित होता है, कि सार्वजनिक जीवन का कोई भी क्षेत्र भ्रष्टाचार से अछूता नहीं है। इसके प्रतिकूल प्रभाव से आज की भारतीय राज्य व्यवस्था गंभीरता से संक्रमिक हुई है।

भ्रष्टाचार– भ्रष्टाचार का आशय क्या है ? वस्तुत: भ्रष्टाचार को आज सामान्यत: जिन आर्थिक सन्दर्भो के परिप्रेक्ष्य में जाना जाता है वह मात्र एक पक्ष उजागर करता है। इसके विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, वैधानिक एवं राजनीतिक आदि संदर्भो को ध्यान में रखते हुए इसके आशय और परिधि को ढूंढ़ने का प्रयास करना होगा।

भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है - भ्रष्ट-आचार अथवा भ्रस्ट-व्यवहार। मान्य एवं सुस्थापित नैतिक आदर्शो (जैसे-नैतिकता, कर्त्तव्यनिष्ठा, पद एवं सत्ता का सदुपयोग) के विपरीत किए जाने वाले व्यवहार भ्रष्टाचार के द्योतक है। कन्साईजस ऑंकन्सफोर्ड शब्दकोश में भ्रष्टाचार का अर्थ निम्नवत् है- रिश्वत अथवा अवैधानिक और अनुपयुक्त साधनों से गलत या अनैतिक कार्य की ओर उन्मुख होना, तथा सही और नैतिक कार्यो से विरक्त होना भ्रष्टाचार है। सामान्य व्यवहार में, भ्रष्टाचार को निजी आर्थिक हित हेतु सरकारी पद के दुरूपयोग के रूप में देखा जाता है।

इस तरह वे मंत्री, अधिकारी या सरकारी कर्मचारी भ्रष्ट है जो अपनी सरकारी स्थिति का लाभ उठाकर अपने पद का दुरूपयोग करते हुए अनुचित अर्थोपार्जन करते हैं। लोगों को छोटे-छोटे काम करवाने के लिये भी रिश्वत देना पड़ती है। वर्तमान में कोई अधिकारी-कर्मचारियों ने बगैर रिश्वत के कार्य करना बंद कर दिया, जबकि उन्हें सरकार द्वारा हर महीने तनख्वाह मिलती है। कानून के कुछ रखवाले इसमें भी भेदभाव करने लगे है, सत्ता से जुड़े लोग जनता की सेवा की जगह निजी हितों की पूर्ति की भावना से प्रभावित हो चुके हैं। किसी भी प्रकार धन प्राप्ति तथा अपने रक्त-संबंधियों को आगे बढ़ाना उनका एकमात्र लक्ष्य बन चुका है। क्या असरदार साबित होगा लोकपाल? भ्रष्टाचार का इलाज करना सरकार की सबसे प्रमुख जिम्मेदारियों में से एक होना चाहिए, लेकिन दिक्कत यह है कि सरकार को आप छू या देख नही सकते। दरअसल हर वह अधिकारी सरकार है,जिसके पास आपके जायज काम में भी दखलंदाजी करने का अधिकार हैं।

देश की संपत्ति का एक बड़ा हिस्सा आज खुद को जनता के सेवक बताने वाले नेताओं और नौकरशाहों को जेब में है। हाल ही में संसद से पारित लोकपाल बिल को लेकर देश में आशा का माहौल निर्मित हुआ है। इसमें कोई शक नही है कि देश से भ्रष्टाचार के खात्मे के लिए लोकपाल सरीखे किसी सशक्त प्रहरी की सख्त दरकार है।

एक प्रतिष्ठित कंसल्टेंसी फर्म ने वर्ष 2012 की अपनी एक रिपोर्ट में भारतीय नौकरशाही को एशिया में सबसे बढ़तर बताया था। देश में भ्रष्टाचार की समस्या ने नई ऊंचाईयों को छू लिया है। आज देश में करोड़पति बनने के लिए सरकारी नौकरी सबसे आसान जरिया बन गया है और यह केवल वरिष्ठ नौकरशाहों के ही नहीं, लिपिकों और भृत्यों के संदर्भ में भी सही है। लेकिन समस्या इतनी भर नहीं है कि सरकारी महकमों में काम करने वाले अधिकांश कर्मचारी भ्रष्ट हैं, दिक्कत यह है वे आपकी किसी शिकायत पर प्रतिक्रिया तक नही देते। वे आपके कामकाज में कोई दिलचस्पी नही लेते, बशर्ते उन्हें घूस का हिस्सा न मिले। भगवान से मिलना ज्यादआसान होगा, लेकिन ऊंचे ओहदे पर बैठे किसी नौकरशाह से मिलना बड़ा कठिन है। यदि किसी नौकरशाह को कॉल करो, तो वह बामुश्किल ही फोन उठाता है। जब नौकरशाहों का ये हाल है तो मंत्रियों का क्या होगा?

राज्यपालों के एक सम्मेलन को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह ने कहा था कि सरकार लोकसेवकों के कार्य में पारदर्शिता औ उत्तरदायित्व का समावेश करने के लिए भरसक कोशिश करेगी और वह भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए भी कटिबद्ध है। लेकिन यदि जमीनी हकीकत देखें तो हम पाएंगे कि प्रधानमंत्री की ये बातें महज बातें ही है। विकास की जड़ों में मट्ठा डालने वाली लाइसेंस-परमिट प्रणाली आज भी जोर-शोर से जारी है। एक पूर्व प्रधान न्यायाधीश ने कहा था कि देश में गहरे पैठे भ्रष्टाचार का सबसे अधिक खामियाजा आम आदमी को भुगतना पड़ता है।

उन्होंने यह भी कहा था कि सार्वजनिक विवरण प्रणाली की बदहाली इसकी मिसाल है। इन तमाम बातों के बावजूद भ्रष्टाचार की लगाम कसने को लेकर हमारा रवैया कितना लचर रहा है, इसका पता इसी बात से लगाया जा सकता है कि भारतीय विधि आयोग की 166 वीं रिपोर्ट (1999) ने न केवल सिफारिश की थी कि भ्रष्टाचार में लिप्त पाए जाने वालों की संपत्ति जब्त कर ली जाए, बल्कि उसने एक विस्तृत मसौदा विधेयक भी तैयार किया था, जिसे संसद को केवल स्वीकार करने एक कानून की शक्ल देना थी।

यह दु:ख की बात है कि तब से अब तक किसी सरकार ने उस मसौदा विधेयक पर नजर भी नही डाली है, उसे पारित या लागू करने की बात तो रहने ही दे। हर सरकार वादा करती है कि वह इंस्पेक्टर रोज का खात्मा कर देगी, लेकिन हकीकत यह है, कि कानून इंस्पेक्टरों की संख्या में इजाफा ही करता है। भ्रष्टाचार के मामलों को पकड़ने और उनकी जांच करने वाली एकमात्र केंद्रीय एजेंसी सीबीआई है।

सीबीआई के स्वीकृत पदों की संख्या लगभग 6500 है, लेकिन उसके वास्ताविक कर्मचारियों की संख्या 5300 के करीब है। इनमें भी जांच अधिकारियों की संख्या लगभग 1300 ही है। मार्च 2012 को राज्यसभा में दी गई जानकारी के मुताबिक केंन्द्र सरकार के विभिन्न विभागों, मंत्रालयों और केंद्रशासित कार्यालयों में लगभग 36 लाख 84 हजार 543 पद स्वीकृत है। इनमें से छह लाख से भी अधिक पद आज खाली पड़े है।

अनुमान लगाया जा सकता है कि भ्रष्ट कर्मचारियों पर कानूनी कार्रवाही करने के लिए जरूरी जांच अधिकारियों की संख्या कितनी कम है। यहां यह भी गौरतलब है कि सीबीआई में पिछलें तीन सालों में भ्रष्टाचार के 2 हजार

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) ** सहायक प्राध्यापक (गृह विज्ञान) बी.एल.पी. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत

से भी अधिक मामले दर्ज किए गए है, जिनमें से 758 की जांच लंबित है। भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम के तहत सीबीआई द्वारा दर्ज किए गए कोई 7157 मामले भी देशभर की विभिन्न सीबीआई अदालतों में लंबित है। इनमें से अधिक मामले तो ऐसे है, जिसमें 20 से भी अधिक वर्षो से मुकदमे लंबित है। इस परिप्रेक्ष्य में लोकपाल बिल के पास होने का स्वागत तो किया जाना चाहिए, लेकिन सवाल है कि क्या देश में व्याप्त भ्रष्टाचार की समस्या से निपटने के लिए यह पर्याप्त होगा?

सबसे पहली बात तो यही कि लोकपाल के लिए कुछ न्यायाधीशों पर विश्वास करने के बजाय सरकार ने इसे एक आठ सदस्यीय समिति बना दिया है। भ्रष्टाचार में लिप्त पाए जाने वाले व्यक्ति की संपत्ति जब्त किए जाने का प्रावधान इसमें भी नहीं किया गया है भले ही लोकपाल के पास संबंधित भ्रष्टाचारी के खिलाफ पुख्ता सबूत हों। फिर इसमें जाति और अल्पसंख्यक संबंधी धाराएं भी शामिल की गई है जिससे समय-समय पर लोकपाल के फैसले प्रभावित हो सकते है।

वास्तव में लोकपाल तब तक प्रभावी नहीं हो सकता, जब तक सरकार खुद पारदर्शिता की प्रणाली नहीं अपनाती। सरकार को भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम में संशोधन करते हुए भ्रष्टाचारी पर शिकंजा कसने की कोशिश करना चाहिए। यह बात तो सर्वोच्च अदालत तक कह चुकी है कि आप आरोपी के पास वे तमाम अधिकार रहते है, जिनकी मदद से वह मुकदमे को लंबा खींचते हुए सजा को टाल सकता है। कानून के मुताबित भ्रष्टाचारी को दंडित करना न्यायपालिका का काम है, लेकिन न्यायपालिका में भी आज लगभग 5000 पद रिक्त पड़े है। नतीजा यह रहता है कि लंबित मुकदमों के चलते कोई भी यह उम्मीद नहीं कर सकता कि उसे जल्दी न्याय मिल पाएगा।

भ्रष्टाचार का सामना करने में साक्ष्य संरक्षण अधिनियम और व्हिसल ब्लोअर अधिनियम महत्वपूर्ण साबित हो सकते है, लेकिन आज वे परिदृश्य पर नजर ही नहीं आ रहे है। सवाल यह भी है कि लोकपाल को मंजूरी मिलने के बाद अब केंद्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी)की क्या उपयोगिता रह गई है? हकीकत तो यह कि हमारे यहां अनेक समितियां और आयोग नियामक तो इसीलिए बनाए गए है कि सेवानिवृत्त नौकरशाहों को उनमें समायोजित किया जा सके।

सारांश :- भ्रष्टाचार भारत की एक सर्वव्यापी समस्या बन कर रह गया है। आज सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार का बोलबाला हैं। सत्यनिष्ठा का नितान्त अभाव है। उत्तरदायित्व व सच्चरित्रता पूर्णत: लुप्त हो चुकी है। लोकपाल बिल पास हो चुका है। यदि लोकपाल बिल वाकई में बदलाव लाने वाला सिद्ध होता है, तो इससे देश में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आ सकता है, क्योंकि सबसे बड़ा सवाल यही है, कि भ्रष्टाचार को`जड़ से कैसे मिटाया जाए। भ्रष्टाचार को देश उखाड़ फेंकने में सही मायनों में लोकपाल कारगर सिद्ध हो सके, तो देश के विकास का मार्ग और अधिक प्रशस्त हो सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. क्या असरदार साबित होगा लोकपाल ? - जोगिंदरसिंह- नईदुनिया, इन्दौर शुक्रवार 20 दिसम्बर 2013, पेज नं.. भ्रष्टाचार से तंग आ चुके हैं लोग ? – आरविंद यादव– न्यूज ज्वकंल – इन्दौर शनिवार दिनांक 28.12.13-पेज नं. 4
2. कन्साइड आक्सफोर्ड शब्दकोश - पृष्ठ - 45
3. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था - सिवाच जे.आर.पृष्ठ - 467
4. करप्शन पालीटिक्स इन इंड़िया - भार्गव - जी.एस.- पृष्ठ - 01

****

19 वी सदी के भारत में राजनीतिक संगठनों की राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका की समीक्षा

मधुसुदन प्रकाश *

राजनीतिक संगठनों ने 19 वीं शताब्दी के भारत का परिचय आधुनिक राजनीति से कराया। धर्म अथवा जाति प्रधान संगठन इस देश में पहले भी विद्यमान थे, परन्तु इन नये संगठनों की स्थापना ऐसे व्यक्तियों ने की जिनकी एकता का आधार धर्मनिरपेक्ष उद्देश्य थे। सामान्य प्रशिक्षण, सामान्य शिक्षा, सामान्य महत्वकांक्षाएं तथा ब्रिटिश राज्य के प्रति असन्तोष आदि शक्तियों ने उन्हें एकता के सूत्र में आबद्ध किया था।[30]

पाश्चात्य संस्कृति का भारत पर एक प्रमुख प्रभाव यह हुआ कि इस देश में राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद तथा राजनीतिक अधिकारों आदि आधुनिक राजनीतिक विचारों का विकास हुआ। भारतीय उपमहाद्वीप में ऐसे राजनीतिक विचारों तथा संगठनों का जन्म हुआ जिनके अस्तित्व से अब तक भारतीय अनभिज्ञ थे।

भारतीय राजनीतिक आन्दोलन के मार्गदशर्क राजाराम मोहन राय31 थे जिन्होंने भारत वासियों की शिकायतों की ओर अंग्रेजों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया। अक्टूबर 1851 में ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन नामक एक नया राजनीतिक संगठन स्थापित हुआ। इसे लैण्डहोल्डर्स तथा बंगाल ब्रिटिश इण्डिया सोसायटी दोनों का ही सहयोग प्राप्त था। आर.सी.मजूमदार के अनुसार ये दोनों संस्थायें ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन में विलीन हो गयी।32 देवेन्द्रनाथ टैगोर इस संस्थान के सचिव थे तथा राधाकांत देव संस्थान के अध्यक्ष चुने गये।[33]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण के समय ब्रिटिश संसद के लिए यह आवश्यक था कि वह भारत में हो रही गतिविधियों का लेखा-जोखा अपने सम्मुख रखे। अतएव भारतीय राजनीतिक संगठनों के लिए आवश्यक हो गया कि वे ब्रिटिश संसद को इस सन्दर्भ में प्रभावित करने के लिए याचिकाऐं भेजें। इस कारण इस समय प्रेसिडेन्सी नगरों में राजनीतिक सरगरमी प्रारम्भ हुई। परिणामस्वरूप कलकत्ते में 1851 में ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन स्थापित हुआ तथा 1852 में बम्बई तथा मद्रास में भी संगठन स्थापित हुए।

ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन ने ब्रिटिश संसद को एक याचिका भेजी जिसमें मांग की गई कि बंगाल के लिए एक लोकतांत्रिक विधानसभा स्थापित की जाए, उच्च अधिकारियों का वेतन कम किया जाए, न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग किया जाए तथा नमक पर कर एवं आबकारी व स्टैम्प कर को समाप्त किया जाए। इन मांगों की पूर्ति आंशिक रूप से अवश्य हुई क्योंकि 1853 के चार्टर एक्ट के अनुसार गर्वनर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की, वैधानिक कार्यों के लिए संख्या में छ: की वृद्धि की गई। 1857 के विद्रोह ने ब्रिटिश साम्राज्य को बुरी प्रकार झकझोर दिया था।

1858 में ब्रिटिश संसद ने भारतीयों को विधानसभा में प्रतिनिधित्व देने के प्रश्न पर विचार किया। सर सैयद अहमद खां ने ब्रिटिश सरकार को समझाया कि विधानसभाओं में भारतीयों को प्रतिनिधित्व न देना, ब्रिटिश सरकार तथा भारतीयों के मध्य गलतफहमी का प्रमुख कारण है। सर बार्टल फ्रेरे ने भी इस कथन का समर्थन किया। इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों ही देशों में जनमत इस पक्ष में था कि भारत को किसी न किसी रूप में प्रतिनिधि संस्थाऐं प्रदान की जायें। किन्तु इस दिशा में कार्यवाही की गति बहुत मन्द थी।

1870 तक भारतीय समाज में परिवर्तन के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे। प्रेसिडेन्सी नगरों में उच्च शिक्षा भली प्रकार स्थापित हो चुकी थी तथा नए व्यवसायों में लगे हुए लोग समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहे थे। यह प्रवृत्ति एक अखिल भारतीय आन्दोलन के जन्म के लिए उत्साहवर्धक थी।

कलकत्ता में दो नए संगठन स्थापित किए गए तथा योजना के अनुसार देश भर में इनकी शाखाएं स्थापित की जानी थी। देशवासियों में देश प्रेम की भावना को जागृत करने के उद्देश्य से 1875 में एस.के.घोष ने इण्डियन लीग की स्थापना की। यह संकुचित दृष्टिकोण वाले ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन को एक चुनौती थी। लीग का वार्षिक चन्दा केवल पांच रूपये निर्धारित किया गया जबकि ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन द्वारा निर्धारित राशि पचास रूपये थी। एस.के.घोष ने अमृत बाजार पत्रिका में लिखा, 'देश के हित में इन दोनों संगठनों को प्रतिस्पर्द्धा करने दीजिए।' लीग में मध्य वर्ग का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व था। थोड़े ही समय पश्चात् जुलाई, 1876 में लीग का विलय इण्डियन एसोसिएशन नामक संगठन में हो गया जिसकी स्थापना सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा आनन्द मोहन बोस ने की।34 इसके उद्देश्य लीग के लक्ष्यों के समान ही थे। बनर्जी के अनुसार इण्डियन एसोसिएशन के निम्न उद्देश्य थे।

(1) देश में शक्तिशाली जनमत का निर्माण करना।

(2) समान हितों तथा आकांक्षाओं के आधार पर भारतीय जातियों तथा लोगों का एकीकरण।

(3) हिन्दुओं तथा मुसलमानों के मध्य सद्भावना तथा मैत्री को बढ़ावा देना।

(4) समस्त जनसमुदाय को बड़े जन आन्दोलनों में सम्मिलित करना।[35]

इण्डियन एसोसिएशन की स्थापना के साथ बंगाल के विद्यार्थी राजनीति में सक्रिय हो गये। उन्होंने 1875 में ही अपने संगठन बनाने प्रारंभ कर दिए थे। बम्बई में 1852 में बॉम्बे एसोसिएशन[36] का गठन हुआ। इसका उद्देश्य बॉम्बे प्रेसिडेन्सी में रहने वाले भारतीय लोगों की भावनाओं का पता लगाना तथा जन कल्याण के लिए शासन को उचित उपाय सुझाना था। एसोसिएशन ने मांग की कि विधानसभाओं में भारतीय लोगों को प्रतिनिधित्व दिया जाए। इसने इस तथ्य की भर्त्सना की कि उच्च पदों पर भारतीयों को नियुक्ति नहीं किया जाता, जबकि सरकार कार्य रहित उच्च पदों पर यूरोपियन लोगों को नियुक्त कर उन पर धन का भारी अपव्यय करती है। 1868 में इसने प्रशासनिक सेवा के प्रश्न पर एक विज्ञापन भेजा तथा 1869 में मांग की कि प्रशासनिक सेवा के लिए इंग्लैण्ड तथा भारत में एक साथ परीक्षा ली जाए।

बॉम्बे प्रेसिडेन्सी की राजनीति की विशेषता यह थी कि यहां पारसियों, गुजरातियों तथा मराठों ने राजनीतिक क्षेत्र में एक होकर कार्य किया। आमतौर पर पारसी समाज सरकार के प्रति वफादार थी। लार्ड लिटन के अनुसार पारसी लोग ब्रिटेन की रानी के प्रजाजनों में सबसे अधिक वफादार थी।

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शासकीय संजय गांधी स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गंज बासौदा (म.प्र.) भारत

सन् 1867 में जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे द्वारा एक महत्वपूर्ण राजनीतिक संगठन पूना सार्वजनिक सभा की स्थापना की गई। गणेश वासुदेव जोशी ने इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। रानाडे के अनुसार भारत की समृद्धि औद्योगिक क्रांति के अभाव में असम्भव थी।[37] सभा ने भारतीय जनता में अधिकारों की चेतना जागृत की तथा अपने अधिकारों के लिए लड़ने हेतु संवैधानिक साधनों पर बल दिया। 1876-77 के अकाल में सभा द्वारा अनेक प्रकार से प्रभावित लोगों को राहत पहुंचाई गई। सभा ने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट 1878 के विरूद्ध आवाज उठाई, इल्बर्ट बिल 1883 के विरोध में आन्दोलन चलाया और स्थानीय स्वशासन की मांग की। लेजिस्लेटिव कौंसिलों के सुधार तथा सिविल सेवा में भारतीयों की नियुक्ति हेतु भी सभा द्वारा मांग की गई। इसके अतिरिक्त सभा कृषकों की समस्या उठाने तथा इन्हें दूर करने में अधिकतम व्यस्त रही।

1852 में स्थापित मद्रास नेटिव एसोसिएशन[38] कलकत्ता के ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन की ही एक शाखा थी। कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण के समय 1853 कलकत्ता में तथा बम्बई के एसोसिएशनों की भांति मद्रास एसोसिएशन ने भी एक याचिका ब्रिटिश संसद को भेजी थी जिसमें लगभग वे ही मांगे थीं जो कि कलकत्ता तथा बम्बई के संघों ने की थी। ए.सी. मजूमदार (एक भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष) के अनुसार मद्रास नेटिव एसोसिएशन का कार्य कुछ अधिकारियों द्वारा चलाया जाता था। मद्रास के जनसाधरण पर इसका प्रभाव नगण्य था। फिर भी मद्रास नेटिव एसोसिएशन किसी प्रकार 1868 तक चलता रहा।

लंदन में अध्ययन कर रहे भारतीय विद्यार्थियों फिरोजशाह मेहता, बदरूद्दीन तैयबजी, मनमोहन घोष, दादाभाई नोरोजी इत्यादि ने 1865 में लंदन इण्डियन सोसाइटी की स्थापना की। भारतीयों की शिकायतें दूर करने तथा अंग्रेजी प्रेस में भारत के विरूद्ध दुष्प्रचार को ठीक करने का कार्य इस संगठन के माध्यम से किया गया। अक्टूबर सन् 1866 को दादाभाई नोरोजी ने ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना की।[39] इसका प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजी जनता तथा संसद सदस्यों के समक्ष भारत संबंधी विषयों पर समस्त सूचना प्रस्तुत करना था। शीघ्र ही एसोसिएशन ने प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और 1869 में इसकी शाखाऐं बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास में खोली गई। एसोसिएशन द्वारा वर्नाकुलर प्रेस एक्ट के विरूद्ध, अफगान युद्ध के खर्च वहन न करने तथा कपास ड्यूटी समाप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत किये गये थे।

ईस्ट इण्डियन एसोसिएशन के अतिरिक्त लंदन में कुछ अन्य संगठनों की भी स्थापना हुई। 1867 में मैरी कारपेन्टर द्वारा नेशनल एसोसिएशन की स्थापना की गई। 1872 में आनन्द मोहन बोस ने इण्डियन सोसाइटी की स्थापना की।

उल्लेखनीय है कि ये सभी संस्थाएं क्षेत्रीय थी या प्रान्तीय अथवा देश के बाहर बनाई संस्थाएं थी। अत: शीघ्र ही भारतीयों को यह अनुभव होने लगा कि अपनी मांगों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट कराने के लिए एक राष्ट्रीय स्तर की संस्था का होना आवश्यक है। अत: 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

भारत में काफी समय से ऐसी राजनीतिक संस्थाओं का अभाव महसूस किया जा रहा था, जो समस्याओं को सरकार के समक्ष स्पष्ट रूप से रख सके। किन्तु उस समय तक कोई ऐसी संस्था नहीं थी, जो राष्ट्रीय स्तर की हो तथा जिसका कार्यक्षेत्र संपूर्ण भारत हो । तत्कालीन भारतीय नेताओं का यह विश्वास था कि समस्या का समाधान प्रादेशिक संस्थाओं द्वारा सम्भव नहीं है। अत: सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के प्रयत्नों से 1883 ई. में प्रथम भारतीय कांफ्रेंस का अधिवेशन हुआ, किन्तु शीघ्र ही इस संस्था के स्थान पर 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जो अत्यन्त ही लोकप्रिय प्रमाणित हुई। यहां उल्लेखनीय है कि 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना न तो एक आकस्मिक घटना थी और न ही एक ऐतिहासिक दुर्घटना यह उस राजनीतिक चेतना की प्रक्रिया की चरम सीमा थी जो 1860 व 1870 के दशकों में प्रारंभ हुई थी। कांग्रेस की स्थापना इसे बढ़ती चेतना की पराकाष्ठा थी।[40]

इस संस्था को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करने का कार्य एक अवकाश प्राप्त अंग्रेज अधिकारी ए.ओ. ह्यूम को सौंपा गया। इसी कारण ए.ओ.ह्यूम को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्मदाता माना जाता है। डब्लू, सी.बनर्जी आदि अनेक भारतीय नेताओं का विचार था कि ए.ओ. ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना वायसराय लॉर्ड डफरिन के परामर्श से की है ताकि भारत में व्याप्त असन्तोष को विद्रोह के रूप में परिणत होने से बचाया जा सके। लाला लाजपत राय ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए यंग इण्डिया में लिखा, ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का मुख्य कारण यह था कि ह्यूम अंग्रेजी साम्राज्य को छिन्न-भिन्न होने से बचाना चाहते थे।[41] इसके विपरीत गुरूमुख निहालसिंह ने लिखा है, ''यह सम्भव है कि ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने तथा कांग्रेस का प्रयोग एक अभय द्वीप की तरह करने के विचार ह्यूम तथा बेडरवर्न के हृदयों में हों, किन्तु इस बात पर विश्वास करना असम्भव है कि दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, व्योमेश चन्द्र बनर्जी, फिरोजशाह मेहता और रानाडे जैसे भारतीय नेता इनके हाथों में साधन मात्र थे या वे भी ब्रिटिश साम्राज्य को क्रांति के खतरे से बचाने का विचार रखते थे।''[42]

आधुनिक शोधकार्यो से यह स्पष्ट हो गया है कि ए.ओ. ह्यूम एक उदारवादी व्यक्ति थे तथा भारत में समाज सुधार करना चाहते थे। भारतीयों की स्थिति, निर्धनता व कष्टों को देखकर उनके मन में भारतीयों के प्रति सहानुभूति थी। ह्यूम का विचार था कि भारतीयों की यह समस्याएं तभी दूर हो सकती है। जबकि वे राजनीतिक रूप से संगठित हों तथा कोई ऐसी संस्था हो जो सरकार तक जनसाधारण की समस्याओं को पहुंचा सके।

इस विषय में जकारिया ने लिखा है, ''लोकतन्त्रवादी भारतीय एवं अंग्रेज समर्थकों के संयुक्त प्रयत्नों से इस महान राष्ट्रीय संस्था का जन्म हुआ। इस कार्य में उन्हें प्रेरणा संकीर्ण भावों से नहीं वरन् सत्य और न्याय के विचारों के प्रति सच्ची लगन और भक्ति से मिली।''

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि कांग्रेस की स्थापना किए जाने के समय यह मूलत: एक सामाजिक संस्था थी न कि एक राजनीतिक संस्था। अत: राजनीतिक उद्देश्यों के लिए अंग्रेजों द्वारा इसका प्रयोग सम्भव न था। इस बात की पुष्टि डब्लू.सी. बनर्जी के उस वक्तव्य से भी होती है जो उन्होंने कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में दिया था उन्होंने अपने वक्तव्य में कांग्रेस के प्रमुख उद्देश्यों में, राष्ट्रवादियों में परस्पर सौहार्द बढ़ाना, पारस्परिक वैमनस्य समाप्त कर एकता को बढ़ावा देना, महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु प्रयास करना आदि शामिल थे। अत: स्पष्ट हो जाता है कि अपनी स्थापना के समय कांग्रेस के मुख्य उद्देश्य सामाजिक थे न कि राजनीतिक। किन्तु कुछ समय बाद ही कांग्रेस के उद्देश्य राजनीतिक हुए थे।

ए.ओ.ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना चाहे किसी भी उद्देश्य से की हो, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इसकी स्थापना के अत्यन्त दूरगामी राजनीतिक परिणाम हुए, व भविष्य में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में इस संस्था ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रारम्भ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस समाज में व्याप्त कुरीतियों व सरकारी नीतियों से उत्पन्न समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करने वाली एक संस्था थी, किन्तु शनै:-शनै:

इसका स्वरूप परिवर्तित होता चला गया और यह शीघ्र ही एक राजनीतिक संस्था बन गयी। इस प्रकार सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना से भारतीय इतिहास में एक नये अध्याय का शुभारम्भ होता है। इस संस्था ने भारतीय लोगों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया तथा अन्त में उन्हें राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कराई।

कांग्रेस की स्थापना से आगामी लगभग 20 वर्षो तक भारत का राजनीतिक आंदोलन शांतिपूर्ण और वैद्यानिक ढंग से चलता रहा। कांग्रेस की राजनीति के इस चरण में राजनीतिक आन्दोलन के लिये मुख्यत: उदारवादी मार्ग अपनाया गया। अपने अस्तित्व के प्रथम दो दशकों में कांग्रेस पाश्चात्य शिक्षाप्राप्त मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवियों के प्रभाव में थी। लोग साम्राज्यवादी संस्कृति की उपज थे और चाहते थे कि औपनिवेशिक शासन बना रहे। अतएव कांग्रेस केवल कुछ रियायतें मांगती थी न कि देश के लिए स्वशासन।

यद्यपि सर्वोच्च तथा प्रांतीय विधान परिषदों के विस्तार तथा सुधार, इनमें भारतीयों का अधिक प्रतिनिधित्व अन्य प्रान्तों के लिए विधान परिषदों के गठन, इन परिषदों की कार्यक्षमता में विस्तार इत्यादि की मांग तो कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन से ही प्रारम्भ हो गई थी और इसके उपरान्त लगभग सभी अध्यक्षीय भाषणों में दोहराई गई थी। कांग्रेस की वास्तविक जीवित प्रतिनिधित्व की मांग को भी स्वीकार नहीं किया गया। सेवाओं के भारतीयकरण की मांग, कांग्रेस की एक अन्य महत्वपूर्ण मांग थी। 1885 की कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में ही कांग्रेस ने मांग की थी कि जनपद सेवा के लिए प्रतियोगिता इंग्लैण्ड तथा भारत में एक ही समय होनी चाहिए ताकि, अधिक भारतीय इस प्रतियोगिता में भाग ले सके। कालान्तर में कामन्स सभा ने कांग्रेस की इस मांग के पक्ष में एक प्रस्ताव पारित तो कर दिया परन्तु इसे इस विचाराधीन काल में कार्यान्वित नहीं किया गया।

यूरोपीय प्रबोध तथा उदारवाद की भावना से प्रेरित ये नरमदल के लोग व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा विधि के शासन की मांग करते थे। उन्होंने कार्यकारिणी तथा न्यायपालिका के कार्यो के अलग-अलग करने की मांग की तथा निवारक बन्दीकरण कानून को रद्द करने की मांग की।[43] 1886 के अधिवेशन में कांग्रेस ने इन सभी सुधारों की, सर्वव्यापी समर्थन के आधार पर, पुन: मांग की और फिर यह मांग हर वर्ष दोहराते चले गए। कांग्रेस के नेताओं ने इस बात पर भी बल दिया कि प्राथमिक शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा के प्रसार पर अधिक व्यय किया जाना चाहिए।

मुख्य रूप से अपनी शैक्षिक पृष्ठभूमि के कारण कांग्रेस के नेता, विशेषकर पुरानी पीढ़ी के लोग, अंग्रेजी इतिहास तथा संस्कृति की बहुत सराहना करते थे और प्राय: भारत के अंग्रेजी सम्बन्धों को ''दैवी कृपा'' कहते थे। यह उनका मूलभूत विश्वास था कि अंग्रेजी राज्य भारत के हित में था इसलिए वे अंग्रेजी को शत्रु नहीं मित्र मानते थे। वे विश्वास करते थे कि समय पाकर अंग्रेज उन्हें पाश्चात्य परम्परा के सर्वोत्तम मानदण्डों के अनुसार स्वशासन के योग्य बना देगा। 1886 में कांग्रेस प्रधान दादा भाई नौरोजी ने अंग्रेजी राज के वरदानों का मुक्त कष्ट से गुणगान किया।

कांग्रेस के तीसरे अध्यक्ष श्री बदरूद्दीन तैयबजी ने कहा 'महामहिम की करोड़ों की प्रजा में भारतीय शिक्षित वर्ग से अधिक राजभक्त तथा अंग्रेजी साम्राज्य से अधिक अनुरक्त, कोई नहीं।'' अतएव ये नरमदल के लोग ऐसा कुछ भी करने को उद्यत नहीं थे, जिससे साम्राज्य निर्बल हो। क्राउन के प्रति राजभक्ति उनका परम विश्वास था और सभी उनके राजनीतिक धर्म की एक महत्वपूर्ण धारा थी।

कांग्रेस के इस नरम रूख तथा दृढ़ राजभक्ति के होते हुए भी उसे सरकार की ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। आरम्भ में सरकार तटस्थ थी। इसी भावना से प्रेरित होकर लार्ड डफरिन ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1886) के प्रतिनिधियों को एक उद्यानभोज भी दिया था। इसमें यह विशेष रूप से स्पष्ट किया गया कि निमंत्रण कांग्रेस के प्रतिनिधियों को नहीं अपितु कलकत्ता आए हुए विशिष्ट दर्शकों को है। 1887 में मद्रास के गवर्नर ने कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन के लिए मद्रास नगर में सुविधाएं प्रदान की, परन्तु 1887 के पश्चात् सरकार का रूख कठोर होता चला गया।

कांग्रेस ने एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसका शीर्षक था एक तमिल कांग्रेस प्रश्नोत्तररूपी शिक्षा जिस में एक मौलवी फरूकुद्दीन तथा कम्ब्रतपुर के रामबख्श के बीच एक वार्तालाप था जिसमें तानाशाही सरकार तथा अनुपस्थित भूस्वामित्व की निन्दा की गई थी और इससे सरकार के साथ खुला विरोध हो गया। अधिकारी वर्ग ने सर सैयद अहमद खां तथा बनारस के राजा शिवप्रसाद को प्रेरणा दी कि वे कांग्रेस के प्रचार का प्रतिरोध करने के लिए एक संगठित भारतीय देशभक्त मण्डल का गठन करें। 1888 ई. में इलाहाबाद के कांग्रेस अधिवेशन के लिए स्थान ही उपलब्ध न होने देना, कांग्रेस को धन देने वालों पर निगरानी रखना आदि सरकारी नीति के अंग बन गये।[44] डफरिन ने कांग्रेस के राष्ट्रीय चरित्र को भी चुनौती दी और कहा कि यह तो केवल एक ''सूक्ष्मदर्शी अल्प संख्या'' का प्रतिनिधित्व करती है और कांग्रेस की मांग तो केवल ''अज्ञात में छलांग'' मारने के समान है। इस समय तक सरकारी सेवकों की कांग्रेस में सम्मिलित होने की अनुमति नहीं रही। लार्ड कर्जन ने यह तक कह दिया था ''कांग्रेस लड़खड़ाती हुई अपने पतन की ओर जा रही है।'' कर्जन की एक अन्य महत्वाकांक्षा यह थी कि वह ''इसकी शान्तिमय मृत्यु में सहायता कर सके।''

यद्यपि यह सत्य है कि कांग्रेस आन्दोलन का सामाजिक आधार उन दिनों केवल नगरों में मध्यम वर्ग तक ही सीमित था, नगरों के औद्योगिक कार्य करने वाले अभी उनके प्रभाव-क्षेत्र से बाहर थे तथा कांग्रेस का संदेश ग्रामों तक पहुंचा ही नहीं था दूसरी ओर मार्क्सवादी विद्वानों ने यह भी कहा है कि नरमदल के नेताओं का दृष्टिकोण बूर्जवा था और वे यह चाहते थे कि भारत का विकास भी बूर्जवा पद्यति के अनुसार ही हो। किन्तु 1890 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की पहली महिला स्नातक कादंबिनी गांगुली ने कांग्रेस के अधिवेशन को संबोधित किया।[45] यह इस बात का प्रतीक था कि भारत का स्वाधीनता संग्राम स्त्रियों को उस पतित अवस्था से उबारेगा जिसमें वे सदियों के कालक्रम में पहुंचा दी गई थी।

परन्तु दादा भाई नौरोजी, सर फिरोजशाह मेहता, सर दीन शाह वाचा, गोपाल कृष्ण गोखले तथा सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी जैसे लोगों के प्रति न्याय करते हुए हमें यह कहना होगा कि ये लोग उस समय भारतीय समाज में सबसे प्रगतिवादी तत्व थे और वे सच्चे देशभक्त थे। वे मन से यह चाहते थे कि भारतीय समाज का कल्याण हो और उनका यह प्रयत्न रहा कि अंग्रेजी शासन की कठोरता कम की जा सके। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने 1886 में लोक सेवा आयोग की नियुक्ति करवाई जिससे लोगों में निराशा हुई और दूसरे 1892 का भारतीय परिषद अधिनियम पारित करवाया जिससे संविधान में आधारभूत परिवर्तन नहीं हुए। इसके अतिरिक्त उन्होंने बहुत-सा आरम्भिक कार्य भी किया।

उन्होंने जनता में एक विशाल राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न की ओर लोग यह समझने लगे कि वे एक ही राष्ट्र अर्थात भारतीय राष्ट्र के सदस्य हैं। उन्होंने यह भावना भी जगाई कि भारत का शासन भारत के हित में होना चाहिए। उन्होंने

राष्ट्र में राजनीतिक आन्दोलन करने का प्रशिक्षण दिया और जनता में राजनीतिक प्रौढ़ता जाग्रत की।

सम्भवत: नरमदल के नेताओं की देश के प्रति सबसे बड़ी यह सेवा थी कि उन्होंने भारत में अंग्रेजी राज्य का वास्तविक आर्थिक प्रभाव लोगों को समझाया। उन्होंने जनता का ध्यान भारतीय निर्धनता की ओर दिलाया और लोगों को यह बताया कि यह निर्धनता मुख्य रूप से ब्रिटेन द्वारा भारत के आर्थिक साधनों के साम्राज्यीय शोषण के कारण ही है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1 Seal, Anil: The Emergence of Indian Nationalalism : Competition and Collabration in the Later 19th century, Vol-I. Publisher Cup Archive, Cambridge university press, london, 1961, Page No.194

2 लूणिया, वी.एन., भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, वर्ष 1964, पृष्ठ 435

3 गुप्त, शिवकुमार, आधुनिक भारत का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, वर्ष 1999, पृष्ठ 231

4 गौतम, पी.एल., आधुनिक भारत (1757-1947) राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, वर्ष 1998, पृष्ठ 500

5 ग्रोवर, बी.एल. और यशपाल, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, एस. चंद एण्ड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 156

6 Banerjee, Surendranath: A Nation making, Publisher Humhrey milfort, OXeort university, London, Year 1925, Page No. 42

7 मित्तल,डॉ.ए.के., भारत का इतिहास (1740-1950 तक) साहित्य भवन पब्लिकेशनआगरा, 2004, पृष्ठ 257

8 Ranade, M.G.: Essays on Indian Economics, Publisher G.A.Natesan & company, Madras, Year 1906, Page No.128-129

9 गुप्त, शिवकुमार, आधुनिक भारत का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, वर्ष 1999, पृष्ठ 234

10 गौतम, पी.एल., आधुनिक भारत (1757-1947) राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, वर्ष 1998, पृष्ठ 501

11 चंद्र, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, वर्ष 2011, पृष्ठ 44

12 Rai,lala lajpat:A call to young india,publisher S.Ganeshan and company,year 1920,madras page 135

13 सिंह, गुरूमुख निहाल, भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, आत्माराम एण्ड संस (1600-1919), दिल्ली 1961, पृष्ठ 108

14 ग्रोवर, बी.एल. और यशपाल, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा संवैधानिक विकास, एस. चंद एण्ड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 190

15 जैन, डॉ.एम.एस., आधुनिक भारत का इतिहास, मेकमिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, नयी दिल्ली, (प्रथम संस्करण), वर्ष 1975, पृष्ठ 384

16 चन्द्र, विपिन आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियेंट ब्लैक्स्वॉन प्रा. लिमिटेड, दिल्ली, वर्ष 2011, पृष्ठ 202

****

मालवी लोकगीतों में प्रतिबिम्बित मालवा का चित्रण

डॉ. दिनेश कुमार सूर्यवंशी *

भारत के हृदय स्थल के रूप में सुविख्यात मध्यप्रदेश के अनुपम अचलों में मालवा अपनी विशेष विशिष्टताओं के कारण लोक प्रसिद्ध है। मालवा स्वयं में एक अनुपम एवं सुरम्य अंचल है। मालवा शब्द कण्ठ में स्फुरित होते ही हमारे स्मृति पटल पर अनेक सुन्दर बिम्ब निर्बाध विरचने लगते हैं।

प्रकृति की ममतामयी गोद में लहलहाता, खिलखिलाता मालवा-अंचल, पशु-पक्षी, वन्य-प्राणी और विशेष प्रकार कि वन सम्पदा के लिए भारत में अपनी विशेष प्रतिष्ठा बनाए हुए हैं। यहाँ की वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, वृत्ता-त्यौहार एवं परम्परा लोक प्रसिद्ध है। विभिन्न प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रन्थों में मालवा का उल्लेख एवं यहाँ के निवासियों की प्रशंसा की गई है।

कवि के शब्दों में -

सर्वे देशा भूषिता मालवीयैः, सर्वे विज्ञा भूषिता मालवीयैः
सर्वे धर्मा आश्रिता मालवीयैः, सर्व विद्या आश्रिता मालवीयैः ।[1]

समस्त देश मालव वासियों से विभूषिता है, सभी विज्ञ जन मालवी जनों से शोभित है, सभी धर्म मालवीयों से आश्रित है, और सभी विधाएँ मालवियों द्वारा आश्रित है। इसी प्रकार यहाँ की सुरम्यता, प्रकृति की नैसर्गिक छटा एवं धन-धना से भरपूर मालवा से अभिभूत होकर महाकवि कबीर के हृदय से भी यह उक्ति छलक पड़ी होगी।

देश मालवा गहन गम्भीर, डग-डग रोटी पग-पग नीर ।[2]

इस श्रृंखला में अनेक विद्वानों ने हृदय से मालव भूमि, यहाँ के निवासियों एवं यहां की मीठी बोली मालवी का गुणगान किया है। डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित का कथन है - मालव भारतीय अस्मिता का प्रतीक ! मालव अनजाने काल से भारतीय गणराज्य और गणशक्ति का जुझारु रखवाला अपने नाम और गुण सहित मालव भारत के पूर्व से पश्चिम तक तथा उत्तर से दक्षिण तक भारत के मध्य में मध्यप्रदेश के पश्चिम में अपने अपश्चिम महत्व को उजागर कर रहा है।[3] विश्व लोक साहित्य का उद्‌भव तभी से माना जा सकता है, जब से मानव में बुद्धि का विकास हुआ। मानव ने मन की विविध मनोदशा का प्रदर्शन कभी भाषा के रूप में तो कभी शरीर की विविध क्रियाओं द्वारा। मनुष्य ने भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा को माध्यम बनाया तो भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति के लिए लोक-साहित्य का प्रयोग किया। लोक साहित्य के सम्बन्ध में सर्वप्रथम प्रमाण हमें प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में प्राप्त होते है। डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय के शब्दों में - ''लोक गीतों का बीज हमारे सबसे प्राचीन तथा पवित्र ग्रन्थ ऋग्वेद में पाया जाता है।

प्राचीन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान-स्थान पर उपलब्ध है, वे ही लोकगीतों के पूर्व प्रतिनिधि है।''[4] अतः स्पष्ट है कि अति प्राचीन समय से लोक साहित्य किसी न किसी विधा के रूप में लोक मानस में प्रचलित रहा है। लोक साहित्य यद्यपि भौतिक परम्परा में होता है। इसलिए उनके प्रमाण देना असम्भव है, किन्तु उसके प्रचलन के प्रमाण हमें ग्रन्थों से प्राप्त होते है। इसी परम्परा में श्री कृष्ण के जन्म के शुभ अवसर पर स्त्रियों द्वारा मनोरंजक गीत का स्पष्ट वर्णन मिलता है। बाल्मीकि रामायण में राम के जन्म के समय पर गंधर्वो द्वारा गाने तथा अप्सरा द्वारा नाचने का उल्लेख मिलता है -

जगुः कलं च गन्धर्वाः नन्नतुश्चाप्सरोगणाः ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पिवृष्टिश्च खात्पतत् ।।[5]

भारत के हृदय प्रदेश मालवा की लोक भाषा मालवी में प्राप्त लोकगीत अपनी विशद भावभूमि एवं भाषा के विशेष मार्धुय के कारण लोक प्रसिद्ध है। अत्यन्त सरल वाक्य रचना में जिस तरह से लोक-मानस ने अपने भावों को समेटा है, वह सहृदय को झंकृत कर देता है।

भाषा के माधुर्य के साथ ही लोकमानस की रसानुभूति एवं भावों की मृदुल व्यंजना मालवी लोकगीतों की अपनी विशेषता है।[6] मालवा मीठी बोली मालवी, लोकगीतों के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सक्षम है। इसलिए तो मालवीय लोकगीतों का कोई छोर नहीं है। कई मालवी लोकगीत गायक इनकी संगीत लहरी से विश्वजगत को मोहित कर चुके है इनमें पद्म श्री प्रहलादसिंह टिपान्या ग्राम लून्याखेड़ी तहसील तराना जिला उज्जैन का महत्वपूर्ण योगदान है आपने अमेरिका जैसे देश को मालवी की मिठास से मोहित किया, यह मालवी लोकगीत के लिए गौरव की बात है। मालवा के मांगलिक कार्यक्रमों में महिलाओं के गीतों की मधुगुंजार सुनाई पड़ती है एवं विविध त्यौहारों व कार्यक्रमों में पुरुष वर्ग भी इन गीतों को गाते है - लावणी, भजन, कीर्तन, हीड़, तेजाजी, ग्यारसमाता आदि। 21 वीं शदी में मालवा में गुंजते रहते हैं। यह मालवी लोकगीतों की मधुरता का ही परिणाम है कि आधुनिकता की आंधी भी इनको नष्ट नहीं कर सकी। महिला वर्ग द्वारा गाये जाने वाले लोकगीत परिणाम की दृष्टि से अन्य लोक गीतों की अपेक्षा अधिक है। मालवी लोकगीतों पर जैसे महिलाओं का ही साम्राज्य है।

मालवी गीत मालवा क्षेत्र की बोली में गाये जाने वाले गीत है, उन गीतों की रचना महिलाओं द्वारा महिलाओं के लिए की गई है, वे पारस्परिक है और लोक संस्कारों, लोकविचारों, लोकधाराओं, लोक प्रवृत्तियों, लोक सम्बन्धों, लोकोपचारों को व्यक्त करती है। उनमें लोक देवता गीत, भजन, संस्कार गीत है। संस्कार जन्म की सम्भावना मात्र से आरम्भ होकर मरण पर्यन्त गीतों के माध्यम से व्यक्त हुए है।[7] जिन्हें हम निम्न भागों में बाँट सकते है -

1. विविध संस्कार गीत
2. देवी-देवता एवं पूर्वजों के गीत
3. व्रत त्यौहार गीत
4. मौसम सम्बन्धी गीत
5. रिश्ते नाते सम्बन्धी गीत।

1. विविध संस्कार गीत - शिशु के जन्म से पूर्व ही उसके आने की खुशी में विविध गीत गाये जाने लगते है, स्त्री की सबसे प्रबल आकांक्षा होती है, माँ बनना और माँ बनने हेतु लोक देवताओं की आराधना के लिए लोकगीत से अच्छा क्या साधन हो सकता है। पुत्र के प्रति उसके मन की छटपटाहट इस गीत में कितनी मुखर है -

एक बालूड़ा के कारणे म्हारे सुसरा जी बोले बोल ।
एक बालूड़ा के कारणे म्हारे सासुजी बोले बोल ।
माई म्हारे एक बालूड़ो दे दो ।
जाकि सासू-सुसरा बोले न बोल ।[8]

मानव का सम्पूर्ण जीवन सौलह संस्कारों में विभाजित है जिनमें जन्म, विवाह एवं मृत्यु तीन मुख्य माने गये है किन्तु मालवी लोकगीत मालवावासी के प्रत्येक संस्कार का संगीतमय स्वागत करते हैं। बच्चे के जन्म के बाद से ही

*व्याख्याता (इतिहास), वर्धमान महाविद्यालय चौमहला, झालावाड़ (राजस्थान) भारत

नामकरण निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुण्डन, बधावा, जच्चा, पगल्या, सूरजपूजा, लोरिया आदि गीत घर आंगन में गूँजते लगते हैं। मालवा की महिलाएँ सर्वाधिक विवाह संस्कार के दौरान गीत गाती है। घटनाओं – लगन झेलना, माण्डव गाड़ना, कुम्हार के यहाँ से खानागार लाना, हल्दी लगाना, दुल्हे को नहलाना, तेल चढ़ाना, तोरण मारना, फेरे करना, दहेज देना, काकड़ डोल्डा छोड़ना आदि छोटे-छोटे संस्कार के गीत महिलायें गाती रहती हैं। दुल्हे को नहलाते वक्त का यह गीत उनके मनोभावों का दर्पण है –

अलल-खलल नदि बहे................
म्हारो गोरो लाड़ो नाह्वण बैठो ओ राज.............।[9]

2. देवी देवताओं एवं पूर्वजों के गीत – लोक देवी देवताओं एवं पूर्वजों के प्रति मालवा में अपार श्रद्धा पाई जाती है, क्योंकि ये उनको इच्छित वरदान देते हैं। भेरू महाराज, सतीमाता, नाग महाराज, तेजाजी, देवनारायण आदि की पूजा में लोकगीत का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। जिस तरह प्रत्येक गाँव में अलग-अलग हनुमान (खेड़ापति हनुमान) होते हैं वैसे ही प्रत्येक जाति व गौत्र के अलग-अलग भेरू होते हैं। इसी प्रकार माता के भी कई रूप में पाये जाते हैं। इन लोक देवताओं के अलावा अकाल मौत मरे पुरुष (पालया), स्त्री (परी) के पूजा गीत के साथ पूर्व में मरे पूर्वजों के गीतों के बिना कोई भी मांगलिक कार्य प्रारम्भ ही नहीं होता है। निम्न गीत में गगन में उड़ती चिड़िया के माध्यम से स्वर्गवासी पितरों को विवाह में पधारने का निमन्त्रण दिया जा रहा है।

सरग उड़न्ती साँवली म्हारो सन्डेसो लेती जा,
जई बूड़ा गल्ड्यिा से यू कीजे, तमारे घर बरढोड़ा हो
ताला जकड़िया लोया का ने, जकड़ाया बज्जर किंवाड़,
काचा सूत का पालना, बन्दया है सरग दुआर
बरदकरो बरदावण, हमारो तो आवणो नी होय।[10]

3. व्रत त्योहार गीत – मालवा पूरे वर्ष व्रत त्योहारों से लबरेज रहता है। प्रत्येक तिथि, वार देवताओं के दिन होते हैं, फिर सावन सोमवार, संजा, नवरात्री, गणेश चतुर्थी, अनन्त चतुदर्शी, ग्यारस, चौदस, पूर्णिमा, अमावस्या आदि अनेक अवसर होते है जिन पर मालवा में व्रत किए जाते हैं और इनसे सम्बन्धित गीत गाये जाते हैं। होली पर फाग गीत दीवाली पर गोवर्धन व गाय, बैल के गीत व राखी पर बहन के द्वारा भाई के प्रति गाये गये, ये गीत सम्पूर्ण त्यौहारों को संगीतमय बना देते हैं। निम्न गीत में राखी के त्योहार पर बहन अपने भाई का रास्ता देख रही है, किन्तु वह आये कैसे समस्त मालवा की नदियौ वर्षा ऋतु होने से बह रही हैं। ऐसे में वह नदियों को पूजा-पाठ से उतर जाने का आग्रह करती है –

चंबल चड़ावाँ खारक खोपरा, बेगा आवो म्हारा बीर।
रेवा चड़ावा चौली कापड़ा, उतरी आवो म्हारा बीर।
सिपरा चड़ावा वीरा चुरमों, बेगा आवो म्हारा बीर।
पुजायों चड़ावा कालीसिन्द के, उतरी आवो म्हारा बीर।[11]

4. मौसम सम्बन्धी गीत – मौसम का हृदय से निकट सम्बन्ध होता है, वह प्रत्येक हृदय को प्रभावित करता है। मालवा में हर मौसम के अपने गीत होते हैं विविध ऋतु में पड़ने वाले मानव हृदय पर प्रभाव गीत परिणाम व साहित्यक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। एक फाग गीत का उदाहरण है –

ननंद बाई बरजों मती, बंसीवाला से खेलूंगी फाग ।
नोमन कान्हा ने रंग बनायों उस मन कैसर घोली
भर पिचकारी मेल पे डोली तो भीजी मेल अटारी ।[12]

5. रिश्ते नाते सम्बन्धी गीत – मानव एक सामाजिक प्राणी है मालवी समाज रिश्तों के जाल में बंधा हुआ है। मालवा से मालवा के बीच अनेक रिश्ते सास लेते हैं। पति-पत्नि, भाई-बहन, पिता-पुत्री, पिता-बहु, सास-बहु, देवर-भाभी, देवरानी-जेठानी, काका-काकी, ननद-भौजाई, मामा-भानेज, बना-बनी, प्रेमी-प्रेमिका, आदि मालवा के समस्त रिश्तों का लोकगीत में वर्णन मिलता है। पति-पत्नि का यह गीत अपनी भाव प्रवणता के कारण बहुत ही मनमोहक लगता है –

अरै फेर मिलागा रे मनडो हालरियो
गोरी को ढोला फेर मिलागा रे, मनडो हालरियो
म्हारा भँवर तो इत्ता रसीला दो दो धोतिया पेरे रे।
म्हारा भँवर तो इत्ता रसीला दो दो कंदोरा पेरे रे
पैर चमकीला बारी, ने आख्या मटकाता चाला रे....मनडो ....
म्हारा भँवर जी इत्ता रसीला दो दो गोख्या राखे रे
म्हारा भँवर जी इत्ता रसीला तीन-तीन राखे रंगीली रे।
महे तो पीयर चाली रे। ....मनडो ....
ढलक ढलक कोई रोवै भँवर जी, काले पाछा आवा रे।
म्हे तो म्हारा घर में सुती, आडी दे गयो टाटी रे।
टाटी खोल बाहर नी जाना, म्हारी छाती फाटी रे।....मनडो ....[13]

सारांश महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले मालवी लोकगीत की भावभूमि अत्यन्त विस्तृत है। वे मानव हृदय के प्रत्येक भाव का प्रतिनिधित्व करते हैं। मालवी लोक गीतों के बिना मालवी लोक-जीवन नीरस व अधूरा सा प्रतीत होता है। मालव जीवन व लोक व लोकगीत एक दूसरे में इतने घुल मिल गए है कि इन दोनों में भिन्नता की कल्पना नहीं की जा सकती। स्त्रियों द्वारा मालवा समाज के सोलह संस्कार, शादी लोक गीतमय होते है। शादी के छोटे-छोटे कार्य जैसे लगन, हल्दी, दहेज, माण्डवा हो या फिर दुल्हन की बिदाई, लोकगीत हर कदम साथ चलते है। उसी प्रकार व्रत, त्योहार गीतों से उल्लास मय हो जाते है। मालवा की विविध ऋतुए गीतों के बिना अधूरी सी लगती है। सावन की रिमझिम हो या फागुन की लम्बी-लम्बी हवा सभी का चित्रण मालवी लोकगीतों की सम्पदा है। मालवी लोकगीत मालवा संस्कृति के उद्घोषक है, उनके रीति-रिवाज, परम्परा, वेश-भूषा के प्रतिबिम्ब है। यदि मालवा एवं मालवी भाषा को समझना है, तो मालवी लोकगीतों के माध्यम से ही सम्भव है। मालवी लोकगीतों के माध्यम से हम मालवा के सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक इतिहास को समझ सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थः-

1. डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित, मालवी संस्कृति और साहित्य पृ.स. 18 आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल 2004
2. श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली पृ.स. 108, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, 18वाँ संस्करण पृ. सं. 205.
3. डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित, पूर्व पृ.स. 19.
4. डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका पृ.स. 41, साहित्य भवन प्रा.लि. इलाहाबाद.
5. डॉ. चिन्तामणी उपाध्याय, मालवी लोक गीत, एक विवेचनात्मक अध्ययन पृ.स. 59.
6. डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित पूर्वतः पृ.स. 400.
7. डॉ. चिन्तामणी उपाध्याय पूर्व पृ.स. 86.
8. स्वयं द्वारा सुना हुआ गीत.
9. चिन्तामणी उपाध्याय पूर्व पृ.स. 121 एवं विवाहों में स्वयं द्वारा सुना हुआ गीत.
10. भगवती लाल राजपुरोहित पूर्व पृ.स. 470.
11. श्याम परमार, मालवी लोक साहित्य पृ.स. 455.
12. स्वयं द्वारा सुना गया गीत.
13. स्वयं द्वारा सुना गया गीत.

****

प्राचीन कालीन मुस्लिम विधिक प्रणाली

डॉ.गुलाबसिंह मेवाड़ा *

मुस्लिम विधिक प्रणाली 'अल कुरान' पर आधारित है। जिसका अस्तित्व मुसलमान आदिकाल से अल्लाह की सत्ता में मानते है तथा इसे मानव के समक्ष प्रस्तुत करने वाले मोहम्मद साहब को 'रसूल अल्लाह' अर्थात् अल्लाह का दूत मानते है।[1] कुरान की आयते, जो इन्सान को उनके अतिंम ईशदूत मोहम्मद के द्वारा ज्ञात हुई '' कलामें अल्लाह'' (ईश्वर के वचन) तथा निश्चायक समझी जाती है। कुरान अल-फुरकान है अर्थात् यह असत्य से सत्य की ओर अनुचित से उचित को दर्शाता है।

सर अब्दुर्रहीम के शब्दो में– '' हुकुम वह है, जो अल्लाह के पैगाम (खिताब) के द्वारा, इंसान के क्रियाकलाप के सन्दर्भ में मांग या उदासीनता जाहिर करते हुए या घोषणात्मक रूप में कायम किया गया है। इसलिए मुस्लिम विधिक प्रणाली का पहला सिद्धांत है खुदा में ईमान या निष्ठा और कार्यो पर उसके प्राधिकार की स्वीकृति। दुसरा सिद्धांत है मोहम्मद साहब की पैगम्बरी में विश्वास। इस्लाम में अल्लाह ही एक मात्र विधायक है और अल्लाह के बाद सार्वभौम शक्ति जनता में निहित है।

पैगम्बर मोहम्मद व्यवस्थाकार है और कुरान ही विधि का ग्रन्थ है। प्राचीन काल में प्रत्येक कबीले का अपना निजी कानुन होता था और झगड़े मुखिया या तलवार द्वारा तय किये जाते थे। अरबों का सामाजिक जीवन अपने कबीले के नियमों तथा दुसरे कबीलों के भय, दबाव तथा व्यवहार से व्यवस्थित होता था, कबीलों में प्राय: पारस्परिक युद्ध हुआ करते थे। एक कबीले के सदस्य दुसरे कबीले के सदस्य को जान से मार देते थे।

यदि किसी कबीले का कोई आदमी दुसरे कबीले के किसी सदस्य द्वारा मार दिया जाता तो दुसरे कबीले का मुखिया अपराधी को समर्पण के लिए कहता था, जिससे हत्या का दण्ड दिया जा सके। स्त्रियों को कानुनी अधिकार प्रदान नही किये गये थे और उन्हें वस्तुत: पशुओं की तरह सम्पति ही समझा जाता था। नियमित विवाह उस समाज में अज्ञात थे। योन संबंध के लिये स्त्री-पुरुष के अस्थायी सहवास के लिये कईं प्रकार की व्यवस्थाएं थी जो वैश्यावृत्ति से विशेष भिन्न न थी। लोगो में मुता(अस्थायी, निश्चित समय के लिये) विवाह का आम प्रचलन था।

(1) मुस्लिम विधिक प्रणाली का प्रथम काल खण्ड(571 से 632 ई तक)–मोहम्मद साहब के आविर्भाव के समय तक अरब समाज में न तो कोई सुनिश्चित संविधान था और न आधुनिक अर्थों में सुव्यवस्थित प्रशासन-व्यवस्था ही। मामलों का निर्णय शपथ के आधार पर प्राय: किया जाता था तथा सजा का आधार प्रतिरोध की भावना थी।[2]

मुस्लिम विधिक प्रणाली का वास्तविक विकास मोहम्मद साहब के समय से माना जाता है। पैगम्बर मोहम्मद का काल मुस्लिम विधिक प्रणाली में निर्माण कहलाता है। पैगम्बर मोहम्मद के समय प्रचलित मुस्लिम विधि तीन मुख्य स्त्रोतों पर आधारित थी।

1. अल्लाह द्वारा प्रदत्त अलौकिक वाणी
2. कुरान तथा
3. मोहम्मद का उपदेश तथा अनुभूतियाँ

कुरान के दो सिद्धांत इस युग में महत्वपूर्ण थे–

1. अल्लाह एक है।
2. मोहम्मद उसका पैगम्बर है।

कुरान मुस्लिम विधिक प्रणाली का सर्वोच्च और सार्वत्रिक प्रमाण है। कुरान में 114 अध्याय (सुरा) तथा कुल 6666 आयतें है, जिनमें से लगभग 200 आयते विधिक सिद्धांतो से संबधित है। विधिक प्रणाली से संबधित आयतों में लगभग 80 आयतें पारिवारिक विधि (विवाह, मेहर, तलाक और विरासत) से संबधित है।[4] विधिक प्रणाली संबधित अध्यायों में निहित नियम निम्नलिखित विषयों से संबंधित है-

1. अवैध रीति-रिवाजों का दमन जैसे बालिका-वधु, जुआ, शराब पीना, बहु विवाह इत्यादि।
2. सामाजिक सुधार जैसे विवाह, तलाक, स्त्री की स्थिति, पर्दा
3. अपराध विधि में चोरी, वध इत्यादि की सजा से संबंधित
4. दुश्मन के साथ व्यवहार तथा सम्पत्ति के विभाजन से संबंधित निर्देश।
5. युद्ध एवं शांति की अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा जिम्मी की सम्पति तथा उसके साथ व्यवहार।

(2) मुस्लिम विधिक प्रणाली का द्वितीय कालखण्ड (632 से 762 ई. तक)–पैगम्बर साहब की मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी के विषय में एकमत न होने के परिणामस्वरूप मुस्लिम समाज दो सम्प्रदायो में बँट गया जो क्रमश: शिया और सुन्नी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुए।

शियाओं के अनुसार पैगम्बर का उत्तराधिकारी मोहम्मद साहब के वंशजो में से होना चाहिए था तथा 'इमाम' या खलीफा के पद पर पैगम्बर के रिश्तेदारों को ही नियुक्त किया जाना चाहिये था, परन्तु सुन्नी सम्प्रदाय के विचार में जनता द्वारा सर्वसम्मति से चुना गया व्यक्ति ही इमाम या खलीफा के पद पर नियुक्त होना चाहिये था। इस कालखण्ड में मुस्लिम-विधिक व्यवस्था का विकास मुख्यत: पैगम्बर के उपदेशों और निर्णयों आदि के संकलन तथा उनकी व्याख्या एवं सामूहिक चर्चा के रूप में हुआ।

यह उल्लेखनीय है कि कुरान के निर्देश तथा पैगम्बर के निर्णय और व्यवहार विकासोन्मुख मुस्लिम समाज की अनेक समस्याओं को हल न कर सके। यद्यपि मोहम्मद के प्रथम उत्तराधिकारी अबू बकर स्वयं ही अभ्यर्थियों को निर्णय देते थे परन्तु कालान्तर में पश्चातवर्ती खलीफाओं को कार्य की अधिकता के कारण यह कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौपनें के लिए विवश होना पड़ा। खलीफा उमर ने इस हेतु काजी की नियुक्ति की थी। उस्मान तथा अली के समय तक मुस्लिम विधिक व्यवस्था का प्रयोग इस्लाम के सिद्धांतो के अनुसार ही रखा गया।

(3) मुस्लिम विधिक प्रणाली का तृतीय कालखण्ड (762 से 932 ई. तक)–तृतीय काल में विधि एवं धर्म का तुलनात्मक सैद्धान्तिक तथा सुव्यवस्थित अध्ययन किया गया। इसी युग में सुन्नी सम्प्रदाय के चारो वर्गो हनफी, मलिकी, शफी, तथा हनबली सम्प्रदाय की स्थापना हुई। मुस्लिम विधि के मूल सिद्धान्त सुन्नी सम्प्रदाय के चारों वर्गो में समान व एक है।

* अतिथि विद्वान (विधि) शासकीय जे. एन. एस. पी. जी. महाविद्यालय, शुजालपुर (म.प्र.) भारत

मुस्लिम विधिक प्रणाली की दृष्टि से ये चारों शाखायें उल्लेखनीय है जो निम्नलिखित है-

1. **हनफी शाखा–** इस शाखा के प्रमुख प्रवर्तक अबू हनीफा थे। उन्होनें मुस्लिम रूढ़ियों का भी गहन अध्ययन किया। उन्होनें निम्नलिखित बातों पर जोर दिया-

- पैगम्बर के निर्णयों को अधिमान्यता दी जाये।
- सुन्नतों को महत्व दिया जाना चाहिये।
- विधि की व्याख्या कियास द्वारा की जाना चाहिये।
- इस्तिहसान का प्रचार
- उर्फ(रूढ़ियों) को महत्व

2. **मलिकी शाखा–** इस शाखा के प्रमुख प्रवर्तक मलिक इब्न अनास थे। इस शाखा के समर्थकों ने रूढ़ियों पर सर्वाधिक बल दिया। इस शाखा की विचारधारा हनफी शाखा से मूलत: भिन्न नहीं थी।
3. **शफी शाखा–** इस शाखा के मुख्य प्रवर्तक शफी थे। शफी पैगम्बर के ही वंशजों में थे और शुरू से ही उन्होंने विधिक अध्ययन में दिलचस्पी ली थी। युवावस्था के प्रथम चरण में ही उन्होने विधि-शास्त्र पर भाषण किये। इस सम्प्रदाय की विशेषता यह थी कि इसके प्रवर्तकों में इज्मा,इस्तदलाल,उसूल तथा निर्णयों के संतुलित प्रयोग पर विशेष बल दिया।
4. **हनबली शाखा–** इस शाखा के प्रवर्तक इमाम हनबल थे। इन्होंने विधि शास्त्र में विशेष रूचि न लेकर मुस्लिम रूढ़ियों का गहन अध्ययन किया। उन्होंने अपने ग्रंथों पर इस बात पर जोर दिया के विधि क्षेत्र में उक्तियों, सूत्रों आदि का प्रयोग किया जाना चाहिये।

(4) मुस्लिम विधिक प्रणाली का चतुर्थ कालखण्ड (हिजरी संवत् 3 से 1600 तक)– ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि भारत की मुगलकालीन विधिक प्रणाली में शासक या बादशाह को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। उसकी सहायतार्थ दो प्रमुख अधिकारियों की व्यवस्था थी जो 'दिवान' तथा 'निजाम' या 'नवाब कहलाते थे।[6] दीवान पर मालगुजारी की वसूली तथा दीवानी वादों को निपटाने का दायित्व था।

नवाब अथवा निजाम का प्रमुख कार्य फौज की व्यवस्था देखना तथा आपराधिक मामलों को निपटाना था। यह शासक का प्रमुख दण्डाधिकारी होता था। दीवान के सहायतार्थ नवाब-दीवान तथा निजाम की सहायता के लिये नवाब-निजाम नियुक्त थे।

फौजदारी विभाग में अनेक अधिकारी नियुक्त थे जिनमें दरोगा, फौजदार, मोहतास्सिब इत्यादि मुख्य थे। मोहतास्सिबों का कार्य यह होता था कि वे शराबखोरी, नशीले पदार्थो का अवैध व्यापार तथा नाप-तौल संबंधी अनियमितताओं पर उचित नियंत्रण रखें। अपने क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने का कार्य 'कोतवाल' पर सौंपा गया था। मुफ्ती का कार्य यह होता था कि काजी को विचाराधीन प्रकरण से संबंधित विधि के बारे में आवश्यक जानकारी दे। मुस्लिमों के धार्मिक मामले निपटाने के लिये न्याय प्रणाली में मौलवियों की व्यवस्था थी परन्तु हिन्दुओं के धार्मिक तथा जाति संबंधी मामले हिन्दू पंडितों द्वारा निपटाये जाते थे।

मुगलकालीन न्यायालयों में वाद-निर्णय के लिये कुरान में उल्लिखित विधि,टीकाओं तथा प्रचलित रीति-व्यवस्थाओं में निश्चितता का अभाव होने के कारण निर्णय बहुधा न्यायाधीशों के स्वविवेक पर ही निर्भर रहते थे। इन निर्णयों पर सम्राट के दरबार में अपील की जा सकती थी।

चार्ल्स स्टीवर्ट ने सन् 1707 से 1724 की अवधि में बंगाल के मुगल नवाब मुर्शिद अली खाँ की न्याय व्यवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है कि '' यह नवाब प्रत्येक सप्ताह में दो बार अपना न्यायालय लगाया करता था तथा उसका न्याय इतना निष्पक्ष होता था कि उसने स्वयं के पुत्र को भी मौत की सजा देने में हिचकिचाहट अनुभव नहीं की, दूसरी ओर लगान वसूली संबंधी उसकी नीति पक्षपातपुर्ण थी तथा इस संदर्भ में उसने अपने राजस्व अधिकारियों को अनुचित छूट दे रखी थी। इन राजस्व अधिकारियों के कार्यकलापों का विरोध करने वाले व्यक्तियों को नवाब के क्रोध का शिकार बनना पड़ता था ताकि उन्हें कठोर दण्ड दिया जा सके ।[7]

निष्कर्ष:– इस प्रकार हम देखते है कि वर्तमान विकासोन्मुख समाज की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए मुस्लिम वैयक्तिक विधि में अनेक परिवर्तन किये गये। उच्चतम न्यायालय द्वारा शाहबानों [8] के निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया कि मुस्लिम महिला को पति द्वारा तलाक दिये जाने पश्चात् दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 के अधीन भरण-पोषण का आधार प्राप्त है।

इस निर्णय को मुस्लिम कट्टरपंथियों ने उनकी वैयक्तिक विधि में अनुचित हस्तक्षेप माना। विधि सामाजिक परिवर्तन का आधार है, परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप विधि को भी अपना स्वरूप बदलना होगा और प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह किसी भी समाज एवं धर्म के अनुयायी हों, उनके अपने गरिमामय जीवन हेतु मानवाधिकार को संरक्षित करना चाहिए ।

संदर्भ–

1. प्रो. अकील अहमद-मुस्लिम विधि. पृ. 01
2. प्रो. जी. पी त्रिपाठी- भारत का संवैधानिक इतिहास, पृ. 09
3. डॉ. ना. वि. परांजपे- भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास,पृ. 06
4. प्रो. अकील अहमद- मुस्लिम विधि, पृ. 09
5. डॉ. ना वि. पराजपे- भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ. 06
6. डॉ. ना. वि. पराजंपे- भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ. 08
7. डॉ. ना वि. पराजपे- भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, पृ. 09
8. बाई ताहिरा बनाम शाहबनों- ए. आई. आर. 1985. एस. सी. 955

****

ब्रिटीशकालीन महिला सुधार आंदोलन (बंगाल और महाराष्ट्र के संदर्भ में)

डॉ. राजेश सकवार *

उन्नीसवी सदी को स्त्रियों की शताब्दी कहना बेहतर होगा भारत में खासतौर से बंगाल और महाराष्ट्र में समाज सुधारकों ने स्त्रियों में फैली बुराईयों पर आवाज उठाना शुरू किया। इन दोनों राज्यों से ब्रितानियों का संबंध भारत के अन्य भागों की अपेक्षा पहले बना। स्त्रियों को शिक्षित करने के महत्व पर सबसे पहली सार्वजनिक बहस राममोहन राय द्वारा 1815 में स्थापित आत्मीय सभा द्वारा बंगाल में छेडी गई। उसी वर्ष उन्होने एक भारतीय भाषा (बंगाली) में सती पर हमला बोलते हुए पहला लेख लिखा। 1818 में बंगाल के तत्कालीन प्रांतीय गवर्नर विलियम बैटिंक ने प्रांत में सती प्रथा पर रोक लगा दी। सारे भारत में इस निषेध को फैलने में 11 वर्ष लगें। विलियम बैटिंक 1829 में जब भारत के गवर्नर जनरल बने तो उन्होने सती निर्मूलन एक्ट पास किया।[1]

रूढिवादियों के विरोध के आंशिक परिणाम के तौर पर कोई 10 वर्षो बाद भारतीय दंड संहिता में संशोधन किया गया। इस संशोधन में एक बार फिर स्वैच्छिक और जबरन सती में वैभिन्य दर्शाते हुए अपनी इच्छानुसार सती होने को कानूनी कवच प्रदान कर दिया गया । लड़कियों के लिए स्कूल सबसे पहले अंग्रेज तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा 1810 में शुरू किए गए। स्त्रियों की शिक्षा के संबंधित पहली पुस्तक किसी भारतीय भाषा में 1819 में एक भारतीय गुरूमोहन विद्यालंकार द्वारा लिखी गई जिसके कलकत्ता की कन्या बाल समिति ने 1820 मे प्रकाशित किया।[2] 1827 तक मिशनरियों द्वारा हुगली जिले में 12 कन्या पाठशालाएॅं चलाई जाने लगी, एक वर्ष बाद लेडीज सोसायटी फॉर नेटिव फीमेल एजुकेशन इन कैलकटा एण्ड इट्स विसिनिटी ने स्कूल खोले जो मिस कुक द्वारा चलाए गए। दलित ज्योतिराव फुले (जिन्हे प्यार से ज्योतिबा कहा जाता था) ने पूना में लड़कियों के लिए अपना पहला स्कूल खोला। एक वर्ष बाद बम्बई शहर में ब्राहमणों तथा गैर-ब्राहमणों ने मिलकर परमहंस मंडली की स्थापना की। इसके सदस्यों ने जाति बहिष्कार के विरोध में अभियान चलाया। उसी वर्ष एल्फिन्सटन कॉलेज बम्बई के छात्रों ने एक कन्या पाठशाला शुरू की तथा स्त्रियों के लिए मासिक पत्रिका निकाली।[3] 1852 तक फूले ने तीन कन्या पाठशालाएँ तथा अछूतों के लिए एक स्कूल खोला। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने 1850 में विधवा पुनर्विवाह पर लगे प्रतिबंध को समाप्त करने के लिए अभियान चलाया और उन्होंने बांग्ला में एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें कहा गया कि विधवा पुनर्विवाह शास्त्र सम्मत है। के.सी. सेन ने ईसाइयत से मुठभेड़ को भारतीय इतिहास का सर्वोत्तम क्षण माना उनकी कन्या पाठशालाओं में बंगाली साहित्य और ब्राह्मणों धर्म शिक्षा पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से शामिल किये गए। जाने-माने मुस्लिम विद्वान एवं मुस्लिम समाज सुधार आंदोलन के प्रणेता सैयद अहमद खान का कहना था कि मुस्लिम औरतों को तालीम जरूर हासिल करनी चाहिए।[4]

ब्राहमण कन्या पाठशालाओं खासतौर से केशवचंद्र सेन द्वारा चलाई जा रही कन्या पाठशालाओं में लड़कियों को खाना पकाने सिलाई कटाई तथा सेवा सुश्रूषा की शिक्षा दी जाती थी तथा इन कार्यो में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए लडकियों को प्रोत्साहन तथा पुरस्कार भी प्रदान किए जाते थें।

बंबई में बाल विवाह के विरूद्ध आंदोलन शुरू हो चुका थों। पूना इस आंदोलन के प्रबल विरोध के केन्द्र के रूप में उभरा। समाज सुधार के विरोध का 1860 में शुरू हुआ अभियान 1870 तक पूना में अपने चरम पर पहुँच गया। रकमाबाई ने इंग्लैड जाकर एम.डी. की उपाधि प्राप्त की तथा भारत लौटकर काफी दिनों तक डाक्टरी की। सन् 1891 में तिलक ने सहमति आयु कानून (एज ऑफ कान्सेट एक्ट) के विरूद्ध आंदोलन का नेतृत्व किया जिसका असर इतना ही हुआ कि विवाह की उम्र 10 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष कर दी गई।[5]

दीनबंधु ने युवा ब्राहमण विधवाओं के मुंडन के विरोध का अभियान चलाया तथा नाइयों को यह काम करने से इनकार कर देने का सुझाव दिया। इसके परिणामस्वरूप बंबई के नाइयों ने एक बैठक में प्रस्ताव पारित कर निर्णय लिया कि अब वे भविष्य में ब्राहमण विधवाओं के सिर का मुंडन नहीं करेगें।[6] पूना के समाज सुधारक डी.डी. कार्वे ने 1908 में शहर के बाहर हिंगने नामक स्थान पर विधवा आश्रम खोलने का निर्णय किया। किसी महिला द्वारा जन-अभियान के संचालन का पहला प्रयास ब्राम्हो समाज द्वारा 1890 में किया गया। कलकत्ता में पर्दा प्रथा के विरूद्ध जन-अभियान को शुरूआत करते हुए ब्राहम्ण स्त्रियाँ शहर की गालियों में गाते हुए निकलती तथा जहाँ भी लोग इकठा हो जाते वही पर वे उन्हे परदा प्रथा की बुराइयों के बारे में संबोधित करती।[7] विधवा सुधार आर्दोलन में एक नाम शिखर पर उभरा वह था डी.के.कार्वे जिन्हें महाराष्ट्र में विधवाओं के पुनर्वास अभियान का जनक माना जाता था।

पंडिता रमाबाई ने जो कि स्वंय एक विधवा थी, विधवा मुद्दे पर सन 1887 में छपी अपनी पुस्तक ''दि हाईकास्ट हिन्दू वूमन'' में ध्यान आकर्षित किया था तथा विधवाओं के लिए उनके द्वारा स्थापित शारदा सदन टाल्स्टाय के आत्मनिर्भर समुदाय के आदर्श की अवधारणा से प्रेरीत था। 19वीं सदी के पुरूष प्रधान महाराष्ट्रीयन रंगभूमि पर रमाबाई का, एक स्त्री का आगमन एक अनोखी बात थी। हजारों श्रृंखलाओं में वृहद स्त्री समाज में यह विद्रोहिनी अपनी पूरी ताकत, हिम्मत, लगन और प्रखर बुद्धि वैभव से चमक उठी। पूरा बचपन कठिनाईयों और संघर्ष से व्यतीत हुआ। इसी संघर्ष की आग ने रमाबाई को कुंदन की तरह दमका दिया। जिसकी चमक ने बेसहारा स्त्रियों की अंधेरी जिंदगी में एक उजाला फैला दिया।भारतीयों के लिए किंडर गार्डेन शिक्षा पद्धति और अंधो के लिये ब्रेल लिपि से परिचय करवाने का श्रेय रमाबाई को जाता है।

रोजगार मूलक प्रशिक्षण लड़कों और लड़कियों को देने की वकालात, राष्ट्र भाषा हिन्दी को बनाने की सर्वप्रथम सलाह, प्रथम भारतीय महिला जिसने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में महिला प्रतिनिधि के रूप में हिस्सा लिया, 1895 में पूना में फैले प्लेग रोग में सरकार द्वारा किये गये व्यवस्था से नाखुश होकर विरोध प्रकट करना, स्वदेशी आंदोलन में हिस्सा लेकर देश में उत्पादित खादी के वस्त्रों को सारे जीवन अंगीकर करना, भारत में प्रथम महिला गृह की स्थापना, महिलाओं के लिये मेडिकल शिक्षा की पहल करना, हंटर कमीशन के सामने भारतीय महिलाओं में शिक्षा जागृति और स्कूल खोलने की पहल करना आदी कार्यो का श्रेय रमाबाई को जाता है।

रविन्द्रनाथ टेगौर ने 1889 में पूना में रमाबाई का व्याख्यान सुनकर पं. रमाबाई की तुलना 'सफेद गुलाब' से की थी।

संदर्भ ग्रंथ

1. जुआना लेडले एवं रमाजोशी, डाटर्स आफ इंडिपेंडेस दिल्ली काली फार वीमेन 1986, पृष्ठ 27
2. एन.के. सिन्हा, द्वारा संपादित, हिस्ट्री ऑफ बंगाल 1757-1950 कलकत्ता 1967 पृष्ठ 452
3. श्याम कुमारी नेहरू (सं.), आवर केस में कानेलिया सोराबजी का आलेख, द पोजीशन ऑफ हिन्दु विमेन फिप्टी ईयर्स एगों 1936, पृष्ठ 5
4. के.ए. निजामी, सैयद अहमद खान, प्रकाशन विभाग दिल्ली 1966 पृष्ठ 12
5. एस नटराजन, द सेंचुरी ऑफ सोशल रिफॉर्म इन इंडिया एशिया पब्लिशिंग हाउस 1962 पृष्ठ 86
6. सीतारामसिंह, नेशनलिज्म एण्ड सोशल रिफार्म इन इंडिया 1858-1920 दिल्ली रंजीत पब्लिकेशन पृष्ठ 87
7. उमा चक्रवर्ती, कंडिशनस ऑफ बंगाली विमेंन एराउड द सेकेंड हाफ द नाईनटींन सेंचुरी कलकत्ता 1963 पृष्ठ 71

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत

ग्रामीण विकास में आवर्ती विपणन केन्द्रों की भूमिका
(म.प्र. के पश्चिमी निमाड़ के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. मोहन निमोले * डॉ प्रमिला बघेल **

प्रस्तावना : पश्चिम निमाड़ की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है तथा कृषि कार्य में संलग्न है। ग्रामीण क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या प्राथमिक एवं द्वितीयक कार्य में लगी होती है। ग्रामीण विकास में आवर्ती विपणन केन्द्रों का महत्वपूर्ण योगदान है, परन्तु इस सम्बंध में शोध-कार्यों की संख्या अत्यल्प ही है। यद्यपि यह शोध का महत्वपूर्ण विषय है। ग्राम के लोगों पर समाज के निर्भर पर मनुष्य की गतिशीलता तथा वस्तुओं एवं विचारों का आदान-प्रदान सीमित होता है। ग्रामीण समाज में आवर्ती बाजार केन्द्र वहाँ के रहवासियों के सामाजिक, आर्थिक, साँस्कृतिक जीवन में भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

आवर्ती विपणन केन्द्रों का विकास बहुत धीमी गति से हुआ है। वर्तमान में यह आवर्ती विपणन केन्द्र प्राकृतिक भू-आर्थिक का समझौता है। जिसमें क्रेता एवं विक्रेता सप्ताह में एक, दो अथवा तीन दिन परस्पर मिलते हैं। यह विपणन केन्द्र दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ग्रामीण विकास में तथा देश के सर्वांगीण में भी महत्वपूर्ण होते है। विकास वर्तमान समय की एक आधारभूत समस्या है। विश्व में सामाजिक-आर्थिक संतुलन विषमता की कगार की और बढ़ रहा है।

ग्रामों के दोहन द्वारा नगरों का विकास हो रहा है। जो विकास के निवेशों के एक समान वितरण से सम्बंधित है। विकास मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकताओं से ऊपर स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति, जीवन की गुणवत्ता जैसे मानकों पर आधारित है। यह एक समाकलित एवं बहुउद्देशीय प्रक्रिया है। समन्वित विकास में आवर्ती विपणन केन्द्रों की भूमिका के सम्बंध में स्टोर तथा टेलर की पुस्तक "Development from above or below?" का उल्लेख प्रासंगिक होगा। विकास का प्रमुख उद्देश्य उस क्षेत्र के निवासियों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। यदि उस ग्रामीण क्षेत्र के निवासी गरीब वर्ग के अन्तर्गत हैं तो सभी विकास योजनाओं का मुख्य उद्देश्य निर्धनता को दूर करना होगा तथा समस्याओं का समाधान निचले स्तर से प्रारम्भ होगा। इसका तात्पर्य यह है कि समन्वित विकास हेतु जिस तकनीक का भी प्रयोग किया जाए वह क्षेत्रानुसार उपयुक्त होना आवश्यक है न कि सर्वोच्च (It should be oppropriate rather than highest). अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भूगोलवेत्ताओं द्वारा आवर्ती विपणन केन्द्र एवं ग्रामीण विकास विषय पर कुछ शोध-प्रपत्र प्रकाशित किए गए हैं जो इस पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। इन भूगोलवेत्ताओं में प्रमुख जॉनसन, ओबुधो, टेलर, ब्रोमले इत्यादि हैं। भारतीय भूगोलवेत्ताओं में प्रमुखत: डॉ. व्ही. के. श्रीवास्तव, सुधीर वनमाली, हुगर, उधवराम, आर. वी. वर्मा, श्रीमती के. आर. श्रीवास्तव इत्यादि ने इस दिशा में कार्य किया है।

अध्ययन क्षेत्र : पश्चिम निमाड वर्तमान में खरगोन एवं बड़वानी जिलों के नाम से जाने जाते है। पश्चिम निमाड़ का अक्षांशीय विस्तार $21^{0}22'$ से $22^{0}35'$ उत्तरी अक्षांश तथा $74^{0}22'$ से $76^{0}14'$ पूर्वी देशान्तर के

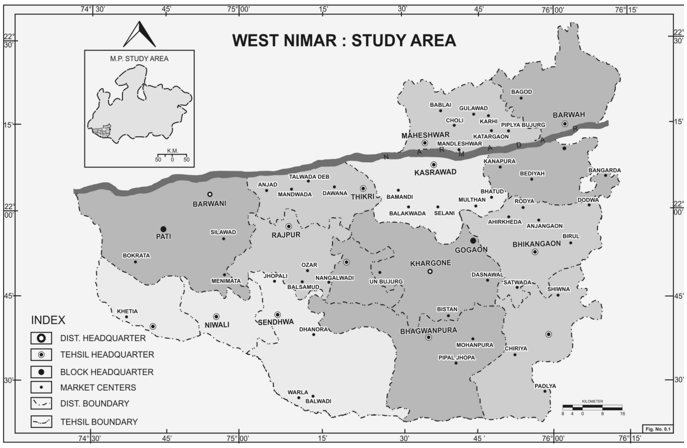

मध्य स्थित हैं। जिसका कुल क्षेत्रफल 10,206.55 वर्ग किमी. है। पश्चिम निमाड़ प्रशासनिक दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया गया है- खरगोन एवं बड़वानी। खरगोन जिले की कुल 8 तहसीलें तथा बड़वानी जिले की कुल 6 तहसीलें हैं इस प्रकार पश्चिम निमाड़ में कुल 14 तहसीलें हैं। इसके उत्तर दिशा में लगभग 101.43 किमी. दूर से कर्क रेखा गुजरती है।

यह नर्मदा घाटी के मध्य स्थित है। जिसके उत्तर में विंध्याचल तथा दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत की पहाड़ियाँ हैं। जिले की पूर्व से पश्चिम तक की लम्बाई लगभग 362 किमी. है। इसके उत्तर में धार व इन्दौर जिला, पूर्व में खण्डवा, उत्तर पूर्व में देवास जिला तथा दक्षिण पश्चिम में महाराष्ट्र का जलगांव और धुलिया जिले स्थित है।

अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य म.प्र. के पश्चिम निमाड़ क्षेत्र में ग्रामीण क्षेत्रों में आवर्ती विपणन केन्द्रों की महत्ता के अनुरूप नीति निर्धारण हेतु सुझाव प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि नीतियों का क्रियान्वयन इस प्रकार से किया जाए ताकि स्थानीय/राष्ट्रीय स्तर पर वह नियोजनकर्ता को एवं प्रकाशक को लागू करने में सहयोग प्रदान कर सके एवं ग्रामीण विकास को बल प्राप्त है।

ऑकड़ों का स्त्रोत एवं विधि तंत्र : प्रस्तुत अध्ययन वर्ष 1981 एवं 2001 पर आधारित है, प्राथमिक एवं द्वितीयक ऑकड़ो का उपयोग किया गया है। तदानुसार सारणीयन एवं वितरण मानचित्र का निर्माण किया गया है।

ग्रामीण विकास में आवर्ती विपणन केन्दों की भूमिका : औद्योगिकीकरण के तीव्र विकास ने ग्रामीण क्षेत्रों में कई समस्याओं को जन्म दिया है। ग्रामों की जनसंख्या नगरों की ओर पलायन कर रही है जिससे एक ओर नगरों की जनसंख्या पर दबाव बढ़ रहा है तथा दूसरी और ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत कम हो रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करने के लिए नीति-निर्धारण करना आवश्यक है। जॉनसन के अनुसार प्रत्येक ग्रामीण

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) ** शोधार्थी, शासकीय माधव कला, वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

उत्पादक को अपने उत्पाद के विक्रय हेतु ऐसा प्रतिस्पर्धात्मक स्थल उपलब्ध होना चाहिए जहाँ वह सरलता से कम समय में पहुँच सके।

यह कथन उपभोक्ता एवं उत्पादकों की वस्तुओं तथा विभिन्न प्रकार की सेवाओं के सम्बंध में भी आवश्यक है। इसी प्रकार केन्द्र स्थलों के व आवर्ती विपणन केन्द्रों के जटिल पदानुक्रम के आधार है। जो कि सम्पूर्ण स्थानिक आर्थिक-संरचना को क्रियात्मक स्वरूप प्रदान करते हैं। वर्तमान समय में क्षेत्रीय विकास योजना का महत्व बढ़ता जा रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाना है। पश्चिम निमाड़ क्षेत्र की जनसंख्या सम्बंधी विशेषताएँ तथा जनसंख्या का स्थानिक वितरण ज्ञान करना प्रथम आवश्यकता है।

पश्चिमी निमाड़ क्षेत्र कई कारणों से प्रबल गुरूत्वाकर्षण केन्द्र होने के कारण अपने निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों से तथा अन्य स्थानों से व्यक्तियों को आकर्षित करता है। वर्ष 1981 में पश्चिम निमाड़ की जनसंख्या 16,30,943 व्यक्ति थी तथा इसमें से मात्र खरगोन नगर में ही 52,749 व्यक्ति निवास करते थे। 1981-2001 के दशक में पश्चिम निमाड़ की जनसंख्या में 28.72 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अर्थात पश्चिम निमाड़ की जनसंख्या 26,11,003 व्यक्ति हो गई। वर्ष 2001 में कुल नगरीय जनसंख्या में 91.66 प्रतिशत वृद्धि हुई है जबकि ग्रामीण जनसंख्या में 28.67 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

यह स्पष्ट होता है कि कुल जनसंख्या वृद्धि की तुलना में नगरीय जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 1981 के अनुसार कुल आबाद ग्रामों की संख्या, उनमें निवास करने वाली कुल ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत जनसंख्या तथा प्रति ग्राम में निवास करने वाली औसत जनसंख्या निम्न तालिका से स्पष्ट है।

तालिका क्रमांक 1

पश्चिम निमाड़ : ग्राम एवं ग्रामीण जनसंख्या विश्लेषण (2010)

जनसंख्या आकार वर्ग	ग्रामों की संख्या	प्रतिशत जनसंख्या (ग्रामीण जनसंख्या की)	प्रति ग्राम पर औसत जनसंख्या
< 200	191	0.713	83
200-499	337	4.995	328
500-1999	1102	54.84	1103
2000-4999	230	32.36	3118
5000	22	7.1	7136

स्त्रोत : क्षैत्रिय सर्वेक्षण एवं सांख्यिकीय पुस्तिका

तालिका क्र. 1 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में 200-4999 जनसंख्या वाले ग्रामों की संख्या सर्वाधिक 1669 है। इसमें क्षेत्र की 92.19 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या निवास करती है। पश्चिम निमाड़ में नगरीकरण की तीव्र वृद्धि इसी तथ्य से परिलक्षित होती है कि यहाँ बड़े ग्रामों की संख्या तथा उनमें निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या अधिक है।

500-4999 जनसंख्या वाले ग्रामों की संख्या पश्चिम निमाड़ में 1332 है। जहाँ पश्चिम निमाड़ क्षेत्र की कुल ग्रामीण जनसंख्या की 87.2 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में वर्ष 2001 के अनुसार 20 नगर- अंजड़, बड़वाह, बड़वानी, भीकनगांव, गोगांवा, कसरावद, खरगोन, खेतिया, महेश्वर, मण्डलेश्वर, राजपुर, सनावद, सेंधवा, पानसेमल, निवाली, सेगांव, भगवानपुर, झिरन्या, पाटी व ठिकरी है। इनमें से बड़वाह, महेश्वर, बड़वानी, राजपुर, ठिकरी, कसरावद, सेंधवा, निवाली, पानसेमल, खरगोन, सेगांव, भगवानपुरा, झिरन्या एवं भीकनगांव तहसील मुख्यालय तथा खरगोन व बड़वानी जिला एवं तहसील मुख्यालय हैं। पश्चिम निमाड़ क्षेत्र काली मिट्टी का उपजाऊ क्षेत्र है। यहाँ नर्मदा घाटी का समतल मैदान है। काली मिट्टी कपास, गेहूँ, सोयाबीन, मक्का, मूंगफली, तिलहन इत्यादि फसलों के लिए उपयोगी है। आवर्ती विपणन केन्द्रों का ग्रामीण विकास में योगदान निम्न तथ्यों के आधार पर है।

1. आवर्ती बाजार केन्द्र एवं परिवहन जाल : पश्चिम निमाड़ क्षेत्र के ग्रामीण विकासशील अर्थव्यवस्था में यातायात संचार अत्यधिक महत्वपूर्ण साधन है। यह ग्रामीण आवर्ती विपणन केन्द्रों के विकास के लिए और बाजारीय गतिविधियों के लिए आवश्यक है।

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में सड़क यातायात अपर्याप्त है। तालिका क्रमांक 8.6 से स्पष्ट होता है कि प्रति 100 किमी. में पक्की सड़कों में सर्वाधिक बड़वानी तहसील में (63.18) तत्पश्चात खरगोन तहसील में (45.23), महेश्वर तहसील में (39.45), राजपुर तहसील में (37.34), कसरावद तहसील में (33.82), सेंधवा तहसील में (33.21), बड़वाह तहसील में 25.50 किमी. एवं सबसे न्यूनतम भीकनगांव तहसील में 24.61 प्रतिशत है। इसके विपरित प्रति 100 किमी. में कच्ची सड़कों की लम्बाई सबसे अधिक बड़वानी तहसील में 53.02 किमी. तथा सबसे कम राजपुर तहसील में 1.949 किमी. है। इसके अतिरिक्त अन्य तहसीलों में बड़वाह तहसीलों में (23.24), भीकनगांव तहसील में (21.48), सेंधवा तहसील में (21.27), खरगोन तहसील में (8.004), महेश्वर तहसील में (4.660) एवं कसरावद तहसील में 4.141 किमी. है। ***(देखिए तालिका क्रमांक 2)***

तालिका क्रमांक 2 से यह भी स्पष्ट होता है कि प्रति 10,000 जनसंख्या पर पक्की सड़कों की लम्बाई सर्वाधिक बड़वानी तहसील में (19.01) तत्पश्चात कसरावद तहसील में (16.74), खरगोन तहसील में (16.43), राजपुर तहसील में (16.21), महेश्वर तहसील में (15.78), भीकनगांव तहसील में (12.89), बड़वाह तहसील में (10.57) तथा सेंधवा तहसील में 10.00 किमी. की लम्बाई है।

प्रति 10,000 जनसंख्या पर कच्ची सड़कों की लम्बाई सर्वाधिक बड़वानी तहसील में (15.95) तत्पश्चात भीकनगांव तहसील में (11.25), बड़वाह तहसील में (9.635), राजपुर तहसील में (8.461), सेंधवा तहसील में (6.407), खरगोन तहसील में (2.907), कसरावद तहसील में (2.050) एवं महेश्वर तहसील मे 1.865 किमी. है। अध्ययन क्षेत्र में विपणन क्रिया में रेलमार्ग की तुलना में सड़क मार्ग अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए सम्पूर्ण पश्चिम निमाड़ क्षेत्र में बहुत कम रेलमार्ग उपलब्ध हैं। मात्र एक बड़वाह तहसील के कुछ क्षेत्रों में ही रेलमार्ग उपलब्ध है। क्षेत्र और जनसंख्या के सन्दर्भ में सांख्यिकी विश्लेषण सड़क और रेल तंत्र के मिश्रित विकास का प्रदर्शित किया है, इसलिए तीव्र विकास की आवश्यकता हेतु सड़क द्वारा उपलब्धता अध्ययन क्षेत्र के आर्थिक विकास को बढ़ाने के लिए अति आवश्यक है।

2. आवर्ती विपणन केन्द्रों का वितरण और पदानुक्रम संगठन : ग्रामीण विकास में पश्चिम निमाड़ क्षेत्र के आवर्ती विपणन केन्द्रों का महत्व आर्थिक विकास और निर्माण, सामाजिक और साँस्कृतिक संस्थानों के सन्दर्भ में है।निम्नांकित रणनीतियों को ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास और नवीन आवर्ती विपणन केन्द्रों के स्थापना के लिए सुझाया गया है।

वितरण : तालिका क्र. 1 और 2 में आवर्ती बाजार केन्द्रों के वितरण में कुल दूरियों को दर्शाया गया है। बाजार केन्द्रों की संख्या और क्षेत्र के मध्य

सम्बंध, जनसंख्या और निवासित ग्राम अध्ययन क्षेत्र की विभिन्न तहसीलों में संख्या उपरोक्त मत को समर्थन प्रदान करती है।

परिवहन जाल के सन्दर्भ में आने वाली जनसंख्या, स्थानीय उत्पादक का बाजार योग्य अधिवेश और अन्य सामग्री आती है। यह प्रस्तावित है कि कुछ ग्राम अनुमानित आकार और अवस्थिति मार्ग पर है। जहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य, पीने का पानी, बिजली, डाकघर और बस स्टेशन आदि ग्रामों को एक साप्ताहिक बाजार प्रदान करते हैं।

इसलिए प्रत्येक तहसील में प्रति 100 किमी. क्षेत्र में 10 निवासित ग्रामों व 10,000 जनसंख्या पर कम से कम एक बाजार केन्द्र हैं। आगामी विस्तार जिस प्रकार ''विशिष्ट संगठन'' की निम्नांकित योजना में प्रस्ताव अनुसार किया जा सकता है। आवर्ती बाजार केन्द्रों की प्रस्तावित संख्या को केवल संयोजित सड़कों की आवश्यकता है।

नवीन आवर्ती बाजार केन्द्रों की स्थापना को आनुभाविक आधार पर और उपभोक्ता की प्राथमिकताओं के अध्ययन के साथ सुगम केन्द्रीयता, परिवहन सुविधा एवं दिशा अनुकूलता की आवश्यकता होती है। तहसील स्तर पर प्रस्तावित नये आवर्ती बाजार केन्द्रों का वितरण तालिका क्रमांक 8.7 के अनुसार निम्न प्रकार से है।

1. बड़वाह तहसील : स्थापित कुल आवर्ती विपणन केन्द्रों की संख्या 15 है। क्षेत्र के आधार पर निवासित ग्राम एवं जनसंख्या के आधार पर 11 आवर्ती बाजार केन्द्रों की आवश्यकता है। प्रस्तावित आवर्ती बाजार केन्द्र में बलवाडा, कथेरा, दोडगांव, ढक्कलगांव, सिरलाई, बासवां, किथुड़, भूलगांव, बकावन, डोडगांव एवं कटोरा इत्यादि हैं।

इन ग्रामों में अधिकांश प्राथमिक, माध्यमिक, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, कुआँ, कच्ची-पक्की सड़कें, विद्युत, परिवार नियोजन केन्द्र एवं बस स्टेशन आदि सेवाएँ उपलब्ध हैं। इनमें से प्रस्तावित बाजार केन्द्र में कोई न कोई चार-पाँच सेवा पाई जाती है।

2. महेश्वर तहसील : महेश्वर तहसील में कुल स्थापित बाजार केन्द्रों की संख्या 11 है। प्रस्तावित बाजार केन्द्र 12 हैं जिनको क्षेत्र, निवासित गाँव तथा जनसंख्या के आधार पर चयन किया गया है।

प्राथमिक, माध्यमिक, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, परिवार नियोजन केन्द्र, विद्युत, कच्ची-पक्की सड़कें, बस स्टेण्ड व नलकूप आदि सेवाओं के आधार पर प्रस्तावित आवर्ती बाजार केन्द आशापुर, मेहतवाड़ा, झागवॉन, पाडल्या खुर्द, मोहना, इटावड़ी, ठनगाँव, मोगाँव, सोमाखेड़ी, भुड़री, पथराड़ खुर्द व बेड़िया सुर इत्यादि हैं। ***(देखिए तालिका क्रमांक 3)***

3. बड़वानी तहसील : आवर्ती विपणन केन्द्रों की कुल स्थापित संख्या 7 है। क्षेत्र के आधार पर निवासित गाँव एवं जनसंख्या के आधार पर 21 आवर्ती बाजार केन्द्रों की आवश्यकता है। प्रस्तावित आवर्ती विपणन केन्द्रों में भवती, सौदुल, पंचकुआ, पिछोड़ी, बड़गांव, कसरावद, बोरलाई, बालकुआँ, साजवानी, रेहगुन, लिम्बी, सेमली, ओसड़ा, अंजरदा, बुदी, डोगरगांव, सुस्तीखेड़ा, पुंछपाला उतरा, चिकल्या, उबडगर्थ एवं काजलमाता आदि है। इन आवर्ती विपणन केन्द्रों में प्राथमिक, माध्यमिक, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, परिवार नियोजन, कच्ची-पक्की सड़कें, बस स्टेशन, कुआँ, नलकूप व विद्युत आदि सेवाएँ उपलब्ध हैं।

4. राजपुर तहसील : राजपुर तहसील में कुल स्थापित आवर्ती बाजार केन्द्रों की संख्या 15 है। 100 वर्ग किमी. क्षेत्र, 10 निवासित ग्राम तथा 10,000 जनसंख्या के आधार पर 17 आवर्ती बाजार केन्द्रों की आवश्यकता है। प्रस्तावित विपणन केन्द्र मोहीपुरा, केरवा, कुआँ, अभाली, मोरानी, लिम्बाई, बीलवानी, दौंदवाड़ा, इन्द्रपुर, उपला, जालखेड़ा, रेवजा, पनवा, खजूरी, चितावल, भोरवाड़ा एवं बाजड़ आदि हैं। जिनमें प्राथमिक, माध्यमिक, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, परिवार नियोजन केन्द्र, बस स्टेण्ड, कच्ची - पक्की सड़कें, विद्युत, नलकूप व कुआँ इत्यादि सेवाएँ उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर भी बाजार केन्द्रों को प्रस्तावित किया गया है।

5. कसरावद तहसील : कसरावद तहसील में कुल स्थापित आवर्ती बाजार केन्द्रों की संख्या 9 है। क्षेत्र के आधार पर, निवासित ग्रामों के आधार पर एवं जनसंख्या के आधार पर 14 आवर्ती विपान केन्द्रों की आवश्यकता है। प्रस्तावित आवर्ती बाजार केन्द्र बलखेड़, कमोदवाड़ा, भोइन्दा, खल बुजुर्ग, भीलगांव, मकड़खेड़ा, डोगांवा, कसरावद खुर्द, साटकूट, रेगांवा, मगरखेड़ी, पिपरी, बोरावा, बाड़ी एवं भतीयान बुजुर्ग हैं। इनमें प्राथमिक, माध्यमिक, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, परिवार नियोजन केन्द्र, कुआँ, नलकूप, कच्ची-पक्की सड़कें, बस स्टेण्ड व विद्युत जैसी सेवाएँ पाइ जाती हैं।

6. सेंधवा तहसील : स्थापित बाजार केन्द्रों की कुल संख्या 16 है और प्रस्तावित आवर्ती विपणन केन्द्रों की संख्या 32 है जिनको क्षेत्र, निवासित ग्राम व जनसंख्या के आधार पर प्रस्तावित किया गया है।

प्रस्तावित बाजार केन्द्र मालवन, जलगोन, मालका, बलझिरी, धामन्या, भामपुरा, मोहन पड़वा, धावड़ी, भातकी, नीसरपुर, आमदा, वन्धारा खुर्द, दौंदवाड़ा, वनगरा, गुमाड़िया खुर्द, दोदवाड़ा, जागवाड़ा, वासवी, चाटली, कुन्झरी, गवाड़ी, लावाणी, माड़गांव, बाकी ऊर्फ गोई, आछली, बावदड़, झापड़ी पाड़िया, झीर जामली, पाछड़ा, केरमाला, दुगानी, एवं गेरूघाटी आदि है। यहाँ प्राथमिक, माध्यमिक, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, परिवार नियोजन केन्द्र, कुआँ, नलकूप, कच्ची-पक्की सड़कें, बस स्टेण्ड व विद्युत जैसी सेवाएँ उपलब्ध हैं।

7. खरगोन तहसील : खरगोन तहसील में स्थापित बाजार केन्द्रों की कुल संख्या 27 है। 100 वर्ग किमी. क्षेत्र के आधार पर, 10 निवासित ग्रामों, 10,000 जनसंख्या के आधार पर 26 आवर्ती विपणन केन्द्रों की आवश्यकता है और जिनमें प्राथमिक, माध्यमिक, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, परिवार नियोजन केन्द्र, कुआँ, नलकूल, कच्ची-पक्की सड़कें, बस स्टेण्ड एवं विद्युत आदि सेवा उपलब्ध हैं। प्रस्तावित आवर्ती विपणन केन्द्र बिरला, पंढनी, अनकवाड़ी, दामखेड़ा, बड़गांव, दसनावल, पनवाड़ा, श्रीखण्डी, डोगरगांव, नन्दगांव, बगुद, घोटिया, डालका, डोगरचिचली, बलवाड़ी, जामली, कुकडोल, पेनपुर, ठिबगांव बुजुर्ग, साहपुरा, बेहरामपुरा, बहादुरपुरा, बनहेर, डाबला, मांडवाखेड़ा, मोगरगांव तथा देवनाल्या आदि हैं।

8. भीकनगांव : स्थापित बाजार केन्द्रों की कुल संख्या 17 क्षेत्र के आधार पर कोई बाजार केन्द्र की आवश्यकता नहीं है किन्तु निवासित ग्राम व जनसंख्या के आधार पर 17 बाजार केन्द्रों की आवश्यकता है। प्रस्तावित बाजार केन्द्र आभापुरी, बीटनेरा, बीलखेड़ खुर्द, छिरवा, सुरवा, सेलदा, सायखेड़ी, पिपराड़, कांझर, लालखेड़ा, बोरूठ, कोथड़ा, मीटावल, रातली, घोड़ी बुजुर्ग, नरवट, मुड़िया तथा काकरिया इत्यादि हैं। यहाँ माध्यमिक, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, परिवार नियोजन केन्द्र, कुआँ, नलकूप, कच्ची-पक्की सड़कें, बस स्टेण्ड तथा विद्युत जैसी सेवाएँ उपलब्ध हैं।

बाजार दिनों का एक साथ एकत्रण : पश्चिम निमाड़ क्षेत्र के आवर्ती विपणन केन्द्रों की आवृत्ति एक प्रभावी परिस्थिति है। यह दिन बाजार दिनों का एक विस्तृत विस्तार देने के लिए पूरे सप्ताह में एक समान दिन किए जाना चाहिए। बाजार के दिन इस प्रकार पृथक किए जाना चाहिए कि वे भ्रमणशील व्यापारियों के लिए सुगम और अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा को एक और करें।

पदानुक्रम का संगठन : आवर्ती बाजार केन्द्रों की असंगत संख्या विभिन्न पदानुक्रम श्रेणी में आती है। एक से लगाकर पाँच तक कोई केन्द्रीय स्थल सिद्धांत का नियम इस पदानुक्रम के क्रम में नहीं लगाया जा सकता है। हालांकि इस विचित्र परिस्थिति के पीछे कारण है कि बाजार केन्द्रों का आकस्मिक असंगत विकास है।

यद्यपि क्रिस्टॉलर का केन्द्रीय स्थल सिद्धांत किसी विशेष संगठन के अध्ययन में आदर्श प्रतिमान के रूप में देखा गया है जबकि सिद्धांत सभी प्रकार की परिस्थितियों में उपयोग नहीं किया जा सकता है। विशिष्ट परिस्थितियों की वास्तवितकताएँ उपरोक्त परिकल्पनाओं की जमावट को प्रमाणित करती है। प्रस्तुत अध्ययन में यह वर्तमान तथ्यों को देखते हुए इसकी बजाय अपरिहार्य लगते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि आवर्ती विपणन केन्द्रों का ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। यही वे केन्द्र हैं जो ग्रामीण उत्पाद एवं स्थानीय उत्पाद को विक्रय हेतु एक स्थल प्रदान करते हैं।

अत: नगरीय क्षेत्रों की भाँति ग्रामीण क्षेत्रों के संतुलित विकास हेतु यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी वह मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ जो नगरों में उपलब्ध हैं। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बल प्राप्त होगा तथा आय के स्तर एवं रोजगार अवसरों में वृद्धि हो पायेगी। किसी भी उपयुक्त स्थल पर आवर्ती विपणन केन्द्रों की स्थापना की सफलता ग्रामीण सेवा केन्द्रों के समन्वित विकास का आधार है। अत: आवर्ती बाजारों की अनुपस्थिति में कई सेवाओं की स्थापना संभव नहीं है।

सन्दर्भ :

1. Berry, B.J.L. 1967 : Geography of Market centers and Retail distribution, Egle Wood Cliff, New Jersey, Printice Hall, pp. 125-2,3.
2. Christaller, W., 19933 : Die Zentra leno rte in suddents schland Jena, Fischer, Trans. By C. Baskin (1966) The Central Places of Southern Germany, Eaglewood cliff, Printice Hall.
3. सिंह एच.एस. (1997) : अन्त: नगरीय विपणन भूगोल, एसो. ऑफ मा. ज्या. ऑफ इण्डिया 19 क गोरखपुर।
4. श्रीवास्तव, वी. के., दीक्षित, आर. एस. (1966) : विपणन भूगोल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
5. श्रीवास्तव, एच.ओ. (1998) : विपणन भूगोल, सरयूपार मैदान का प्रतीक अध्ययन, एसो. ऑफ मा.ज्या.ऑफ इण्डिया, गोरखपुर।
6. पश्चिमी निमाड़ का मजमूली मानचित्र।
7. क्षेत्रीय सर्वेक्षण, 2006 एवं जिला सांख्यिकी पुस्तिका (1981-2001)

(तालिका क्रमांक 2) पश्चिम निमाड़ : सड़कों की लम्बाई एवं आवर्ती बाजार केन्द्र

स. क्र.	तहसील	सड़कों की लम्बाई किमी. में		सड़कों की लम्बाई प्रति 100 वर्ग किमी. पर		सड़क की लम्बाई प्रति 10,000 जनसंख्या पर	
		कच्ची सड़क	पक्की सड़क	कच्ची सड़क	पक्की सड़क	कच्ची सड़क	पक्की सड़क
1	बड़वाह	288.00	316.00	23.24	25.50	9.635	10.57
2	महे⃞वर	37.00	313.00	4.660	39.45	2.907	15.78
3	बड़वानी	443.19	528.08	53.02	63.18	15.95	19.01
4	राजपुर	26.00	498.13	1.949	37.34	8.461	16.21
5	कसरावद	42.00	343.00	4.141	33.82	2.050	16.74
6	सेंधवा	318.08	496.54	21.27	33.21	6.407	10.00
7	खरगोन	152.00	859.00	8.004	45.23	2.907	16.43
8	भीकनगांव	343.00	393.00	21.48	24.61	11.25	12.89
योग :		1649.27	3746.75	17.22	37.79	7.44	14.70

स्त्रोत : क्षैत्रिय सर्वेक्षण एवं मजमूली मानचित्र (पश्चिम निमाड़ क्षेत्र)

(तालिका क्रमांक 2) पश्चिम निमाड़ : प्रस्तावित आवर्ती विपणन केन्द्रों की संख्या

स. क्र.	तहसील	विपणन केन्द्रों की संख्या	प्रस्तावित बाजार केन्द्रों की संख्या के आधार पर एक बाजार केन्द्र की संख्या			प्रस्तावित बाजार केन्द्रों की संख्या
			100 वर्ग किमी. पर	10 निवासित गाँव पर	10,000 जनसंख्या पर	
1	बड़वाह	15	12	25	30	11
2	महेश्वर	11	08	16	20	12
3	बड़वानी	07	08	20	28	21
4	राजपुर	15	12	19	31	17
5	कसरावद	09	10	18	20	14
6	सेंधवा	16	15	32	50	32
7	खरगोन	27	19	33	52	26
8	भीकनगांव	17	16	26	30	17

स्त्रोत : क्षैत्रिय सर्वेक्षण (2010)

मध्य प्रदेश में विदेशी पूंजी निवेश : भौगोलिक प्रभाव और समाधान

डॉ. प्रभाकर मिश्र *

प्रस्तावनाः– हमारे देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नेतृत्व द्वारा देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित उद्योगों के विकास द्वारा आर्थिक विकास के साथ – साथ औद्योगिक विकास की आवश्यकता अनुभव की गयी। नेतृत्व का स्पष्ट मत रहा है कि अनेक औद्योगिक स्थापना संबंधी प्रक्रियाएं, मशीनें, उपकरण तथा तकनीकी ज्ञान देश में विश्वस्तरीय नहीं है जो निर्यात योग्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए आवश्यक है। औद्योगिक विकास हेतु आधारभूत संरचना, तकनीकी ज्ञान, ऊर्जा उपलब्धता, प्रशिक्षित मानव संसाधन तथा अपेक्षित व्यावसायिक जोखिम वहन करने की क्षमता आदि का अत्यंत कम होना हमारे औद्योगिक रूप से पिछड़ने के प्रमुख कारण रहे हैं। अत: इन्हें प्राप्त करने लिए विदेशी पूँजी निवेश को परिणामी भूमिका निभाने के लिए आवश्यक माना गया है जो प्रदेश में अवश्यंभावी नकारात्मक पर्यावरणीय परिवर्तनों के लिए लिए भी उत्तरदायी होगा।

अध्ययन क्षेत्र :– मध्यप्रदेश भारत के मध्य में 210 6* उत्तरी अक्षांक्ष से 260 5* उत्कार अक्षांश तथा 740 पूर्वी दशान्तर से 820 4* दशान्तर तक स्थित देश का हृदय प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल 308252 वर्ग किमी है जो देश के कुल क्षेत्र का 0938 प्रतिशत है । 2011 की जनगणना के अनुसार प्रदश की कुल जनसंख्या 7,25,97,565 में से ग्रामीण जनसंख्या 724 तथा नगरीय जनसंख्या 276प्रतिशत है। अध्ययन क्षेत्र का अधिकांश भाग दश के प्रायद्वीपीय पठारी भाग का ही अंश है। भौतिक संरचना की दृष्टि से पर्याप्त भूगर्भिक संरचनात्मक विविधतायुक्त मध्यवर्ती उच्च प्रदश, सतपुड़ा श्रेणी तथा पूर्वी पठारी भाग इसके मुख्य प्राकृतिक विभाग हैं जिनमें गंगा, नर्मदा, गोदावरी तथा ताप्ती आदि नदियों के छ: अपवाह तंत्र विकसित हैं।

विधितंत्र : प्रदेश में विदेशी पूँजी निवेश से होने वाले भौगोलिक परिवर्तनों से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन के लिए विभिन्न सरकारी प्रतिष्ठानों की वेवसाइट पर उपलब्ध आंकड़ों को आधार बनाया गया है। तथ्यों के लिए सामग्री को इण्टरनेट पर उपलब्ध विभागीय वेब साइट्स के माध्यम से प्राप्त किया गया है।

प्रभाव के विभिन्न पक्षों का विष्लेशण करने के लिए समंकों के प्रतिशत को आधार बनाकर विषय से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रीय तथ्यों के वितरण को तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आज तकनीकी ज्ञान एवं संचार क्षेत्र में जो क्रांति आयी है उससे विश्व बाजार की कल्पना मूर्त हो उठी है। अत: भारत को विश्व बाजार की स्पर्धा में सफलता एवं स्थायित्व के लिए तत्पर होना पड़ेगा। वर्तमान में इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए विदेशी पूँजी निवेश की आवश्यकता अपरिहार्य होती जा रही है।

मध्य प्रदेश विकास की धारा में बढ़ता हुआ नवोन्मेशी प्रदेश है। यहां प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुर उपबधता, नेतृत्व की इच्छाशक्ति तथा व्यावसायिक वातावरण की अनुकूलता के कारण औद्यौगिक विकास की प्रबल संभावनाएं देखी जा रही हैं। म.प्र. शासन ने भी राष्ट्रीय उदारीकरण की नीति का अनुसरण करते हुए अपने उद्योग संभावित क्षेत्रों में औद्यौगिक विकास को प्रोत्साहन देने के लिए अपने स्तर पर औद्योगिक नीतियों में परिवर्तन करते हुए ''नवीन उद्योग संवर्धन नीति – 2010'' जारी की है जो 01 नवम्बर 2010 से पांच वर्श के लिए प्रभावशील रहेगी। शासन ने औद्योगिक निवेश को प्रोत्साहन देने के लिए जो औद्योगिक नीति निर्धारित की है उसके प्रमुख तथ्य इस प्रकार हैं –

1. म.प्र. इन्वेस्टमेण्ट फैशिलिटेशन एक्ट 2008 के माध्यम से निवेश प्रणाली को प्रभावी, सक्षम तथा सुदृढ़ बनाया गया है।
2. विदेशी पूँजी निवेश को प्रोत्साहन देने, निर्यात संवर्धन बढा़ने, प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रवर्तित निवेश एवं प्रत्यक्ष पूँजी निवेश के प्रस्तावों के त्वरित निराकरण, शीघ्र अनुमति प्रदान करने तथा अन्य उद्योग संवर्धक कार्यो के त्वरित निष्पादन के लिए ''म.प्र. ट्रेड एण्ड इन्वेस्टमेण्ट फैशिलिटेशन कार्पोरेशन लिमिटेड'' को नोडल एजेन्सी नियुक्त किया है।
3. औद्योगिक विकास हेतु प्रदेश के जिलों को चिन्हित करके उन्हें औद्योगिक आधार पर अग्रणी, वर्ग ''ए'', ''बी'', तथा ''सी'' में वर्गीकृत करके उनमें औद्योगिक निवेश के लिए प्रोत्साहन स्वरूप अनुदान, करारोपण में उदारता या अन्य उद्योग संवर्धक प्रावधानों की व्यवस्था की है।
4. राष्ट्रीय स्तर पर औद्योगिक विकास के लिए चयनित ''दिल्ली मुम्बई इन्डस्ट्रियल कोरिडोर'' में प्रदेश के चार क्षेत्रों को चिन्हित किया गया है–
   अ. पीथमपुर – धार – महू इन्वेस्टमेण्ट रीजन
   ब. रतलाम – नागदा इन्वेस्टमेण्ट रीजन
   स. शाजापुर – देवास औद्योगिक क्षेत्र
   द. नीमच – नयागॉव औद्योगिक क्षेत्र
5. औद्योगिक विकास के लिए भूमि उपलब्ध कराने के लिए ''भूमि बैंक'' की स्थापना करना।
6. प्रदेश में निवेश के वातावरण को निरंतर जारी रखने तथा प्रतिष्ठित उद्यमियों तथा विदेशी निवेशकों को निवेश हेतु आमंत्रित करने के लिए के लिए ''इन्वेस्टर्स समिट'' का आयोजन करना आदि सम्मिलित है।

प्रदेश के औद्योगिक विकास के लिए किये जा रहे शासकीय प्रयासों तथा निवेशकों की रूचि के कारण प्रदेश में अनेक उद्योगों के विकास के लिए प्रस्तावों पर सहमति हुई है। अत: प्रदेश को औद्योगिक रूप से विकसित श्रेणी में लाने के लिए जो बहुविध प्रयास किये जा रहे हैं वे इस प्रदेश के भौगोलिक वातावरण को अवश्य ही आंदोलित करेंगे। यह विचार ही इस शोध का विषय है।

प्रादेशिक वातावरण पर पूंजी निवेश के भौगोलिक प्रभाव :

1.व्यावसायिक जनसंख्या संरचना में परिवर्तन : प्रदेश में भौगोलिक असमानताओं के कारण व्यावसायिक अवसरों की समानता सर्वत्र समान नहीं है। अत: क्षेत्रीय जनसंख्या का आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर अन्य कारणों के साथ अर्थोपार्जन हेतु अपेक्षाकृत अधिक संभाव्य क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करना स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक हो जाता है। मध्य

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शासकीय महाविद्यालय महिदपुर (म.प्र.) भारत

प्रदेश के ग्रामीण अंचलों से कृषि क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम विकसित जिलों यथा- झाबुआ, बड़वानी, धार, अनूपपुर तथा शहडोल आदि में कृषि क्षेत्र में कार्य की कमी या अनुपलब्धता की स्थिति होने पर कृषि क्षेत्र में अग्रणी मालवा क्षेत्र या औद्योगिक दृष्टि से विकसित जिलों में इन्दौर, भोपाल, जबलपुर तथा राजगढ़ आदि जिलों की ओर श्रम शक्ति का प्रवास चिन्हित किया गया है। अत: स्पष्ट है कि औद्योगिक रूप से उन्नत या अग्रणी कृषि क्षेत्र प्रवासित जनसंख्या को श्रम अवसर प्रदान करके केन्द्रीयकृत करते हैं तथा इसके विपरीत जिन क्षेत्रों से यह प्रवास होता है वहां जनसंख्या वितरण के क्षेत्रीय स्वरूप को प्रभावित करते हैं।

2.पर्यावरण प्रदूशण में वृद्धि : आर्थिक प्रगति के लक्ष्य को द्रुतगति से प्राप्त करने के लिए किया जाने वाला औद्योगिक विकास एवं उसका विस्तार आर्थिक सम्पन्नता का हेतु हो सकता है परन्तु इसके पश्चात्वर्ती नकारात्मक प्रभाव सामाजिक परिदृष्य में परिलक्षित होते हैं। औद्योगिक विकास के इन नकारात्मक प्रभावों का त्वरित मूल्यांकन इनकी मंद प्रभावशीलता के कारण संभव नहीं हो पाता लेकिन इनके संचयी प्रभाव जब प्रभावी होने लगते हैं जो पर्यावरण के मौलिक स्वरूप को ही संकट में डाल देते हैं।

नकारात्मक औद्योगिक प्रभाव श्रृंखलाबद्ध होते हैं तथा इनका एक प्रतिकूल प्रभाव कई प्रतिकूल प्रभावों का जनक होता है जो निश्चित रूप से पर्यावरण एवं मानव जीवन के लिए घातक सिद्ध होते हैं। भोपाल गैस त्रासदी प्रदेश के लिए ज्वलंत उदाहरण है जिसके रासायनिक कचरे का निस्तारण अभी तक समस्या के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है।

औद्योगीकरण के दो प्रमुख घटकों - प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र गति से दोहन तथा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि निरंतर बढते उद्योग एवं नगरीकरण के कारण पर्यावरण प्रदूशित हो रहा है। उद्योगों से वांछित उत्पादन के अतिरिक्त अवांछनीय पदार्थो का निस्सारण भी होता है।

जैसे - 1. औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ 2. प्रदूषित जल 3. विषैली गैसें 4. रासायनिक अवक्षेप 5. एरोसोल, धूल व राख आदि। इन पदार्थो से जल, भूमि, मृदा तथा वायु में प्रदूषक पदार्थों की सान्द्रता अधिक हो जाने के कारण मानव के साथ - साथ अन्य प्राणियों के जीवन के लिए संकट उपस्थित हो जाता है। म.प्र. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा किये गये सर्वेक्षण पर आधारित तथ्यों से स्पष्ट है कि नाइट्रोजन डाई आक्साइड का स्तर नागदा तथा सिंगरौली औद्योगिक क्षेत्र में प्रगतिशील है जो शीघ्र ही वायु प्रदूषण के चिन्तनीय स्तर को छूने की ओर अग्रसर है साथ ही मध्य प्रदेश के विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों के वायुमण्डल में सल्फर डाई आक्साइड की निरंतर वृद्धिशील मात्रा जो अभी प्रदूषण स्तर से नीचे है, को छोड़कर अन्य वायु प्रदूषकों की मात्रा अनुमान से कुछ अलग नहीं है।

वायुमण्डल में श्वसन योग्य वायु के स्तर तथा वायु में धूल कणों की स्थिति इन्दौर, नागदा में बीसीआई लेबर क्लब तथा ग्रेसिम कल्याण केन्द्र, सिंगरौली में जयंत टाउनशिप, एनटीपीसी विद्यानगर तथा वैढन के आवासीय क्षेत्रों में तथा ग्वालियर में दीनदयाल नगर क्षेत्रों में सामान्य से चिन्तनीय स्तर तक पहुॅच चुकी है। ऐसी स्थिति में इन क्षेत्रों में अतिरिक्त औद्योगिक विकास के प्रयास पर्यावरणीय क्षति के अतिरिक्त प्रयास सिद्ध होने की पूरी संभावना है।

3. संसाधनों का अनियंत्रित दोहन : औद्योगिक स्थापना का आधारभूत तथ्य है कि उसे ऐसे स्थान पर नियोजित किया जाय जहॉ उसके लिए पर्याप्त मात्रा में और न्यूनतम परिवहन लागत पर कच्चा माल उपलब्ध हो सके। किसी भी उद्योग की सफलता इस तथ्य पर भी निर्भर करती है कि उसके सुचारू संचालन के लिए आवश्यक संसाधन निरंतर उपलब्ध रहें। संसाधनों की अनुपलब्धता या अपर्याप्तता उद्योग को अलाभकारी या व्यर्थ उपक्रम सिद्ध कर सकती है। अत: उद्योग को लाभप्रद बनाने के लिए समीपस्थ क्षेत्र का संसाधनों की त्वरित उपलब्धता बनाये रखना एकमेव लक्ष्य रहता है जिसके कारण संसाधनों का बहुविध दोहन किया जाता है जो सामयिक निरीक्षण एवं समीक्षा के अभाव में नियंत्रण विहीन एवं धरातल विरूपणकारी सिद्ध होता है। संलग्न क्षेत्र पर प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन का प्रभाव पर्यावरणीय अवनयन वनों की कटाई के कारण वन क्षेत्रों का ह्रास, खनिज उत्खनन से धरातल का बंजर भूमि में परिवर्तन, औद्योगिक विस्तार के कारण कृषि भूमि का ह्रास, भूमिगत जल के दोहन से जल स्तर में गिरावट, धरातल का अवतलन आदि के रूप में अनेक क्षेत्रों में परिलक्षित होता है।

प्रदेश में खनन, विद्युत उत्पादन, सीमेंट तथा रसायन आदि उद्योगों को विकास की प्राथमिकता में सम्मिलित किया गया है। ये सभी उद्योग धरातल पर अपने दूरगामी विरूपणी प्रभाव के लिए जाने जाते हैं। मध्य प्रदेश शासन, खनिज संसाधन विभाग विभागीय प्रतिवेदन (2007- 08) के अनुसार प्रदेश में 1195 खनन पट्टे, 4020 उत्खनन पट्टे तथा 2259 घोश विक्रय खदानें तथा 04 पेट्रो अन्वेशण अनुज्ञप्तियां हैं।

2006 - 07 में 543 अवैध उत्खनन प्रकरण तथा 5103 प्रकरण अवैध परिवहन के बनाये गये। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि प्रदेश में सुस्पष्ट खनन नीति एवं पर्याप्त पर्यावरणीय दिशा निर्देशों होने के बाद भी खनिजों का अवैध दोहन होता है जिसका सीधा प्रभाव प्रदेश की राजस्व हानि तथा प्रादेशिक पर्यावरण अवनयन के रूप में परिलक्षित होता है।

4. ऊर्जा संकट : ऊर्जा आर्थिक गतिविधियों के संचालन एवं उनके विकास के लिए एक अनिवार्य आधारभूत आवश्यकता है। व्यावसायिक एवं घरेलू आवश्यकता के समय उपयोग की जा सकने योग्य विद्युत आपूर्ति निरंतर और नियमित रूप से मिलने पर उसका उत्पादक कार्यो में प्रभावी उपयोग किया जा सकता है।

भारत जैसे विकासशील देशों में आर्थिक वृद्धि अपेक्षित है वहीं आर्थिक वृद्धि के लिए ऊर्जा आवश्यक है। मध्य प्रदेश में औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक आधारभूत कारक - विद्युत ऊर्जा की समस्या को दूर करने का प्रयास प्रदेश की पूर्व स्थापित विद्युत उत्पादन क्षमता में इन्दिरा सागर परियोजना (उत्पादन 1000 मेगा वॉट) तथा सरदार सरोवर परियोजना (उत्पादन 598 मेगा वॉट) द्वारा वृद्धि करके किया गया है।

वर्ष 2006 में प्रदेश में उच्चतम उपलब्धता 5783 मेगा वॉट तथा उच्चतम मांग 7114 मेगा वॉट है जिसमें से वितरण एवं पारेषण में 42 प्रतिशत विद्युत हानि होती है जो राष्ट्रीय औसत 33 प्रतिशत से बहुत अधिक है। रबी की कृषि के समय मांग लगभग 2000 मेगा वॉट तक बढ़ जाने के कारण आपूर्ति की समस्या विद्युत ऊर्जा की उपलब्धता एवं मांग में 18 से 20 प्रतिशत का अंतर आता है जिसे विद्युत क्रय तथा प्रबंधकीय कौशल (विद्युत प्रदाय के घण्टे कम करके) द्वारा पूरा किया जाता है।

औद्योगिक क्षेत्र प्रदेश में सर्वोच्च विद्युत उपभोग करने वाला क्षेत्र है जो 41 प्रतिशत विद्युत ऊर्जा का उपभोग करता है। कृषि तथा घरेलू क्षेत्र क्रमश: 28 तथा 18 प्रतिशत विद्युत ऊर्जा का उपभोग करते हैं। इन दोनों क्षेत्रों की विद्युत आवश्यकताओं को भी अनदेखा नहीं किया सकता। अत: औद्योगिक विकास बढने पर विद्युत ऊर्जा की उपलब्धता में और कमी होगी जो समस्या को और चिन्तनीय बनाती है।

5. क्षेत्रीय असंतुलन में वृद्धि : औद्योगिक विकास के लक्ष्य को

त्वरित गति से प्राप्त करने के लिए औद्योगिक विकास केन्द्र की संकल्पना के अनुसार उपयुक्त स्थानों को उनकी औद्योगिक विकास एवं स्थिति की संभावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए चयन कर विकास केन्द्र बनाया गया है। शासन द्वारा चरणबद्ध आधारभूत सुविधाओं का विकास एवं प्रक्रियागत सरलता ने इन केन्द्रों के द्रुत विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। प्रदेश में आज यही स्थान औद्योगिक विकास के केन्द्रबिन्दु हैं।

प्रदेश में चयनित स्थलों का नियोजित औद्योगिक विकास होने के कारण अन्य क्षेत्रों में औद्योगिक विकास या तो धीमा रह गया है या नितान्त पिछड़ा है। मध्य प्रदेश की कुल औद्योगिक इकाईयों का 50 प्रतिशत से अधिक केवल 05 स्थानों पर ही केन्द्रित है।

मध्य प्रदेश : औद्योगिक इकाइयों का वितरण

क्र.	औद्योगिक विकास केन्द्र का नाम	स्थापित औद्योगिक इकाईयों का प्रतिशत
1	पीथमपुर	16.67
2	देवास	11.48
3	मण्डीदीप	9.14
4	मालनपुर	7.53
5	इन्दौर	6.17

इसके अतिरिक्त प्रदेश के वाणिज्य, उद्योग एवं रोजगार विभाग द्वारा जिलों के औद्योगीकृत जिलों के वर्गीकरण में केवल 04 जिलों को अग्रणी, पिछड़े जिलों की ''अ'' श्रेणी में 05 जिले, ''ब'' श्रेणी में 02 जिले तथा ''स'' श्रेणी में 37 जिलों को स्थान दिया गया है। ये तथ्य प्रदेश में औद्योगिक विकास के केन्द्रीयकरण के अतिरिक्त औद्योगिक इकाईयों के वितरण में भी क्षेत्रीय असमानता को स्पष्ट रूप से परिलक्षित करते हैं।

6.अन्य प्रभाव : देश में निवेश की वृद्धि ने भूमि के मूल्य में वृद्धि, स्वास्थ्य समस्याएं, मूलभूत सुविधाओं का अभाव तथा अपराध आदि समस्याओं को भी बढाया है। औद्योगिक विस्तार हेतु संसाधित क्षेत्रों में पूँजी निवेश की वृद्धि से जहां औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि होती है वहीं सम्बद्ध क्षेत्र पर आधारभूत संरचनाओं के विकास के लिए भी दवाव बढता है।

प्राय: सभी औद्योगिक क्रियाओं के लिए ऑफिस, फैक्टरी, गोदाम, वर्कशाप, आवास आदि कार्यो के लिए औद्योगिक क्षेत्र के संलग्न क्षेत्र पर भूमि की आवश्यकता अनुभव की जाती है। भूमि उपलब्धता की सीमितता के कारण उच्च दरों पर भूमि उपलब्ध हो पाती है। प्रदेश के औद्योगिक रूप से विकसित केन्द्रों पर भूमि मूल्य में लगभग 350 से 400 प्रतिशत तथा निर्माण लागत में 500 से 750 प्रतिशत प्रति वर्ग मीटर की वृद्धि हुई है।

द्रुतगति से हो रहे औद्योगीकरण एवं यंत्रीकरण ने प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन तथा शोषण में वृद्धि की है। विभिन्न उद्योगों में प्रदूषण नियंत्रण उपचारों का विधिवत संधारण और उपयोग नहीं होने के कारण वायु, जल, ध्वनि तथा पटलविरूपणकारी प्रदूषणों के उदाहरणों की कमी नहीं है। खनन उद्योग में जहां खुली खदान होने पर अनावश्यक खनन पदार्थ को समीपस्थ क्षेत्रों में ढेर के रूप में इकट्ठा करके छोड़ दिया जाता है वहीं गहरे खनन क्षेत्रों में विस्फोट के माध्यम से खनन करने पर आंतरिक दवाव से कारण भूजल स्तर में परिवर्तन तथा जल में सल्फेट मिलना, अपक्षालन, कृषि क्षेत्र का विनाश आदि समस्याओं में वृद्धि होती है।

सीमेंट, रसायन तथा खनन उद्योगों द्वारा संलग्न आवासीय क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या के स्वास्थ्य को विपरीत रूप से प्रभावित किये जाने के उदाहरण भी हैं। मंदसौर के स्लेट खनन उद्योग क्षेत्र में 'सिलिकोसिस' तथा सीमेंट उत्पादन तथा कोयला उत्पादन क्षेत्रों में श्वसन तथा त्वचा सम्बन्धी बीमारियों के प्रभावों को देखा जा सकता है।

समाधान :

1.पूंजी निवेश का आनुपातिक वितरण : औद्योगिक विकास के लिए पूँजी निवेश आवश्यक तथ्य है जिसका उपयोग उत्पादन एवं रोजगार सृजन के लिए किया जाता है लेकिन प्रदेश में पूँजी निवेश का अधिकांश भाग उद्योग विशेष या क्षेत्र विशेष पर केन्द्रित है जिसके कारण उस क्षेत्र पर उत्पादन तथा रोजगार सृजन का अतिरिक्त दवाव होने के कारण प्रदूषण, संसाधनों का अवनयन, आवास, सुरक्षा तथा स्वास्थ्य आदि से संबंधित अन्य समस्याएं उत्पन्न होती हैं। प्रदेश में अधिकांश औद्योगिक इकाईयां पीथमपुर, देवास, मण्डीदीप, मालनपुर, इन्दौर तथा भोपाल में अवस्थित हैं। वहीं यदि उद्योगों में पूंजी निवेश के वितरण की मात्रा की समीक्षा की जाय तो पूरे प्रदेश में केवल तीन स्थानों में गुना, सतना और भिण्ड में कुल निवेश का 70 प्रतिशत से अधिक पूँजी निवेश किया गया है।

यद्यपि प्रदेश की नवीन औद्योगिक नीति 2010 में नवीन औद्योगिक क्षेत्रों को विकसित करने का प्रावधान है लेकिन एक दो नवीन स्थानों के अतिरिक्त पहले से ही स्थापित या व्यवस्थित औद्योगिक क्षेत्रों / स्थानों में पूँजी निवेश किया जाना प्रस्तावित किया गया है जिससे केवल क्षेत्र विशेष में अवस्थित उद्योगों को ही विकास करने का अवसर मिलेगा शेष क्षेत्र पुन: उपेक्षित और औद्योगिक विकास की धारा से अलग ही रह जायेंगे। यदि नवीन और अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्रों में नवीन उद्योगों का चयन करके पूँजी निवेश किया जाय तो जहां पूँजी निवेश का लाभ छोटे तथा औद्योगिक रूप से उपेक्षित क्षेत्रों को मिलेगा वहीं पर स्थानीय रूप से रोजगार के अवसर उपलब्ध होने के कारण क्षेत्रीय विकास की गति में सुधार होगा।

2.प्रदेश के लिए आवश्यक क्षेत्रों में पूंजी निवेश को प्राथमिकता : प्रदेश में पूँजी निवेश को आमंत्रित करने करने के लिए औद्योगिक संवर्धन नीति में विकास हेतु स्थानों एवं निवेश के लिए उद्योगों को चिन्हित किया गया है। निवेश के लिए चिन्हित किये गये उद्योगों में सीमेण्ट, खाद्य प्रसंस्करण, ऑटोमोबाइल, फार्मास्यूटीकल, रसायन, पॉवर, लोहा इस्पात, खनन, पर्यटन, सूचना प्रौद्योगिकी, कृषि एवं शहरी तथा औद्योगिक अपशिष्ट प्रसंस्करण, बायो टेक्नोलाजी, इन्जीनियरिंग तथा विद्युत उपकरण आदि प्रमुख है। इन उद्योगों में से सीमेण्ट, खाद्य प्रसंस्करण, ऑटोमोबाइल, फार्मास्यूटीकल, रसायन उद्योग केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की सूची में गंभीर प्रदूषक उद्योगों की श्रेणी में रखे गये हैं जो निष्चित रूप से प्रदेश के भौतिक पर्यावरण को क्षेत्रीय रूप में प्रभावित करने के मूल्य पर विकसित किये जायेंगे जिसका परिणाम प्रदेश के लिए पर्यावरणीय रूप से लाभकारी नहीं है।

ज्ञातव्य है कि प्रदेश के विकास के लिए ऐसे उद्योगों का चयन पूँजी निवेश के लिए किया जाना चाहिए जिससे प्रदेश के भौतिक पर्यावरण को बिना नष्ट किये उपादेय हो सके। प्रदेश के सकल घरेलू उत्पादन (जीडीपी) में 41 प्रतिशत सेवा क्षेत्र, 35 प्रतिशत उद्योग तथा 24 प्रतिशत कृषि क्षेत्र की भागीदारी है। स्पष्ट है कि अभी कृषि क्षेत्र में भी विकास की काफी संभावना और आवश्यकता है।

अत: विदेशी पूँजी निवेश केवल उन्हीं क्षेत्रों में प्रस्तावित किया जाना चाहिए जिन क्षेत्रों में देशी पूँजी निवेश की उपलब्धता न्यून है क्योंकि विदेशी पूँजी निवेश केवल उन्हीं क्षेत्रों में उपलब्ध होता है जिन क्षेत्रों में लाभ कमाने

की उम्मीद सुनिश्चित रहती है जिसके लाभ का अधिकांश भाग प्रदेश और देश से बाहर चला जाता है लेकिन भौतिक पर्यावरण की अशुद्धता को स्थानीय स्तर पर ही छोड़ देता है और क्षेत्र के भौतिक विकास में भी उसका कोई योगदान नहीं मिलता।

3.संसाधनों का संतुलित दोहन : मानव सभ्यता का विकास वैज्ञानिक उन्नति की तीव्रता के साथ बढता जाता है। संसाधनों की खोज तथा उपयोग में भी तीव्र वृद्धि होती है। विकास के लक्ष्य को तेजी से प्राप्त करने के लिए संसाधनों के उपभोग को अधिकतम मात्रा तक बढाया जाता है।

इस प्रकार संसाधन समृद्ध प्रदेश शीघ्र ही संसाधन शून्य प्रदेश में बदल जाता है और क्षेत्र का पारिस्थितिक संतुलन अस्थिर हो जाता है।इसके लिए यह विचार ही दोशी है कि संसाधनों के तीव्र दोहन या उपयोग से ही तीव्र विकास संभव है। अत: हमें विकास की अवधारणा में परिवर्तन करते हुए पारिस्थितिक संतुलन तथा मानव की मौलिक आवश्यकताओं के मध्य सामंजस्य रखते हुए संसाधनों का संतुलित दोहन सुनिश्चित करना है ताकि भावी समृद्धि की संभावनाऐं सुरक्षित रह सकें।

केन्द्रीय भूगर्भ जल संसाधन विभाग के प्रतिवेदन के अनुसार प्रदेश में भूगर्भ जल संसाधन की स्थिति यह है कि 09 जिलों में से 06 जिले टीकमगढ़, शाजापुर, नीमच, इन्दौर, धार तथा झाबुआ जिलों में चिन्तनीय (critical) स्तर तक तथा 03 जिले उज्जैन, रतलाम तथा मंदसौर में अति दोहन (over exploited) की श्रेणी में आ चुके हैं। इसके अतिरिक्त कोरवा, नागदा तथा रतलाम में सतही जल की गहन समस्या को भी रेखांकित किया गया है। खनन क्षेत्र में प्रदेश में कोयला खदानों के अतिरिक्त 335 अन्य चालू खदानें हैं जिनमें 20383 वर्ग किमी. क्षेत्र पर उत्खनन कार्य किये जा रहे हैं। केवल नीमच, रीवा, सागर, सतना, शहडोल, सीधी, तथा टीकमगढ़ जिलों में ही 26.24 हजार हेक्टेयर भूमि का विरूपण किया जा चुका है।

4.औचित्यपूर्ण नीतिगत उदारता : भारत सरकार सदैव से विदेशी पूूंजी निवेश को आंतरिक बचत का संपूरक मानती रही है। अत: विदेशी पूंजी निवेश के लिए अनुकूलतम दशाएं निर्मित करना आवश्यक माना गया। आज विदेशी पूंजी निवेश को नि:संकोच आमंत्रित करने हेतु नीतियों को और अधिक उदार बनाया जाना आवश्यकताजन्य व्यवस्था का परिणाम है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति आंतरिक एवं विदेशी ऋणों का भारी बोझ तथा कृषि और उद्योग के अपेक्षाकृत उच्च वृद्धि दरों के दबाव के अन्तर्गत वित्तीय संसाधन जुटाने और सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने के दायित्वबोध से दबी सरकारें उदारीकरण की नीति अपनाने के लिए विवश हैं। आर्थिक उदारीकरण की नीति के लक्ष्यों को शीघ्र प्राप्त करने के लिए अनेक नीतिगत परिवर्तन किये गये हैं जिनमें से औद्योगिक नीतियों में किया गया परिवर्तन भी सम्मिलित है।

राष्ट्रीय औद्योगिक नीति में किये गये परिवर्तनों का प्रभाव मध्य प्रदेश की औद्योगिक नीतियों में भी परिलक्षित होता है। इन नीतिगत परिवर्तनों के अनुसार 1. विदेशी पूंजी निवेश की इक्विटी सीमा को 40 प्रतिशत से बढाकर 51 प्रतिशत करना, 2. विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड (EIPB- Eoreign Investment Promotion Board) को गैर वरीयता प्राप्त उद्योगों में विदेशी पूँजी निवेश बढाने के लिए उच्चाधिकार सम्पन्न बनाना, 3. द्विपक्षीय समझौते (MIGA- Multilateral investment Guarantee Agency) की स्वीकृति जो विदेशी निवेश को गैर व्यावसायिक जोखिम से संरक्षण प्रदान करने के साथ साथ उस देश के कानून तथा प्रशासनिक प्रक्रिया से भी निवेश को संरक्षण तथा लाभ की गारंटी प्रदान करती है। अत: हमें इस प्रकार की नीतियों अन्तर्गत होने वाले निवेश पर औचित्यपूर्ण उदारता पर विचार करना चाहिए जिससे इन नीतियों के दूरगामी परिणाम देश तथा प्रदेश के हितों को प्रभावित न कर सकें।

5.अन्य समाधान : औद्योगिक क्षेत्रों का सुनियोजित विकेन्द्रीकरण, प्रदूषण नियंत्रण मानकों का सतत् मूल्यांकन, खनन नियमों में सुधार एवं कार्यान्वयन, स्वास्थ्य आदि मूलभूत सुविधाओं का विकास आदि करना इस दिशा में परिवर्तनकारी होंगे।

संदर्भ :

1. माइग्रशन लेबर फ्लो एण्ड कैपिटल ट्रान्सफर्स, सितम्बर, 2006
2. सेण्ट्रल ग्राउण्ड वाटर बोर्ड नॉर्थ सेन्ट्रल रीजन, भोपाल।
3. भारत की जनगणनाएं 1991, 2001 एवं 2011।
4. मध्यप्रदेश उद्योग संवर्धन नीति, 2010।
5. वेवसाइट, हाउसिंग एण्ड इन्वार्यमेन्ट डिपार्टमेन्ट, गवर्नमेन्ट ऑफ मध्यप्रदेश, भोपाल।
6. वेवसाइट,एग्रीकल्चर डिपार्टमेन्ट, गवर्नमेन्ट ऑफ मध्यप्रदेश, भोपाल।
7. वेवसाइट, जल संसाधन विभाग मध्यप्रदेश, शासन भोपाल।
8. वेवसाइट, आर्थिक सर्वेक्षण, आर्थिक एवं साख्यिकीय, संचालनालय, भोपाल।
9. वेवसाइट, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, नई दिल्ली।
10. वेवसाइट, राष्ट्रीय सुदूर संवेदन एजेन्सी, हैदराबाद।
11. वेवसाइट, उद्योग एवं वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार।

****

मंदसौर जिले में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग

डॉ. आर. के.श्रीवास्तव * डॉ. देवीलाल बामनियॉ **

भारत के हृदय स्थल मध्यप्रदेश के दक्षिण-पश्चिम में एक स्वतंत्र भौगोलिक उप प्रदेश स्थित है, जिसे ''मालवा'' प्रदेश कहा जाता हैं। मालवा के सुदूर दक्षिण-पश्चिम भाग में स्थित मन्दसौर जिले का विस्तार - 23^{0}45'54'' से 24^{0}45'54'' उत्तरी अक्षांश तथा 74^{0}52'52'' से 75^{0}55'35'' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित हैं।

यह जिला मध्यप्रदेश के कुल क्षेत्रफल का 1.15 प्रतिशत है, जिसका क्षेत्रफल 5517 वर्ग कि.मी. हैं। जिले की समुद्र तल से औसत ऊँचाई 435 मीटर है। प्रदेश के पश्चिमी मालवा का मन्दसौर जिला पूर्व एवं पश्चिम दोनों तरफ से राजस्थान से घिरा है। इसके पूर्व में कोटा तथा झालावाड़ जिले पश्चिम में चित्तौड़गढ़ जिला उत्तर में प्रदेश का नीमच तथा दक्षिण में रतलाम जिला स्थित है। प्रशासनिक दृष्टि से मन्दसौर जिला उज्जैन संभाग का एक प्रमुख जिला है, जिसके अन्तर्गत छ: तहसीलें - भानपुरा, गरोठ, मल्हारगढ़, मन्दसौर सीतामऊ तथा सुवासरा है।

इन छ: तहसीलों में 423 ग्राम पंचायतें हैं, जिनके अन्तर्गत जिले के कुल 934 राजस्व ग्राम सम्मिलित किये जाते है। मंदसौर जिला कृषि प्रधान जिला हैं, यहाँ के कृषकों को नवाचार अपनाने के लिये जाना जाता हैं। परम्परागत कृषि के अलावा फलोद्यान, औषधीय, फसलें तथा मसाला फसलों का भी क्षेत्रफल निरन्तर बढ़ता जा रहा हैं , इन फसलों के स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण करके अधिक मुनाफा कमाया जा सकता हैं, इसी उद्देश्य से इस शोधपत्र में जिले में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हैं।

भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों का आरम्भ एवं विकास उच्च एवं मध्यमवर्गीय शहरी जनता की जीवन शैली में बदलाव का परिणाम माना जाता है। खाने हेतु तैयार खाद्य पदार्थो जिन्हें सुविधा जनक कहा जाता है, की बढ़ती उपयोगिता एवं दूरदर्शन के गाँव गाँव पहुँचने के कारण इन उत्पादो की लोकप्रियता में वृद्धि हुई है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योगो के अन्तर्गत कृषि पर आधारित क्षेत्रों अनाज प्रसंस्करण फल एवं सब्जी प्रसंस्करण, खाद्य तेल का बहुत बड़ा हिस्सा शामिल है। अनाज उत्पादन की तुलना में इनके प्रसंस्करण की मात्रा अत्यन्त सीमित है। कृषि बागवानी तथा फलोत्पादन के क्षेत्रो से सम्बंधित ऐसे अनेक उत्पाद है। जिनकी देशी बाजार के साथ साथ अन्तर्राष्टीय बाजार में भी पर्याप्त मांग है।

भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण यहाँ फल, सब्जियाँ बहुतायत में उत्पादित होती है। भारत विश्व का प्रमुख फल एवं सब्जी देश है। सब्जियों के उत्पादन में भारत का स्थान दूसरा तथा चीन के बाद पूरे विश्व में सर्वाधिक सब्जियों का उत्पादन भारत में ही होता है और यही स्थिति फलों के संदर्भ में भी है। फलों के उत्पादन में विश्व में ब्राजील के बाद भारत का ही स्थान आता है। परन्तु इसका ओद्योगिक उपयोग क्रमश: 0.5 प्रतिशत और 1.2 प्रतिशत भाग है। हमारे यहाँ फल एवं सब्जी उत्पादन का मात्र अधिकतम 2.5 प्रतिशत ही प्रसंस्कृत किया जान संभावित है जबकि विश्व के अन्य देशों में फल एवं सब्जीयों को 60 से 70 प्रतिशत तक प्रसंस्कृत कर उन्हें उच्च मूल्य के उत्पादों में परिवर्तित किया जाता है।

मंदसौर जिलें में मुख्यत: गेहूँ, ज्वार, मक्का, चना, उड़द, सोयाबीन, अफीम, रायड़ा एवं मसाला फसलों मे लहसून, जीरा, मिर्च, धनिया, मेथी तथा औषधिय फसलों में इसबगोल, अश्वगंधा, सुवा, चन्द्रचुर आदि तथा बागवानी में अमरूद, पपीता, संतरा, नीबू आंवला । सब्जियों में टमाटर, भिण्डी, बैंगन, मेथी, पत्तागोभी, फूल गोभी, पालक एवं कद्दू आदि फसलों का प्रचूर उत्पादन होता है। भारत शासन द्वारा कृषि उत्पादों और प्रसंस्कृत खाद्य को विकसित करने और उनके नियति को बढ़ा कर मुद्रा उपार्जन में महत्तम वृद्धि का लक्ष्य है, जिससे उच्च प्रवर्धक एवं कार्यान्वयन से किसानों की आय में बढ़ोतरी हो और कृषि उत्पाद में उत्कृष्ट निर्यात के प्रात्साहन से रोजगारी की सम्भावनाएं बढ़ जाए।

एपीड़ा(कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्यउत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण) के अनुसूचित उत्पाद फल, सब्जी तथा उनके उत्पाद मॉस, कुक्कुट तथा चीनी उत्पाद, कोको उत्पाद, मादक तथा गैर मादक पेय, अनाज तथा कुक्कट उत्पाद, डेरी उत्पाद, कन्फेक्शनरी, बिस्कुट तथा बेकरी, मुंगफली, बादाम, अखरोट, अचार, पापड़ और चटनी , ज्वार तथा बागवानी के अलावा पुष्पकृषि उत्पाद, जड़ी बूटी तथा औषधिय पौधे आदि पर बल दिया जाता है।

एपीड़ा उत्पाद विपणन और सेवा का डाटाबेस विकास क्रेता-विक्रता बैठक और अन्य व्यवसाय अन्योन्य क्रिया आयोजित करना व्यापार और उद्योग को सिफारिश कर सलाहकार और अन्य प्रोत्साहन सेवाए प्रदान करना है। मंदसौर में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की स्थापना को प्रोत्साहन देने के लिए एक सर्वसुविधा सम्पन्न फुड प्रोसेसिंग पार्क की स्थापना की गई है। जो कि जिला मुख्यालय से मात्र 5 किलो मीटर दूर जग्गाखेड़ीं मे स्थित है। इस क्षेत्र में पर्याप्त संभावनाएँ विद्यमान होने के कारण कुछ निम्न प्रकार की ईकाइयाँ स्थापित कर सकते है। जिनमें से कुछ 100 प्रतिशत तक निर्यातोन्मुखी इकाईयाँ है।

मन्दसौर जिला : विभिन्न उत्पादों के लिये संचालित परियोजना वर्ष 2006

क्र	उत्पाद	उत्पादन क्षमता वार्षिक टन	यंत्र एवं संयंत्र की लागत (लाखों में)	कार्यशील पूंजी रू. लाख में	कुल परियोजना लागत रू. लाख में
1	कार्न-फलेक्स	300	9.50	7.40	24.00
2	दाल मिल	2400	7.25	12.40	32.50
3	शक्ति दायक भोजन	300	3.40	6.50	23.00
4	फलो के रस का कन्सनट्रेट	125	8.80	6.50	23.00
5	लहसुन का प्रसंस्करण	3	5.80	2.40	9.35
6	मसालो का प्रसंस्करण	102	1.50	2.80	8.30
7	आइस्क्रीम	-	3.50	2.15	9.30
8	इन्सेंट फुड मिक्सेस	200	1.35	2.25	7.75
9	जैम जेली कार्मलेण्ड	-	4.45	9.00	9.40
10	पापड बनाना	22.05	3.00	2.10	5.50
11	पपीता फ्रुटी	15	0.70	1.40	4.50
12	आलू का प्रसंस्करण	75	2.30	2.20	9.80

* प्राध्यापक (भूगोल) ** शोधार्थी, शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामण्डी, जिला-मन्दसौर (म.प्र.) भारत

13	कार्बोनेटेड पेय	150000 केरेट	13.30	5.20	38.00
14	बिस्कुट निर्माण	525	15.50	5.25	35.00
15	पनीर मक्खन दही	200	9.00	3.50	29.00
16	कन्फेक्शनरी	66	2.20	3.35	8.80
17	फलो का डिटायड्रेशन	120	5.50	9.00	15.00
18	सब्जीयों का डिटायड्रेशन	120	5.50	9.00	15.00
19	सोयाबीन उत्पाद	285	4.70	4.50	15.30
20	गेंहू का प्रसंस्करण	9600	30.00	20.40	82.00
21	टमाटर के उत्पाद	200	5.40	2.65	17.20

सोत:- जिला उद्योग एवं व्यापार केन्द्र मंदसौर

मंदसौर जिले में कृषि आधारित अनेक उद्योग संचालित है। जिनमें तेल उद्योग, टेबलेट्स, मसाला उद्योग, खाद एवं उर्वरक, शक्कर उद्योग के अलावा नवीन उपकरण उद्योग भी संचालित है। इकाईयाँ निम्न है -

मन्दसौर जिले में संचालित औद्योगिक इकाईयाँ, उत्पाद एवं वार्षिक क्षमता 2006

क्र.	इकाई का नाम व पता	उत्पाद	वार्षिक क्षमता
1.	में.गार्लिकोइण्डस्ट्री, जग्गाखेडी, मन्दसौर	लहसून एवं प्याज के फ्लेक्स एवं सब्जियों का निर्जलीयकरण	600 मेट्रिक टन
2.	मेंअम्बिकाडिहाइड्रेज औद्यो. क्षेत्र, मंदसौर	लहसुन पाउडर	600 मेट्रिक टन
3.	में.मनीष हर्बल, मण्डी के सामने, मंदसौर	मेथी,लहसून, धनियाँ, सुवा, अजवाईन हल्दी पाउडर	450 मेट्रिक टन
4.	निनुको एक्सपोर्टस औद्यो. क्षेत्र, मंदसौर	लहसून पाउडर एवं फ्लेक्स	600 मेट्रिक टन
5.	सोनिक बायोकेम, ग्राम थडोद	ऐसोसियल आईल	135 मेट्रिक टन
6.	नीलम फुड प्रोडक्ट, 18 बी. औद्यो. क्षेत्र, मंदसौर	मसाला निर्माण	10 मेट्रिक टन
7.	अम्बिका होम इण्डस्ट्री मंदसौर	मसाला निर्माण	01 मेट्रिक टन
8.	मेसर्स,रत्नावत मसाला उद्योग, गांधीसागर	मसाला निर्माण	2 मेट्रिक टन
9.	मेसर्स गायत्री मसाला उद्योग, मंदसौर	मसाला निर्माण	22 मेट्रिक टन
10	में केशरी फुड प्रोडक्ट औद्यो. क्षेत्र, मंदसौर	मसाला निर्माण	22 मेट्रिक टन

स्त्रोत:- *जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र, मंदसौर*

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि जिले में सर्वाधिक मसाला निर्माण उद्योग स्थापित है, इसके अलावा लहसुन व प्याज के फ्लेक्स, लहसुन पाउडर तथा तेल उद्योग स्थापित है। इनमें गार्लिगो एण्ड जग्गाखेड़ी के द्वारा लहसुन एवं प्याज के फ्लेक्स बनाये जाते है जिनकी वार्षिक उत्पादन क्षमता 600 मीट्रिक टन है। अम्बिका डिहाइड्रेड में लहसुन पाऊडर का निर्माण होता है जिनकी वार्षिक उत्पादन क्षमता 600 मीट्रिक टन है।

मनीष हर्बल मंदसौर में मैथी, हल्दी लहसुन, धनियाँ, सुवा, अजवाइन का पाऊडर बनाया जाता है, जिसकी उत्पादन क्षमता 450 मीट्रिक टन वार्षिक उत्पादन की है। निनुको एक्सपोर्ट के द्वारा लहसुन पाउडर के फ्लेक्स का निर्माण वर्ष में 600 मीट्रिक टन होता है। तथा सोनिक बायोकेप में ऐसोसियल आईल का निर्माण वर्ष में 135 मीट्रिक है। इसके अतिरिक्त अन्य उद्योगों की उत्पादन क्षमता 20 मीट्रिक टन से भी कम है।

मंदसौर जिले में संचालित दाल मिल की इकाईयाँ (वर्ष 2006)

क्र.	इकाई का नाम व पता	उत्पाद का नाम	उत्पादन क्षमता वार्षिक
1.	दशरथ दाल एण्ड फ्लोअर मिल, मंदसौर	दाल निर्माण	18000 क्वि.
2.	भारत दाल एण्ड फ्लोअर मिल, मंदसौर	दाल, बेसन	13,500 क्वि.
3.	संजय दाल एण्ड फ्लोअर मिल, मंदसौर	दाल, बेसन	25000 क्वि.
4.	राधा स्वामी दाल मिल रामटेकरी, मंदसौर	दाल निर्माण	210 मेट्रिक टन
5.	ओमप्रकाश एग्रो फुडस औद्यो. क्षैत्र, मंदसौर	चना दाल	3000 मेट्रिक टन
6.	श्रीजानकी ओवरसीज प्रा. लिमि. औद्यो. क्षैत्र	दालें	7925 मेट्रिक टन
7.	अग्रवाल पल्सेस, पिपल्यामंडी	चना दाल	2280 मेट्रिक टन
8.	पंकज फुड प्रोडक्ट्स, दलोदा	चना दाल	3000 मेट्रिक टन
9.	मंगलम् इण्डस्ट्रीज, सीमामऊ	दाल, बेसन	2500 मेट्रिक टन

स्त्रोत:- जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र, मंदसौर

जिले में दाल की कुल नौ इकाईयाँ कार्यरत है जिनमें से 6 इकाईयाँ मंदसौर में स्थापित है तथा इसके अलावा तीन इकाईयाँ, दलोदा पिपलिया मंडी, सीतामऊ में कार्यरत है। इसके अलावा, गरोठ, भानपुरा, शामगढ़, मल्हारगढ़ में कोई दाल निर्माण की इकाई संचालित नहीं है। सीतामऊ में स्थित मंगलम इण्डस्ट्रीज में निरंतर कार्य संचालित नहीं हो पा रहा

(2) औद्योगिक क्षेत्र मंदसौर में स्थापित फुड प्रोसेसिंग इकाईयाँ - मंदसौर जिले की अधिकांश फुड प्रोसेसिंग इकाईया औद्योगिक क्षेत्र में स्थापित है, जो इस प्रकार है :-(1) केसरिया दाल एण्ड बेसन मिल। (2) मालवा आईल मिल। (3) पार्वती दाल एण्ड बेसन मिल (4) मेसर्स गार्लिको। (5) मेसर्स कमला कन्फेक्शनरी। (6) मेसर्स जे. के. इण्डस्ट्रीज। (7) मेसर्स श्री जानकी ओवरसीज। (8) मेसर्स कमल टेडर्स। (9) मेसर्स नीलम फुड प्रोडेक्ट्स।(10) मेसर्स प्रेम श्री इण्डस्टीज। (11) मेसर्स रवि इण्डस्टीज।(12) मेसर्स अनुपम एजेंसी (13) अंबिका रिफायनरी।(14) अंबिका इण्डस्ट्रीज। (15) देव एग्रो (16) अंबिका डिहाड्रेड। (17) ओम प्रकाश एग्रो फुण्ड। (18) निनुको एक्सपोर्ट प्रा. लि.। (19) मेसर्स एबरेडी होम इण्डस्टी (20) मेसर्स संतोष एजेन्सी। (21) मेसर्स बजरंग आईलमिल। (22) मेसर्स अनुपूर्णा इण्डस्टीज। (23) मेसर्स श्री जानकी ओवरसीज। (24) मे. श्री जानकी ग्लोबल। (25) मे. श्री शंकर आईस फेक्ट्री।(26) मे. श्री प्रकाश कन्फेक्शनरी (27) मे. श्री हरी इण्डस्ट्रीज। (28) मे. श्री केसरी फुड प्रोडेक्ट्स। (29) मेसर्स श्री दयाल फुड प्रोडक्ट्स। (30) मे. डोसी ट्रेडींग कंम्पनी।

औद्योगिक क्षेत्र मन्दसौर में तीस इकाईयाँ स्थापित हुई है। जिसमें से वर्तमान में 26 इकाईयाँ कार्यरत है जबकि 04 इकाईयाँ कार्यरत नहीं है, जिसमें मालवा आईल मिल, अम्बिका रिफायनरी, देव एग्रो फेक्ट्री एवं मेसर्स श्रीहरी फेक्ट्री आदि है।

मन्दसौर जिला : खाद्य प्रसंस्करण उद्योग वर्ष 2006

क्र.	उद्योग	उत्पादन
1.	मेसर्स विकास इण्डस्ट्रीज, मंदसौर	मसाला निर्माण
2.	संजय ट्रेडर्स एण्ड प्रोसेसिंग, मंदसौर	मसाला निर्माण
3.	किरण इण्डस्ट्रीज, मंदसौर	मसाला निर्माण

4.	आस्था इण्डस्ट्रीज ग्राम केबुन, भानपुरा	मसाला निर्माण
5.	में. सरस्वती फुड इण्डस्ट्रीज औद्यो. क्षेत्र मंदसौर	टमाटर के उत्पाद
6.	मे. गेहलोत फुड कारपोरेशन ओद्यो. क्षेत्र, जग्गाखेडी	स्क्वैश एवं सायरफ
7.	में. कोकिला फुड ग्रेन इण्डस्ट्रीज ओद्यो. क्षेत्र, जग्गाखेडी	सरसो तेल
8.	में. अग्रवाल इण्डस्ट्रीज, मंदसौर	मसाला निर्माण
9.	में. जानकी ग्लोबल प्रा. लि. ओद्यो. क्षेत्र, मंदसौर	दाल निर्माण
10.	में श्री इण्डस्ट्रीज ओद्यो. क्षेत्र, मंदसौर	मसाला निर्माण
11.	में. हयात गार्लिको इण्डस्ट्रीज, मल्हारगढ़	गार्लिक फलेक
12.	में. शर्मा आलु चिप्स उद्योग, मंदसौर	आलु चिप्स
13.	में. दीप मसाला इण्डस्ट्रीज, मंदसौर	मसाला निर्माण
14.	में. मनीष मसाला उद्योग, मंदसौर	मसाला निर्माण

स्त्रोत:- जिला व्यापार एवं उद्योग केन्द्र, मंदसौर

उपरोक्त औधोगिक ईकाइयाँ वर्ष 2006 से कार्यरत हो चुकी है। जिसमें 10 ईकाइयॉ मंदसौर, 1 भानपुरा, 1 मल्हारगढ़ तथा 1 जग्गाखेडी में स्थित है। जिनका निर्माण कार्य पूर्ण हो चुका है। और उत्पादन शुरू हो चुका है।

''मंदसौर में कई कृषि आधारित उद्योग संचालित है फिर भी यह जिला औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ है। उद्योगो की दृष्टि से इसे ''सी'' श्रेणी के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है।

इसका मुख्य कारण बुनियादी सुविधाओं की कमी तथा लोगों में उद्यमिता के ज्ञान का अभाव है। जिले में उत्पादित फसल को यहां पर स्थापित उद्योगों में कच्चे माल के रूप में उपयोग कर लिया जाता है और यही पर विक्रय हेतु बाजार में भेजा जाता है जिस उत्पाद के लिए उद्योग उपलब्ध नहीं होने पर परिवहन द्वारा बाहर भेजा जाता है।

जिले में मुख्यत: मैदा मिल, दाल मिल, बेसन, जीरा, मैथी, धनियाँ, ग्रेडींग मसाला, टोमेटो सॉस, सोयासॉस, लेसिथीन, आलू चिप्स, डिहाइड्रेड, ओनियन गार्लिक, संतरा स्क्वेष, पाउडर की इकाईयाँ की स्थापना यहाँ उपलब्ध उपजो के आधार पर की जाती है।

जिले में खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के विकास की अपार संम्भावनाऐं है। प्रस्तुत अध्ययन के उपरान्त निष्कर्ष रूप मे दो सुझाव प्रस्तुत है।

(1) इन उद्योगो की टेक्नालॉजी ट्रांसफर सुगमता से हेड होल्डींग पद्धति द्वारा करने के लिए इनकी मशीनरी एवं इक्वीपमेंट प्रदायकर्ताओं की प्रदर्शनी प्रत्येक जिला मुख्यालय पर कम से कम एक माह (30दिवस) की समयावधि हेतु आयोजित की जावे। जिससे उद्यमी उससे पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सके। उपकरणों की खरीद पर पात्र लोगों को सब्सिडी तथा लोन भी उपलब्ध कराया जाना चाहिये।

(2) जिले को पिछड़ी हुई स्थिति से उबारने के लिए कृषि पर आधारित उद्योगो की ओर अधिक मात्रा में अग्रसर हो कर उद्योगो की नई इकाईयाँ स्थापित की जाए। ऐसे बेरोजगार युवक जो आर्थिक रूप से पिछड़े हो उन्हे उद्योग स्थापित करने हेतु ऋण उपलब्ध कराकर उन्हे प्रशिक्षित किया जाना चाहीये ताकि जिले की ओद्यौगिक स्थिति अच्छी बन सके।यदि अधोसंरचना उपलब्ध करा दी जाती हैं तो निश्चित ही युवा किसान इस उद्योग मे अपना भविष्य तलाश कर सकेगें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. कुलश्रेष्ठ आर. एस. (1967) : भारतीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था पृष्ठ 01, आगरा।
2. Murray D. Bryse : Indistrial Devlopment. Page - 5
3. Yomey B. S. (1996) : Economics of underdeveloped Countries, Journal's (II June)
4. डॉ. मामारिया चतुर्भुज (1986) : भारतीय कृषि उद्योग एवं नियोजन'' पृष्ठ 158
5. डॉ कुमार प्रमीला एवं : औद्योगिक भूगोल पृष्ठ - 82, भोपाल शर्मा श्रीकमल (2006)
6. डॉ. छोटुभाई जे. पटेल (2005) : सामान्य कृषि विज्ञान पृष्ठ -09 भोपाल
7. पत्रिका (2006) : वार्षिक नाबार्ड पुस्तिका, पृष्ठ 06 जिला नाबार्ड बैंक, मन्दसौर
8. डॉ. मामोरिया एवं जैन (1985) : भारतीय कृषि उद्योग एवं नियोजन पृष्ठ-90, आगरा
9. कृषि हलचल (2008) : (वार्षिक विशेषांक) दैनिक भास्कर समाचार पत्र पृष्ठ - 8 एवं 9
10. श्रीवास्तव व्ही. के. (2001) : उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, अंक 37, जून-दिसंबर 2001 पृष्ठ -27

****

पर्यावरण एवं श्रमिक : स्लेट पेंसिल उद्योग के संदर्भ में एक भौगालिक अध्ययन

प्रो. शांतिलाल ईरवार *

सारांश :– मनुष्य अपनी प्रारंभिक अवस्था में जंगली था। उस समय वह अपनी भावनाएँ लिखित रूप में व्यक्त नहीं कर सकता था। जैसे-जैसे उसका शारीरिक और मानसिक विकास होता गया वैसे - वैसे उसने नवीन परिवर्तनों को अपनाना प्रारंभ कर दिया। इन परिवर्तनों में सर्वप्रमुख तथा क्रांतिकारी परिवर्तन अपने विचारों को लिपिबद्ध कर आगामी पिढ़ी के लिये सुरक्षित रखना था। इस प्रकार लेखन शैली का धीरे-धीरे विकास होता गया तथा समयांतर अनेक प्रकार की लेखनियों का प्रयोग किया जाने लगा। आधुनिक युग में पाठशालाओं में स्लेट-पेंसिल का प्रचलन प्रारंभ हुआ। स्लेट पेंसिल की सहायता से अपने प्रारंभिक अध्ययन की शुरूआत करके हजारों-लाखों बच्चें अपने स्वर्णीम भविष्य की ज्योति को प्रज्वलित करते है। स्लेट पेंसिल उद्योग ने जिले की अर्थव्यवस्था एवं श्रमिकों के आर्थिक विकास में अह्म भूमिका का निर्वाहन विगत छ: दशकों से किया है। स्लेट पेंसिल के बढ़ते प्रयोग के कारण मालवांचल के मंदसौर जिले के भू-गर्भ में स्थित बिनोटा शैल का प्रयोग विगत कई वर्षों से स्लेट पेंसिल के रूप में किया जा रहा है। इसके प्रयोग से साथ ही साथ जिले में एक विशेष प्रकार के रोगों ने दबे पांव कदम रखा। मंदसौर संपूर्ण भारत में स्लेट पेंसिल के लिये विख्यात है।

प्रस्तावना :– वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व में विकास की प्रतिस्पर्धा ने मनुष्य के स्वयं के स्वास्थ्य को खतरे में डाल दिया है। किसी भी देश के विकास का लक्षण उसके कृषि और उद्योगों की उन्नति से लिया जाता है। औद्योगिक विकास की लालसा के परिणामस्वरूप आज अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो गयी है जो वातावरण पर अपने कुप्रभाव डाल रही है। इसके कारण आज मनुष्य विभिन्न लाईलाज बीमारियों का शिकार होता जा रहा है। मंदसौर जिले में स्थित स्लेट पेंसिल उद्योग पर्यावरणीय प्रकोप से अछुता नहीं है। विगत कई दशकों से स्लेट पेंसिल निर्माण के समय उड़ने वाली धूल के कारण हजारो श्रमिक गम्भीर रोगों का शिकार हुये हैं।

मन्दसौर जिले के अतिरिक्त सम्पूर्ण प्रदेश में स्लेट पेंसिल उद्योग कहीं भी विद्यमान नहीं होने से यह क्षेत्र स्लेट पेंसिलों के उत्पादन, विक्रय एवं विपणन का मुख्य केन्द्र रहा है। वर्तमान में जिले में लगभग 40 शैल खदानें विद्यमान हैं जिसमें 13 खदानें कार्यशील है तथा शेष शिथिल पड़ी है। इन खदानों से उत्पादित शैल पत्थर स्थानीय ग्रामों में तथा मंदसौर शहर के औद्योगिक परिक्षेत्र में स्थित छोटे-छोटे उद्योगों में प्रयुक्त होता है। इस शैल पत्थर द्वारा स्लेट पेंसिल का निर्माण किया जाता है।

अध्ययन क्षेत्र :– मध्यप्रदेश के उत्तर-पश्चिम में मंदसौर जिला स्थित है। इसका विस्तार 23° 45′ 53′′ से 24° 45′ 40′′ उत्तरी अक्षांश तथा 74° 52′ 51′′ से 75° 55′ 34′′ पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित हैं। मंदसौर जिले का क्षेत्रफल 5517 वर्ग किलोमीटर है। जो कि मध्यप्रदेश के कुल क्षेत्रफल का 1.78 प्रतिशत है। देश के मध्य उच्च प्रदेश के पश्चिमी भाग में मालवा पठार पर स्थित मंदसौर जिला दो तरफ से राजस्थान के जिलों क्रमश: पूर्व में कोटा तथा झालावाड़, पश्चिम में प्रतापगढ़ जिला तथा उत्तर में प्रदेश का नीमच तथा दक्षिण में रतलाम जिला स्थित है। सन् 2011 की जनगणना अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 13,40,411 व्यक्ति है तथा जनसंख्या घनत्व 242 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। प्रशासनिक दृष्टि से मंदसौर जिला उज्जैन सम्भाग का एक विशिष्ट भाग है। वर्तमान में जिले में आठ तहसीलें मंदसौर, गरोठ, मल्हारगढ़, सीतामऊ, भानपुरा, सुवासरा, शामगढ़, तथा दलौदा है।

स्लेट पेंसिल उद्योग का परिचय :– मंदसौर जिले के पश्चिमी क्षेत्र में आर्कियन युग की अरावली श्रेणियों में 240 3′ से 240 13′ उत्तरी अक्षांश तथा 740 55′ से 750 3′ पूर्वी देशांतर के मध्य प्राकृतिक शैल पत्थर के क्षेत्र पाये जाते है। यह शैल अवसादि चट्टान का एक रूप है। जिसे ''बिनोटा शैल'' के नाम से जाना जाता है। यह शैल मुलायम तथा सफेद रंग की होती है जिसे घिसने पर सफेद छाप अंकित होती है। इसी कारण इस पत्थर का विगत सात दशकों से स्लेट पेंसिल बनाने में प्रयोग किया जा रहा है।

इस प्राकृतिक शैल पत्थर से निर्मित स्लेट पेंसिल की सहायता से अपनी प्रारंभिक शिक्षा की शुरूआत करके हजारों-लाखों बच्चे अपने स्वर्णिम भविष्य की शुरूआत करते है। मध्यप्रदेश में ही नहीं बल्की सम्पूर्ण भारत में यह शैल पत्थर केवल मंदसौर जिले की मल्हारगढ़ एवं मंदसौर तहसील के 1089.54 वर्ग एकड़ क्षेत्र में बहुतायत में पाया जाता है।

जिले में स्लेट पेंसिल निर्माण की 59 इकाईयाँ क्रियाशील है जबकि 75 से अधिक इकाईयाँ अवैध रूप से घरों में ही संचालित हो रही है।7 स्लेट पेंसिल निर्माण की संम्पूर्ण प्रक्रिया कुटीर उद्योग के रूप में की जाती है। इस उद्योग में 850 श्रमिक पंजीकृत 59 कारखानों में कार्य करते हैं। खनन प्रक्रिया एवं अवैध कारखानों सहित इस उद्योग में 1600 से अधिक श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होता है जबकी सैकड़ों श्रमिकों को अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्राप्त होता है। स्लेट पेंसिल निर्माण में मंदसौर जिले को एकाधिकार प्राप्त है।

शोध के उद्देश्य :– इस उद्योग को शोध कार्य के लिये चयनित करने के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं-

(1) स्लेट पेंसिल कारखानों से निकलने वाली धूल से होने वली प्रमुख बीमारी ''सिलिकोसिस'' से श्रमिकों के बचाव के उपयों का सुझाव देना तथा उन्हें अपनाने के लिये श्रमिकों को प्रेरित करना।

(2) स्लेट पेंसिल उद्योग में अधिकांश कार्यरत बाल श्रमिकों के पुनर्वास तथा श्रम कल्याण के विकल्पों को ढूँढना।

(4) स्लेट पेंसिल उद्योग में कार्यरत श्रमिकों तथा उनकी विधवाओं के रोजगार एवं पुनर्वास की सम्भावनाओं के विकल्पों की अनुशंसा करना।

स्लेट पेंसिल निर्माण एवं पर्यावरण का श्रमिकों पर प्रभाव :– जिन स्लेट पेंसिलों से बच्चे शिक्षा की दुनिया में अपना प्रथम कदम रखते हैं वह स्लेट पेंसिल न जाने कितने श्रमिकों के घरों की रोशनी छिनकर उनके हाथों में पहुँचती है। इन कारखानों में स्लेट पेंसिल उत्पादन के चलते जब शैल पत्थर की कटाई होती है उस समय उससे जो धूल निकलती है उसमें सिलिकॉन-डाई-आक्साइड के बारीक कण होते है। यही धूल साँस के माध्यम से फेफड़ों तक पहूँचती है और जमा होती जाती है। धीरे-धीरे यह फेफड़ों को सड़ाना

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत

आरम्भ कर देती है। एक निश्चित अवधि के बाद यह प्रक्रिया एक जानलेवा रोग सिलिकोसिस (Silicosis)में बदल जाती है। जिसका कोई इलाज नहीं है तथा इसका अंत केवल मौत के साथ ही होता है। तिल-तिल के मरने का यह सिलसिला यहाँ कई वर्षो से जारी है। रोजी-रोटी के लिये मजबूर सैकड़ों लोग यहाँ काम करते है और हर-पल मौत के नजदीक पहूँचते जाते है। पुरानी पद्धति में स्लेट पेंसिल बनाने के लिये हाथ के औजार का प्रयोग करते थे। उक्त प्रक्रिया में धूल जैसी कोई समस्या नहीं थी। इस क्षेत्र के स्लेट पेंसिल निर्माताओं द्वारा तीव्र गति से उत्पादन बढ़ाने और अधिक तेजी से लाभ कमाने के लिये सन् 1954 में विद्युत चलित आरियॉ काम में लाई जाने लगी जिससे सिलिकोसिस रोग का संकट पैदा हो गया और इस बीमारी ने उग्र रूप धारण कर लिया। इसी के चलते तिल-तिल मरने वालों की संख्या अब तक सैकड़ों पर पहुच गयी है। वर्ष 2001 से 2008 तक सिलिकोसिस से पीड़ितों तथा मरने वालों की जानकारी निम्न तालिका में दी गयी है-

स्लेट पेंसिल उद्योग एवं पर्यावरण :- मंदसौर जिले में स्थित स्लेट पेंसिल उद्योग पर्यावरण प्रदुषण से मुक्त नहीं है। इस उद्योग में प्रदुषण के कारण ही विगत सात दशकों से हजारों लोग इस उद्योग की बलि चढ़ गये। स्लेट पेंसिल उद्योग में पेंसिल बनाने के लिये बैडोल आकार के पत्थरों को चौड़े पतले टुकड़े के रूप में कटर द्वारा काटा जाता है।

शैल को काटने के दौरान एक भारी धुलयुक्त वातावरण निर्मित हो जाता है। स्लेट पेंसिल निर्माण की प्रक्रिया में उड़ने वाली धूल मुँह तथा नाक से फेफड़ों में प्रवेश कर जम जाती हैं जिससे श्रमिक का स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है और वह गम्भीर बीमारी का शिकार हो जाते हैं।

स्लेट पेंसिल निर्माण की प्रक्रिया

खदान से शैल पत्थर का खनन करते श्रमिक

कारखानों के बाहर रखा कच्चा माल

स्लेट पैंसिल की छटाई करती महिला श्रमिक

स्लेट पत्थर से पैंसिल नाता श्रमिक

पैकिंग कार्य करता श्रमिक

तैयार पैकिंग माल

मंदसौर जिले में संचालित कारखानों में से प्रतिदर्श विधि द्वारा निम्नांकित क्षेत्रों में संचालित कारखानों से धूल की मात्रा एकत्रित की गई।

तालिका क्रमांक - 1

स्लेट पेंसिल उद्योग में कार्य करते समय धूल की मात्रा

क्रं.	कारखाने की स्थिति	धूल की मात्रा (मिलीग्राम/मीटर³)
1.	मंदसौर	1.07
2.	रलायता	1.2
3.	पिपलिया	1.38
4.	मुल्तानपुरा	1.92

स्त्रोत : सर्वेक्षण पर आधारित।

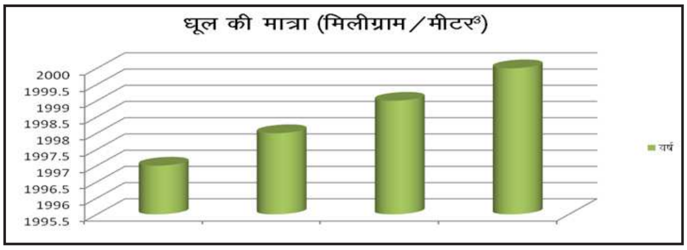

तलिका क्र. 1 के विश्लेषण से ज्ञात होता है के सर्वाधिक धूल की मात्रा मुल्तानपुरा से 1.92 मिलीग्राम/मीटर3 प्राप्त हुई जिसके प्रमुख कारण निम्न है -

1) धूल निस्तारण की पर्याप्त व्यवस्थाओं का अभाव;
2) कारखाने का घर में ही संचालन करना;
3) मकान की छत की ऊँचाई कम होना जिसके कारण धूल बाहर नहीं निकल पाती है।

इसी प्रकार पिपलिया में 1.38 मिलीग्राम/मीटर3 धूल की मात्रा कारखाने के वातावरण में प्राप्त हुई। मंदसौर शहर के औद्योगिक क्षेत्र में धूल की मात्रा 1.07 मिलीग्राम/मीटर3 थी जो अन्य उद्योगों की अपेक्षा काफी कम थी। इस कम प्रदुषण के प्रमुख कारण निम्न हैं -

1) धूल नियंत्रण के लिये वैज्ञानिक तकनिकों को अपनाया जाना।
2) कारखानें की छत की ऊँचाई अधिक होना जिससे धूल खिड़कियों तथा रोशनदानों से बाहर निकल जाती है। मंदसौर के औद्योगिक क्षेत्र में संचालित स्लेट पेंसिल काम्पलेक्स में धूल को पाइप द्वारा चूसकर चिमनी के माध्यम से कारखाने के बाहर के वातावरण में छोड़ दिया जाता है जिससे कारखाने के अंदर तो प्रदुषण को काफी हद तक रोक लिया जाता है किन्तु बाहर का वातावरण धूलयुक्त हो जाता है। कारखाने के बाहर 2.8 मिलीग्राम/मीटर3 धूल की मात्रा पायी जाती है। यह धूल की मात्रा आसपास के रहवासियों के स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालती है।

7. श्रमिकों के स्वास्थ्य पर प्रभाव :- स्लेट पेंसिल उद्योग में उड़ने वाली धूल का श्रमिकों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। स्लेट पेंसिल कारखानों से निकलने वाली धूल में 68.83 प्रतिशत सिलिका के कण पाये जाते है और इस धूल में उपस्थित कणों में 0.3 माईक्रोन या इससे छोटे आकार के सिलिका कण साँस ग्रहण करते समय श्रमिक के फेफड़ों में जाकर जम जाते है तथा धीरे-धीरे ये सिलिका कण फेफड़ो को सड़ाना आरम्भ कर देता है। एक निश्चित अवधि के बाद यह प्रक्रिया जानलेवा रोग ''सिलिकोसिस'' में बदल जाती है। जिसका कोई इलाज नहीं होता है तथा इसका अंत केवल मौत के साथ होता है। इस धूल में सिलिका कण की मात्रा

अधिक होने के कारण इस रोग को सिलिकोसिस नाम से जाना जाता है।

स्लेट पैंसिल उद्योग: सिलिकोसिस से पीड़ितों की संख्या

क्रं.	वर्ष	स्वास्थ्य परीक्षण में उपस्थित	स्वास्थ्य परीक्षण में संदर्भित किये गये	सिलिकोसिस से पीड़ित श्रमिकों की संख्या	सिलिकोसिस		
					पु.	म.	योग
1	2004	384	55	5	12	5	17
2	2005	226	39	8	10	4	14
3	2006	244	21	6	19	11	30
4	2007	236	14	4	14	6	20
5	2008	240	13	3	9	6	15
		1330	142	26	64	32	96

स्त्रोत- सिलिकोसिस बोर्ड, जिला चिकित्सालय, मंदसौर एवं स्लेट पैंसिल कर्मकार मण्डल, मंदसौर

तालिका क्रमांक 2 के आधार पर 5 वर्षों में 1330 श्रमिकों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया जिसमें से कुल 26 श्रमिक सिलिकोसिस से पीड़ित पाये गये। इस प्रकार विगत कुछ वर्षों से उन्नत वैज्ञानिक तकनिकी एवं उपकरणों के अपनाये जाने के कारण स्लेट पेंसिल उद्योग में सिलिकोसिस से पीड़ित श्रमिकों की संख्या में कमी आयी है। जो सराहनीय है किन्तु इसे अभी भी निम्न स्तर पर पहुँचाने के प्रयास किये जाने चाहिये ताकि श्रमिकों के स्वास्थ्य की रक्षा की जा सके। श्रमिकों के अकाल मृत्यू हो जाने पर श्रमिक का परिवार आर्थिक रूप से बदहाल हो जाता है। इसी कारण परिवार की जीविका चलाने के लिये बच्चे श्रमिक के रूप में कार्य करने लग जाते हैं जिसे बाल श्रम को बढावा इस उद्योग में मिला हैं।?

बाल श्रमिक इन स्लेट पेसिंल के कारखानों में कार्य करता हुआ बडा होता है। परिवार का पालन पोषण करता हैं तथा वह भी अपने पिता की तरह सिलिकोसिस से मृत्यू को प्राप्त हो जाता है और फिर से उस श्रमिक का बालक बाल श्रमिक के रूप में कारखाने में कार्य करने लगता है। यह एक प्रकार का चक्र सा बन गया हैं जिससे इस उद्योग में बाल श्रमिक बनते रहते हैं।

स्लेट पैंसिल उद्योग में बालश्रम का कुचक्र

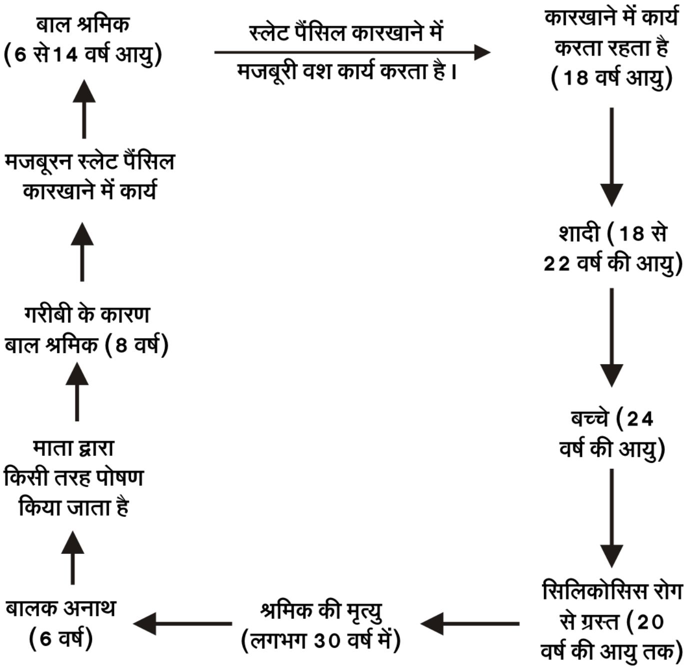

सुझाव :- स्लेट पैंसिल उद्योग में उड़ने वाली धूल की मात्रा को कम करने के लिये प्राथमिक स्तर पर संम्भावित प्रयासों के परिप्रेक्ष्य में निम्नांकित सुझाव है :

1) स्लेट पैंसिल उद्योग में पेंसिल निर्माण के समय शैल पत्थर को काटने वाले कटर को काँच से बने एक खोके से पैक करने की व्यवस्था हो ताकि कटर पर कार्य करने वाला श्रमिक इससे प्रभावित न हो;

2) कटर तथा धूल निकासी वाली चिमनी के मध्य वाली पाइप लाइन की लम्बाई कम हों;

3) चिमनी की ऊँचाई अधिक से अधिक हो ताकि धूल को कारखाने के बाहरी वातावरण से काफी दूर किया जा सके;

4) कारखाने आवासीय क्षैत्र से दूर स्थित हो;

5) अन्य उद्योगो की तरह इस उद्योग के लिये भी 'मास्टर प्लान' तैयार किया जाना चाहिए;

6) श्रमिकों को सुरक्षा की दृष्टि से मास्क के प्रयोग हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त सुझावों को क्रियान्वित कर स्लेट पेंसिल उद्योग में होने वाले धूलमय वातावरण पर काफी हद तक रोक लगायी जा सकती है। आज आवश्यकता है कि इस उद्योग को कुटीर उद्योग का दर्जा प्रदान किया जाना चाहिए तथा इस उद्योग में उन्नत वैज्ञानिक तकनिके वृहद स्तर पर लागू की जानी चाहिये क्योंकि एक ओर जहाँ हजारों श्रमिकों को रोजगार मिलता रहेगा वहीं दूसरी ओर देश के लाखों गरीब वर्ग के नन्हे मुन्हों के प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण करने में यह उद्योग सहायक होगा।

संदर्भ ग्रन्थ

1. धरातल पत्रक, पैमाना 1:50000 से परिकलित।
2. जिला सांख्यिकी पुस्तिका, मंदसौर, 2012.
3. The Census of India, 2011, Series 13, M.P.
4. धरातल पत्रक क्रमांक 45 L/16 तथा 45 P/4 के पैमाना 1:50000 से परिकलित।
5. Wadia, D.N. , "Geology of India" , 1966, The English Language Book Society and Macmillan & Co Ltd., London, P 94.
6. भौमिकी तथा खनिज सम्पदा : मंदसौर जिला, खनिज विभाग, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल, 2004.
7. मध्यप्रदेश स्लेट पेंसिल कर्मकार कल्याण मंडल, मंदसौर।
8. Jain,S.M., Sepaha,G.C., Khare,K.C. and Dubey, V.S., "Silicosis in slate pencile workers : A Clinicoradiologic Study", 1977, Chest-American College of Physicians, P. 423.
9. Habibullah N SAIYED and Rajnarayan R TIWARI "Occuptional Health Research in India" Review Article Industrial Health 2004, 42, 141–148.
10. Death of workers in silicon factories of Madhya Pradesh Case No.7894/96-97/NHRC.
11. Dr. R. R. Tiwari' Dr. L. J. Bhagia' Dr. YK Sharma "Health risk assessment and development of intervention programme in cottage industries with high risk of silicosis : A study among slate pencil workers of Mandsaur" Annual Report (Executive Summary) 2005-06 . Page 1-4 .
12. Kashyap S.K. "OCCUPATIONAL PNEUMOCONIOSIS AND TUBER-CULOSIS" Ind. J. Tub., 1994, 41, 73.

मानचित्रों का विकास, उनके प्रकार एवं उपयोगिता (आलेख)

डॉ. संजय सोहनी *

'नक्शा' जैसा कि शब्द से स्पष्ट है आकार, जिसे देखकर किसी वस्तु, स्थल एवं आकृति का सही ज्ञान हो सके। 'नक्शा' मानचित्र शब्द का पर्याय है। मानचित्र अर्थात् Map शब्द का उद्गम लेटिन शब्द Mappa से है। जिसका अर्थ है ''कपडे की रूमाल''। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1840 ई. में मिकन महोदय ने मध्यकालीन विश्व के मानचित्र के लिए किया था। वर्तमान में Mappa का विकृत रूप Map ही अत्यधिक प्रचलित है। नक्शे के कुछ विशेश लक्षण है। जिन रेखा चित्रों में ये लक्षण न हो, उन्हें नक्शे के संज्ञा नहीं दी जा सकती है। ये हैं -

1. मानचित्र समतल कागज पर बने द्विमीय (Two dimensions) होते हैं।
2. पृथ्वी के वे ही चित्र नक्शे पर प्रदर्शित होते हैं, जो सुदूर ऊपर से दिखाई देते हैं। इनमें लम्बाई-चौड़ाई होती है, किन्तु ऊँचाई रूढ़ विधि द्वारा व्यक्त की जाती है।
3. नक्शे किसी प्रक्षेप पर ही निर्मित होते है।
4. नक्शे एक निश्चित मापक पर बनाए जाते हैं।
5. नक्शे में विवरण हेतु संकेतों का प्रयोग होता है, जिन्हें रूढ़ संकेत कहते हैं, जिनका एक निश्चित अर्थ होता है। इस प्रकार पृथ्वी का धरातल अथवा उसका कोई भाग ऊपर से जैसा दिखाई देता है, उसका समतल पृष्ठ पर सानुपातिक चित्रण मानचित्र कहलाता है। नक्शे जो वर्तमान में विकसित अवस्था में है, इन्हें इस रूप से पहुँचने हेतु एक लम्बे समय में विभिन्न अवस्था में गुजरना पड़ता है। अत: इसके इतिहास को जानना आवश्यक है।

प्रारंभिक काल : लिखने की कला के विकास से पूर्व ही आदिम जातियाँ मानचित्र निर्माण एवं उपयोग करती रहीं है, यद्यपि उनके मानचित्र सांकेतिक तथा परिपक्व थे। इनके द्वारा मानचित्र पत्ते, पत्थर अथवा गुफा की दीवारों पर अंकित किए जाते थे।

मार्शल द्वीप के निवासियों ने नाड़ वृक्ष की टहनियों से जल मार्ग चार्ट बनाए, जिनमें द्वीपों को सीप अथवा कोड़ी द्वारा दिखाया। सीधी रेखाएँ खुले समुद्र को तथा वक्र रेखाएँ लहरों की दिशा को प्रदर्शित करती थीं। परन्तु ये नक्शे बगैर किसी यंत्र की सहायता के बने होने के कारण दूरी ठीक से नहीं बताते थे। प्राचीन सल्य जातियों में नक्शा निर्माण एवं प्रयोग का श्रेय ग्रीक रोक, भारत एवं अन्य समकालीन विभिन्न देशों के निवासियों को है।

बेबी लोनिया में सम्भवत: 4500 बी.सी. का, उत्तरी इराक प्रदेश का मानचित्र, आग पर पकी हुई मिट्टी की टिकिया पर बना मिला है। इस पर दिशाएँ वृत्तों द्वारा प्रदर्शित है। संसार के सर्वप्रथम नगर मानचित्र बनाने का श्रेय भी इन्हें ही है।

मिश्र में संगठित रूप से भू-सर्वेक्षण नील नदी के डेल्टा का 1333 से 1300 बी.सी. से हुआ, जिसका उद्देश्य भू कर निर्धारण एवं कर वसूली था। इसी आधार पर इरेटा स्थनीज ने पृथ्वी की परिधि ज्ञात की थी। कागज की खोज के पश्चात् 227 बी.सी. में चीन में मानचित्र कला का विकास हुआ। 100 इस्वी में चीन के प्रत्येक भाग के स्थानीय नक्शे बनने लगे थे। चीनी कार्टोग्राफर पी.सीबू ने (Poi Hsiu) मानचित्र निर्माण के ये आधारभूत नियम बताए-

1. स्थिति ज्ञान करने हेतु मानचित्र का वर्गों में विभाजन हो।
2. नक्शे धरातल के संदर्भ में सही दिशा सूचक हों।
3. नक्शे निश्चित मापनी के अनुसार बनें।
4. समान ऊँचाई वाली (समोच्च) रेखाओं का निर्माण।
5. सड़क के मोड़ सही बनाना।

इसीलिए पी.सी.यू. को चीनी मानचित्र विज्ञान का पिता कहते है। चीन में लकड़ी पर बने मानचित्र भी मिले, जिनमें विभिन्न प्रदेशों को अलग-अलग किया जा सकता था।

यूनानी मानचित्र : गणित की गणना पर आधारित थे। अक्षांश, देशांतर, अयन रेखाओं का निर्धारण, पृथ्वी के गोलाकार मानचित्र, ध्रुव प्रदेश एवं भूमध्य रेखा की कल्पना, इन्होंने ही प्रस्तुत की। इस पुस्तक के साथ एक विश्व का तथा 6 अन्य मानचित्रों का एटलस भी बनाया था।

मध्य युग : यूरोप में धर्मान्धिता बढी, जिसका प्रभाव मानचित्र कला पर भी पडा। नक्शे में जेरूसलम को बहुत बड़ा बताया। इसी समय अरब वासियों ने श्लोका का निर्माण किया एवं दो अंशों के मध्य की दूरी, गणना द्वारा ज्ञात की। जिनेवा के कम्पास सर्वेक्षण पर आधारित पोर्टोलन चार्ट्स निर्मित हुए।

पुनर्जागरण काल : 15 वीं से 17 वीं शताब्दी के विश्व में अधिक शुद्ध नक्शे बने, जिसके कारण थे-

1. टालमी की पुस्तक का पुन: प्रकाशन।
2. पृथ्वी की उत्तरी सीमा का ज्ञान होना।
3. छपाई एवं खुदाई कला का विकसित हो जाना।
4. संसार के विभिन्न भागों की खोज।

इस समय इटली में नियमित प्रक्षेपों पर मानचित्र बनाए गए। डच में मरकेटर महोदय ने मरकेटर प्रक्षेप की रचना की। जिस पर निर्मित मानचित्र दो बिन्दुओं के मध्य भी वही दिशा प्रदर्शित करते हैं, जो पृथ्वी के वास्तविक धरातल पर होती है।

आधुनिक काल : 18 वीं शताब्दी में नवीन सर्वेक्षण यंत्रों की खोज से मानचित्र निर्माण में सरलता आई। सामुद्रिक शक्ति विकसित होने से नए उपनिवेश हेतु नए देशों के नक्शों की मांग बढ़ी। इंग्लैण्ड का पहली बार (जिडोडेटिल) त्रिभुजीकरण सर्वेक्षण हुआ तथा एक इंच प्रति मील मापक पर ब्रिटिश आर्डिनेन्स सर्वे मानचित्र प्रकाशित हुआ। 19 वीं शताब्दी में ऋतु मानचित्र, उच्चावचन मानचित्र आदि प्रकाशित किए गए।

20 वीं शताब्दी में दो विश्व युद्धों के फलस्वरूप सैनिक दृष्टि से मानचित्रों की मांग बढ़ी। पृथ्वी के अगम्य क्षेत्रों के मानचित्र बनाना आवश्यक हुआ। अत: फोटोलिया ग्राफी के साथ एयर फोटोग्राफी का विकास हुआ। कई भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण-संस्थाओं की स्थापना हुई। जिनके द्वारा विभिन्न भागों के अनेक मानचित्र तैयार किए गए एवं वर्तमान में भी किए जाते है।

मानचित्रों (नक्शे) के प्रकार : नक्शे विभिन्न बहुउद्देश्यों को लेकर बनाए जाते हैं। अत: उन पर भूमि की सरंचना, जलवायु, प्राकृतिक दशा, वनस्पति,

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) भेरूलाल पाटीदार शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत

संचार व्यवस्था, जनसंख्या, नगर आदि विभिन्न विवरण प्रदर्शित किए जाते हैं। ये सभी विवरण यदि एक ही मानचित्र पर अंकित करें तो वह अस्पष्ट हो जाएगा। अत: विभिन्न विवरण हेतु भिन्न-भिन्न मानचित्र बनाए जाते हैं। इस प्रकार विवरण एवं मापनी के आधार पर नक्शों का वर्गीकरण सरल एवं उपयोगी है।

मापनी के आधार पर वर्गीकरण :

अ) **मूकर मानचित्र :** (Cadastral Map) ''केडेस्ट्रल'' फ्राँसीसी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है अचल सम्पत्ति का विवरण रखने वाला रजिस्टर। ये 4 इंच से 25 इंच प्रति मील की मापनी पर बने होते हैं। मकान, दुकान, सम्पत्ति, खेत, कुएँ, गाँव नगर आदि के मानचित्र इसी श्रेणी में आते हैं। कर निर्धारण एवं कानूनी कार्यों में सम्पत्ति की व्याख्या हेतु इन्हीं नक्शे का उपयोग होता है।

ब) **स्थलाकृतिक मानचित्र अथवा धरातल विवरण पत्रक :**इसमें किसी धरातलीय भाग का पूर्ण विवरण होता हैं। ये एक इंच प्रति मील की मापनी पर ठीक परिमापन के आधार पर किसी छोटे एवं विशिष्ट क्षेत्र में मानिचत्र होते हैं। इनमें प्राकृतिक उच्चावच एवं मानवीय दृश्यावली जैसे पहाड़, पठार, मैदान, नदी, वन, नगर, गाँव, सडक, रेल मार्ग आदि का विवरण होता है।

स) **दीवार मानचित्र** : ये लघु मापनी पर बने होते हैं। साधारणत: एक इंच चार मील से इनकी मापनी अधिक ही होती हैं। इन पर सम्पूर्ण विश्व, विभिन्न महाद्वीप अथवा देशों का विवरण प्रदर्शित किया जाता है।

द) **एटलस मानचित्र** : ये सबसे छोटी मापनी अर्थात् एक इंच = सौ मील या उससे अधिक पर सामान्यत: बने होते हैं। वास्तव में ये मानचित्र पुस्तिका होते हैं। जिसमें किसी एक देश का अथवा विश्व के विभिन्न भागों के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक विवरण अलग-अलग मानचित्रों में प्रस्तुत किए जाते है।

विवरण के आधार पर वर्गीकरण : पृथ्वी तल की आकृतियों के निर्माण में प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों शक्तियों का प्रभाव होता है। अत: इनके आकार पर विवरण मानचित्र दो प्रकार के होते है।

1. प्राकृतिक 2. सांस्कृतिक

1. प्राकृतिक मानचित्र : किसी भू भाग की प्राकृतिक एवं धरातलीय दशा प्रदर्शित करते हैं, अत: इनके निम्न उपविभाग हैं-

अ) उच्चावच मानचित्र (Reliee Map) : धरातीय दशा अर्थात् ऊँचाई, गहराई, भूमि का बल, मैदान, पठार आदि का जल प्रवाह को प्रदर्शित करने वाले मानचित्र उच्चावच मानचित्र कहलाते है।

ब) सागरीय मानचित्र (Bathymetric Maps) : जो मानचित्र समुद्र की गहराई का वितरण प्रस्तुत करते हैं। सागरीय मानचित्र कहलाते है।

स) भौमिकीयरचना मानचित्र (Geological Maps) : विभिन्न प्रकार की चट्टानों का विवरण एवं किसी भू-भाग की भौमिलीय संरचना ज्ञात करने हेतु जिन मानचित्रों का प्रयोग होता है, भौमिक रचना मानचित्र कहलाते है।

द) ऋतु मानचित्र (Elimatic Maps) : इसमें लम्बी अवधि की मौसमिक दशाओं (जनवरी एवं जुलाई माह) की जैसे- तापक्रम, वर्षा, वायु वार एवं जलवायु विभागों को बताया जाता है।

य) मौसम मानचित्र : किसी स्थान के एक दिन के, निश्चित समय की मौसमिक दशाओं को प्रदर्शित किया जाता है। जैसे-तापक्रम,वायु दाब, पवन की दिशा, गति, आकाश की दशा, वर्षा की मात्रा आदि।

इ) खगोलीय मानचित्र (Astronomical Maps) : ये आकाश मण्डल की दशाओं को प्रदर्शित करने वाले मानचित्र होते है।

एफ) वनस्पतिक मानचित्र (VegetationalMaps) : इन मानचित्रों में किसी क्षेत्र की वनस्पति एवं वनस्पतिक विभागों को प्रदर्शित करते हैं।

जी) भृवा मानचित्र (Soil Maps) : किसी क्षेत्र में पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का विवरण इनमें प्रदर्शित किया जाता है।

एच) खनिज मानचित्र (Mineral Maps) : विभिन्न क्षेत्रों में पाए जाने वाले खनिज तत्व एवं उनके वितरण का ज्ञान हमें इनके अध्ययन से होता है।

2. सांस्कृतिक मानचित्र (Cultural Map) : धरातल पर मानव एवं प्रकृति से अंतर्सम्बंधों से निर्मित भू-दृश्यों के संबंध में सूचना प्रदान करने वाले मानचित्र सांस्कृतिक मानचित्र कहलाते है। इनमें प्रमुख है-

अ) भूमि उपयोग के मानचित्र : इनमें किसी क्षेत्र के या नगर के भूमि उपयोग की जानकारी प्रस्तुत की जाती है।

ब) संचार मानचित्र (Communication Map) : किसी स्थान, राज्य अथवा देश के रेल, सड़क एवं वायु मार्गों को इनमें प्रदर्शित किया जाता है।

स) सामाजिक मानचित्र (Social Map) : इन मानचित्रों पर किसी देश अथवा विश्व की प्रजातियों, भाषाओं, धनों एवं जनसंख्या के घनत्व, वितरण एवं स्थानान्तरण आदि तत्वों को प्रदर्शित किया जाता है।

द) राजनैतिक मानचित्र (Political Map) : किसी राष्ट्र, राज्य अथवा विश्व की राजनैतिक इकाईयों, राष्ट्रीय -अर्न्तराष्ट्रीय सीमाएँ, राजधानियाँ, नगर, ग्राम प्रशासकीय स्थल तथा रेल एवं सडक मार्ग आदि को इन मानचित्रों पर प्रदर्शित किया जाता है।

य) आर्थिक एवं सांख्यिकीय मानचित्र (Economic & Statistical Map) : किसी क्षेत्र, राज्य, राष्ट्र, अथवा विश्व के औद्योगिक केन्द्र, व्यापारिक स्थल, वस्तुओं के प्रादेशिक वितरण, प्रमुख उपज उत्पादन क्षेत्र आदि का विवरण प्रस्तुत करने वाले मानचित्र आर्थिक एवं सांख्यिकीय मानचित्र कहलाते हैं।

इ) सैनिक मानचित्र (Manoeuvre Maps) : किसी छोटे क्षेत्र के प्राकृतिक, आकृतिक एवं मानवीय दृश्यावली के समस्त विवरण इसमें होते हैं।

इस तरह नक्शों के इतने प्रकारों से इनका महत्व स्पष्ट परिलक्षित होता है। ये केवल छात्रों, अध्यापकों, व्यापारियों, इंजीनियरों, वाहन चालकों, यात्रियों एवं योजना निर्माताओं के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है, वरन् सैनिक एवं सुरक्षा की दृष्टि से भी इनका अध्ययन अति आवश्यक हो जाता है।

युद्ध की सभी योजनाएँ मानचित्रों के आधार पर ही तैयार की जाती है एवं युद्ध स्थलों की जानकारी इन्हीं के द्वारा मिलती है। भूगोल विषय में तो मानचित्र एक शास्त्र के समान हैं, जो विभिन्न तथ्यों का स्पष्ट अध्ययन करने हेतु अति आवश्यक है। मानचित्र किसी क्षेत्र का अध्ययन करने हेतु हाथ एवं आँख के समान है। विशेषकर धरातलीय जानकारी प्राप्त करने के लिए। मानचित्रों के लिए हम कहें कि ये अंधे की लकड़ी हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

****

A comparative study of Social Intelligence among male and female college students

Dr. Shipra Lavania* Dr. Rashmi Singh **

Abstract- Social Intelligence is the capacity to effectively negotiate complex social relationships and environment. It is an aggregated measure of self and social awareness, which involve social beliefs and attitudes, and a capacity and appetite to manage complex social change. The aim of this study is to investigate the significance between social intelligence of male and female college students. The samples for the present study comprised of 60 samples (30 males and 30 females) age group 18-25 yrs that were selected randomly. Social intelligence scale by Dr. N.K.Chadha and Usha Ganeshan was used for data collection. Results shows that there is a significant difference between the social intelligence of male and female college students.

Introduction

What Is The Meaning Of Intelligence-

Intelligence is general mental adaptability to new problems and situations of life or in other words, it is the capacity to recognize one's behavior patterns so as to act more effectively and more appropriately in novel situations. Thus the more intelligent person is one who can more easily and more extensively very his behavior as changing conditions demand; he has numerous possible responses and is capable of greater creative reorganization of behavior.

Intelligence is the ability to learn. A person's intelligence is a matter of the extent to which he is educable, in the broadest sense. The more intelligent the individual is, the more readily and extensively is he able to learn, hence, also, the greater is his possible range of experience and activity. Intelligence is the ability to carry on abstract thinking which means the effective use of concepts and symbols in dealing with situations, especially those presenting a problem to be solved through the use of verbal and numerical symbols.

As Dookrell (1970) Intelligence might be taken to mean 'ability'- what a person can do at this moment.

Acc to Binet 'the capacity to form concepts and grasps their significance', 'all round thinking capacity' or 'mental efficiency'.

E.L.Thorndike has divided intelligent activity into three types-

1) **Social Intelligence-** Ability to understand and deal with persons;
2) **Concrete Intelligence-** Ability to understand and deal with things as in skilled trades and Scientifics appliances;
3) **Abstract Intelligence-** Ability to understand and deal with verbal and mathematical symbols.

What Do We Mean By Social Intelligence-

Social intelligence is the capacity to effectively negotiate complex social relationships and environments. The original definition by Edward Thorndike in 1920 is "the ability to understand and manage men and women, boys and girls, to act wisely in human relations". It is equivalent to interpersonal intelligence, one of the types of intelligence identified in Howard Gardner's Theory of Multiple Intelligences, and closely related to theory of mind.

Psychologist Nicholas Humphrey believes that it is social intelligence, rather than quantitative intelligence, that defines humans. Social scientist Ross Honeywill believes social intelligence is an aggregated measure of self- and social-awareness, evolved social beliefs and attitudes, and a capacity and appetite to manage complex social change.

A person with a high social intelligence quotient (SQ) is no better or worse than someone with a low SQ, but they have different attitudes, hopes, interests and desires. Some authors have restricted the definition to deal only with knowledge of social situations, perhaps more properly called social cognition or social marketing intelligence, as it pertains to trending socio-psychological advertising and marketing strategies and tactics. According to Sean Foleno, social intelligence is a person's competence to understand his or her environment optimally and react appropriately for socially successful conduct.

How Social Intelligence Can Be Measured-

Social Intelligence or SQ is a statistical abstraction similar to the 'standard score' approach used in IQ tests with a mean of 100. Scores of 140 or above are considered to be very high. SQ has until recently been measured by techniques such as question and answer sessions. These sessions assess the person's pragmatic abilities to test eligibility in certain special education courses; however some tests have been developed to measure social intelligence.

How It Is Different From Intelligence-

*Senior lecturer ** Guest lecturer, Govt. Meera Girls College, Udaipur (Raj.) INDIA

Both Nicholas Humphrey and Ross Honeywill believe that it is social intelligence, or the richness of our qualitative life, rather than our quantitative intelligence, that makes humans what they are; for example what it is like to be a human being living at the centre of the conscious present, surrounded by smells and tastes and feels and the sense of being an extraordinary metaphysical entity with properties which hardly seem to belong to the physical world. This is social intelligence. Nicholas Humphrey points to a difference between intelligence and social intelligence. Some autistic children are extremely intelligent because they are very good at observing and memorizing information, but they have low social intelligence. Similarly, chimpanzees are very adept at observation and memorization, sometimes better than humans, but are, according to Humphrey, inept at handling interpersonal relationships. What they lack is a theory of other's minds. For a long time, the field was dominated by behaviorism that is, the theory that one could understand animals including humans just by observing their behavior and finding correlations. But recent theories indicate that one must consider the inner structure behavior.

Objective-

The aim of the study is to investigate significant difference of social Intelligence between male and female college going students.

Hypothesis-

There is no significant difference on social Intelligence among male and female college students.

Method-

SAMPLE- In accordance with the aim of the present research, sample of 30 male and 30 female college students were taken from Udaipur city (Raj.)

Tools-

For present study Social intelligence scale by Dr. N.K.Chadha and Usha Ganeshan was used. It measures the social intelligence on eight dimensions namely patience, co-cooperativeness, confidence level, sensitivity, recognition of social environment, tactfulness, sense of humor and memory. Reliability of the inventory by split half method is 0.84 and validity of the scale is 0.70.

Results- (See Table)

Above Table shows social intelligence of male and female college going students. According to the table mean for male students is less in all dimensions as compared to female students. The t value is 3.944 which shows that overall there is a significant difference between male and female college students. Significant difference is found on patience, cooperativeness and confidence also among two groups.

Discussion-

Acc. to E.L.THORNDIKE: "By social intelligence is meant the ability to understand and manage men and women, boys and girls -- to act wisely in human relations". Similarly, Moss and Hunt (1927) defined social intelligence as the "ability to get along with others".

Vernon (1933) provided the most wide-ranging definition of social intelligence as the person's "ability to get along with people in general, social technique or ease in society, knowledge of social matters, and susceptibility to stimuli from other members of a group, as well as insight into the temporary moods or underlying personality traits of strangers".

Patience was significantly found to be more in female students compared to male students as they are calm under stressful situations. One reason is that God has given the power to females to generate new life which requires lots of patience and strength.

Bauer, Michal; Chytilova, Julie (2007) observed that women make more future oriented decisions than men, especially if these choices concern children.

The nature of a woman is that they are nurturing, intimate and loving individuals and within their nature and their inner abilities to be passionate for others; they are a lot more patient than males. Males on the other hand are taught to be rough, tough, not expressive about their feelings and what they believe to be loving and caring for others; so within the two; women are the more patient when it comes to situations, lifestyles, love, intimacy and life in general due to men being taught to be the tough guys.

Cooperativeness was significantly found to be more in female students compared to male students as they have ability to interact with others in a pleasant way to be able to view matters from all angles.

Men tend more to compete and women tend more to cooperate. According to Australia's leading women business executive's women are far less hierarchical than their male peers. Instead they prefer a much flatter organizational structure with a greater emphasis on team work and cooperation. Female cooperation was relatively unaffected by intergroup competition.

Confidence was significantly found to be slightly more in females as compared to males. As they have firm trust in oneself and ones chances.

Sensitivity was found more in females. As females are found to be soft hearted and are acutely aware of and responsive to human behavior.

Females and males are found to have negligible difference in recognition of social environment. As they both have ability

to perceive the nature and atmosphere of the existing situation.

Tactfulness was found to be more in females. As they have delicate perceptions of the right thing to say or do.

Sense of humor was also found to be more in females as they have capacity to feel and cause amusement; to be able to see the lighter side of life.

And in comparison of memory also it was found to be more in females as they have ability to remember all relevant issues; names and faces of people.

Cadinu; Maass; Lombardo; Frigerio (2006) examined two studies which has the relation between locus of control and stereotype threat. In experiment one males and female high school students were told that high levels of either logical intelligence (stereo type threat for women) or social intelligence (stereotype threat for men) have been associated with higher level of success in life pr they were given no information about variables that predict success. Consistent with previous stereotype threat studies, female participant obtained higher scores in the social intelligence condition compared with to the logical intelligence and control conditions, but men obtained lower scores in the social intelligence conditions compared with the logical intelligence and control conditions.

Hopkins, M. Margaret; Bilimoria, Diana (2008) indicated that there were no significant differences between male and female leaders in their demonstration of emotional and social intelligence competencies.

Conclusion-

Female college students significantly differ from male college students on social intelligence. Female student were found have high level of social intelligence than male college going students.

Refrences

- www.google.com
- Bauer, Michal; Chytilova, Julie (2007). "India: Patience of men & women". http://www.gapiresearch.org/en/projects/27
- Hopkins, M. Margaret; Bilimoria, Diana (2008). "Social & emotional competencies predicting success for male and female executives". Emerald (27). Emerald Group publishing limited. DOI- 10.1108/02621710810840749.(2008)
- www.wikipedia.com
- Kihlstrom, John F.; Cantor, Nancy (2000). R.J. Sternberg (Ed.), Handbook of intelligence, 2nd ed. (pp. 359-379). Cambridge, U.K.: Cambridge University Press, 2000; an updated appeared in the 3rd ed., 2011.
- Chadha, N.K. & Ganeshan, Usha. "Manual for social intelligence scale." National psychological cooperation, Agra.

Result Table

		N	Mean	Std. Deviation	Std. Error Mean	Mean Diff	t	p value
Patience	male female	30 30	20.37 21.70	3.045 1.489	.556 .272	1.333	2.154	.035
cooperativeness	male female	30 30	24.60 26.67	2.513 2.578	.459 .471	2.067	3.144	.003
confidence	male female	30 30	19.30 20.07	1.512 1.461	.276 .267	.767	1.997	.050
sensitivity	male female	30 30	20.37 20.87	1.829 2.360	.334 .431	.500	.917	.363
Recognition of social environment	male female	30 30	1.67 1.90	.711 .662	.130 .121	.233	1.316	.193
tactfulness	male female	30 30	3.07 3.47	1.780 1.479	.325 .270	.400	.947	.348
Sense of humor	male female	30 30	3.27 3.80	1.285 1.243	.235 .227	.533	1.634	.108
memory	male female	30 30	6.73 7.17	1.929 2.151	.352 .393	.433	.822	.415
Total	male female	30 30	99.37 105.63	6.547 5.732	1.195 1.047	6.267	3.944	.000

त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में महिला नेतृत्व की भूमिका (मन्दसौर तहसील के संदर्भ में)

डॉ. जाग्रति आर्य *

प्रस्तावना (Introduction) **:–** भारतीय संविधान के भाग-3 में अनुच्छेद 12 से 35 में दिये 6 मौलिक अधिकारों में 'समानता के अधिकार' के अंतर्गत महिलाओं को भी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन में हिस्सेदारी का अधिकार है। भारतीय संसद में महिलाओं की राजनीतिक जीवन में भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु 108 वाँ महिला आरक्षण विधेयक, 33% संसद में महिला आरक्षण हेतु प्रस्तावित है। किन्तु वही निचले स्तर पर त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में 1993 के 73 वें 74 वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायतों में 33% आरक्षण की व्यवस्था कर निचले स्तर पर महिलाओं की राजनीतिक जीवन में भागीदारी सुनिश्चित की जा चुकी है और म.प्र. सरकार ने एक कदम और बढ़ाते हुए पंचायती राज में 50% आरक्षण की व्यवस्था महिलाओं के लिये की है। ताकि महिलाएँ ज्यादा से ज्यादा निचले स्तर पर शासन में भागीदार बन सकें।

उपकल्पना (Hypothesis) **:–** संसद व पंचायतों में दिये आरक्षण व्यवस्था से महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति में सुधार होगा तथा उनकी प्रगति व विकास सुनिश्चित होगा।

उद्देश्य (Object) **:–** इस शोध-पत्र का उद्देश्य ये जाँच करना कि महिलाओं को पंचायतों के माध्यम से जो राजनीतिक अधिकार दिये गये है, वे वास्तव में कहाँ तक सफल हुए है तथा महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी क्या वाकई में सुनिश्चित हुई है।

शोध प्रविधि (Research Methodology)**:–** शोधकार्य हेतु प्रश्नावली व अन्य द्वितीयक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया व साथ ही पुस्तकों, समाचार पत्र, पत्रिकाओं और इन्टरनेट से भी सामग्री संकलित की गई है। तालिकाओं का निर्माण करके आँकड़ों का विश्लेषण किया गया। शोध के निष्कर्षो को अधिनियम के संदर्भ में जाँचा गया।

समंकों का विश्लेषण (Analysis of data) :- शोध के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हमने मंदसौर तहसील की ग्राम पंचायतों का सर्वे किया जिनमें महिला पंच-सरपंच की जानकारी निम्न है:-

जनपद पंचायत	कुल सदस्य 24	अध्यक्ष (महिला) 1	महिला सदस्य 12	कुल महिला 13
ग्राम पंचायत	कुल सदस्य	महिला सरपंच	कुल पंचों की संख्या	महिला पंचो की संख्या
	119	62	1988	945

इन जनपद पंचायत व ग्राम पंचायतों की महिला पंच-सरपंचों से उनकी आयु, शिक्षा, पारिवारिक व्यवसाय आदि की भी जानकारी ली गई जिनका प्रतिशत निम्न है:-

आयु वर्ग (Age-Group)	25-35	35-45	45-55	55-65
	6.20%	12.50%	52.04%	29.26%

पारिवारिक व्यवसाय (Family Background)	कृषि व पशुपालन	शिक्षक	मजदूरी	शासकीय सेवक	व्यवसाय व अन्य
	6.50%	9%	11%	3.60%	11.40%

शिक्षा	अशिक्षित	0-5	5-8	8-10	10-12	स्नातक	स्नातकोत्तर
	8.50%	13.30%	16.41%	36%	22.09%	2.70%	Nil

उपरोक्त विषय से स्पष्ट हैं कि सर्वाधिक प्रतिशत महिला पंच-सरपंच का 45-55 आयुवर्ग का है, शिक्षा में सर्वाधिक माध्यमिक व हायरसेकण्डरी तक हुई है तथा सर्वाधिक महिला पंच सरपंच कृषक परिवारों से है।

इन महिला पंच-सरपंच से हमने सामान्य जागरूकता से संबन्धित प्रश्न पूछे, जैसे-

प्रश्न .... उत्तर प्राप्ति का प्रतिशत

1. आपका गॉव कौन से जिलें मे आता है ? 98%
2. आपके जिले का कलेक्टर कौन है? 14%
3. 'महिला सशक्तीकरण' से आप क्या समझती है? 8%
4. पंचायतों के लिये पैसा कहाँ से आता है? 19%
5. हमारे देश का राष्ट्रपति कौन है? 26%
6. शहरों में स्थानीय निकाय किसे कहते है? 15%
7. इन्दिरा आवास योजना के लिये पात्रता क्या है? 23%
8. 'मनरेगा' में जॉबकार्ड कितने दिन में बन जाता है? 21%
9. 'जननी सुरक्षा' में 'आशा' कौन है? 53%
10. 'सर्व शिक्षा अभियान' के बारे में क्या जानती है? 17%

इनसे इनके पद व कार्य से संबंधित प्रश्न पूछे गये, जैसे–

1. क्या आप पंचायतों की सभी बैठको में जाती है?

हाँ	नहीं	कभी-कभी	पति इजाजत दे, दे तो	अन्य कारण
23%	12%	31%	13%	21%

2. पंच-सरपंच बनने के बाद आपके परिवार के सदस्यों के व्यवहार में क्या आपके प्रति परिवर्तन हुआ?

हाँ	नहीं
24%	76%

3. क्या पंचायत के निर्णय आप स्वंय लेती है?

हाँ	नहीं	पति/पिता से पूछकर	पार्टी नेतृत्व द्वारा
29%	-	5.70%	65.30%

4. क्या आप आर्थिक व पारिवारिक निर्णय लेने हेतू आत्मनिर्भर है?

आर्थिक		पारिवारिक	
हाँ	नहीं	हाँ	नहीं
21%	79%	43%	57%

उपरोक्त आँकड़े विषय की वास्तविकता जाहिर करते है। वास्तव में पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं को, दिये राजनीतिक अधिकारों का उपयोग

* अतिथि विद्वान (समाज शास्त्र), शासकीय महाविद्यालय, पिपलिया मण्ड़ी, जिला मन्दसौर (म.प्र.) भारत

'पंचपति' व 'सरपंचपति' तथा भाई व पिता द्वारा हो रहा है, जिसके पीछे मूल कारण निम्न है:-

1. महिलाओं की शिक्षा का स्तर निम्न होना।
2. हमारा पुरातन सामाजिक ढाँचा जो रूढ़ियों, प्रथाओं व नियमों से बँधा है।
3. महिलाओं का आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न होना।
4. पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं की स्थिति का निम्न होना।
5. महिला उत्पीढ़न व सामाजिक जागरूकता का अभाव।
6. अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप।
7. राज्य मानवाधिकार व महिला आयोग की रिपोर्ट मात्र कागजी कार्यवाही तक ही सीमित रहना इनके क्रियान्वयन में राजनीतिक दृढ़ता का अभाव।

वास्तव में भारतीय संविधान में दिये 'समानता के अधिकार' के अंतर्गत सभी को समान अधिकार है किन्तु वर्तमान में महिलाओं के न सिर्फ राजनीतिक अधिकारों का हनन हो रहा है, बल्कि आर्थिक, सामाजिक, नैतिक व निर्णय लेने के अधिकार का भी हनन हो रहा है, जिसके लिये निम्न सुझाव दिये जा सकते है:-

- महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाए, ताकि वे अपने 'अधिकारो' के प्रति जागरूक बन सके, तभी वे अपने 'दायित्व' का निर्वहन अच्छे तरीके से कर सकेगी।
- पारंपरिक समाजिक प्रथा, रूढ़ियों में परिवर्तन हेतु समाज में वैचारिक परिवर्तन लाया जाये।
- महिला पंच-सरपंचो से आधुनिक संचार के माध्यम से उनकी समस्याओं की जानकारी ली जाए।
- इन्हें एक टोल-फ्री नं. प्रदान किया जाये व एक महिला प्रकोष्ठ (Cell) भी महिला पंच-सरपंचो के लिये बनाया जाये, जिससे ये अपनी बात रख सके।
- इन महिला पंच-सरपंचो को भ्रमण (Tour) हेतु विभिन्न संगठन , प्राइवेट कंपनी, बैंको जहाँ भी महिलाएँ आगे आकर नेतृत्व कर रही है, वहाँ ले जाया जाए, ताकि इनके 'आत्मविश्वास' में वृद्धि हो सके।
- महिला पंच-सरपंच में नेतृत्व क्षमता विकसित करने हेतु प्रशिक्षण कार्यशाला आयोजित की जाए।
- महिला सरपंच को अपने 'अधिकार' और 'कर्तव्यों' के प्रति सचेत किया जाए, ताकि वे उसके प्रति जागरूक रहे।

उपरोक्त सुझावों को अमल में लाकर ही हम सही मायनों में महिलाओं की राजनीतिक जीवन में भागीदारी सुनिश्चित कर सकेंगे। किन्तु ऐसा नहीं है कि सभी महिलाएँ अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं कर पा रही है, शोध के दौरान इन महिला पंच-सरपंचो से उनकी उपलब्धियों की भी जानकारी ली गई। इनसे पूछा गया कि आपने अपने अब तक के कार्यकाल में क्या उपलब्धियाँ हासिल की तब उन्होंने बताया-

- गाँव की साफ-सफाई, कुओं का निर्माण कराया।
- स्वास्थ्य हेतु जन-चेतना जागृत की।
- बालिका शिक्षा व प्रौढ़ शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया।
- समाजिक कुरीतियों व अंधविष्वास उन्मूलन हेतु मुहिम शुरू की।
- 'सबकों शिक्षा' व 'सबको रोजगार' मिले इस हेतु शासन की योजनाओं का सही क्रियान्वयन करवाया।

इन उपलब्धियों के साथ ही म.प्र. के शिवपुरी जिले की ग्राम पंचायत 'वीरा' की सरपंच ब्रजकुमारी ने भ्रष्ट प्रशासनिक अधिकारी को निलंबित करवाकर भ्रष्टाचाार मुक्त व्यवस्था की स्थापना की, वहीं देवास जिले की ग्राम पंचायत 'सुरानी' की सरपंच ममता बाछनिया ने अपनी ग्राम पंचायत से जुड़े सभी चारों गाँवों में शराबबन्दी की मुहिम शुरू की।

उपरोक्त विश्लेशण के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान में बदलाव की बयार आई है। वास्तव में हमारे पुरातन सामाजिक ढांचे में एकाएक परिवर्तन संभव भी नहीं है, जैसे-जैसे महिलाओं में शिक्षा का प्रसार होगा वैसे-वैसे उनमें जागरूकता आयेगी और वे अपने अधिकारों का उपयोग कर सकेगी तथा देवास एवं शिवपुरी की तरह ऐसे कई उदाहरण समाज में दृष्टिगोचर होंगे। किन्तु शिक्षा व जागरूकता के साथ ही विभिन्न कानूनों का कठोरता से पालन करवाने हेतु राजनीतिक दृढ़ता लानी होगी व समाज में वैचारिक परिवर्तन लाना होगा, तब निश्चित ही महिलाएँ सही मायनों में 50% लोकतंत्र की प्रहरी बन सकेगी।

संदर्भ सूची :-

1. भारत का संविधान - जयनारायण पांडे (इलाहाबाद प्रकाशन)
2. मध्यप्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1993
3. जिला पंचायत कार्यालय, मंदसौर
4. योजना मई 2012, नई दिल्ली (पृष्ठ क्र. 32)
5. समाज कल्याण पत्रिका जुलाई 2013, नई दिल्ली (पृष्ठ क्र. 27)
6. दैनिक जागरण जनवरी 2013, इंदौर

****

ध्वनि प्रदूषण का मानव स्वास्थ पर प्रभाव

डॉ. मंजू राजोरिया *

विज्ञान की निरन्तर प्रगति औद्योगिकरण बढ़ती हुई जनसंख्या एवं मानव की जरुरतों ने वातावरण को प्रदुषित किया है। वातावरणीय प्रदूषण के क्रम में जलवायु, मृदा के साथ-साथ ध्वनि प्रदूषण में सम्मिलित हो गई है। ध्वनि प्रदूषण से आशय पर्यावरण में उत्पन्न होने वाले असहनीय अप्रिय शोर गुल से है जिसका स्वास्थ व जीवन यापन पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है। दैनिक जीवन में अपरिहार्य साधारण आवाजों से ऊँची आवाजे शोर कहलाती है। अनावश्यक असुविधा जनक निरर्थक आवाज की ध्वनि प्रदूषण है।

ध्वनि की अवांछनीय तीव्रता को शोर कहते है। शोर पर्यावरण प्रदूषण का ही एक रुप ही है। चूंकि यह दिखाई नहीं देता इसलिए इसे अदृश्य प्रदूषण भी कहते है। ध्वनि प्रदूषण के लिए केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा गठित कमेटी में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत कुछ मानदण्ड निर्धारित किये है। इन मान दण्डों के अनुसार ध्वनि के स्तर को विभिन्न क्षेत्रों के आधार पर वर्गीकृत किया है ओर दिन व रात में ध्वनि की अधिकतम सीमा का निर्धारण किया गया है।

ध्वनि के लिये निर्धारित मानक वायु के आधार पर

क्षेत्र श्रेणी	क्षेत्र का विवरण	ध्वनि के निर्धारित सीमा दिन के समय	डेसीवल रात्री के समय
A	औद्योगिक क्षेत्र	75	17
B	व्यवसायिक क्षेत्र	65	55
C	आवासीय परिसर	55	45
D	शांत क्षेत्र	50	40

1. दिन के समय सुबह 6 बजे से रात्रि 9 बजे तक निर्धारित किया गया है।
2. रात्रि का समय रात्रि 9 बजे से सुबह 6 बजे तक निर्धारित किया गया है।
3. शांत क्षेत्र उन स्थानों को कहते है जिनके चारों और 100 मीटर तक किसी भी प्रकार की ध्वनि विस्तारक यंत्र न लगा हो। ऐसे स्थान को अस्पताल, स्कूल, विद्यालय, कचहरी आदि।
4. सम्मिलित क्षेत्र ऐसे स्थान को कहते है जो ऊपर दी गई तालिका में वर्णित क्षेत्रों के अन्तर्गत न आते हो। इनके लिए मानक निर्धारित कमेटी द्वारा बनाये जाते है।

मनुष्य के कानों में ध्वनि की सुगमतापूर्वक सुनने की प्रकृति द्वारा निर्धारित सीमा होती है। जब ध्वनि इस निश्चित सीमा को पार कर शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव डालने लगती है तो वह ध्वनि, ध्वनि प्रदूषण की श्रेणी में आती है अर्थात जब कोई ध्वनि मंद होती है तो मधुर व कर्ण प्रिय होती है। परन्तु तेज होने पर वह शोर में बदलकर कटू कर्ण बन जाती है।

अत्याधिक शोर मानव स्वास्थ के लिए अभिशाप है। क्या अत्याधिक तीव्र ध्वनि मानव स्वास्थ को प्रभावित करती है? अत्याधिक ध्वनि प्रदूषण मानव के स्वास्थ पर कितना विपरित प्रभाव डालती है यही जानने का प्रयास इस शोध पत्र मे माध्यम से किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में इन्दौर नगर के आगर-बाम्बे रोड़ के आवागमन के साधनों से अत्यधिक व्यस्त क्षेत्र भंवरकुँआ चौराहा, गीता भवन, पलासिया व एल.आय.जी क्षेत्र में रहने वाले 60 परिवारों के 240 सदस्यों पर वहाँ से गुजरने वाले आवागमन के साधनों से होने वाले ध्वनि प्रदूषण का इन परिवारों के स्वास्थ पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

सर्वेक्षण क्षेत्र में अत्याधिक ध्वनि प्रदूषण फैलाने वाले वाहन

क्रं.	वाहन	निर्धारित सीमा डेसीबल में	सर्वेक्षित क्षेत्र में ध्वनि की सीम डेसीबल में
1	मोटर, स्कूटर, तीन पहियाँ वाहन	80	110
2	कार	82	115
3	यात्री एवं व्यावसायिक वाहन (बस)	85	120
4	यात्री एवं व्यवसायिक वाहन क्षमता 4 टन से 12 टन तक	89	125
5	यात्री एवं व्यावसायिक वाहन क्षेत्र 12 टन से अधिक	91	130

स्त्रोतः- 1. पर्यावरण संरक्षण अविनिय के अन्तर्गत निधारित मानक के अनुसार।
2. सर्वेक्षण पर आधारित।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित मानक के अनुसार निर्धारित ध्वनि की सीमा से सर्वेक्षित क्षेत्र में अधिक ध्वनि प्रदूषण पाया गया है। सर्वेक्षित परिवार के मौखिक चर्चा के अनुसार नींद में बाधा,एकाग्रता में कमी श्रवण शक्ति में कमी, ब्लड प्रेशर का रक्त से संबंधित दोष एवं महिलाओं एवं शिशुओं पर विपरित असर देखा गया है।

ध्वनि ध्वनि की तीव्रता का मानव स्वास्थ पर प्रभाव

क्रं.	ध्वनि की तीव्रता (डी. बी. में)	मानव पर ध्वनि की तीव्रता का प्रभाव	सदस्यों की संख्या
1	110	बहरापन की शुरुआत	20
2	130	घबराहट, बैचेनी, उल्टी समस्त प्रकार की कार्य विदितां प्रभावित	38
3	160	अल्प स्थायी बहरापन	58
4	-	नींद में बाधा	172
5	-	एकाग्रता में कमी	143
6	-	महिलाओं पर प्रभाव (गर्भवती)	5
7	-	शिशुओं पर प्रभाव	8
8	200 से अधिक	पागलपन की स्थिति मृत्यु की सर्वाधिक सम्कालन	11

स्त्रोत (1) पर्यावरणीय क्षति के प्रभाव का मुल्यांकन - वायु, जल, मृदा, ध्वनि स्त्रोत। पृ. 249

* सहायक प्राध्यापक, समाज शास्त्र, शासकीय कन्या महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत

ध्वनि प्रदूषण के प्रभावः– अत्याधिक शोर स्वास्थ के लिए घातक है इसे धीमा जहर माना गया है। अध्ययन के द्वारा मानव के स्वास्थ पर जो प्रभाव परिलक्षित हुवे है वो निम्नानुसार हैः-

1. **श्रवण शक्ति का ह्रासः–** मानव मस्तिष्क की बारह नसों में से एक नस सुनने की होती है इसे स्वर तंत्रिका कहते है। स्वर तन्त्रिका के दो भाग है कर्णावत तन्त्रिका व प्रमाण तंत्रिका ध्वनि तरंगों को कान से मस्तिष्क तक पहुचाँती हैं। तीव्र शोर का परिणाम इस नस पर इतना घातक होता है कि श्रवण सामर्थ पूर्णतः समाप्त हो जाती है या कम हो जाती है। अधिक ध्वनि का अभ्यस्थ हो जाने पर धीमि आवाजों को सुनने की क्षमता कम हो जाती है। ध्वनि दाब स्तर की एक विशेष बात यह है कि डेसिबल में जरा सा परिर्वतन गंभीर प्रभाव उत्पन्न करता है। अध्ययन क्षेत्र में शामिल परिवारों में से 50% लोग या तो श्रवण शक्ति खो चुके है या बहरेपन का शिकार है और कुछ के कान के पर्दों पर असर हुआ है।
2. **नींद में बाधाः–** तीव्र ध्वनी से नींद में बाधा उत्पन्न होती है ओर मानव शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अच्छी तरह शारीरिक एवं मानसिक कार्य करने के लिए पूरी नींद आवश्यक है। नींद न होन पर व्यक्ति का चिड़चिड़ा होना, हृदय की धड़कन बड़ना व व्यक्ति व्याकुल एवं क्रोधित हो जाता है। मानसिक रोगी अधिक क्रोध से परेशान हो जाते है।
3. **एकाग्रता में कमीः–** एकाग्र होकर पड़ने में शोर बहुत बाधक है। शोर मनुष्य की विचार धारा को क्षीण करके कार्य करने की क्षमता को कम कर देता है। जससे तनाव उत्पन्न होता है। ध्वनि प्रदूषण के अन्तर्गत 200 अलग-अलग आयु वर्गो के व्यक्तियों से इस सम्बंध में सपर्क किया ओर उनसे चर्चा करने पर 143 व्यक्ति ध्वनि व प्रदूषण से पिड़ित पाये गये। जिनमें 61 (25-50 आयुवर्ग के) महिला, पुरुष तथा 33 विद्यार्थी (10-25 आयुवर्ग) एवं (59-75 आयुवर्ग के) वृद्ध महिला, पुरुष शामिल है। 60 प्रतिशत विद्यार्थीयों ने एकाग्रता भंग होने की शिकायत की है। अत्याधिक ध्वनी प्रदूषण से मानसिक तनाव, चिड़चिड़ापन, कार्य करने में बाधा, बोलचाल व्यवहार में परिवर्तन देखा गया है।
4. **हृदय एवं रक्त सम्बंधित दोषः–** शोर से खुन में कोलेस्ट्राल की मात्रा बढ़ जाती है जिससे ब्लड प्रेशर बढ़ सकता है। सामान्य ध्वनि से खुन की छोटी नली अवरुद्ध हो जाती है। जिससे थकान व नाड़ी मंडल में कमजोरी आ जाती है।
5. **शरीर तंत्र पर प्रभावः–** उच्च शोर से तंत्रिकाऐं प्रभावित होती है मानव की पांचन ग्रंथियाँ शिथिल हो जाती है। आहार नलीं में गड़बड़ी, अल्सर व आतों के रोग व मांसपेशियाँ में तनाव उत्पन्न होता है।

ध्वनि प्रदूषण को रोकने के लिए सुझावः

1. विभिन्न ध्वनि की तीव्रता को कम रखा जाये।
2. अधिक शोर वाले स्थानों पर कानों में प्लग का उपयोग करना चाहिये।
3. यातायात के नियमों का पालन नहीं करने पर अधिक जुर्माना रखा जाये।
4. मुख्य मार्ग पर बने घरों में काँच की खिड़कियाँ लगवानी चाहिये।
5. लाउड स्पीकर बैंड का उपयोग नियंत्रित किया जाना चाहिये।
6. स्कूल, अस्पताल, ऑफिस के आस-पास वाहन की गति पर नियंत्रण रखा जाये।
7. स्कूल कॉलेजों में ध्वनि प्रदूषण की शिक्षा दी जावे ।
8. धीमें बोलने की आदत डाले व तीव्र ध्वनि से दूर रहने का प्रयास करें ।
9. विभिन्न आयोजनों में अधिक शोर करने पर नियंत्रण किया जाना चाहिये।
10. इसका समाधान व्यक्तिगत, सामुहिक, सामाजिक, सरकारी व कानुनी स्तर पर किया जाना चाहिए।

निष्कर्षः– ध्वनि प्रदूषण को कम करने ओर उससे बचने के लिए हर स्तर पर बहुत चिंतन की आवश्यकता है। क्योंकि प्रदूषण के क्षेत्र में धीमें-धीमें जन साधारण की उपेक्षा पाकर इसमें जाने अनजाने में निरन्तर वृद्धि हो रही है। ध्वनि प्रदूषण एक ज्वलन समस्या मानकर उससे निपटने की व्यापक व ठोस कार्य योजना शासन को बनाना चाहियें। इससे स्वयंसेवी संगठनों ओर गैर सरकारी संगठनों, स्वास्थ संगठनों को भी सहयोग करना चाहियें। ध्वनि प्रदूषण विरोधी जन जागृती ही स्वस्थ मानव समाज के हित में है। अन्यथा ध्वनि प्रदूषण के परिणाम भयानक ओर घातक होंगे।

संदर्भ सूचीः–

1. पर्यावरण शिक्षा - डॉ. एम. के. गोलय पृ. 188-189।
2. अर्थ शास्त्र - डॉ. एस. एम. शुक्ला एवं जे. पी. मिश्रा पृ. 245-247।
3. पर्यावरण परिस्तितियाँ - प्रो. विजय कुमार तिवारी पृ. 278-285।
4. अर्पण समर्पण - लेख डॉ. विकास चौधरी।

****

ग्लोबल वार्मिंग का गहराता संकट

डॉ. प्रार्थना निगम * प्रो. अनामिका प्रजापति **

''वैश्विक जलवायु की सुरक्षा किसी देश विशेष की समस्या नहीं है, यह सम्पूर्ण विश्व की समस्या है और इसके लिए साझा रणनीति अपनाने की जरूरत है।'' – *बान की मून (संयुक्त राष्ट्र महासचिव)*

ग्लोबल वार्मिंग अर्थात् वैश्विक तापमान, आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या बन चुका है। इससे न केवल मनुष्य वरन् धरती पर रहने वाला प्रत्येक प्राणी त्रस्त है। इस समस्या को सुलझाने के लिए दुनिया भर में प्रयास किये जा रहे हैं, लेकिन समस्या कम होने के बजाय साल दर साल बढ़ती ही जा रही है। अगर हम अब भी नहीं संभले तो भविष्य और भी भयावह हो सकता है। ग्लोबल वार्मिंग वास्तव में 18वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति का परिणाम् है। इसका प्रारंभ 18वीं सदी के अंत में यूरोप से हुआ था और 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में यह पूर्वी यूरोप से अमेरिका तक तेजी से फैल गया था। औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया में जीवाष्म ईधन के लगातार प्रयोग से वातावरण में कार्बनडाई ऑक्साइड की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती गयी। इसका सीधा परिणाम् पृथ्वी की गरमाहट के रूप में हमारे सामने है। पृथ्वी के लगातार बढ़ते हुए औसत तापमान को ग्लोबल वार्मिंग या भूमण्डलीय ऊष्मीकरण कहते हैं। ग्लोबल वार्मिंग या भूमण्डलीय ऊष्मीकरण मुख्यत: वायुमण्डल में ग्रीनहाउस गैसों की बढ़ती सान्द्रता का परिणाम है।

पृथ्वी के चारों ओर का वायुमण्डल ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण गर्म होता है। यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। Co_2, मीथेन, क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC), नाइट्रस ऑक्साइड प्रमुख ग्रीन हाउस गैसें हैं। यह गैसें वायुमण्डल की निचली परत (ट्रोफोस्फेयर) तक सीमित रहती है तथा वायुमण्डल में एक मोटी परत या आवरण बना लेती है, जिसमें सौर विकिरण प्रवेश तो कर लेता है, लेकिन वापस नहीं जा पाता। सूर्य की ऊष्मा से गर्म होने के बाद पृथ्वी जब ठण्डी होने लगती है, तब ऊष्मा पृथ्वी से बाहर विसरित होती है, लेकिन Co_2, CFC, नाइट्रस ऑक्साइड, मीथेन आदि अन्य ऊष्मारोधी गैसें इस ऊष्मा का कुछ भाग अवशोषित कर लेती हैं एवं शेष बची ऊष्मा धरातल को वापस कर देती हैं। इस प्रक्रिया में वायुमण्डल के निचले हिस्से में अतिरिक्त ऊष्मा एकत्र हो जाती है और पृथ्वी का वातावरण गर्म होने लगता है। गौर तलब है कि मनुष्यों, प्राणियों और पौधों के जीवित रहने के लिए कम से कम 16 डिग्री सेल्सियस तापमान आवश्यक होता है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि ग्रीन हाउस गैसों में बढ़ोतरी होने पर यह आवरण और भी मोटा हो जाता है और सूर्य की अधिक किरणों को रोकने लगता है और फिर यहीं से शुरू हो जाते हैं ग्लोबल वार्मिंग के दुष्प्रभाव। ग्लोबल वार्मिंग के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार मनुष्य और उसकी गतिविधियां है। मनुष्य जनित इन गतिविधियों के कारण ही Co_2, CFC, नाइट्रस ऑक्साइड, मीथेन आदि ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में बढ़ोतरी हो रही है जिससें इन गैसों का आवरण सघन होता जा रहा है। जिससे पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है। वाहनों, हवाई जहाजों, बिजली बनाने वाले संयंत्रों, उद्योगों इत्यादि से होने वाले गैसीय उत्सर्जन के कारण कार्बनडाईआक्साइड में बढ़ोतरी हो रही है। जंगलों का बड़ी संख्या में विनाश इसकी दूसरी वजह है। जंगल कार्बनडाइ ऑक्साइड की मात्रा को प्राकृतिक रूप से नियन्त्रित करते हैं, लेकिन इनकी बेतहाशा कटाई से यह प्राकृतिक नियन्त्रक भी हमारे हाथ से छूटता जा रहा है। ग्लोबल वार्मिंग की एक अन्य वजह सीएफसी है जो रेफ्रीजरेटर्स, अग्निशामक यंत्रों में प्रयोग की जाती है। यह धरती के ऊपर बने प्राकृतिक आवरण ओजोन परत को नष्ट करने का काम करती है। ओजोन परत सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणों को धरती पर आने से रोकती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि ओजोन परत में एक बड़ा छिद्र होने के कारण पराबैंगनी किरणें सीधे धरती पर पहुंच रही हैं जो धरती के तापमान का बढ़ा रही हैं और जिसका परिणाम् ग्लोबल वार्मिंग के रूप में सामने आ रहा है।

ग्लोबल वार्मिंग का प्रमुख कारण वायु प्रदूषण की समस्या है जो Co_2, उज जैसी गैसों की बढ़ती मात्रा के कारण भयानक होती जा रही है। Co_2, Co जैसी, 47 प्रतिशत वायु प्रदूषण के लिए जिम्मेदार हैं इन गैसों की कुल मात्रा का 42% यातायात के साधनों से 5% जीवाष्म ईधन से 21% ईधन से, 8% वनों में लगी आग से 14% उद्योग से तथा 10% अन्य साधनों से वायुमण्डल में आता है।

प्रदूषण के लिये जिम्मेदार गैसें

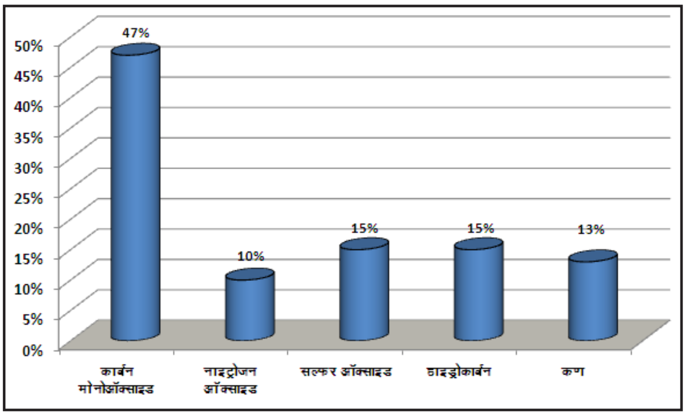

विश्व की कुल उत्सर्जित Co_2 का 22% उत्सर्जक अमेरिका है जबकि चीन 17%, भारत 4.1%, रूस 6%, जापान 4.7%, आस्ट्रेलिया 1.4% तथा यूरोप 17.2% Co_2 उत्सर्जित कर रहे हैं। Co_2 गैस वायुमण्डल का ताप बढ़ाने क लिए 50% तथा CFC 20% जिम्मेदार है। जिस ग्रह पर Co_2 की मात्रा जितनी अधिक होगी वहां का वायुमण्डल उतना ही अधिक गर्म होगा। मंगल ग्रह पर Co_2 की मात्रा कम होने के कारण यह ग्रह बर्फ से ढका हुआ है।

ग्लोबल वार्मिंग के दुष्प्रभाव –

पृथ्वी का बढ़ता तापमान : युनिवर्सिटी ऑफ क्वीसलैंड की एक स्डटी के अनुसार हिरोशिमा पर गिरे परमाणु बम ने धरती का तापमान जितना बढ़ाया, हर सेकेण्ड उसका चार गुना तापमान ग्लोबल वार्मिंग की वजह से बढ़ रहा है। हर सौ साल में दुनिया का तापमान 0.7 डिग्री सेल्सियस की दर से बढ़ रहा है, तो भारत में इसकी रफ्तार तीन गुनी है। भारत में सौ साल में 1.7 डिग्री सेल्सियस की दर से बढ़ रहा है। एक अन्य अनुमान के अनुसार वर्ष 2080 तक

* सहायक प्राध्यापक, (समाजशास्त्र), शासकीय माधव महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक, (समाजशास्त्र), सुभद्रा शर्मा शासकीय कन्या महाविद्यालय, गंजबासौदा, जिला–विदिशा (म.प्र.) भारत

पृथ्वी के तापमान में 1 डिग्री से लेकर 3.5 डिग्री तक की वृद्धि की संभावना है। 1998 को पिछले हिमयुग के बाद का सबसे गर्म वर्ष माना गया है। अब तक के दस सर्वाधिक गर्म वर्षो में आठ पिछले दशक में पडे हैं।

ग्लेशियर का पिघलना एवं समुद्री जलस्तर में वृद्धि : सामान्य तौर पर बर्फ के किसी विशाल भण्डार को हिमनद या ग्लेशियर कहते है। सदियों से हमारी पृथ्वी के कुछ खास स्थानों पर लगातार हिमपात होते रहने से बर्फ की जो ठोस परते सतह, पर्वतों, घाटियों और समुद्रों के किनारे पर बन जाती है वे मूलत: ग्लेशियर ही है। इस तरह ग्लेशियर धरती की सबसे प्राचीन और विशाल धरोहर में से है। गरम होती धरती के कारण ग्लेशियर पिघल रहे हैं। 400 साल पहले केदारनाथ मंदिर के इर्द-गिर्द ग्लेशियर की ही हुकूमत थी। धीरे-धीरे ये ग्लेशियर पिघल कर सिमट गये हैं।

हिमाचल प्रदेश में लाहौल स्फीति का नौ किलोमीटर लम्बा छोटा शिन्ग्री ग्लेशियर पिछले 50 सालों में एक किलोमीटर तक पिघल चुका है। अगर हालात नहीं सुधरे तो चेनाब नदी का यह महत्वपूर्ण ग्लेशियर जल्द ही खत्म हो जायेगा। हिमाचल का सबसे बड़ा ग्लेशियर होने के बावजूद गंगोत्री भी बढ़ती गर्मी का ताप झेल नहीं पा रहा। गंगा के पानी का स्रोत ये ग्लेशियर 30 सालों में डेढ़ किलोमीटर तक पिघल चुका है। दुनियां के ताजे पानी का 75 प्रतिशत भाग इन ग्लेशियरों में बर्फीले रूप में विद्यमान है इसलिए ये समुद्र का जलस्तर बढ़ने से रोकते हैं, इन्हें छू कर बहने वाली हवा पृथ्वी का तापमान नियन्त्रित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

ग्लेशियर पिघलने के सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव के रूप में समुद्र का जलस्तर करीब 3 फीट ऊपर आने से बांग्लादेश के करीब सात करोड़ लोगों को अपनी मूल जगह से हटना पड़ेगा। करीब डेढ़ फीट की वृद्धि से लूसिआना वेटलैण्ड का लगभग 75 प्रतिशत हिस्सा नष्ट हो जायेगा और सिर्फ चार इंच जलस्तर बढ़ने से कई टापू जलमग्न हो जायेंगे। IPCC की रिपोर्ट के अनुसार इस शताब्दी के अंत तक समुद्र के जलस्तर में 4 से 35 इंच तक की वृद्धि हो सकती है और जलस्तर में बढ़ोतरी के साथ-साथ समुद्रों की सतह बढ़ने से प्राकृतिक तटों का कटाव शुरू हो जायेगा जिससे एक बड़ा हिस्सा डूब जायेगा।

ग्लेशियरों को लेकर संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण के एक कार्यक्रम में यह चेतावनी दी थी कि ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमालय क्षेत्र के 15000 ग्लेशियर और 9000 ग्लेशियर लेक में से आधे वर्ष 2050 और अधिकतर 2100 तक समाप्त हो जाएंगे। इस बात की पुष्टि अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने भी की है। रिपोर्ट कें अनुसार ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिमालय क्षेत्र के ग्लेशियर प्रतिवर्ष 10 से 60 मीटर तक सिकुड़ रहे हैं और कुछ तो 74 मीटर तक सिकुड़े हैं। इसरो ने पुष्टि की है कि भारतीय क्षेत्र में 2184 हिमनद सिकुड़ रहे हैं जबकि 435 बढ़ रहे हैं।

नदियों पर प्रभाव : पूरे हिमालय में छोटा शिन्ग्री जैसे लगभग 1500 ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। इन ग्लेशियरों का भविष्य तो संकट में ही है साथ ही खतरे में है इनसे निकलने वाली गंगा, सतलुज, व्यास जैसी नदियां भी जिनके पानी से पहाड़ी और मैदानी इलाकों के करोड़ों लोग जिंदा है। ग्लेशियर ज्यादा पिघलेंगे तो नदी का पानी बढ़ेगा। भाखड़ा बांध में इस बार सतलुज का पानी पिछले साल के मुकाबले दो गुना आया।

बीबीएमबी के सिंचाई सदस्य एस.एल. अग्रवाल के अनुसार ग्लेशियर हमारी नदियों के लिए काफी जरूरी है। इन पर हो रहे बदलाव पर नजर रखने के लिए हम एक नया प्रोजेक्ट शुरू कर रहे हैं। एक तरफ जहां सतलुज में जलस्तर बढ़ रहा है, वहीं मानसून में रोद्र रूप के लिए बदनाम व्यास नदी बरसात खत्म होते ही पहाड़ी नाले में बदल जाती है। व्यास में बरसात और रोहतांग दर्रे के झरनों का पानी आता है। बर्फबारी कम होने से ये झरने सूखने लगे हैं। व्यास नदी सिर्फ बरसाती नदी बनकर रह गयी है। साफ है सतलुज और व्यास दोनों नदियां एक-दूसरे से एक दम उलट बर्ताव कर रही है।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव : ग्लोबल वार्मिंग का प्रतिकूल प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। बढ़ते हुए तापक्रम के कारण पाचन संस्थान संबंधी, न्यूरोलॉजीकल, लीवर तथा त्वचा संबंधी बीमारियों का होना आम बात है। गर्मियों में उच्चतापक्रम तथा निर्जलीकरण की वजह से शरीर में दर्दमय किडनी स्ओन हो जाता है। बढ़ते तापक्रम से जलाशय, पोखर तथा रूके हुए पानी का तापक्रम उच्च हो जाता है जिससे इस पानी में मच्छरों को पनपने के लिए अनुकूल वातावरण मिल जाता है और मलेरिया, डेंगू, इनसिफेलाइटिस, यलो फीवर आदि बीमारियां फेलती है। बढ़ते तापमान के कारण गर्मियों में गर्म हवाओं की आद्रता कम होती जा रही है, जिसके कारण हर वर्ष कई लोग मौत का शिकार हो जाते हैं।

पशु-पक्षियों एवं वनस्पतियों पर प्रभाव : गर्मी बढ़ने के साथ-साथ पशु-पक्षी एवं वनस्पतियां धीरे-धीरे उत्तरी और पहाड़ी इलाकों की ओर प्रस्थान करेंगे, लेकिन इस प्रक्रिया में कुछ अपना अस्तित्व ही खो देंगे। संयुक्त राष्ट्र सहस्राब्दी पर्यावरण आकलन 2005 के अनुसार पृथ्वी को प्राणवान रखने वाले घटक गड़बड़ा गए है। 30% मछलियां, 25% सरीसृप, 12%, पक्षी, 24% स्तनधारी की संख्या में कमी हुई है। भारत की 10% जैव सम्पदा खत्म होने के कगार पर है। इंटरनेशनल यूनियन ऑफ कंजरवेशन ऑफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेस के अनुसार 16,306 जीव-जन्तु और वनस्पतियों की प्रजातियां लुप्त होने के कगार पर है।

शहरों पर प्रभाव : इसमें कोई शक नहीं की गर्मी बढ़ने से ठंड भगाने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली ऊर्जा की खपत (कंजम्शन,उपयोग) में कमी होगी, लेकिन इसकी पूर्ति एयर कंडिशनिंग में हो जाएगी। घरों को ठण्डा करने के लिए भारी मात्रा में बिजली का इस्तेमाल करना होगा। बिजली का उपयोग बढ़ेगा तो उससे भी ग्लोबल वार्मिंग में इजाफा होगा।

समुद्री चक्रवातों की तीव्रता : बढ़ता ताप निमन्त्रण देता है खतरनाक समुद्री चक्रवातों को। समुद्री चक्रवात हरिकेन्स सतह के गर्म पानी में और भी भयानक रूप ले लेता है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण समुद्री सतह का ताप बढ़ता है जिससे हरिकेन्स जैसे समुद्री चक्रवातों की गति, शक्ति और तीव्रता बढ़ जाती है। टोरोन्डो नामक चक्रवात वहां बनते है, जहां वायुमण्डल का निचला भाग ऊपर के भाग से अधिक गर्म होता है। यह चक्रवात वायुमण्डल के निचले भाग से ऊर्जा को ऊपरी भाग में पहुंचा देता है। समुद्री चक्रवात से अमरीकी नगर न्यू आर्लियंस ध्वस्त हो चुका है।

फसल चक्र की अनियमितता : वर्ल्ड वाइड फोरम की रिपोर्ट के अनुसार अण्टार्कटिका की 40% बर्फ कम हो चुकी है, विश्व बैंक के अधिकारियों और वैज्ञानिकों के अनुसार धरती का तापमान बढ़ने के कारण सदी के अन्त तक दक्षिण एशिया की खाद्यान्न उत्पादन क्षमता समाप्त हो सकती है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण फसल चक्र भी अनियमित हो जायेगा, इससे कृषि उत्पादकता भी प्रभावित होगी।

ग्लोबल वार्मिंग से बचने के उपाय :

- सभी देश क्योटो संधि का पालन करे।
- यह जिम्मेदारी केवल सरकार की ही नहीं है वरन् हम सभी पेट्रोल, डीजल और बिजली का उपयोग कम कर हानिकारक गैसों के उत्सर्जन को कम कर सकते हैं।
- जंगलो की कटाई को रोकना होगा। हम सभी अधिक से अधिक पेड़

लगाएं इससे भी ग्लोबल वार्मिंग के असर को कम किया जा सकता है।

- टेक्नीकल डेवलपमेंट से भी इससे निपटा जा सकता है। हम ऐसे रेफ्रीजरेटर्स बनाएं जिनमें सीएफसी का इस्तेमाल न होता हो और ऐसे वाहन बनाएं जिनसे कम से कम धुंआ निकलता हो।
- अक्षय ऊर्जा के उपायों पर ध्यान देना होगा अर्थात् कोयले से बनने वाली बिजली के बदले पवन ऊर्जा, सौर ऊर्जा और पनबिजली पर ध्यान दिया जाये तो आबोहवा को गर्म करने वाली गैसों पर नियन्त्रण पाया जा सकता है।
- मिसाइली परीक्षण पर रोक लगाना।
- पॉलीथीन बैग पर प्रतिबंध।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि भूमण्डलीय तापन अर्थात् ग्लोबल वार्मिंग पर लगाम कसने के लिए यह आवश्यक है कि उपरोक्त उपायों को समन्वित प्रयासों द्वारा सफल बनाया जाये। आज सभी देशो को अपने निजी हितों को त्याग कर वैश्विक हित पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। गर्म होती धरती को बचाने के लिए यदि हमने ठोस उपाय न किये तो संपूर्ण पृथ्वी के लिए घातक होगा।

सन्दर्भ संकेत –

1. प्रतियोगिता दर्पण/फरवरी/2010/1275
2. प्रतियोगिता दर्पण/अक्टूबर/2007/505
3. परीक्षा मंथन, मंथन प्रकाशन, इलाहबाद
4. डॉ. बालकृष्ण प्रजापति एवं डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंहदेव, ''संस्कृत वाड्मय में पर्यावरण'' सरोज प्रकाशन, सागर (म.प्र.), दिसम्बर-2013
5. hi.wikipedia.org/wiki/ भूमण्डलीय ऊष्मीकरण
6. hindi.indiawaterportal.org/ग्लोबल वार्मिंग का बढ़ता खतरा
7. www.bbc.co.uk/hindi/regionalnews/... 070407_gl obal_ warming. shtml?
8. khabar.ibnlive.in.com/news/103142/1?
9. www.deshbandhu.co.in/newsdetail/1082/10/8?
10. www.samaylive.com/.../global-warming-glaciers-uttarakhand-kedarnath-...?

****

युवा वर्ग में आत्महत्या एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. मंजू राजोरिया *

दुर्खीम के अनुसार ''आत्महत्या शब्द मृत्यु की उन समस्त घटनाओं के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो स्वंय मरने वाले की सकारात्मक या नकारात्मक क्रिया का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होती है, जिसके भावी परिणाम (मृत्यु) को वह जानता है।''

ऐसी मृत्यु को ही आत्महत्या माना जायेगा जो मरने वाले की स्वंय की क्रिया का परिणाम होती है। व्यक्ति स्वंय जानबूझकर अपने जीवन का अंत कर लेता है। मृत्यु उसी की क्रिया का परिणाम है।

वर्तमान में आत्महत्या करना आम बात हो गई है। प्रतिदिन समाचार पत्रों में आत्महत्या की खबर छपती है। आत्महत्या करने वालों में उच्च शिक्षण संस्थानों के युवा प्रभावित है। कॅरियर को लेकर देश के मेधावी छात्रों की मौतें भी इसी तरह से है। हर साल आई.आई.टी., एम्स जैसे उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश पा चुके एवं प्रवेश हेतु प्रयासरत् छात्र तनाव में ऐसा कर रहे है।

आत्महत्या की खबर पढ़ने-सुनने पर दिल व दिमाग पर एक विचार कौंध जाता है कि ऐसा क्यों हुआ, क्या कारण था जिसके लिये आत्महत्या जैसा कदम उठाना पड़ा।

वर्तमान में आत्महत्या समाज की प्रमुख समस्या है। आज का युवा वर्ग इसकी चपेट में आ रहा है, बड़ी संख्या में युवा वर्ग जिनकी आयु 15 से 29 वर्ष है, आत्महत्या का शिकार है। आत्महत्या समाजशास्त्रियों के लिये एक चुनौती है। अभी तक इसको रोकने के कोई ठोस प्रयास ईजाद नही हुये है।

प्रस्तुत शोध का प्रमुख उद्देश्य है कि आत्महत्या के क्या कारण है? शोधपत्र में द्वितीयक संमकों को विश्लेषण का आधार बनाया गया एवं आत्महत्या संबंधी कारणों का विश्लेषण किया गया है। देश में हर वर्ष सवा लाख से अधिक लोग आत्महत्या करते है। इनके डेढ़ से दो प्रतिशत युवा होते है। 2012 में कुल आत्महत्या में युवा 15 से 29 वर्ष के 34.4% है। आत्महत्या करने वाले कुल युवाओं की संख्या 41,793 है इनमें से 5,246 विद्यार्थी और 3,144 बेरोजगार एवं 4,052 प्रायवेट नौकरी करने वाले थे।

भारत में आत्महत्याएं वर्ष 2012 निम्न तालिका द्वारा दर्शायी गई है

वर्ष	आत्महत्या
2006	1,18,112
2007	1,22,637
2008	1,25,017
2009	1,27,151
2010	1,34,599
2011	1,35,445

स्त्रोत - नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो।

आत्महत्या के कारण है -

1. **प्रतिस्पर्धा :-** शिक्षा में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा बढ़ने से युवाओं पर दबाव बढ़ रहा है। मेडिकल, आय.आय.टी. जैसे उच्च संस्थानों में प्रवेश पाने हेतु प्रतिस्पर्धा ज्यादा टफ है। प्रवेश एवं कोर्स के दौरान और फिर जॉब प्लेसमेंट में प्रतिस्पर्धा बढ़ गई है।
2. **अवसाद :-** हर व्यक्ति के जीवन में कई बार उदासी का अनुभव करते है। जब इस तरह के भाव अधिक समय तक और बार-बार रहते है, तब व्यक्ति अवसाद डिप्रेशन से प्रभावित हो सकता है। डिप्रेशन में व्यक्ति भावनात्मक, शारीरिक रूप से कमजोर हो जाता है। जिन्दगी व भविष्य के बारे में निराशाजनक विचार आते है। अकेलापन अच्छा लगना व बहुत कम बात करना पसंद करते है।
3. **व्यक्तिगत त्रासदी :-** व्यक्तिगत त्रासदी एक बड़ा कारण हो सकता है। घर-परिवार में किसी की मौत या हादसा। जो युवा इससे गुजर रहे होते है वह पढ़ाई के दौरान काफी व्यथित होते है और उन हालात से उबर न पाने के कारण मौत को गले लगा लेते है।
4. **हीनता :-** युवाओं में हीनता की भावना इस तरह घर कर जाती है कि वह उससे उबर नहीं पाते है। ग्रामीण पारिवारिक पृष्ठभूमि में पले-बड़े युवा शहरी रहन-सहन, भाषा, संस्कृति से हीनता महसूस करते है। इसके चलते वह खुद को इस माहौल में ढाल नहीं पाते है।
5. **बेरोजगारी :-** बेरोजगारी आत्महत्या का एक उदाहरण है। उच्चशिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् युवाओं को उचित वेतन पर जॉब नहीं मिल पाती है। सन् 2012 में 1,731 युवाओं द्वारा आत्महत्या का कारण बेरोजगारी था।
6. **प्रेम संबंधों में असफलता :-** मनचाहा साथी नहीं मिलने पर एवं प्रेम में असफल होने पर भी आत्महत्या होती है। सन् 2012 में 3,849 आत्महत्याऐं प्रेम में असफल युवाओं द्वारा की गई।
7. **परीक्षा में असफलता :-** वर्तमान में पढ़ाई के प्रति बढ़ते दबाव, माता-पिता की अति महत्वाकांक्षा के कारण यदि बच्चा पूर्ण नहीं कर पाता है। परीक्षा में असफल होता है तो वह उन परिस्थितियों से सामंजस्य नहीं कर पाता है। ज्यादातर आत्महत्याऐं 10वीं, 12वीं के परिणाम आने पर होती है। अत: बच्चा उस स्थिति का सामना नहीं कर पाता है और आत्महत्या की ओर अग्रसर होता है। सन् 2012 में इनकी संख्या 2,246 तक पहुँच चुकी है।

इस संदर्भ में बैंगलोर के सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन संस्थान के प्रो. आर.एस.देशपाण्डे का कथन है कि ''कोई भी आत्महत्या किसी एक अकेली घटना के कारण नहीं होती वह किसी व्यक्ति को तनाव देने वाले परिणाम होती है जो अंतत: एक ट्रिगर तक पहुंचती है जो इसकी और धकेलता है। जो यह दर्शाता है कि इस प्रवृत्ति के लिये केवल यही एक कारण उत्तरदायी नहीं है।''

सुझाव :- आत्महत्या हर दशा में विचलित करने वाला पाप होता है और वह युवा वर्ग में हो तो सारे समाज के लिये अपराध हो जाता है। अत: आत्महत्या को रोका जाना अति आवश्यक है। इस हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत है -

1. उच्च संस्थानों में जहाँ से देशे को होनहार इंजीनियर, वैज्ञानिक मिल रहे है वहाँ छात्रों पर पड़ने वाले अतिरिक्त दबाव को कम करने के लिये कोई इंतजाम नहीं है। जरूरत है कि दबाव को दूर करने के लिये कार्यक्रम चलाये जाये। पढ़ाई बोझिल न हो, चढ़ाई को रोचक बनाया जाये।
2. अभिभावक बच्चों से लगातार बातचीत करें उनकी बातों को ध्यान से सुनें और समझे। हर मुश्किल में बच्चों का साथ दें। सैर सपाटे या फिल्म

* सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र म.पु.रा.प. शासकीय कन्या महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत

जैसे मनोरंजन की व्यवस्था करें।

3. खेल, धार्मिक गतिविधियों या किसी अन्य रूचि के काम में लगाएं, भावनात्मक समर्थन, धैर्य, समझ, स्नेह व प्रोत्साहन दे ताकि वह अवसाद से ग्रस्त न हो।
4. प्लेसमेंट की व्यवस्था इस प्रकार से हो कि विद्यार्थी को उचित जॉब मिल सकें। प्लेसमेंट हेतु ट्रेनिंग, कोचिंग का प्रयत्न किया जाये।
5. मनोचिकित्सक की मदद से अवसाद ग्रस्त बच्चों की चिकित्सा कराई जाये। एकांकीपन को दूर करने का प्रयत्न किया जाये।
6. बच्चों में डायरी लिखने की आदत विकसित किया जाये ताकि वह मन की बातों को लिखकर मन को हल्का कर सके। बच्चों में मेडिटेशन की आदत को विकसित करने से भी उन्हें हर विपरीत परीस्थितियों से लड़ने की क्षमता का विकास हो।
7. शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया जाये। शिक्षा द्वारा चरित्र बुद्धि और विचारों को शुद्ध किया जा सकता है।

निष्कर्ष :- युवा वर्ग आत्महत्या के विषय में समाज चेतन्यता कम है, चिंता तो जरा भी नहीं है। आवश्यकता इसे सामाजिक अभिशाप समझने की है। इस समस्या का समाधान प्राथमिकता से होगा। युवाओं में आत्मविश्वास बढ़ाने, अवसाद को रोकने, मानसिक दबाव व तनाव को कम करके, दृढ़ भावनात्मक संबंध, आध्यात्मिक, नैतिक मूल्यों की शिक्षा से आत्महत्या की स्थिति को टाला जा सकता है और युवा वर्ग को इस अकाल मृत्यु से बचाया जा सकें।

संदर्भ ग्रंथ :-

1- Durkbeim The Suicide - P 105
2- R. Bierstelt - The Social Order P 135
3. डॉ. एम. कृष्णन, चैयरमेन आय.आय.टी., कानपूर - लेख (पत्रिका) न्यूज पेपर दिनांक 09 फरवरी, 2014।
4. डॉ. अनिल तांबी, लेख (पत्रिका) न्यूज पेपर दिनांक 09 फरवरी, 2014।
5. डॉ. गुप्ता/डॉ. शर्मा - समाजशास्त्र (आत्महत्या)।

****

बदलते मूल्य एवं वृद्धावस्था

डॉ. राजश्री शाह *

मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाऐं एवं लक्ष्य है, जिनका अन्तरीकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है। सामाजिक विज्ञानों में मूल्यों को क्रियाशील के रूप में व्यक्त किया है। सामाजिक मूल्य वे लक्ष्य व आदर्श है, जिनके आधार पर विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों तथा विशयों का मूल्यांकन किया जाता है। सामाजिक जीवन में व्यक्ति इन मूल्यों की पारस्परिक अन्त:क्रियाओं से सीखता है और यह सामाजिक जीवन उसकी परिस्थितिगत सामाजिक नैतिक स्थिति द्वारा निर्धारित होता है। आज भारतीय समाज में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव देखा जाता है। यहां के परिवारों में विदेशी संस्कृति की झलक देखी जाती है। विशेषकर महानगरों में। भारतीय समाज एवं संस्कृति में परिवर्तन के अनेक कारक जैसे औद्योगिकरण, नगरीकरण शिक्षा आदि। इन सभी का भारतीय संयुक्त परिवार, जातिप्रथा आदि पर विशेष प्रभाव पड़ा है।

संयुक्त परिवारों का विघटन दिन प्रतिदिन होता जा रहा है। आज तो ऐसी स्थिति है कि बच्चे माता-पिता से अलग होना नहीं भी चाहते पर मजबूरीवश उन्हें अलग होना ही पड़ता है। प्रथम तो बच्चों की शिक्षा दूसरा उनके द्वारा नौकरी करना। स्वत: ही संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगता है। भारतीय समाज का अनमोल निधि संयुक्त परिवार के विघटन से सभी संस्थाऐं प्रभावित हुई है। विशेषकर विघटन का प्रभाव आज घर के बुजुर्गो पर दिखाई देता है।

जब परिवार संगठित थे तब परिवार के मुखिया द्वारा समस्त निर्णय लिऐ जाते थे उनका मान सम्मान किया जाता था, किंतु आज परिस्थितियां विपरित है। जैसे-जैसे नगरीकरण धर्मनिरपेक्षता बढ़ी है, सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था में आयु लिंग नातेदार, वृद्धजनों का प्रभाव कम होता जा रहा है, त्रीवगति से परिवर्तित समाज में वृद्धों की समस्याओं में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। आधुनिक परिवर्तनों के कारण सामाजिक संरचना और परिवार के मूल्यों में जो परिवर्तन हो रहे है, उनके कारण वृद्धों की समस्याओं में इजाफा हुआ है 1950 में 60 वर्ष या इससे अधिक आयु के वृद्धों की संख्या 205 करोड़ थी। उस समय दुनिया में कुल तीन देश थे वृद्धों की जनसंख्या 10 करोड़ या इसमें अधिक थी। इनमें चीन की 42 करोड़, भारत की 20 करोड़ और संयुक्त राज्य अमेरिका की 20 करोड़। 50 वर्षों बाद अर्थात 2000 में 60 वर्ष की आयु या इससे अधिक उम्र के व्यक्तियों की जनसंख्या में तीन गुना की वृद्धि हुई है, 60 करोड़ हो गई है।

यह चौंकाने वाले तथ्य है कि विश्व की कुल जनसंख्या 1.2 प्रति की दर से बढ़ रही है जबकि वृद्ध जनसंख्या में वृद्धि की दर 1.9 प्रति है। और ऐसी स्थिति में भारतीय सामाजिक मूल्यों परिवर्तनों वृद्धों की समस्या बना है। अनेक देशों और समाजों में वृद्ध व्यक्तियों को परिवार और समाज पर भार माना जाता है, उनकी उपेक्षा की जाती है। उन्हें खाना और कपड़ा भी नहीं दिया जाता है, पारिवारिक विखण्डन के कारण वृद्धों को अत्यन्त दयनीयता की स्थिति का सामना करना पड़ रहा है।

आज ये सारी बातें आम चलन में आ गई है। फिल्म फेयर पुरस्कार से सम्मानित केरल के जीवन पर आधारित फिल्म का कथानक हो या अमिताभ बचन की फिल्म बागवान। संयुक्त परिवारों के विघटन के सबसे ज्यादा प्रभावित किया है वृद्धों को। उनकी अनेक समस्याऐं है, उनमें सबसे बड़ी समस्या पारिवारिक समस्या। परिवार ही वह स्थल है जहां वह आजीवन तपस्या करता है। परिवार ही वह क्षेत्र है जहां वह अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को खो देता है औलादा की चाहत के लिए सर्वस्व अर्पित कर देता है। बाद में उसी को घृणा और तिरस्कार की दृश्टि से देखा जाता है। वो ही बच्चे जिन्हें नैतिक मूल्यों का पाठ बचपन में पढ़ाया जाता है।

शहरी चकाचौंध, भौतिकता की दौड़ में सब भूल जाता है। अनेक समस्याऐं वृद्धों के जीवन में आती है जैसे सदस्यों द्वारा सम्मान में कमी तथा उपेक्षापूर्ण रवैया, समय पर भोजन न देना, घर के कार्य जैसे बच्चो की देखभाल, वगैरह आदि करवाना अपषब्दों का प्रयोग, मलमूत्र तथा गंदगी में पड़े रहने देना। इन पारिवारिक समस्याओं के कारण अनेक समस्याओं का जन्म होता है।

2. अकेलेपन की समस्या:- यह भी सबसे बड़ी समस्या है, वृद्ध चूंकि अनुपयोगी हो जाते है और आज का युग उपयोगिता का है। अत: उन्हें अकेलेपन की पीड़ा ठेस पहुंचाती रहती है। एकांकी परिवार छोटे होते है सब अपने-अपने कामों में व्यस्त रहते है उनके पास बोलने वाला, बैठने वाला कोई नहीं होता है। जब कृषि व्यवस्था थी तब वृद्ध अकेलापन महसुस नहीं करते थे। अकेलेपन में शरीर के साथ ही वृद्धावस्था अनेक मानसिक परिवर्तनों को भी जन्म देती है, उनकी स्मरण शक्ति क्षीण होने लगता है, उनका स्वभाव बदल जाता है ऐसे में वह सोचते है कि उनकी उपेक्षा हो रही है, उनकी कोई अहमियत नही है, ऐसी स्थिति में संवेगात्मक समस्याओं के शिकार हो जाते है।

भारतीय दर्शन में जीवन की अवधि को 100 वर्ष का माना गया है और चार आश्रम ब्रह्मचार्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ, एवं सन्यास आश्रम में विभाजित किया गया है, आज यह आश्रम दिखाई नहीं देते है, लेकिन आज के परिवार एवं बच्चों को इन सभी की उपयोगिता से अवगत कराते रहना चाहिये। पारिवारिक समयोजन बनाये रखना चाहिये। नैतिक मूल्यों को शिक्षा सभी को अनिवार्य रूप से दी जाना चाहिये, क्योंकि आज के व्यक्तिवाद एवं उपयोगितावादी संस्कृति में बुजुर्गो की उपेक्षा अधिक बढ़ा है। यह सत्य है संसार परिवर्तनशील है यह भी सच है कि युवा प्रगति के प्रतीक माने जाते है, जो बुजुर्ग परम्परा के पोषक है। भारत में ही नही पूरे विश्व में क्रांति या परिवर्तन लाने का श्रेय युवको को ही है। लेकिन यह भी सत्य है कि परिवर्तन क्रान्ति अनुसंधान युवकों द्वारा बुजुर्गो को मार्गदर्शन ही संभव है।

वृद्धजनों से साक्षात्कार से पता चलता है कि खाने पीने से लेकर दवा, मनोरंजन के साधन, मनबहलाने के लिए स्कुल के बच्चे व मानसिक शक्ति के लिए प्रार्थनाओं का आयोजन किया जाता है उन सबके बावजूद आज उनके मन में असंतोष है, घुटने है दिनचर्या का शिकंजा है, अपनेपन का अभाव है, उन्हें चाहिये अपनी संतान का साथ, स्वतंत्र जीवन, जीने की परवरिश, उन्हें ऐसा व्यक्ति चाहिये जो उनकी बात सुने, अमल करे, आखिर इन सब अनुत्तरित सवालों का जवाब कौन देगा।

प्रो. योगेन्द्र सिंह का विचार है कि भारत में इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिये कि खान-पान, शिक्षा संबंधी व्यवस्था के साथ-साथ भावनात्मक सुरक्षा उन्हें मिले, वृद्धजनों का एक संगठन हो जो परिवार व संस्थाओं पर

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र), शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

दबाव डाले। जो वृद्धों की अच्छे से देखभाल करें, उनके साथ अपना अधिकतम समय निकाले उन्हें समाज में प्रोत्साहित करें, उनका सम्मान करें। साथ ही वृद्धजनों के संरक्षण व देखभाल के लिए परिवारनुमा समाज सदृश्य एक ऐसा संस्था विकसित करने की आवश्यकता है, जहॉ उन्हें परिवार से दूर रहने का दुख न हो। विकासशील देशों में भारत सहित सामाजिक परिवेश दिन प्रतिदिन बदलते जा रहे है, बुजुर्गो पर लिंग भेद पर नजर डाले तो विधुरों के मुकाबले विधवाओं की संख्या सबसे ज्यादा है।

60 वर्ष से ऊपर की आबादी

अवधि	पुरूष	महिला
1951-60	11.8	13
1970-75	13.4	14.3
1986-90	14.7	16.1
1987-91	15.3	16.2
1989-93	14.9	16.2

जम्मु कश्मीर व मिजोरम शामिल नही है।

यह सिर्फ भारत में ही नहीं दुनिया भर में बुढ़ापे में वैधव्य पुरूषों के मुकाबले महिलाओं को ज्यादा भोगना पड़ता है। प्रतिवर्ष 1 अक्टूम्बर को वृद्ध दिवस मनाते है वृद्ध दिवस मनाना तभी सार्थक है जब हम वृद्धजनों को उचित सम्मान दे, उनकी सुख सुविधाओं का ध्यार रखें।

भारत में वृद्धाश्रम देखभाल ग्रह स्थापित किये गये है। लेकिन आज वृद्धों की खोई हुई सत्ता को पुन: देने के लिए जीवन कम से प्रभाव से बच्चों को अवगत कराना पड़ेगा।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जीवन का सोपान है, युवावस्था यदि उपभोग का जीवन है तो वृद्धावस्था तपस्या का जीवन है। भगवान शंकराचार्य ने वृद्ध पुरूष के शरीर और मन की दशा का वर्णन किया है।

अंगम गलितम पल्लितम मुण्डा, दशन विहिनम ज्ञातं तुण्डमा।
वृद्धौ यानि गृहोत्वादण्डं तदपि न मुच्यति आशा प्रिण्डं

इस प्रकार माता-पिता स्वयं बुजुर्गो की देखभाल अच्छे से करे, उनके बच्चो के सामने अपनी छवि बुजुर्गो के प्रति अच्छी रखे। क्योंकि बच्चा माता-पिता से ही सीखता है। साथ ही वृद्धों को भी अपनी वृद्धावस्था को अनिवार्य रूप से स्वीकार करना चाहिये, न कि बोझ के रूप में।

अपनी आवश्यकताओं की सीमित कर जीवन क्रियाओं को नियमित रखे, युवावस्था में ही बुढ़ापे की तैयारी रखे, आध्यात्मिक, चिंतन, योग-भ्रमण आदि में मन लगाये। भूत को याद कर वर्तमान को खराब नहीं करे एवं नही तुलना करें। अपनी बहुओं और बच्चों की हमेशा प्रशंसा करें, उनके समय का ध्यान रखे। यदि ऐसा होता है तो निश्चित ही बुढ़ापा अभिशाप न होकर वरदान बन सकता है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. World Population-ageing 1950 - 2050 Population Division DESA United states, p-11
2. नातेदारी-विवाह और परिवार का समाजशास्त्र - डॉ. डी.एस. बघेल, श्रीमती किरण बघेल
3. आधुनिक समाजशास्त्रीय निबंध - एम.एन. सिंह
4. भारतीय समाज - गुप्ता शर्मा

****

निरक्षरता नियति नहीं है

प्रो. प्रिशिला अन्द्रेयस *

प्रत्येक समाज की अपनी जीवन दृष्टि होती है। समाज उसी जीवन दृष्टि से संचालित होता है। यह जीवन दृष्टि भी कुछ मान्यताओं को जन्म देती है, परंतु यदि मान्यताऐं मूल्यों पर आधारित होती है तो वे व्यवहार संगत होती है और फिर स्वयं के अनुभव और मान्यता के बीच फाँक नहीं होती। परिवेश से शिक्षण की पहल एक तो भारतीय है फिर वह स्थानीय है, शोषणकारी विकास की अवधारणा पर आधारित नहीं है कुल मिलाकर देश, समाज को पुन: स्थापित करने के लिए परिवेश से शिक्षण एक अच्छी पहल है।

निरक्षरता नियति नहीं है, कलंक और अभिशाप भी नहीं है, बल्कि कुछ ऐतिहासिक, सामाजिक समाज, वैज्ञानिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मजबूरियों का, साथ ही लोगों की भागीदारी व सामाजिक कार्यकर्ताओं के अभाव का परिणाम है। निरक्षरता एक कमी, दुर्दशा है और आज इन कारणों का भी पता लगा सकते हैं। इतिहास के पन्ने पलट कर देखें, जहाँ भारत में ब्रिटिश शासन से पूर्व गाँवों में शिक्षा की स्थिति अच्छी नहीं थी। राजाओं एवं मुगल बादशाहों की शक्ति क्षीण हो जाने के कारण शिक्षण संस्थाओं को राजकीय सहायता मिलना बंद हो गई थी। दूरदराज या कई गांवों के बीच में एक पाठशाला मिलती थी, इससे बहुत से लोग शिक्षा प्राप्त करने की ओर ध्यान नहीं देते थे। व्यावसायिक शिक्षा परिवार में या व्यवसायों में काम करते हुए दी जाती थी। बच्चे अल्प आयु में ही व्यवसाय से जुड जाते थे, वयस्क आयु तक पहुँचते-पहुँचते व्यवसाय अच्छी तरह सीख लेते थे। सामाजिक शिक्षा पूरी तरह परिवार में ही मिलती थी। धार्मिक, शिक्षा का मुख्य साधन था, यह शिक्षा वैज्ञानिक नहीं थी।

ब्रिटिश शासनकाल में शिक्षा में उनका ध्यान अधिकतर अपने काम के लिये कर्मचारी तैयार करना था। इसलिये वे अधिकतर अपने कर्मचारियों की शिक्षा की ओर ध्यान देते थे। ऐसी स्थिति में ग्रामीण शिक्षा की अवहेलना होना स्वाभाविक ही था। शहरों की शिक्षा का मूल आधार भी भारतीय न होकर विदेशी ही था।

स्वतंत्रता मिलने के बाद भारत में शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। जनता का शिक्षित होना अतिआवश्यक समझा गया, इसी पर देश का भविष्य निर्भर है। स्वतंत्र भारत का संविधान देश में समानता, स्वतंत्रता और भातृत्व पर आधारित एक जनतंत्रीय समाज की स्थापना की घोषणा करना है। शिक्षा के लक्ष्य को पूर्ण करने के लिये अत्याधिक प्रयास किये गए। प्रारंभिक शिक्षा में महत्वपूर्ण विस्तार हुआ। अनौपचारिक शिक्षा को प्राथमिकता दी गई क्योंकि बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक थी, विशेष रूप से लड़कियों की।

स्वतंत्रता के बाद देश में साक्षरता प्रतिशत कम ही था। इसका कारण कई प्रकार की समस्याऐं, जिससे निरक्षरता का आंकडा बढ़ता गया। कई ग्रामीण शिक्षा से वंचित रहे। प्रमुख कारणों को दृष्टिगत करे, जिसमें गरीबी, बेरोजगारी, अंधविश्वास, अज्ञानता, ऋणग्रस्तता, खेती में असंतोषजनक स्थिति, नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों से अवगत नहीं, असमानतावादी प्रणाली के शिकार, सामाजिक भेदभाव, आर्थिक शोषण निहित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के अलावा जनजातीय क्षेत्र में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति रही। जहाँ माता-पिता की शिक्षा के प्रति अरूचि, बच्चों की अनिच्छा, शिक्षा के प्रति उदासीनता, घरेलू कार्य, पशुपालन की देख-रेख को महत्व, लड़कियों के प्रति संकुचित सोच, लिंग पर आधारित भेदभाव, जागरूकता की कमी, डर की भावना, लड़कियों का गृहकार्य में व्यस्त रहना, हीनता की भावना आदि। उक्त कारणों ने निरक्षरता की स्थिति उत्पन्न की, लेकिन समस्या का निराकरण किया जा सकता है। जरूरत इस बात की है कि हम आशावादी और विश्वास की भावना से ओत-प्रोत हों। आशावाद के माध्यम से वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ाया जाए। आशावाद की परिकल्पना से हम वर्तमान को बदल सकते हैं और भविष्य बना सकते हैं। आशावाद, भाग्यवाद, समर्पण से अलग कर्मवाद और पुरूषार्थवाद पर आधारित है।

शासन एवं स्वयंसेवी संस्थाओं के संतुलित व्यावहारिक सामंजस्य के आधार पर एक राष्ट्रीय जन अभियान हो सकता है, क्योंकि इसका सम्बन्ध उन करोड़ों पुरूषों, महिलाओं और बच्चों के जीवन से है जो अपने किसी दोष के बिना निरक्षरता के शिकार हुए हैं। इन्हें साक्षरता की जरूरत और साक्षरता भी संभव होगी जब वे महसूस करेंगे कि साक्षर बनना उनके लिए जरूरी और अपेक्षित है। इस हेतु सामूहिक रूप से आगे आना होगा। जिन्हें यह विश्वास है कि वे सीख सकते हैं और उन्हें साक्षर बनाया जा सकता है। जो स्वप्रेरित हैं वे दूसरे व्यक्ति में छुपी हुई भावना को जगा सकते हैं। हम की भावना से जागृत होकर दूसरों के जीवन का अंधकार मिटा सकते हैं। निरक्षरता की जड मूल से नष्ट कर पायेंगे। समाज में जो प्रशिक्षित है वे उन्नति के विभिन्न का अवसरों का लाभ भी नहीं उठा पाते। जो एक शर्मनाक एवं भयानक है। यह स्थिति आदिवासी क्षेत्रों में देखी जा सकती है वे पिछड़े, शोषित और गरीबी के कारण उन तक शिक्षा की रोशनी नहीं पहुँच पाई है और वे अशिक्षा अंधकार में भटकते हुए सामान्य समाज से अलग पड़ गये।

भारत सरकार ने बीस सूत्रीय कार्यक्रम 1986 - उद्देश्य और नीतियाँ (निर्धनता उन्मूलन योजना, शिक्षा के विस्तार) शीर्षक में लिखा है कि शिक्षा अधूरी छोड़ देने वाले विद्यार्थियों के लिये अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू किया, जिसके अंतर्गत आवश्यक विविध पाठ्यक्रम और अलग-अलग तरह के कौशल सीखने की व्यवस्था की गई। सर्वोच्च न्यायालय के वर्ष 1993 के एक फैसले के 16 वर्ष बाद देश के बच्चों के लिये प्रारंभिक शिक्षा का कानूनी अधिकार प्राप्त हुआ। यह अधिकार नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 के जरिए प्राप्त हुआ है। आजादी की लड़ाई लड़ने वालों को यह मालूम था कि विदेशी हुकूमत से यदि देश को आजाद कराना है तो सबसे पहले देश को निरक्षरता के अंधकार से बाहर लाना होगा। ब्रिटिश हुकूमत से बच्चों को शिक्षा का कानूनी अधिकार देने की मांग की गई। इस बिल का हश्र वही हुआ जो सबको मालूम था। बिल पारित नहीं हो सका।

आजादी के बाद संविधान निर्माताओं ने 6 से 14 वर्ष के बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रावधान राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों के अंतर्गत किया। भारत सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयास किये। मध्यप्रदेश सरकार ने वर्ष 1996 में प्रदेश के लगभग

* सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

29.19 लाख बच्चें, जो शाला से बाहर थे, शाला में लाने के लिए विशेष अभियान चलाने की जरूरत महसूस की। 1996 में अभियान प्रारंभ किया गया। 1996 से 2000-2001 तक आते-आते शाला से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या घटकर 13.28 लाख रह गई थी। 2000-2001 में स्कूल चले हम अभियान को पुन: चलाया गया। तब से यह अभियान प्रतिवर्ष चलाया जा रहा है और अब शाला से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या 2009-2010 में लगभग 1.32 लाख रह गई, जिन्हें स्कूल में लाने का लक्ष्य रखा गया। इसके साथ मध्यप्रदेश सरकार ने विभिन्न योजनाओं को लागू किया। स्कूली शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा में भी महत्वपूर्ण योजनाऐं लागू की गई जैसे - गाँव की बेटी योजना, प्रतिभा किरण योजना, विक्रमादित्य योजना आदि। मध्यप्रदेश में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद विद्यार्थियों को नौकरी के लिए भी नहीं भटकना होगा। विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन योजना के अंतर्गत सभी महाविद्यालयों में कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ स्थापित किये गए हैं, जिससे विद्यार्थी कॅरियर से जुडी जिज्ञासाओं का हल जान सकते हैं। उच्च गुणवत्तायुक्त तकनीकी शिक्षा एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण में महत्वपूर्ण योजनायें लागू की गई। शहरों से लेकर दूरदराज के गाँव, संपन्न से लेकर गरीब, सभी के लिये सुविधायें उपलब्ध कराना।

देश की शिक्षा प्रणालियों ने काफी बड़ी संख्या में लोगों को शिक्षा प्रदान करने में बहुत अधिक प्रगति एवं प्रयास किये हैं, किन्तु आज भी दूरदराज के गाँववासियों में जागरूकता नहीं आई है। वे पढ़ाई को फिजूलखर्च मानते हैं। उपलब्ध सुविधाओं को महत्व नहीं दिया जाता है। मुफ्त में पुस्तकें (स्टेशनरी) गणवेश आदि मिलने के बाद भी अभिभावकों में बच्चों की पढ़ाई के प्रति अरूचि दिखाई देती है। स्वतंत्रता के पश्चात विकास के जो अवसर समाज को मिले उसका पूरा लाभ नहीं उठा पाए हालांकि यह लाभ उन तक पहुँचाने में शासन ने अपनी तरफ से कोई कसर नहीं छोड़ी, किन्तु निरक्षरता की भयानक स्थिति को जड से नष्ट किया जाना अति आवश्यक है।

इसके साथ ही एक और स्थिति भयानक है साक्षरों की निरक्षरता। पढ़ाई के बाद जो सामाजिक जिम्मेदारी, वैज्ञानिक चेतना, साम्प्रदायिक सद्भाव शिक्षित वर्ग में होनी चाहिए, वह नदारद है। यही वजह है कि जितने कायदे-कानून बने हुए हैं, उनका पालन एक निरक्षर व्यक्ति तो डर या सम्मान के भाव से करता रहता है जबकि एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति उन्हें तोड़ने या उनमें से गलियारे ढूँढने में अपनी पढ़ाई की शान समझता है।

जहाँ तक वैज्ञानिक चेतना का सवाल है यह तो सामाजिक जिम्मेदारी और साम्प्रदायिक सद्भाव के बाद ही उत्पन्न हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि अभी भी समय है सक्रिय रूप से साक्षरता अभियान में हिस्सेदारी कर निरक्षरों को निरक्षरता से मुक्ति दिलायें। यह सिद्ध करके दिखाऐं कि निरक्षरता नियति नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. रामनाथ शर्मा - भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र
2. पी.आर. नायडू - भारत के आदिवासी
3. म.प्र. संदेश - शिक्षा का अधिकार

****

संचार माध्यम, मनोरंजन और सामाजिक परिवर्तन

डॉ. आरती व्यास *

ज्यों-ज्यों संचार के साधनों का विकास हुआ। उसके साथ-साथ सामाजिक उत्थान के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन भी समाज को विकास की दशाा में ले जा रहे है। अगर हम अपने समाज पर एक नजर डाले तो पाते है कि प्रौद्योगिक उन्नति होने के बावजूद भी वह अभी भी अंधविश्वासों एवं कई प्रकार की बुराईयों से ग्रस्त है। यह बात अलग है कि शिक्षित एवं सम्भ्रांत वर्ग इस अंधविश्वासों के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते है, परन्तु अभी भी हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में यह अंधविश्वास एवं बुराईयाँ अपना रंग जमाये हुए हैं।

अध्ययन का उद्देश्य :- उक्त शोध पत्र के अंतर्गत यह जानने का प्रयास किया गया है कि संचार माध्यम, मनोरंजन के साधन, यातायात के साधनों के तेजी से विकास एवं उनके उपयोग के द्वारा समाज में क्या-क्या परिवर्तन हो रहे है।

समंक संकलन :- प्रस्तुत शोध पत्र में इन्दौर शहर के बिचौली मर्दाना क्षेत्र के अध्ययन सर्वे के आधार पर आधारित है, यह द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त समंकों पर अध्ययन पर आधारित है। संकलित समंकों का गहनता से विश्लेषण करते हुए यह जानने का प्रयास किया गया है कि संचार माध्यम, मनोरंजन के साधन व यातायात के साधनों के द्वारा इस क्षेत्र के लोगों में किस तरह से सामाजिक परिवर्तन हुए है। भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान गांव का है क्योंकि भारत ग्रामों का देश कहा जाता है और ग्रामों का विकास तभी संभव है। जब वहाँ का परिवेश सशक्त हो। किसी भी समाज में बदलाव के मुख्य वाहक है दूरदर्शन, आकाशवाणी, समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ।

यातायात के साधन जो समाज को गतिशीलता प्रदान करते है एवं दुनिया की मुख्य धारा से जोड़ते है एवं सामाजिक परिवर्तन लाने में मुख्य भूमिका अदा करते हैं। इसी तरह आज दूरदर्शन केवल सरकारी नहीं है बल्कि उस पर आने वाले विभिन्न चैनलों के द्वारा हम पूरे संसार की जानकारी के साथ-साथ ब्रह्माण्ड के रहस्यों को जानने वाली जानकारी भी देखते है। इसके साथ ही दूरदर्शन से ग्रामीण कार्यक्रमों के द्वारा प्रौढ़ शिक्षा, महिला स्वास्थ्य, महिला कल्याण कार्यक्रम, कृपिरिवार नियोजन आदि की जानकारी देकर ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता फैलाई जा रही है।

इसके साथ ही शहरी क्षेत्रों में रोजगार समाचार, शिक्षा का प्रसार, सामाजिक जागरूकता जैसे कार्यक्रम देकर शहरों में भी जागरूकता दी जा रही है। दूरदर्शन के ज्ञानवर्धक चैनल जैसे हिस्ट्री चैनल, डिस्कव्हरी चैनल, ज्ञानदर्शान, डिस्कव्हरी सांईस, फॉक्स ट्रेवल्स आदि के द्वारा हमें कई तरह की जानकारी से दूरदर्शन अवगत करवाता है। इन सभी कार्यक्रमों के द्वारा समाज में तेजी से सामाजिक परिवर्तन आ रहे हैं। तकनीकी विकास के माध्यम से आम आदमी के जीवन में तेजी से परिवर्तन आ रहे है।

सामाजिक बदलाव का तीसरा माध्यम आकाशवाणी है। यह निश्चित सत्य है की दूरदर्शन के कारण आकाषवाणी से दूरी आई है पर फिर भी जो लोग बरसों से आकाशवाणी सुनते आए है, वे उसे ही पसंद करते है। आकाशवाणी के द्वारा समाज कल्याण, बाल विवाह शिक्षा, महिला अधिकार, दहेज की समस्या, लैंगिक भेदभाव जैसे कार्यक्रमों के द्वारा समाज सुधारने का कार्य बखुबी किया जाता रहा है। आकाशवाणी ने जनसामान्य में चेतना जगाने एवं उनमें परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

चौथा प्रमुख माध्यम सामाजिक परिवर्तन का चलचित्र हैं। फिल्में नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही रूपों में सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। कई सामाजिक समस्याओं के ऊपर बनी फिल्में जैसे 'पा', 'तारे जमीं पर' आदि जो व्यक्ति का समाज के प्रति सोचने का नजरिया बदलती है और सामाजिक समस्याओं के प्रति व्यक्ति को सोचने पर मजबूर करती है। वर्तमान समय में संचार माध्यम देश की कुरीतियों जैसे दहेज प्रथा, बाल विवाह, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, ऊँच-नीच की भावना, अशिक्षा पर चोट करके एक विकासशील राष्ट्र का निर्माण कर सकते है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अत: सामाजिक संबंधों को बनाये रखना जरूरी है नहीं तो व्यक्ति एकांकी रह जायेगा और एकांकी व्यक्ति का सामाजिक विघटन तेजी से होता है। अत: संचार माध्यम व्यक्ति के एकांकी पल को दूर करते है पर यह सोचना जरूरी है कि विज्ञान, प्रौधोगिकी व संचार माध्यमों का सही तरीकों से उपयोग है। मीडिया और मनोरंजन उद्योग एक प्रकार का चक्रीय उद्योग है जो आर्थिक विकास और आय स्तर में वृद्धि के साथ-साथ तीव्रगति से सा-परिवर्तन के सपनों को रेखांकित करता है। एसोचेम Associated Chembers of Commerce and Industry of India द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार विश्व में मीडिया व मनोरंजन क्षेत्र के लिहाज से भारत विश्व के प्रथम तीन देशों में शामिल है।

सा-परिवर्तन में भारतीय मीडिया के विभिन्न संघटको की सहभागिता संघटक

	वर्ष 2006-07	वर्ष 2011-12
1. टेलीविजन	45 प्रतिशत	51 प्रतिशत
2. सिनेमा	19 प्रतिशत	18 प्रतिशत
3. रेडियो	01 प्रतिशत	02 प्रतिशत
4. इवेन्ट मेनेजमेट	0	
02 प्रतिशत	02 प्रतिशत	

संचार माध्यम एवं प्रौद्योगिकी से क्या सामाजिक परिवर्तन हुए है, लेखक ने यह जानने का प्रयास करने के लिए इन्दौर के बिचौली गांव के 50 सूचनादाताओं का सर्वेक्षण किया। जिसके तथ्य निम्न है-

40 प्रतिशत सूचनादाताओं का कहना है कि दूरदर्शन देखने से हम शिक्षा के प्रति जागरूक हुए है तथा हमारे बच्चों को स्कूल भेजने लगे है। कृषि संबंधित कार्यक्रमों को दूरदर्शन पर देखने एवं आकाशवाणी पर सुनते है। उनसे हमें खेती करने के नये-नये तरीके एवं मशीनों से अवगत हुए है। ऐसा 45 प्रतिशत लोगों का कहना था। 35 प्रतिशत न्यादशों का कहना है कि आकाशवाणी से जानकारी प्राप्त हुई है कि बालविवाह नहीं होना चाहिए। इसी तरह बालिकाओं को उचित शिक्षा प्रदान करनी चाहिए ताकि आत्म निर्भर होकर वे जीवन में आने वाली समस्याओं का सामना कर सके।

निष्कर्ष :- उक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान परिस्थितियों में संचार माध्यम देशा कि सदियों से चली आ रही कुरीतियाँ, छुआछुत, अशिक्षा की भावना को दूर कर एक विकसित राष्ट्र का निर्माण कर सकते है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. दैनिक अखबारों की सुर्खिया एवं लेख
2. एकेडमी ऑफ रेडियो मेनेजमेन्ट दिल्ली
3. स्वामी रंगनाथानंद-परिवर्तनशील समाज के लिये शाश्वत मूल्य
4. समाज कल्याण, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड-नई दिल्ली

* सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.) भारत

दलित महिलाओं की सामाजिक समस्याऐं

कु. रेखा रावत *

सदियों से समाज में नारी की स्थिति हमेशा दूसरे स्थान पर रही है। पुरूष प्रधान समाज में नारी को पुरूषों के समान हमेशा नगण्य माना गया है। केवल घर और परिवार की चाकरी करना ही नारी का कर्तव्य है। भारत को स्वतंत्र हुए 64 वर्ष बीत चुके हैं। लेकिन अब तक सामान्यत: महिलाओं की स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं आया है।

भारतीय समाज में नारी जाति पर होने वाले शोषण उत्पीड़न, अत्याचार, अन्याय और पैश्चिक कर्मो को रोकने के लिए सामान्यत: स्वतंत्रता और शोध के विरूद्ध मौलिकअधिकार क्र प्रावधान भारतीय संविधान में किया गया है। इतना ही नहीं नारी जाति को मानवीय अधिकार दिलाने के लिए राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर महिला आयोग की स्थापना भी की गई है लेकिन समाज में महिलाओं की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं आया है।

भारतीय संविधान में जिन्हें अनुसूचित जाति कहा जाता है उन्हें अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है। महात्मा गांधी जी ने इन्हें हरिजन शब्द से सम्बोधित कर समाज में सम्मान जनक स्थान देने का प्रयास किया गया था, साधारण बोलचाल की भाषा में इन्हें 'अछूत' नाम से संबोधित किया जाता है। अनेक स्थानो पर इन्हें 'बहिष्कृत' जाति कह कर संबोधित किया गया है। परम्परागत सामाजिक संस्तरण में इनकी स्थिति नीचे होने के कारण इन्हें दलित कहकर भी संबोधित किया जाता है। निम्न वर्ग की महिलाओं की अपेक्षा दलित वर्ग की महिलाओं की स्थिति अत्यधिक कमजोर एवं दयनीय है।

दलितों की आर्थिक स्थिति दयनीय शोचनीय होने के कारण उनकी सामाजिक स्थिति अत्यन्त निम्न कोटी का होता है। ये लोग झुग्गी झोपड़ियों और पुनर्वास कॉलोनियों, गंदी बस्तियोंऔर देहातों के नारकीय एवं पाष्विक जीवन व्यतीत करते हैं। निरक्षरता,अशिक्षा, गरीबी और पिछड़ेपन के कारण इस वर्ग की महिलाऐं स्वस्थ जीवन की समस्त सुविधाओं से वंचित रहती है। इनके लिए संतुलित भोजन का अभाव सदैव रहता है। जिसके कारण वे अनेक मानसिक कुण्ठाओं, मानसिक तनाव और विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों से ग्रसित हो जाती हैं। दलित महिलायें पढ़ाई लिखाई और समुचित वातावरण के अभाव में परिवार नियोजन के महत्व को नहीं समझ पाती। वे इस मूर्खतापूर्ण कहावत कि ''जिसने चोंच दी है वह चुग्गा भी देगा'' के चक्कर में आज भी आठ-नौ बच्चे पैदा करती हैं।

दलित महिलाऐं संतुलित आहार के अभाव में और अधिक बच्चे पैदा करने एवं पति द्वारा रोजाना प्रताड़ित एवं पीटे जाने के कारण अनेक बिमारियों से ग्रसित हो जाती हैं। 90 प्रतिशत महिलाऐं अक्सर एनिमिया (रक्त की कमी), तपेदिक, कैंसर आदि रोगों से ग्रसित होकर समय के पहले ही मर जाती हैं और वे अपना पूरा जीवन नहीं जी पाती। यदि दलित महिलाओं के जीवन को देखा जाये तो यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि उनका जीवन शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, अन्याय और अभाव से परिपूर्णहै। यथार्थ में दलित महिलाओं के जीवन से पशुओं का जीवन कहीं अधिक बेहतर है।

उद्देश्य-

1. दलित महिलाओं की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. दलित महिलाओं के स्वास्थ्य में जागरूकता संबंधी अध्ययन करना।
3. दलित महिलाओं के आहार एवं पोषण संबंधी स्थिति का अध्ययन करना

परिकल्पना-

1. दलित महिलाओं की सामाजिक स्थिति का अध्ययन ज्ञात किया जायेगा।
2. दलित महिलाओंकी स्वास्थ्य में जागरूकता संबंधी स्थिति का अध्ययन ज्ञात किया जायेगा।
3. दलित महिलाओं की आहार एवं पोषण संबंधी स्थिति का अध्ययन ज्ञात किया जायेगा।

शोध प्रविधि-

- प्रस्तुत शोध हेतु याद्दष्चिक की न्यादर्श (Random Sampling) का प्रयोग गया।
- प्रस्तुत शोध कार्य में निदर्शन का चयन इन्दौर शहर के दलित महिलाओं का 100 प्रतिशत का चयन किया गया है।

विधि एवं उपकरण-

- प्रस्तुत शोध अध्ययन हेत सर्वेक्षण विधि तथा स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

परिणाम-सर्वेक्षण के आधार

- सांख्यिकीय प्रविधिया-संकलित प्रदत्तों का विश्लेषण करने के लिए मध्यमान मानक विचलन अनुपात विधियों का प्रयोग किया गया।

परिणाम-सर्वेक्षण के आधार पर कार्यो का विश्लेषण

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट किया जाता है कि सामाजिक स्थिति संबंधी महिलाओं की संख्या का प्रतिशत 90 व 10 प्रतिशत पाया गया। जागरूकता एवं स्वास्थ्य संबंधी संख्या 100 प्रतिशत पाया गया एवं महिलाओं के आहार एवं पोषण संबंधी संख्या का प्रतिशत 90 व 10 प्रतिशत पाया गया।

सुझाव

1. सरकार द्वारा इन्हें प्रेरित करने के लिए अनेक योजनाऐं चलाई जा रही हैं।
2. दलित महिलाओं के स्वास्थ्य पर अधिक सुधार होना चाहिए।
3. दलित महिलाओं के प्रति परिवार में 7 से 10 बच्चों की चाहत में उनके सुधार सरकार को लाने चाहिए।
4. दलित महिलाओं में परिवारनियोजन में जागरूकता में सुधार होना चाहिए।
5. दलित महिलाओं में आहार एवं पोषण में सरकार को अधिक विकास लाना चाहिए।
6. महिलाओं के अंधविश्वास एवं गरीबी में भी सुधार होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथसूची-

- कपिल एच.के. -अनुसंधान विधिया, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
- अरूण जैन-जनजातीय भारत, महावीर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 237 विश्वकर्मा नगर, इन्दौर
- त्रिपाठी शैलेन्द्र-वर्ष 1978, ग्रामीण स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संबंधी ग्रामीण विकास केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1986
- प्रो. एम.एल. गुप्ता, डॉ. डी.डी. शर्मा-समाज शास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स।
- श्रीवास्तवडी.एम.-अनुसंधान विधियां, साहित्य प्रकाशन, आगरा

* शोधार्थी (समाजशास्त्र) माताजीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय मोतीतबेला, इन्दौर (म.प्र.) भारत

Cross Cultural Exploration of Feminist Strands: A Comparison of Toni Morrison's Sula and Shashi Deshpande's A Matter Of Time.

Ms Vanashree Godbole*

Women in Vedic age in India enjoyed the social as well as religious status in the society. It was laws of Manu, in which a women`s position was seen in relation to man and a definite code of conduct they were expected to follow. As it is the accepted norm that a control will prevent women from the distraction from the path of virtue, hence restrictions were imposed on women as a need to protect her from chastity. The ill treatment of Black women in the west is because of white dominance. Toni Morrison in her critical work on racism *'Playing In The Dark: Witness And The Literary Imagination (1993),'* writes about America's response to Africa in its main stream writings. According to her being Black and being a woman was to suffer from dual marginalization. The history of woman`s subordination in any society reveals how the religion, race, caste, class and cultural codes has been design to facilitate men. Patriarchal institutions like marriage, family and community always impose silence on women. To quote Adrienne Rich "Patriarchy is the power of the fathers: a familial social, ideological, political systems in which men ?by force, direct pressure, or through rituals, tradition, law, the language, customs, etiquette, education, and the division of labor, determine what part a women shall or shall not play, and in which the female is everywhere subsumed under male." 1For both the societies The Indian and The Western, a social code of behavior for the woman is defined for respectability. Silence, stoicism, mute suffering and taking care of men's` were the expected qualities from a woman. The Black patriarchy was equally oppressive in its dealings with their community woman.2Although the term Feminism is western but it becomes universal with the need to break free from the patriarchal constraints. The feature common to the two culture is the resistance to patriarchy. Comparison of Shashi Deshpande`s A Matter Of Time and Toni Morrison`s can be taken into consideration. Shashi Deshpande is a renowned novelist who authored eleven novels, children books, Short Story Collections, Essays, in Indian Writing in English. She has won Sahitya Akademy Award and other regional awards also. Her major concern in writings being women, her problems and her quest for happiness.

Toni Morrison.is a Black Afro-American woman writer, a Nobel Laureate. In her novel Sula she explores the legacy of the African diasporas through the images of loss and recovery. *Sula (1973)* is about two black women friends who grow up in the community of Medallion, Ohio. It follows the lives of Sula and Nel and how their relationship with each other and their community changes over the time. The novel won the National Book Critics Award. In 1988 Morrison received the Pulitzer Prize for her novel *Beloved (1987).*

Shashi Deshpande's novels may be described as narratives of women's experience. Her novels explore the patriarchal and traditional social set up of India, her protagonist, located within this social reality, reach out to re-define the 'self' in an attempt to free themselves from traditional bondages. Toni Morrison like Deshpande deals with the big family, childhood, return to the roots and self awareness. The quest for self forms her major theme and alongwith this universal theme she deals with the sufferings of black community.

Sula is set in a black community in the Midwest called 'The Bottom,' and it centers on the relationship between Sula and Nel from their intimate childhood friendship to their different paths as adults. The one, Nel Wright, chooses to stay in the place of her birth, to marry, to raise a family, to become a pillar of the tightly knit black community. The other, Sula Peace, rejects all that Nel has accepted. She escapes to college, submerges herself in city life, and when she returns to her roots, it is as a rebel, a mocker, a wanton sexual seductress. Sula, in her quest for self, becomes the personification of both the potential of black woman and, ironically, the pariah of her community. In contrast, Nel, to fulfill her dreams leaves The Bottom alongwith her husband and children, diminishing her identity to that of wife and mother. Morrison presents Sula as a tragic figure who fails to negotiate her own identity. *Sula* believes that maternal intimacy is a means of reclaiming a sense of self as well as a sense of community. Three generations are described in the novel that makes the reader understand the inherent characteristics of Sula and Nel. Eva Peace grandmother, Hannah daughter and Sula granddaughter, Nel too have a big Family. She has witnessed the death of her great grandmother and the thought of 'Me' ness is induced in her then. The theme that runs throughout the novel is the influence of family on a person's being. Nel's maternal grandmother was a prostitute in New Orleans; therefore, Nel's mother, Helene, decides that she will rise above such sinful life and live a life of goodness,

*** Asst.Prof. of English, Govt.Maharani Laxmi Bai Girls`P.G College, Kila Bhavan, Indore (M.P.) INDIA**

purity, and respectability. She shifts to 'The Bottom' in suburbs of Ohio, to get away from the ill repute of her mother's past. She raises her daughter with moral values, Sula, on the other hand, receives little attention from her mother, Hannah, or her grandmother, Eva, Hannah is a sensuous woman who seeks the company of all the men in town; Sula disapproves her mother's behavior and observes her with a detached sense of alienation. Sula even destroys her only friendship in life by sleeping with Nel's husband.

Sula 'had clung to Nel as the closest thing to both another and a self, only to discover that she and Nel were not one and the same thing … Nel was the one person who had wanted nothing from her, who had accepted all aspects of her. Now she wanted everything, and all because of that. Nel was the first person who had been real to her, whose name she knew, who had seen as she had the slant of life that made it possible to stretch to its limits' (120)3 Sula is still rejected because she refuses to conform to the ideology of black womanhood, in contrast to which Nel surrenders. Sula and Nel recognize their inherent differences, but it is only after Sula's death that Nel realizes their friendship is a bond which nurtures the construction of a new, privileged black womanhood. Sula and Nel, born into a social position of instability and loss, turn toward each other for support. Sula seduces her best friend's husband and is accused of the worst degradation of all: sleeping with white men. She actively uses men to feel alive, to explore who she is and to form her own self-identity. She does not depend on the ideology of the social institutions that were imposed on African American women. Sula is therefore not a whore but instead a woman who is searching her place in the world, according to Morrison, it is the love of the sisterhood that is necessary to survive and nurture an identity instead of the institution of marriage. In this novel Sula and Nel, the woman left alone and the good wife are negated in favour of friendship, identity and the black womanhood.

Social degradation of black community is portrayed for instance: Helene and Nel need to travel down to New Orleans, because of the death of Helene's grandmother, Helene is deeply troubled to go south. She is keenly aware of the strict rules of segregation, both written and unwritten Her best protection, she thinks, is an elegant dress, but even her beautiful brown dress could not save her from being humiliated by the racist white conductor. Nel sees the exterior of her once-powerful mother she realizes her mother is weak and vulnerable. Bitter mother daughter relationship is seen in Hannnah and Sula. Estrangement of man woman relation in Eva peace and her husband Boy Boy. Theme of alienation is highlighted in Sula`s escape to the city for graduation.

Throughout her life, Sula tries to follow her mother's example of detachment, believing she needs no one in the world. In truth, she lives a life of misery and loneliness because she makes no attachments. When she does finally fall in love with Ajax, she realizes how desperately she wants a commitment. It is not surprising that from her deathbed she talks about the lack of love in the world. The hopelessness of life is also presented through the character of Shadrack.

Sula is very confident of what she is doing in her life. When her grandmother questions her about marriage, she replies, "I don't want to make somebody else, I want to make myself." (85) only person who was up to her expectation was Ajax as,"he did not speak down to her or at her….And all of it he listened more than he spoke." (11) Sula posses the deep sense of concern for humankind, "She never competed; she simply helped others to define themselves." (88)Though Sula has a perfect personality. Morrison gives a birthmark on Sula`s forehead, The birthmark of the rosebud to defaced her face, making a deformed personality like her grandmother who has only one leg, representing the lack of feminine charm in black women. Sula dies three - deaths: symbolic, metaphoric, and physical. First when her friendship with Nel is broken, second after the desertion of Ajax and third her physical death, when Nel visits Sula on her Death bed, Sula asks her "Dying, Just like me. But the difference is they dying like a stump. Me, I'm going down like one of those redwoods. I sure did live in this world." (143)

Two big families both having a huge family network Wright and Peace in center, Women of three generation are drawn skillfully, The novel deals ? Eva's matriarchal dominion over the house she crafted, through Hannah's sexual agency and the danger she represents to married couples, through the sexual autonomy exercised by the three generations of women in Eva's household associated to the social construction of heterosexuality in the discourse on "manlove" the social construction of motherhood and its problematizing through the story of saving the infant Plum, the myth of Eva's sacrificed leg, the killing of her only son, and Hannah's remark about loving but not liking Sula. The inquiry into the development of our cultural understanding of childhood is obviously related to the tropes of adolescent female friendships and a female's development into sexual maturity. Some examples are girlhood (remember the book ends with Nel recalling and lamenting, "We was girls together" and the enigmatic deweys appropriated by Eva and transformed by her in the community's imagination.(41)

Morrison uses the narrative technique of deconstruction to (re)enact the processes of the female characters' own self-creation: their ordeals and experiments of becoming. Sula's

stream of consciousness monologue is actually a dialogue with what Nel said or would say in a similar situation in *Sula,* The novels consists of third person narration.

Morrison`s *Sula* and Deshpande`s *A Matter Of Time* are similar in their narrative and the story line up. The difference of culture is apparent. *"A Matter of Time"* (1999), the novel is about three women from three generations of the same family. Self-realization is a search of three generation. Sumi deserted by her husband Gopal faces humiliation with courage, Kalyani was married to her maternal uncle Shripathi. Manorama, Kalyani's mother, fails to beget a male heir to her husband and she fears her husband would get other wife, to save her property getting passed on to another family, She gets Kalyani married to her brother Shripathi. When their four-year-old son is lost at a railway station; Shripathi gets angry and sends Kalyani back to her parent's house, on her return he maintains a silence for the rest of his life. The novelist has revealed the fear, frustration and compulsions of the three women from three generation. The change in the society is also explained through the three different generations. Grandmother Kalyani is not educated, Sumi an educated woman works as a school teacher, Aru, Charu and Seema three daughters are aspiring for career and independence. The whole novel has the undercurrent of Indian Mythology. Deshpande try to explain the nature and situation of her characters by comparing and contrasting them with these mythological characters, they are reinterpreted in modern Indian context. This novel is the mirror of the society in transition.

The protagonist of the novel is Aru , an 18 year old girl, trying to find out the reason of her father`s desertion and mother`s indifference, and she herself becomes aware of self realization, accepts the happenings around , as her own course of life changes. She undergoes a series of experiences and visualizes .the experiences of her mother and grandmother, that helps her to become more strong and decisive. The characters in the novels live together having independent identity, doesn`t pass any judgment on any other characters. All of them are haunted by the past experiences. "History exists in the final analysis for God," (p99)4, the novel quotes Camus. This entity of "God," that stands outside history, is elsewhere evoked as the painter who catches us inside his picture, making us see what he wants us to see. Like Vermeer, like God, like the storyteller, "[O]only the creator is free, only the creator can be free because he is outside of it all" (55). What applies to the human situation generally gains specific meaning in the context of women's situation. Adjustment in the marriage becomes the survival strategy by Shashi Deshpande. Three women in three different generation creates the sense of continuity, Adoration for male child is seen in the women of older generation , the parental house is given to the women progeny as there was no male heir. The detailed description of house symbolizes the strength and shelter. It has been dealt as a character that has witnessed three generations of suffering and pain and is still standing with same strength to give support to the family members:

The Vishwas, named not as one would imagine for the abstract Quality of trust ….And yet it proclaims the meaning of its name by its very presence, its solidity. (p3)

Sumi along with her three daughters, after her husband's desertion returns to their parental home, where Kalyani is living with her loneliness. Manorama the great grandmother appears in the story as past holding traditional values. In this `Big House' accidental death of Sumi and her father Shripathi ,disturbs her mother, at this point Aru consoles Kalyani: `I am your daughter,Amma,Iam your son'(p244).The mother, grandmother had estrange relation with their husbands. Kalyani had not spoken to her husband for forty years, so is Sumi, her husband deserts her after a married life of seventeen years. The helplessness is transformed into Silence, with no answer for Aru. Later Aru thinks later in life she might come to this house the way elder generation had come. Aru`s affinity for law becomes necessity. Articulation of thoughts and feelings help the protagonist to achieve the state of self actualization; the strain dissolves with maturity. Aru finds her existence in her grandmother's personality.

Deshpande employs the technique of the past and the present in continuous interplay .The story of the novel is dealt in present and past, she uses alternating first and third person narrative. Delving into the past, coming to the present becomes the tool to woman's self realization. A Thematically and structurally past and present is explored. Novel operates the dialogue relationship of the past and the physical presence of the present of Indian women the four generation of the women is under one roof experiencing the same mental trauma. Where great grandmother is in the form of a portrait symbolizing the happy life she has lead. The time span of the novel is hundred years, as the characters, their life unfolds; the time seems to be `still'. The two polarities of the plot are Kalyani and Aru, rest of the characters are between the two. The whole plot is supported by these two ends. The quality of timelessness lingers. In this novel Deshpande has experimented with the multigenerational network of family members and relatives. Shashi Deshpande makes her character Aru to attain a transcendence process through empathy, compassion and love. She is oriented towards a mature personhood of high spiritual nature, like her mother Sumi, who is proud and defiant after Gopal`s desertion, and

doesn`t want anyone`s pity, instead wanted to become strong for her daughters, she undergoes suffering of her own kind. Finally all the three women in the novel gain spiritual intelligence, through their suffering. The novel ends up with a note of Hope. Myth and mythical references are must for Indian mind. Shashi Deshpande try to find answers to the complexities of life through epics, "You remember the Yaksha`s question to Yudhishtira; what is the greatest wonder in this world?And what Yudhishthira answer was? We see people die and yet we go on to live forever………We know it`s all there, the pain and suffering, old age, loneliness and death, but we think somehow we believe that it`s not for us. (134). Aru is the most sensitive character in the novel; she is practical and is logical for her every move in life. Perhaps through Aru, the novelist is hopeful about the younger generation to interpret silence, make women realize their situation and speak up for themselves. She forms a firm opinion about marriage and patriarchy and decides to become a lawyer cum social worker .She rejects the socially accepted norms of wifehood, motherhood and marriage and decides to remain single. Towards the end of the novel, when Gopal returns, Aru rejects her father`s come back and answers him boldly and assures him, "We'll be guide alright, don't worry about us (246). She maintains her mother's pride, dignity, courage and confidence.

Deshpande`s *A Matter of Time.* too have three generation, Aru in *'A Matter of Time'* resembles Sula, though Aru`s behavior is restricted with Indian social set up. Kalyani and Aru doesn`t share like Sula and her grandmother Eva Peace. Kalyani couldnt tolerate her daughter Sumi`s pain, as her husband Gopal deserts them. Eva`s daughter Hannah becomes widow, her concern is more for her daughter than Sula. Aru returns to her roots through the conversation with her grandmother Kalyani where as Sula who leaves bottom completes her education after a being deserted by her love, shattered she returns to her roots after ten years, but unlike Aru she is rejected by the society and by the end she dies with cancer, whereas Aru develops a strong bond with her grandmother Kalyani and hopes for her better future. As there are references from The Mahabharata and The Ramayan in *'A Matter of Time",* In Sula , the biblical parallel is traced in the character of Eva.Symbol of house is common in both. An elaborate description of peace house is given. "There were rooms that had three doors, others that open out on the porch only and inaccessible from any other part of the house; others you could get to only by going through somebody's bedroom. The creator and sovereign of this enormous house with the four sickle-pear trees in the front yard and the single Elm in the backyard was Eva Peace." (Sula p 30).Both Aru and Sula rejects the Idea of marriage whereas they have witnessed the marriage and sufferings of their mothers and grandmothers. Men are not of significant support instead they become the reason of their sufferings. Suppressed sexual desire of Sumi comes on surface when she writes a script for her school drama; she talks about the passionate seductress Suparnakha who freely display her desire. Hannnah "after her husband Rekus` death had a steady sequence of lovers, mostly the husbands of her friends and neighbors. Her flirting was sweet, low and guilless."(Sula p 42)Kalyani has to face silence for ever as her husband Shripati stopped talking to her. Likewise Eva Peace was left with very little when her husband left her; she worked hard to take care of her children. As Eva Peace is left by Boy Boy for another woman, "when he left in November, Eva had 1.65,five eggs,three beets and no idea of what or how to feel. The children needed her ; she needed money and needed to get on with her life." (Sula p 320) Hannah is widow whereas Sumi is not widow but with KumKum intact on her forehead she is left single with the responsibility of her three daughters. Death becomes important motif in the novels, Death of Shripathi and Sumi and death of Hannah, and Sula. Shadrack, gives the commentary of the past and change in present a character similar to Gopal in A Matter Of Time, who ponders the question of life and death thinks over the hopelessness of life, Deshpande`s title of the novel suggests the themes dealt, whereas Morrison very often gives the names of the protagonists as title.

Deshpande`s novel ends on positive note with Kalyani and Aru together, whereas Nel in Sula mourns the death of Sula and cries, " "All that time,all that time,I thought I was missing Jude"And the loss pressed down on her chest and came up into her throat. "We was girls together,"…….She cried, "girl, girl,girlgirlgirl."(Sula 174)

References:-

i. Jayita, Refractions of Desire: Feminist Perspective in the Novels of Toni Morrison, Michele Roberts and Anita Desai, New Delhi: Atlantic Publishers and Distributors (P) Ltd., 2006.p5

ii. Ibid p 39'

iii. Morison Toni Sula The Random House, Vintage,London. rprt 1998.(further references from the text in parenthesis)

iv. Deshpande Shashi A Matter Of Time, Penguin Books, India, 1996.(further reference of the text in parenthesis.)

Bois, Daunta. "Toni Morrison: Biography." Voices With Wings. Online. 27 Nov.

Dhawan, R.K. Indian Women Novelists. New Delhi: Prestige Books, 1995. 2000

(Referred for biological details).

****

Thematic Concerns In the Novels of D.H. Lawrence

Prof. Rajshree Sharma *

As a social and moral document as well as a contained art form, the novel has responded more quickly and fully to new ideas than any other literary genre. It has also responded to inner developments in its own form. Thus tradition and innovation are the twin stuff of the genre. The traditional three-volume novel was replaced by the single volume novel. Of first importance was the nature of the literary revolt against the Victorian age. With old values gone, writers like Lawrence and Joyce had to find new areas of faith.

Subject matter itself was anti-materialistic, increasingly out spoken in sex and strongly influenced by new explorations in science and psychology. There was fierce interest in discovering new terms of artistic exploration with the concomitant emphasis on technique, form, structure. Powerful it influences came from France in the form of symbolist movement from Baudelaire and Mallarme, the naturalist movement from Zola and Balzac and the impressionist movement from Flaubert and Maupassant. New concepts were derived from Einstein and Freud.

There was a turning inward. The novelist was no longer confined to a fixed point of time, but was free to rove backward and forward in memory through recurring images. Symbolism became one of the most important forms of literary expression. The influence of Russian novel especially Dostoevsky, was no less potent, exposing unsuspected depths in human soul which had yet to be exploited. The novel borrowed new devices freely from music such as recurring motifs, verbal harmonies, polyphonic development in which separate melodies or themes combine in contra punctual interweaving, an emphasis on tones, rhythms etc. From motion pictures it took devices such as cut-back, dissolve, montage, flashback, shift in perspective, fade-in and fade-out, speed-up, close-up or relenti, angle or point of view. There was also a new anti-rationalistic movement and a reversion to primitivism with a renewed interest in racial mythology. It is against this background that novels of Lawrence have to be studied.

Themes in Lawrence centre round human relationship - in particular the relationship between man and woman. Lawrence himself suffered from Oedipus complex and both his life and work are a continuous search for a whole relationship. Sons and Lovers is an exhaustive study of the crippling effect of Oedipus complex. Lawrence pleaded for discovery, exploration and fulfillment of love through polarity. He know that there was love that maimed and love that strengthened, that there was love that bound and love that set free. He campaigned against Puritanism but there was a strong moral streak both in his work and character. He was deeply anti-philistine and money to him was deadly poison.

He violently attacked bourgeois concepts of morality and respectability. He belongs to the Romantic tradition that rejects the distinction between reason and instinct and in which thought grows into passion. He rejected the culture that strangle the primal vital life-force in us. He wanted to regenerate mankind by making man aware of the lower half of our consciousness - what he called blood-consciousness. He is an explorer in the realm of human spirit and his is a search for an encompassing reality, for a totality in human experience. He wants to establish a true relatedness between art, life and morality.

Lawrence had a short, intense passionately lived life of just forty five years From 1885 to 1930. He lived his life with the frenzy of a tubercular. He belonged to the group of experimental novelists who introduced innovations both in content and form Lawrence was basically a poet and a romanticist. He made ample use of symbols in his fiction. His language is rich with imagery. The language of The Man who Died brinks on Poetry, he draws his symbols and images from the world of flowers and trees and the world of art and music. There is a certain parallelism in the structure of his plots. There is a deep probing of the human spirit in his art of characterization. Lawrence's fictional technique invite serious study and investigation.

Lawrence is both interesting and intriguing. We are at once fascinated ad repelled by him - fascinated by his visionary zeal and repelled by his vituperative violence. He is a genius with a touch of madness.

There is violence in his voice. Sometimes it is the voice of apocalypse, of a Messiah. At other times it is the voice of denunciation like that of a Jewish patriarch of the old Testament. But his is a lone voice - a voice of challenge. His is a personal vision and he is in the prophetic tradition of Shelley and in a different way, in that of Carlyle and Ruskin. The prophetic element is an important part of his art.

Psychoanalysis is a psychological and psychotherapeutic

*** Asst. Prof. Department of English Madhav Art & Commerce College Ujjain (M.P.) INDIA**

theory concurred in the late 19th and early 20th centuries by Austrian neurologist Sigmund Freud. Freudian psychoanalysis refers to a specific type of treatment in which the analyzed "analytic patient" verbalizes thoughts, including free associations fantasies and dreams from which the analyst induces the unconscious conflict causing the patient symptoms and character problems and interprets them for the patient to create insight for resolution of the problems. The basic tenets of psychoanalysis include.

1. Human behavior, experience and cognition are largely determined by irrational drives.
2. Those drives are largely unconscious.
3. Conflict between conscious view of reality and unconscious material can result in mental disturbances such as neuroses depression, anxiety etc.
4. The liberation from the effects of the unconscious material is achieved through bringing this material into the consciousness.

The predominant psychoanalytic theories can be grouped into several theoretical "schools" Although these theoretical "schools" differ, most of them continue to stress the strong influence of unconscious elements affecting people's mental lives. Psychoanalytic ideas also play roles in some types of literary analysis such as Archetypal literary criticism. Topographic theory was first described by Freud in The Interpretation of Dreams (1900). The theory posits that the mental apparatus can be divided in to the systems Conscious, Pre-conscious and Unconscious. These systems are not anatomical structures of the brain but, rather, mental processes. Although Freud retained this theory throughout his life he largely replaced in with the Structural theory. The Topographic theory remains as one of the met psychological points of view for describing how the mind functions in classical psychoanalytic theory.

Structural theory divides the psyche into the id, the ego, and the super-ego. The id is present at birth as the repository of basic instincts, which Freud called "Tribe" ("drives") : unorganized and unconscious, it operates merely on the 'pleasure principle', without realism or foresight. The ego develops slowly and gradually, being concerned with mediating between the urgings of the id and the realities of the external world; it thus operator on the 'reality principle'. The super-ego is held to be the part of the ego in which self-observation, self-criticism and other reflective and judgmental faculties develop. The ego and the super-ego are both partly conscious and partly unconscious.

Ego psychology was initially suggested by Freud in Inhibitions, Symptoms and Anxiety (1926). The theory was refined by Hartmann, Loewenstern, and Kris in a series of papers and books from 1939 through the late 1960s. Leo Bellak was a later contributor. This series of constructs, paralleling some of the later developments of cognitive theory, includes the notions of autonomous ego functions: mental functions not dependent, at least in origin, on intra psychic conflict.

Modern conflict theory A variation of ego psychology, termed "modern conflict theory" is more broadly an update and revision of structural theory (Freud, 1923, 1926); it does away with some of structural theory' more arcane features, such as where repressed thoughts are stored. Modern conflict theory looks at how emotional symptoms and character traits are complex solutions to mental conflict. Object relations theory attempts to explain vicissitudes of human relationship through a study of how internal representations of self and other are structured. Jacques Lucan (1901-81), called 'the French Freud', is a French psychoanalyst. What Lucan is interested in is re-writing re-interpreting classical Freudian psychoanalysis in the light of poststructuralist theories. He dismisses Freud's notion of the instinctual unconscious that precedes language. The unconscious comes into being simultaneously along with language. It is the result of the structuring of desire by language.

Psychoanalytic criticism, whether Freudian or Laconian, helps us in our critical assessment of literary works in many ways. This criticism is based upon the assumption that sexuality is the basic constituent element in the construction of the subject. Hence, any psychoanalytic reading involves explaining the presence of sexuality in a text. It can be author-based, text-based, or reader-based. The Oedipal dynamics, family dynamics, relationship to death, sexuality, the narrator's unconscious problems, etc., can be tackled with this persuasion, all these relate to the author of the work. Critics most often resort to psychoanalyzing the behavior of literary characters.

D.H. Lawrence challenges the Victorian ideal of feminity by presenting female characters who rejects traditional roles for women. For many years, women played a small role socially, economical, and politically. Because of this many writers portray this role of women in their works of literature. Lawrence believed women of his day were unable to make a choice without the direction of their men and they were unable to control their emotions. He state that women need to become stronger, more powerful and more independent.

D.H. Lawrence was a prolific writer. Themes in Lawrence's novel Centre round human relationship in particular the relationship between man and woman. He was deeply concerned with sex. He was abused as indecent or as a

pornographer by some and hailed as a liberator by others much research work has been done on the themes, technique and contents of his novels. The psychoanalysis of female characters of the novels of Lawrence is an unexplored realm. One of the most important facts about D.H. Lawrence as novelist is that he led revolt against reason. He became the spokesman of all who viewed contemporary civilization with discontent. He wanted to regenerate mankind by making mankind aware of the lower half of our consciousness - what he called the blood - consciousness Lawrence is both interesting and challenging. To study the mind of his female characters is fascinating and intriguing. All his female characters are similar; they are all possessive, each wanting not only all the attention from her man but each wanting to dominate the man. They are strong and aggressive, Lawrence challenges the Victorian ideal of feminity by presenting female characters who reject the traditional roles for women. He was the first great writer of the twentieth century to come from working class. His famous novels such at 'Sons and Lover's', 'Women in Love' and 'Lady Chatterley's Lover are about the position of men and women in society. Much has been said of the relation of his work to Freud. 'Sons and Lovers' is largely autobiographical. It indicates the emotional fixation between himself and his mother.

The psychoanalysis of female character of the novels of D.H. Lawrence is an unexplored field. The proposed research work will provide an insight into his women characters and their behavior. The object of this thesis is to study the novels of D.H. Lawrence against background of the theories of psychology that went into the making and shaping the behavior and mind of his female characters.

Works cited

01. F. R. Leavis (1955) D H Lawrence: Novelist (London, Chatto and Windus)
02. F. R. Leavis (1976) Thought, Words and Creativity: Art and Thought in D.H. Lawrence (London, Chatto and Windus)
03. V.S. Prichett : The Living Novel
04. W.Y. Tindall : The Literary Symbol
05. Lionel Trilling : The Liberal Imagination
06. Hoffman and Moore : The Achievement of D.H. Lawarance
07. F.R. Leavis : D.H. Lawrence : Novelist
08. H.T. Moore : Life and Works of D.H. Lawrence
09. Anthony West : D.H. Lawrence
10. The Critical Heritage : R.P. Draper
11. Fredrik R. Karl : A Reader's Guide to Great Twentieth Century Novel.

****

Milton as an epic poet

Dr. Supriya Paithankar *

Abstract: Milton the great epic poet, has a nice fusion of elements of the Renaissance and the Reformation. The Elizabethan love of beauty and classical learning is given as exuberant expression by Milton. His style has been called as 'grand style' because of his unmistakable stamp of sublimity and megesty.

Ever since the Renaissance it had been the ambition of poets to emulate the achievements of the ancients, and to compose works which might be placed beside the Illiad and the Aenied. But there had been no tradition of epic poetry in England. The first English epic, Beowulf, was the epic of the Teutonic world. But Beowulf, was not a national epic. In the XVII century, the epic or the 'heroic poem' came to enjoy a special prestige. Dryden, at the end of the century said that the Heroic poem is 'undoubtedly the greatest work which the soul of man is capable to perform'. The ancients had produced their crowning masterpieces. The absolute epic in English was still unwritten.

It was partly Milton's purpose to realize for England this cherished ambition of the renaissance. He wanted to write something, 'as they should not willingly let die'. Milton was eminently suited for the task on account of his grandeur of purpose and intensity of self-devotion. The moral purpose, which was always a part of the renaissance theory of epic, was predominant with Milton, because his work was to be 'doctrinal and exemplary to a nation'.

Milton is the second great poet of England. He stands next only to Shakespeare. The supreme quality of Milton's poetry is its sublimity. His poetry elevates and uplifts us. He lived a life of purity and autterity, and his poetry bears the unmistakable stamp of the nobility of his character. His poetry exercises an elevating influence on the minds of the readers. It gives us an impression of moral exaltation.

Sublimity in the poetry arises when noble thoughts find a noble expression. Milton's subject matter as well as his treatment of it is equally noble. Voltaire is of the opinion that Milton's poetry is the grandest thing in the English language. Not lovers and lasses, but god, Satan, Adam, Eve and Christ are the characters that Milton introduces in his poetry. In Milton's work the moral and religious influences of Puritanism were blended with the generous culture of the renaissance. It was this combination of elements which gave its distinctive quality of his greatest poetry; he could never have written as he did, had either of them been wanting.

In Milton's poetry there is a nice fusion of elements both of the Renaissance and the reformation. He was the child both of the Renaissance and the reformation. His childhood was spent at a time when the Renaissance was in the ascendancy. His youth witnessed the rise of Puritanism. And his old age marked the consummation of the Puritan ideals. So, Milton's poetry is a link between the Age of the Renaissance and the Puritan Age. He is both a belated Elizabethan and a fervent disciple of the Reformation. In his literary parentage, Milton owes somewhat to both Donne and Spenser, and in a slight degree to Ben Jonson. But his debts were slight as compare with the rich legacy he gave to English poetry; and it has been justly said that he represented the fourth great influence in English prosody.

Milton was a noble soul with a high conception of his calling, and his personal loftiness imparts loftiness to all that he writes. All his life he lived in the company of the loftiest minds and imbibed their ideas. His poetry is an expression of his

John Milton

Portrait of Milton *ca.* 1629, National Portrait Gallery, London. Unknown artist (detail)

Born	9 December 1608 (Old style) Bread Street, Cheapside, London, England
Died	8 November 1674 (aged 65) Bunhill, London, England
Resting place	St Giles-without-Cripplegate
Occupation	Poet, prose polemicist, civil servant
Language	English, Latin, French, German, Greek, Hebrew, Italian, Spanish, Aramaic, Syriac
Nationality	English
Alma mater	Christ's College, University of Cambridge

Signature

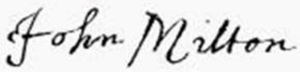

* Asst. Prof. & Head English Dept. Govt Girls College Ratlam (M.P.) INDIA

noble soul, poetically inspires, and hence it could not but be lofty. Milton was a puritan and disdained all that was not truth. His passion for reality led him to reject the traditional subjects of mythology and romance. He would have nothing to do with 'fabled knights', and 'battles feigned', and all the 'tinsel trappings of romance'.

Milton, who had seen the afterglow of the sunset and had felt the power of Shakespeare and Spenser, expressed in his poetry the glow of the old masters of the Renaissance period with as great an enthusiasm as the religious and moral ideals set forth in the bible, and advocated by the Puritans. From his earlier poetry we now learn that he began to write chiefly under the inspiration of the learning and art of the Renaissance; that the Puritan element was at first quite subordinate; and that it gradually gained in strength and depth till it became at last the dominant element.

Milton took up the biblical theme and adorned it with classical art. He made the false gods of paganism 'real' by identifying them with fallen angels. Intellectually, he was with the Greeks, normally and spiritually on the Christian side. And he took up the Biblical theme because he believed in it and looked upon it as true.

Another important characteristic of Milton's poetry, which contribute to its sublimity, is his profound love of beauty in various forms. He was deeply sensitive to the beauties of external nature. The picture of nature that he presents in his early poem is extremely beautiful and charming. The poet watches the beauty of the sun, the cloud, the russet lawns and the trees standing in their beauty and grandeur. In paradise, lost his sense of beauty is supreme. In Book IV, he gives a glowing description not only of the beauty of nature, but also of the physical charms of Adam and Eve.

With this sense of beauty is combined a stateliness and dignity of manner which increases and stresses the sublimity of Milton's poetry. Majesty is the quality that Milton imparted to English poetry. The poet never stoops down at any stage nor does he agree to be on a lower plan, just to satisfy the tastes of the lower sections of the reading public. Milton is always stately, majestic and grand. The subjects that he chooses from his composition are stately and the treatment that he gives to them is equally stately and dignified. Common objects, and low, pettey themes do not form the subject-matter of his poetry. As he, 'dwelt apart', his themes are far removed from the trivialities of life. The issues he deals with are of external interest and his genius finds full scope in dealing with grand things. The problem of the fall of man and original sin, the redemption of humanity by Christ, and the justification of the ways of god to man, such are themes of Milton.

References:

1. Dexter, Raymond, The influence of Milton on English Poetry, London: Kissinger publishing, 1922.
2. Toland, John, Life of Milton in The Early Lives of Milton, Ed. Helen Darbishere, London: Constable 1932.
3. Biography of John Milton- Encyclopedia Britannica.
4. John Milton- Wikipedia, The free encyclopedia.

****

Creating Identity : Chitra Banerjee Divakaruni's The Vine of Desire

Dr. Veena Singh *

No one behind
No one ahead
The path the ancients cleared has closed.
And the other path, easy and wide, goes nowhere.
I am alone and find my way.

(qtd, in Bharati Mukherjee 2002) the formation of identity in diaspora is contingent upon many factors, individual and social, personal as well as collective. As these women live in between the push and pull of opposing cultural forces, the result is the creation of a self that is as multiple as the different components that helped to comprise it. This new "self" does not require the relinquishing of one culture for the appropriation of another, but instead, it allows for the possibility of possessing modified aspects of both cultures at one time. Identity is not so much the act of choosing between cultures, but rather it is having the power to redefine the terms of cultural practices and customs to fit one's own experience.

Thus the diasporic Indian identity becomes ambiguous, with self-perception changing as one's perspectives on the surrounding environment and culture evolve. In this the diasporan creates his/her own identity acquiring the best from both the cultures and emerging as a strong individual.

Novel has been one of the prime genres of literary expression, a torchbearer, in the realm of women's emancipation. Modern Indian Fiction in prose, a gift of the British/European-Indian contact, right from its early days, has focused on the nobility, sacrifice, interior landscape and struggle and multi-personality dynamics of Indian Women. Early Tamil and Bengali novels, for example, abound in themes that relate to the plight of women and their struggle to seek due recognition and rightful place in family and society In both the novels The Vine of Desire by Chitra Banerjee Divakaruni and The Namesake by Jhumpa Lahiri we find the protagonists struggling with the pressures of diaspora and emerging as new and strong personalities, having enough courage to through the baggage of old culture yet not totally giving it up and acquiring a completely new individual status. In The Vine of Desire, Anju and Sudha, born and brought up in a very traditional atmosphere, gathers courage to fight with the situations of their lives in an entirely different culture and coming out as winners in the end. They define their success in their own way. Like the heroines of her stories, Sunnyvale author Chitra Banerjee Divakaruni has come a long way, both figuratively and literally. Chitra Banerjee writes and feels about what she knows and feels. And she is at her best exploring the themes of love, friendship, assimilation, self-analyses and discovery. Divakaruni has carved out a very special place in Indian literature that of being a story teller of immigrants, especially women, who must face the contradictions between the country left behind and the one that they must call home.

The Indian experience in America - and the conflict between the traditions of her homeland and the culture of her adopted country - is the focus of much of Divakaruni's writing, and it has made her an emerging literary celebrity. Divakaruni's fiction explores women searching for their identity as human beings, independent of their traditional role as a daughter, wife or mother. Her character demonstrates the female independence that Divakaruni celebrates although such independence is achieved not without trauma and pain. She suggests that women can determine to assert themselves as individuals who can set their own boundaries with their partners only through the importance given to education in their lives.

The Vine of Desire is a sequel to The Sister of My Heart. This potent, richly textured work by an award-winning writer adroitly explores the fragility of love and of friendship, the agonizing cruelty of temptation, and the struggle for ordinary people to carve a life for themselves in the world. The Vine of Desire continues the story of Anju and Sudha, the two young women at the center of Divakaruni's bestselling novel Sister of My Heart. Far from Calcutta, the city of their childhood, and after years of living separate lives, Anju and Sudha rekindle their friendship in America. The deep-seated love they feel for each other provides the support each of them needs. It gives Anju the strength to pick up the pieces of her life after a miscarriage, and Sudha the confidence to make a life for herself and her baby daughter, Dayita-without her husband.

Simon de Beauvoir's observation sums up a major cause of disturbance in the lives of women. Echoes from past causes emotional stress in the novel. It is much more difficult, as things are, for her to escape from woman's past, to attain an emotional balance that nothing in her situation favours. After her divorce from Ramesh, Ashok reappears in Sudha's life and expresses his desire to marry her, but Sudha turns him down. We should say that this perhaps is the beginning of liberation and empowerment of Sudha. She goes to America on Anju's invitation with her daughter Dayita to encourage Anju. The novel ends with Sudha arriving in America. It is

* Asst. Prof. English, Govt, P. G. College, Mandsaur (M.P.) INDIA

also known by now that her father was not guilty of Anju becoming fatherless.

As girls they grow up negotiating their mother's traditional Indian value systems and desires with the westernized philosophies influencing their own generation, and afterwards compromise with their spouses. Anju, in the Sister of My Heart follows her husband to America and grows stronger and more independent as she goes acculturation process, while Sudha whose marriage is unhappy stays in India but leaves her husband to raise her child on her own, thereby drawing cultural disapproval upon herself. The acculturation process might make a woman more self- governing and autonomous but it does affect her emotionally and psychologically.

Divakaruni's protagonists undergo emotional restraint because they are positioned in the adopted country. Divakaruni constantly observes herself as an immigrant in between India and America, face the issue of culture shock, old world and new world values, and acculturation. She illustrates this through her protagonists, who in the course of becoming self-determined are emotionally shattered. They feel the intense pressure to conform to American ideals and to retain ethnic backgrounds pull immigrants in two conflicting direction, resulting in mixed and complex emotions. Anju and Sudha both feel that they realize that the freedom available to women does not necessarily solve all their problems.

At first, the women are overjoyed to see one another, and their bond seems strong enough to suggest that each woman's unselfish goal is possible. But Anju's startling realization of her husband Sunil's passionate obsession with Sudha shatters the illusions and causes a seemingly irreparable rift between two friends. Tormented respectively by guilt and bitter jealousy, Sudha and Anju must individually grapple with both their inner pain and the outside pressures of frantic impersonal city life in America as the journey towards independence. Ultimately the women are forced to look beyond the destructive circle of love, passion and hurt and form a new relationship as the antidote to their suffering. Only then are they able to find a way to reconcile their ties to the past and to resolve their friendship. Soon though, Sudha acquires, an admirer with no strings attached, Lalit, an Indian doctor. She is more pre-occupied with Anju's unhappiness, however, not to mention her own dilemma: always the dutiful daughter, she has no professional skills and no money. Sudha tentatively begins to make an independent life while Anju starts college; then, however Sunil seduces her and she realizes she must move out. She finds work as a live- in-caregiver for an Indian family, and the cousins who once called themselves sisters are no longer on speaking terms. We find Sudha speaking her heart to Sunil in a letter:

We both wanted too much, wanted the things life had decided we shouldn't have. You longed for the perfect romance, and looked to me to fulfill that longing. And I came to America in search of freedom but was swept away by the longing to be desired. How mistaken we were to think that such things could make us happy. (350)

As Sunil's attraction rises to the surface, the trio must struggle to make sense of the freedom of America and of the ties that bind them to India and to one another. In The Vine of Desire, Anju and Sudha are women who love them. They wish to survive independently of their male influence. Anju cannot forget and forgive the infidelity of her husband and Sudha does not want to be a prisoner at the hands of men who apparently wish to come to her aid, but would finally exercise complete control over her. She would rather bring up her daughter alone according to her own wishes. The story ends when Sunil moves to Houston and lives alone after his separation with Anju, and Anju moves to her friend's apartment, to build a new life as a writer. On the other hand Sudha wants to be back to India.

The search for self and an attempt to define it also explains the frequent mixture of fiction and autobiography. In the novels of Divakaruni not only the protagonists remain at the center but even the story is told from their perspective. This may also be interpreted as a refusal to conform to traditional genres of the dominant literary culture. In the process of individuation, each protagonist undergoes a quest for spiritual and worldly affirmation which invariably results in an active conflict with the existing social forms and myths of dominant patriarchal culture, as they endeavour to reform and review themselves.

In Divakaruni's case, her protagonists successfully tackle the patriarchal constraints at home not allowing family to come between them and their professional goals. In her novels the identity issue takes on another color, that of making a position for themselves in their adopted country. They try to resolve the matters between their circumstances and environment and put the pieces of fragmented selves together. As Divakaruni states in an article:

We draw from dual culture, with two sets of worldviews and paradigms juxtaposing each other. …Expatriates have powerful and poignant experience when they live away from their original culture - and this becomes home, but never quite, and then you can't really go back and be quite at home there either. (Divakaruni N. pag.)

References

- Divakaruni, Chitra Banerjee. The Vine of Desire. London: Penguin Books, 1997
- Included in Bharti Mukherjee, Desirable Daughter (New Delhi: Rupa and company, (2002), I
- Beauvoir, Simone de. The Second Sex, trans. and ed. H.M. Parshley (1953; rpt. Harmonsworth: Penguin, 1983).
- Chitra Banerjee Divakaruni. "Living in the U.S. is a complex Experience." Rediff Chat. 23 April2ooo.

Thematic Analysis of Yann Martel's Fiction 'Life of Pi'

Prof. Chandrakanta Tejwani *

Yarnn Martel was born in Spain in 1963 of Canadian parents. Life of Pi was published in 2001, Yann Martel's third published work of fiction, and the one upon which most of his reputation is built. It was awarded Canada's 2001 Hugh MacLennan Prize for Fiction, in 2002, England's prestigious Man Booker Prize, and in 2003, South Africa's Boeke Prize. In addition to Life of Pi he is the author of the novels Self and Beatrice and Virgil, the stories The Facts behinds the Helsinki Roccamations, and the collection of letters to the Prime Minister of Canada What is Stephen Harper Reading?

Theme Analysis

The Better Story

The major theme is the value of the "better story." As Pi puts it, "The world isn't just the way it is. It is how we understand it, no?" How we interpret reality can be, as it is for Pi, our faith. We need to believe in something beyond the seen. It helps us deal with fear. It helps us find a "better story."

Everything about life is a story and we can choose our own story. Martel's point is that the story that is more imaginative is the better story. The reader can choose whether Pi's life is real-life fiction or imaginative fiction. Pi presents the Japanese men (and the reader) with two stories, one inspired and one crude reality. The men prefer the better story and in the end accept it. Pi feels that God prefers the better story as well, "And so it goes with God."

Life of Pi is a story within a story within a story. The novel is framed by a (fictional) note from the author, Yann Martel, who describes how he first came to hear the fantastic tale of Piscine Molitor Patel. Within the framework of Martel's narration is Pi's fantastical first-person account of life on the open sea, which forms the bulk of the book. At the end of the novel, a transcript taken from an interrogation of Pi reveals the possible "true" story within thatstory: that there were no animals at all, and that Pi had spent those227 days with other human survivors who all eventually perished, leaving only himself.

Pi, however, is not a liar: to him, the various versions of his story each contain a different kind of truth. One version may be factually true, but the other has an emotional or thematic truth that the other cannot approach. Throughout the novel, Pi expresses disdain for rationalists who only put their faith in "dry, yeastless factuality," when stories-which can amaze and inspire listeners, and are bound to linger longer in the imagination-are, to him, infinitely superior.

The act of storytelling and narration is a significant theme throughout Life of Pi, but particularly in the narrative frame. That Pi's story is just that-a story-is emphasized throughout, with interjections from the author, Pi's own references to it, and the complete retelling of the story for the Japanese officials. By including a semi-fictional "Author's Note," Martel draws the reader's attention to the fact that not only within the novel is Pi's tale of survival at sea an unverified story, but the entire novel itself, and even the author's note, usually trustworthy, is a work of fiction.

This is not to say that Martel intends the reader to read Life of Pi through a lens of disbelief or uncertainty; rather, he emphasizes the nature of the book as a story to show that one can choose to believe in it anyway, just as one can choose to believe in God-because it is preferable to not believing, it is "the better story."

Belief in God

"The presence of God is the finest of rewards."

Life of Pi begins with an old man in Pondicherry who tells the narrator, "I have a story that will make you believe in God." Storytelling and religious belief are two closely linked ideas in the novel. On a literal level, each of Pi's three religions, Hinduism, Christianity, and Islam, come with its own set of tales and fables, which are used to spread the teachings and illustrate the beliefs of the faith. Pi enjoys the wealth of stories, but he also senses that, as Father Martin assured him was true of Christianity, each of these stories might simply be aspects of a greater, universal story about love.

"Tree took account of road, which was aware of air, which was mindful of sea, which shared things with sun. Every elementlived in harmonious relation with its neighbour, and all was kith and kin." p. 62 . Pi feels that the connectedness of all things has been revealed to him by God.

Belief in God is clearly one of the major themes in Life of Pi. Throughout the novel, Pi makes his belief in and love of God clear-it is a love profound enough that he can transcend the classical divisions of religion, and worship as a Hindu, Muslim, and Christian. Pi, although amazed by the possibility of lacking this belief, still respects the atheist, because he sees him as a kind of believer. Pi's vision of an atheist on his death bed makes it clear that he assumes the atheist's form of belief is one in God, without his realizing it until the end. It is the agnostic that truly bothers Pi; the decision to doubt, to lack belief in anything, is to him inexcusable. This is underscored in that essential passage in the novel when Pi asks the Japanese officials which of his two stories they preferred-he sees no reason why they should not believe the better story Stories and religious beliefs are also linked in Life of Pi because Pi asserts that both require faith on the

* Assistant Professor of English, Govt Madhav Arts and Commerce College Ujjain (M.P.) INDIA

part of the listener or devotee. Surprisingly for such a religious boy, Pi admires atheists. To him, the important thing is to believe in something, and Pi can appreciate an atheist's ability to believe in the absence of God with no concrete proof of that absence. Pi has nothing but disdain, however, for agnostics, who claim that it is impossible to know either way, and who therefore refrain from making a definitive statement on the question of God,

Science and religion are brought together as equal ways of understanding the world. Pi's zoo upbringing and his relationship to the animals provide a scientific understanding of the world. His multiple religious philosophies and relationship with God provide a spiritual understanding of the world. He must combine his knowledge of science with his faith in order to survive on the lifeboat.

"I felt like a small circle coinciding with the center of a larger one." p. 62 . Pi's inspiration came from his childhood "prophets," Mr. and Mr. Kumar. In Chapter 31, where the two Kumars meet and enjoy the zoo with Pi there is a comfortable intermingling and even a crossing over of the biology teacher's knowledge and logic with the Sufi's spiritual understanding. These two seemingly opposite men move Pi to a double major, one zoology and one religious studies. Pi accepts both perceptions as part of understanding the world.

Seemingly opposing religions are brought together in Pi. Hinduism, Catholicism (or Christianity), and Islam are very different religions. However, they are all based on belief in one God. Though Brahman (Hindu) is expressed as countless different divinities, Christ (Christian) is one third of the Trinity that is God, and Allah (Muslim) is singular, each is a God of love. Man can have a personal relationship with God in each of the religions. The dogmas of each religion may contradict each other, but for Pi it is about faith, not about dogma. Just as he accepts science and religion as equal ways of understanding the world, Pi accepts all three religions as equal ways to know God.

His burgeoning need for spiritual connection deepens while at sea. In his first days on the lifeboat, he almost gives up, unable to bear the loss of his family and unwilling to face the difficulties that still await him. At that point, however, he realizes that the fact he is still alive means that God is with him; he has been given a miracle. This thought gives him strength, and he decides to fight to remain alive. Throughout his adventure, he prays regularly, which provides him with solace, a sense of connection to something greater, and a way to pass the time.

The Will to Live

Life of Pi is a story about struggling to survive through seemingly insurmountable odds. The shipwrecked inhabitants of the little lifeboat don't simply acquiesce to their fate: they actively fight against it. Pi abandons his lifelong vegetarianism and eats fish to sustain himself. Orange Juice, the peaceful orangutan, fights ferociously against the hyena. Even the severely wounded zebra battles to stay alive; his slow, painful struggle vividly illustrates the sheer strength of his life force. As Martel makes clear in his novel, living creatures will often do extraordinary, unexpected, and sometimes heroic things to survive. However, they will also do shameful and barbaric things if pressed. The hyena's treachery and the blind Frenchman's turn toward cannibalism show just how far creatures will go when faced with the possibility of extinction. At the end of the novel, when Pi raises the possibility that the fierce tiger, Richard Parker, is actually an aspect of his own personality, and that Pi himself is responsible for some of the horrific events he has narrated, the reader is forced to decide just what kinds of actions are acceptable in a life-or-death situation.

The primacy of survival is the definitive theme in the heart of the book.This theme is clear throughout his ordeal-he must eat meat, he must take life, two things which had always been anathema to him before his survival was at stake. Survival almost always trumps morality, even for a character like Pi, who is deeply principled and religious. When Pi tells the second version of his story to the Japanese men, this theme is highlighted even more vividly, because he parallels his survival instincts in the second story to Richard Parker in the first-it is he, when he must survive, who steals food, he who kills the Frenchman. If the first version of the story is seen as a fictionalized version of the second, the very fact that he divides himself from his brutal survival instinct shows the power of that instinct InLife of Pi, Pi Patel survives extreme hardships by adapting to his surroundings, finding the self-will to continue striving, and by never losing sight of what he believes in, his identity, which is his faith in God. Pi Patel is proof that if you believe in something, and have the will to pursue that belief, while adapting to current changes, you will survive. Without these strengths, would Pi Patel have survived? When placed in an unfamiliar environment, adaptations are essential to survival. Pi Patel realizes this, which is a primary reason why he survived the voyage of the Tsimtsum life boat. He realized that his vegetarian way of life ended on the day the boat sank, and he had to compromise his religious rules to survive. He also adapts to his surroundings, primarily with the 450-pound Bengal Tiger sharing his living quarters. Pi, the son of a zookeeper, realizes the only way he will not be killed by this killing machine would be to act instead of react. He begins training the tiger by exhibiting dominance, being the alpha-male and only by using a plain whistle and turtle shell as a shield.

Though Richard Parker is quite fearsome, ironically his presence helps Pi stay alive. Alone on the lifeboat, Pi has many issues to face in addition to the tiger onboard: lack of food and water, predatory marine life, treacherous sea currents, and exposure to the elements. Overwhelmed by

the circumstances and terrified of dying, Pi becomes distraught and unable to take action. However, he soon realizes that his most immediate threat is Richard Parker. His other problems now temporarily forgotten, Pi manages, through several training exercises, to dominate Parker. This success gives him confidence, making his other obstacles seem less insurmountable. Renewed, Pi is able to take concrete steps toward ensuring his continued existence: searching for food and keeping himself motivated. Caring and providing for Richard Parker keeps Pi busy and passes the time. Without Richard Parker to challenge and distract him, Pi might have given up on life. After he washes up on land in Mexico, he thanks the tiger for keeping him alive.

Richard Parker symbolizes Pi's most animalistic instincts. Out on the lifeboat, Pi must perform many actions to stay alive that he would have found unimaginable in his normal life. An avowed vegetarian, he must kill fish and eat their flesh. As time progresses, he becomes more brutish about it, tearing apart birds and greedily stuffing them in his mouth, the way Richard Parker does. After Richard Parker mauls the blind Frenchman, Pi uses the man's flesh for bait and even eats some of it, becoming cannibalistic in his unrelenting hunger.

Relationship Between Man and Beast

The bulk of the story of Pi and Richard Parker deals with the theme of humankind's relationship with the animal kingdom. In Pi's story the moral is that when humankind respects and understands the ways of the animal kingdom, the two can live together in relative harmony. This theme was a very important one to Pi and one he referred to throughout the book. Pi's discussion of this theme began early on with his thoughts on why zoos were not inhumane for the animals and continued throughout his castaway crisis. Pi had to balance his will delicately to live with his knowledge of animal behavior. His ability to manage the relationship successfully between himself and the animal kingdom present in the lifeboat allowed him to survive his ordeal.

Though Martel's text deals with the seemingly boundless nature of the sea, it also studies the strictness of boundaries, borders, and demarcations. The careful way in which Pi marks off his territory and differentiates it from Richard Parker's is necessary for Pi's survival. Animals are territorial creatures, as Pi notes: a family dog, for example, will guard its bed from intruders as if it were a lair. Tigers, as we learn from Richard Parker, are similarly territorial. They mark their space and define its boundaries carefully, establishing absolute dominance over every square inch of their area. To master Richard Parker, Pi must establish his control over certain zones in the lifeboat. He pours his urine over the tarp to designate a portion of the lifeboat as his territory, and he uses his whistle to ensure that Richard Parker stays within his designated space. The small size of the lifeboat and the relatively large size of its inhabitants make for a crowded vessel. In such a confined space, the demarcation of territory ensures a relatively peaceful relationship between man and beast. If Richard Parker is seen as an aspect of Pi's own personality, the notion that a distinct boundary can be erected between the two represents Pi's need to disavow the violent, animalistic side of his nature.

The Relativity of Truth

The relativity of truth is not highlighted as a major theme in Life of Pi until the last part of the novel, when Pi retells the entire story to make it more plausible to the officials who are questioning him. He then asks the officials which story they liked better, since neither can be proven and neither affects the information they are searching for-how the ship sunk. This question implies that truth is not absolute; the officials can choose to believe whichever story they prefer, and that version becomes truth. Pi argues to the Japanese officials that there is invention in all "truths" and "facts," because everyone is observing everything from their own perspective. There is no absolute truth.

Loss of Innocence

The theme of loss of innocence in Life of Pi is closely related to the theme of the primacy of survival. Its significance is reflected in the geographic structure of the book-in Part 1, Pi is in Pondicherry, and there he is innocent. In Part 2, Pi is in the Pacific Ocean, and it is there that he loses his innocence. That Part 2 begins, not chronologically with the Tsimtsum sinking, but with Pi inviting Richard Parker onto the lifeboat, also reflects this, for it represents Pi reaching out for what Richard Parker symbolizes-his own survival instinct. And it is this survival instinct that is at the heart of Pi's loss of innocence; it is this survival instinct that drives him to act in ways he never thought he could.

Throughout Part 2 there are other representative moments of a loss of innocence, besides the symbolic one of bringing Richard Parker onto the lifeboat. The most important of these is the death of the Frenchman, which Pi describes as killing a part of him which has never come back to life. That part can certainly be read as his innocence.

Works Cited

- Martel, Yann. "How I Wrote Life of Pi." 2008-10-17. <http://www.powells.com/fromtheauthor/martel.html>.
- Mishra, Pankaj. "The Man, or the Tiger?" New York Reveiw of Books 50, no. 5. 27 March 2003: 17-18.
- "The Open Sea." Wilderness Survival. 2008-10-28. <http://www.wilderness-survival.net/sea-1.php>.
- "Yann Martel." Gale Literary Databases, Contemporary Literary Criticism. 2008
- "Yann Martel." Literature Online biography. 2008

****

Exploration of Feminine Psyche in Cry the Peacock

Dr. Jyoti Vaidya *

The Rise of Feminism as a movement on the continent began with the crucial question that portrayal of women by male artist must be deficient for even the most imaginative of male writers is by no means equipped to give an authentic rendering of female sensibility. Of late there has been a tendency among the women Indian novelists writing in English to share this view. Women writers of all ages have a natural preference for writing about women characters. Anita Desai is no exception insofar as she has writing by and large about women characters and no wonder if most of her novels move around women characters. In her novels we come across women's mind and psyche in it varied moods and nuances. Cry the Peacock, is a novel mainly concerned with the theme of disharmony between husband and wife relationship. Here Anita Desai has dealt with a sterile women, highly sensitive and emotional, who is married to Gautama, a promising, prosperous and over busy practitioner of law. Gautama's sensibilities are too rough and practical to suit Maya. She is the pampered child of a Rai saheb , and is brought up in an atmosphere of luxury . Though Gautama is faithful husband who takes care of Maya and loves her in his own way Yet Maya is never satisfied and happy .She feels that Gautama never cares for her and does not have any feeling for her. The novel gives us an impression of the material incompatibility and unhappy conjugal life. The novel begins with the death of Maya's pet dog Toto. This event upsets Maya so terribly that she is off her mental balance. Being chillness she much attached to the dog and its seems that the dog was a child substitute.

But Gautama a practical man takes this event easy and makes arrangement for its burial, consoles Maya in his oven way and say that he would bring another dog for her. His indifferences hurts Maya. Toto's death may be trivial for Gautama, a rational and professionally busy man, but it matters a lot to Maya. Throughout the novel, we feel Gautama neglects emotional yearnings of Maya, though they live together yet, as a matter of fact Gautama knows very little about her. In order to console her he offers a cup of tea without realizing Maya's shattered state of mind. This mechanical gesture only makes her to brood over Gautama's insensitivity. Showing how little he knows of my misery, or how to comfort me. But then he knew that concerned me. Giving me an opal ring to wear on my finger, he did not notice the translucent skin beneath, the blue flashing veins that run under and out of the bridge of gold. (Emphasis added)........ Telling me to go to sleep while he worked at his papers, he did not give another thought to me .... it is his hardness - no, no, not hardness , but the distance he coldly keeps from me. His coldness and incessant talk on cups of tea and philosophy in order not to hear me talk and talking reveal myself. It is that my loneliness in this house (CP, p.9)

This example certainly gives us an idea of Anita Desai's art of reading women's psychic self, which reveals Maya's inner thoughts. Maya is a hypersensitive women, an introvert . Maya's tragedy is mainly caused by her loneliness, lack of proper response from her husband, non-reciprocation of feeling between the husband and wife, her childlessness and hypersensitivity. Maya on the one extreme is fragile, with deep cultural roots and refined sensibilities. On the other extreme is her friend Pom who absolutely does not bother and is a typical woman with love for clothes, jewellery, color, looks, "Lust for newness, for brightness, color and gaiety". Maya describes her as living in her painted world where there were no shadows of family, tradition and superstition.

Another character in the novel is Maya's friend Leila who has married a tubercular man against the wishes of her parents .She is a teacher in a girls' school .She married a man knowing his disease. Her attitude towards life is fatalistic. She is gloomy and ascetic wearing no jewellery or bangles. She is a contrast to Pom. In her fatalism there is a masochistic strain . Desai aptly comments that she "was those who require a cross, cannot walk without one"(CP, p.58) . If Maya is obsessed with the albino priest's prediction , Leila accepted her destiny and does not grudge or complain "it was all written in my fate long ago" (CP, p.59). If Maya is the pampered child, Leila's parents have broken all relations with her. They "had not seen her, written to her or in any way communicated with her since the day of her elopement". (CP.p.58)

Anita Desai not only explores and portrays the feminine psyche of common women but also of the subnormal bordering on abnormal woman. These are the women who because of various factors are under so much of mental stress that they cannot be called insane, but then certainly they are not totally

* Asst. Prof. Govt. Madhav Arts & Commerce College Ujjain (M.P.) INDIA

normal. The first character that comes to our mind is that of Maya who is hypersensitive and because of her loneliness she is almost a mental wreck. Anita Desai depicts the neurotic state of her mind. There are several examples when Maya sees the image of a lizaral, weird animal imagery used for externalizing the mental state of Maya. Later in the novel after she had pushed off Gautama from the roof top, she goes back to her father's house in Luckhnow. She retreats into the world of her childhood; absolutely cut-off from the present reality .She becomes a girl again lost in her world of picture looks and toys.

Child-like serenity of the girl, Maya, who sat somewhere upstairs , delightedly opening cupboards, pulling out drawers, falling upon picture-books and photographs with high , shrill cries of pleasure hugging them to her, dancing around the room with them, on airborne feet. (CP, pp. 12-13).

This mental retrogression suggests that Maya has not been able to adjust herself in the world of reality and after killing her husband, she mentally goes back of her protected and pampered childhood, the best part of her life. Thus in the character of Maya, Anita Desai has presented the feminine psyche of both a girl and a woman.

Work citied

- Cry, the Peacock, London, Peter omen 1963, New Delhi , Orient paperbacks 1990 .
- Shanta Acharya, "Problems of self in the novels of Anita Desai," Language Forum, VII April 1981 - March 1982.
- R.K.Dhawan , Exploration in modern Indo- English fiction , Delhi .
- N.K.Gopal , A Critical study of the novels of Anita Desai, New Delhi, Atlantic 1999 .

****

The Yoga of Action in Shri Aurobindo's 'Essays on Gita'

Dr. Jyoti Taneja *

Sri Aurobindo (1872-1950) was a major nationalist intellectual of the late nineteenth and early twentieth centuries. He rose to eminence as one of the most fundamental leaders of the Swadeshi movement. His predictions about India and the world are not based on intellectual analysis but on spiritual vision. Sri Aurobindo was a prolific and a dynamic writer and a poet. His great books The Life Divine, Essays on the Gita, The Human Cycle, Synthesis of Yoga and his great poem Savitri, stand as monumental literary and spiritual achievements.

He believed in the unity of all things material, intellectual, and spiritual, and a central theme that runs throughout all his writings is the divinization of life on earth. Aurobindo was born in Calcutta, his father, an eminent physician employed by the civil service, thoroughly embraced the Western way of life, Aurobindo had an English nanny, his first formal education took place at a convent school in Darjeeling and when he was seven years old he was sent to study in England. His work has been divided into two periods, the first dating from 1893, when he returned to India from England, until 1910 when he established an ashram, in Pondicherry, a French settlement in India.

He immersed himself in the Upanishads, the Bhagavad Gita, and other works of ancient Hindu philosophy and also trained himself with various systems of Yoga. This phase of his career is most notable for his active involvement in the struggle for Indian independence and was also associated with radical Indian nationalists and he became the leader of the revolutionary movement.

Though he did not promote terrorist activities yet justified violence as a last resort to achieving independence on the basis of his belief that the struggle was spiritual as well as political. In 1908 Aurobindo was imprisoned for nearly a year in Alipore(Calcutta) he had a deeply moving mystical experience that changed his political and spiritual outlook and Gita became a felt experience on his pulses as he says- "I was not only to understand (Gita) intellectually but to realize what Sri Krishna demanded of Arjuna and what he demands of those who aspire to do his work". This is The Gita as it was meant to be understood.

The metaphysical ideas expressed in The Life Divine take practical shape in Essays on the Gita and On Yoga I, in which Aurobindo explains his system of yoga and its role in preparing the soul to accept the Spirit. The 1970-72 publication of thirty-volume collected edition of Aurobindo's works by Aurobindo Ashram made his writings much more accessible to readers, particularly Westerners, since the 1970s he has received increasing attention from scholars in the field of Indian and comparative religious thought.

The paper is an attempt to understand the concept of Karamyoga as interpreted by Aurobindo in his Essays on the Gita. When a classical concept is reinterpreted by modern thinkers it is bound to take a new shape. In certain aspects the thinker may agree with the classical concepts, and in other aspects he may modify, enlarge, and amplify the essential meaning so as to meet both the philosophical and doctrinal requirements of the thinker.

Sri Aurobindo reinterpreted the Gita concept of Karma Yoga as a universal principle. The Gita begins with the talk of the confusion we have in this life, which is indeed a battlefield for us. Kurukshetra is symbolic. Kurukshetra means a field where you are performing your actions. In the Gita, Lord Krishna and Arjuna were standing at the Kurukshetra and that's where we are. Our Kurukshetra is where we have greed, attachment, anger, desire, pride and jealousy - all the 6 enemies that we have. We don't want to fight, which means we don't want to face. The first chapter also deals with how we change. One day we love someone, the next day we criticize. Today we surrender, tomorrow we take it back. Why? This is true for all human beings, not just you and me.

These are the natural behaviors of human beings. Mind will doubt, question, and create all kinds of wonders, problems, obstacles, and hurdles. It is like sitting on a roller coaster that is constantly going up and down, up and down. The objects of the world are so symbolic.

The roller coaster goes up slowly then immediately takes us down then goes up again. It goes up very gently, slowly, then forcefully goes down and makes us scared. We can come out from that roller coaster and make ourselves steady and establish equanimity, samata which comes with the realization of true nature of Aatma that is Parmaatma that is yoga…and then there is no longer a bumpy road or a roller coaster. Aurobindo says-the transference of our centre of being with a resultant change in the whole spirit and motive of our

* Assistant Prof. (Department of English) Shri Atal Bihari Vajpayee Arts and Commerce College. Indore (M.P.) INDIA

action, the action often remaining precisely the same in its outward appearances, makes the gist of karamyoga…make the work you have to do here your means of spiritual rebirth. Karamyoga in the Gita is the concept of Nishkam Karma. The Bhagwad Gita prescribes the doctrine of nishkaam karma as a means to not only attain moksha, the spiritual end but also to protect and maintain social goodness, which consists according to it, in the doing of dharma i.e. our duty in a detached manner. Nishkam Karma…or desire less action is as such not a kind of duty but a particular mode or manner of the doing of duty. It is the doer who can be said to be desireless not the karma. So when 'nishkam karma' is translated in the terms of desire less action, it should be taken to mean 'an action done by the doer in a desire less manner or spirit'.

The concept of nishkam karam as given in Gita is not that simple. While the Gita clearly has much more to say than to just be the "gospel of Karmayoga" there is no doubt that Karmayoga plays an important part in the Gita's exposition. This message of Gita is 'as fresh and still quite as new as it was when it first appeared in the frame of Mahabharta'. According to Aurobindothe influence is not just philosophic or academic,but immediate and living influencing both the thought and the action of man.

A normal human being is bound to have the feeling of conflict and frustration, pain and sufferings, sense-images and sense pleasure because the' existence of man is a triple web…it is material, mental and spiritual…had it been of one piece there would have been no problems arising due to the complexity of our existence.

Bhagwad Gita classifies all actions into two categories Sakarma (desireful) and Nishakam (desireless). The question thus arises naturally on what ground does the Bhagwat Geeta classify all action into desireful and desireless action?

Does it classify all action in the categories of desireful and desireless action? Does it classify on the ground of presence or absence of an element of desire for action…No it does not. Because the notion of absence of an element of desire from action involves in its meaning 'having no desire for action' and having 'no desire for action' means 'renunciation of action. And renunciation of action consists in giving up action and giving up action is non-action…ie akarma which Bhagwad Gita certainly does not propound. It is not the philosophy of non-action or in-action it is the philosophy of Action.

Physical renunciation of action represents a mistaken notion of the nature of action and the cause of bondage by action it is not possible to abandon action as long as we are in the human body. Some amount of physical action is going to take place. He says true liberation consists not in abstaining from action, whether physical or mental, but in separating oneself from entanglement that bewilders the senses and the intelligence, essentially rising above the action of the three Gunas(tamas (tamo guna), rajas (rajo guna) and sattaw (sato guna) , observing and supporting their action, but not being attached either to the action or its fruits.

Do we then detach ourselves from action? No, rather we should be completely focused on higher goals, while still being detached enough not to get overly upset by failure, or overly confident from success. In that way, detachment is more like attachment to a higher purpose.

This is the philosophy of karamyoga of the gita…every action has to be offered to the Lord as a sacrifice. Somehow, this is the most appealing idea - the idea that it isn't wrong to be attached to others, as long as we are making the effort to see the God in everyone (not just in those close to us), with the hopes that eventually we will be good enough to love everyone.

Also,working without purpose is very different from working without attachment. So instead of becoming disillusioned about the purpose and outcome of our work, perhaps it is more important to continue to work for good - while at the same time realizing that working is all that we can do; there is no realistic way to control the results of all of our actions. Krishna teaches Arjuna the way to resolve the dilemma of renunciation and action. Freedom lies, not in the renunciation of the world, but in disciplined action (karmayog). Disciplined action within the context of devotion is essential to the religious life envisioned in the Gita.

Krishna says "For by action, by works, not by inaction comes the knowledge and the release." Sri Krishna points out to Arjuna that action in the world is a complex subject and "…even the sages are perplexed and deluded." Clearly the understanding of action can only come with a spiritual insight and inner reflection as the basis.

Should we then decide to sacrifice selfish ends, renunciation looks like a better path. By renouncing the material world, we renounce its goods and bads. This culminates in the purging of our souls. Purged souls are clean. By extension, we too are clean.

All this is achieved without tackling the paradox of disinterested action and confronting the resolution of the means-ends connection in karmayog. To be sure, this method of purification may be as difficult as or even more so than karmayog. Why then, does Krishna instruct Arjuna otherwise? Why does Arjuna listen to Krishna and help destroy the Kauravas? The answer may lie in the fact that renunciation

implies cowardice and we fall in the trap of human ordinariness. We choose an easy way out, Sri Aurobindo's teachings are also on the similar line he says that these are not the ways of escaping from life.

Lord Krishna represents the teacher who guides you on the right path. Arjuna means a student who is dying for knowledge, who is inquisitive, always seeking for guidance from a competent teacher. He is not wasting time. Arjuna represents all of us. And Krishna explains desire less action: "For what we call ordinarily disinterested action is not really desire less, it is simply a replacement of certain smaller personal interests by other larger desires which have only the appearance of being impersonal, virtue, country, mankind."

What the Gita has pointed out clearly is that renunciation of action is in fact not possible, even if we try, as spiritual aspirants have tried, to reduce our interaction with the world. The Gita in effect states that the true renunciation is the separation of the intelligent will from attachment to action and its fruits, regardless of the form of action.Is KARAMYOGA the spiritual conception of the Gita simply concerned with action according of what one should do, or is it also broader with respect to what one should be?

The Gita's answer lies upon the oneness of all existence. It relies on a movement in consciousness rather than an act of physical renunciation that is illusory in its value or reality. The Gita sets forth a doctrine of doing "the work to be done" without attachment to the fruits of action, without desire. The question remains how to realistically accomplish this goal.The crux of the problem faced by anyone trying to implement the Gita's teaching of desireless action… is how exactly to overcome the impulsion of desire, both the obvious force of desire as commonly seen and understood, and the more subtle, yet very real impulsion of desire that accompanies "disinterested action".

Sri Aurobindo explains with respect to disinterested action: "For what we call ordinarily disinterested action is not really desire less; it is simply a replacement of certain smaller personal interests by other larger desires which have only the appearance of being impersonal, virtue, country, mankind."

We should remember here that the Gita has a broader view of sacrifice than what the word ordinarily means for us.

It is not a matter of practicing a rite or ritual necessarily, nor is it "giving up" something for a short period of time. Rather, it is the attitude of acting out of Oneness and devotion toward the universal Being of whom we are a part, and of which we are an element of his manifestation. So essentially we are asked to act for the purpose and in Oneness with the universal Being and treat all our action as an act and demonstration of our devotion.

The Gita's solution is to rise above our natural being and normal mind, above our intellectual and ethical perplexities into another consciousness with another law of being and therefore another stand point for our action...where dualities fall, where actions are no longer our own…when we become an instrument and no longer the cause, no longer provide the motive for He is the master of our works.

This is indeed the justification of Karamyoga as a practical means of the higher self-realization. The Gita says a Karamyogi offers his works to the Lord and by realizing the self grows into oneness with Him thus does everything not as his work but… as all His workings through him.

References

- Aurobindo, Sri. On Nationalism: Selected Writings and Speeches. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram; 1966, rpt. 1996, p.368.
- Essays on the Gita. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram; 1997,p.177.
- Essays on the Gita. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram; 1997,p.103-104
- Essays on the Gita. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram; 1997,p.103-104

****

Aristotle As Critic (Article)

Prof. Sorabh E Lal*

Abstract:- Aristotle was a great pupil of Plato, who was himself a great philosopher. Both viewed the universe as a system of particular things. Aristotle has given his contradictory views on various dramatic forms like fine art, useful art, poetry, comedy, tragedy and its different parts. In what ever sphere he worked solely and steadily for the object.

Aristotle confined himself to the ' theoretic life'. He wrote of politics but he was not a politician, he discovered on rhetoric but he was not an orator. He theorized on poetry but he was neither a poet nor a writer. He had a genius for distinction and classification. He is perfectly detached and is without any philosophical axe of his own to grind. He arrives at just generalizations by sheer headedness and a humane good sense. He returns to the theory of Being or Essence as the first cause of every existence.\

It was Aristotle who for the first time gave serious thoughts to the problem of Tragedy and enunciated a theory which remains Important even today on account of its inherent elasticity and comprehensiveness. As it is well known that Aristotle's method was empirical -that which impresses us is the simultaneous presentation of conclusions arrived at by a pragmatic process and abstract thoughts of a philosophical nature. In order to fully appreciate Aristotle's criticism of poetry and the fine arts it is essential to have some knowledge of literary criticism in antiquity prior to him. It is also essential to have an idea of the views of Aristotle on ethics and morality in general.

According to Aristotle the poets or the artist's work was not a slavish or serile copy of the objects and the persons of this world. He gave an entirely new orientation to the concept of mimesis. In his view, every poet or artist looked at this world in his own way, and therefore depicted what he saw according to his own perceptions. The poet or the artist did not offer to the world an exact reproduction of this world, but improved upon what he saw and to some extent, idealized the things which he saw. The poet therefore stated the poet's truth, and did not state the literal facts which he observed I nlife. For this reason, Aristotle argued, poetry was a more philosophical and a more universal thingthan history and dealt with the universal.

According to Aristotle, art is not a tame or exact imitation of reality, twice removed from the truth. The poet is connected with truth and with what is significant in human nature and human conduct and he is concerned with the universals of life. According to him ' poetry imitates not only the externals but also internal emotions and experiences'. Poetry, by exciting the emotions chiefly of pity and fear brought about the catharsis or purgation of these emotions and thereby established a state of emotional balance in the readers poetry, according to Aristotle proved an outlet for the emotions, thereby bringing about and keeping the readers in, a state of emotional health. In this respect poetry acted like a homeopathic treatment to the human emotions. The purgation wrought by poetry brought with it a certain exhilaration, and resulted in a feeling of pleasure for the reader.

Aristotle, also liberated poetry and fine art from their slavery to the didactic view of literature and the other arts. He rendered a certain kind of pleasure to poetry, and that , whatever instructions they provided was something secondary. He was a pioneer of the didactic view of literature, because he declares that pleasure was the chief aim of poetry. The poet, whether epic, tragic or comic, abound in the vulgar, the sensational and the corrupt. Reason is thus kept in a abeyance and full sway is given to the emotions. Poets give way to emotional disturbances. Poetry has a debilating effect, it leads to loss of balance, with feelings unrestrained by either reason or principle. Aristotle came to his conclusions about poetry and the other fine arts on the basis of his study of the existing literary and artistic works. In this poetics also, Aristotle take it for granted that a work of art, whether it be a picture, drama or a poetry, is a thing of beauty, and that is affords pleasure appropriate to its own kind.

In this study or research, his aim was largely practical. He was anxious to show that the effect of tragic drama upon the spectators was something good for them. He pointed out that emotions must have an outlet and that tragic drama provided a safety-valve for the emotions of the spectators. If people try to bottle -up their feelings, the accumulated surplus might explode in violent and irrational conduct. It is the object of tragedy to produce pleasure; and that is the reason why we enjoy tragedy. Aristotle has discovered the fundamental principles of dramatic art, introduces a moral consideration and that it is this which affects his distinction between tragedy and comedy.

* Asst. Prof. of English Deptt. Govt College Sailana (M.P.) INDIA

He defines tragedy as an imitation of an action that is serious, complete and of a certain magnitude, in language embellished, with each kind of artistic ornament, the several kinds being found in separate part of the play, in the form of action not of narrative, through pity and fear effecting the proper purgation of these emotions. The definition says that ' tragedy is an imitation not of men but an imitation of an action by men.'

While defining tragedy, Aristotle writes that the function of tragedy is to arouse the emotions of pity and fear and in this way to affect the Catharsis of these emotions. He has used the term Catharsis only once. This Greek word has three meaning- purgation, purification and clarification. Aristotle is defining in his view that the aim of tragedy is to give pleasure, a peculiar kind of pleasure which accompanies the release of feeling effected by a tragic performance.

These are all person like ourselves , whom we see on the stage in tragic performance like Othello, Macbeth etc yet somehow raised to a higher dignity. We fully share their feelings in such a way that tears come into our eyes, thus giving an outlet to our pent-up feeling and producing a sense of pleasurable relief.

All the critics agree that Tragedy arouses pity and fear, but there are sharp differences as to the process, the way , by which the rousing of these emotions gives pleasure. According to Aristotle, the function of tragedy is to present life through an ennobled image. In chapter II of the poetics he makes it clear that tragedy imitates men better than what they are.

****

दिनकर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन

प्रीति शुक्ला * प्रवीनलता **

दिनकर पर अभी तक अनेक शोध हो चुके हैं यथा- युगचारण दिनकर, आलोचक दिनकर, युग कवि दिनकर, राष्ट्रकवि दिनकर, जनकवि दिनकर आदि किन्तु उनके साहित्य का साँस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन अभी तक किसी ने नहीं किया है। जबकि सच्चाई यह है कि आपके सम्पूर्ण साहित्य में सांस्कृतिक भावधारा और जनजागरण की उदात्त चेतना सर्वत्र विद्यमान है। हिन्दी साहित्य में आपका प्रकटीकरण साँस्कृतिक अवतरण की तरह हुआ है। आपकी लगभग सभी कृतियों में साँस्कृतिक अनुगूंज संयत रूप मे सर्वत्र विद्यमान है। समग्र दिनकर साहित्य में भारतीय साँस्कृतिक भावधारा का अविरल प्रवाह सतत् रूप से हुआ है। उनकी उर्वशी से लेकर परशुराम की प्रतीक्षा तक सभी कृतियों में संस्कृति की उष्ण धारा वेग के साथ, सतत् प्रवाहित हुई है। भारतीय संस्कृति की युगानुरूप अभिव्यक्ति का जैसा प्रखर स्वर आपके साहित्य में व्यक्त हुआ है, वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। आपकी काव्य कृतियाँ संस्कृति से उत्पन्न उज्जवल रत्न हैं।

यद्यपि उनसे पूर्व के कवियों, यथा भारतेन्दु हरिश्चंद्र, हरिओम, मैथिलीशरण, माखनलाल, नवीन आदि में साँस्कृतिक भाव धारा की कम अभिव्यक्ति नहीं हुई है, तथापि दिनकर की रचनाओं में व्यक्त ओजस्वी स्वर ने एक ऐसे सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण किया जिसने भारतवासियों में अद्भूत साहस, शौर्य, वीरता और शक्ति का संचार किया। आपके काव्य में व्यक्त साँस्कृतिक विचारों ने, देश में परम्परा और रूढ़ियों की जड़ता को खत्म कर नवयुग सृजन का आव्हान किया। आपके काव्य ने देश में साँस्कृतिक नवजागरण की लहर पैदा कर विशुद्ध साँस्कृतिक क्रांति को जन्म दिया, जिसके अनुकरण पर आगे चलकर जे.पी. ने देश में समग्र क्रांति आन्दोलन चलाया। दिनकर के काव्य में विद्युत के समान प्रवाहित साँस्कृतिक चेतना से पाठकों को परिचित कराना मेरे इस शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य है। वे देश में साँस्कृतिक भावनाओं के संवाहक कवि है। भारतीय जनजागरण में उनके साँस्कृतिक योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनके काव्य में निहित साँस्कृतिक संवेदनाओं को शोध के द्धारा प्रकट करना मेरे शोध कार्य का प्रमुख लक्ष्य है। उन्होंने देश की समस्याओं का हल भारतीय संस्कृति में खोजा। देश को विदेशी परतंत्रता से मुक्ति दिलाने हेतु भारतीय साँस्कृतिक पुनर्जागरण की लहर को गति प्रदान की। उनके काव्य के साँस्कृतिक स्वरूप पर ध्यान अभिकेन्द्रित कर उससे पाठकों को अवगत कराना मेरे इस शोध कार्य का मूल लक्ष्य है। दिनकर साहित्य पर हुए अभी तक के शोध कार्यो में उन्हे राष्ट्रकवि, जनकवि, युगचारण कवि, समीक्षक आदि के रूप मे प्रोजेक्ट किया गया है। उनके व्यक्तित्व और कृतिव पर भी अनेक शोध हुए हैं, लगभग सभी शोध ग्रंथों में उनकी काव्य शैली तथा राष्ट्रकवि रूप को ही प्रमुखता मिली है। उनके साहित्य में व्यक्त साँस्कृतिक विचारों का स्वतंत्र विवेचन किसी ने नहीं किया है। उनके विविध वैचारिक आयामों को ही सबने अपने-अपने शोध का विषय बनाया है। यदि दिनकर, साहित्य का साँस्कृतिक अध्ययन किया जाए तो निश्चय ही उनके काव्य व्यक्तित्व पर नया प्रकाश पड़ेगा वे साँस्कृतिक सम्वेदनों को आगे बढ़ाने वाले कवि के रूप में हमारे सामने आएँगे। उन्होंने युद्ध जैसी भयावह समस्या का हल संस्कृति के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में व्यक्त ओजस्वी स्वर यदि उन्हे राष्ट्र कवि सिद्ध करता है तो उनके काव्य में प्रवाहित साँस्कृतिक काव्यधारा उन्हें युग पुरूष मानने को बाध्य करती है। जिसने अपनी रचनाओं के माध्यम से युगान्तर उपस्थित किया। सम्पूर्ण दिनकर साहित्य का मूल स्रोत भारतीय संस्कृति है। उनके जनकवि, युगकवि, राष्ट्रकवि, युगचारण कवि, समीक्षक आदि सभी रूप भारतीय संस्कृति की मजबूत बुनियाद पर ही अवलम्बित है। संस्कृति को परे रखकर उनके काव्य का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। वस्तुत: संस्कृति उनके समग्र साहित्य की आत्मा है। जैसे आत्मा के बगैर जीवन अस्तित्वहीन है, वैसे ही संस्कृति के बिना दिनकर साहित्य का अध्ययन नामुमकिन है। दिनकर साहित्य के सांस्कृतिक अध्ययन से पाठकों को दिनकर साहित्य को समझने में पूर्ण मदद मिलेगी। वे इसकी पृष्ठभूमि को समझने में किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव नहीं करेंगे। इसके अध्ययन से वे यह जान पाएँगे कि संस्कृति के प्रति गहन सम्पृक्ति ही कवि को नई उंचाईयाँ प्रदान कर उसकी कृतियों को कालजयी बनाती है। परम्परा और संस्कृति से अलग होकर कोई भी कवि न तो महान हो सकता है और न ही अपने सृजन को धार दे सकता है।

दिनकर जी के साहित्य में संस्कृति रची-बसी हुई है। यही कारण है कि उनकी मृत्यु के आज पाँच दशक बाद भी हम जन्म शताब्दी मनाकर, शोध, सेमीनार कर उन्हें तथा उनके साहित्य को याद कर रहे हैं। उनकी रचनाओं में वर्तमान समस्याओं का हल खोज रहें हैं। उनके साहित्य की प्रासंगिकता जितनी पहले थी उतनी आज भी है। उनके साहित्य में संस्कृति का चित्रण सर्वाधिक है। उनकी सभी कृतियों का कथ्य, चरित्र और परिवेश साँस्कृतिक है। उनकी संस्कृति के चार अध्याय कृति भारत की प्राचीन, मध्य और आधुनिक संस्कृति का प्रतिबिम्ब कही जा सकती है। आपने इसमें संस्कृति और इतिहास को परस्पर जोड़ दिया है।- इस शोध ग्रंथ के अध्ययन से पाठकोंमें अपनी संस्कृति को जानने की जिज्ञासा पैदा होगी। उनके मन में स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न भी उठेगा कि कवि दिनकर को भारतीय संस्कृति के किन बिन्दुओं ने सर्वाधिक प्रभावित किया ? जिसका समाधान उन्हें इस शोध ग्रंथ में मिलेगा हमारे धर्मग्रन्थों में वर्णित कौन-सी परिस्थितियों, घटनाओं और चरित्रों नें उन्हे सर्वाधिक प्रभावित कर सृजन की वेदना पैदा की ? इस प्रश्न का समुचित समाधान इस शोध ग्रंथ मिलेगा।

इस शोध कार्य से पाठकों की सोच और चिन्तन में बदलाव आएगा। दिनकर के अनछुए पहलुओं के अध्ययन से पाठकों के मौलिक ज्ञान में वृद्धि होगी। उनके विचारों में रचनात्मक परिवर्तन आएगा। राष्ट्रकवि दिनकर के जीवन और सृजन से पाठकों को प्रेरणा प्राप्त होगी। इन सब बातों से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि- दिनकर की सम्पूर्ण काव्यचेतना, भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित है। दिनकर की प्रसिद्धि और उनकी कालजयी अभिजात कृतियों के परिपार्श्व में,यही सांस्कृतिक चेतना कार्य कर रही है। वे और उनकी साहित्यिक कृतियां भारतीय संस्कृति की सजीव अभिव्यक्ति है। उनकी रचनाओं में सम्प्रेषित सांस्कृतिक विचारों ने, देश मे व्यापक, सामाजिक,राजनीतिक और सांस्कृतिक क्रांति का वातावरण निर्मित किया, जिसकी परिणति देश की आजादी मे हुई। इस शोध ग्रंथ से पाठकों यह जानकारी मिलेगी कि-वर्तमान समय को भयावह और नरक बना रही, आतंकवाद, नक्सलवाद, अन्याय, शोषण, उत्पीड़न, भ्रष्टाचार,कदाचार, आर्थिक अनियमितताएं एवं आलस्य जैसी समस्याओं का आदर्श और वैज्ञानिक समाधान दिनकर साहित्य मे मौजूद है।

* शोधार्थी, ** शोधार्थी, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

इतना ही पाठकों को इससे यह भी ज्ञात होगा कि– सांस्कृतिक विरासत को अपने भीतर समेटे, दिनकर की रचनाओं में गहरे, सामाजिक सरोकार निहित है। उनमें हर वर्ग की समस्याओं और उनके समाधान का चित्रण है। धर्म, जाति पर आधारित भारतीय समाज व्यवस्था का विशद चित्रण आपने किया है। इनकी अच्छाईयों और बुराईयों का विवेचन कर उनका आदर्श समाधान प्रस्तुत किया है। आपका विपुल साहित्य, पाठकों के लिए सदैव प्रेरणा और ज्ञान का स्रोत बना रहेगा। मेरे इस शोध कार्य से पाठकों को भारत के अतीत के विषय में जानकारी मिलेगी। उन्हें ज्ञात होगा कि– भारतीय स्वातंत्रेय समर के दौरान रचित दिनकर की काव्य रचनाओं में, सांस्कृतिक संवेदनाओं की युगानुरूप सफल अभिव्यक्ति हुई है। उनकी काव्य रूप, भारतीय संस्कृति से सर्वाधिक प्रभावित है। शोध कार्य के अध्ययन से लोगों का ध्यान भारत के समृद्ध और गौरवशाली अतीत की ओर जायेगा। भारत के अतीत मे हुई सामाजिक,आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति से उनका परिचय होगा। वे यह जान सकेंगे कि हमारी किन कमियों और बुराईयों के कारण यह समृद्ध देश विदेशियों का गुलाम बना। लगभग 700 वर्षो तक उनके अन्याय, अत्याचारों को सहते हुए गुलाम बना रहा। वे यह सोचने पर विवश होंगे कि– इन कमियों और बुराईयों से कैसे दूर रहा जाए– ताकि फिर से गुलाम न बने। इस शोध कार्य के अध्ययन से उन्हें यह भी अनुभव और ज्ञान होगा कि– साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी ताकतों से लड़ने की शक्ति, देश उनसे आजाद कराने की प्रेरणा विदेश से आयातित नहीं थी। बल्कि उसके बीज हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत में ही निहित थे। उसकी ऊर्जा, ताकत और प्रेरणा हमारी संस्कृति से प्राप्त हुई थी। बंकिम,रविन्द्र, भारेतेन्दु, शरद, हरिऔध, मैथिलीशरण, माखनलाल, दिनकर आदि सभी उसी संस्कृति के कड़ी थे, जिनकी काव्य वाणी ने देश में आजादी की लहर पैदा की। युवा पीढ़ी के हृदय मे देशभक्ति का जोश और ज्वर पैदा कर देश को आजादी के मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ाया। अन्तत: सभी के प्रयत्नों से देश को आजादी प्राप्त हुई।

शोध कार्य के दौरान कवि दिनकर जी द्वारा रचित सभी काव्य कृतियों और गद्य रचनाओं का सांस्कृतिक दृष्टि से, गहराई से अध्ययन किया जाएगा।उन पर लिखी गई विविध पुस्तकों, समीक्षाओं आदि का अध्ययन कर , शोध कार्य की अपेक्षाओं को पूरा किया जाएगा। समय–समय पर निकले दिनकर पर निकले विशेषांकों, अभिनंदन ग्रंथों की इस शोध कार्य मे मदद ली जाएगी। दिनकर जी की जीवनी, साक्षात्कार, संस्मरण आदि का अध्ययन कर उपयोगी सामाग्री का शोध कार्य हेतु, संकलन किया जाएगा। दिनकर पर हुए विविध सेमीनारों और उनकी स्मारिकाओं का अध्ययन भी शोध कार्य को संपन्न करने में सहायता पहुंचाएगा। दिनकर की विभिन्न काव्यकृतियों जैसे, हुंकार,रेणुका,विपथगा, द्वन्द्वगीत, रसवन्ती,सामधेनी, प्रणभंग, इतिहास के आँसू, कुरूक्षेत्र, धूप और धुंआ, रश्मिरथी,दिल्ली, उर्वशी, धूप–छांव, परशुराम की प्रतिक्षा, नीम के पत्ते, सूरज का ब्याह, नए सुभाषित, चक्रवाल, सीपी और शंख, कोयला और कवित्व, आत्मा की आँखे आदि तथा उनकी गद्य रचनाएं मूर्ति तिलक, मिट्टी की और काव्य की भूमिका, भारत की सांस्कृतिक एकता, रेती के फूल, वेणुवन, भारतीय एकता, अर्द्धनारीश्वर, देश–विदेश, धर्म, नैतिकता और विज्ञान, उजली आग, पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण, मिर्च का मजा, शुद्ध कविता की खोज, संस्कृति के चार अध्याय आदि का विशुद्ध सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन किया जाएगा और इनमें इतिहास, समाज व्यवस्था , शिक्षा, भाषा , धर्म, रीति–रिवाज, दर्शन, कला, विचार,विश्वास, मूल्य, मान्यताएं, परंपराएं आदि बिंदूओं का विशद और गहन अध्ययन किया जाएगा जो शोध को महत्व तथा गरिमा प्रदान करेगा। इस अध्ययन मे उनकी साहित्यिक कृतियों का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन करते हुए, उनकी विषय वस्तु, पात्र योजना, संवाद कौशल, देश काल और वातावरण भाषा शैली, उपदेश और संदेश का प्रासंगिक रूप से उल्लेख किया जाएगा ताकि दिनकर जी के समग्र साहित्य का, सांस्कृतिक स्वरूप उभर कर सबके सामने आ सकेगा। उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण और कालजयी रचना–संस्कृति के चार अध्याय का अध्ययन किया जाएगा। जिसमें भारतीय संस्कृति की सामाजिकता की परिकल्पना को सोदाहरण स्पष्ट किया जाएगा। इसी वृहद रचना मे उन्होने भारत की चार बड़ी सांस्कृतिक क्रांतियों का उल्लेख किया है जिनमें प्रथम का स्वरूप भारत मे आर्यो का आगमन और आर्योत्तर जातियों से संबंध बढ़ाना है। द्वितीय क्रांति के दर्शन बुद्ध और महावीर द्वारा स्थापित, धर्म के विरूद्ध विद्रोह में होते हैं। तृतीय क्रांति इस्लामिक कट्टरता और फिर हिंदू धर्म से मेल मिलाप मे देखी जा सकती है। और चतुर्थ क्रांति का स्वरूप यूरोपियन शक्तियों का भारत मे आगमन है। इन सभी का अध्ययन सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया जाएगा।

दिनकर साहित्य के साँस्कृतिक अध्ययन – प्रस्तावित शोध ग्रन्थ से आधुनिक पाश्चात्य काव्य शास्त्र के आधुनिक आलोचक टी.एस. इलियट के प्रसिद्ध परम्परा सिद्धान्त की एक बार फिर पुष्टि होगी, जिसमें उन्होनें काव्य रचना में परम्परा को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है और कवि को अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र कहा है। वैयक्तिक प्रतिभा के स्थान पर आपने परंपरा को सर्वाधिक स्थान दिया है।कवि के मस्तिष्क को सक्रिय शक्ति न मानकर उसे प्रभावों को ग्रहण करने वाली निष्क्रिय शक्ति माना है। आपको काव्य को कवि के व्यक्तित्व की सीधी अभिव्यक्ति न मानकर उसे व्यक्तित्व से पलायन की प्रवृत्ति कहा है। परंपरा से उसका अभिप्राय पूरानी पीढ़ी या पीढ़ीयों की काव्य प्रवृत्तियों का निष्क्रिय अनुगमन नहीं बल्कि ऐतिहासिक बोध से है।ऐतिहासिक बोध से आशय केवल अतीत को उसके अतीतत्व मे देखना ही नहीं बल्कि उसे उसके वर्तमान रूप में ही देखना है।स्वयं इलियट के शब्दों में– परंपरा से तात्पर्य उन सभी स्वाभाविक कार्यो रीति–रिवाजों, धार्मिक कृत्यों से है, जो एक स्थान पर रहने वाले एक समुदाय के व्यक्तियों के रक्त संबंधो को व्यक्त करते है। इस कथन का स्पष्ट आशय यही है कि– परंपरा का संबंध संस्कृति से है।और वह अपनी प्रगति मे जातीय जीवन, कला, दर्शन और साहित्य के उत्कृष्ट अंशों स्वयं मे सन्निविष्ट करती जाती है। अर्थात् उसकी अविच्छिन्न धारा सतत् प्रवाहित होती जाती है। जिससे अतीत, वर्तमान और भविष्य परस्पर संबद्ध होते है। इस शोध ग्रंथ से इस धारणा को बल मिलेगा कि हमारी राष्ट्रीय धारा में भारत की सांस्कृतिक एकता का स्वर विद्यमान है। यह भारतीय सांस्कृतिक एकता और अखंडता की भावना दिनकर और उसके समकालीन कवियों मे समान रूप से व्यक्त हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भगवतीचरण वर्मा के उपान्यासों का साँस्कृतिक मूल्यांकन – डॉ.सत्यवीरसिंह भगेरिया
2. साहित्यिक निबंध – डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त
3. आधुनिक साहित्य – पं.नंददुलारे वाजपेयी
4. हिन्दी साहित्य 20 वी शताब्दी – पं.नंददुलारे वाजपेयी
5. दूसरी परम्परा की खोज – डॉ.नामवर सिंह
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ.रामकुमार वर्मा
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ.राममूर्ति त्रिपाठी
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास – पं.राजनाथ शर्मा
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शु:ल
10. हिन्दी साहित्यकारों से साक्षात्कार – रणवीर संग्रा
11. हिन्दी कविता का प्रवृत्तिगत इतिहास – टंडन तथा विनिता
12. हिन्दी साहित्य:युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ.शिवकुमार शर्मा
13. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि – डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना

कबीर वाणी में सच के साक्ष्य

डॉ.कमलेशसिंह नेगी *

हिन्दी काव्य के आधुनिक काल में जिन प्राचीन कवियों को आज के संदर्भ में सर्वाधिक प्रासंगिक माना गया है कबीर उनमें प्रथम स्थान के अधिकारी हैं। नयी कविता की अनेक प्रवृत्तियाँ चाहे वे जीवन मूल्यों से सम्बद्ध हों, चाहे अभिव्यक्ति-शिल्प से ये सभी तत्व कबीर के काव्य में बीज रूप में पाए जाते हैं। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है। स्वर्णयुग माने जाने की तह में जब हम जाते हैं तो पता चलता है कि भक्तिकालीन निर्गुण संत कवियों की कविता के केन्द्र में समाज है। जनमानस है, इसीलिए इनकी कविता कालजयी हो सकी। आज लोकतांत्रिक युग है जहाँ पर सभी बातों का मूल्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आंका जाता है। यद्यपि भक्तिकालीन कवियों की अपनी एक दुनिया थी जहाँ वह अपने आराध्य की लीलाओं में मग्न थे फिर भी वह समाज निरपेक्ष नहीं रह सके। जब बात कबीर की आती है तो यह निर्विवाद रूप से माना जाता है कि तत्कालीन समाज की रीति-नीति उन्हें उद्वेलित कर रही थी, इसीलिए बार-बार जिज्ञासु कबीर की कविता सामाजिक चेतना में गोता लगाती है।[1]

संत कबीर का आविर्भाव मध्यकाल के तिमिराच्छन युग में ज्ञान का दीपक लेकर अवतरित हुए। कबीर ने सामाजिक स्तर पर व्याप्त पाखण्ड एवं अन्धविश्वास का पूरी दृढ़ता के साथ खण्डन किया है। मिथ्या आडम्बरों के प्रति जैसी अनास्था संत कबीर ने व्यक्त की, वैसी न तो पहले कभी कोई कवि या समाज सुधारक कर सका था और नहीं परवर्ती युग में ही किसी का वैसा साहस हो सका। कबीर गम्भीर और भेदक दृष्टि के कवि थे। अपनी इसी दृष्टि से उन्होंने सामाजिक अधोगति एवं पतन का कारण देखा और एक सत्य का स्वरूप उपस्थित कर उसे सुधारने का प्रयत्न किया। कबीर ने समाज को अपनी राह से भटकता देखकर कहा है-

'एक न भूला दो न भूला, भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाके राम अधारा।।'[2]

कबीर की मान्यता है कि सम्पूर्ण संसार एक ज्योति से ही उत्पन्न हुआ है तो ब्राह्मण और शूद्र में भेद-भाव क्यों किया जा रहा है। यथा-

'एक बूंद एक मल, मूतर एक, चाम एक गुदा।
जग एक ज्योति तैं सब उपजा, कौन ब्राह्मण, कौन सूदा।'

स्थिति को समझने और उससे जूझने की कबीर में विलक्षण शक्ति थी। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि हिन्दू-मुसलमानों के बीच जो मतभेद है, संघर्ष है उसके मुख्य कारण अन्धविश्वास और बाहरी आडम्बर हैं, जबकि उनके मौलिक तत्व तो एक ही हैं। कबीर का भाषा पर असाधारण अधिकार था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तो उन्हें वाणी के डिक्टेटर मानते हैं। अत: कबीर ने अपनी ''लुकाठी'' के रूख को उधर मोड़ा सन्त और गृहस्थ, हिन्दू और मुसलमान किसी को नहीं बक्शा। उन्होंने कहा कि यदि नंगे रहने से मुक्ति मिलती होती तो वन के सभी हिरण स्वर्ग में होते। गंगा स्नान करने से स्वर्ग मिलता तो उसकी सभी मछलियाँ जीवन-मरण के बन्धन से कभी मुक्त हो गयी होती। उनका कहना था कि जटा और दचढ़ी बढ़ाकर साधु ''बकरा'' भले हो जाये स्वर्ग के अधिकारी नहीं हो सकते हैं। मुंडन कराने से भी कुछ लाभ नहीं हो सकता है। यदि कुछ लाभ होता तो दुनियाँ में एक भी भेड़ देखने को नहीं मिलती। सभी को मुक्ति मिल गयी होती। असली चीज तो नाम है। आसन से मंदिर में बैठने और पत्थर के पूजने में कुछ भी आने-जाने को नहीं। कबीर ने मुसलमानों को बेमानी रोजा-नमाज, मुल्लाओं को ऊँची आवाज में नमाज पढ़ने और ''सुन्नत'' को इस्लाम धर्म का अभिन्न अंग मानने के लिए उन्हें आड़े हाथों लिया। उनका कहना था कि यदि खतना कराना इतना जरूरी था तो माँ के पेट में ही करा कर क्यों नहीं आये और औरतों को कैसे मुसलमान मानते हो? वे तो उसके बिना हिन्दू और मुसलमान दोनों के घर में रहती हैं। आचार्य द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' में ठीक ही कहा है कि- ''बाह्याचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी कबीर को पसन्द नहीं थी।''[3]

तत्कालीन समाज में व्याप्त छुआछूत को कबीर ने नजदीक से देखा था। इस कुरीति को मिटाने के लिए संत कबीर ने आजीवन संघर्ष किया था। उन्होंनें पंडितों की 'नौ कनौजिए तेरह चूल्हे' की प्रवृति पर तीव्र कुठाराघात किया है। यथा-

'काहे कीजै पाण्डे छोति विचारा।
छोतहिं से उपजा संसारा।।

संत कबीर ने मूर्ति पूजा का तीव्र खण्डन किया है। उन्होंने देखा कि ये मूर्तियाँ ही मनुष्य-मनुष्य के बीच तफक्का पैदा कर रही हैं। ये ही मूर्तियाँ आपस में लड़ने झगडने का कारण बनी हुई हैं। इनकी निसारता पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है-

'पाहन पूजे हरि मिलें, हम लें पूज पहार।
घर की चाकी कोई न पूजै, पिसा खाय संसार।।'[4]

हिन्दुओं के साथ-साथ उन्होंने मुसलमानों को भी फटकारे हुए कहा है-

'कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।'

धर्म के नाम पर ठगी करने वाले उन हिन्दू पण्डितों एवं मुस्लिम अनुयायियों व मुल्ला मौलवियों को जमकर लताड़ा। दोनों धर्मों में धर्मावलम्बी अपने-अपने धर्म की बहुत बढ़ाई करते हैं। संत कबीर ने ऐसे पथभ्रष्ट धर्मावलम्बियों की कड़े शब्दों में खबर ली है-

हिन्दू अपनी करे बढ़ाई, गागर छुअन न देई।
वैश्या के पायनतर सोवै, यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर औलिया, मुरगी-मुरगा खाई।
खाली केरी बेटी ब्याहै, घर में करै समाई।

कबीरदास जी ने इस्लाम और हिन्दू दोनों ही धर्मावलम्बियों की आलोचना करते हुए लिखा है कि

ना जाने तेरा साहिब कैसा है।
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहिब तेरा बहरा है
चिउँटी के पग नुपुर बाजे सो भी साहब सुनता है।
पण्डित होय के आसन मारे लम्बी माला जपता है।
अन्दर तेरे कपट कतरनी सो भी साहब लखता है।

डॉ. श्याम सुन्दर दास ने कबीर ग्रन्थावली की भूमिका में ठीक लिखा है कि ''कबीर का सारा जीवन अन्धविश्वासों का विरोध करने में ही बीता था।''5 कबीर जी ने समाज की आचरण भ्रष्टता को दूर किया है। तत्कालीन समाज के लिए ये बड़ा उपकार था। कबीर ने आचरण की पवित्रता की पुरजोर वकालात की है।

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) चन्द्रशेखर आजाद शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.) भारत

'सो चादर सुर नर मुनि ओढी,
ओढि के मैली कीन्ही चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढी,
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।' [6]

कबीर को हम मात्र निर्गुण भक्ति-धारा के दायरे में नहीं बाँध सकते। यदि इनका सम्पूर्ण मूल्यांकन करना है तो, हमें भजन-कीर्तनवादी दायरे से उन्हें बाहर निकालकर समझना होगा। इनके काव्य में अभिव्यक्त उन सामाजिक मूल्यों की पड़ताल करनी होगी जिनकी वजह से कबीर सदियों से अपढ़ एवं सुपढ़ समग्र भारतीय जनमानस को समान रूप से आकर्षित करते रहे हैं। आखिर वह कौन-सी बात है, जिसके कारण प्रात: हर घर में कबीरवाणी सुनी जाती है। इन सब की तह पर जाने से पता चलता है कि कबीर को जिस स्रोत से सदियों से ऊर्जा मिल रही थी वह उनकी 'सामाजिक चेतना एवं मूल्यों के प्रति निष्ठा'।[7] यथा-

'वैश्नो भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।
छापा तिलक बनायकर दग्ध्या लोक अनेक।।

कबीर के पास धर्म दर्शन भक्ति और चरित्र निर्माण के लिए अपना निजी संदेश था । धर्म के क्षेत्र में संकीर्णता के ये घोर विरोधी थे। दर्शन के क्षेत्र में अद्वैत दृष्टि से एकेश्वरवाद के समर्थक थे। कबीर के विचारों का आधार कोई एक मत या विचारधारा नहीं है। अद्वैतवाद वैष्णवों की भक्ति भावनाओं सिद्धों-नाथों की सहज सरल साधना आदि का जिस पद्धति से उन्होंने सामंजस्य किया था वह सर्वत्र सुलभ थी हिन्दू धर्म की मिथ्या धारणाओं का खण्डन करते समय उनके मन में भय का संचार नहीं होता था। कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि मैं चौराहे पर सिर पर कफन बांधकर खड़ा हूँ सत्य को प्रकट करते समय मुझे किसी का भय नहीं है। जिसमें सत्य को प्रकट करने का साहस हो वह मेरे साथ आये-

'कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकटिया हाथ।
जो घर चाले आपने चले हमारे साथ।।' [8]

डॉ. परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा में लिखा है कि- उनकी रचनाओं में बहुधा तीर्थ, व्रत, भेष, मूर्तिपूजा जैसी बाह्य बातों के प्रति इनकी अनास्था लक्षित होती है और अवतारवाद एवं शास्त्रविहित नियमों के प्रति विरोधाभास भी दीख पड़ता है। कर्मकाण्ड के सम्बन्ध में कबीर का एक दोहा प्रचलित है-

'पाहन केरी पूतरी करी पूजा करतार।
वाहि भरोसे मत रहो बूडा काली धार।।' [9]

नि:सन्देह यह सत्य है कि कबीर एक ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने समाज में क्रांति का बिगुल फूँका। संत कबीर निर्गुण उपासक थे। कुछ लोग उन्हें हिन्दू कहते हैं तो कुछ मुसलमान। कबीर ने इन दोनों ही मतों पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने धर्म के भेद को दूर करते हुए कहा कि न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान । केवल मानव जाति एक है। प्रकृति ने मानव को बनाया है। अत: मानव को सभी जाति धर्म के भेद को भुलाकर प्रेमभाव से रहना चाहिये। बिना प्रेम के मनुष्य का शरीर श्मशान के समान है। जैसे लोहार की धौंकनी जो सांस तो लेती है, लेकिन उसमें प्राण नहीं होते। उन्होंने ठीक ही कहा है-

'जा घर प्रेम न संचरे, सो घर जानु मसान।
जैसे खाल लोहार की, सांस लेत बिन प्रान।। [10]

कबीर की भाषा आम जनता की भाषा होती थी। स्थान बदलने के साथ उनकी भाषा भी बदल जाती थी इसलिए जनता पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता था। उनकी भाषा में भोजपुरी, राजस्थानी, पंजाबी, अरबी, और फारसी के शब्दों की अधिकता है। वे जो साखी कहते थे उनके शिष्य उन्हें स्मरण कर लेते और उन्हें लिख लेते थे। कबीर ने अपनी वाणी में जाति-पांति, ऊँच-नीच की भावना का खण्डन किया है। वे कहते हैं-

निगुण ब्राह्मण ना भला, सगुणा भला चमार।
देवतन सो कुत्ता, जो नित उठ भूकें द्वार।।
ब्राह्मण ही सब कीन्हें चोरी।
ब्राह्मण ही कोलागल खोरी।।
ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊंच न कोई ।
सुबरन कलस सुरा भरा, साधू निन्दत सोई।।
तुमकत बाभन हमकत सूद।
हमकत लोहू तुमकत दूध।।
एक हि पवन एक ही पानी, एक जोत संसार।
एक हि खाक गढे सब भांडे, एक हि सिरजन हार।।
जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।। [11]

समरसता की महक जब जन-जीवन में समानता-बोध के पुष्प से उठने लगती है तब सारा परिवेश सामाजिक मूल्यों के आनन्द की अनुभूति से झूम उठता है और इस समरसता की जननी है, अविचल विश्वास आधारित प्रेम। इसलिए वास्तविक भक्ति क्रिया कर्म-काण्डों में समाहित कोई अलाप नहीं बल्कि जीवन की निजी अनुभूति है। कबीर ने इसी अनुभूति को जन के बीच बैठकर पाया था।[12] प्रस्तुत शोधपत्र के परिप्रेक्ष्य में हम कह सकते हैं कि महाकवि कबीर मात्र अपने भाव में मग्न रहने वाले कवि नहीं थे, उन्होंने समाज के भाव को भी समझा था। उनके काव्य में तत्कालीन समाज एवं मूल्यों के प्रति कसमसाहट है। इसके साथ ही एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूं कि हिन्दी के अधिकांश स्वनामधन्य आलोचक मसि कागज छुओ नहीं' जैसी मनगढंत उक्तियों के आधार पर संत कबीर को अनपढ़ घोषित करते हैं। यद्यपि वास्तविकता यह है कि कबीर अपने युग के सबसे शिक्षित व्यक्ति थे। उस युग में उनके बराबर पढ़ा- लिखा और समझदार व्यक्ति मिलना कठिन था। 13 कबीर ने जिस प्रकार तत्कालीन समय में मानवता के विरोधियों को ललकारा यही उनकी वाणी की जन चेतना है। भारत के साथ सम्पूर्ण विश्व का आम जन इसी वाणी से चेतना प्राप्त कर अपने जीवन को आलोकित कर रहा है। यही कबीर वाणी में सच के साक्ष्य हैं

संदर्भ सूची -

1 कबीर- डॉ कान्तिकुमार जैन, दिव्या प्रकाशन ग्वालियर भूमिका से
2 हिन्दी डॉट बेव दुनियां डॉट कॉम/कबीर वाणी-आज भी प्रासंगिक।
3. भारत के सामाजिक क्रांतिकारी- देवेन्द्र कुमार बेसन्तरी, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नई दिल्ली 2009 पृष्ठ-52
4. भारत में सामाजिक परिवर्तन के प्रेरणास्रोत- डॉ. माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन 32/3, क्लव रोड़ पश्चिम पुरी नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006 पृष्ठ-45
5. भारत के सामाजिक क्रांतिकारी- देवेन्द्र कुमार बेसन्तरी, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नई दिल्ली 2009 पृष्ठ-53
6. विकीपीडिया डॉट ओआरजी/संत कबीर
7. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू डॉट रचनाकार. ओआरजी/2009/10/ब्लॉग-पोस्ट
8. भारत दर्शन डॉट को डॉट एनजेड।
9. भारत के सामाजिक क्रांतिकारी- देवेन्द्र कुमार बेसन्तरी, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नई दिल्ली 2009 पृष्ठ-53
10. कविता कोष डॉट ओआरजी/ कबीर
11. भारत में सामाजिक परिवर्तन के प्रेरणास्रोत- डॉ. माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन 32/3, क्लव रोड़ पश्चिम पुरी नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006 पृष्ठ-44
12. कबीरदास; विविध आयाम, सं. प्रभाकर श्रोत्रिय, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद पृष्ठ-55
13. कबीर के आलोचक- डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, 1997 पृष्ठ-40

बुन्देली लोक नाट्य

डॉ. वन्दना जैन *

लोक नाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से हो और परम्परा से अपने अपने क्षेत्र के जन समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो। [1] उपर्युक्त परिभाषा को डॉ. महेन्द्र मानावत ने अधूरा मानते हुए नोक नाट्य को इस प्रकार परिभाषित किया है।

''लोकधर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का यह नाट्य रूप जो अपने अपने क्षेत्र के लोक मानस को आल्हादित, उल्लसित एवं अनुप्राणित करता है, लोक नाट्य कहलाता है। [2] उपर्युक्त परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जाता है कि लोक नाट्य में लोकप्रचलित परम्परागत रूढ़ियों, धार्मिक अनुष्ठानों, कथा आख्यानों तथा वार्ता विश्वासों को अभिव्यक्ति मिलती है और उनके द्वारा लोक विशेष के लोक आनंद और उल्लास के अवसरों पर अपना मनोरंजन किया करते हैं। इनके सहज स्त्रोत लोक जीवन के सहज संस्कार हैं। यह सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक कथानकों, लोक विश्वासों और लोक तत्वों को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।[3]

बुन्देली लोक नाट्य के विविध रूप:- बुन्देलखण्ड में लोक नाट्यों के विविध रूप देखने को मिलते हैं। इनमें प्रकृति, समाज एवं धर्म तीनों ही मुखरित होते हैं। मानव की अनुकरण करने की सहज प्रवृत्ति ही लोकनाट्यों का मूल स्त्रोत है। बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोक नाट्यों का वर्गीकरण हम दो आधारों पर कर सकते हैं :-

(क) उद्देश्य (ख) शिल्प प्रक्रिया

1. **जनजातियों के लोकनाट्य :-** जनजातियों के लोकनाट्य धार्मिकता और जातीयता से ओतप्रोत होते हैं। इनका उद्देश्य एक ओर जहां आराध्य को रिझाकर उल्लास व्यक्त करना होता है वहां दूसरी ओर अन्य लोगों पर व्यंग्य करना भी होता हैं। बुन्देलखण्ड के आदिवासियों में प्रचलित विविध स्वांग उसी प्रकार के लोक नाट्य हैं, जिनमें धार्मिकता और सामाजिकता विद्यमान है।
2. **सामूदायिक लोकनाट्य :-** इन लोक नाट्यों में सामूहिक आनंद एवं उल्लास की प्रबलता मिलती है। इनका आयोजन ब्याह-शादियों, उत्सव, पर्वों और विशेष आनंद के अवसरों पर होता है। इनका प्रचलन सभी जातियों में हैं। समाज परक होने के कारण ही इन्हें सामुदायिक लोकनाट्य कहा जाता है। बुन्देलखण्ड में सास-बहू का स्वांग, लैबी का स्वांग, डाकू का स्वांग, विविध जातिपरक स्वांग जैसे अहीर, कोरी, धोबी, ढीमर आदि तथा पशु विषयक स्वांग (गधा या पशु) आदि पारिवारिक सामाजिक स्वांग हैं। तो ब्याह शादियों के अवसर पर कुंआ पूजने का स्वांग, बाबा का स्वांग, आदि संस्कार परक स्वांग प्रचलित हैं। इसी प्रकार रामलीला, नारे - सुआटा का स्वांग और होली का स्वांग वे धार्मिक लोकनाट्य हैं, जो उत्सव - पर्वों पर आयोजित किये जाते हैं।
3. **व्यावसायिक लोकनाट्य :-** व्यावसायिक लोकनाट्य व्यवसाय प्रधान होते हैं। इनका प्रदर्शन आजीविकोपार्जन के लिये किया जाता है। व्यावसायिक लोकनाट्यों में यहां नोटंकी, और संगीत की कुछ मंडलियां हैं। लेकिन वास्तविक यह है कि नोटंकी संगीत और रामलीला आदि लोकनाट्य यहां बाहर से आये हैं। इन्हीं के अनुकरण पर ग्रामीण लोक भी कभी कभी मण्डलियां बनाकर इन्हें खेलते हैं।

(ख) शिल्प प्रक्रिया :- इस आधार पर बुन्देली के लोक नाट्य तीन प्रमुख वर्गो में विभाजित किये जा सकते हैं -

(1) लीलायें (2) स्वांग (3) विविध

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

1. ***लीलायें*** - पौराणिक कथा आख्यानों पर यहां जो लीलायें प्रचलित हैं, इनमें रामलीला और रासलीला ही प्रमुख हैं। ये आकार में बड़ी होती है और कई कई दिनों तक चलती हैं।
2. **स्वांग** - बुन्देलखण्ड में स्वांगों का अधिक प्रचलन हैं। ये अधिकतर व्यंग्यपरक होते हैं तथा साधारणतया नाट्यों के पूर्व या बीच में अभिनीत किये जाते हैं। साथ ही धार्मिक उत्सवों, सामाजिक संस्कारों एवं आनन्द के अवसरों पर भी इन्हें लोग खेलते हैं। इनकी संख्या भी अधिक हैं।
3. **विविध** - लोकनाट्य के विविध रूप भी यहां प्रचलित हैं। जो अधिकतर बाह्य प्रमाण से यहां लोकप्रिय हुए हैं। जैसे नोटंकी और संगीत जो मूलत: बाहर की व्यावसायिक मण्डलियों के कारण यहां लोकप्रिय हुये और फिर यहीं के लोग इन्हें अभिनीत करने लगे। उपर्युक्त वर्गीकरणों में बुन्देलखण्ड में प्रचलित अधिकांश लोकनाट्यों के प्रकार समाहित हो जाते है। कुछ शोधकर्ताओं ने बुन्देली लोकनाट्यों का वर्गीकरण विषय के आधार पर किया हैं, जो कि अधिक वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। अस्तु शिल्प प्रक्रियागत वर्गीकरण को ही प्रमुख मानना चाहिये। विस्तारमय से लोकनाट्यों का परिचय प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं।

बुन्देली लोकनृत्य - मनुष्य जब अपने गहनतम मनोभावों को शब्दों में व्यक्त करता है। तो उसे काव्य कहते हैं और जब शारीरिक चेष्टाओं द्वारा व्यक्त करता हैं तो वह नृत्य कहलाता है। ऐसा कहा जाता है कि नृत्य काव्य का शारीरिक रूप है। कभी शब्दों द्वारा और कभी शारीरिक चेष्टाओं द्वारा मानव युग-युग से अपनी करूण, वीर तथा रौद्र भावनाओं को व्यक्त करता आया है। इन शारीरिक चेष्टाओं का परिष्कृत रूप ही नृत्य हैं।

लोक नृत्यों का उद्भव ओर विकास -

कहा जाता है कि नृत्य की उत्पत्ति स्वयं ब्रह्मा ने की। ऋगवेद से संवाद, सामवेद से गायन, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नृत्य कला का निरूपण किया गया और इसके विकास के सम्बन्ध में यह मान्यता प्रचलित है कि इस कला को ब्रह्मा ने भरत मुनि को दिया और भरत मुनि ने गन्धर्वो तथा अप्सराओं की सहायता से शिवजी के समक्ष इस कला का प्रदर्शन किया तब शिव जी की आज्ञानुसार उनके शिष्य ताण्डु ने भरत मुनि को ताण्डव नृत्य सिखाया और उधर पार्वतीजी ने लास्य नृत्य बाणासुर की पुत्री उषा को सिखाया।

इस प्रकार नृत्य कला का विकास हुआ। परन्तु अधिक सत्य यह है कि नृत्य की उत्पत्ति प्राणी के ह्रदय स्थित उल्लास से हुई और वह उल्लास भी जब अनुकूल वातावरण युक्त होता है। तभी नृत्य की उत्पत्ति होती है। उदाहरण के

* प्राध्यापक (हिन्दी), शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

लिये मयूर कितना ही प्रसन्न क्यों न हो लेकिन उसके मन में नाचने का भाव तभी जाग्रत होता है जब वर्षा ऋतु हो, बादल मंडरा रहे हों साथ ही गरज भी रहे हों, सुहावना वातावरण चारों तरफ हो। इसी प्रकार पक्षी जगत पर जब उल्लास का इतना का इतना प्रभाव पड़ता है तब मानव का क्या कहना ?

आदि मानवों के जीवन में भी नृत्य था। उनके मन में स्थित मन की भावना को दूर कर जब उल्लास ने अपना स्थान बनाया तब विविध नृत्यों को उनके जीवन में प्रस्फुटित होने का अवसर मिला। अकेलेपन से ऊबकर जब मानव ने समुदाय में सामाजिक एवं सामुदायिक भावना आने लगी तथा वे साथ साथ मिलकर नाचने लगे। इसका प्रमाण आदिमानवों द्वारा शेलाश्रयों पर बनाये गये भित्ति चित्रों को देखने से मिलता है।

इसलिये यह कहना उचित है कि नृत्यकला बहुत प्राचीन एवं मानव जाति की स्वाभाविक कला है। अति प्राचीन काल से इसलिये समादृत भी है। धीरे धीरे नृत्य में शास्त्रीयता का समावेश हुआ, जिसके परिणामस्वरूप एक तो उसकी विविध शैलियां विकसित हुई और दूसरे उसमें दुरूहता आई। लेकिन लोकनृत्य अपनी उसी सरलता और सहजता से चले आ रहे हैं।

इन नृत्यों में भावों की जो सहजता होती है। वह शास्त्रीय नृत्यों में नहीं होती है। क्योंकि लोक नृत्य मौलिक होते हैं। भावोद्गार और भावोवेग का आधिक्य उसकी अपनी निजी सम्पत्ति है। इस अमूल्य निधि से शून्य होने के कारण शास्त्रीय नृत्य बनावटी कहे जाते हैं।

उद्देश्य की पुष्टि से भी शास्त्रीय नृत्यों की अपेक्षा लोकनृत्य अधिक मूल्यवान होते हैं। चूंकि लोकनृत्य अपने देश अथवा जनपद की संस्कृति के आदर्श प्रतिबिबि होते हैं। अतः आज भी अनेक देशों में इनका विविध रूपों में गौरव पूर्ण प्रचलन हैं

संदर्भ सूची –

1. लोकधर्मी नाट्य परम्परा – डॉ. श्याम परमार पृ. 30-31।
2. लोक नाट्य परम्परा और प्रवृत्तियाँ – डॉ. महेन्द्र मानावत पृ. 3।
3. भारतीय नाट्य साहित्य – डा. नगेन्द्र पृ. 84 ।

****

रूढ़िवादिता पर कबीर का प्रहार

डॉ. कांति पचौरी *

संक्षेपः– कबीर अतुलनीय, अप्रतिम, अमर, ओजमय वाणी के प्रणेता और निर्भीक, निष्पक्ष, निर्विकार प्रेम और अध्यात्मिक ऊर्जा के अनंत स्त्रोत है। वे बड़ी बेबाकी और स्पष्टवादिता से सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों, सम्प्रदायवाय और पाखण्ड और प्रदर्शन पर चोट करते है। इसलिए कबीर वाणी के सतत् प्रवाह आज भी जीवंत और सामयिक है गहन आध्यात्मिक और रहस्य वाद के मार्मिक संत कबीर अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों के लिए जितने सचेत है, उसकी सानी विश्व इतिहास में नहीं मिलती। वे 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंड़ित होये' में ही सारा जीवन दर्शन समाहित कर देते है। व्यक्ति को सांप्रदायिक संकीर्णता और धार्मिक उन्माद से निकालकर भक्ति और प्रेम की निर्मल गंगा प्रवाहित करने में कबीर वाणी अतुलनीय है, और इसलिए कबीर सार्वभौमिक और सर्वकालिक रहेंगे। विश्व की प्राय: सभी प्रमुख भाषाओं में उनकी वाणी का अनुवाद इसका प्रमाण है। जीवन में जागृति और गहन अध्यात्मिक ऊर्जा उत्पन्न कर कबीर मानव होने के उद्देश्य और अर्थ को सरल, सुबोध और सुस्पष्ट कर समता और विश्व बन्धुत्व के मूल्यों से प्रकाशित करते है। कबीर का उद्भव विश्व साहित्य पटल पर गहनता और विविधता की अद्भूत घटना है। कबीर वाणी सामाजिक कुरीतियों, संकीर्ण मानसिकता और परस्पर भेदभाव से व्यक्ति को मुक्ति कर वास्तविक अर्थों में उसे धर्म और ईश्वर में स्थापित करती है।

परिचयः– भारतीय इतिहास में कबीर का उदय रूढ़ियों और परंपराओं के दलदल में फंसे जनमानस के जागरण का क्रांतिकारी उद्भव था। अपने समकालीन संतो के बीच उनका व्यक्तित्व सर्वाधिक प्रभावशील था। तुलसीदास मुख्य रूप से उनके समकालीन थे किन्तु कबीर के राम तुलसी के दास भाव से सर्वथा भिन्न और अपनी अलग आभा लिए हुए हैं। मुगलों के आक्रमण से जब देश में भय और असुरक्षा की ओड़ में समाज में रूढ़ियाँ और भ्रांतियाँ पनप रही थी, कबीर एक प्रकाश स्तंभ बनकर भारत को नई दिशा देने में समर्थ रहे हैं।

हमारा समाज आज भी भेदभाव और संप्रदायिकता के दुष्प्रभावों से मुक्त नहीं हुआ है। ऐसे में कबीर की प्रसांगिकता सर्वजनीय और सर्वकालिक है जिसमें उनकी वाणी का तीक्ष्ण और मारक प्रभाव आज भी दिखता है:-

कांकर पाथर जोरि के मसजिद लई बनाए
ता ऊपर चढ़ि मुल्ला बांग दे बहरा हुआ खुदाय''

कबीर का व्यक्तित्व उनके जन्म से जुड़े मिथ जैसा ही रहस्यमय और गहन है। भक्ति आंदोलन के अपने समकालीन कवियों और संतो के बीच कबीर वाणी की धारा अपना अलग ही गांभीर्य प्रदर्शित करती है। कबीर, जिसने कभी कोई बाहरी शिक्षा नहीं ली, एक आंतरिक ओज और ऊर्जा से परिपूर्ण था जिसने अपनी सहज, सरल और आम बोलचाल की भाषा में वह प्रभाव स्थापित किया जो भक्ति और लोक चेतना के इतिहास में मील का पत्थर बन गया। वे खुद अपने बारे में कहते है –

मसि कागद छुओ नहिं, कलम गही नहीं हाथ''

यह कथन ऐसी अलौकिक आत्मा से ही निकल सकता है जो भक्ति और आध्यात्म के प्रकाश से अलौकित हो। जैसा कि उनका जन्म विवादास्प्रद है वैसा भी उनकी मृत्यु उनका निर्वाण उत्सव रहा है जब उन पर दावा करने वाले सांप्रदायिक लोक उन्हें हिन्दु और मुस्लिम परंपरा से संस्कार करने का विवाद करते रहे और पाया तो केवल फूलों का ढेर।

वास्तव में कबीर के मुख से निकला हर 'शब्द' के ब्रम्ह होने की अवधारणा को पुष्ट करता है। उनकी वाणी की गहनता, शब्दों का चयन, सहजता और अर्थ का गांभीर्य अद्भूत है। समाज सुधारक और संचेतक के रूप में विश्व साहित्य में कबीर का कोई सानी नहीं है। उनके समय में हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही संप्रदाय जिस ढंग से अशिक्षा, अज्ञान, रूढ़ियों और खोखली परंपराओं के जाल में फँसे थे और राह दिखाने वाला कोई मार्गदर्शक नहीं था। उस समय जिस बेबाकी, निर्भिकता और तीक्ष्णता से कबीर ने अपना जीवन दर्शन प्रस्तुत किया वह अतुलनीय है।

''पाथर पूजें हरि मिलें, तो मैं पूजूँ पहाड़''

कबीर की दार्शनिकता, आध्यात्मिकता और सामाजिक सजगता को व्यक्त करता यह कथन भारतीय साहित्य में सामाजिक रूढ़ियों पर सार्थक चोट करने में कोई सानी नहीं रखता।

मूढ़ मुड़ाये हरि मिलें, तो सब कोउ लेय मुड़ाय
बार-बार को मूढ़तो, भेड न बैकुंठ जाय''

संक्षेप और सारगर्भिता के ऐसे उदाहरण साहित्य में दुर्लभ हैं। अपने समकालीन परिवेश में अखंड और मस्त मौला कबीर को अपना अस्तित्व बचाना भी कितना कठिन रहा होगा, सहज ही समझा जा सकता है।

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंड़ित भया न कोय
ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंड़ित होय''

यह आत्मज्ञान और आत्म स्वीकृति गहन आध्यात्मिक चिंतन और चेतना से उपजी अभिव्यक्ति है। अपने समय के तमाम संप्रदाय, वाद, फिकरों के बीच कबीर-वाणी संगीत और प्रेम की अनोखी मिठास घोलती है जिसमें अंधकार और अज्ञान के सारे विषाद तिरोहित हो जाते हैं। इसलिए कबीर की प्रसांगिकता सार्वकालिक और सार्वभौमिक है।

''बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोय,
जो दिल खोजों आपना, मुझसा बुरा न कोय''

यह वाणी थी जिसने अपने समकालीन तथाकथित अहंकारी धुरंधरों को तार-तार कर दिया। आत्म निरीक्षण, आत्मज्ञान और आत्म स्वीकृति की यह मिसाल न केवल भारतीय अपितु विश्व साहित्य में अनुपम है। पाखंड, आडंबर, कर्मकांड, भेदभाव और सांप्रदायिकता के अंधकार में भटकते दिशाहीन समाज को वास्तविक अर्थों में धार्मिक और सहिष्णु बनाने का कार्य कबीर की वाणी ने किया। इसलिए आज भी कबीर वाणी गहन शोध और चिंतन का विषय बनी हुई है। व्यक्तित्व की गहनता, गंभीर आंतरिक शक्ति और ब्रम्ह के प्रति उनकी भक्ति अलौकिक है।

''गुरु गोविंद दोऊ खड़े, का के लागूँ पाय
बलिहारी गुरू आपकी, गोविंद दियो बताय''

* सहायक प्राध्यापक, निर्भय सिंह पटेल शासकीय विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

ज्ञान की पिपासा और साथ के प्रति समर्पण, अवर्चनीय है कबीर का।

''निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छबाय
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय''।

यह वाणी व्यक्ति को सहिष्णुता और मानवीय गुणों से आलौकित करने का सामर्थ रखती है। उन्होंने जो जाना, जो अपनी आंतरिक चेतना से प्राप्त किया उसे उन्होंने ''मैं कहता-आँखन देखी'' कहा।

वाराणसी में, जहाँ उनका अधिकांश समय बीता, वे निरंतर आलोचना और विरोध के शिकार रहे। बड़ी सशक्त वाणी में उन्होंने पाखंड का तिरस्कार किया-

''माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर''

यह कथन उस समय के परिवेश के लिए क्रांतिकारी तो था ही, लीक से हटकर जागृति का एक नया पथ था जिस पर चलना कबीर जैसे सशक्त व्यक्तित्व का ही सामर्थ था।

''चाह मिटी, चिंता मिटी, मनवा बे-परवाह
जिनको कछु न चाहिए, वे शाहन के शाह''।

उनके चिंतन, दर्शन और व्यक्तित्व की गहनता का यह प्रमाण है। उन कौमों के लिए जिनहोंने किसी भी प्रकार अपने वर्चस्व को बढ़ाना ही जीवन की नियति समझ लिया था - यह कथन आइना है। सत्य, संतोष, सहिष्णुता और प्रेम ही उनके जीवन दर्शन का आदर्श है।

कहा जाता है 119 वर्ष की अवस्था में उनका देहांत हुआ। इस दीर्घ आयु का भी रहस्य कबीर के इसी फक्कड़ पन में है। यायावरी कबीर की वाणी में राजस्थानी, मगधी, अवधी, पंजाबी यहाँ तक की अरबी का भी प्रभाव स्पष्ट दिखता है। संभवत: इसी कारण उन्होंने समाज के हर वर्ग और व्यवस्था पर सार्थक और गंभीर टिप्पणियाँ की हैं।

कबीर सन्यासी, चिंतक, कवि, समाज सुधारक, भक्त, संत और न जाने क्या-क्या शालता दिखती है। इसलिए वे अतुलनीय और अनुपम है। भारतीय भक्ति आंदोलन को कबीर सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। जीवात्मा से परमात्मा तक की उनकी यात्रा हिन्दु और मुस्लिम संस्कृति और एक ईश्वर वाद के सिद्धांत के समन्वय का उदाहरण है।

आज कबीर वाणी का अनुवाद विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में हो चुका है। कबीर 500 वर्षों के बाद भी उनकी वाणी की सार्थकता उनके ज्ञान, आत्मानुभव, आध्यात्म, धर्म और भक्ति की उनकी असीम ऊर्जा की परिचायक है। विश्व शांति, विश्व बंधुत्व, प्रेम, स्नेह और गहन दर्शन का समन्वय आधुनिक विश्व में केवल कबीर वाणी में ही समाहित है।

''प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय
राजा परजा रेहि रूचै, सीस देइले जाय।''

उनका यह कहना कि ''प्रेम गति अति सांकरी जा मे दो न समाय'' अपने स्वं को विसर्जित कर विराट में समाहित कर देने का अप्रतिम संदेश है। जो इस्लाम के सूफीवाद और सनातन धर्म के गहन आध्यात्मिक रहस्य को पूर्ण रूप से परिभाषित करता है। सूफीवाद का कबीर के काव्य पर व्यापक प्रभाव है किन्तु वे उसमें बंधते नहीं हैं। कबीर गंगा की तरह पंक्ति और प्रवाहमान हैं और वैसी ही उनकी दिव्य वाणी।

''साईं इतना दीजिए, जा में कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भुखा जाय।।''

यह समग्रता में स्वयम् के एकीकरण का स्वर है।

समाज सुधारक के रूप में तथा जागृत, आडम्बरहीन और कर्मप्रधान समाज के निर्माण में कबीर अपने समकालीनों से बहुत आगे हैं। अपने समय के सामाजिक परिवेश में व्याप्त विकृतियों-जातिप्रथा, मूर्तिपूजा, भेदभाव, ढोंग, छुआछूत आदि कुरीतियों को समतापूर्ण समाज के निर्माण की आधारशिला केवल कबीर ही स्थापित करते हैं। उनका यह योगदान अतुलनीय है।

''ऊँचे कुल का जनमिया, जे करनी ऊँच न होय।
सुबरन कलस सुरा भरा, साधु निन्दित सोय''।

साधु की परिभाषा को वे पूर्ण रूपेण परिवर्तित कर देते है -

''जात न पूछें साधू की की, पूँछ लीजिए ज्ञान''

यह युक्ति वर्तमान समय के लालुप, लंफट और धर्म की आड़ में कुकर्म करने वाले तथाकथित धार्मिक ठेकेदारों पर करारा तमाचा है जिसकी गूँज हमेशा बनी रहेगी।

''जो तुम तुरक तुरकिनी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया''

इतनी बेबाकी और निर्भीकता से सामाजिक रूढ़ियों पर निष्पक्ष प्रहार करने की क्षमता कबीर के अलावा कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। कबीर अपने साहित्य का उपयोग एक क्रांतिवीर की तरह आडंबर, उत्पीड़न, असुर और विसंगतियों के संहारक के रूप में करते हैं।

उनका साहित्य उस समाज का दर्पण है जिसकी आँच में स्वयम् कबीर भी झुलसे हैं। आमजन की पीड़ा को अपनी अनुभूति देना वह भी निहायत सुबोध और सरल भाषा में कबीर की अतुलनीय प्रतिभा का उदाहरण है। अपनी शैली में वे फटकारते भी हैं, ललकारते हैं, सहज हैं और अपनी स्नेह वर्षा और विन्रमता से ढाढस बँधा कर ऊर्जा भी देना उनकी यही शक्ति और संवेदना उन्हें अमर बनाती है।

''सुखिया सब संसार है, खाये और सोय
दुखिया दास कबीर है जागे और रोय''।

हर कहीं कबीर ने मानव जीवन के लिए कल्याणकारी मार्ग प्रशस्त किया है। समाज की दुर्दशा पर तो उन्होंने बहुत कुछ कहा ही है इस्लाम के ठेकेदारों के मिथ्या आचार-विचार पर भी कटाक्ष किया है -

''दिन भर रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गा-मुर्गी खाये।''

एक भक्त का समाज सुधारक होना, वह भी इतनी निर्भिकता से, अद्भूत घटना है। कबीर वाणी समग्रता में एकीकरण का स्वर है - अजर, अमर, असीम प्रेम और आत्मा में डूबा हुआ सारे विश्व को अपने में समाता हुआ। कबीर इसलिए अप्रतिमान और रहेंगे। आधुनिक मनीषियों में 'ओशो' समग्र रूप में कबीर को आत्मसात् करते है।

निष्कर्ष:- साहित्य, धर्म और आध्यात्म में कबीर का व्यक्तित्व अतुलनीय है। हिन्दू, मुस्लिम सम्प्रदायिक संकीर्णता को कबीर ने जिस प्रभावशाली ढंग से मिटाने का प्रयास किया वह अपने आप में एकता और अखण्डता का अनुपम उदाहरण है। अपने अस्तित्व के ही सारे प्रश्नों को ''हम काशी में प्रगट भये रामानंद चैताये'' कहकर कबीर ने सारे आशंकाओं और विवादों को समाप्त कर दिया है। कबीर जो खुद किसी शिक्षा के संस्थान में नहीं गये आज सारे विश्व में पढ़े समझे और सराहे जाते है।

परमात्मा के साथ भक्त की निकट कबीर के व्यक्तित्व में जितनी परिलक्षित होती है वैसी कही नहीं। ''हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया'' धार्मिक संकीर्णता और साम्प्रदायिकता पर प्रहार करने में कबीर का कोई सानी नहीं है। जो उनकी सखियों और दोहे में स्पष्ट है।

जैसा कि इस शोध पत्र में कई बार व्यक्त किया गया है। एक ईश्वरवादि और मूर्ति पूजा धर्मान्धता के कट्टर विरोध कबीर में जनमानस की साधारण वाणी में राजस्थानी खड़ी बोली, बृजभाषा, अवधि, पंजाबी आदि का उपयोग अपनी रचनाओं में किया है जो कि यह स्पष्ट करता है कि जन-जन से जुड़ी

उनकी वाणी क्रांतिकारी परिवर्तन की प्रतीक थी। कबीर में लोकमानस में सदियों से रचे बसे संश्रिवष्ट भावों को उदद्रात एवं व्यापक रूप देकर पुराणपंथी जातिवादी विचारधारा में बाँधे जाने से रोकने की कोशिश की। कबीर के ''निर्गुण राम'' रूप, गुण, काल और सीमाओं से परे सर्व व्याप्त परमब्रह्म है जिन्हें भक्त सहज मानवीय प्रेम में विभिन्न रूपों में देखता है।

यह कबीर की भक्ति की विलक्षता है। ''प्रेम'' कबीर दर्शन का कुलसार है जिसके महाभाव से कबीर संसार को ''पिउ का घर'' कह देते है। इस प्रकार भक्ति, अध्यात्म, प्रेम, विराटता और ईश्वर के पराभाव को समस्त रूढ़ियों से अलग कर कबीर एक नयी आभा प्रदान करते है। भारतीय दर्शन साहित्य और इतिहास में धार्मिक जड़ता को जिस सशक्त रूप से कबीर ने तोड़ा है उसकी ''बानी'' विश्व इतिहास में कहीं नहीं है। कबीर सतत् मनन, चिंतन, शोध और स्वयं समाधि के अग्रदूत है जिसकी प्रासंगिकता निरंतर बनी हुई है।

संदर्भ

1. http//www.sufismjourna.org
2. www.britannica.com
3. Dass Nirmal, Dass Introduction by Nirmal, Songs of Kabir from the Adi Granth, Albay Ny: Stafe University of New York Press (1991)
4. Jab Mein tha tab hari nahin, ab Kabir chaura, retrieved 2012- 07-12
5. The Vision of Kabir: Love poems of 15th century weave, Alpha and Omega page 55, (1984)
6. West Cott G.H., Kabir and the Kabir Panth, Book page 2 (2006)

****

मीडिया और भाषा का अन्तर्संबंध एवं प्रभाव

डॉ. सुनीता यादव *

सारांश– प्रस्तुत शोध पत्र मीडिया और भाषा का अन्तर्संबंध एवं प्रभाव को प्रस्तुत करता है। भाषा अभिव्यक्ति का सशाक्त माध्यम है। भाषा संचार के बिना सम्भव नहीं, आज मनुष्य विकास के अभूतपूर्व युग से गुजरता हुआ वैश्वीकरण के युग में पहुँच गया है। वैशवीकरण के इस युग में मीडिया का चहुमुखी विकास हुआ। मीडिया पहले की अपेक्षा वर्तमान युग में अधिक सशाक्त और प्रभावी रूप में हमारे समाने है। जिसके प्रभाव से भाषा और संस्कृति भी अछूती न रह सकी आज भाषा और संस्कृति का व्यावसायिकरण हो चुका हैं तथा अनजाने में ही मीडिया ने मूल्यों और भाषा को विकृत किया है।

संचरण ही संसार है, संचार के इस स्वरूप में ही संसार का मूलभूत स्वरूप निहित है। मनुष्य का संसार में संचरण करना ही संसार का स्वरूप है। इसलिए मनुष्य विकास के साथ संचार का भी विकास होता गया और जिस तरह मनुष्य आज विकास के अभूतपूर्व युग में पहुॅच गया है, उसी तरह संचार भी विकास के समृद्धतम युग में प्रवेश कर गया है। मनुष्य का दूसरे मनुष्य से जिस एक तत्व से संबंध स्थापित होता है वह संचार ही है। इस संबंध स्थापित होने में मनुष्य ने माध्यमों का उपयोग किया, उनको संचार का माध्यम कहा जाता है। मनुष्य का मनुष्य से संबंध कई स्तरों पर और अत्यंत जटिल प्रक्रिया के तहत् होता है। इन संबंधों में स्तर भेद और स्पष्टता के लिए प्रारंभ से ही मनुष्य ने निरंतर संचार के स्वरूप के विकास का प्रयत्न किया है।

'मीडिया' यह शब्द संचार माध्यमों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। संचार एक सहज और मनुष्य की मूलभूत प्रवृति है। जिस प्रकार शरीर में रक्त संचार द्वारा संतुलित एवं स्वस्थ जीवन संभव होता है, उसी प्रकार व्यक्ति और समाज के अस्तित्व-वान होने से संचार की भूमिका असंदिग्ध हैं। संचार का आशय है, एक व्यक्ति 'द्वारा दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के बीच भावों, विचारों, इच्छाओं, कल्पनाओं की बांटने की प्रक्रिया थियोंहेम के अनुसार 'संचार वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सूचना व संदेशा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुॅचे, संचार मनुष्य की जानने व बताने की जिज्ञासाओं की पूर्ति करता है''

संचार मानवीय संबंधों व क्रिया-कलापों की एक ऐसी जीवन प्रणाली है जिसके बिना देश काल और समाज की कल्पना भी असंभव है, छपाई की मषीन विकसित हो जाने के कारण संचार प्रणाली में अभूतपूर्व परिवर्तन आया । मुद्रित संदेशों अभिलेखों एवं समाचारों के माध्यमों से संचार प्रक्रिया ने क्रांतिकारी कार्य किया। सच पूछिये तो संचार का संप्रेषक परक स्वरूप ही भाषा है, संचार और भाषा में अन्योश्रित संबंध है। भाषा संचार का सबसे सफल प्रोडेक्ट है, भाषा के अस्तित्व में आने से पूर्व संचार एक अवस्था का नाम था, भाषा के पश्चात् उसने व्यवस्था का रूप धारण कर लिया। भाषा एक ऐसी व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमे मानवीय व्यवहार के सभी घटक शामिल हो जाते है। चार्ल्स आर. राईट के अनुसार ''संचार मनुष्य के व्यवहार, कामो व क्षमता से जुड़ा है व दूसरी विज्ञान कलाओं से भिन्न है, क्योकि इसमें एक भाषा की आवष्यकता होती है''।

भाव अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है भाषा, मनुष्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आविष्कार भाषा है, भाषा के कारण मनुष्य ने अन्य प्राणियों की तुलना में विकास किया। भाषा के कारण ही मनुष्य अपने भावों विचारों को दूसरों तक संप्रेषित करता हैं। मनुष्य का विकास अविछिन्न रूप से भाषा से जुड़ा हुआ है, जैसे-जैसे मनुष्य का विकास होता गया। भाषा का विकास होता गया। किसी भी भाषा की रचना सामान्य परिस्थितियों में नहीं होती, भाषा परिवर्तन में जन्म लेती हैं, और परिवर्तनों के साथ ही विकसित होती है, नये समाज में विकास की नयी परिस्थितियॉ होती है नयी घटनाऍ जन्म लेती है, उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए नयी भाषा और शैली की जरूरत महसूस की जाती है। भाषा संप्रेषण का मुख्य कार्य है, भाषा सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त होती है, और साहित्यिक रूप में भी, इसके अतिरिक्त भी जैसे-जैसे भाषा का विस्तार होता है, उसका व्यवहार क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है।

वह विभिन्न कार्य क्षेत्रों में भी अपनी विशिष्ट शैली में भी प्रयुक्त होने लगती है, तथा औपचारिक शैली में लिखी जाती है इसके अतिरिक्त भी संचार के लिए भिन्न-भिन्न भाषा प्रयुक्त की जाती है जैसे ध्वनि, चित्र, इशारा,संकेत आदि। गोपनीय कार्यो के लिए कूट भाषा का प्रयोग किया जाता है। ध्वनि की संचार भाषा में ध्वनियों का विशेष महत्व होता है, प्रत्येक ध्वनि का अपना निजी अर्थ होता है, जिसे श्रोता ग्रहण करता है।

यह ध्वनियां अपना अर्थ पहले ही प्रकट कर देती हैं बाद में इनको लिपिबद्ध किया जाता है। चित्रों की संचार भाषा में चित्रों का विशेष महत्व होता है, मूक चित्र भी भावनाओं के व्यक्त करने के लिए भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है । कूटभाषा में प्रयोग की जाने वाली लिपिबद्ध सार्वभौम नहीं होती क्योंकि संचार भाषा का प्रयोग गुप्त कार्यो के लिए किया जाता है इसका अर्थ मात्र लक्ष्य समूह ही समझ सकता है तार में कम्प्यूटर में कूट, भाषा का ही प्रयोग होता है। संचार माध्यम चाहे जो भी हो, किन्तु माध्यम और भाषा का अन्त: संबंध होता हैं । इन सभी माध्यमों में भाषा अपना कार्य करती है।

भाषा का अन्त: ग्रहित का गुण वक्ता और श्रोता के बीच संबंध स्थापित करने में सेतु का कार्य करता है। चाहे जिस रूप में भावों और विचारों की अभिव्यक्ति हो उसका अर्थ उसका बिम्ब हमारे मन पर विद्युत की भॉंति कौंध जाता हैं। मीडिया की नई तकनीक और प्रौधोगिकी ने शब्द शक्ति को ऊर्जा दी है। आज मीडिया मनुष्य की संवेदना और जीवन शैली दोनों को बड़ी तेजी से बदल रहा है क्योंकि मानवीय अनुभूतियों, भावों, विचारों एवं किसी भी सृजन की अभिव्यक्ति के लिए माध्यम चाहिए।

वर्तमान समय में टेलीफोन, मोबाइल, कम्प्यूटर, स्लाइड, सिनेमा, इन्टरनेट, वेबसाइट, एसएमएस, विश्वग्राम के सपने को साकार करने के कारण संचार भाषा में नित नवीन खोज हो रही है। संचार (मीडिया) माध्यमों को उनकी प्रकृति के अनुसार तीन श्रेणियों में बाँट सकते है।

मीडिया के प्रकार

1. प्रिंट मीडिया-(समाचार,पत्र-पत्रिकाऍ,पम्पलेट आदि)
2. इलेक्ट्रानिक मीडिया (इलेक्ट्रानिक मीडिया के साधनों में दृश्य एवं

* अतिथि विद्वान , हिन्दी विभाग, शासकीय महाविद्यालय, इछावर जिला-सीहोर (म.प्र.) भारत

श्रव्य मीडिया)

1. श्रव्य मीडिया (रेडियो,टेपरिकार्ड,ऑडियो कैसेट आदि)

2. दृश्य मीडिया (फिल्म,टेलीविजन, विडियों कैसेट, सीडी,आदि)

3. नव इलेक्ट्रनिक मीडिया-(उपग्रह एवं कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि)

आधुनिक युग में भाषा के विकास में मीडिया का सर्वाधिक योगदान है, सूचनाओं के निरन्तर आदान-प्रदान ने विश्व ग्राम में परिवर्तित हो गया है संचार प्रौधोगिकी व्यक्ति को व्यक्ति से एक समाज को दूसरे समाज से एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र को जोड़ती है, आधुनिक संचार क्रांति ने प्रौद्योगिकी को जन्म दिया है, मीडिया की बात करने पर सबसे पहले हमारा ध्यान भाषा की और जाता है। मीडिया की भाषा में जनता की बात को जनतके सामने रखता है। मीडिया अपनी बात भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। मीडिया के इस युग में भाषा में तेजी से बदलाव आ रहा है, भाषा के साथ साहित्य संस्कृति व्यवसाय तथा मनोरंजन के सभी क्षेत्र व स्तर प्रभावित है।

मीडिया ने हमारे आस-पास की दुनिया ही बदल दी है। मीडिया के इस युग में हिन्दी भाषा ने भी अपनी जीवन्तता का प्रमाण देकर इस चुनौती को स्वीकार किया है, संचार भाषा के रूप में हिन्दी भाषा का प्रयोग बहुतायत से होता है। संचार के विभिन्न माध्यमों जैसे प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया दोनो में भाषा का प्रयोग प्रधान रूप से होता है प्रिंट मीडिया अखबार, पत्र पत्रिकाएँ, आदि से भाषा के प्रयोग को नया आयाम दिया। भाषा का प्रयोग प्रयोजन पक्ष से जुड़कर ओर विस्तारित होता है इसका प्रमाण हमें मीडिया से मिलता है, प्रिंट मीडिया ने भाषा के प्रसारण में अभूतपूर्व योगदान दिया है, इलेक्ट्रानिक मीडिया, रेडियों, टीवी, वीडियों, इन्टरनेट आदि ने भाषा के प्रयोग को नया कलेवर प्रदान किया भाषा की सृजनात्मकता को आकाशावाणी, दूरदर्शान ने दृश्य-श्रव्य गुणों की अर्हताओं के अनुरूप कई नई विधाओं और संरचना दृष्टियों का उपहार दिया।

मीडिया के अन्तर्गत सभी दृश्य-श्रव्य माध्यमों में भाषा का प्रयोग होता है। भाषा ही श्रोताओं और दर्शाको को बॉधे रखती है, रेडियों अपने श्रोताओं के अनुरूप ही कार्यक्रम की भाषा तय करता है। रेडिया शब्द माध्यम है श्रोताओं के बीच अत्यंत लोकप्रिय है, टेली विजन ने उच्च, मध्य वर्ग से लेकर निम्न वर्ग के घंटो तक एक खास जगह बना चुका है।

मीडिया, टेलीविजन की भाषा के निर्माण में भी उपर्युक्त सभी बातों का ध्यान रखती है, टेलीविजन दृश्य और श्रव्य दोनों माध्यमों की अभिव्यक्ति का माध्यम है इसकी भाषा का मानकीकरण सम्भव नहीं है। वह मानक भाषाओं की सीमाओं को तोड़कर वह स्थानीय बोलियों (आंचलिकताओं) के स्वर को सहजता से प्रस्तुत करता हैं। भारत में कम्प्यूटर के आगमन के साथ सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ धीरे-धीरे भारत देश में कम्प्यूटर का उपयोग होने लगा।

आज कोई भी भाषा कम्प्यूटर से दूर रहकर लोगों से जुड़ी नहीं रह सकती भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी है, अत: यहॉ की जनसंख्या के एक बड़े भाग द्वारा हिन्दी का प्रयोग किया जाता है, आज हिन्दी में सजालचि विपत्र, गपशाप,खोज, सरल मोबाइल संदेशा सभी हिन्दी भाषा में सामग्री उपलब्ध है। वर्तमान में इन्टनेट पर हिन्दी में संगणना के साधनों की भरमार हिन्दी भाषा से संबंधित जानकारियों की हजारों वेबसाईट, शब्दकोष, फोरस ब्लाग्स, लिपि परिवर्तनों के साधन इत्यादि आज कम्प्यूटर के क्षेत्र में आसानी से उपलब्ध है। इलेक्ट्रानिक मीडिया ने धारावाहिकों, इन्टरनेट और एसएमएस के जटिये भाषा में नई व्यवसायिक क्रांति कर डाली है।

भाषा की मौजूदा स्थिति उपभोक्तावादी क्रांति का नतीजा है, व्यक्ति भाषा के माध्यम से अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति करता है मीडिया ने नई लचीली सहज सरल स्वाभाविक बोलचाल की भाषा को अपनाया है, बल्कि उसे जन-जन तक पहुचाया है, मीडिया ने भाषा के प्रयोग को एक नया आयाम प्रदान किया है, मीडिया का भाषा से रिश्ता साहित्य के स्तर पर जितना है, उससे कही अधिक भाषा के स्तर पर है, मीडिया की भाषा सुनने व पढने के बाद सहज अनुमान लगाया जा सकता है, कि वर्तमान में भाषा की संरचना को इन माध्यमों ने अत्यधिक प्रभावित किया हैं। भाषा केवल शब्द मात्र नही हैं। वह सामाजिक है वह किसी राष्ट्र की संस्कृति की संवाहक होती है। विष्व के विविध चैनलों पर विविध भाषाओं में प्रसारित किये जाने वाले कार्यक्रमों एवं सूचनाओं को देखकर लगता है कि किसी कार्यक्रम और सूचनाओं को प्रभावी एवं सनसनी खेज बनाने के प्रयास में मिडिया द्वारा जाने आनजाने में मूल्यों और भाषा को विकृत किया जा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. सम्प्रेषण एवं संचार साधन-संपादक, - डॉ.रूक्मणी तिवारी, डॉ.आरती दुबे, डॉ. रामेशवर पांण्डे पृ..1-8-9
2. मीडिया और हिन्दी -डॉ.मधुखराटे, डॉ.हणमंत राव प्रा.सोनवणे राजेन्द्र
3. पत्रकारिता का इतिहास एवं जनसंचार माध्यम - डॉ.संजीव भानावत
4. जनसंचार - माध्यम और भाषा - डॉ.प्रभाकर माचवे
5. आधुनिक संचार और हिन्दी- प्रो.हरिमोहन
6. मीडिया के पचास वर्ष-संपादक प्रेमचन्द पतंजलि

****

हिन्दी रंगमच : दशा एवं दिशा

उमेश कुमार चरपे *

भारतीय रंगमंच की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। यह नाट्यशास्त्र तथा अन्य प्राचीन संस्कृत नाट्य ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट है। '' नाट्य और रंगमंच का अन्योनयाश्रित सम्बन्ध है रंगमंच का संवलियन नाटक में ही है। नाट्यकार की कल्पना रंगमंच पर ही आकारित होती है। वेग के अनुसार - नाटक पढ़े जाने का कोई अर्थ नहीं, उसका रंगमंच पर खेला जाना और देखा जाना महत्वपूर्ण है।''[1] नाट्य साहित्य की मूल विधा है जो कि दृश्यात्मक है। समाज उसका दृष्यांकन प्रारम्भिक काल से करता रहा है। सृष्टि के आदिकाल से ही जब से मनुष्य ने होश संभाला सत्य के साथ खडे होने और मानवीय मूल्यों की स्थापना करना उसके आधारभूत लक्ष्यों में हमेशा रहा है।

धर्म हो या संस्कृति साहित्य हो या नाटय शास्त्र सभी विधाओं का सर्वोच्च लक्ष्य मानवता की ऊँचाई छूना हो रहा है। भारतीय संस्कृति में न केवल इन सभी विधाओं की गहरी जडे है बल्कि उनहें इस तरह मानवीय संवेदना से गहरे जुडते देखना मन को आनंदित करता है। इतना ही नहीं इन कलाओं को समर्पित महान ग्रन्थों में उनके तकनीकी पक्ष पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है और उनका विषद् विवेचना आज भी संबंधित समीक्षाओं व आंकलन के दौरान मानक का काम करती है।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में, ''रंगमंच एक भाव है, एक अनुभूति है जिसकी अपनी असीम व्यापकता और गहराई है। इसके मूल भाव और प्रवृत्ति के साथ ही मनुष्य जन्म लेता है 'संस्कृत नाट्य शास्त्र में रंग शब्द का प्रयोग कई बार हुआ है। सार्वजनिक आमोद स्थली, सभाभवन, नृत्य गान और अभिनय' मंच भी संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है ''सभा समितियों में ऊँचा बना हुआ मंडल''जिस पर बैठकर सर्वसाधारण के सामने किसी प्रकार का अभिनय किया जाए।''[2] जीवन में मानवीय संवेदनाओं का प्रमुख स्थान रहा है। यह सत्य है कि हमारी प्रवृत्ति हमेशा से ही अनुकरणात्मक रही है। चाहे पाश्चात्य हो या भारतीय संस्कृति की परम्परा, हम दोनों विषय वस्तु का संयोजन हमेशा करते रहे है।

रंगमंच और नाट्य के क्षेत्र की बात करे तो आदिमकाल से ही मनुष्य में सोचने समझने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई उसने अपने अनुरूप हर एक पहलू को देखा पाया और विषय वस्तु का संचयन किया तथा अपने जीवन को साकार करते हुए आनंदमयी क्रिया व्यापार का प्रस्तुतीकरण हमेशा करता रहा।

सन 1850 के आसपास से ही भारतीय नाटक एवं रंगमंच में सामंजस्य की बराबर हिस्सेदारी रही है। लोक साहित्य , रामलीला, रासलीला, खयाल आदि नाटय शैलियो ने ही भारतीय रंगमंच की वास्तविक पृष्ठभूमि तैयार की। ''हिन्दी -नाटक को साहित्यिक भूमिका प्रदान करने का प्रयास सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिशचंद्र ने किया था। उनके पूर्व साहित्यिक नाटकों का अभाव था, पारसी-नाटक कंपनियों द्वारा अभिनीत नाटक असाहित्यिक और कुरूचिपूर्ण हुआ करते थे। भारतेन्दु ने स्वयं नाटक लिखने और अपने साहित्यिक सहयोगियों को इस और प्रवृत्त करने के साथ ही अव्यावसायिक रंगमंच की नींव भी डाली। उनके द्वारा स्थापित की गयी नाटक और रंगमंच की परंपरा को जयशंकर प्रसाद ने नया जीवन और नयी दिशा प्रदान की।''[4] पूर्व भारतेन्दु काल में हिन्दी रंगमंच के नवीन पौधे ने आंखे खोली लेकिन उसका विकसित रूप उत्तरार्ध्द काल में हुआ। भारतेन्द्र से लेकर प्रसाद के काल तक नाटय पध्दतियों के विभिन्न आयाम दृष्टिगत हुए। भारतेन्द्र मण्डली ने हिन्दी रंगमंच को एक आयाम दिया लेकिन उस समय भारत की परतन्त्रात्मक स्थिति रंगमंच के विस्थापन का कारण बनी।

आधुनिक काल में रंगमंच की स्थिति में कुछ हद तक अवश्य ही सुधार हुआ। धर्मवीर भारती का ''अन्धायुग'' मोहन राकेश का ''लहरों के राजहंस'' डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का 'अन्धाकुंआ' , रजनीगंधा'' डॉ. शंकर शेष का ''बिन बाती के दीप'' , सुरेन्द्र वर्मा , 'शकुन्तला की अगुंठी' इत्यादि नाटकों का नाटय प्रदर्शन हुआ और रंगमंच की स्थिति में सुदृढता आयी।

बौध्दिक वर्ग के साथ ही साथ सामान्य वर्ग भी रंगमंच से जुडा क्योंकि रंगमंच पर होने वाली प्रस्तुतियों में दर्शक वर्ग अपनी जीवन की समस्याओं को जीवन्त होते देखता है। आधुनिक काल में ऐसी अनेक नाट्य कृतियों की रचना हुई, जिसका सफल मंचन रंगमंच पर किया गया। प्रमुख नाटककार यथा भीष्म साहनी , गिरिराज किशोर, स्वेदश दीपक, नन्दकिशोर, दयाप्रकाश सिन्हा, मणिमधुकर, कुसुम कुमार, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रमेश बख्शी आदि है। इन सभी के एक दो नहीं, वरन् कई-कई नाटक रंगमंच पर खेले गये। आधुनिक काल में दिल्ली, आगरा, मेरठ लखनऊ, वाराणासी , गोरखपुर, पटना आदि में अनेक संस्थाएं स्थापित की गयी।

नवीन रंगमंच परिकल्पना के सम्बन्ध में देवेन्द्र राज अंकुर जी ने स्पष्ट किया है '' किसी भी नाटक को निर्देशित करते समय उसके आलेख में गहरे तथ्य पैठ जाना, शोध अनुसंधान के भीतर से गुजरकर दृश्य-बन्ध छोटे से छोटे पहलुओं को निश्चित करना, अभिनेताओं के संवाद, अदायगी के प्रशिक्षण के साथ- साथ उनकी मुद्राओं एवं चर्चायें भी निश्चित करना लगातार पूर्वाभ्यास के दौरान एक बडे अनुशासन का अंकुश समय की पाबदों और रोजाना कितना काम होता है इसकी पहले से तैयार एक समय सारणी अन्त में प्रस्तुति के पहले प्रदर्शन के समय सभी अभिनेताओं को हतोत्साहित होने के लिए दिलासा देते रहना को प्रयोग धर्मी रंगमंच में सार्थक बनयाा गया है।''[3] यथार्थवादी आधुनिक परिवेश में रंगमंच का स्वरूप अवश्य ही बदला।

वास्तविक पष्ठभूमि पर रंगकर्मियों ने अनुशासन और तकनीकी का प्रयोग करके अभिनय के स्वरूप में भी परिवर्तन किये। नये नये परिवर्तन ने रंगमंच की दशा को बाहरी रूप से अवश्य ही सुदृढ किया लेकिन वास्तविक कुछ और ही थी । अनेक नाटय प्रस्तुतियां और नये नये नाटकों के लेखन के बावजूद दर्शन दीर्घा में दर्शकों की संख्या दिन पर दिन घटने लगी।

दिल्ली में राजेन्द्र नाथ, एम.के. रैना, नीलम, मानसिंह, रंजीत कपूर के.के. रैना आदि समय समय पर बडे ही प्रभावपूर्ण नाटक प्रस्तुत करते रहे है। लखनऊ में डॉ. राज विसारिया, ललित मोहन थपलियाल , पी.जी. वर्मा , अनिल मिश्र अपनी अपनी संस्थाओं के बैनर तले समय समय पर नाटय प्रदर्शन करते रहते है। हबीब तनवीर जैसे नाट्य निर्देशक रंगमंच के लिए मील का पत्थर साबित हुए है। ''चरण दास चारे'' , बहादुर कलारित, आगरा

* शोधार्थी (हिन्दी) बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

बाजार नाटय मंचन ने देश विदेश में ख्याति अर्जित की। आधुनिक काल में रंगमंच को सही दिशा मिली साहित्यकारों का वर्ग लेखन में निर्देशक वर्ग को सही प्रारूप देने में जुट गया। रंगकर्मियो ने अभिनय से रंगमंच के सुव्यवस्थित और सुन्दर स्वरूप को प्रस्तुत किया और दर्शक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करने में कुछ हद तक कामयाब हुआ।

आधुनिक रंगमंच की स्थिति में नित्य प्रयोगों सुधार अवश्य किये लेकिन बदली मानसिकता और इलेक्ट्रानिक तथा बढ़ते हुए तकनीकी साधनों ने मानवीय जीवन पध्दतियों को बदलकर रख दिया है। फिल्म, चलचित्र दूरदर्शन , कम्प्युटर और अन्य साधन रंगमंच के समान्तर आकर खड़े हो गये। रंगमंच के समान्तर मनोरंजन के अन्य साधनों में दूरदर्शन, नुक्कड नाटक, चित्र प्रदर्शनी रंगमंच के समक्ष चुनौती के रूप में सामने आये है। हिन्दी रंगमंच विस्थापित था ही, ऊपर से आधुनिक युग के समान्तर मनोरंजन साधनों ने इसके सम्पूर्ण अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है।

सिनेमा आज इतना सहज उपलब्ध हो गया है कि घर घर में इसकी पहुंच हो गई। यह साधन वैभवशाली आकर्षक और शक्तिशाली है, इसके समानान्तरी रंगमंच की स्थिति डगमगा रही है। दूरदर्शन पर दिन पर दिन नये नये चैनलों ने मनोरंजन की परिभाषा ही बदल कर रख दी है। इन नये साधनों को रंगमंच के समान्तर रख कर विचार किया गया है समस्या बहुत बडी है, बारीकी से विचार करके ही कोई रास्ता निकाला जा सकता है। हिन्दी रंगमंच तो विस्तापित था ही , ऊपर से आधुनिक युग के समानान्तर मनोरंजन साधनो ने इसके सम्पुर्ण अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया है। सिनेमा आज इतना सहज उपलब्ध हो गया है कि घर घर में इसकी पहुच हो गई।

यह साधन वैभवशाली आकर्षक और शक्तिशाली है, इसके समानान्तर रंगमंच की स्थिति डगमगा रही है। दूरदर्शन पर दिन पर दिन नये–नये चैनलों ने मनोरंजन की परिभाषा ही बदल कर रख दी है। इन ने साधनो को रंगमंच के समान्तर रख कर विचार किया गया समस्या बहुत बड़ी है, बारीकी से विचार करके ही कोई रास्ता निकाला जा सकता है।

औद्योगिक विकास के चरण में साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधियां पर गहरा आघात लगता आया है। आज सभी के घरों में मनोरंजन के साधन उपलब्ध है, यही कारण है कि रंगमंच की दशा में क्षीणता आयी है।

मैं यह कहना चाहता हूं कि रंगमंच जन और जीवन को जोडता है, इसका एक विशाल क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र पर चलचित्र दूरदर्शन अन्य मनोरंजन के साधनों का प्रकार अनवरत जारी है। यही कारण है आज हिन्दी रंगमंच अपनी गरिमा से वंचित है। इन चुनौतियों के बावजूद भी रंगमंच अभी जीवित है। शायद इसका मुख्य कारण यह है कि रंगमंच भारत की संस्कृति और गरिमा को संरक्षित और परिवर्धित करने का एक सशक्त माध्यम रहा है। पर्दे पर सत्य को देखना और सजीवन कलाकारों द्वारा मंच पर सत्य का प्रदर्शन करना दो अलग अलग बाते है। मंच से दर्शक सीधे जुड़ाव अनुभव करता है, अत: समाज, सरकार और नाटकार , नाटक को न केवल मनोरंजन का साधन माने वरन् समाजिक परिवर्तन का एक बडा कारण भी समझे।

धनाढय वर्ग, मीडिया कलाकार, बुध्दिजीवी लेखक एवं दर्शक नाट्य कर्म को पवित्र और आवश्यक माने और इसको संस्कृति तथा सम्यता के विकास का सशक्त माध्यम माने तभी रंगमंच को सही दिशा प्राप्त होगी। सरकारी सहयोग, आर्थिक सरंक्षण, बुध्दिजीवों वर्ग का उत्साह एवं सहयोग पाठयक्रम में रंगमंच को सम्मिलित किया जाना, ये सभी व्यवस्था अवश्य ही रंगमंच की दशा में सुधार लायेगी।

रंगमंच चाहे जिस रूप में हो वह समाज, सभ्यता संस्कृति और पारिवारिक जुड़ाव के लिए सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम है। युग युगान्तर से एक व्यक्ति के विचार को सुनकर दूसरे व्यक्ति के विचार बनते आये है। हमारे समाज में रामलीला और कृष्णलीला परम्परा ने जन जीवन के सत्य विचारों को प्रबल स्थायीत्व देते रहे है।

आज की पीढ़ी इससें विमुख हो रही है, रिश्तों की मूल्यवत्ता दिन पर दिन घटती जा रही है। रंगमंच एक प्रहरी की भांति सत्य को साक्षात् रूप में प्रस्तुत करके जीवन के शाश्वत मूल्यों को दम तोड़ने से बचा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो. त्रिभूवननाथ शुक्ल : संप्रेषण एवं संचार संसाधन – म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल–इकाई–3, ''रंगमंच'' पृ. 75
2. प्रो. त्रिभूवननाथ शु:ल : संप्रेषण एवं संचार संसाधन : म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल–इकाई–3, ''रंगमंच'' पृ. 75
3. देवेन्द्र राज अंकुर –पहला रंग –पृ. 105
4. डॉ. नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास – पृ. 549

****

'कमारी' वैवाहिक संदर्भ में- द्वितीय भाग

डॉ. सुशील सोमवंशी *

घर-जमाई विवाह- जिस कमार परिवार में पुरूषों की संख्या कम होती है पुरूषों की संख्या कम होने से परिवार का जीविकोपार्जन कठिन हो जाता है। तब ऐसे कमार परिवारों में घर-जमाई विवाह होता है, इसमें दुल्हा, दुल्हन के निवास पर रहता है साथ ही पुन: उसका विवाह दुल्हन के निवास पर रहता है साथ ही पुन: उसका विवाह दुल्हन से होता है ऐसे विवाहों को कमार हृदय से आत्मसात कर लेते हैं, दामाद को इज्जत की नजर से देखते हैं दामाद को उस परिवार के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं सास-ससुर की मृत्युपरांत सम्पत्ति पर भी दामाद का अधिकार होता है।

भगोड़ी विवाह-ऐसे विवाहों की मात्रा कमारों मे काफी कम है, जब कोई लड़का किसी लड़की को भगाकर ले जाता है तब ऐसे विवाह को भगोड़ी विवाह अथवा ''पोहाऊन गला'' विवाह भी कहा जाता है। लड़का-लड़की को पकड़ने के पश्चात पंचायत बैठती है, जाति में पुन: शामिल करने के लिए उन्हें दण्ड के रूप में समाज को चावल का भोज, बीड़ी बंडल, 6 बोतल शराब देनी पड़ती है।

पैठू विवाह - इस विवाह में कमार लड़की, लड़के के यहां जबरदस्ती आकर रहने लगती है तो लड़के को उस लड़की से विवाह करना आवश्यक हो जाता है ऐसे विवाह पैठू या ''घर-घसिया'' विवाह कहा जाता है ऐसे विवाहों का निर्णय पंचायत लेती है। पंचायत में लड़की से पूछा जाता है कि ''तू लड़के के घर में क्यों बैठी है'' पंचायत यदी लड़की के जवाब से संतुष्ट होती है तो लड़के को पंचायत के जरिये-समाज को भोज एवं शराब देनी पड़ती है।

कमार जनजाति में विवाह-विच्छेद भी होते है जिन्हें ''गला पिछाड़ी'' कहते हैं 'गला पिछाड़ी' का निर्णय पंचायत में ही हो जाता है।

कमारों में ' गला पिछाड़ी ' बहुत कम मात्रा में होता है। यदा-कदा वैवाहिक पति-पत्नी के बीच सामन्जस्य स्थापित नहीं होता तभी पति-पत्नी इस रीति को अपनाते हैं इस रीति के उपयोग के लिए पंचायत का बैठना नितांत आवश्यक है पंचायत में बड़े बुजुर्गो का होना भी जरूरी है, पंचायत दोनों पक्षों के कथन सुनती है यदी वे तथ्य बुजुर्गो एवं पंचायत को उचित लगते हैं तो उन्हें अलग-अलग रहने की अनुमति प्राप्त होती है किन्तु ऐसी घटना बार-बार न हो इसलिए उन्हें कड़ा आर्थिक दण्ड दिया जाता है जिसकी न्यूनतम सीमा 100रू तथा अधिकतम 500रू या अधिक भी हो सकती है इसमें दण्ड का भार किसी एक पक्ष पर ही पड़ता है जैसे:- 'गला पिछाड़ी की पहल लड़के ने की है तो दण्ड लड़के के पिता द्वारा यदि लड़की ने पहल की है तो लड़की के पिता द्वारा दण्ड भरा जावेगा। सामाजिक भोज भी देना पड़ सकता है।

विवाह प्रस्ताव-कमारों में विवाह का बीजारोपण, विवाह प्रस्ताव भेजने से प्रारंभ होता है वर पक्ष एवं वधु पक्ष के लोग महालिया के माध्यम से मिलते हैं निश्चित दिवस पर विवाह संबंधी वार्ता तय की जाती हैं। ऐसे अवसर पर विवाह के प्रस्ताव में वर-वधु को आकर ले जाने की बात कहता है साथ ही वधु पक्ष पर यह जोर भी देता है कि तुम्हारी लड़की युवा हो गई है।

'होय ता आता दारूवर
तुम चो बेटा मुंह के दारून गल्ला
बांस पटाच ये हुनी, पड़हुनी ये ता तब
हुयाई हुनी ना गाड़ी भवदीन ये दे
मौ खा चथदा संगे येहुन नेवा'

महालिया के साथ आये मेहमानों की आवभगत बहुत कुशलता से की जाती है। मदीरा का सेवन किया जाता है अच्छी सुन्दर चटाई (टाटी) पर बैठाया जाता है उनका मनोरंजन भी किया जाता है प्रस्तुत पद में इस मेहमान नवाजी का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'सिरा टाटी जठायू, सगा बसायू
नच कारिन टुरी काया
गीते रिझाईस '

मंड़वा- समस्त वैवाहिक कार्य कमारों में मंडप के नीचे ही सम्पन्न होते है। इस समय गीतों की बहुत ज्यादा परंपरा तो नहीं फिर भी मंड़वा के गीत महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। देवी स्तुति के साथ ही वन देवी को मंड़वा में लोकगीतों के साथ आमंत्रित किया जाता है। ममतामयी माँ का हृदय भी द्रवित होता चित्रित होता है, माँ द्वारा अपनी गरीबी का बखान किया जाता है एवं अपनी बेटी को खाली हाथ बिदा करने की बात भी बड़ी ही सुन्दर ढंग से कमार मंड़वा गीतों में प्रस्तुत की जाती है।

'लाली पुरचो लाली बानय बानय
इहा याही गो बाना देखू
कारि बानों भारी भोलय
भलंचो बेटी रहियू
आनि बाना देखायू
हारे बेटी रे
सुखा मुख जहा
देखा धनी बानों इहा देखू
इहा देखूगो सइना बानाय देखू'

कमार परिवार अत्यंत सीमित होने के कारण मंड़वा संबंधी वैवाहिक कार्यो हेतु भी कार्यकर्ताओं की कमी महसूस की जाती है। आपसी सामंजस्य भी अच्छा होता है जिस कारण आस-पड़ोस के कमार भाई-बहन एवं समाज के सदस्य रूची अनुसार कार्य करते रहते हैं फिर भी घरेलू कार्यकर्ता की कमी अवश्य महसूस की जाती है।

इसी अवसर पर कमारी लोकगीतों के माध्यम से अपनी गरीबी में भी मेहमानों के लिए ऊँचे दामों की वस्तु लाना वस्तुओं का क्रय करते समय अपने करम को कोसना या तकदीर को भाग्यशाली कहना, पारिवारिक स्थिति का उल्लेख करना इन लोकगीतों में प्राण डाल देता है।

यथा:-

भपाचैई बोढी चो माटी बिसायू
बढै महंगी माटी बिसायू
धन रे ! करम
धन रे तकदीर
कोई नाही पाछे
भाई नाही आनी बिहिन नाही'

---

* सहायक प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय नेपानगर (म.प्र.) भारत

आगंतुको की अधिकता को देखकर साथ ही माता-पिता की परेशानी को कोमल हृदयी पुत्री भली भांति समझ जाती है। उसका कोमल हृदय रूदन करने लगता है वह भी विचार करती है कि उसके ओर भी भाई-बहन होने चाहिये थे जो इस अवसर पर माता-पिता को सहयोग देते और उनकी परेशानी को दूर कर देते। वह कोमल हृदयी पुत्री स्वयं कह उठती है-

'लुचपुच लुचपुच सयना करय सगा
हाथ रे धनी बड़मारी सयना सकलिया
बाबा ढिला सयना सकलिया
माय ढिला सयना सकलिया
पाठे भायी नाही न,
पाठे बिहिन नाही
आमध्य आचू एक लवती'

मंड़वा का निर्माण पुरूषों द्वारा किया जाता है क्योंकि सभी कार्य मंड़वा में ही पूर्ण होते हैं इसलिए यह अपेक्षाकृत कुछ अधिक बड़ा (लम्बा त्चौड़ा) होता है जिसमें 6 से लेकर 8 आधार स्तंभ (बल्ली या बांस) होते हैं आच्छादन से पूर्व, ऊपरी सतह के सभी सिरों को आपस में अन्य बासों से बांध दिया जाता है साथ ही उनके मध्य भी बांसो या पतली लकड़ी से, उन्हें आपस में जालीनुमा बांध दिया जाता है और सबसे ऊपर जामुन, आम के पत्ते आच्छादित किये जाते हैं।

तेल चधवनी-कमार विवाह के अंतर्गत तेल चधवनी की रस्म अनेक बार की जाती है प्रारंभ में चोर तेल होता है जिसमें वर-वधु दोनों के ही निवास स्थान पर कम से कम दो बार चोर तेल चढाया जाता है एक बार के चोर तेल में सात बार तेल चढाया जाता है एवं सात बार तेल उतारा जाता है यह प्रक्रिया महिलाओं एवं कमार सम्बंधियों द्वारा की जाती है। वधु पक्ष के निवास पर जब बारात पहुँच जाती है तब वधु पक्ष द्वारा भी तेल चघवनी की जाती है। पुन: जब बारात वधु के साथ वरपक्ष के निवास पर आती हैं तब भी तेल चघवनी किया जाता है।

तेल चघवनी में महिलाओं द्वारा कमारी लोकगीत गाए जाते हैं कमार महिलाऐं इस अवसर पर जो गीत गाती है उन्हें तेल चघवनी के गीत कहा जाता है। इन गीतों में मुख्यत: विभिन्न संबंधियों द्वारा उपयोग की जाने वाली क्रियाओं तथा उपयोग में आने वाली वस्तुओं के उत्पन्न होने तथा प्राप्त होने के स्थानों का वर्णन होता है जिन-जिन कमार संबंधियों द्वारा इस तेल चघवनी में तेल चढाया जा रहा है उनका भी वर्णन होता है आदर्श वर-वधु के रूप में राम और सीता का भी वर्णन किया जाता है।

प्रस्तुत पंक्तियों में आम के पत्ते से तेल चढाने का वर्णन एवं तिल्ली के तेल के स्थान पर घी का दीपक जलाने का वर्णन किया जाता है।

'आम्बा पाने तेलई चघौ
तिलक तेले काय नाव जातो
आना बाबा घी व चो लौदी
सोन चो ड़ोंड़ो रूपे चो छतर'

उपरोक्त पद में सोने एवं रूपये की छत तक ड़ालने की बात कही गई है। गरीबी से हताश न हो कमार अमीरों सा व्यवहार करना चाहते है शायद अमीर व्यक्ति भी सोने और रूपये की छत का सपना देखने में ड़रता होगा किंतु कमार ने घी के दीये के साथ सोने एवं रूपयों की छत तक को अपने लोक गीतों में स्थान प्रदान कर दिया।

कमार तेल चघवनी में पारिवारिक सदस्यों द्वारा तेल चघवनी की जाती है उनका भी वर्णन कमारी तेल चघवनी गीतों, में पाया जाता है।

'दादा हाथ तेल चघव
दीदी हाथ तेल चघव
जानत बेटी होवा दादा'

यह गीत प्राय: एक ही तर्ज पर होते है सभी के शब्दों का समावेश एक सा ही होता है प्राय: सदस्य का नाम परिवर्तित होता रहता है।

यथा-

' बाबा हाथ तेल चघव
जानते बेटी इथा बसवा
इथा बसवा, बलवा बाबा'

पिता अपने हाथों से बेटी को तेल लगा रहा है और अपने करीब बैठने को कह रहा है उसे पता है कि अब पुत्री का स्नेह उसे कभी-कभी प्राप्त होने वाला है। बहुत कम मात्रा में ऐसे कमारी गीत होगें जो दो पक्तियों से अधिक हो। प्राय: कमारी गीत दो ही पंक्तियों में अपनी बात कहने में सफल हो जाते हैं। मामा द्वारा जब तेल चढाया जाता है तो कमार पुन: कह उठता है।

'ममा हाथ तेल चघव,
अच्छा बलता
इथा बसा, बलवा ममा।'
ननंद के हाथों तेल चघवनी की जाती हैं-
'नानंदी हाथ तेल चघव
इथा बसा बलवा ननंदी'

जब कोई वृद्ध व्यक्ति द्वारा तेल चघवनी के लिए आते हैं तब कमार कह उठते हैं-

'आजू हाथ तेल चघव
जानत नातनीद
इथा बलवा, बलवा आजू'

इसी प्रकार एक-एक कर सभी तेल चघवनी में आगे आते है ओर रिश्ते के अनुसार कमारी गीत प्रस्तुत किये जाते है।

'भाटो हाथ तेल चधव,
जानत साली होवा
भाटो इथा बसवा'
वृद्ध महिला के हाथों तेल चधवनी पर-
'दाई हाथ तेल चघव
जानत बेटी होवा
इथा बसा, बलवा दाई'

इन्हीं गीतों को बार-बार दोहराया जाता है जब तक तेल चघवनी करता व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के समीप आकर बैठ नहीं जाता।

बिहावी गीत-कमार बारात सजधज कर लड़की वालों के यहां जाती है स्त्रियों का रसीला स्वर गीत के रूप में मुखरित होता है बारात अपनी शान व ऐश्वर्य की छटा पूनम की चांदनी की तरह बरसाती हुयी आगे बढती हैं वधु पक्ष के यहां बारात आगमन की प्रतीक्षा बेसब्री से की जाती है।

इस समय कमारों के हर्ष की धड़कन बढ जाती हैं सभी आमंत्रित कमार नर-नारी एकत्रित हो दूल्हे की एक झलक देखने को बेताब हो जाते हैं यदि वर अच्छा होता है तो सबके मन मयूर नाच उठते हैं और यदि मन के लायक नहीं हुआ तो कहते 'निभाना तो पड़ेगा ही।' वर चाहे शक्ल में जैसा भी हो, गीतों में उसे कहीं राजा तो कहीं सुन्दर प्रतिभाशाली कहा जाता है किंतु बारात के आते ही माता-पिता चिंतित अवश्य हो जाते हैं कि इतने बारातियों की व्यवस्था वे गरीबी में किस प्रकार पायेंगे।

बारात का आगमन संध्या और रात्री के मध्य होता है यही वह अवसर होता है जक बिहावी गीतों का दौर शुरू होता है और सम्पूर्ण रात्री गीत और नृत्य चलता रहता है क्षण मात्र के लिए भी किसी के पैर रूकते नहीं हैं।

मोहरिया (बजाने वाला) रात भर बजाते रहते हैं एक युवक मोहरिया के समीप आकर दो पंक्तियों में अपना प्रणय निवेदन गा कर कहता है। मोहरिया द्वारा उसी निवेदन को बजाया जाता है और सभी एकत्रित कमार मंड़वा के मध्य लगे 'बुआ' (महुआ लकड़ी से निर्मित खंभा) के चारों ओर अपनी अपनी शैली में नृत्य करने लगते हैं पुन: युवती द्वारा मोहरिया के समीप जाकर प्रणय निवेदन गया जाता है और उपरोक्त क्रिया पुन: की जाती है यही क्रम पूरी रात चलता रहता है सभी युवक-युवतियां एक साथ ही नृत्य करती हैं।

नृत्य प्रस्तुत करते समय बारी-बारी से वर-वधु को गोद में उठाकर युवक युवतियां 'बुआ' के चारों ओर नृत्य करती है वर-वधु स्वयं नृत्य नहीं करते अपितु वर यदि चाहे कि किसी विशेष युवती की गोद में बैठकर नृत्य करवाना है तो वर को उस विशेष लड़की का या युवती का हाथ पकड़ना होता है। लड़की अपना हाथ छुड़ाने में सफल हो गयी तो उसे वर को गोद में उठाकर नृत्य नहीं करना होगा। यदि हाथ छुड़ाने में असफल रही तो वह लड़की या युवती वर को गोद में उठाकर 'बुआ' के चारों ओर नृत्य करेगी। बाराती लड़के-लड़कियां भी वधु को गोद में उठाकर 'बुआ' के चारों ओर नृत्य करते हैं वधु-वर की तरह किसी का हाथ नहीं पकड़ती उसे स्वेच्छा से गोद में उठाकर लोक नृत्य किया जाता है।

बारात में आया लड़का मोहरिया के पास जाकर प्रणय निवेदन गाता है प्रथम प्रणय निवेदन में ही वह उसे शादी कर ले जाने की बात कह देता है।

'गाय चरायु मोहरिया
हियाब करून
तुम्हा आन वा बिहावय करून।'

इस पंक्ति के पूर्ण होते ही मोहरिया इसे इन्हीं शब्दों के साथ बजाता है और सभी कमार युवक-युवतियां बुआ के चारों ओर अपनी-अपनी शैली में नाचते हैं मोहरिया का बजाना बंद होते ही कमार लड़की/युवती प्रतिउत्तर मोहरिया के समीप जाकर देती है।

वह कन्या उस भीड़ में किसी टोपी वाले का इंतजार कर रही है उस टोपी वाले के लिए उसकी निगाहें तरस रही है उसे वह हरे भरे पर्वत पर भी खोज चुकी है और अब निराश होकर बाजा बजाने वाले से उसे खोजने को कह रही है।

'पहारे पर्वत दिशयरी हरिहर
टोपी वाला नाही दिशत
बो दु दे नरियर
ठाय ते ठाय
जुलू कोटे ठार
घरून बसुन देखिड़
ते बुचकत बुचकत जाय
मोहरिया मोहरि ते जाय
ते भुजा भुजा खाय'

बिहावी लोकगीतों की यह प्रश्नोत्तरी पूरी रात चलती रहती है। समय के साथ यह एक प्रतियोगिता का रूप धारण कर लेती है। लड़के-लड़कियाँ अपने-अपने पद अधिक से अधिक सुनाना/ गाना चाहते हैं। कभी ऐसा भी हो जाता है कि दो-तीन बार लड़के ही गाकर चले जाते हैं तो लड़कियां भी नियम तोड़ दो-तीन बार अपने गीत प्रस्तुत कर देती है।

कमारी बिहावी गीतों में जानवरों की प्रणय कला को भी आधार बना कर अपनी स्वतंत्र विचार धारा प्रस्तुत की जाती हैं तालाब के किनारे घोड़ा-घोड़ी प्रणय करते चर रहे हैं तो उसे वह अपना (प्रेमी-प्रेमिका) मिलन समझ, कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करता हैं।

'दरिया चौपारे चरई दी घोड़ी
आमा तुम्हा पाड़ई दी जोड़ी
होई नो नी धामनपुरी न
धामनाई न चीनी'

कवि बिहारी की भांति बिहावी कमारी गीतों में भी नारी सौन्दर्य दिखाई देता है कमार भी नायिका की सुन्दरता का उसके अंग, प्रत्यंग, उसके कानों के झुमके, उसकी लचकदार कमर का उसकी लहराकर चलने की कला का सुन्दर दृश्य गीतों के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

'अटल मटासी दुधारू कनहार
तुमचो खिलवा के कौन बनायों
बिलोय सुनार होय धनिया
बिलोय सुनार होय घनिया
लचकियों कनिया।'

बिहावी कमार गीतों में छेड़छाड़ का भी चित्र प्रस्तुत किया जाता है, कहीं लड़के-लड़कियों को छेड़ती है, तो कहीं लड़कियाँ-लड़कों को, तो कहीं ऐसा भी हो जाता है कि सालियाँ मिलकर जीजा को परेशान कर देती है, तो कहीं नाचते-नाचते ही एक दुसरे से छेड़छाड़ कर दी जाती है। यथा-

'आवरा छूटी घावरा छूटी
हुर्सी दिला रे
नचकारिन टुरी के
बसु के कुर्सी दिला रे
कुर्सी दिला रे
अड़े रोते इंगा
सालिमन के चावयो पोते इंगा
अड़े रोते इंगा
गुसी देवा सिंगी भाटा रे
देवा सिंगी भाटा रे
अड़े रोते इंगा
सालिमन के चाबयो पोते इंगा

कमार युवक अपने जवानी के दुखड़े को भी गीत के माध्यम से प्रस्तुत करता है वह कहता है कि यह मात्र गीत नहीं है बल्कि उसकी जवानी की पीड़ा है वह अपनी एक-एक बात तराजू में तौलकर कह रहा है वह युवती से यह भी कह देता है कि मैं तुम्हारे को रात भर कंड़ील लेकर ढूंढता रहा क्या तुम मुझे पहचानती हो। 'चना जो भाजी हँसीआये पवलयू

तुमचो जो बोली
बोली वचन सखरिय तो बलीयू
नो नी घामनपुरी
घामनायी न चीनी
परसा चौपान के खिली यू दोना
योहा गीत नो होय
जवानी रोना
हो नो नी घामपुरी
घामपुरी न चीनी
सायकिल चलाई न हिन्ड़ील अई घरून

तुमा राती हैंयरू कन्ड़ील अई घरून
हो नोनी घामनपुरी
घामनायी न चीनी

कुछ कमारी बिहावी गीतों में आधुनिकता की छाप भी स्पष्ट दिखाई देती है। कमार अंचल में प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का समायोजन भी बिहावी गीत में दिखाई दे जाता है जैसे निम्नलिखित पंक्तियों में नर्सरी का उपयोग किया गया है जिसमें बांस की नर्सरी का उल्लेख किया गया है।

'नवो नरसरी जगायु बांस ड़गा
हो नो नी घामनायी चीनी'
एवं
'नवों नरसरी जगायु बांस
तुम्हा राघुन खावावा
खड़ाहा मासय'

गीतों के माध्यम से कमार गायक अपना परिचय भी प्रदान कर देता है उसे पृथक अपना परिचय देने की आवश्यकता नहीं होती है वह किस गाँव का है उस गाँव की तहसील और जिला क्या है यह सब कुछ, वह वहां उपस्थित समुदाय को बताता है इसका सीधा सा अर्थ यही लगाना चाहिये कि वह अब युवा हो गया है और स्वयं के लिए प्रेयसी की तलाश कर रहा है यदि कोई प्रस्ताव किसी के पास हो तो उसने अपना सम्पूर्ण पता बता दिया है इस प्रकार के बिहावी गीतों को वास्तव में 'परिचय बिहावी गीत' कहना ज्यादा उचित होगा।

'थाना आमचो मगरलोड़ तहसिल कुरूद,
जिला आमचों धमतरी आमही आमदे बिरझुली।'

सदाचार के उदाहरण स्वरूप-जब कमार गायक प्रथम बार मोहरिया के समीप आकर गीत गाता है तो वह उपस्थित सभी कमार जनों को नमन करता है किंतु यह आवश्यक नहीं है। जो शिष्टाचार का प्रदर्शन करना चाहते हैं वे ही मात्र सभी की वंदना गीतों में करते हैं। यथा:-

सुरू सु रू सु रू
सुरू सुरू लिगढी लिगढी बलूना ना बालय दे
हो गड़ी बिरझुली चो टुये रामू ना चो जयरामा।'
एवं
रि हरि हरि
रिह रिह रि शरी-शरी धरती माता चो
धरती माता चो मानु लगया
हो भाटो हो भाटो किसो ना करवा
बालता बालदे
हो नोना हो ना किसो ना करवा
कि बलूना ना।

बारातियों द्वारा या घरातीयों द्वारा इस अवसर पर, रह-रहकर, जो कन्याऐं मंड़वा में नाच रही हैं उनके के लिए कुछ न कुछ कहा जाता है। नाचने वाली कमार बाला के सौन्दर्य का चित्र प्रत्येक नृत्य कर्ता प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। ऐसा भी होता है कि स्वयं कमार बाला भी अपने सौंदर्य बखान करने में पीछे नहीं हटती है। ये गीत अत्यधिक रसिक होते हैं। यदि कमार बाता द्वारा सौन्दर्य का प्रस्तुतिकरण मनमोहक होता है तो सभी नृत्य कर्ता एक स्वर में जोर से चिल्ला उठते हैं जोर से चिल्लाना कमारों के 'वाह-वाह' को प्रदर्शित करता है यही वह समय होता है जब उनकी वास्तविक खुशी देखी जा सकती है। थकने के बाद भी उनमें नवीन उल्लास का संचार हो जाता है।

'खुसकुड़ चो कमार कांया कांकड़ पोवायो
नाचकारीन टुरी कांया मकड़ पोवायों।'
एवं
'नक बारी नथली कवरे दिकली
बर नरी रे बिड़ी भाजत जवानी नहीं।'

कमार प्रांतर अत्यंत मनोहर प्राकृतिक सौन्दर्य से भरा पड़ा है वहां की नदियाँ, झरने, नदी के तट, पहाड़, ऊंचे-ऊंचे शिखर भला कैसे कमारी गीतों का विषय नहीं बरते। नायक-नायिका की अटकेलियों का सजीव चित्रण भी इन कमारी गीतों में पाया जाता है। नदी के तटों पर नायक-नायिका का मिलन, पानी भरने के बहाने प्रेमिका का प्रेमी से तालाब पर मिलना, नदी, तालाब के तट पर कृष्ण की भांति कमार बालाओं के शारीरिक सौष्ठव को चुपके से कमार युवाओं द्वारा निहारना। आदी सभी कमारी गीतों के विषय बने हैं। मुख्य विषय के रूप में प्रेमी का, प्रेमिका को नदी के तट पर मिलन हेतु बुलाना पाया गया।

'लाल भीजी लाल पोगो की महानदी ड़ोगोर
लीप लीपी ड़गनी कमारीन की महानदी ड़ोगोर'
एवं
'पैरी नदी निकलयो पुरवाष नचकारी
टुरी घरवा दुकान'
एवं
'नदी-नदी गालू य घरावा रूदवा मोहदी गाँव ।
जो टुरा काय खेलावा खूड़ावा'
एवं
'नदी-नदी गालू आने घारीलू फखिया चो कोहा बाहरा
चो टुरी काए आखिए'
एवं
'नदी-नदी गालू आने घारीलू मोगली नाचकार
टुरा काय चाघवा टोगरी'
एवं
'नदी-नदी गालू आने हैंरावा
पुखना आमे मामा चो
बेटास काम घारवा चटाना'
एवं
'तीरे-तीरे आने अड़ भावरे ढारा
मोहदी टुरा कया चवनी ढारा
एवं
'जंगल गलू आने अबिलो लुटो
मोहदी टुरा काया खवात जूटो'

बिहावी कमार लोक गीतों में नगरों एवं गाँवों का उल्लेख भी बहुतायत मात्रा में पाया जाता है। नदी के तटों के समान ही प्रेमी युगल एक दुसरे को किसी नगर में, हाट-बाजार में, गाँव के किसी एकांत स्थान में मिलन हेतु प्रणय निवेदन प्रस्तुत करता है।

इस प्रणय आमंत्रण का भी चित्रण कमार बिहावी गीतों में पाया जाता है। इस प्रणय आमंत्रण गीत में नगर या ग्राम के नाम के साथ उस स्थान का भी बोध कराया जाता है जिस स्थान पर मिलन होना है। **(क्रमश:)**

यह शोध पत्र शोधार्थी द्वारा 'कमार' समाज के प्रत्येक घर पर स्वयं जाकर प्रश्नों के द्वारा और देखे गये अनुभवों से लिखा गया है ।

महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व व कृतित्व का अनुशीलन

चन्दनबाला सोनी *

हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध विदुषी महादेवी वर्मा के वैभवशाली गौरव गरिमा मण्डित व्यक्तित्व तथा वेदनासिक्त, करूणापूर्ण मार्मिक साहित्य स्वरूप का विवेचन, विषय की महत्ता और मौलिकता है।

यूं तो हिन्दी साहित्य के समृद्ध इतिहास में अनेक साहित्यकारों ने अपने साहित्य द्वारा साहित्याकाश को जगमगाया किन्तु महान् साहित्यकार महादेवी वर्मा के प्रतिभा प्रस्फुटन ने साहित्य का काफी श्रृंगार किया।

जीवन परिचय - महादेवी वर्मा का जन्म उ.प्र. के फर्रूखाबाद नामक शहर में हुआ था। महादेवीजी के अनुसार उनका जन्म 24 मार्च 1906 में हुआ था। इस समय कन्याजन्म को अभिशाप माना जाता था किन्तु महादेवी के जन्म से सात पीढ़ियों की अतृप्त लालसा, तृप्ति प्राप्त कर सकी थी। बचपन से लेकर जीवन की धारा में बहने वाले हर क्षण को महादेवी ने अपने व्यक्तित्व के बंधन में बांध लिया।

महादेवी के जीवन पर भौतिक जगत का प्रभाव नहीं पड़ा। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अन्तर्जगत के नियमों की पुकार को सुना। महादेवीजी के जीवन पर समसामयिक समाज, परिवार, वैयक्तिक जीवन की विषमता और दार्शनिक अध्ययन तथा चिन्तन का प्रभाव पड़ा है। महादेवीजी ने एकनिष्ठ हो, अबाध गति से अपने भावमय सृजन तथा कर्ममय जीवन की साधना के साथ साथ संलग्न रहकर इस घोषणा को प्रत्यक्ष रूप से सार्थक बनाने में अनन्य सफलता प्राप्त की है कि ''कला के पारस का स्पर्श पा लेने वाले का कलाकार के अतिरिक्त कोई नाम नहीं, साधक के अतिरिक्त कोई व्यापार नहीं, और कल्याण के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं।'' अधिकार और न्याय के लिए प्रत्येक क्षेत्र में वे विद्रोह करती रही।

1929 में इन्होंने बी.ए. परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इन्होंने कई कवि सम्मेलनों वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में अनेक सम्मान अर्जित किए। सन् 1922 से महादेवी के काव्य मासिक पत्रिका 'महिला' में प्रकाशित होने लगे थे। 1932 में महादेवी ने प्रयाग महिला विद्यापीठ में संस्कृत विषय में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। महादेवीजी ने जीवनोपयोगी सभी प्रकार की शिक्षा ग्रहण की तथा विविध भाषाओं व कलाओं का अध्ययन कर जीवन के आदर्श को चरितार्थ किया।

महादेवी का विवाह 9 वर्ष की अल्पायु में बरेली के निकट नवाबगंज कस्बे में स्वरूपनारायणजी वर्मा के साथ कर दिया गया। किन्तु महादेवीजी ने गौने के अवसर पर स्पष्ट कह दिया कि अपरिपक्व अवस्था में हुए विवाह को वे स्वीकार नहीं करेगी और वे अविवाहित जैसा ही जीवन यापन करने लगी। महादेवीजी के व्यक्तित्व पर विश्ववंद्य बापू, जवाहरलाल नेहरू, पुरूषोत्तमदास टंडन, राजेन्द्र बाबू, श्रीमती इन्दिरागांधी, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, कवीन्द्र रवीन्द्र, आदि विद्वानों व महापुरूषों का प्रभाव पड़ा।

आधुनिक विश्व की कोई कवियित्री उनके समकक्ष नहीं पहुंच पाई। अंग्रेजी साहित्य में भी उनकी समता करने वाली कोई कवियित्री दिखाई नहीं देती। क्योंकि महादेवी वर्मा के समान सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति और सूक्ष्मातिसूक्ष्म आदर्शों का अंगीकार विश्व की कोई कवियित्री नहीं कर सकी। इसी कारण वे विश्व विख्यात कवियित्रियों की पंक्ति में प्रथम स्थान रखती हैं।

व्यक्तित्व प्रकाश - विभिन्न क्षेत्रों में उनका विशाल जीवन आदर्शो का भंडार है। महादेवी का जीवन एक ऐसा आदर्श है जिसकी दीप्ति से समग्र हिन्दी साहित्य जगमगा रहा है। उनके व्यक्तित्व में मैत्रीभाव की उत्कृष्टता, मानवतावादी दृष्टिकोण, अन्याय का विरोध, नौकरों के प्रति आत्मीयता का व्यवहार, बौद्ध दर्शन का प्रभाव दार्शनिक विचारों से ओतप्रोत, आध्यात्मिकता का पुट, सेवा-भाव आदि झलकते हैं। वे रहस्यमय व्यक्तित्व की अक्षय निधि हैं। महादेवी वर्मा, व्यक्तित्व सम्पन्न लेखिका, करूणा, ममता, अकृत्रिमता मानवीयता, आत्मनिर्भरता जैसे सद्‌गुणों की धनी हैं। वे साहित्य साधिका होने के साथ ही साथ विद्रोहिणी भी हैं।

उनके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएं हैं -

आश्चर्यजनक विलक्षणताओं का सहज समाहार।
विजातीय वर्गों से समान संबंध।
आदर्शवादी कार्यप्रणाली।
यथार्थवादी सोच।
समस्त आयु वर्ग के व्यक्तियों से सहानुभूति।
शुद्ध एवं सरल भावाभिव्यक्ति।
ममतामयी भारतीय नारी।
भाव प्रवण कवयित्री।

आधुनिक युग की एकान्त साधिका महादेवी वर्मा बहुमुखी प्रतिभा को साकार करती हैं। उनका साहित्य उनके सात्विक जीवन की शुद्ध एवं सरल भावाभिव्यक्ति है। उनका बाह्य रूप जितना सुन्दर आकर्षक व तेजस्वी है, अन्तरंग भी उतना ही निर्मल, उदार और ओजस्वी है।

महादेवी वर्मा के कृतित्व का विश्लेषण :

बहुमुखी प्रतिभा की धनी कवयित्री महादेवी वर्मा की प्रतिभा का विकास, साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से हुआ है। उनकी सशक्त लेखनी से साहित्य की विधाओं का प्रत्येक स्वरूप परिचित है। खण्ड काव्य, यात्रा वर्णन, संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध, विवेचन, काव्य, नाटक, भाषण तथा पत्र-पत्रिकाओं के लेखों आदि के माध्यम से उनकी उत्कृष्ट साहित्य प्रज्ञा उजागर हुई है।

महादेवीजी के संस्मरण - समन्वित, रेखाचित्र जो ''अतीत के चलचित्र'' तथा ''स्मृति की रेखाएं'' में संग्रहित हैं, इन रेखाचित्रों में समाज के विपन्न, अनाथ, अछूत, अशिक्षित तथा निम्नवर्ग के शोषित पात्रों का चित्रण किया गया है। 'पथ का साथी' में अपने समकालीन कवियों के व्यक्तित्व कृतित्व प्रभावों एवं मनोभूमियों को स्पष्ट किया है।

''श्रृंखला की कड़ियां'' के सामाजिक निबंधों के अतिरिक्त विवेचनात्मक व ललित निबंध भी आपके द्वारा लिखे गये हैं। उत्कृष्ट मौलिक सृजन के साथ महादेवीजी ने अनुवाद का भी बहुत बड़ा कार्य किया है। वाल्मिकी, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति एवं जयदेव की उदात्त-सरस काव्य-विभूतियों का काव्यमय हिन्दी रूपांतर ''सप्तपर्णा'' में प्रकाशित हुआ है। कालिदास के महाकाव्य ''कुमारसंभव'' तथा ''रघुवंश'' और अश्वघोष के महाकाव्य ''बुद्ध चरित'' का सम्पूर्ण अनुवाद भी इनके द्वारा

* शोधार्थी (हिन्दी) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत

काव्य रूप में किया गया है। हिमालय को संबोधित करते हुए इन्होंने जैसे अपने व्यक्तित्व और कृतित्व का अनायास ही उद्घाटन कर दिया है।

हे चिर महान्।
मेरे जीवन की आज मूक तेरी छाया से हो मिलाप,
तन तेरी साधकता छू ले, मन ले करूणा की थाह नाप।
उर में पावस दृग में विहान।

छायावाद की श्रेष्ठ प्रतिभा सम्पन्न कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा का स्थान आधुनिक युग में अत्यन्त महत्वपूर्ण है । उन्होंने अपनी प्रकाशित कृतियों में वेदनाभाव, मृत्यु की महत्ता, सुख-दु:ख का सामंजस्य, चिर-वियोग, चिर-अतृप्ति, उत्सर्ग की भावना, मुक्ति की अनिच्छा, उपालंभ, अमर-संबंध, सहस्यमयता, प्रतीकात्मकता, शैली, भाषा, अलंकार आदि का सुन्दर वर्णन किया है ।

उनके गीतों में प्रांजलता, मधुरता, सरलता और सरसता यथेष्ट मात्रा में प्राप्त होती है। भावुकता, विस्मय और जिज्ञासा की प्रधानता के कारण 'नीहार' ग्रंथ अमर बन गया है। 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा' के गीतों में महादेवी की सम्पूर्ण साधना का विकास क्रम निहित है। 'यामा' में कवयित्री ने पीड़ा को संयमित रूप में अभिव्यक्ति दी है।

काव्य कला की उत्कृष्टता से वे बेजोड़ कलाकार हैं। उनकी तीव्र संवेदनशीलता घनीभूत अनुभूति एवं कुशल कलात्मकता, सबल-सशक्त अभिव्यक्ति अद्वितीय है। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व अपने आप में अप्रतिम है, अनुपम हैं।महादेवी वर्मा ने अपने साहित्य को एक पवित्र आत्मिक अनुष्ठान माना है, जिसका प्रतिपादन सशक्त एवं उदात्त भाषा के माध्यम से किया है । उनका समस्त काव्य वैभव सांकेतिक, प्रतिकात्मक एवं लाक्षणिक होने के कारण अलंकारों की दिपावलियों से दीपित है ।

महादेवी वर्मा कबीर, रवीन्द्रनाथ और जायसी जैसी महान विभूतियों से काफी साम्य रखते हुए भी कुछ भिन्नता रखती हैं । उनके छंद, अलंकार, प्रतीक, बिंब आदि की अनूठी व्यंजना से पाठक धीर गंभीर प्रांजल प्रवाह से बहने लगता है । उनकी ओजस्विनी भाषा, मार्मिक भावाभिव्यक्ति तथा सांकेतिक चित्रात्मकता के माध्यम से उनकी सृजनशीलता में काफी दिव्यता दृष्टिगोचर होती है । उनका भावपक्ष जितना सुन्दर करूणापूर्ण है, कलापक्ष उतना ही सुदृढ़ और अद्वितीय है ।

हिन्दी साहित्य में प्रकाशपुंज सा महादेवी वर्मा का व्यक्तित्व, भविष्य के नवीन निर्माण को आलोकित करेगा । काव्य में गंभीर रहस्यवादी होकर भी जीवन में इतनी सहज सरल तथा परानुभूतिशील, स्पष्ट और शिशुवत कुतूहली होने का रहस्य भी यही है । उनके द्वारा रचित पंक्तियां भी यही कहती हैं -

दूसरी होगी कहानी,
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी,
आज जिस पर प्रलय विस्मित,
मैं लगाती चल रही नित
मोतियों की हाट औं-
चिनगारियों का एक मेला।

वास्तव में आधुनिक युग की प्रमुख कवयित्री महादेवी वर्मा व्यक्तित्व व कृतित्व के अनुशीलन में साहित्यकार की कसौटी पर शत प्रतिशत खरी उतरती है । वे जहां गद्य के क्षेत्र में असाधारण सिद्धि सम्पन्न लेखिका हैं वहीं उनका पद्य लेखन भी भाव प्रवण, विचार-विदग्ध और विविधतापूर्ण है । महादेवीजी के साहित्य का एक एक शब्द अपने आप में एक आकृति है । अपने साहित्य के माध्यम से वे एक असह्य वेदना, एक व्यापक प्रतिक्रिया और एक बैचेनी अभिव्यक्त करती है । काव्यजगत की भावुक तथा रहस्यमयी कवयित्री गद्य-जगत में आकर क्रान्तिकारीणी, ओज भरी, तेजस्विनी व श्वेत वसना शारदा के रूप में अवतरित हुई हैं । सिक्के के दो पार्श्वों की भांति महादेवीजी एक ओर काव्यश्री हैं तो दूसरी ओर गद्य-लेखिका बनकर हिन्दी साहित्य का नाम उज्जवल करती हैं । इसीलिए तो राष्ट्रकवि स्वर्गीय मैथलीशरण गुप्त ने कहा हैं -

''सहजभिन्न दो महादेवियाँ एक रूप में मिलीं मुझे,
बता बहिन ! ''साहित्य शारदा'' या ''काव्य श्री'' कहूँ तुझे ।

निश्चित ही कला की अमर साधना ही उनके जीवन का प्रथम और अंतिम ध्येय बन गई है । हिन्दी साहित्य के हर प्रेमी के हृदय में महाश्वेता महादेवीजी की काव्य-महिमा एवं गद्य-गरिमा का प्रसाद युगों तक चिरस्मरणीय रहेगा ।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

- महादेवी वर्मा : गंगा प्रसाद पाण्डेय
- महादेवी - प्रतिनिधि गद्य रचनाएं : भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित
- महादेवी और उनकी गद्य रचनाएं : माधवी राजगोपालन
- महादेवी अभिनन्दन ग्रंथ - हर्षनन्दिनी भाटिया
- महादेवी साहित्य - ओंकार शरद
- यामा - महादेवी वर्मा
- साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध - महादेवी वर्मा

****

भारतीय चेतना के वाहक एवं प्रसारक- प्रेमचंद

चन्दनबाला सोनी *

मानवतावादी लेखक प्रेमचंद साहित्य सर्जक थे। उनके जीवनकाल में भारत राजनीतिक घटनाचक्रों में से गुजरा था। प्रेमचंद का युग भारतीय स्वाधीनता संग्राम का युग है। उनके समय में देश का यौवन अपने पूरे विकास पर था। एक ओर नवयुवक बड़े उत्साह से स्वतंत्रता के लिये अपने प्राणों का बलिदान कर रहे थे तो दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का दमनचक्र अपनी पूरी कठोरता व निर्दयता के साथ चल रहा था।

31 जुलाई, 1880 में बनारस के पास लमही ग्राम में उनका जन्म हुआ, उनका वास्तविक नाम धनपतराय श्रीवास्तव था। प्रेमचंद नाम से वर्ष 1907 में उन्होंने साहित्य सृजन प्रारंभ किया । जब जिले के कलेक्टर की आज्ञा से लगभग 500 पुस्तकें उनकी जला दी गई और यहीं से प्रेमचंद का जन्म हुआ।

प्रेमचंद के उपन्यास व कहानियाँ भारत के राजनैतिक जीवन का ही प्रतिनिधित्व नहीं करते वरन् उसके आर्थिक, सामाजिक व मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर भी दृष्टिपात करते हैं।

प्रेमचंद के समय देश की आर्थिक स्थिति अत्यंत कमजोर थी। प्रेमचंद के उपन्यासों में किसान वर्ग का चित्रण बड़े विस्तार से किया गया है। भारतीय गाँवों और किसानों की दशा से वे अत्यधिक निकट से परिचित थे। प्रेमचंद द्वारा लिखित ''प्रेमाश्रय'' और ''गोदान'' ग्रामीण जनता अथवा किसान वर्ग के महाकाव्य माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त ''वरदान'', ''कर्मभूमि'', ''सेवा-सदन'' आदि उपन्यासों में भी प्रेमचंद ने किसानों और उसकी विभिन्न समस्याओं की ओर सशक्त संकेत किए हैं।

प्रेमचंद ने कर्मभूमि में शिक्षा का उद्देश्य बताते हुए लिखा है ''जीवन को सफल बनाने के लिए शिक्षा की जरूरत है डिग्री की नहीं।'' हमारी डिग्री है हमारा सेवाभाव, हमारी नम्रता, हमारे जीवन की सरलता। अगर यह डिग्री नहीं मिली, अगर हमारी आत्मा जागृत नहीं हुई तो कागज की डिग्री व्यर्थ है।

प्रेमचंद ने भारतीय समाज के प्रत्येक अंग- मजदूर, किसान, मध्यमवर्गीय परिवार आदि की आर्थिक स्थिति अपने उपन्यासों में चित्रित की। तत्कालीन भारत की आर्थिक दशा का यथार्थ ज्ञान प्रेमचदं साहित्य से होता है। आर्थिक समस्या का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय पराधीनता से था। वैश्यावृत्ति, विधवा-विवाह, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, छुआछूत, शिक्षा, ग्राम्य जीवन आदि सभी के मूल में आर्थिक पहलू है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में जीवन-दर्शन :

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में मध्यम वर्ग की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। उनके प्रमुख मध्यमवर्गीय औपन्यासिक पात्र नैतिकता को अपनाकर चले हैं। सत्य की सदैव असत्य पर विजय बताना ही उनका जीवन दर्शन था। इस प्रकार प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के माध्यम से भारतीय समाज में उभरने वाले इस प्रगतिशील मध्यमवर्ग के नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है।

प्रेमचंद के प्रथम उपन्यास ''वरदान'' का संबंध मध्यम वर्ग के जीवन से ही है, जिसमें मध्यमवर्गीय समाज के विवाह और प्रेम के पारस्परिक विरोध का सफल कथात्मक चित्रण हुआ है। प्रेमचंद ने मध्यमवर्गीय समाज की समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षिक किया है।

''प्रतिज्ञा'' में प्रेमचंद ने विधवाओं के पुनर्विवाह की समस्या का उद्घाटन मध्य वर्गीय समाज की पृष्ठभूमि पर ही किया है। वरदान और प्रतिज्ञा के पश्चात् ''सेवासदन'' में प्रेमचंद ने नारी जीवन की समस्या वैवाहिक, वैधव्य और वैश्यावृत्ति के पहलु पर प्रकाश डाला है।

प्रेमचंद ने इसके पश्चात् ''प्रेमाश्रम'' लिखा जिसमें किसानों और जमींदारों के संघर्ष को दर्शाया गया है। इसके बाद प्रेमचंद द्वारा लिखित उपन्यास 'निर्मला' में मध्य वर्ग के संस्कारों और धारणाओं का सफल अंकन किया गया है। ''रंगभूमि'' और ''कायाकल्प'' उपन्यासों में प्रेमचंद ने औद्योगिक समस्या व किसानों तथा ग्रामीणों के जीवन से संबंधित समस्याओं का उल्लेख किया है। कायाकल्प के पश्चात् मध्यम वर्ग का सबसे प्रसिद्ध और विशिष्ट उपन्यास 'गबन' लिखा गया। 'गबन' मध्य वर्ग की समस्याओं का उद्घाटन करने वाला सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

गबन के बाद 'कर्मभूमि', 'गोदान' और 'मंगलसूत्र' लिखे गए। 'मंगलसूत्र' प्रेमचंद का अपूर्ण उपन्यास है इसमें अभिजातवर्ग की झांकियों के साथ-साथ संघर्षशील मध्यवर्ग का चित्रण मिलता है। '

कर्मभूमि' अछूतों की समस्या के अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वाधीनता की समस्या से संबंधित है। 'गोदान' किसान वर्ग का उपन्यास है, ग्रामीण जनता का महाकाव्य है। इस प्रकार प्रेमचंद के प्राय: सभी उपन्यास सामाजिक जीवन की तत्कालीन परिस्थितियों से संबंध रखते हैं, परन्तु उनकी सामाजिकता किसी न किसी समस्या पर ही आधारित है।

प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक चेतना :

प्रेमचंद के सभी उपन्यासों में किसी न किसी समस्या को उठाया गया है। प्रेमचंद का मुख्य उद्देश्य भारतीय जन-जीवन की समस्याओं को विचार-प्रधान उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करना था। प्रेमचंद हिन्दी के ऐसे साहित्यकार हैं जिनके ग्रंथों व कहानियों में दमन और उत्पीड़न के युग के समाज की अवस्था का यथार्थ चित्रण और प्रतिबिंब मिलता है। उन्होंने उन समस्याओं और मान्यताओं का स्पष्ट चित्र अंकित किया है जो मध्यवर्ग, जमींदार, पूंजीपति, किसान, मजदूर, अछूत और समाज से बहिष्कृत व्यक्तियों के जीवन को संचालित करती हैं। साहित्य के क्षेत्र में वे साहित्य के साथ-साथ समाज के भी सृष्टा कहे जा सकते हैं।

प्रेमचंद ने किसानों के मानसिक गठन और मध्यवर्ग के दृष्टिकोण को उस समय गंभीर विश्वास और उत्साह के साथ वाणी दी जब इस देश के सामाजिक और राजनैतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। उनके साहित्य में उस पूंजीवाद या पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते हुए प्रभाव के विरूद्ध निम्न मध्य वर्ग के विरोध और घृणा के भी दर्शन होते हैं जो ग्राम्य जीवन की पुरातन व्यवस्था को ध्वस्त और नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए उत्तरदायी हैं। सन् 1905 से 1936 तक के संघर्षपूर्ण युग के मानव जीवन में हो रहे क्रान्तिकारी परिवर्तनों से वे भलीभांति परिचित थे।

उन्होंने निम्न मध्यवर्ग और कृषकवर्ग की कठिनाईयों और संघर्षो भरे जीवन को अपने कथानकों में महान् कौशल के साथ चित्रित किया है। प्रेमचंद ने दस उपन्यास और लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं जिनके माध्यम से उन्होंने अपने युग की प्रतिगामी प्रवृत्तियों का विरोध किया है। इसी कारण

* शोधार्थी (हिन्दी) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत

वे इस ऐतिहासिक युग के प्रगतिशील लेखक कहे जाते हैं।

प्रेमचंद के उपन्यासों व कहानियों में सामाजिक उद्देश्य और सामाजिक आलोचना का समावेश है। वे समाज व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे जिसमें न जरूरतें पूरी करने में कठिनाई हो न किसी प्रकार का भय हो। प्रेमचंद विकासवादी समाजवादी थे। वे दयालुता व अहिंसा के साथ नैतिक दबाव डालने वाली गाँधीवादी नीति के अनुयायी हैं।

प्रेमचंद के साहित्य सृजन का उद्देश्य मनुष्य के भीतर उन उच्च प्रवृत्तियों और आध्यात्मिक गुणों का विकास करना है जो उसे एक अच्छे संसार का निर्माण करने में आने वाली बाधाओं को जीतने की शक्ति दे सके। प्रेमचंद ने अपनी लेखनी से देहाती जीवन की समस्याओं पर अद्भूत सूक्ष्मदर्शिता और सहानुभूति से विचार किया है। उन्होंने देहात की दरिद्रता का सच्चा और करूण चित्र अंकित किया है। साथ ही सुधार के ऐसे सुझाव पेश किये हैं जिनसे कि गरीब किसानों का भला हो सके। प्रेमचंद परम्परा के अंधानुयायी नहीं थे तो भी वे प्राचीन सामाजिक ढांचे की कुछ मौलिक मान्यताओं और आदर्शों को अपनाए रखना चाहते थे। उनमें से एक है सम्मिलित परिवार प्रथा। सम्मिलित परिवार में रहने का अभिप्राय सामाजीकरण की क्षमता को सम्पादित करना था। उनका उद्देश्य सामाजिक संरक्षण, स्थायित्व और समाज का स्थिर बना रहना था।

वे निश्चय ही एक ऐसे मानवतावादी थे जिनका कि मनुष्य की गरिमा में अगाध विश्वास था, पाठकों के जीवन में सक्रिय दृष्टिकोण रखने की भावना पैदा करने की अभिलाषा के साथ उन्होंने साहित्य सृजन किया। प्रेमचंद ने नवीन समाज व्यवस्था के निर्माण को रोकने वाली सभी बुराईयों के विरूद्ध शंखनाद किया।

संदर्भ ग्रंभ सूची :-

- ❊ प्रेमचंद : सत्येन्द्र
- ❊ प्रेमचंद का कथा संसार : डॉ. बादामसिंह रावत
- ❊ प्रेमचंद एक विवेचन : डॉ. इन्द्रनाथ मदान
- ❊ समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद : डॉ. महेन्द्र भटनागर

****

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की समीक्षा दृष्टि (पंत एवं प्रसाद के विशेष संदर्भ में)

डॉ. चन्दा तलेरा जैन *

हिन्दी के समन्वयवादी आलोचकों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति अपूर्व अनुराग रहा है इसी कारण इन्होंने प्राचीन भारतीय समीक्षा शास्त्र की युगपरक नवीन व्याख्या करते हुए आधुनिक आलोचना को एक स्वस्थ व नवीन दृष्टि प्रदान की है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी सौष्ठववादी आलोचक हैं। इस समीक्षा पद्धति में काव्य के ''सौर्योद्घाटन'' पक्ष पर जोर दिया जाता है। आचार्य बाजपेयी को छायावाद का पहला और प्रभावी आलोचक माना जाता है उन्होनें ही सबसे पहले और अत्यंत सशक्त व प्रभावी ढंग से, छायावाद का मूल्यांकन करते हुए, उसके प्रति फैली भ्रांतियों का खंडन किया, उसकी विस्तृत समीक्षा की। उनके अनुसार ''काव्यशास्त्र के सिद्धांतों से ऊपर उठकर सौंदर्य का उद्घाटन करना ही आलोचक का प्रधान कार्य हैं''।

जिस समय छायावादी काव्य का विरोध 'सरस्वती', विशाल भारत, सुधा एवं प्रभा जैसी पत्रिकाएं कर रही थीं उस समय छायावादी कवियों को बाजपेयी जैसे प्रखर समर्थक मिले जिन्होंने तर्कपूर्ण एवं प्रामाणिक ढंग से छायावादी काव्य का विश्लेषण सामाजिक संदर्भो में करते हुए, छायावादी काव्य की विशेषताओं को समक्ष रखा। उन्होंने पंत, प्रसाद, निराला पर निबंध लिखकर इनके काव्य सौंदर्य से परिचित कराया। उन्होंने प्रसाद के काव्य में ''मानवीय भूमि'' निराला के काव्य में 'बुद्धि तत्व' तथा पंत के काव्य में 'कल्पना तत्व' की प्रधानता को निरूपित किया।

शुक्लोत्तर समीक्षा के क्षेत्र में तो आचार्य नंददुलारे बाजपेयी का स्थान अत्यंत ही महत्वपूर्ण है उनके व्यक्तित्व में सहजता सहज रूप में रही है। भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं परम्परा पर उनका विश्वास बहुत ही प्रबल रहा है। महाकवि सूर और प्रसाद 'कवि निराला', पंत, प्रेमचन्द आदि की प्रसिद्ध समीक्षाओं के अलावा उनकी समीक्षा पद्धति का स्वरूप उनकी प्रौढ़ आलोचनात्मक कृतियों ''हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी, नया साहित्य, नये प्रश्न'' में हैं। उन्होनें समीक्षा शास्त्र का कोई पृथक ग्रंथ नहीं लिखा है, फिर भी इन कृतियों के आधार पर उनके सिद्धांतों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है सैद्धान्तिक समीक्षा पर वे शून्य तो नहीं थे परंतु उनकी कृतियां व्यावहारिक समीक्षा के रूप को हमारे समक्ष उद्घाटित करती है।

आचार्य नंददुलारे बाजपेयी की समीक्षा पद्धति तर्कपूर्ण, गंभीर एवं मर्म को उद्घाटित करने के साथ सौन्दर्य बोध की ओर पर्याप्त सजग भाव से आकर्षित हैं। डॉ. रामचन्द्र तिवारी के अनुसार ''कहना चाहें तो कह सकते हैं कि यदि आचार्य रामचंन्द्रशुक्ल के काव्य सिद्धांत तुलसी के आधार पर निर्मित हुए हैं, तो आचार्य नंददुलारे बाजपेयी की मान्यताएँ प्रसाद जी से प्रभावित हैं।''

प्रसाद जी की ही भांति वे भी आनंदवादी हैं। सौंदर्य को वे नैतिकता के बंधनों में बांधना नहीं चाहते। उनका कि सौंदर्य स्वयं शिवत्वपूर्ण रहता है, सत्यपूर्ण रहता है। इस धारणा के कारण ही वे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सिद्धांतों से अलग हो गये। इन आचार्यद्वय की धारणा में यही अंतर है कि आचार्य शुक्ल जहाँ सौंदर्य को शिवत्व से पूरित देखना चाहते हैं वहां आचार्य बाजपेयी जी सौंदर्य को स्वत: ही शिवत्वमय देखते हैं और उसे नैतिकता के बंधनों से बिना आवृत किये। डॉ. बाजपेयी की गहन समीक्षा दृष्टि ने हिन्दी में कोमल प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत के काव्य में मुख्य तत्व कल्पना को ही माना हैं।

उनके अनुसार यही कल्पना प्रेम और सौंदर्य के साथ समर्थ हुई हैं तो इसने कही कही पर आध्यात्मिकता की ऊंची उड़ान भी ली हैं। बाजपेयी जी के कथन में ''कल्पना की इस 'ओलंपिक' प्रतियोगिता में पंत ने अपने लिये 'प्रेम' और 'सौंदर्य' के 'हिट्स' चुन लिये हैं और श्रृंगार वर्णन की उनकी रेस विशेष चमत्कारपूर्ण रही हैं। पंत की यही रूचि दिशा है। उनकी कल्पना के साथ उनकी यह रूचि मिलकर, उनकी कविता को आकर्षक वेशभूषा से सज्जित करती हैं। यह साज-सज्जा आधुनिक हिन्दी मे अत्यंत विरल है''।

शब्द साधना में पंत ने अपने समय की खड़ी बोली को संस्कृत की शब्ददृष्टि से दृढ़ किया उन्होनें हिन्दी के अनुरूप अनेक प्रयोग आविष्कृत करते हुए, खड़ी बोली को भावाभिव्यक्ति की विशेष शक्ति तथा भाषा को एक नवीन छटा प्रदान की। भाव और भाषा का यह अभिन्न संबंध समझने में पंतजी को प्रारंभ से ही दुविधा नहीं थी, यह भी उनकी प्रतिभा का ही प्रमाण हैं। इस प्रकार ऐसे सशक्त मूल्यांकन से उन्होनें छायावादियों के प्रति हुए अन्याय को दूर किया। समर्थ समीक्षक आचार्य बाजपेयी ने छायावाद एक नई विचारधारा हैं नया जीवन दर्शन हैं यह माना।

डॉ. श्यामसुंदर दास के प्रिय शिष्य आचार्य बाजपेयी जी की दृष्टि बडी पेनी थी। प्रेमचंद पर लिखी उनकी पुस्तक से भी उनकी इस गहन गंभीर दृष्टि का पता चलता हैं। उन्होंने शुद्ध सौंदर्यवादी दृष्टिकोण से छायावादी काव्य सौंदर्य का मूल्यांकन किया तथा यह स्थापित किया कि छायावादी कविता हिन्दी काव्य भंडार की महान उपलब्धि हैं।

शुक्लाजी के जाने के बाद हिन्दी साहित्य में जो शून्यता आ गयी थी, उसे बाजपेयी ने दूर किया। निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता हैं कि आचार्य नंददुलारे बाजपेयी जी अपने मौलिक दृष्टिकोण, नव्यतर समीक्षा मानदंड, तलस्पर्शी दृष्टि तथा मार्मिक व्याख्या के कारण ही मूर्धन्य आलोचकों में गिने जाते हैं व गिने जाते रहेंगे।

संदर्भ सूची :-

1. आधुनिक हिन्दी आलोचना-संदर्भ एंव दृष्टि डॉ. रामचन्द्र तिवारी- पृ.48
2. नया साहित्य : नये प्रश्न
3. आधुनिक साहित्य - पृ. 113
4. वही : पृ. 114
5. हिन्दी साहित्य : बीसवी शताब्दी
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास- राजनाथ शर्मा

* प्राध्यापक, हिन्दी, माता जीजा बाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत

अपभ्रंश, अपभ्रांश भाषा और पुरानी हिन्दी

डॉ. साधना निर्भय *

अपभ्रंश शब्द = अप + भ्रंश + धञ । इसका अर्थ होता है कि अद्य: पतन, अधभ्रष्ट। अपशब्द विपरीत वाचक है, इसे शब्द कल्पद्रुम में ग्राम्यभाषा, अपभाषा, अशब्द भी कहा गया है। मोनियर विलयम ने मोस्ट करप्ट ऑफ प्राकृकत 'डाइलेक्टस' भी कहा है। संस्कृत ग्रन्थों में इसे अपभ्रंश, अपभ्रष्ट, अवहंस, अवब्भंस, अवडठ आदि नाम भी मिलते हैं।

स्वयंभू रामायण में अवहत्थं 'कुबलयमाला' में अवहंस शब्द मिलता है। संदेश रासक में अवहट्ठ कीर्तिलता में अवहट्ट या अवहट्ठा शब्द मिलता है। पंतजलि (दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व) को अपभ्रंश की जानकारी थी, उन्होंने 'गौ' आदि शब्दों को देकर अपने विचार व्यक्त किये हैं। भरतमुनि ने 'उकार बहुला' का उल्लेख किया है, किन्तु अपभ्रंश का नाम नहीं लिया है। हिमवत सिन्धु सौ वीरं और पंजाब की उकार बहुला भाषा के उदाहरण भरतमुनि ने दिये हैं। लक्ष्मीधर ने आभीर आदि बोलियों को अपभ्रंश भाषा कहा है। कालिदास के 'विक्रमो उर्वशी' में दोहा आदि छन्दों में अनेक दोहे आदि दिये गये हैं। उन्हें शुद्ध टकसाली अपभ्रंश कहा गया है।

'मृच्छकटिक' में विभाषा के अंतर्गत अपभ्रंश के प्रयोग मिलते हैं। वहाँ शकारि, चाण्डाली, ढक्की अपभ्रंश के प्रयोग हैं। सौराष्ट्री के वलभी में राजाधर सेन द्वितीय का शिलालेख मिला है। डॉ. हरमन याकुबी ने लिखा है कि घरसेन ने अपने पिता के विषय में कहा है कि वे संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों में काव्य रचना में अत्यन्त कुशल थे। भरतमुनि ने जिस प्रकार बहुला भाषा का प्रयोग किया है और जो हिमवत सिन्धु पंजाब तक बोली जाती थी वह अपभ्रंश ही है। पहले प्राकृत को ही अपभ्रंश कहा जाता था। (प्राकृत सेव अपभ्रश:) कालान्तर में प्राकृतें साहित्य में प्रयुक्त होकर रूढ़ हुई और वे धीरे-धीरे जन बोली से दूर होती चली गई।

प्राकृतों की इसी परम्परा में धीरे-धीरे जन बोली का विकास हुआ और उस विकसित अवस्था को अपभ्रंश कहा गया। ''चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने लिखा है विक्रम की शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी तक अपभ्रंश भाषा की प्रधानता रही फिर वह पुरानी हिन्दी में परीणत हो गई। इसमें देशी की प्रधानता है विभक्तियों घीस गई है, खिर गई हैं। एक ही विभक्ति है या 'आइ' कई काम देने लगी। एक कारक की विभक्ति से दूसरे कारक का काम चलने लगा। इसे वैदिक भाषा की अविभक्ति निर्देश की विरासत भी मिली। विभक्तियों के खिर जाने से कोई अवयय और अन्य पद विभक्ति पद के आगे रखे जाने लगे जो विभक्तियाँ नहीं है, क्रियापदों में मार्जन हुआ। [2]

आभीर जाति गोपालक थी उन्हें तेतिपाल भी कहा जाता था आभीर, गोपाल आदि जातियों आभीर कहलाती थीं। इसी के समानार्थी शब्द हैं गोप, गो संख्या, गोधुक, आभीर, पल्लव आदि। [3] भाषा वैज्ञानिकों की दृष्टि से प्राकृत की अंतिम अवस्था को अपभ्रंश संज्ञा दी गई है। स्वरूप की दृष्टि से प्राकृतों से अपभ्रंश का पार्थम्य स्पष्ट है। अपभ्रंश की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का पूर्व रूप कहा जा सकता है। जिसे गुलेरीजी ने पुरानी हिन्दी कहा उसे ही के. का. शास्त्री ने जूनी गुजराती कहा है। यहाँ यह भी जानने योग्य है कि अपभ्रंश का विकास साहित्यिक प्राकृतों से नहीं हुआ। अपभ्रंश का विकास जन बोली से हुआ है। बागभट्ट (1200 ई.) ने लिखा है कि अपभ्रंश विभिन्न प्रदेशों में बोली जाने वाली जन भाषा है। अपभ्रंश की श्रुति (Glide) की विशेषता है इसमें देशी शब्द रूपों की बहुलता है। हेमचन्द्र ने उसे ग्राम्य भाषा भी कहा है। आभीरी को ही दण्डी ने अपभ्रंश कहा है। आभीर जाति, गोपालक भी बड़ी दुर्घष थी। डॉ. नामवर सिंह ने सम्भावना व्यक्त की है कि दण्डी जैसे आचार्य ने इस जाति (आभीर) के प्रभाव को देखकर के ही आभीर आदि गिर: का प्रयोग किया क्योंकि भाषाऐं प्रदेश अथवा प्रभावशाली जाति के नाम से जानी जाती है। यह बाहर से लाई गयी विदेशी बोली नहीं थी। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने लिखा है ''दसवीं शताब्दी में अपभ्रंश उत्तारा पथ की साहित्यिक भाषा रहीं, इसका मूल कारण राजपूतों की शक्ति भी यह उस समय समस्त आर्यो की राष्ट्र भाषा थी जो गुजरात और पश्चिमी पंजाब से लेकर बंगाल तक प्रचलित थी। [4]'

' कालान्तर में अपभ्रंश भी वैयाकरणों के हाथों में पढ़कर जकड़ दी गई और केवल साहित्य में इसका प्रयोग होता रहा और यह पूर्णत: साहित्यिक भाषा बन गई। 12वीं शताब्दी के पश्चात् आधुनिक भारतीय भाषाओं का उदयकाल माना जा सकता है और इनसे देश भाषाओं का आरम्भ हुआ।

साहित्य के आचार्यो ने अपभ्रंश को ही देशी भाषा या देश भाषा नाम दिया है। हिन्दी के पुराने कवियों ने भी अपनी भाषा को देशी भाषा कहा है और जन भाषा में काव्य लिखे। तुलसी ने 'भाषा निबन्ध मति मंजुल मातनोति' और 'भाषा बद्ध करब मैं सोई', विद्यापति ने कीर्ति लता की भाषा को देवी भाषा कहा है। 'देसिल बअना सब जन मिश्ण, तैं तेसन जञ्पउ अवहउण'। केशवदास ने अपनी भाषा के विषय में लिखा है - भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल में काल'' तेहिं कुल भह: मति मंद भो केसव केसवदास।'' संस्कृत प्राकृत और अवहद को प्राय: सभी विद्धानो ने प्रमुखता दी है।

डॉ. तगारे, डॉ. बाबुराय स:सेना, आचार्य रामचन्द्र शु:ल, पं. हजारीप्रसाद द्विवेद्धी, डॉ. रामसिंह तोमर, हीरालाल जैन, वीरेन्द्र श्रीवास्तव, ए. एन. उपाध्याय, डॉ. नामवर सिंह तक ने उद्धृत किया है। सारांश यह पतंजलि तीसरी शताब्दी ई. पूर्व भरतमुनि 200 से 300 ई. पूर्व (विक्रमोवंशीय) कालिदास के मृच्छकटिकम नाटक आदि में इस भाषा के उल्लेख मिलते हैं। इसमें नेमीनाथ, शांतिनाथ, यशोधरा के चरित जैसे पैंतीस चरित काव्यों का, पाँच प्रेमाख्यानक काव्यों का छ: प्रकथन प्रधान काव्यों का छ: पुराण काव्यों का, चालीस से अधिक संदेश रासक, कुमार पालरास आदि रासों काव्यों का पच्चीस से अधिक खण्ड काव्यों का सौ से अधिक दोहा ग्रन्थों का उल्लेख डॉ. पाठक ने किया है।

डॉ. नामवरसिंह ने एक सौ पच्चीस ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की है। इनमें एक से एक स्वयंभू पुष्पदंत, हरीशमन, धनपाल जैसे महाकवि हुए हैं। कहा जा सकता है कि ईस्वी सन् के पहले से जन बोली अपभ्रंश का किसी न किसी रूप में उल्लेख मिलने लगता है। धीरे-धीरे यह साहित्य में प्रयुक्त हुई। सातवीं-आठवीं शताब्दी के आसपास स्वयंभू जैसे महाकवियों ने इसमें महाकाव्य की सृजना की। इसके रूपतत्तव की ओर वैयाकरणों का ध्यान गया। वररुचि, मार्कण्डेय, कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य जैसे महान वैयाकरणों ने सोदाहरण इसमें व्याकरण लिखें। जर्मनी के हरमन याकुबी, पिशेल डॉ. ए. बी. कोथ, प्रभृति पाश्चात्य विद्धानों ने भी इस पर प्रकाश डाला हैं।

उपर्युक्त कथन के आधार पर अत्यन्त संक्षेप में कह सकते है जिसे भ्रष्ट भाषा, विच्युत भाषा, ने श्रृंखलितभाषा कहा गया वह उसका समय के अनुसार अग्रसरीभूत रूप था। उसने एक सुदीर्ध काल में साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की ।

संदर्भ-

1. नाट्य शास्त्र 16/62
2. पुरानी हिन्दी पृ. 8 (चन्द्रधर शर्मा गुलेरी)
3. अमरकोष 2/9/57
4. डॉ.श्यामसुन्दर दास हिन्दी, पृ. 17-18

* सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

कुछ प्रमुख संत कवि और धर्मनिरपेक्षता

डॉ. रशीदा खान *

'संत न छाड़े संतई
जे कोटिक मिलें असंत।'

संत शब्द शांत से विकसित हुआ है, और इसका अर्थ है निवृत्ति मार्गी अथवा बैरागी।

कौमी एकता के मसीहा संत कबीर :- संत कवियों में कबीर सर्वाधिक प्रबल व्यक्तित्व लेकर सामने आये। उन्होंने 'नामदेव' द्वारा चलाये गये मार्ग को अपनी प्रतिभा, सुदृढ़ व्यक्तित्व तथा प्रौढ़ चिन्तन द्वारा प्रशस्त किया। हिन्दू, मुस्लिम एक्य विचारधारा जो इतनी प्रबल हुई, उसके मूल प्रवर्तक कबीर ही थे। कबीर जैसे संतों का यह दृढ़ विश्वास था कि भेदभाव की नौका से हम पार नहीं उतर सकते -

'पूरब दिसा हरि का बासा,
पश्चिम अल्लाह मुकामा।
दिल ही खोजि दिलै-दिल भीतर,
यहीं राम-रहमाना।'

कबीर का संदेश विश्व प्रेम मूलक है। 'सांई के सब जीव हैं, सबै जीव सांई के प्यारे।' कहकर उन्होंने जीव मात्र की समानता का प्रतिपादन किया। जब-जब उनकी दृष्टि समसामयिक धार्मिक रूढ़ियों पर गई, तब-तब बड़े तीव्र एवं प्रखर स्वर में उन्होंने उसका प्रतिकार किया। उन्होंने राम-रहीम की एकता पर बल दिया तथा पारस्परिक बंधुत्व को ही श्रेयस्कर माना।

कबीर के अनुसार कुरान पढ़ने वाले को भले ही मुल्ला कहो, और जो वेद का पाठ करे उसे पण्डित कहो, वास्तव में सब एक ही मिट्टी के बर्तन हैं -

पढ़े कतेब वे मुल्ला कहिये
वेद पढ़े वे पांडे।
बेगारि-बेगारि नाम धराये
सब मटिया के भांडे।

प्रसिद्ध सूफी शायर 'गुलाम हुसैन एलिचपुरी' ने भी इसी तर्ज में कहा है -

गढ़ा है कुमार एक माटी के भाण्डे।
हुआ कोई मुल्ला, हुआ कोई पांडे।

गुरूनानक देव :-सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरूनानक का भी संत कवियों में एक विशिष्ट स्थान है। वे कहते थे - न कोई हिन्दू न कोई मुसलमान, दोनों का सृजनकर्ता एक ही है - 'एक पिता एकश के हम बारिक' कहकर उन्होंने दोनों से सामन्जस्य स्थापित किया।

उनका वर्ण्य विषय निर्गुण ब्रह्म की उपासना, संसार की क्षणभंगुरता, माया की शक्ति, नाम जप की महिमा, आत्म ज्ञान की आवश्यकता, गुरूकृपा का महत्व, सात्विक कर्मो की प्रशंसा आदि। जीवहिंसा, मूर्तिपूजा आदि का खण्डन उन्होंने कबीर की तरह किया। सिक्ख संत गुरू गोविंद सिंह ने भी भावनात्मक एकता का संदेश कुछ इस तरह दिया -

एक ही सेव, सबहि को गुरूदेव एक
एक ही स्वरूप सबै, एकै ज्योति जानबौ।

गुरू नानक का सदियों से निम्नलिखित शब्दों में आदर किया जाता रहा है -

बाबा नानक शाह फकीर
हिन्दू का गुरू, मुसलमान का पीर।

इस तरह नानक ने सिक्ख धर्म की मशाल जलाए रखी।

नज़ीर अकबराबादी :-दो संस्कृतियों एवं सम्प्रदायों के समन्वयकारी, संत नजीर थे तो मुसलमान किन्तु हिन्दू और मुसलमान जैसे तुच्छ भेदभाव से वे बहुत ऊपर उठे हुए थे। रसखान की तरह उन्होंने भगवान कृष्ण, महादेव आदि अनेक हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति अपनी श्रृद्धा प्रकट की। 'नज़ीर' ने अमीर खुसरो द्वारा स्थापित संस्कृतियों के समन्वयकारी मार्ग को अपनाया। 'नज़ीर' ने अज़ान भी दी और शंख भी फूंका। तस्बीह भी ली और जनेऊ भी पहना। पीर, पैगम्बर, नबी, रसूल के लिये जी भर कर लिखा तो कृष्ण, भैरो, महादेव और नानक पर भी श्रृद्धान्जलि चढ़ाई। गुल-ओ-बुलबुल पर कहा तो 'आम और कोयल' को पहले याद रखा। उन्हें पर्दे के साथ बसंती साड़ी भी याद रही।

इस तरह संत प्रकृति के लोग मानवता, धर्मनिरपेक्षता, एकता पर बल देते रहे। इनकी वाणी सदैव प्रेम के गीत गाती, व आँखें सबके लिये रोती रहीं। यही वजह है कि उनका यह प्रेम भाव आज भी उन्हें अजर अमर बने हुए हैं।

कबीर ने 'मैं राम की बहुरिया' जैसे उद्गारों से अपना गहन ईश्वर प्रेम व्यक्त किया है। वे दिव्य अनुभूति के धनी थे। उनकी बहुत सी उक्तियाँ इस ओर इंगित करती हैं -

मोको कहाँ ढूँढे बन्दे, मै तेरे पास मे
न मै देवल, न मै मस्जिद, न काबे कैलाश मे।

इस तरह संतों की वाणी में राष्ट्रीय चरित्र बोलता है और उससे सांस्कृतिक एकता एवं सर्वधर्म समन्वय की पावन गंगा प्रवाहित होती है। जिस प्रकार अकेला बिन्दु किसी चित्र का निर्माण नहीं करता, अकेली कड़ी किसी जंज़ीर का निर्माण नहीं करती, वैसे ही एक व्यक्ति की तकदीर से नहीं, अपितु कौमों की तकदीर से ही राष्ट्र की तकदीर बनती है।

आज भी ऐसे कवि हैं जिनका दिल राष्ट्रीय वैमनस्य को देखकर रो पड़ता है वे कह पड़ते हैं -

ये अंधेरा इसलिये है कि खुद अँधेरे में हैं आप,
आप अपने दिल को इक दीपक बनाकर देखिये।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. संत संस्कृति और धर्मनिरपेक्षता - डॉ. नाथूलाल गुप्ता
2. वृहत् साहित्यिक निबंध - शांतिस्वरूप गुप्ता डॉ. रामसागर त्रिपाठी
3. कबीर ग्रंथावली - डॉ. पुष्पपाल सिंह

****

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

संगीत के प्रचार में जन संचार माध्यमों की भूमिका

डॉ. बी. वर्षा *

भारत में संगीत परम्परा बहुत प्राचीन है। संगीत किसी भी क्षेत्र का हो, चाहे भारतीय हो अथवा पाश्चात्य, आदिकाल से ही उसका जनजीवन से संबंध रहा है। यह एक ऐसी ललित कला है जिसमें संगीतज्ञ स्वर, लय, ताल के माध्यम से अपने मनोभावों को व्यक्त करता है। संगीत में सम्पूर्ण मानव जगत को आत्मविभोर करने की शक्ति होती है यह ऐसी कला है जो विश्व में सभी को प्रिय है। संसार की कोई भी ऐसी जगह नहीं है जहाँ के लोग संगीत से जुडे न हो, इसलिए भर्तृहरि ने संगीत विहीन मानव को बिना सिंग और पूँछ वाले पशु के समान माना है।

आनन्द प्राप्त करना प्रत्येक मानव जीवन का लक्ष्य है, इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह नित नये आविष्कार करने हेतु प्रयत्नशील रहता है। जिसके तहत जनसंचार के अनेक माध्यम वर्तमान में व्यापक रूप से दिखाई देते हैं। वर्तमान में मीडिया जानकारी देने का इतना सशक्त एवं समृद्ध माध्यम बन गया है कि देश-विदेश में घटित होने वाली सूचनाओं या खबरों को तत्काल जन-जन तक पहुँचाने का काम चंद सेकण्ड्स में हो जाता है।

संचार के बिना हमारे जीवन की गति नहीं बढ़ती, आज हमारी गति का, प्रगति का मूल आधार संचार है। संचार व्यवस्था ने हमारे जीवन का बहुत सुविधाजनक और तेज बना दिया है। आज संचार के बिना समाज और जीवन की कल्पना करना व्यर्थ है। यह सूचनाओं के साथ-साथ हमारे मनोरंजन की भी व्यवस्था करता है। संचार से हम परस्पर आपस में एक-दूसरे से जुडते हैं। स्पष्ट है कि संचार हम सब के जीवन से अटूट रूप से जुड चुका है।

संचार के माध्यम, सामान्य रूप से ''मीडिया'' के पर्याय के रूप में माने जाते हैं। मीडिया, यह पत्रकारिता क्षेत्र का शब्द है इस प्रकार हम संचार माध्यम ऐसे माध्यमों को कहेंगे जो सूचना, समाचार अथवा संप्रेषण से जुडे है। आज अनेकों संचार माध्यम है, जो सूचना के प्रसार का कार्य कर रहे है इन्हें ही संयुक्त रूप से ''सूचनातंत्र'' कहा जाता है। इन संचार माध्यमों को मूलत: दो वर्गो में रखा जा सकता है-

1. **परम्परागत संचार माध्यम**
2. **आधुनिक संचार माध्यम**

परम्परागत संचार माध्यम वे होते है जो ग्रामीण समाज को परम्परा से प्राप्त हुए है। ये सूचना और संदेश देने के साथ-साथ मनोरंजन के साधन भी है। प्राचीनता के साथ नवीनता का समावेश इसका योग्य लक्षण है। इनका प्रभाव सूचना से अधिक संस्कृति, मनोरंजन और शिक्षा पर है।

ये मुख्य रूप से सामाजिक उत्सवों में मौखिक संचार का कार्य करते है जैसे- रामलीला, लोकनृत्य, तमाशा, नौटंकी, लोकसंगीत, कथा, गायन आदि। इसी प्रकार लोक कलायें तथा संगीतप्रधान तत्व भी परम्परागत संचार माध्यम की श्रेणी में आते हैं।

आधुनिक संचार माध्यम, टेक्नोलॉजी की देन है। वर्तमान में भौतिक दूरियाँ बढ़ने के कारण प्रौद्योगिक प्रगति हुई। लाखों किलोमीटर दूर रहने वाले लोग अब एक साथ संचार करने में समर्थ हो गये हैं, और इसी तकनीकी क्रांति ने आधुनिक संचार माध्यमों को जन्म दिया, और इन आधुनिक संचार माध्यमों को निम्न रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है:-

1. मुद्रण माध्यम - जैसे समाचार पत्र-पत्रिकाएँ पुस्तकें आदि।
2. श्रव्य संचार माध्यम - रेडियो, ऑडियो, कैसेट, टेपरिकॉडर
3. दृश्य संचार माध्यम - टेलीविजन, विडियो, फिल्म आदि।

दृश्य तथा श्रृव्य संचार माध्यम इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के अन्तर्गत सर्वप्रथम श्रव्य संचार माध्यमों पर प्रकाश डालना चाहूंगी :-

1.श्रव्य संचार माध्यम :-

(अ)रेडियो - Heinrich Hertiz ने सर्वप्रथम रेडियों तरंगों को 1887 ई. में जनता के समक्ष लाने का प्रयास किया। इन्होंने Electro Magnatic waves को उत्पन्न किया। फिर धीरे-धीरे सन् 1894 तक रेडियो प्रचलन में आया। मारकोनी ने Signalhill पर स्टेशन में रेडियो का आविष्कार किया। हमारे भारत में रेडियो का आगमन लगभग बीसवीं शताब्दी में हुआ, और जून 1923 में पहला कार्यक्रम प्रसारित किया गया। सन् 1938 में All India Radio प्रारम्भ हुआ। रेडियो, वह पहला माध्यम है जिसमें इलेक्ट्रॉनिक तकनीक का प्रयोग हुआ। ध्वनि तरंगों की सहायता से दूर-दराज के क्षेत्रों में सूचनाओं का सम्प्रेषण रेडियो द्वारा ही सम्भव हो सका। इस माध्यम ने समाज में एक नई क्रांति पैदा की।

(ब) ऑडियो कैसेट - रेडियो की तरह ही श्रव्य संचार का एक और माध्यम है - ऑडियो कैसेट। ऑडियो, रेडियो जैसा सशक्त माध्यम तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी किसी सूचना या समाचार में परिवर्तन करने हेतु इसका उपयोग किया जाता है।

2. दृश्य संचार माध्यम :-

(अ)टेलीविजन - समाज सेवा, साहित्य तथा संगीत के विभिन्न क्षेत्रों में जन संचार द्वारा कार्य किया जाता है, और टेलीविजन उसमें निश्चित ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। टेली+विजन इन दो शब्दों से मिलकर टेलीविजन बना है 'टेली' ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'दूरी' होता है और 'विजन' लैटिन भाषा का शब्द है जिसका तात्पर्य है - 'देखना'। इन्हीं दो शब्दों से मिलकर उसका हिन्दी स्वरूप दूरदर्शन बना है। सन् 1922 में स्कॉटलेण्ड के जॉन लोगी बियर्ड ने इसे तैयार किया। यह जन संचार का सबसे प्रभावशाली माध्यम है और इसी वजह से आज यह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में सबसे लोकप्रिय है। समाचार हो या ज्ञान-विज्ञान की बातें, कला-साहित्य संस्कृति हो अथवा खेल जगत। आज कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो इसकी पहुँच में नहीं है। आज यह बहुत बड़े उद्योग के रूप में उभरकर आया है।

(ब) विडियो - ऑडियो कैसेट की तरह ही आज विडियो कैसेट और सी.डी. नये संचार माध्यम के रूप में आये हैं, जो एक तरह से टी.वी. का ही विस्तार है। इसमें कम्प्यूटर तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है। इसमें आकर्षक रूप से शिक्षा समाचार, मनोरंजन सभी चीजें एक ही जगह सुलभ हो जाती है। छोटे से उन्नत प्लास्टिक के टुकडे पर व्यापक सामग्री का भंडारण इस माध्यम की विशेषता है।

(स) फिल्म - फिल्मों को जन मनोरंजन की सामग्री का उत्पादक कहा जा सकता है। यह कला का ही एक रूप है। मानव मन को प्रभावित करने के

* सहायक प्राध्यापक (संगीत) शा. कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

साधनों में फिल्में बहुत महत्वपूर्ण है। जहाँ ये लोगों का मनोरंजन करती है वहीं ये शिक्षाप्रद भी होती है। आज फिल्मी दुनिया में भी नित नये प्रयोग हो रहे है, पुरानी ब्लेक एण्ड व्हाइट फिल्मों को नई तकनीक के द्धारा रंगीन फिल्मों में बदला जा रहा है। आज 3डी और 4डी की फिल्में भी चलन में आ गई है।

उपर्युक्त सभी माध्यम श्रव्य :-

दृश्य इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है, किन्तु परिर्वतन के साथ-साथ अत्याधुनिक युग में ऐसे माध्यम भी हैं, जिनमें उन्नत तकनीक या नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता है। आज उपग्रह और कम्प्यूटर प्रणाली का प्रयोग करते हुए लाखों-अरबों लोग परस्पर एक दूसरे से जुडे हैं। इंटरनेट के अतिरिक्त आज ई-मेल, फैक्स, विडियो टैक्स्ट, टेलीटैक्स्ट, इलेक्ट्रॉनिक बुलेटिन, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के रूप हैं।

इन सभी माध्यमों का सभी क्षेत्रों में बहुलता से उपयोग हो रहा है, चाहे वह साहित्य का क्षेत्र हो या शिक्षा का। साहित्य कोई भी हो, वह अभिव्यक्ति का लिखित रूप है। लेखक अपने मनोभावों, विचारो को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाना चाहता है, इसके लिए वह साहित्य की विविध विधाओं को अपनाता है। ये विधायें उपन्यास, कहानी, नाटक, लघुकथा, संस्मरण के रूप में प्रचलित है। जैसे जन माध्यमों का विकास हुआ वैसे ही रेडियो, टी.वी. तथा फिल्में ये माध्यम भी लोकप्रिय हुए और साहित्य की विधायें भी इन माध्यमों से आम जन तक पहुँचने लगी। कई हिन्दी महाकाव्यों का दृश्य-श्रव्य माध्यमों से सफलतापूर्वक रूपांतरण किया जा चुका है, कई साहित्यिक नाटकों की प्रस्तुति भी इन माध्यमों के द्धारा की जा चुकी है।

कहने का अभिप्राय यह है कि आज मीडिया जगत सभी प्रकार के कार्यो को बखूबी अंजाम दे रहा है, यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार इन माध्यमों का सफल उपयोग करता है। ये तकनीकें, शैलियाँ अंतत: मानव के हित के लिये ही है और सार्थक ढंग से प्रयोग ही इसकी सफलता है।

संदर्भ ग्रंथ -

1. डॉ. द्धिवेदी रमाकांत - संगीत स्वरित - साहित्य रत्नालय, कानपुर
2. डॉ. जौहरी सीमा - सांगीतिक निबंधमाला - पीयूष प्रकाशन, दिल्ली
3. श्री मोहन सुमित - मीडिया लेखन - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. डॉ. शर्मा ठाकुरदत्ता - हिन्दी पत्रकारिता व जनसंचार - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
5. पत्रिका - संगीत कला विहार - नवम्बर 2010
6. डॉ. रामशंकर - उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की बंदिशों में भाषा का स्थान - संजय प्रकाशन दिल्ली 2010
7. डॉ. शर्मा राधिका - भारतीय संगीत को मीडिया और संस्थानों का योगदान - संजय प्रकाशन दिल्ली 2010

****

NSS Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) ISSN 2320-8767 Jan. to Mar. 2014 260

कथक (नृत्य) में कवित्त का सौन्दर्य

डॉ. सुचित्रा हरमलकर *

संसार के समस्त कलारूपों में एक अन्तर्सम्बन्ध है, वे उपर से भले ही अलग-अलग दिखलाई देते हो किन्तु वे कहीं न कहीं अन्योन्याश्रित है। ललित कलाओं में स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला के साथ संगीत व काव्य को भी स्थान मिला हैं, आचार्य नन्दिकेश्वर के अनुसार -

''नृत्यं गीताभिनयनं भावतालयुतं भवेत''

अर्थात तालबद्ध किसी गीत पर भावाभिनय की क्रिया नृत्य है, यहां हम पाते है कि नृत्य के लिए गीत (शब्द) का होना अनिवार्य है - जो कि काव्य है। यू तों नृत्यकला एवं काव्यकला दोनों ही ललितकला के अन्तर्गत आती हैं, किन्तु कतिपय विद्वानों का मत हैं कि काव्य स्वयं कला नहीं है, काव्य के माध्यम से कलाओं में केवल विचक्षणता प्राप्त होती है।

मन के भावों को जब शब्दों का सहारा मिलता है तब, तदनुरूप भाव ताल और लय को पकड़कर आंगिक क्रियाओं के माध्यम से रस भाव की सृष्टि करते हैं यही परमानन्द है और यही नृत्य है। काव्य और नृत्य के इसी सहसम्बन्ध को रेखांकित करना यह सन्दर्भ यहा उल्लिखित है - ''यू तो काव्य की भाषा कला की महाभाषा का ही अंग है। किन्तु नृत्य भी देह का काव्य है। जहां, मुद्रा लय गति रेखाओं के साथ देह किसी कवि की कल्पना की तरह खुबसूरत छन्द सी लहक उठती है, देह के साथ निर्झर बहती काव्य की कल्पना नृत्य के मौन को मुखर बनाती है। ('अक्षरों की आरसी' - ज्योति बक्शी) कथक नृत्य की परम्परा में कवित्त शब्द कविता के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

कवित्त :- हिन्दी साहित्य के रीतिकाल (संवत् 1700 - 1900 तक) में जो दो छन्द सर्वाधिक लोकप्रिय हुए है, वे है कवित्त और सवैया। विद्वानों के अनुसार जिन दण्डकों के तुकान्त अर्थात चारों चरणों के अत्यांक्षर एक जैसे होते है उन्हें कवित्त कहा जाता है। कविता के भावों को अक्षरों या मात्राओं से आच्छादित करने की नियमन विधि को छन्द कहां गया है। छन्द दो प्रकार के होते है 1. वर्णिक छन्द या वृत्त तथा 2. मात्रिक छन्द या जाति। कवित्त वर्णिक छन्द का ही एक प्रकार है। हिन्दी के मध्यकालीन विशेषकर रीतिकालीन कवियों ने इस छन्द का सर्वाधिक प्रयोग किया है।

चूंकि कथक नृत्य का वर्तमान ढांचा रीतिकाल में ही बुना गया है अस्तु इसी कालखण्ड का सबसे ज्यादा प्रभाव कथक नृत्य पर पड़ा। हालांकि कथक नृत्य में प्रयुक्त होने वाले कवित्त छन्दों में रीतिकालीन छन्दों का भाव सौन्दर्य ही प्रमुख रूप से प्रतिच्छादित है किन्तु उनका छन्द विधान सर्वथा भिन्न है। तदापि कविता के बीच आने वाले तबले, पखावज या नृत्य के बोल चमत्कार उत्पन्न कर रस सृष्टि मे सहायक जान पड़ते है।

कथक नृत्य में कवित्त का अर्थ है - कविता को लय ताल में निबद्ध कर प्रस्तुत करना कभी - कभी विशुद्ध रूप से शब्द (कविता के बोल) होते है अथवा कभी-कभी तबला, पखावज या नृत्य के बोलो को भी आवश्यकतानुसार रख दिया जाता है। कवित्त नृत्य के सौन्दर्य को द्विगुणित करते हैं। सौन्दर्य के साथ कवित्त का महत्व इस दृष्टि में सबसे ज्यादा प्रतीत होता है कि आम दर्शकों को वे सहज सम्प्रेषणीय हैं कुछ विद्वान इसे नृत्तांग का हिस्सा मानते है, मेरी समझ से कवित्त नृत्त एवं अभिनय के बीच का सेतु है, जहां अभिनय के साथ-साथ ताल लय की पकड़ भी जरूरी है। ताल के लम्बे-लम्बे आवर्तनों एवं लयकारियों के क्लिष्ट चक्र में घूमता आम दर्षक कविता के बोलों को सुनकर प्रफुल्लित हो उठता है।

कवित्त के माध्यम से कविता का श्रवण उसके रसिक मन को लुभा जाता है। नर्तक दो तीन या उससे अधिक आवर्तनों में कवित्त के माध्यम से किसी प्रसंग को दर्शकों के समक्ष खड़ा कर देता है।

उदाहरणार्थ -

मुर	लीकी	धुन	सुनि,	।	आऽ	यीऽ	राऽ	धेऽ	।
श्याऽ	मंसु	दर	संग	।	छम	छम	नाऽ	चेऽ	।
राऽ	सर	च्योऽ	हैऽ	।	वृऽ	न्दा	वन	मेऽ	।
तिग्धा	दिगदिग	थेई	तिग्धा	।	दिगदिश्ग	थेई	तिग्धा	दिगदिग	
थेई									
×									

उपर्युक्त कवित्त में राधा का मुरली की धुन को सुनकर सुध बुध खोकर आना व कृष्ण के साथ नृत्य करना तथा रास की सृष्टि होना यह छोटा सा भाव निबद्ध है। इसी तरह एक और उदाहरण प्रस्तुत है :-

तत	तत	ताऽ	द्दग	।	भरी	पिच	काऽ	रीऽ	।
तथे	इत	थेई	थेई	।	कृऽ	ष्नमु	राऽ	रीऽ	।
गोऽ	पीग्वा	ऽल	संग	।	खेऽ	लेऽ	होऽ	रीऽ	।
बर	जेऽ	राऽ	धाऽ	।	दिगदिग	ताऽ	दिगदिग	ताऽ	।
अबी	रगु	लाल	लैऽ	।	दौऽ	ड़ीऽ	सखि	यॉऽ	।
बाऽ	जेऽ	नूऽ	पुर	।	छुम	छुम	छन	नन	।
छुम	छुम	छन	नन	।	छन	नन	छुम	छुम	।
कृधा	तिट	धाऽ	कृधा	।	निट	धाऽ	कृधा	तिट	।
धाग									
×									

प्रस्तुत कवित्त में ब्रज की होली का सजीव वर्णन दिखलाई पड़ता है। कथक नृत्य में कवित्त या तो स्वतंत्र रूप से किये जाते हैं या कभी-कभी उनका प्रयोग ठुमरी या गीत के किसी प्रसंग में किया जाता है। कई बार किसी छन्द या कवित्त को प्रारंभ में कहकर तदनुरूप गीत या अभिनय का आरंभ किया जाता है। कवित्त से प्रारंभ होने पर प्रस्तुत किये जाने वाले भाव की वातावरण निर्मित हो जाने से अभिनय बहुत ही अच्छा बन पड़ता है।

कथक प्रस्तुत होने वाले कवित्तों को यदि हम श्रेणीबद्ध करके देखे तो मुख्यत: इनका विभाजन दो तरीकों से किया जा सकता है। प्रथम पुराने कथक के कलाकार एवं गुरूजनों द्वारा रचित कवित्त तथा द्वितीय ब्रजभाषा के वे छन्द जिन्हें कवित्त के रूप में कथक में नाचा जाता है। रचनात्मकता किसी भी कला के लिए प्राणवायु के समान है। इसी तारतम्य में कथक के आचार्यो द्वारा विभिन्न प्रकार के कवित्तों की रचना की गयी जिससे कथक नृत्य और भी समृद्ध हुआ। लखनउ घराने के पं. बिन्दादीन महाराज का नाम ऐसे रचनाकारों में सर्वोपरि है, वे न केवल अपनी ठुमरी रचनाओं के लिए

* विभागाध्यक्ष - नृत्य (कथक) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर (म.प्र.) भारत

प्रसिद्ध है अपितु उन्होंने अनेक कवित्तों का निर्माण भी किया। यद्यपि लगभग 1500 ठुमरियों की तुलना में उनकी कवित्त छन्द रचनाए कम है तथापि वे अद्वितीय है। इसी क्रम में पं. लच्छू महाराज, पं. शम्भु महाराज, बनारस के पं. सुखदेव महाराज, रायगढ़ नरेष राजा चक्रधर सिहं, ठाकुर वेदमणि सिंह, पं. नारायण प्रसाद, सुन्दरलाल गंगानी, पं. दुर्गाप्रसाद, डॉ. पुरूदाधीच ब्रजराज मिश्र, पं. तीरथराम आजाद आदि के नाम उल्लेखनीय है।

ऐसी ही कुछ रचनाए उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत है :-

श्याऽम	अंऽग	छवित्रि	भंऽग	।
फहर	तपट	पीऽत	रंऽग	।
बनमा	ऽलाऽ	कलित	कंठ	।
मोऽर	मुकुट	छविछ	हरन	।
बजत	वेऽणु	अधर	मधुर	।
निरत	करत	बृजवा	ऽलाऽ	।
टिगन	थरिक	थेइऽ	टिगन	।
धरिक	थेइऽ	टिगन	थरिक	।
थेई				

×

(रचनाकार पं. जियालाल महाराज संदर्भ रायगढ़ में कथक ले. कार्तिकराम पृष्ठ 61)

विरहोत्कंठिता नायिका :-

बरसत	सजलनै	ऽनराऽ	धाऽकेऽ	।
शोऽकाऽ	कुलहिय	अतिदुख	पाऽवत	।
जिनकाऽ	न्हाकीऽ	राऽहत	कतहैंऽ	।
वोऽनिष	ठुरअब	लोंऽनही	आऽवत	।
आऽकुल	व्याऽकुल	होऽयरा	ऽधिकेऽ	।
साऽजसिं	गाऽरन	मननहि	भाऽवत	।
रैऽनअं	धेरियाऽ	सूऽनीस	जरियाऽ	।
बिजूरीऽ	चमकत	जियराड	राऽवत	।
बरसत	धननन	घटाऽध	नेऽरीऽ	।
नैऽनन	सोंऽकज	राऽबह	जाऽवत	।
साऽवन	कीऽरिम	झिमरीऽ	आऽलीऽ	।
तनकोऽ	मनकोऽ	आऽगल	गाऽवत	।
कैंऽसेक	टेऽरज	नीऽरज	नीऽरज	।
नीऽऽऽ	सजनीऽ	कैंऽसेक	टेऽरज	।
नीऽरज	नीऽरज	नीऽऽऽ	सजनीऽ	।
कैऽसेक	टेऽरज	नीऽरज	नीऽरज	।
नी				

×

(रचनाकार – ठाकुर वेदमणि सिंह)
ठाकुर महेन्द्र प्रतापसिंह जी से प्राप्त

बीऽनमृ	दंगझांऽ	ऽझडफ	बाऽजत	।
ताऽपर	नाऽचत	कडकऽ	न्हैयाऽ	।
गोऽपिन	केऽसंग	राऽसर	चाऽवत	।
नाऽचन	चाऽवत	ताऽताऽ	थेऽयाऽ	।
खेऽलत	गेऽदगि	रयोजमु	नाऽमेऽ	।
नृऽत्क	रततज	हानागन	थैऽयाऽ	।
कोऽपके	इऽन्द्रच	ढ्योऽब्रिज	ऊऽपर	।
गोऽपीक	रतसब	हाऽहाऽ	दैऽयाऽ	।
धाऽयउ	ठाऽयलि	योऽगिरि	नखपर	।
बंऽसीऽ	बजावत	थेऽनुच	रैऽयाऽ	।
जगकेऽ	मनमोऽ	हनमन	भाऽऽये	।
मेऽरेऽ	मनमैऽ	य्याऽमैऽ	य्याऽमैऽ	।

(रचनाकार – स्व. पं. लच्छू महाराज)

जमुना	ऽतह	गोअप	ग्वाऽन	।
राऽधा	ऽसंग	ब्रजकी	नाऽर	।
हिलमि	लसव	दैऽदै	ताऽल	।
नचव	तहैऽ	नंऽद	लाऽल	।
त्रामत	थेइत	थेइत	तऽत	।
थेइऽ	ऽऽऽ	त्रामत	पेइत	।
थेईय	तऽत	थेईऽ	ऽऽऽ	।
त्रामत	थेइत	थेइय	तऽत	।
थेई				

×

(रचनाकार : डॉ. पुरू दाधीच)

कथक नृत्य में किए जाने वाले कवित्तों को विभिन्न लय जाति के अनुसार, विभिन्न प्रसंगों और उनमें निहित अलग-अलग भावों के आधार पर भी कई भागों में बांटकर देखा जा सकता है। कुछ कवित देवी देवताओं की स्तुति पर आधारित है, इसमें भी गणेश एवं शिव पर आधारित रचनाओं की बहुलता है उदाहरणार्थ –

गं गं गण पति, गज मुख मंऽ गल ....

अथवा

गणानाम गणपति गणेश लम्बोदर सोहे –

अथवा

डिमक डिमक डम डमरू बाजे

अथवा

चन्द्र चपल करि आरती शिव की

कुछ कवित्त नायक –

नायिका भेद तो कुछ कवित्त विभिन्न रसों पर भी आधारित है। अभिसारिका नायिका, विरहोत्कंठिता नायिका, मुग्धा नायिका पर कई प्रकार की सुन्दर रचनाएं प्राप्त होती है इसी तरह विभिन्न ऋतुओं पर आधारित कवित्त भी बहुतायत में पाए जाते है। इनमें भी मुख्यत: वर्षा ऋतु को लेकर अनेक कवित्त गढ़े गए है। यथा –

धड़धड़	धड़धड़	बाऽदल	गरजत	।
तड़तड़	तड़तड़	बिजलीड	चमकत	।
छामाडक	छमछम	छमछम	छमछम	।
नेऽहाऽ	बरसत	दाऽदुर	मोऽरप	।
पैऽहाऽ	बोऽलत	टेहकुकु	टेहकुकु	।
तिगुनधा	ऽतिगुन	धिऽऽऽ	टेहकुकु	।
टेहकुकु	तगिनधा	ऽतिगुन	धाऽऽऽ	।
टेहकुकु	टेहकुकु	तिगुनधा	ऽतिगुन	।
धा				

×

रचना – रायगढ़ घराना

कथक नृत्य में काव्य परम्परानुसार मात्रिक या वर्णिक छन्दों को उनकी यदि गति के अनुसार ज्यों का त्यों ग्रहण न करते हुए आवश्यकतानुसार विभिन्न लयों और जातियों में कवित्त की रचनाएं की गयी है – ऐसी रचनाओं को छन्द कहा गया है। जैसे चार-चार मात्राओं या तीन-तीन मात्राओं के खण्ड बनाते हुए जो काव्य रचना की गयी है, उसे क्रमश: चतस्त्र व तिस्त्र जाती का

छन्द कहां जाता है। उदाहरणस्वरूप तिस्त्र जाति में निबद्ध एक कवित्त प्रस्तुत है –

तिस्त्र जाति –

माखन	खातचु	राएचु	राएके	।
ढ़ीठब	डौहैये	तेरोके	न्हाऽई	।
काहूके	खेचत	जातचु	नरऔ	।
बालगो	पालगो	पालक	न्हाई	।
ठाडोक	दम्बकी	छाहत	लेरस	।
भीनीब	जावत	बासुरि	याऽऽ	।
कासेक	हूंकित	जाउस	खिउत	।
जाउदि	खेवोच	रावत	गैऽया	।
हाऽऽ	हाऽऽ	हाऽऽ	दैऽऽ	।
याऽऽ	ऽऽऽ	हाऽऽ	हाऽऽ	।
ऽऽऽ	दैऽऽ	याऽऽ	ऽऽऽ	।
हाऽऽ	हाऽऽ	हाऽऽ	दैऽऽ	।

या

×

इस प्रकार हम देखते है कि कथक नृत्य में परम्परा से नाचे जाने वाले कवित – छन्दों की एक लम्बी श्रृंखला है। नयी–नयी रचनाओं से यह परम्परा और भी समृद्ध हुई है। कथक नृत्य की लोकप्रियता, उसमें सौन्दर्य सृष्टि तथा विकास की दृष्टि से इन कवित्त छन्दों की अनिवार्यता एवं इनका महत्व हमेशा कायम रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. कथक नृत्य में कवित्त छन्द – डॉ. श्रीमती मंजरी श्रीरामदेव
2. कथक नृत्य शिक्षा द्वितीय भाग – डॉ. पुरू दाधीच
3. कथक – अक्षरों की आरसी – ज्योति बक्शी
4. रायगढ़ में कथक – पं. कार्तिकराम

****

शास्त्रीय नृत्य शैली कथक का उद्भव

डॉ. भावना ग्रोवर *

भारत की प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैलियों की श्रृंखला में कथक नृत्य का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय नृत्यकला के प्राचीनतम रूप तांडव और लास्य हैं जो समयानुरूप परिवर्तित व परिवर्द्धित और सुसंस्कृत होते हुए भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न शैलियों में विकसित हुए। इन्हीं शैलियों में से एक प्रमुख नृत्य शैली ''कथक नृत्य'' है।

उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में आंध'प्रदेश तक तथा पूर्व में असम बंगाल से लेकर पश्चिम में वर्तमान पाकिस्तान तक दो तिहाई भारत में कथक नृत्य शैली ही प्रचलित है। भगवान शिव के तांडव व पार्वती के लास्य से पूर्ण यह नृत्य शैली, प्रत्येक युग की सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों को अपने ऊपर धारण कर विकसित होती चली आई है। कथक नृत्य में तांडव का रौद्र रूप व कठोरता भी है तथा लास्य का श्रृंगारिक रूप व कोमलता भी। भारतीय नृत्यकला के प्राचीनतम रूप तांडव कथक नृत्य में संगीत के तीनों पक्ष, गायन, वादन व नृत्य का समावेश है।

''कथक' संस्कृत की दशम् गण की ''कथ्'' धातु से विनिर्मित (कथ+कर्तरिण्वुल) एक कृदन्त शब्द है। उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार से बताई गई है-

''कथयति य: स: कथक:'' अर्थात् जो कथन करता है वह कथक है।''[1]''शब्द कल्पद्रुम में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है - कथक-त्रि (कथयति य: । कर्तारिण्वुल) वक्ता। कथोपजीवी। नाटक वर्णनकर्ता। तत् पर्याय:। 1. नट। 2. कथा प्राण। इति शब्द - शब्द रत्नावली''।[2]

कथक की परिभाषा पं. बिरजू महाराज द्वारा दी गई है कि कथा कहे सो कत्थक कहिये अथवा कथा कहे सो कथक कहावे। इसके अतिरिक्त अन्य कई ग्रंथों में भी इसका अर्थ कथा कहने वाला ही है। कथक शब्द अत्यन्त प्राचीन है। इसका प्रयोग वाल्मीकि कृत 'रामायण' व्यास कृत महाभारत तथा समय-समय पर सभी स्थानों पर कथक का अर्थ उपदेशक, कथा कहने वाला, गा-बजाकर कथा वर्णन करने वाला ही कहा गया है। ''पाली शब्द कोष'' में इसका अर्थ 'उपदेशक'[3] बताया गया है।

कथक शब्द का अर्थ डॉ. पुरु दाधीच ने इस प्रकार बताया है - ''..........कथक शब्द को मुख्यत: तीन विशिष्टताओं से संबंध करती है - कथा, अभिनय और उपदेश। यदि इन तीन विशेषताओं को संयुक्त रूप से ग्रहण किया जाये तो 'कथक' शब्द का सम्पूर्ण व्यक्तित्व इस रूप में प्रकट होगा। कथक वह व्यक्ति विशेष है जो लोकोपदेश के लिए अभिनय के माध्यम से कथा प्रस्तुति करे।''[4] ''कथक'' शब्द अनेक ग्रंथों, पौराणिक साहित्य में अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है तथा कथक शब्द का अर्थ ''कथा कहने वाला'' ही बताया गया है। वह कथा वाचक, जो अभिनय के साथ उपदेश देते हुए किसी पौराणिक व देवी-देवताओं की कथा की प्रस्तुति करें तथा संगीतबद्ध हो, कथक कहलाता है।

'कथक' शब्द का प्रयोग भी अनेक प्राचीन ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर होता रहा है, परन्तु अभी तक यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि कथक का जो स्वरूप आज हमारे सामने हैं, वह किस युग में प्रचलित था ? अथवा 'कथक' नाम से जो नृत्य प्रचलित था, उसका स्वरूप वर्तमान कथक नृत्य से कुछ मेल खाता है या नहीं ?

''जहाँ तक 'कथक' शब्द का प्रश्न है; यह शब्द पाणिनीकृत 'अष्टाध्यायी' में देखने को मिलता है। कहा जाता है पाणिनी का समय ईसा पूर्व लगभग 600 वर्ष रहा है। उन्होंने 'कत्थ्य' धातु का स्पष्टीकरण करके कत्थक शब्द की रचना बताई है।''[5] भविष्य पुराण (मध्य पर्व) में कथक शब्द का प्रयोग ब्राह्मण जाति के रूप में किया गया है।

''जातिभेदाश्च चत्वारो भोजक: कथकस्तथा।
शिवविप्र: सूर्यविप्रश्चतुर्थ: परिपठ्यते।। 87।।''[6]

जिसका अर्थ है - जाति के चार भेद माने गये हैं। प्रथम भोजक, द्वितीय कथक, तृतीय शिवविप्र तथा चतुर्थ सूर्यविप्र। इसी क्रम में आगे लिखा है -

''कथको मध्यमस्तेषां सूर्यविप्रस्तथोत्तमः।
शिवलिंगार्चनरत: शिवविप्रस्तु निंदित:।। 88 ।।''[7]

उपरोक्त बताये गये जाति के चारों भेदों में से सूर्य-विप्र को उत्तम माना गया है तथा कथक को मध्यम। शिवविप्र जो अर्चन में रत रहता है, वह निंदित माना गया है। पं. शारंगदेव कृत ''संगीत रत्नाकर' के नृत्य अध्याय में भी कथक शब्द का उल्लेख किया गया है।

''कथका वन्दिनश्चान्ये विद्यावन्ता: प्रियंवदा:।
प्रशंसा कुशलश्चान्ये चतुरा: सर्वमातुशु।।''[8]

उपरोक्त से ज्ञात होता है कि भरत व शारंगदेव के समय में नृत्य का शास्त्रीय स्वरूप उत्तम था किन्तु धीरे-धीरे कुछ लोगों ने नृत्य को जीविका चलाने का साधन बनाया व नृत्य के शास्त्रीय स्तर को भंग किया। यूं तो पौराणिक काल से लेकर वर्तमान तक नृत्य क्षेत्र में अनेक उतार-चढ़ाव आये हैं। कभी नृत्य का स्तर गिरा है तो कभी उन्नत हुआ है परन्तु पौराणिक ग्रन्थों से जो नृत्य के बारे में ज्ञात हो पाया है, उससे सिद्ध है कि प्रत्येक युग में नृत्य का प्रचलन रहा है।

डॉ लक्ष्मी नारायण गर्ग लिखते हैं कि 'मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में नृत्य करती हुई स्त्रियों की जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं, उनमें उनकी मुद्राओं से पता चलता है कि वे कथक नृत्य कर रही हैं।''9 कहने का तात्पर्य है कि अनेक प्रमाण हमें कथक नृत्य के मिलते हैं परन्तु उसमें समयानुसार कुछ कुछ परिवर्तन होते रहे हैं।

उपरोक्त सभी प्रमाणों से ज्ञात होता है कि कथक शब्द अत्यन्त प्राचीन है तथा इस शब्द का उल्लेख अनेक ग्रन्थों में नृत्य के संबंध में ही प्राप्त होता है। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि जो स्वरूप कथक का उस समय था, वही आज भी है। कथक धीरे-धीरे परिवर्तनशील संस्कृति के अनुसार परिवर्तित होता रहा है। परन्तु आज भी इस नृत्य का ध्येय वही है- ईश्वर उपासना व कथा उपदेश करना।

डॉ. पुरू दाधीच का कथन है कि ''व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध शब्द कथक ही है। अन्य शब्द उसके अपभ्रंश है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से किसी शब्द का लोक व्यवहार में प्रचलन होने पर उच्चारण भेद से रूप परिवर्तन होना अवश्यम्भावी है, जिसे ध्वनि परिवर्तन, वर्ण विपर्यय या चीवदमजपब बढ़दहम कहा जाता है।.''[10]

* विभागाध्यक्ष एवं सहायक प्राध्यापक (कथक नृत्य) परफारमिंग आर्ट विभाग स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.) भारत

कथक नृत्य के उद्‌भव सम्बन्धी विभिन्न मान्यताएँ :-

1. नृत्य के उद्‌भव संबंधी सर्वप्रथम मान्यता स्वामी हरिदास जी के संबंध में है। कहा जाता है कि ''स्वामी हरिदासजी ने जिन शिष्यों को गायन विद्या की शिक्षा दी थी, वे गायक बने और जिनको वादन की शिक्षा दी वे किन्नर बने और जिनको नृत्य सिखाया वे कथक बने।''[11] इस मत के अनुरूप ही डॉ. प्रेम दवे ने अपने एक लेख में लिखा है कि ''वैष्णव भक्त स्वामी हरिदास के सम्मुख नृत्य किया करते थे। स्वामी जी के जिन शिष्यों ने उनसे नृत्य की शिक्षा प्राप्त की वे कथक बने।

आज भी वृन्दावन के रास के बीच-बीच में कथक के बोलों का प्रयोग किया जाता है, जैसे- तकिट-तकिट, धिलांग, गदिगन, तादीम-तादीम तत तथा थै आदि।''[12] डॉ. माया टाक ने भी इस संबंध में लिखा है कि ''वैष्णव साहित्य में ऐसा उल्लेख मिलता है कि प्रसिद्ध संत संगीतज्ञ स्वामी हरिदासजी हरिकीर्तन के समय भाव-विभोर हो, नृत्य करने लग जाते थे। धीरे-धीरे यह नृत्य मंदिरों से दरबारों की ओर बढ़ा।

अवध के कला प्रेमी विलासी नवाबों की छत्रछाया में इसका वर्तमान स्वरूप विकसित हुआ किन्तु कथक का आज जो स्वरूप हमें देखने को मिलता है, वह धार्मिक और श्रृंगारिक दोनों प्रकार के भावों का मिश्रित रूप है।''[13] उपरोक्त कथनानुसार स्वामी हरिदासजी ने नृत्य की शिक्षा दी। यह सिद्ध नहीं है और ना ही अन्य किसी पौराणिक ग्रन्थ में इसकी चर्चा की गई है। यह अवश्य सिद्ध है कि स्वामी हरिदासजी ने गायन की शिक्षा देकर बैजू-बावरा व तानसेन जैसे अनुपम शिष्य भारतीय समाज को दिये। जिन्होंने गायन के क्षेत्र में अनेक योगदान दिये।

स्वामी हरिदास द्वारा रचित रास के पद हैं जिनका रास नृत्य में नृत्यांकन होता है परन्तु हो सकता है वह रास के पद उस समय उन्होंने केवल भक्ति में गायन हेतु लिखे हों। स्वामी जी ने कथक नृत्य के अतिरिक्त भी अन्य किसी नृत्य की न तो शिक्षा दी और न ही वे स्वयं एक नर्तक थे। यह अवश्य कहा जा सकता है कि वे भक्ति में प्रेमवश श्रीकृष्ण के सामने नृत्य करते थे परन्तु वह नृत्य कौन सा था ? अथवा कथक नृत्य से उसका कोई मेल था या नहीं? यह किसी भी ग्रन्थ में नहीं दिया गया है।

2. एक अन्य मत के अनुसार इलाहाबाद जिले के हंडिया तहसील के निवासी श्री ईश्वरी प्रसाद को भगवान कृष्ण ने स्वप्न में नृत्य का भागवत बनाने की प्रेरणा दी तथा उस स्वप्न के अनुसार श्री ईश्वरीप्रसाद जी ने कथक नृत्य का प्रचार व प्रसार किया।

यह कार्य मुगल काल में नवाबों के संरक्षण में हुआ। श्री जयचन्द शर्मा जी ने संगीत मासिक पत्रिका के एक लेख में दिया है कि ''श्रीकृष्ण ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिए और कहा कि नृत्यकला के दूषित वातावरण को दूर करने के लिए कथकों के गाँवों में जाकर उन्हें सही मार्ग दर्शाओ। स्वप्न में मिली प्रेरणा के आधार पर उन्होंने प्रयाग जाकर त्रिवेणी में स्नान किया और पंडों से पता लगाया कि देश के कथकों के गाँव किधर है ? प्रयाग के पंडों से ज्ञात हुआ कि इलाहाबाद जिले के हंडिया तहसील के गाँवों में कथकों के सैकडों परिवार हैं, जो नाचने गाने का धंधा करते हैं।

उक्त जानकारी प्राप्त कर ईश्वर सीधा हंडिया तहसील के गाँवों में गया और उसी को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया।''[14] पहले मत में बताया गया है कि ईश्वरी प्रसाद इलाहाबाद हंडिया तहसील के निवासी थे तथा दूसरे मत में यह कहा गया है कि उनकी जन्मभूमि जोधपुर थी। इससे तो यह पता चलता है कि वे राजस्थान के निवासी रहे होंगे। दूसरी बात यह कही गयी है कि उन्होंने एक नृत्य भागवत तैयार किया था; वह आज कहाँ है ? अथवा उनकी मृत्यु के पश्चात् वह कहाँ चला गया ? यदि वह आज हमारे सामने होता तो कथक नृत्य की उत्पत्ति हेतु इतने प्रश्न ही न होते। यह तो पूर्ण रूप से मान्य है कि पं. ईश्वरी प्रसाद व उनके आने वाली पीढियों ने जो योगदान कथक नृत्य को दिया है, वह अविस्मरणीय है।

पंडितजी को कत्थक नृत्य का पुनरुद्धारक माना है। ''एक किवदन्ती के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण ने इन्हें कत्थक नृत्य (नटवरी नृत्य) का पुनरुद्धार करने के लिए स्वप्न में नृत्य का भागवत बनाने का आदेश दिया। ईश्वरी प्रसाद जी इस कार्य में जुट गये और उन्होंने 80 वर्ष की आयु में यह कार्य पूर्ण कर लिया।''[15]

3. एक अन्य मत के अनुसार कथक नृत्य की उत्पत्ति राजस्थान से भी मानी जाती है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में नृत्य संबंधी ऐसी जातियों के नाम आये हैं जो आज भी कथक नृत्य से साम्य रखते हैं। चारण नामक जाति गायन, वादन व नृत्य का काम करती थी। आज भी चारण राजस्थान के छोटे-छोटे गाँवों में रहते हैं तथा यही कार्य करते हैं। परन्तु इसका स्तर अब गिर गया है क्योंकि इन्हें संरक्षण न मिल पाने के कारण ये अपने गायन, वादन व नृत्य को उन्नत नहीं कर पाये हैं।

एक अन्य ढचढ़ा नामक नर्तक जाति भी राजस्थान में है। ये नर्तक मंदिरों में नृत्य करते थे तथा इनका नृत्य कथक से कुछ साम्य रखता था। लखनऊ घराने के प्रवर्तक श्री ईश्वरी प्रसाद जी के पूर्वज भी राजस्थान के ही रहने वाले थे। ''आज से आठ पीढ़ी पूर्व कोलू गाँव (जोधपुर रियासत) के देहादडा (प्रतिहार) वंश में सन् 1782 के लगभग ईश्वरी प्रसाद नामक महान कला साधक का जन्म हुआ। ....ईश्वरी प्रसाद के पूर्वज कोलू गाँव (जोधपुर) पाबू जी राठौर के आश्रित रहे।''[16] लखनऊ घराने के पूर्वज राजस्थान के ही रहने वाले थे। इस प्रकार डॉ. प्रेम दवे ने बनारस घराने के कलाकारों को भी राजस्थान का ही निवासी बताया है। ''वर्तमान बनारस घराने के नृत्याचार्य राजस्थान से ही बनारस गये थे। जयपुर के कथक का नाम जयपुर घराना पड़ने से पूर्व राजस्थान में श्यामल दास घराना के नाम से जाना जाता था। जानकीदास घराना काशी में पल्लवित हुआ और वहीं इसका विकास हुआ। जानकीदास घराने के प्रवर्तक जानकीदास जी थे, जो बीकानेर के मेलूसर गाँव के निवासी थे।''[17]

यह तो स्पष्ट है कि सभी घराने राजस्थान से निकले हुए हैं किन्तु यह सिद्ध नहीं है कि कथक नृत्य का उत्पत्ति स्थल राजस्थान ही है, क्योंकि कथक नृत्य के प्रमाण बहुत पहले रामायण, महाभारत तथा अन्य पौराणिक ग्रन्थों में प्राप्त हो चुके हैं। चारण व ढचढ़ा नामक जातियाँ राजस्थान में गायन, वादन व नृत्य का धंधा कर आजीविका चलाती हैं। परन्तु ये लोग नृत्य के नाम पर नटों के तमाशे आदि करते हैं। अगर साम्य है भी तो यह है कि कथक नृत्य के नृत पक्ष से थोड़ा कुछ मिलता है। यद्यपि कथक नृत्य के क्षेत्र में राजस्थान का बहुत बड़ा योगदान है।

4. एक अन्य मान्यता के अनुसार कथक नृत्य की उत्पत्ति रास से मानते हैं। ''कथक नृत्य का उद्‌भव रासलीला से माना जाता है। इसीलिए इसे नटवरी नृत्य भी कहते हैं। श्रीकृष्ण की रासलीलाएं भी इस नृत्य कला के भीतर अत्यन्त चमत्कृत हुई हैं। बारहवीं शताब्दी के आस-पास यह नृत्य कला भी वैष्णव धर्म से प्रभावित हुई।

परिणामत: कथक नृत्य में भी श्री राधाकृष्ण की नृत्य शैली की अनुकृतियाँ एवं भंगिमाओं का समावेश हो गया।''[18] कथक नृत्य पर वैष्णव धर्म का ही प्रभाव दिखाई देता है तभी कथक नृत्य में प्रस्तुत किये जाने वाले कथानक कृष्ण व राधा के ही इर्द-गिर्द घूमते हैं। इस पर पं. तीर्थराम आजाद भी लिखते

हैं कि ''आज का 'कत्थक' नृत्य, उसका शिल्प और उसकी विषय-वस्तु रासलीला से प्रेरित प्रतीत होती है।''[19] यह तो प्रत्यक्ष ही देखने को मिलता है कि रास नृत्य की भंगिमायें कथक नृत्य से मेल खाती है।

रासलीला में जो तोड़े-टुकडे भी नाचे जाते हैं, वे कथक नृत्य के नृत पक्ष के बोलों पर आधारित हैं। उदाहरणत: ''त्राम थेई त्राम थेई, तिग्द्धाऽदिगदिग थेई'' व ''तत तत थुं थुं'' आदि बोल; जो कथक नृत्य में मूलत: सिखाये जाते हैं; आदि सभी रास नृत्य में प्रयोग किये जाते हैं। उदाहरण के लिए रास का एक तोड़ा निम्नलिखित है:-

तिकट तिकट धिलांग धिकतक तोदीम धिलांग तकतों।
तिकट तिकट धिलांग धिकतक तोदीम धिलांग तकतों।
ता धिलांग धिग धिलांग धिकतक तोदीम तोदीम धेत्ताम धेत्ताम।
धिलांग धिलांग धिलांग तक गदिगन थेई।
तत तता थेई तत तता थेई तत तता थेई।।

उपरोक्त दिये गये रास के तोड़े के सभी बोल कथक नृत्य में भी नाचे जाते हैं, ये कथक नृत्य की प्राचीनता के द्योतक है। ''कत्थक नृत्य में नाचे जाने वाले बोल रासलीला के बोलों से पूर्णत: मेल ही नहीं खाते ठीक उसी प्रकार के होते है। कत्थकों के कवित्त भी रासलीला से लिए हुए साहित्य के अंश हैं।''[20] कथक नृत्य में कवित्त व छन्द नाचने का भी प्रचलन है तथा अधिकतर छन्द, कवित्त कृष्ण लीलाओं पर ही आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए पूज्य गुरु माँ विदुषी उमा शर्मा द्वारा प्राप्त रास का एक कवित्त देखिये -

''वृन्दावन कुंजन रच्यौ रास आली, आली बनमाली निरतत सबसखि दै ताली, दिगदिगत्राम दिगदिगत्रामतगतगतगतग दिगदिगदिगदिग ताथुंगाता थुंगाताऽ, तिग्द्धाऽदिगदिग थेई तिग्द्धादिगदिग थेई तिग्द्धाऽदिगदिग थेई तिग्द्धाऽदिगदिग, उगठत नवरस रंग ढंग लय गति दिखावत , हावभाव भौं कटाक्ष सोलह अंग बनावत, नाधिंधिंना नाधिंधिंना नातिंतिंना नाधिंधिंना ,चमक दमक फेरी तोड़ा पलटा गतिनिकसत कसक म सक थिरकन दुरन मुरन चालढाल छवि अतिन्यारी भृकुदि कुटिल सुंदर अलक झलक भौं कमान चंचल नयन बान, हसन दसन मुसकन लखन झखन झांक झपक मुख मोरमोर चितचोर चाल, चपलाऽसी चमकत चंद्र मुखी राधा राधा राधा राधा राधा राधा राधा राधा राधा''[21]

उपरोक्त कवित्त में रास के बोल हैं तथा यह रास परन कथक नृत्य सोलो में नाची जाती है। सभी मान्यताओं से यह तो स्पष्ट है कि कथक नृत्य व रास में बहुत साम्य है। हो सकता है कथक का वर्तमान स्वरूप रास नृत्य की ही देन है। क्योंकि रास में भी नृत्ता व नाट्य पक्ष पूर्ण रूप से प्रस्तुत किये जाते हैं। ''रासलीला में नृत्ता व नाट्य का पूर्ण सामंजस्य होता है। ....आज भी कथक नृत्य में जो तोड़े-टुकड़े नाचे जाते हैं। वे सब रासलीला के ही टुकडे हैं। अत: कथक की उत्पत्ति ब्रज के रास से ही मानना अधिक उचित है।''[22] डॉ. प्रेम दवे ने यह लिखा है कि ''वर्तमान में कत्थक में प्रस्तुत रासलीला के टुकडों व कवित्त में भिन्न-भिन्न लयकारियों का समावेश हो गया है। रासलीला में जितने भी पद संचालन व मंडलों का प्रयोग होता है वे कथक के पद संचालन व चक्करों से समानता रखते हैं।''[23]

उपरोक्त सभी मान्यताएँ देखने से स्पष्ट है कि कथक नृत्य का उद्भव पौराणिक काल में ही हो चुका था, जिसके कुछ अंश हमें अनेक स्थानों पर नृत्यरत मूर्तियों में, प्रामाणिक कथाओं में रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों में प्राप्त हुए हैं। जिससे कथक शब्द व कथक नृत्य की प्राचीनता के प्रमाण पुष्ट होते है। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हमें 'रास' से प्राप्त होते हैं। चूंकि रास, कथक नृत्य से अधिक समानता रखता है। इसी कारण यह मानना ही उचित है कि कथक की उत्पत्ति रास से ही हुई है।

सन्दर्भ सूची :-

1. दाधीच, डॉ. पुरु : कथक नृत्य शिक्षा, भाग-2, पृष्ठ-87
2. पूर्वोद्धृत, वही, पृष्ठ-87
3. दाधीच, डॉ. पुरु : कथक नृत्य शिक्षा, भाग - 2, पृष्ठ - 87
4. दाधीच, डॉ. पुरु : कथक नृत्य शिक्षा, भाग-2, पृष्ठ-87
5. 'आजाद, प. तीरथराम : कथक दर्पण, पृष्ठ-38
6. भविष्य पुराण, मध्य पर्व, प्रथम भाग, श्लोक सं.-87
7. वही, श्लोक सं. - 88
8. दवे, डॉ. प्रेम : कथक नृत्य परम्परा, पृष्ठ-20
9. गर्ग, डॉ. लक्ष्मी नारायण : कथक नृत्य, पृष्ठ-86
10. दाधीच, डॉ. पुरु : छायानट (अक्टूबर से दिसम्बर) 2005, पृष्ठ-102
11. संगीत जनवरी-फरवरी, नृत्य अंक, 1954, पृष्ठ-32
12. दवे, डॉ. प्रेम : संगीत कला विहार, पृष्ठ-20
13. टाक, डॉ. माया : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कथक नृत्य, पृष्ठ -4
14. शर्मा, जयचन्द : संगीत, सितम्बर 1988, पृष्ठ 38-39
15. गर्ग, डॉ. लक्ष्मीनारायण : कथक नृत्य, पृष्ठ- 38
16. शर्मा, जयचन्द : संगीत सितम्बर 1988, पृष्ठ-38
17. दवे, डॉ. प्रेम : कथक नृत्य परम्परा, पृष्ठ-23
18. गुप्ता, भारती : कथक और अध्यात्म, पृष्ठ-43
19. आजाद, पं. तीरथराम : कत्थक दर्पण, पृष्ठ-41
20. वही, पृष्ठ-41
21. गुरु उमा शर्मा द्वारा मौखिक प्राप्त
22. दवे, डॉ. प्रेम : कत्थक नृत्य परम्परा, पृष्ठ - 21
23. वही, पृष्ठ-31

****

Provision Relating To Guardianship Under Hindu Law And Its Impact On Present Scenerio

Mrs. Anuradha Tiwari*

Introduction :-

The law relating to Minority and Guardianship is regulated in India by two major Statutes , namely, Guardianship and Wards Act 1890 and Hindu Minority and Guardianship Act 1956. Now an important question which arises in the context of guardianship is what the age of majority, and who can be called as minor? The Indian Majority Act 1875 is relevant statute for this purpose and it applies to all persons domiciled in India. According to that Act every minor of whose person or property a guardian has appointed by any court, and every minor of whose property the Superintendence has been assumed by the court of wards is deemed to have attained the majority at the completion at the age of 21 years and of all others the age of 18 years.

In the Hindu Minority and Guardianship Act 1956 (HMGA) a minor who has been defined as one who has not yet completed the age of 18 years. It has been held that the effect of Sec. 4 (a) & 5 (b) of Hindu Minority and Guardianship Act, 1956 is not to override the provision of the Indian Majority Act & that a minor whose property a guardian has been appointed by any court and every minor of whose property the superintendence has been assumed by the court of words, shall achieve the age of majority.

Meaning :-

Guardianship Under Hindu Law :- The Dharmashastra did not deal with the law of guardianship was developed by the courts. It came to be established that the father is the National Guardian of the Children & after his death, mother is the natural guardian of the Children and none else can be the natural guardian of minor children. Testamentary Guardians were also introduced in Hindu Law: It was also accepted that the Supreme guardianship of the minor children vested in the State as parents. In Hindu Law only three persons are recognised as natural guardians -

1. Father,

2. Mother,

3. Husband.

Father is the natural guardian of his minor legitimate children, sons and daughters. Sec 19 of Guardianship and Wards Act 1890, lays down that a father cannot be deprived of the natural guardianship of his minor children unless he has been found unfit. The effect of these provision has been considerably whittled down by judicial decision.

Kinds of Guardians :-

(1) Natural Guardian,

(2) Testamentary Guardian,

(3) Guardian Appointed by the Court,

(4) De- fecto Guardian,

(5) Guardianship by affinity.

(1) Natural Guardian: - The father is the natural guardian under the Hindu personal Law and after him the mother In same authorities it has been pointed out that the elder brother after them could be considered as the natural guardian. **(Angurbal V/s Debarata AIR 1949 Cal. 278).**

(2) Testamentary Guardians Sec 9:-

(1) A Hindu father entitled to act as the natural guardians of his minor legitimate children may, by will, appoint person or in respect of minor is property (other than the undivided interest referred to in Sec, 12).

(2) An appointment made U/Sub Sec.(1) shall have no effect if the father predeceased the mother, but shall revive if the mother dies without appointing the guardian by will.

(3) Guardian Appointed by the Court :- For minor's undivided interest in the joint family property. The Supreme Court held that, "Ordinarily the court does not envisage a guardian of the undivided interest of a Hindu Minor in undivided family property.

The Karta is entitled to the management of the whole of the whole coparcenaries property including the minor's interest. However, in case of all the sons are the minor, the court may appoint a guardian of the whole of the joint property until one of which the minor was subject. However, did this mean that the guardian of a Hindu minor was always the natural guardians and that the court had no scope for considering the welfare of the minor prior to the enactment of **Hindu maintenance and Guardianship Act**. S**ec.17 (1)** provided for the consideration of the personal law by the court in declaring the guardian. **Sec. 19 (a) of Guardians and Wards Act 1890** says that the court would not appoint the guardian in case the father of child was alive and was not unfit in the opinion of the court to be the guardian of the minor.

* Research Scholar (Dept. Of Law) Govt. Madhav Arts Commerce Law College, Ujjain (M.P.) INDIA

(4) **De- Fecto Guardian** :- A de- fecto guardian is a person who takes continuous interest in the welfare of the minors person /in the management and administration of his property without any authority of law. Hindu Jurisprudence has all along recognised the principal that if liability is incurred by one on behalf of another in a case where it is justified, then the person on whose behalf the liability is incurred or at least his property in fact no authorisation was made for incurring the liability. The term 'de- fecto guardian' as such is not mentioned in any of the text, but his existence has never been denied in Hindu Law.

Rights and Duties of Guardian :- Following are the Rights and Duties of Guardians in respect of minor children.

(1) Right to Custody,
(2) Right to determine the religion of children,
(3) Right to education,
(4) Right to Control movement and ,
(5) Right to reasonable chastisement.

Those rights are conferred on the guardians in the interest of the minor children, therefore each-of these rights is subject to the welfare of the minor children **(Sec.8 Hindu Minority and Guardianship Act 1956.)**

Duties of Guardians :- Following are the duties of the guardians in respect of minor children **-**

1. To maintain minor Children,
2. To provide proper education facility to the children,
3. To provide Medical facility if needed.
4. To maintain and keep the minor's property in good condition.
5. To arrange the marriage of daughter after completing the age of majority.
6. To bear all the expenses of marriage ceremony.
7. To do all such acts which is necessary to keep the minor in existence but the guardian shall not, without the prior permission of the court -

(a) Mortgage or charge, of transfer by sale, gift, exchange or otherwise, any part of the immovable property of the minor.
(b) Lease any part of such immovable property for a term exceeding 5 years or for a term exceeding more than 1 year beyond the date on which the nor will attain majority.
(c) Any disposal of immovable property by a natural guardian in contravention of S.S (1) of Sec (2), is voidable at the instance of the minor. No court shall grant permission to the natural guardian to do any of the acts excepts in the case of necessity or for an evident advantage to the minor.

Conclusion: - Since there is no uniformity of law on Guardianship in the country. And as a result, Hindu Muslims, Christian, Parsi etc of all religion follow different laws, which created more confusions to the people as well as the courts. To remove this discrepancy there is dire need to making a uniform civil code which must include the law relating to guardianship also. This will be in consonance with the will of the constitution of India as expressed **U/Art 44.**

- There is no clear law of guardianship for the cases of the child born through surrogate mothers, which becomes the need of the time in this changed.
- Almost of religions recognise father as the guardian, but except few recognise mother as guardians but in presence of father and also in very rare circumstances. The law maker must also think in this direction also to resolve the issue.
- Controversy regarding age of majority has been resolved by the Indian Majority Act, 1875, such effects have not been made by our law maker in India after independence, which shows their lack of political will. Some bold and necessary steps in this regards as desirable in National interest.

Reference :-

1. Hindu Law U.P.D. Kesri 2010 P.N.
2. Mohd, Law Qureshi 2007
3. HINDU LAW : J.D. MAYNE
4. Essays in Classical and Modern Hindu Law in 4 Vols. First Indian Reprint 1995 by Derrett J Duncan
5. Hindu Law & The Constitution R/p. 1995 by Bhattacharjee
6. Law of Adoption, Minority, Guardianship & Custody, 3rd Edition2000 by Paras Diwan
7. Supreme Court on Hindu Law Cases 1950 to 1991 in 2 Vols. by S.K.Awasthi
8. Hindu Law 9th Edition 2006 by Raghavachariar
9. Hindu Law 1st Edition 2002 by S K Mitra
10. Hindu Law, 21st Edition 2010 by Mulla
11. Hindu code in 2 Vols.(6th Edition) R/p. 2000 by Dr.H.S Gaur

****

Is Security Of Women And Children Under The Purview Of Article 21

Mrs. Anuradha Tiwari *

As we know, Article 21 deals with one of the fundamental rights guaranteed by the Indian Constitution, i.e. "Right to life and Personal Liberty". This right is available against the State action as distinguished from violation of such right by private individuals.

It says that **"No person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law"**. In case of violation of such rights guaranteed by the Indian Constitution, the aggrieved person must seek remedies under the general law.

It has also been held by Hon'ble Supreme Court in **Behram V/s State of Bombay (1995(1) SCR 613)** that fundamental rights have been put into on grounds of public policy and in pursuance of the object declared in the Preamble; though these rights are primarily for the benefit of individual and hence there can be no question of these rights being waived.

Important features of Article 21

(1) Person: - It is clear that all persons included Masculine gender , feminine gender and neuter gender both and also extends to every persons regardless of nationality or the circumstances in which a person is placed. This right is also available to undergoing prisoners.

(2) Deprived: - The second significant feature is deprivation of life or personal liberty of a person. The term deprived came for consideration in the famous case of A.K. Gopalan V/s State of Madras (AIR 1950 SC 27). The validity of his detention challenged on the ground of violation of his right to freedom of movement U/Art., 19 (1) (d) which is very essence of liberty guaranteed by Art., 21 of the Constitution.

The majority took the view that total loss of personal liberty which art 19 affords protection against freedom guaranteed can be enjoyed by a citizen of India. Deprived does not mean that the court is powerless to interfere when there is threat to the freedom of life of personal liberty.[1]

(3) Life :- The another important feature is expression 'life'. Right to life under Art., 21 is something more than mere survival or existence. It is something more than mere breathing. In Francis V/s Union Territory (AIR 1981 SC 746) that right to life would include the right to live with human dignity(Chandra Raja Kumari V/s Police Commissioner Hydrabad AIR 1998 AP 302). It includes various kinds of rights like

01. Right against exploitation i.e. a person is not subject to bonded labour, unfair labour conditions. (People's Union V/s Union of India AIR 1983 SC 803)
02. Right to livelihood by legal moral and not oppose to public policy means
03. Natural justice **(A.K. Gopalan's Case and Menka Gandhi Case.)**
04. Right to life with human dignity, (Menka Ganhdi V/s Union of India AIR)
05. Right of Privacy.
06. Right to shelter.
07. Right to health and medical Assistance.
08. Freedom from Noise.
09. Right to Education.
10. Right to free legal aid.
11. Right against solitary confinement.
12. Right to speedy trial
13. Right against handcuffing.
14. Right against inhuman treatment.
15. Right against delayed execution.
16. Right of fair Trial and investigation.
17. Right to food - Starvation Death.
18. Right to get better environment i.e. Ban on smoking in public places.
19. Protection against illegal arrest.
20. Protection against police atrocities and custodial death.
21. Protections from "Fake Encounter".
22. Compensation for Gang Rape.
23. Prevention of sexual harassment of working women.
24. Living of children with prisoner mother.
25. Overloading school bus violative Article 21.
26. Organ transplantation with consent violative of Article 21.
27. Right to Electricity.[2]

(4) Personal Liberty: - The next important feature is the expression 'Personal Liberty'. It is the widest amplitude and it includes various kinds of rights like

1. Right of Prisoners
2. Right to speedy trial **(Hussainara Khatoon V/s Home**

*** Research Scholar (Dept. Of Law) Govt. Madhav Arts Commerce Law College, Ujjain (M.P.) INDIA**

Secretary AIR 1979 SC 1360.)

3. Right of an employment **(Board of Trustees V/s adkarni AIR 1983 SC 109)**.

In the light of the decisions of Supreme Court, the word Life Liberty is liberally interpreted. Expansion of Article 21 has led to many of the directive principles, being enforced as fundamental rights. Though it is not in positive form but many decision of Supreme Court have imposed positive impact on the State to take various steps for ensuring enjoyment of life of individual with human dignity.

Article 21 plays a pivotal role in the Indian constitution and the Supreme Court safeguarded to this Article very sincerely and cautiously. But can it is sufficient for offences against women. We have seen that black day of rape of Aruna Shabhag in which she is unconscious since last 35 years can it repay by anyone no, again we are victim of Delhi Gang Rape for which the sole Indian pleaded for positive justice and fighting for it by way of movement against Government, which is too shameful for our country, where a women is worshiped.

This case focuses on the world criminal justice system and definition of such crime and the worldwide people suggested reforming it and providing rigorous punishment to the offenders. The first basic question that whether Article 21 fulfilling the interpretation of human dignity of women's which is part and parcel of the society? It is the Second question that whether a State is responsible for it for violation of directive principle of State policy?

Suggestion: -

1. The women are different from men so it must be need to amend the interpretation of Article 21 i.e. Protection of life included **"Secure life"** of every person who is in Indian Territory.
2. Life included human dignity and dignity of women is belongs from protection against sexual harassment.
3. Women also have right to move freely it should make possible by providing her facilities by the State as per the direction of State Policy.

4. The Preamble of Indian Constitution declares:

We the People of India having solemnly resolved to constitute India into a Sovereign, Socialist, Secular, Democratic Republic and to secure to all its citizens:
Justice - Social, economic, Political:
Liberty - thought, expression, belief faith and worship:
Equality of status and opportunity: and to promote among them all:
Fraternity assuring the dignity of the Individual and the Unity and the integrity of the Nation.

Secure to all its citizens - indicates the security of all its citizens, whether these objectives fulfilling the intention of the Constituent Assembly in present scenario. So it is need to amend the declaration of Preamble i.e. security of women and children especially should include in the objective resolution of the constitution it can be helpful for prevention of such inhuman crimes. Even though the Supreme Court interpreted that compensation for sexual harassment is under the purview of Article 21 but compensation is not enough solution for victims it cannot repay the loss of human dignity. So the security should be including in basic structure of the Indian Constitution.

Reference :-

1. Dr, J.N. Pandey Constitutional Law of India 47th Edition
2. Dr. Kailash Rai 7th Edition Constitutional Law of India.
3. M.P. Jain 9th Edition Indian Constitution.
4. Article -21 of the Indian Constitution by Justice N.K.Jain P.N. 2-5 www. Legal India .com from internet.

****

Broadcasting Reproduction Of Copyright V/S Public Interest

Mrs. Anuradha Tiwari*

Introduction And Meaning:- In the second half of the last Century, two new developments took place in the field of broadcasting and communication. These are satellite broadcasting and cable.

Satellite Broadcasting - Prior to the advent of satellite broadcasting, it was a simply the transmission through either by wireless means of electromagnetic signals which, when received by suitable apparatus, could be converted, into sound and visual images audible to, and perceived by, human ears and eyes.

The development was that instead of the electromagnetic signals, emitted by the original broadcast travelling directly without any man-made intervening assistance from the original transmitter to the receiver, the transmitted signals were received first by a satellite placed in geo-stationary orbit from this satellite the received signals would then be transmitted back to earth were, at first for technical reasons, they were received only by ground stations but increasingly have become receivable by private receiving sets owned and operated by individual members of the public.

This menas that both radio and television programmes originating in, and transmitted from one country, are receivable in many other countries, indeed some of the footprints of there satellites may cover as much as 1/3rd of earth surface.

Kinds Of Satellite Broadcasting:- There are two copies of satellite broadcasting, transmission by point to point and direct broadcasting by satellite, are as follows-

(1) Broadcasting via- point-to point satellite :- Point -to-point satellites, which are also known as fixes service satellites (PSS), are used for intercontinental communication between one emitting point and one or more receiving points. Their signals cover roughly 1/3rd of the earth's surface. So that with the aid of three such satellites, placed over the Atlantic, Indian and Pacific Oceans signals from any country in the world, can be transported to just about any country in the world, provide that the necessary powerful earth stations are available. The point-to-point satellite transmissions are generally intended to reception by selected cable stations operators hotels and other places multiple occupancy who have contracts with the company which as transmission via- the satellite. These transmission are not for directs reception by the public.

(2) Direct broadcasting by satellites :- Direct broadcasting satellites (DBS) transmit signals on much lower frequencies. Their signals are more high- powered and receivable in members of the public in their homes after an adaption of their receiving sets. The signals transmitted by the satellites are generally intended for reception in only one of a limited group of Countries. Direct broadcasting satellites have been called aerials out in spaces.

In addition to the aforesaid types of satellite broadcasting, there may be one more catagory, i.e. direct to home' satellite transmission. The DT satellite transmission is those not only from DBS satellites, but also from medium powered satellites which can be received over a very wide area such as the whole of Asia or Europe. The signals can be received with a slight larger dish them necessary for the reception of DBS signals.

(3) Cable Television :- In cable television, the signals are transmitted by cable television is that not the original broadcasting organization but a third party transmits signals from a simple aerial to more than one television set located in different place such as rooms in hotels and houses in a town. The original purpose was to give subscribes to the service better reception than their individual aerial could provide, particularly, in areas of poor reception (so-called shadow zones), such as in valley where the mountains obstructed the signals, or in towns where high rise blocks were the obstruction, or where individual aerials were not allowed on environmental or other grounds. The transmission by the third party is made to a known public, usually subscribes to the service. As the system of cable television developed following forms of cable television emerged-

1. Simultaneously diffusion of programmes by wire to improve reception.
2. Recording of programmes and relying them at different times by cable.
3. Diffusion of modified programmes usually by the insertion of advertising material.
4. Programmes originated by the cable company,
5. Programmes imported from other regions of the same country from other countries. 'Cable television network' is defined to means any system consisting of a set of closed transmission paths and association signal

* Research Scholar (Dept. Of Law) Govt. Madhav Arts Commerce Law College, Ujjain (M.P.) INDIA

generation, control and distribution equipment, designed to provide cable service for reception by multiple subscribers. Further programme is defined by the Act to mean any television broadcast and includes -

(1) Exhibition of films features dramas, advertisement and serials through video cassette recorders or video players;

(2) Any audio or visual or audio-visual live performance or presentation.

Rights Of Copyright Owner :-

(**a**) **Duration of Copyright in Broadcasting and Cable Programmes**:- According to original section 14 (1) of the CDPA, Copyright in a broadcast or cable programme expired at the end of the period of 50 years from the end of the Calendar years in which the broadcast was made or the programme was included in a Cable Programme Service.

(b) Issue of Copies to the Public :- Sec 18 (1) of the CDPA provides that issue to the public of copies of the work in an act restricted by the copyright in every description of copyright work. It includes broadcasts and cable programme. Issue to the public of copies of a work means the act of putting into circulation copies not previously put into circulation in the United Kingdom or elsewhere. But it does not include any subsequent distribution, sale, hiring or loan of those copies or any subsequent importation of those copies into the UK. In India also, it is not permitted act to sale or hire the public an offer for such sale or hire and sound recording or visual recording of broadcast which has been made without licence of the owner of right, or which is a reproduction of such sound recording or visual recording.

(c) To Copy the Work :- In India, Sec 37 of Copyright Act 1957 provides that during the continuance of a broadcast reproduction right in relation to any broadcast any person who, without the licence of the owner of the right, makes any sound recording or visual recording of the broadcast any substantial part thereof, shall subject to the provisions of Sec. 39 (permitted use in relation to broadcast reproduction right), to be deemed to have infringed the broadcast reproduction right.

(d) Playing or showing of work in Public :- According to the CDPA, the playing or showing of the work in public is an act restricted by the copyright in broadcast or cable programme. It is not only an infringement to do such acts in relation to the work as a whole but also in relation to any substantial part of it. The CDPA provides further that where copyright in a work is infringed by its being performed, played or shown in public by means of apparatus for receiving visual images or sounds conveyed by electronic means, the person by whom the visual images or sounds are sent shall not be regarded as responsible for the infringement.

The expression 'in public' has been the subject of a number of decisions. It is a question of fact and the chief guide in answering the question should be the guide of common sense. If it can be said that audience is one which the owner of the copyright might fairly consider as part of his public do not show television programmes on the screen.

Satellite Convention, 1974 :- The satellite Convention 1974 obliges contracting Statutes to protect the programme carrying signals but does not create any rights for copyright owners Art 2 which is a Central article obliges contracting States to take adequate measures to prevent the distribution on or from its territory of any programme - carrying signals by any distribution from whom the signals emitted to or passing through the satellite is not intended .

This obligation is however, applicable only in those cases where the originating organizations are nations of other contracting States and where the signals distributed are derived signals. The Convention is not applicable where the signals emitted by or on behalf of the originating organization are intended for direct reception from the satellite by the general public.

Exception to Protection of Copyright:-

(1) Fair dealing for criticism review and news reporting.

(2) Making sound recording or visual recording of broadcast for private use.

(3) Things done for purpose of instruction or examination,

(4) Incidental inclusion of copyright materials.

References:-

1. PIL by Sudha Chandran
2. Discuss group - research scholar in vikram university,ujjain
3. Nimmer on Copyright (in 11 Vols.) by Nimmer
4. The great American broadcast by Leonard Maltin
5. http://mib.nic.in/Acts%20%20%20Rules.aspx

****

Every Business is done with a view to make profits and a Company is no exception to this rule.

Mrs. Anuradha Tiwari *

Introduction, Meaning of Dividend:- Every business is done with a view to make profits and a company is no exception to this rule. The profits of a company are distributed amongst its shareholders in the form of dividend. A person who lends money or invests it in a fixed deposit gets interest; on the other hand, an investor in the shares of a company is rewarded with dividend.

The dictionary meaning of dividend is sum payable as interest on loan or as profit of a company to the creditors of an investors estate or an individual's share of it. In commercial parlance, however dividend is the share of the company's profit distribution among the members. **According to Sec. 205 -** The dividend can be declared and paid by a company only out of the profit of the company. There are three sources out of which dividend can be paid namely;

(1) Profits of the company for the year for which dividends are to be paid.

(2) Undistributed profits of the company of the previous financial years; and

(3) Money provided by the Central or a State Government for the payment of dividend in pursuance of a guarantee given by such Government. (Prof. H.D. Pithawala P.N. 197) .

Kinds of Dividend:-

There are two kinds of Dividend are as follows-

1. Final Dividend ,

2. Interim Dividend.

(1) Final Dividend :- It is recommended by the Board of Directors in its report to the shareholder, as per requirements of Sec. 217 of the Companies Act 1956 which attached to the balance sheet for the relevant financial year. It is declared by the shareholders at the Annual General Meeting , usually articles of association of companies provide that shareholders cannot increase the rate or amount of dividend than the one recommended by the Board of Directors. The shareholders may however, declare the payment of dividend an equity share at a rate lower than the one recommended by the directors in their reports. It is discretion of the Board of Directors to recommend or not to recommend the declaration of final dividend, which has to be exercise in good faith in the interest of the company. The shareholders have no power to declare. Final Dividend in the absence of a recommendation of the Board of Directors in this regard.(Commercial law, author Avatar Singh P.N. 427).

(2) Interim dividend :- Sec. 2 (14A) defines "Dividend to include Interim dividend. The Companies (Amendment Act 2000, has amended Sec. 205 to make provision for interim dividend. The Board of Directors may declare two Annual General Meeting of the Company. Prior to carrying into force of the companies (Amendment Act 2000 the Act did not contain specific provisions for payment of Interim dividend. However, if the Articles of Association of company authorised payment of Interim dividend as per Regulation 86 of the Table "A" Schedule. I then the Board of Directors of such of such company could declare Interim Dividend where its profits warranted such payment. A mere resolution for declaration of an interim dividend did not create any liability and could be restricted at any time before actual payment. This was so even if the cash to cover the proposed dividend has been placed into a separate account.

In Punjab National Bank V/s Union of India:- It was held by Hon'ble Supreme Court that distribution between interim and final dividend was that unlike Interim dividend, a final dividend once declared by the company in general meeting was debt and created and enforceable obligation.

Rights of Shareholders for Dividend :- **In Bacha F. Guzadar (Mrs V/s CJT** that once a dividend is declare a shareholders has the right to claim dividend against the company. (AIR 1955 25 Com. Cases 1 AIR 1955 SC P.N. 74). A shareholder cannot compel the company by any process of law to declare a dividend. The usual practice is for the Board to recommend and the Annual General Meeting to declare the dividend. The it has power subject the provisions of the Act to determine the amount of dividend to be distributed.

In the case of Kastur Chand Jain V/s Gift tax Officer :- it was held that dividend when proposed does not became a debt but only becomes debt when declared.

(1) To Whom Dividend Paid? U/s Sec. 206 of the Companies Act:- A dividend in respect of a share has to be paid to the registered shareholder of the share or to his bankers for this purpose, usually companies does the register

* Research Scholar (Dept. Of Law) Govt. Madhav Arts Commerce Law College, Ujjain (M.P.) INDIA

of member U/Sec 154 of the Companies Act or fix a record date of which 7 days notice should be given by publication of advertisement in two newspaper one in English and other in the regional language in which the registered office of the company is situate.

The purpose of such notice is to give an opportunity to those who held blank transfer deeds to lodge them with the company duly completed. Dividend is paid to those whose name appears on the record date or last day of the closure of register of members, as the case may be.

In the case of Chunilal Khushaldas Patel V/s H.K. Adhyam:- it was held that dividend is payable to the shareholders whose name appears in the register of members on the appropriate date even though prior to that date he has sold the shares and the transfer deed in respect thereof has not been lodged with company (AIR 1956 26Co. Cases 168 SC.)

(2) When the dividend Payable? U/Sec. 207 of the companies Act 1956 dividend has to be paid within 30 days from the declaration. Posting of dividend warrants within 30 days will be deemed to be payment inrespect of the fact whether the warrant has been enchased or not U/ Regulation 91 of Table "A" of Schedule I of the Act. In case of joint holders the warrant has to be sent to the registered address of the first named joint holders or to such person and to such address as the joint holders may in writing direct.

Unpaid or Unclaimed Dividend :- Sec 205 and Sec. 205 B amended by company (Amendment) Act 1988, 1999, and 2000. Under Section 205 A and Sec. 205 B, if a dividend declared by a company has not been paid or claimed within 30 days of the declaration, the same shall within 7 days thereafter i.e. (7 days after expiry of 30 days from the date of declaration, have to be transferred to a special account to be opened by the company in that behalf in any scheduled bank to called "unpaid dividend account of company Ltd./ Pvt. Ltd. Subsequent dividend claims will be met from his account. According to Sec. 205 A (5), if any amount remains unpaid or unclaimed for a period of 7 years from the date of such transfer, the amount. So remaining unpaid/ unclaimed together, with any interest credited thereto should be transferred to the Invest Education and Protection Fund.

Investor Education and Protection Fund :- Sec. 205 C inserted in Companies Act 1956 by Companies (Amendment Act 2000). The provisions of newly inserted Sec. 205 C are as follows -

There shall be credited to the Investor Education and Protection Fund the following amounts follows -

(a) amounts in the unpaid dividend accounts of companies

(b) The application money's received by companies for allotment for any securities & due from refund.

(c) Matured deposits with companies.

(d) Matured debentures with companies.

(e) The interest accrued on the account referred to in clauses (a) to (d).

(f) Grants and donations given to the Investor Education and protection Fund by the Central Government, State Government, companies or any other institutions for the purpose of the fund.

(g) The interest or other income received out of the investment made from the investor Education and protection fund . Provided that no such amounts referred to in clauses (a) to (d) shall form part of the fond unless such amounts have remained unclaimed and unpaid for a period of seven years from the date they became due for payment.

Conclusion:- The security and Exchange Board of India has provided certain guidlines which are adequate when considered in the present prospective, but when the veracity of the Act is considered in the future. Prospective and in the scenario of complications and problems arising due to changing market in broader perspective then the financial derivatives are to be based on equality.

Financial transaction and asset, liability, position are exposed to three broad types of price risk viz. "equalities" market risk also called systematic risk which cannot be diversified away because the stock market. It is well known theory that 'prevention is better than cure'. Indian capital market was opened suddenly in the year 1991.

Major reason for Scam is opening the capital market without proper regulatory system and without empowering investors. After the first decade of liberalisation now all have accepted these facts. The casually of this error is small Investor & their confidence shaken for the last 10 years. His participation/ share is coming down. Thus it is necessary to keep & motive the investors in capital market, to increase his participation, to increase the household savings channelization in the capital market, massive well planned scientific Investors Education awareness empowerment programmes be drafted & implemented.

References:-

1. company law by avtar singh
2. A Comparative Study of Companies Act 2013 and Companies Act 1956
3. A Ramaiya's Guide to the COMPANIES ACT (Box-1 :3 Vols. + Appendices 1 & 2)
4. A Textbook of Business and Corporate Laws (gona)
5. Business and Corporate Laws (Asok K.Nadhani)

न्याय आयुर्विज्ञान और चिकित्सा न्याय शास्त्र का अध्ययन एवं महत्व

डॉ. एस.एन. शर्मा *

परिचय :– न्याय आयुर्विज्ञान और चिकित्सा न्यायशास्त्र आज विधिशास्त्र का प्रमुख अंग बन गये है। यदि यह कहां जाए कि दोनों एक दूसरे के पूरक है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। विधिशास्त्र जहॉ किसी व्यवहार के विधिक पहलू पर विचार करता है वहाँ न्याय आयुर्विज्ञान एंव चिकित्साशास्त्र किसी तथ्य को प्रमाणित या अप्रमाणित करने मे सहायता करते है। यह कारण और परिणाम दोनों को साबित करता है।

अपराधिक मामलो में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। उदा:- मारपीट, हत्या, पागलपन, अप्राकृतिक यौन संबंध बलात्कार मदोत्मतता आयु आदि के मामले सही निष्कर्ष पर पहुॅचने हेतु इस विज्ञान का व्यापक स्तर पर उपयोग किया जाता है। इसके बिना मामलों का न्याय निर्णयन खतरे से ओतप्रोत होता है। यहॉ यह सूक्ति सार्थक सिदध होती है कि 'मनुष्य झूठ बोल सकता है परिस्थितियॉ नही' ठीक यही कहावत न्याय आयुर्विज्ञान एंव चिकित्सा न्यायशास्त्र के निष्कर्षों पर लागू होती है।

विगमोर के अनुसार :- न्याय प्रशासन एंव न्यायिक प्रक्रिया मे साक्ष्य के स्वरूप, सहयोग एंव उसकी मात्रा को किसी सीमा के केद नहीं किया जा सकता है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों के परिस्थितियो पर निर्भर करता है। न्यायालय के समक्ष विचारणीय मामलो में विज्ञान की परिधि और परख को साक्ष्य की दृष्टि से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

क. न्याय आयुर्विज्ञान :– न्याय आयुर्विज्ञान का विधि एंव न्याय से घनिष्ट संबंध है। इसमें विधि एंव न्याय के चिकित्सा संबंधी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है इसिलिए इसे विधि आयुर्विज्ञान कहते है। इसका उद्देश्य न्याय प्रशासन की सहायता करना है।

न्याय आयुर्विज्ञान न्यायालय को किसी मामले के किसी अंतिम निष्कर्ष पर पहुॅचने मे सहायता करता है। जब भी अपराधिक मामले न्यायालय के समक्ष विचारणीय होते है, चिकित्सा अधिकारी से उनकी परीक्षण रिपोर्ट प्रस्तुती हेतु कहा जाता है। चिकित्सा अधिकारी निम्न बिंदूओ का अवलोकन करता है -

क. यदि मामला चोट का है, तो वह साधारण है या गंभीर।

ख. चोट किस हथियार से कारित की गई, घाव कितना गहरा है।

ग. चोट कितने समय पहले की है।

इस प्रकार प्रत्येक मामले मे चिकित्सा अधिकारी विस्तृत जॉच कर अपराध के कारण एंव परिणामो तक पहुॅचने का प्रयास करता है। ऐसे अधिकारी को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर आधारो का साबित करना होता है। कुशल एंव अनुभवी आयुर्विज्ञानी ही इस कार्य को संपन्न कर सकता है।

ख. न्याय चिकित्साशास्त्र:– इससे तात्पर्य है विधि द्वारा स्थापित न्यायालयो द्वारा न्याय प्रदान किये जाने मे चिकित्सकीय ज्ञान का उपयोग करता है। यह विधिक समस्याओं एंव विवादों का समाधान करने हेतु यह दर्शाता है कि शरीर विज्ञान औषधी, शल्य चिकित्सा, स्त्री रोग आदि से संबंधित ज्ञान का उपयोग किस तरह करना चाहिए। यह आयुर्विज्ञान से जुडा हुआ विषय है। यह चिकित्सा विज्ञान के विधि एंव न्यायिक पहलूओ पर प्रकाश डालता है। जो निम्नानुसार विषय पर आधारित है -

1. किसी घटना में क्षतिग्रस्त व्यक्ति का परीक्षण करने हेतु चिकित्सा अधिकारी को प्रेरित करना।
2. चिकित्सा अधिकारी को न्यायालय मे उपस्थित होकर अपनी राय के आधार व्यक्त करने हेतु कहता है।
3. घटना की जानकारी पुलिस अधिकारी को देने हेतु बाध्य करना।
4. अधिकारी रोगो राज्य के चिकित्सा अधिकारो के कर्तव्यों का आभास कराता है।

उदेश्य :–

न्याय आयुर्विज्ञान का उदेष्य न्याय प्रशासन के परीक्षण मे सहायता करना है। इसमे विधि एंव चिकित्सा विषयक पहलूओ का अध्ययन किया जाता है -

1. बलात्संग के मामलों में चिकित्सकीय परीक्षा से यह प्रमाणित होता है कि बलात्संग हुआ या झुठा आरोप लगाया गया है।
2. शरीर पर चोट के निशान गंभीर प्रकृति के है या साधारण प्रकृति के ।
3. शरीर को साधारण हथियार से हानि हुई या घातक हथियार से।
4. किसी व्यक्ति की आकस्मिक मृत्यु हुई या हत्या शव परीक्षण से यह पता लगाया जा सकता है।
5. वाहन चलाते समय चालक पर नशे में होने का आरोप लगने पर चिकित्सकीय परीक्षा द्वारा वह उस समय नशे में था या नही।

महत्व :–

शरीर संबंधी अपराधो में चिकित्सा न्यायशास्त्र का महत्व निर्विवाद है। प्रत्येक मामले मे हर कदम पर इसकी सहायता ली जाती है उदाहरणार्थ - निम्न बिदूंओ का निर्धारण

1. **पहचान :–** जब किसी अज्ञात व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है या किसी व्यक्ति की मृत्यु कारित कर उसे दफना दिया जाता है, तब सबसे पहला प्रश्न उस व्यक्ति की पहचान से संबंधित होता है। जब उसके पास पाए जाने वाली वस्तुओं उसका पता नहीं लगाया जा सके, जब किसी व्यक्ति द्वारा उसकी पहचान नहीं की जा सके तो ऐसे व्यक्ति की पहचान चिकित्सकीय परीक्षण से स्थापित की जाती है। सामान्य: ऐसे मामलों में शरीर पर चिन्ह खाजे जाते है। जैसे गोदन चिन्ह, तिल, मस्से अंग विच्छेद, चोट एंव घावो के निशान आँख, दाँत, बाल, आदि की स्थिति, आयु संबंधी लक्षण, लिंग निर्धारण, चमडी का रंग आदि। कई बार जीवित व्यक्ति की पहचान करनी होती है, यह कार्य सामान्यत: पुलिस अधिकारी द्वारा निर्धारित किया जाता है। जीवित व्यक्तियों की पहचान में निम्नांकित बातो की सहायता ली जाती है -मूलवंश, धर्म, लिंग, आयु, शारीरिक विकास, सहज गुणधर्म, अंगुली चिन्ह, पदचिन्ह, गोदनचिन्ह, घाव के निशान तिल मस्से आदि।

* विधि विभागाध्यक्ष, शासकीय माधव कला वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय एवं पूर्व डीन, विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

2. आयु:– कई मामले ऐसे आते है जिनमे आयु का प्रश्न विवादग्रस्त होता है, और आयु के संबंध मे कोई दस्तावेजी साक्ष्य उपलब्ध नही होता है ऐसी दशा में शारीरिक परीक्षण द्वारा आयु ज्ञात की जा सकती है। आयु निर्धारण मे निम्नांकित आधार बनाये जा सकते है -

1. क्लिनीकल परीक्षण रिपोर्ट।
2. डेन्टल सर्जन रिपोर्ट।
3. रेडियोलाजिस्ट रिपोर्ट।

उदारहरण– 26/11 आंतकी कसाब के मामले मे इस परीक्षण का प्रयोग किया गया

3. मृत्यु :– मृत्यु के मामले में चिकित्सकीय परीक्षण अत्यंत आवश्यक समझा जाता है शव परीक्षण से यह पता लगाया जा सकता है कि मृत्यु प्राकृतिक है या अप्राकृतिक अर्थात हिंसात्मक, मामला हत्या का है या आत्महत्या का है।

निष्कर्ष :–

न्याय प्रशासन मे चिकित्सा विज्ञान का स्थान रीढ़ की हड्डी के समान है पंरतु उच्चतम न्यायालय के अनुसार विशेषज्ञ की राय मात्र एक सलाहकारी साक्ष्य है, न्यायालय की कोई विशेष सहायता नही करता। यह सही है कि विशेषज्ञ की राय अत्यंत कमजोर प्रकृति का साक्ष्य माना जाता है परंतु यह कोई सार्वभौमिक नियम नहीं है।

प्रत्येक मामले की परिस्थितियों एंव तथ्यों पर निर्भर करता है। जैसे - बलात्कार के मामले मे मात्र प्रथम सूचना रिपोर्ट तथा चिकित्सा अधिकारी की साक्ष्य के आधार पर की दोषसिद्धी को उचित माना गया है। इसी तरह उच्चतम न्यायालय ने राजस्थान राज्य बनाम ओम प्रकाश इस मामले मे यह अभिनिर्धारित किया कि चिकित्सक की साक्ष्य को खारिज करने के विधिक कारण होना आवश्यक है।

अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुॅचते है कि चिकित्सा विशेषज्ञों की राय केवल तभी अस्वीक्रत या खारिज किया जा सकता है जब ऐसा करने के विधिक कारण विद्यमान हो। परंतु चिकित्सा अधिकारी को साक्ष्य मे कुछ बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक है -

1. न्यायालय द्वारा पूछे जाने वाले सभी प्रश्नो का उत्तर तार्किक एंव वैज्ञानिक तरीके से देना चाहिए।
2. साक्ष्य देते समय ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जो न्यायालय समझ सके।
3. चिकित्सकीय रिपोर्ट का अच्छी तरह अवलोकन करना चाहिए क्योकि उसकी रिपोर्ट अत्यंत मूल्यवान होती है।
4. जहॉ साक्ष्य चोटों के संबध मे हो वहॉ चिकित्सा अधिकारी को प्रतिवेदन में अंकित प्रत्येक चोट का विवरण देना चाहिए।
5. न्यायालय को यथासंभव चिकित्सक की राय पर विश्वास की धारणा बनाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. चिकित्सा न्याय शास्त्र रचित श्री बंसंतीलाल बाबेल।
2. फोरेन्सिक विधि - दीपक रतन और मोहम्मद हसन जैदी।
3. चिकित्सा विधिशास्त्र - डॉ आर एम झाला और बी राजू।
4. चिकित्सा विधिशास्त्र - नयन जोशी।
5. मेडिकल लिगल आस्पेक्ट ऑफ सेवरल आफेन्सेस - आर एल गुप्ता।
6. विधिक अनुसंधान पद्धति विज्ञान - एम एन गिरी।

****

महिला सशक्तिकरण एवं लैंगिक न्याय की अवधारणा

डॉ. एस.एन. शर्मा *

परिचय एंव ऐतिहासिक पृष्ठभूमि – महिला जन्म से ही प्रकृति के नियम से ही दूनिया मे भिन्न रूप से जन्म लेती है। उसकी शारीरिक और मानसिक स्थिति ओर मानवों से भिन्न होती है। वर्तमानकाल में महिलाओ की शैक्षणिक, अध्यात्मिक एंव मानसिक स्तर का तेजी से विकास हुआ है। आज ही नहीं अपितू प्राचीन काल से ही उसने अपनी अलग पहचान कायम की है। संपूर्ण जगत के कार्य प्रभू ने महिला के जिम्मे ही किये है। उदा: मॉ सरस्वती जो संपूर्ण जगत को विद्या देने वाली है। मॉ लक्ष्मी जिसे संपूर्ण संसार को धन संपदा प्रदान करने का कार्य सौपा गया है।

मॉ शारदा जो संपूर्ण जगत के मानवों की भाग्य रचियता है। सती सावित्री ने यमराज के मुख से अपने पति को वापस लाने का सार्मथ्य साबित किया। द्रोपदी को अग्नि की रोज परिक्षा देकर पॉच पतियों की ससम्मान पतिव्रता पत्नि कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। संर्पूण जगत के विनाश का कारण भी सदैव स्त्री ही रही जब जब वह सताई, जलाई, या अपमानित की गई। मॉ कालीका इसकी प्रत्यक्ष उदाहरण है। सृष्टि की रचना मे भी अर्धनारेश्वर का प्रत्यक्ष प्रमाण हमे हमारे धर्मशास्त्रो से प्राप्त है। ऐतिहासिक प्रष्ठिभूमि

1. वैदिक काल मे :– ऋगवेद मे ब्रहमज्ञानी पुरूषो के साथ साथ ब्रहमवादिनी स्त्रीयों का नाम भी विद्यमान है। इनमे से विश्ववारा लोप, मुद्रा, घोषा, इद्राणी, देवयानी इत्यादि प्रमूख है।

2.उत्तर वैदिककाल :– इसमें महिलाओं की स्थिति में परिर्वतन हुआ। इसमें स्त्री के जन्म को अशुभ माना जाने लगा। महिलाओं के धार्मिक अधिकारो को सीमित कर दिया गया। उनके यज्ञादि कर्मो पर प्रतिबंध लगा दिए गए। बालविवाहो का प्रचलन, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध इसी काल की देन है।

3. मध्यकाल :– इसे स्त्रियो की दृष्टि से काला युग भी कहा जाता है। मुगलकाल मे भारत मे राजाओं की आपसी फूट के परिणामस्वरूप कुछ बादशाहों ने जबरन धर्म परिर्वतन तथा महिलाओ से ज्यादती, जबरन विवाह प्रांरभ किया जिससे स्त्रियों को किसी न किसी के सदैव संरक्षण मे रहना पड़ा जैसे – बाल्यावस्था मे पिता, युवाअवस्था मे पति तथा व्रदधावस्था मे पुत्र जिससे बालविवाह, पर्दाप्रथा वैश्यावृत्ति, तथा सतीप्रथा जैसी कुरितियों का उदभव हुआ।

4. ब्रिटिशकाल :– इसे पूर्व आधुनिक काल माना जा सकता है। जिसमे अंग्रजो की रूचि फूट डालो ओर राज करो की नीति के कारण वे महिला अधिकारों के संर्दभ मे सुधार के पक्षधर थे परंतु विशेष सुधार के लिए बहुत उत्सुक नही थें। समाज सुधारको के आदोंलनो और प्रयासो के कारण झॉसी की रानी ने एक सफल योदधा की भूमिका निभाई। राजा राममोहन रॉय ने – सतीप्रथा प्रतिशेध तथा स्त्रियो के संपत्ति संबंधी अधिकारों हेतु संर्घष किया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने– कुलीनता के आधार पर बहुविवाह प्रथा पर प्रतिबंध लगाने हेतु संर्घष किया।ज्योतिबा फूले ने – बालविवाह, अस्पृश्यता उन्मूलन और स्त्री पुरूष समान अधिकार पर कार्य किया।

दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानंद ने – वैदिक पंरपरा की अच्छाईयो को पुनर्जीवित करने, बालविवाह प्रतिशेध, विधवा पुर्नविवाह, स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। एनी बिसेंट और महात्मा गांधी समानता का अधिकार,, पुर्नवास प्रदान करने हेतु प्रयास किया। जी. के. देवधर ने 'सर्वेंटस ऑफ इण्डिया सोसायटी की स्थापना कर महाराष्ट्र समाज में महिला शिक्षा पर अपना योगदान दिया। इसी के परिणामस्वरूप आज महिलाए परिवार, समाज, देश, विदेश मे भी अपना परचम लहरा रही है।

भारतीय संविधान में महिलाओं के अधिकार :– स्वतंत्रता से पूर्व देश में महिलाओं की स्थिति को देखते हुए संविधान मे महिलाओ को समाज के सभी क्षेत्रों मे विकास हेतु अवसर प्रदान करने के लिए विशेष उपबंध किये गये है जो निम्नानुसार है–

1. अनु. 14 समानता का अधिकार।
2. अनु. 15 धर्म, जाति, लिंग, मूलवंश इत्यादि के अधार पर विभेद वर्जित है।
3. अनु. 16 लोक नियोजन मे स्त्री पुरूष को समान अवसर का अधिकार, समान कार्य हेतु समान वेतन के निर्देश।
4. अनु. 23-24 स्त्री पोषण, बलातश्रम, महिलाओं के क्रय विक्रय पर प्रतिबंध लगाने के निर्देश।
5. अनु. 39 के अनुसार राज्य ऐसी नीतियों का निर्माण करेगा जिससे स्त्री पुरूष दोनों का जीवन निर्वाह हो।
6. अनु. 42 राज्य ऐसी व्यवस्था करे जिससे महिलाओ को प्रसूतिकाल मे वे सुविधाऍ उपलब्ध हो सके जो उन्हें मानवीय आधार पर मिलना चाहिए।

महिला अधिकारों के संरक्षण हेतु अन्य विधियाँ :–

महिला अधिकारों को सम्यक रूप से प्रदान करने हेतु केंद्र एंव राज्य सरकार समय समय पर विभिन्न विधियों का निर्माण करती है, जो निम्न है–

1. बालविवाह प्रतिपेध अधिनियम 2004।
2. विधवा पुर्नविवाह अधिनियम।
3. हिंदू विवाह अधिनियम 1955।
4. दत्तक ग्रहण एवं भरणपोषण अधिनियम 1956।
5. महिला उत्पीड़न निवारण अधिनियम।
6. दहेज प्रतिशेध अधिनियम।
7. घरेलू हिंसा अधिनियम 2005।
8. प्रसवपूर्व निदान तकनीकि अधि. 1994।
9. शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2010।
10. भारतीय उत्तराधिकार अधि. 1925।
11. हिंदू उत्तराधिकार अधि. 1956।
12. विशेष विवाह अधिनियम।
13 आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम 2013 इत्यादि।

वर्तमानकाल मे लैंगिक न्याय एवं महिला सशक्तिकरण :–

समाज मे महिलाओ की स्थिति जितनी मजबूत होगी उतना ही समाज विकसित और प्रभावशाली होगा। हमारे धर्मशास्त्रों के अनुसार 'यत्र नर्यास्तु पुजंते, रमंते तत्र देवता' सुक्ति से स्त्रियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण दर्शाया गया है। इसके विपरित 'हाय अबला तेरी यही कहानी, आँचल में है दूध और आंखों मे पानी' यह सूक्ति वर्तमानकाल मे चरितार्थ हो रही है।

सन् 1903 मे अमेरिका मे वुमन ट्रेडयुनियन का गठन किया गया। सन 1910 मे अमेरिका द्वारा महिला दिवस मनाये जाने का मुद्दा उठाया गया। प्रांरभ में इसे विभिन्न देशों द्वारा भिन्न भिन्न तिथियो मे मनाया जाता था, पंरतु संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इसके लिए 8 मार्च की तिथि घोषित की जिससे विश्वभर मे इस तिथि को विश्व महिला सशक्तिकरण दिवस के रूप मे मनाया जाता है। सर्वप्रथम 1985 मे तैराकी मे संपन्न अर्तराष्ट्रिय महिला सम्मेलन मे महिला

* विधि विभागाध्यक्ष, शासकीय माधव कला वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय एवं पूर्व डीन, विक्रम विश्व विद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

सशक्तिकरण को परिभाषित किया गया। महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओ को पुरूषो के समान वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनैतिक, शारीरिक, मानसिक एंव आर्थिक क्षेत्रों मे उनके परिवार, समाज एंव राष्ट्र की पृष्ठभूमि मे निर्णय लेने की स्वतंत्रता है। भारत मे महिला सशक्तिकरण का अर्थ है महिलाओ की सामाजिक एंव आर्थिक दशा मे सुधार करना।

महिला सशक्तिकरण हेतु विशेष योजनाएं :–

वर्तमान समय मे महिला सशक्तिकरण हेतु केंद्र एंव राज्य सरकार द्वारा महिलाओं के विकास हेतु विभिन्न योजनाऍ संचालित की जा रही है उनमे से कुछ महत्वपूर्ण योजनाऍ निम्नानुसार है-

केंद्र सरकार द्वारा संचालित योजनाएं।

1. **स्वाधार योजना :–** यह 2 जुलाई 2001 से प्रांरभ की गई है। इसका उदेश्य गंभीर परिस्थितियों में महिलाओं को संबंधित सहायता प्रदान करना है। इसमे जेलमुक्त, आपदा पीडित, वेश्यावृत्ति से मुक्त महिलाएँ इसका लाभ ले सकती है। इसके अंतर्गत आवास, स्वास्थ, विधिक सहायता, सामाजिक एंव आर्थिक पुनर्वास की सुविधा दी जाती है।
2. **स्वावलम्बन योजना :–** महिलाओं को रोजगार प्रशिक्षण उपलब्ध कराना जैसे कम्प्युटर प्रोग्रामिंग, मेडिकल ट्रांसक्रिप्शन, टेलिविजन मरम्मत, हथकरघा लिपीकीय क्षेत्र मे प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।इसे सन 1982 मे नोराड महिला योतना को स्वालंबन के नाम से प्रारंभ किया गया है। इसमें जरूरतमंद स्त्रियो को सम्मिलित किया गया है।
3. **स्वशक्ति योजना :–** यह सन 1985 मे अंर्तराष्ट्रिय कृषि विकास कोष के सहयोग से प्रांरभ की गई जो हरियाणा, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, झारखंड, कर्नाटक उत्तराखंाड और छत्तीसगढ. मे विकास निगमो के माध्यम से संचालित है।
4. **स्वयंसिद्वा योजना :–** यह 12 जुलाई 2001 मे पूर्व मे चल रही इंदिरा महिला योजना तथा महिला सम्रद्धि योजना को मिलाकर प्रांरभ की गई। आत्मनिर्भर महिलाओं का स्वंय सहायता समूह गठित किया गया, जिसमें ग्रामीण महिलाओ को स्वास्थ, शिक्षा, विधिक सहायता, आर्थिक गतिविधियों, घरेलू बचत इत्यादि के प्रति जागरूक किया जाता है। साथ ही महिलाओ को लघु ऋण उपलब्ध कराकर स्वरोजगार हेतु प्रेरित किया जाता है।
5. **आशा योजना :–** यह 11 फरवरी 2003 को लागू की गई। इसमे ग्रामीण महिलाओ के स्वास्थ की देखभाल हेतु आशा कार्यकता नियुक्त की गई।
6. **स्वर्णिम योजना :–** पिछड़े वर्ग की महिलाओ को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने हेतु भारत सरकार द्वारा यह योजना संचालित है। इसमें 50 हजार रू तक का ऋण मात्र 4 प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर पर दिया जाता है। ऋण की वापसी हेतु बारह वर्ष की लम्बी अवधि प्रदान की गई है।
7. **बालिका प्रोत्साहन योजना :–** सन 2006-2007 के वार्षिक बजट मे इस योजना की घोषणा की गई। इसमे कक्षा आठवीं की बालिका को कक्षा नवम मे नामांकित होने पर 300 रू की एकमुश्त राशि दी जाती है।
8. **इंदिरा गांधी इकलौती बालिका योजना :–** केंद्र सरकार द्वारा बढते लैंगिक असंतुलन को देखते हुए इकलौती कन्या छात्रवृत्ति, शिक्षा शुल्क मुक्ति योजना प्रांरभ की गई। कक्षा षष्टम से बारहवीं तक नि:शुल्क शिक्षा तथा विश्वविद्यालय स्तर पर इंदिरागांधी छात्रवृत्ति योजना का प्रावधान है।
9. **अल्पावधि प्रवास ग्रह योजना :–** सन 1969 मे इस योजना के अंतर्गत परित्यक्त महिलाओ के पुर्नवास की सुविधाऍ प्रदान करने हेतु प्रांरभ की गई। सन 1999 से यह समाज कल्याण बोर्ड के अधीन है।
10. **परिवार परामर्श केंद्र :–** सन 1984 से केद्रीय समाज कल्याण बोर्ड के अधीन स्वैच्छिक संगठनों द्वारा संचालित है। इसमे पारिवारिक असहयोजन से पीडित महिलाऍ पुलिस मुख्यालयों, महिला कारागार, विवाह पूर्व परामर्श केंद्रों पर उपलब्ध कराई जा रही है।
11. **बालिका समृद्धि योजना :–** इसमे नवजात कन्या के नाम से बैंक मे धनराशि जमा की जाती है, तथा स्कुली शिक्षा के दौरान प्रत्येक सफल वर्ष हेतु छात्रवृत्ति दी जाती है। बैंक मे जमा धनराशि उस बालिका को 18 वर्ष पूर्ण होने पर ब्याज सहित दी जाती है।
12. **स्टेप योजना :–** सन 1986-87 मे महिलाओं को रोजगार एंव प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु प्रारंभ की गई। इसके अंर्तगत साधनहीन महिलाओ को आठ परंपरागत क्षेत्रो मे प्रशिक्षण दिया जाता है। जैसे - कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन, डेयरी, हैण्डलूम, हस्तशिल्प, खादी और ग्रामोद्योग तथा रेशम कीटपालन मे स्वरोजगार उपलब्ध कराना है।
13. **जननी सुरक्षा योजना :–** 1 अप्रेल 2005 से संचालित है इसमे 19 वर्ष से अधिक आयु की गर्भवती महिलाओ को प्रथम दो जीवित प्रसवो पर आर्थिक सहायता दी जाती है।
14. **किशोर शक्ति योजना :–** ग्रामीण तथा शहरी किशोरियो को स्वास्थ शिक्षा के साथ साथ व्यवसायिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है, जिनके परिवार की आय 6400/ वार्षिक दर से कम है।
15. **राष्ट्रिय पोषाहार योजना :–** 8 मार्च 2003 से प्रांरभ हुई। इसमें महिलाओ को गंभीर बिमारियो एंव उनके शिशुओं की अपंगता आदि के लिए सुरक्षा कवच प्रदान किया जाता है।
16. **वंदेमातरम योजना :–** इसमे प्रत्येक माह की 9 तारिख को निजी चिकित्सकों द्वारा गर्भवती महिलाओं को गर्भावस्था के दौरान पोषक दवाईयॉ दी जाती है। 6 निष्कर्ष %।वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत मे महिलाओ साक्षरता दर 65.46/ है, जबकि पुरूष साक्षरता दर 82 प्रतिशत है जो कि लैंगिक न्याय के भारी अंतर को दर्शाता है। वैसे ही भारत मे

✲ हर 4 मिनट पर एक महिला का उत्पीडन।
✲ हर 15 मिनट मे महिला से छेड़छाड़।
✲ हर 53 मिनट मे यौन उत्पीडन।
✲ हर 9 मिनट मे पति या संबंधी से उत्पीडन।
✲ हर 77 मिनट मे दहेज हत्या।
✲ हर 29 मिनट मे बलात्कार

जैसी अमानवीय घटनाऍ महिला सशक्तिकरण को प्रभावित कर रही है। केवल कानून बनाना ही सरकार का कार्य नहीं है, बल्कि उसका उचित रूप से क्रिंयान्वयन करवाना भी उसकी जिम्मेदारी है। महिलाओं के प्रति संर्कीण सोच को कम कर नैतिक प्रशिक्षण कार्यक्रम समाज मे चलाए जाने की आवश्यकता है। नैतिकता के पतन होने के कारण ही निर्भया जैसे भंयकर घटनाक्रम क्रूर पुरूष मानसिकता के परिचायक है। जिसे संपूर्ण विश्व मे नकारा गया है। महिला सशक्तिकरण एंव लैंगिक न्याय के विकास हेतु सरकार, समाज, पुलिस प्रशासन, न्याय प्रशासन एंव सोशल मिडिया द्वारा अहम भूमिका निभाई जानी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. भारत का संविधान जी.पी.त्रिपाठी।
2. भारत का संविधान जे.एन.पांडे।
3. हिंदू विवाह अधिनियम डॉ अवस्थी।
4. हिंदू विधि - चंद्रनाथ झा।
5. हिंदू विधि - यु.पी.डी केसरी।
6. हिंदू विधि - पारस दिवान।
7. भारतीय समाज मे नारी - प्रज्ञा शर्मा।
8. महिला जाग्रति और कानून - प्रकाशनारायण अवस्थी।
9. हिंदू विधिशास्त्र - पी.एन.सेना।
10. महिला एंव बाल कानून - अंजली कराते।

समलैंगिक संबंध : विधिक, व्यवहारिक व अपराधिक पहलू

डॉ. संजय कुमार मिश्रा * श्रीमती लीना अग्रवाल **

मनुस्मृति को भारत में, अतिप्राचीन व्यवहार विधि ग्रंथ माना जाता है। मनुस्मृति में अंकित सिद्धांतो को, हिंदु समाज में धार्मिक मान्यता प्राप्त है। पर मनुस्मृति में कहीं समलैंगिक यौन व्यवहार का वर्णन नहीं है। अतिप्राचीन काल में समलैंगिको को, चाहे वे बुढ़े पुरूष हो या बुढ़ी स्त्रीयां या विवाहित, अविवाहित पुरूष या महिला यह अपराध करने पर, बाल मुंडाने, गधे पर बैठाने, गांव में घुमाने की जानकारी बुजुर्गो द्वारा किस्से किवदंतियों में सुनने को मिलती थी। कहा जाता है कि पुरूषो की अपेक्षा शादीशुदा स्त्रीयों के मध्य कम सजा का प्रचलन था पर पुरूषों के बींच समलैंगिक संबंधो पर कहीं कहीं भूखा रखने समाज से बहिष्कृत करने, गोबर गोमूत्र आदि खिलाने की दंत कथायें सुनी गयी हैं। समलैंगिकता और समलैंगिंक विवाह बाबत् भारत में धीरे-धीरे, एक वातावरण तैयार हो रहा है। इस प्रकार की मांग समलैंगिंक संबंधधारको के मध्य, जौर पकड़ने लगी है। भोपाल में हुये दो विवाह एवं बिहार राज्य में दो बहनों के बीच हुआ विवाह समलैंगिंको में चर्चा का विषय बने हुये हैं। इधर समलैंगिकता के प्रति अदालतो का रूख, कुछ नरमीं लिये हुए, देखा जा रहा है-

नाज फाउण्डेशन बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की सरकार – डब्ल्यू.पी.(सी)क्र.-7455(2001)के वाद में दिल्ली उच्चन्यायालय के, 2 न्यायमूर्तियों की पीठ ने, यह अभिनिर्धारित किया था कि- (यदि दो वयस्को के बींच आपसी सहमति से, एकांत में, समलैंगिक संबंध बनाया जाता है तो, वह अपराध की कोटि में नहीं आता। और उनके विरूद्ध की गयी कार्यवाही मूलअधिकारों का अतिलंघन है [1]। इस निर्णय की पूरे देश मे आलोचना हुई। हम यहां यह बता दें कि - भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा- 377में समलैंगिक संबंधों को, अपराध माना गया है। लार्ड मेकाले ने, दंडसंहिता में यह प्रावधान इसलिए किया था कि- उसे ब्रिटिश राज्य व ईसाई परंपराओं की भारत में रक्षा करना थी।

इंग्लेण्ड से परिवार छोड़कर, धन कमाने हेतु, वनवास पर भारत आयें अधिकारी, मातहतों के साथ यौन संबंध बना रहे थे। स्त्रीयों के साथ यौन संबंध बनाने पर, बच्चें होने का गंभीर खतरा था। इसलिये उस समय पुरूषो से समलैंगिंक संबंध बनाये जाना, अंग्रेज अधिकारियों ने ज्यादा सुरक्षित माना [2]। अंग्रेजी राज्य में स्वयं अंग्रेज अधिकारियों द्वारा, फैल रही समलैंगिकता पर काबू पाने के लिए तथा भारतीयों की संस्कृति के अनुरूप, उन्हें प्रभावित करने के लिए यह कानून बनाया गया। क्योंकि लार्ड मेकाले ने, यह पाया था कि -हिंदु, मुस्लिम, यहूदी, पारसी व सिःख धर्म के अनुयायी समलैंगिक यौन क्रिया को पाप मानते हैं। वहीं ईसाई धर्म में भी इन संबंधों को कभी स्वीकार नहीं किया गया। इंग्लेण्ड में इस अपराध के अपराधी को एक समय जिंदा जला दिया जाता था तथा मृत्यु दंड की सजा का प्रावधान था। मेकाले ने अपने धर्म व देश की इसी सोच को हिंदुस्तानी संस्कृति से जोड़कर, भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा - 377 में प्रकृति विरूद्ध अपराध के लिए स्पष्ट किया गया है कि- जो कोई किसी पुरूष या स्त्री या जीव जंतु के साथ, अप्राकृतिक रूप में, स्वैच्छया इंद्रिय भोग करेगा वह 10 वर्ष या आजीवन कारावास से और जुर्माने से भी दंडनीय होगा। इस धारा का मुख्य उद्देश्य गुदा मैथुन, अप्राकृतिक मैथुन व पशु मैथुन को दंडित करना है [3]। दिल्ली उच्च न्यायालय ने एकांत में वयस्कों द्वारा, सहमति से समलैंगिक यौन संबंध बनाये जाने को अपराध नहीं माना था [4]।

लेकिन तब भाजपा नेता वी.पी.सिंहल ने, सर्वोच्य न्यायालय में इस निर्णय को चुनौती दी तथा कहा - इस तरह का कृत्य, गैरकानूनी, अनैतिक और भारतीय संस्कृति के लोकाचार के विरूद्ध है। आल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड, उत्कल क्रिश्चियन काउंसिल तथा एपोस्टोलिक चर्चेस एलायंस ने भी, निर्णय के विरूद्ध अदालत का दरवाजा खटखटाया। तब बाबा रामदेव (योग गुरू) के अनुयायी, दिल्ली बाल अधिकार सरंक्षण आयोग, तमिलनाडु मुस्लिम मुन्नन कडघम, ज्योतिषि सुरेष कौशल ने भी फैसले पर विरोध जताया था [5]।

कांग्रेस समलैंगिको के मुद्दे को, एक बड़े वोट बैंक के रूप में देख रही है। दिल्ली उच्चन्यायालय के विरूद्ध सुनवायी के मध्य, केन्द्र सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय को सूचित किया था कि - देश में लगभग 25 लाख समलैंगिक आबादी है। इनमें 7 प्रतिशत लोग एच.आई.वी.संक्रमित है। स्वास्थ्य विभाग की योजना है कि अधिक खतरनाक स्थिति के चार लाख समललैंगिको को, एड्स नियंत्रण के दायरे में लाया जाय।

2 लाख तो इस दायरे में पहले से ही हैं। जबकि सामाजिक भय, तिरस्कार व अपमानित होने की आशंका से कई समलैंगिक खुलकर सामने नहीं आ पाते ऐसी स्थिति में सरकार द्वारा, घोषित 25 लाख समलैंगिक आबादी, अनुमानतः 1 करोड़ तक हो सकती है। परंतु इसके बाद भी, सर्वोच्च न्यायालय के 2न्यायमूर्तियों -जी.एस.सिंघवी व एस.जे.मुखोपाध्याय ने, दिल्ली उच्चन्यायालय के निर्णय के विरूद्ध, 11 दिसंबर 2013 को अपना फैसला सुनाया [6]। इससे पूर्व **फजलरब चौधरी विरूद्ध बिहार राज्य (1982)-3 एस.सी.सी.-9 के प्रकरण में,** सर्वोच्च न्यायालय द्वारा, यह निर्णित किया गया था कि- यद्यपि अभियुक्त द्वारा किसी बल का प्रयोग साबित नहीं हुआ और कुछ देशों में समलैंगिकता से संबंधित विधान का निर्माण भी हुआ है तथा समाज भी इसे मान्य करता दिखाई दे रहा है। फिर भी भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा- 377 के अधीन दोष सिद्धि का आदेश पारित करते समय, न्यायालय इनसे प्रभावित नहीं हो सकता। परन्तु दण्डादेश की मात्रा के निर्धारण मे, कार्य के अधःपतन का विनिश्चय करते समय अपराध की प्रकृति और दंड की मात्रा के प्रश्न के समस्त पक्षों पर ध्यान देना चाहिये[7]

समलैंगिंकता के फैसले से **कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी व उपाध्यक्ष राहुल गांधी निराश** हुए हैं। **सोनिया गांधी** ने कहा- इससे लोगो के मानवाधिकारो का हनन हो रहा है। **राहुल गांधी** के मत में - समलैंगिकता व्यक्तिगत आजादी है। हाईकोर्ट का फैसला ही इस मामलें में सही था। केन्द्रीय कानून मंत्री **कपिल सिब्बल** के अनुसार - फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने अपनें विशेषाधिकार का उपयोग किया है। अब संसद अपने दायरे में, बदलाव पर विचार करेगी। भाजपा नेता **सुषमा स्वराज व मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी** ने

* अतिथि विद्वान (विधि) शासकीय जवाहरलाल नेहरू स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शुजालपुर (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

भी,शीर्ष कोर्ट के निर्णय पर सर्वदलीय बैठक बुलाने की मांग की। जेडीयू नेता **शिवानंदतिवारी** ने कहा - हम निर्णय से संतुष्ट नहीं हैं,सुप्रीम कोर्ट को इस पर पुर्नविचार करना चाहिये। **एमनेस्टी इंटरनेशनल** के प्रमुख अनंत पद्मनाभन ने बताया कि - हमारा अगला कदम सरकार पर दवाब बढ़ाने का होगा। **अतिरिक्त सॉलिसीटर जनरल** (ए.एस.जी.) इंदिरा जयसिंह के मत में - संवैधानिक मूल्यों को विस्तारित करने का,ऐतिहासिक अवसर खो गया है।समलैंगिकता के लिए दंड के प्रावधान मध्यकालीन सोंच का प्रतीक है। **एनजीओ नाज फाउण्डेशन** की तरफ से वाद प्रस्तुत करने वाले सीनियर एडव्होकेट आनंद ग्रोवर ने कहा - हम फैसले से निराश हैं,यह निर्णय कानून के लिहाज से सही नहीं है। हम उचित विधिक सहायता लेंगे। समलैंगिको के लिये कार्य करने वाले - **पल्लव पाडनकर** ने बताया कि - हम फिर अंधकार में चले गये हैं,पर आगे भी लडेंगे। क्योंकि हमारा संघर्ष समाप्त नहीं हुआ है [8]। समलैंगिकता पर भाजपा ने शीर्ष कोर्ट को सही माना है। राष्ट्रीय अध्यक्ष राजनाथसिंह ने कहा - समलैंगिकता एक अप्राकृतिक कृत्य है। फैसले को कमजोर करने के प्रयास का हम विरोध करेंगे।

राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो ने धारा- 377 के तहत दर्ज, मामलों का रिकार्ड रखे जाने का निर्णय लिया है। इसे भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा भी स्वीकृती दे दी गयी है।

यह एक अनोखा संयोग है कि-शीर्ष अदालत के निर्णय के ठीक एक दिन बाद अर्थात् 12 दिसंबर 2013 को आस्ट्रेलिया के एक उच्चन्यायलय ने भी समलैंगिक विवाह को गैरकानूनी करार दिया है। आस्ट्रेलिया में लगभग 27 जोड़ो ने समलैंगिक विवाह कर लिये थे। परंतु इस निर्णय के बाद सभी समलैंगिक शादियां अवैध हो गयी है। 76 देशों में समलैंगिकता अपराध की श्रेणी में आता है। पर कुछ देशों ने इसे मान्यता दे रखी है जिनमें-**नीदरलेण्ड (हॉलेण्ड),बेल्जियम,स्पेन,कनाडा,दक्षिण अफ्रीका, नार्वे, स्वीडन, पुर्तगाल,आईसलेण्ड, मेक्सिको, केरेबियन, नीदरलेण्ड, डेनमार्क, न्यूजीलेंड, फ्रंास, ब्राजील, उरूग्वे [9]।**

वित्तमंत्री पी.चिदम्बरम ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा - फैसले से निराशा है क्योंकि समलैंगिकता एक असलियत हैं,जो सैकड़ो वर्षो से विद्यमान है सरकार इस मामले में सभी विकल्पों पर मंथन कर रही है। अटार्नी जनरल इस बाबत् क्यूरेटिव पीटिशन लगाने पर विचार कर रहे हैं सरकार 5 जजों की बैंच से फैसले की समीक्षा की मांग करेगी [10]। इस मामले में अध्यादेश लाने पर भी बातें चल रही है। क्योंकि फैसले के विरूद्ध लोग सड़को पर उतर आये हैं। इधर कॉसमॉस इंस्टिट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ एवं बिहेबिरियल सांइसेज और दिल्ली साइकियाट्री सेंटर के निदेशक सुनील मित्तल(मनोचिकित्सक) ने कहा -अमेरिका में समलैंगिकता के वर्गीकरण को मानसिक विकार के तौर पर मानना खत्म कर दिया गया हैं। क्योंकि अनुसंधान में समलैंगिक प्रवृत्तियों और मनोविकृतियों के बीच कोई अंतर्निहित मेल नहीं है। समलैंगिक संबंध सामान्य व्यवहार है [11]।

अधिकतर लोगो के विचार है कि - कोई सभ्य समाज समलैंगिकता जैसे अप्राकृतिक और आपत्तिजनक व्यवहार को न तो मान्यता देना चाहता है और न उन्हें प्रोत्साहन देना चाहेगा। क्योंकि भारतीय समाज के संस्कारों और सामाजिक ताने बाने की श्रेष्ठता शीर्ष अदालत के फैसले से मजबूत हुई है। विवाह संस्था का मान बढ़ा है। संतति वृद्धि और पारिवारिक महत्ता महत्वपूर्ण होना,भारतीयों के लिए गौरव की बात है। क्योंकि सारी व्यवस्था सृष्टि विकास का अंग है तथा प्रकृति सम्मत है। जबकि प्रकृत्ति विरूद्ध कृत्य पतन की ओर धकेलता है। एक तरह से यह निर्णय व्यक्ति की चेतना,आनंद व लयबद्धता का भी प्रमाण है [12]।

केन्द्रीय गृहमंत्री सुशीलकुमार शिन्दे से जब बैंगलोर में,एक कार्यक्रम के दौरान पत्रकारो ने इस मामले में प्रश्न किया तो उन्होनें कहा - मैं निजी तौर पर मानता हूं कि, यह निजी स्वतंत्रता का मुद्दा है। मैं दिल्ली उच्चन्यायालय के आदेश से ज्यादा सहमत हूं [13]। इधर 28 जनवरी 2014 को,सर्वोच्च न्यायालय के 2 न्यायमूर्तियो एच.एल.दत्तू व एस.जे.मुखोपाध्याय ने,केन्द्र सरकार,नाज फाउण्डेशन तथा फिल्म निर्माता श्याम बेनेगल द्वारा प्रस्तुत पुनर्विचार याचिका खारिज करते हुए कहा - हमने सभी कागजों को देखा परंतु फैसले पर पुनर्विचार करने का कोई कारण हमें नहीं मिला। इसलिये याचिका खारिज की जाती है [14]।

पुनर्विचार याचिका निरस्त होने के बाद,समलैंगिक समुदाय के उन हजारों लोगो के सामने,मुकदमें दर्ज होने की समस्या खड़ी हो गयी है जिन्होंने दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले के बाद,अपनी यौन पहचान सार्वजनिक कर दी थी [15]। लेकिन इस सबसे उपर,भारतीय दंड संहिता 1860 की धारा 377 पर फैसला देने वाले न्यायमूर्ति जी.एस.सिंघवी ने कहा -ऐसे मामलों को,कोर्ट नहीं बल्कि संसद ही तय कर सकती है। क्योंकि यह मामला देश के करोड़ो लोगो से जुड़ा है। अगर उन्हें लगता है कि-धारा -377 गलत है तो संविधान संशोधन कर इसमें बदलाव ला सकते हैं [16]

संदर्भ ग्रंथ सूची

01. भारतीय दंड संहिता 1860,लेखक मुरलीधर चतुर्वेदी।
02. डॉ.वेदप्रताप वैदिक के लेख - धारा- 377 पर अब संसद ही बहस करें राज एक्सप्रेस इंदौर
03. भारतीय दंड संहिता 1860,लेखक मुरलीधर चतुर्वेदी।
04. भारतीय दंड संहिता 1860,लेखक मुरलीधर चतुर्वेदी।
05. राज एक्सप्रेस- इंदौर,दि. 12.12.2013 मुखपृष्ठ।
06. पत्रिका-भोपाल दि. 13.12.2013
07. भा.द.सं.1860 लेखक मुरलीधर चतुर्वेदी
08. राजएक्सप्रेस-इंदौर दि.12.12.2013
09. पत्रिका -भोपाल दि.12.12.2013
10. राजएक्सप्रेस -इंदौर दि. 13.12.2013
11. पत्रिका - भोपाल में दिल्ली से प्रकाशित सामान्य व्यवहार एक समलैंगिक संबंध।
12. पत्रिका-भोपाल में प्रकाशित लोकाचार को मान्यता लेखक सुकुमार।
13. राजएक्सप्रेस-इंदौर दि. 12.12.2013 मुखपृष्ठ।
14. दैनिक भास्कर-उज्जैन दि. 29.01.2014 मुखपृष्ठ।
15. दैनिक जागरण -भोपाल दि. 29.01.2014 मुखपृष्ठ।
16. राजएक्सप्रेस-इंदौर दि. 12.12.2013 मुखपृष्ठ।

1.	मनुस्मृति		
2.	भारत का संविधान	-	लेखक डॉ.जयनारायण पाण्डे
3.	भारतीय दंड संहिता 1860	-	लेखक मुरलीधर चतुर्वेदी
4.	धारा- 377 पर अब संसद ही बहस करें	-	लेखक डॉ.वेदप्रताप वेदिक
5.	पत्रिका -भोपाल	-	दैनिक समाचार पत्र
6.	राजएक्सप्रेस -इंदौर	-	दैनिक समाचार पत्र
7.	लोकाचार को मान्यता	-	लेखक सुकुमार (पत्रिका -भोपाल में प्रकाशित)
8.	समलैंगिक संबंध सामान्य व्यवहार	-	(पत्रिका-भोपाल में,नई दिल्ली से प्रकाशित खबर)
9.	दैनिक भास्कर-उज्जैन	-	दैनिक समाचार पत्र
10.	दैनिक जागरण -भोपाल	-	दैनिक समाचार पत्र

A Study Of Social Adjustment Of Arts And Science College Students In Dahod

Rizvana. S. Saiyed *

Abstract - The present investigation is to find out the difference in the Social Adjustment of Science and Arts College Male and female Students in Dahod. The Sample Consisted of 60 out of which 30 were Science College Male & female Students and 30 were Arts College Male & female Students. For this purpose of investigation "Social Adjustment Inventory" by R. C Deva was used. The data obtained were analyzed through 't' test to know the mean difference between the Science College male & female and arts college male & female students. The result shows that there is no significant difference in Social Adjustment level of the Science and Arts Male and female Students in Dahod.
Key Words: Social Adjustment, Science, Arts, Male, Female, Student, college

Introduction: Day by day modern social life is becoming complex. Man always tries to adjust himself in the structure of social life. Man has to adjust himself within geographical and social conditions; he has also got to adjust himself with different aspects of life, family, school, friends and married life. Every one's life is subject to time, circumstances and conditions, for maintaining his survival man has to adjust himself to his conditions and for that he makes a conscious attempt. How will man adjust to environment depends on the psychological system by and largely depends on the nature and characteristics of his emotional make-up. It continues from birth to death. Whether a man's life will be good or bad, or his personality will be co-operative or non co-operative, whether he will-be successful and unsuccessful depends on his adjustability.Generally the social life of a person is reflected in his speech, behavior and disposition. Social adjustment reflects a person's shyness and its intensity. Self-dedication. Introversion or extroversion to what extent a person is deviated is reflected in his emotional adjustment, frustration. The present study is done with a view to finding out the social adjustment of arts as well as science college students in the city of Dahod.

Objective: The purpose of the present investigation was social adjustment of arts & science college students and how is it being investigated through this study.

Hypothesis: There is no significant difference in the social adjustment of Arts & Science college students of Dahod

Method:

(A) Sample: The sample of the present study consisted of 60 students, arts and Science College both living in Dahod city.

(B) Tool: In the present study measure social adjustment." social adjustment Inventory" by R.C.DEVA was used.

Statistical Technique: 't' test was applied to know the significant differences between adjustment levels of arts & science college students in Dahod.

Results And Discussion:

Table-**Arts And Science College Students Social Adjustment**

GROUP	N	Mean	S.D.	't' Value	Level of sign.
Arts Students	30	103.03	31.20	1.13	NS
Science Students	30	112.36	32.86		

Table shows the social adjustment of arts and science college students. For arts students mean is 103.03 for the science students the mean is 112.36 and S.D. is 31.20 and 32.86 for both group't' level value is 1.13 and its level of significant is no significant.

Conclusion: There was no significant difference between arts & science students regarding social adjustment.

References:

- Baker, R. W, & Siryk, B. (1984).Measuring adjustment to college. Journal of Counseling Psychology, 3 1,179-189.
- Baker, R. W., McNeil, 0.V., & Siryk, B. (1985). Expectations and reality in freshman adjustment to college. Journal of Counseling Psychology, 32 (I), 94-104.
- Biel, C., Resien, C. A., & Zea, M. C. (1999). A longitudinal study of the effects of academic and social adjustment and commitment on retention. NASPA Joumal, 37(1), 376-385
- CAVAGHAN Peggy, Jean Gibbons Todd. "Social Adjustment of Women to Retierement" B.R.Publishing Co. Delhi
- Chapman, D. W., & Pascarella, E. T. (1983). Predictors of academic and social adjustment of college students. Research in Higher Education, 19, 295-322
- Christie. N. G. & Dinham. S. M. (1991). Institutional and external influences on social adjustment in the freshmen ye&. The Journal of Higher Education, 62(A) pp.412-436.
- Dastur R.H. "Social Adjustment of the Epileptic Adolescent" TISS. Bombay 1975
- Flowers, L. A. (2006). Effects of attending a 2-year institution on African American males' academic and social integration in the first-year of college. Teachers College Record, 108(2), 267-286
- Fred Mc Kinney, "Psychology of personal adjustment". (3rded.) P-81-83
- Lehnar and Kube, "Such a realistic appraisal of self be the beginning of exploration in personal adjustment"
- Lehner and Kube, "The dynamics of personal adjustment"
- Walker H.M "Social Adjustment of the feeble-minded" Western Reserve University, Ohio 1930

* Research Scholar, Psychology, Pacific University, Udaipur (Raj.) INDIA

A Study Of Training In Heritage And Non-heritage Hotels Of Rajsthan

D.S. Solanki *

Present Hoteling Scenario : Hospitality is about serving the guests and to provide them with 'feel good-effect'. 'Athithi devo bhava' (Guest is God) has been become one of the central tenets of Indian culture since times immemorial. Total hospitality sector is one of the fastest growing sectors in India and is expected to grow at the rate of 8% between 2007 and 2016. Now-a-days the travel and tourism industry is also included in hospitality sector.

The boom in travel and tourism has led to the further development of hospitality industry. Hotels are the epicenter of economic development now-a-days. The existence of well-organized and efficient hotels system is a prerequisite for economic growth.

Hotels play an important role in the functioning of organized money marketers in any country. They act as a pace of comfort and providing space for mobilizing the funds and channelizing them for various purposes. The hotels are playing a significant role in the economic growth of the country. India is a destination for hotel chains looking for growth.

'Hotel industry in Indian is eroding its competitiveness as a cost effective destination. Indian Hotel Industry is adding about 60000 quality rooms, currently in different stages of planning and development and should be ready by 2014. The man power requirements of the hotel industry will increase from 15 million in 2010 to 20 million in 2014. There is a dire need to train employees of this industry in a manner that they can boost this sector as well as contribute in economic development of country.

Training : Once an employee is selected, placed and introduced he or she must be provided with training in accordance with his job requirements. (Chhabra) Training is the act of increasing the knowledge and skill of an employee for doing a particular job. In other words, training moulds the employee's knowledge, skill, attitude, behavior and attitude towards the job and the requirements of the hotel. It refers to the teaching activities carried on for the primary purpose of helping members of a hotel to acquire and apply the knowledge which fringes the difference between job requirements and employees capabilities.

Objectives :

- To analyze and compare the training practices in heritage and non-heritage hotels.
- To find out the loopholes in the training process of both types of hotels.
- To suggest the improvement in the training process for both types of hotels.

Research Methodology : The universe of the study included heritage and non-heritage hotels in the Udaipur city. Simple random sampling will be used for the selection of sample. Sample size selected was 50 employees from heritage and non-heritage hotels.

Two sample commercial hotels each from heritage and non-heritage hotels were selected. Primary data was collected from questionnaire and interviews from employees. Secondary data related to the topic was collected from periodicals govt. reports, annual reports, and post studies and from various web sites.

Interpretation of Data

Table 1

Training in between service period

Response category	Respondent Hotel Employees				Total
	Heritage	%	Non heritage	%	
Yes	50	100	50	100	100
No	0	0	0	0	0
Total	50	100	50	100	100

It was found that all the respondents in HERITAGE and NON-HERITAGE were given training in between service period.

Table 2

Period of training

Response category	Respondent Hotel Employees				Total
	Heritage	%	Non heritage	%	
Few days	25	50	30	60	55
Few weeks	12	24	8	16	20
6 months	8	16	5	10	13
1-2 years	5	10	7	14	12
Total	50	100	50	100	100

10% were given training for a period of 6 months and 14% were given for period between 1-2 years. On analysis it was

* Research Scholar, Pacific University, PAHER, Udaipur, (Raj.) INDIA

found that in both hotels maximum number of respondents was given training for a period of few days only.

It was found that HERITAGE is giving training for long period to few employees in comparison to NON-HERITAGE. None of the respondents were given training for a period of more than 2 years.

Table 3

Help provided to employees by training

Response category	Respondent Hotel Employees				Total
	Heritage	%	Non heritage	%	
Better performance	31	62	25	50	56
Job satisfaction	7	14	12	24	19
Promotion	6	12	8	16	14
Not helpful	6	12	5	10	11
Total	50	100	50	100	100

On analysis it was found that in both the hotels maximum number of respondents was of the opinion that training helped them in performing better on job.

In comparison to NON-HERITAGE, very little number of respondents in HERITAGE said that training helped them in job satisfaction.

No major difference was given in respondent's opinion regarding how training helped in promotion. In both Hotels some respondents work also of opinion that training is not helpful to them in any way.

Table 4

No. of training programme attended

Number of Training Programmes attended	Respondent Hotel Employees				Total
	Heritage	%	Non heritage	%	
1-Feb	25	50	22	44	47
3-Apr	13	26	16	32	29
5-Jun	7	14	6	12	13
More	5	10	6	12	11
Total	50	100	50	100	100

On analysis, it is found that in both hotels approximately 50% respondents attended 1-2 training programme only.

No major difference was seen regarding respondents attending 3-4, 5-6 and more than 6 training programme in both the hotels.

Table 5 - Areas of Training

Response category	Respondent Hotel Employees				Total
	Heritage	%	Non heritage	%	
General mgmt. for Better performance	8	16	6	12	14
Marketing	7	14	9	16	16
Personnel	6	12	8	16	14
Finance	8	16	12	24	20
Computer	21	42	15	30	36
Total	50	100	50	100	100

On analysis it is observed that in both hotel maximum numbers of respondents are interested in acquiring training in field of computer.

Table 6 - Satisfaction with training programme

Response category	Respondent Hotel Employees				Total
	Heritage	%	Non heritage	%	
To a great extent	7	14	12	24	19
To some extent	29	58	25	50	54
To little extent	9	18	7	14	16
Not at all	5	10	6	12	11
Total	50	100	50	100	100

It is observed that in both hotels about 50% respondents were satisfied to some extent with the training programme. A major point to be noted is that very few respondents are satisfied to a great extent in both hotels. Few respondents were there in both hotels which were not at all satisfied with the training programme.

Table 7 - Effectiveness of training programme

Response category	Respondent Hotel Employees				Total
	Heritage	%	Non heritage	%	
Excellent	5	10	6	12	11
Good	24	48	20	40	44
Average	16	32	17	34	33
Below ave.	5	10	7	14	12
Total	50	100	50	100	100

On analysis it is found that in both hotels most of the respondents rated the training programme as good.

Research Finding And Suggestion:

The finding related to training given in heritage and non-heritage are as follows: In both heritage and non- heritage all the respondents were given training in between service period. Many theoretical training in various hoteling institutions was given.

Other method of training was also used. The period of training was mostly few days. Very less number of respondents received long term training.

Almost all the respondents in both the hotels were of new that training helped them in better performance or job satisfaction or promotion. Most of respondents in heritage or Non-heritage had opinion that training opportunities provided to them were sufficient.

But in addition to this employee were also interested in getting training in the field of company. The majority of respondents in both the hotels were satisfied to some extent only with training programme. Also in both the hotels majority of respondents rated effectiveness of training programme as good. Very few respondents rated it as excellent.

In opinion of west training was of organizing or fellow organization level. It was also found that although training was given to all categories of employees, no monetary or non-monetary benefits were directly linked with training course. Many of the respondents self training sessions are a good break from the daily routine giving them an opportunity to meet, discuss and exchanging views with their counterparts at other places. On the whole training was found useful and necessary by the employees.

Limitations:

Heritage and non-heritage both type of hotels provided training to all of its employees including officers as well as clerical staff for their professional development. Most of the respondents favored theoretical training. It was observed by researchers by the researches that both hotels are actually not working out the training needs in case of every employee. Every staff member is sent to all training courses. Also training programme was not periodically evaluated and improved. No serious thing in this regard is shown by the top management.

Suggestions :

1. Review training plans at all levels and workout short-term strategies. Also hotel should build up a data base relating to training.
2. Training institutions and trainers should serve as an agent for change. They should develop a spirit of initiative, innovative and service orientation in place of the present attitude of indifference and lethargy.
3. Training should be given to bring about qualitative changes in the attitude and behavior of hotel employees.
4. Training courses in hotels should cover new areas like behavioural training, religious and cultural tourism training etc.
5. Training should be goal oriented and should be linked with other personnel functions. Also live management should feel more involved in the training function.
6. More effective use of training facilities and equipment is necessary. Also training programme and practices should be periodically evaluated. In addition to this necessary improvements and changes should be made in course contents, training methods etc. to meet the ever growing and challenging demands of hotels.
7. The need for building up specialization in hoteling needs better appreciation. Training efforts should synthesize individual aptitude with institutional needs and post-training placements.

References :

1) Aswathappa k, "*Human Resource & Personnel Management*," Second Edition (2001) Tata McGraw-Hill Publishing Company Limited, New Delhi, pp.189-221.

2) Chhabra T.N., "*Human Resource Management*," Fourth Edition (2004), Dhanpat Rai & Co. New Delhi, pp.223-249.

****

A group resonance intervention with a volleyball team

Dr Hitesh Chandra Rawal*

Abstract - Resonance interventions are aimed at helping people develop an ability to regulate how they feel by identifying how they want to feel in different aspects of their life, how to prepare to feel this way, the obstacles that get in the way of that desired feel, and how to reconnect with it through individual or group sessions led by a consultant (Newburg, Kimiciek, Durand-Bush, & Doell, 2002; Arcand, Durand-Bush, & Miall, 2007). The purpose of this study was to examine if and how a coach could develop and apply the process of resonance with his team through a resonance intervention facilitated by a researcher/consultant and continue nurturing this process once the intervention was completed. The participants included a volleyball team comprising a male coach and 16 female athletes. The 26-week study comprised three phases: a 6-week pre-intervention phase involving interviews and observations; a 14-week intervention phase involving four team sessions, individual consultations with the coach, participant journaling, and observations; and a 6-week post-intervention phase involving interviews. The results are presented as a narrative to tell the story of how the researcher/consultant worked with the team as a group and also individually with the coach to help them learn and apply their personal resonance process and enhance their performance.

Introduction

Resonance as a Felt Experiential Process

Resonance is a holistic process in which individuals engage to become aware of and regulate how they feel on a daily basis. They identify how it is they want to feel in different aspects of their life, how they can prepare to feel this way, what obstacles get in the way, and how they can revisit the way they want to feel in response to obstacles. In research conducted with over 300 expert performers, Newburg et al. (2002) concluded that they all had in common the ability to experience resonance. According to Newburg (2006), individuals 'resonate' when they feel a seamless fit with their environment as a result of regulating desired felt experiences. It is possible to experience resonance without knowing about it, although it appears to be more easily achievable when one is aware of and consciously attempts to engage in such a process (Doell, Durand-Bush, & Newburg, 2006). Resonance interventions have recently been explored with teams.

Resonance as a Feel-Based Consulting Approach: In a way, the resonance approach can be likened to Carl Rogers' (1965) client-centered, humanistic approach, which facilitates affective-cognitive interaction through empathic listening by the consultant. However, more than empathic listening is involved in consultant led resonance interventions. Evocative empathy (Martin, 2000) is an important skill to master and is defined as "communicated understanding of the other person's intended message, especially the experiential part" (Martin, 2000, p. 4). Therefore, it is important to hear by actively listening and observing non-verbal language to determine what clients mean or are unable to say and communicate this to them. Evocative empathic consultants see clients as experts capable of solving their issues, challenges, or problems through increased independence and personal responsibility (Martin, 2000). This means going beyond feelings and emotions and examining other relevant dimensions such as physical, cognitive, social, and spiritual ones. The Resonance Performance Model (RPM) is an educational tool used by consultants to guide the process in which people become aware of and manage how they feel (Newburg et al., 2002). The model, which is cyclical and dynamic in nature, comprises the four following components, of which the titles have been adapted over the years: (a) The Way You Want to Feel, (b) Preparation, (c) Obstacles, and (d) Revisit The Way You Want to Feel (see Newburg et al., 2002 for a complete description of the components). Although consultants use this framework to guide their work, it is done in the most flexible way at the participants' own pace. This is the reason why resonance interventions have been empirically examined using a constructivist and multiple case study approach (Guba & Lincoln, 1994; Stake, 1994).Moreover, ownership (i.e., responsibility and accountability) and reflection are key elements for any intervention to bear fruit (Arcand et al., 2007; Doell et al., 2006; Wolfe, 2007).

Purpose of the Study: The purpose of this study was to examine if and how a coach could develop and apply the process of resonance with his team through a resonance intervention facilitated by a researcher / consultant and continue nurturing this process of resonance once the intervention was completed. Specifically, the study sought

* Sr.Lecturer, B.N.College of Physical education, Udaipur (Raj) INDIA

to answer the following research questions: (1) By participating in a resonance intervention facilitated by a consultant, can a coach help his athletes experience resonance? (2) After completing a resonance intervention, can a coach continue to help his team experience resonance? (3) Does a resonance intervention enable a coach to enhance his team's performance, however he chooses to define it? and (4) How is a consultant most effective when facilitating a resonance intervention with a coach and his athletes?

Sample: The varsity women's volleyball team included 16 athletes between the ages of 18-24. There was one rookie on the team, three graduating players, and the rest had been on the team between 1-3 years. The coach was a 40-year-old male with 16 years of experience coaching the varsity team. A purposive sampling method was used to recruit the varsity level athletes and coach (Fraenkel & Wallen, 1996). It was, in fact, the coach in the current study who approached me, the researcher / consultant, to participate in the study after hearing me speak about my research at a seminar. All of the athletes also volunteered and consented to partake in this study.

Data Collection: The study involved three phases spanning 26 weeks that started at the beginning of the school year and finished during the playoffs. The pre-intervention phase lasted 6 weeks, the intervention phase was carried out over 14 weeks, and the post-intervention phase lasted 6 weeks. The tape-recorded interviews and intervention sessions were transcribed and written up as narratives through a narrative analysis (Polkinghorne, 1995). Field notes and journal entries were reviewed to confirm and/or complement the data collected from the interviews and intervention sessions. In this way, the data was triangulated to ensure trustworthiness (Guba & Lincoln, 1994; Polkinghorne, 1995). The narratives were compiled to present the story that unfolded across the three phases of the study, and in particular, the team's evolving process of resonance (Polkinghorne, 1995).

Results

Pre-Intervention Phase : When I first joined the team to conduct this study, the coach told me that he wanted to develop the team's ability to take responsibility on the court, and to make decisions by themselves without needing the coach's input. He thought the team was open and ready for this type of intervention because it would help them take control over how they felt. He reported that they were not able to remain consistent under pressure.

The Athletes. The pre-intervention interview with the athletes helped to determine how they interpreted the relationship they had with their coach and whether or not he explored how they felt and wanted to feel. The athletes believed that while the coach did not always know how they wanted to feel, he knew in general when they were collectively in a bad or good mood. When asked about performance, the athletes defined that it was "the process of getting to the win." They also defined "feel" by initially saying that it could be physical and emotional. A discussion ensued that demonstrated that they were aware of different dimensions of their felt experiences, for example, they discussed wanting to feel confident and focused and described what that meant to them. When asked "Do you think that how you feel affects how you perform?" they responded, "Definitely." Most of them knew how they wanted to feel independently, although they had never explicitly expressed this, but they did not know how they wanted to feel as a group because it had never been discussed before.

The Coach. The coach openly shared information about himself and his team. He said that while he instinctively knew how his athletes felt, he was not sure how they ideally wanted to feel. He wanted them to have a positive attitude with a strong belief in themselves and he wanted them to play passionately to help each other perform in competition. When asked about his definition of performance, he said that it was anything that the athletes did to develop themselves in volleyball and life in general. He wanted the team to improve their performance by becoming responsible for their actions and feelings. The coach said that it was important to connect with different facets of "feel," although he was not sure how to do this. He emphasized the word "atmosphere" to describe the collective team feel they strived to attain.

The Consultant's Observations. In my observations of practices, I noticed that the coach and athletes often used the word feel. The coach explained that the athletes needed to be able to "feel" where each person was on the court based on the energy they were giving off. I wondered if the athletes did this or even knew how to do this. Was the individual feel of each teammate different and did it affect the way they played and competed as a team? If the team had a particular feel as a whole, then would individual players benefit from becoming aware of how that felt as well? I asked the coach what he thought of my questions. He confirmed that the team had a particular feel and stated that every athlete needed to know what they needed from one another to achieve this. The coach liked the idea of a resonance intervention because he felt that he already naturally used this process but wanted someone to work with him and his team to schedule in time to consciously and more systematically develop it.

Discussion: While many resonance interventions have been conducted with individual athletes and showed improvements in their lives (Arcand et al., 2007; Doell et al., 2006; Durand-Bush et al., 2005), only two previous studies were conducted with groups (Lussier-Ley, 2006; Wolfe, 2006). The current study was the first to explore if and how a coach could develop and apply the process of resonance with his team through a resonance intervention facilitated by a researcher / consultant and continue nurturing this process of resonance once the intervention was completed.

Can a Coach Develop and Apply the Resonance Process? : This study showed that the coach could, with the help of the researcher / consultant, develop his team's resonance process and lead his team to apply it, even after the intervention ended. The RPM became a central tool, allowing them to identify and pay attention to how they felt and wanted to feel, how they could prepare to feel that way, what obstacles got in the way, and how they could respond by reconnecting to their desired feel (Newburg et al., 2002).

In the beginning, the coach wanted the athletes to take responsibility and control of their felt experiences on and off the court and did not think it was his responsibility to motivate them to do this. The literature suggests that a coach's personality largely influences the direction of an athletic program, thus the coach should be aware of himself and the effect he has on athletes (Lanning, 1979). Throughout the intervention, the coach became increasingly cognizant of how much his own thoughts, actions, and feelings impacted the team, and realized the important responsibility he did have in helping the athletes take charge of their performance. This occurred as the coach listened to the athletes communicate what they wanted of each other and of him, and through the coach's increased reflection through journaling and reflective conversations with the researcher / consultant regarding his coaching practice. The coach's interest, belief and commitment to the mental and emotional components of performance were likely key elements in his success to develop and apply the resonance process with his athletes. These authors stated that when the coach is ready to work with athletes on topics discussed in consulting sessions, the athletes are more likely to apply the knowledge. Although results show that the coach was able to implement the resonance process with his team, the extent and depth to which he did this, particularly after the intervention was completed remains unclear; more observations and interviews would have been required to determine this. However, according to both the coach and athletes, they did continue to explore in the post-intervention phase how they felt and wanted to feel as well as strategies they could use to feel this way, particularly in the face of obstacles.

How Effective Was The Consultant in Facilitating the Intervention?: The coach found the researcher / consultant to be effective in working with him and his team. In addition to participating in the group intervention sessions, the coach engaged in several individual interviews and informal conversations with the researcher / consultant in which the focus was more on him - on what he was experiencing, learning, and especially feeling. Yalom (1995) as well as Shechtman and Ben-David (1999) highlighted the value of individual, direct interventions, whereby relationships are built on direct support, consultant feedback and interpretation, and consultant self-disclosure. In this intervention, the coach was open to talking about himself and his team, both positively and constructively. In this way, the researcher / consultant could get directly involved, have a positive regard for the coach, be empathic, genuine, and care for the team's success. The researcher / consultant gave the coach the narratives of the interviews and group sessions in which he participated, and shared interpretations of events and the team's progress when the coach wanted feedback. In this way, she was involved in constructing the experiences of the coach and overall team (Sparkes, 2002). The relationship and trust between the coach and researcher / consultant resulted from ongoing quality interactions (Martin, 2000). According to Martin, it is crucial to have the right fit between consultant and client / participant because the quality of the relationship is the best predictor of success in any consultation.

How did the Team Benefit from the Intervention? : The coach reported that he initially bought into the idea of participating in a resonance intervention because he felt that he naturally used this approach when he coached. Newburg and colleagues (2002) also found that several expert performers had this common experience of resonance. Perhaps it is one of the reasons why the process of resonance developed throughout the intervention did not seem unnatural to him. It was apparent from ongoing observations that the athletes also mutually understood the importance of such an intervention. They believed they could create and connect to a team feel and they also perceived performance as a process, not just an outcome, so the use of the Resonance Performance Model as a tool in the intervention resonated with them.

Conclusion : Within a resonance intervention, all participants play an important role in determining how it unfolds. In this study, a researcher / consultant worked with a team as a group and also individually with a coach to help them develop

and apply their resonance process. In many regards, the intervention resembled those carried out in previous studies in which perceptions of performance and well-being were reportedly enhanced. However, what was different in this study was the main focus on the coach and his ability to learn and facilitate the resonance process with his team.

The athletes were important because they trusted the coach, the researcher/ consultant and the process, and also worked to help each other apply their team RPM and be accountable for it. The coach was important because he trusted not only the researcher / consultant to facilitate the resonance process, but also the athletes to become self-directed and responsible for their felt experiences and performance, all the while recognizing that he had to remain engaged due to his large influence on the team. It cannot be discounted that the coach was the team leader and his interest and participation in the intervention helped the team to apply the resonance process in practice and in games.

The team described performance as "the process of getting to the win" and the intervention served as a medium for the coach and athletes to engage in a personalized process leading them to their ultimate goal of winning the Ontario University Association (OUA) Championships and also a Coach of the Year award.

References

- Altheide, D. L., & Johnson, J. M. (1994). Criteria for assessing interpretive validity in qualitative research. In N. Denzin & Y. Lincoln (Eds.), Handbook of qualitative research (pp. 485-499). Thousand Oaks, CA: Sage.
- Doell, K., Durand-Bush, N., & Newburg, D. (2006, June). The process of performance of four track athletes: A resonance-based intervention. The Online Journal of Athletic Insight. 8 (2). Retrieved June 27, 2013, from http://www.athleticinsight.com/Vol8Iss2/Process.htm
- Fraenkel, J. R., & Wallen, N. E. (1996). How to design and evaluate research in education (3rd ed.). Toronto, ON: McGraw-Hill.
- Kibby, L. (2007). Coaching skills for responding to affect. International Journal of Evidence Based Coaching and Mentoring, 5(1), 1-18.
- Kivlighan, D. M., & Kivlighan, M. C. (2004). Counselor intentions in individual and group treatment. Journal of Counseling Psychology, 51(3), 347-353.
- Lanning, W. (1979). Coach and athlete personality interaction: A critical variable in athletic success. Journal of Sport Psychology, 4, 262-267.
- Martin, D. (2000). Counseling and therapy skills (2nd ed.). Long Grove, Illinois: Waveland Press, Inc.
- Newburg, D., Kimiecik, J., Durand-Bush, N., & Doell, K. (2002). The role of resonance in performance excellence and life engagement. Journal of Applied Sport Psychology, 14, 249-267.
- Salminen, S., & Liukkonen, J. (1996). Coach-athlete relationship and coaching behavior in training sessions. International Journal of Sport Psychology, 27, 59-67.
- Shechtman, Z., & Ben-David, M. (1999). Individual and group psychotherapy of childhood aggression: A comparison of outcomes and processes. Group Dynamics: Theory, Research, and Practice, 3, 263-274.
- Wolfe, B. J. (2006). Team feel: An exploration of a group resonance-based intervention and relationships. Unpublished Master's thesis, University of Ottawa, Ottawa, Canada.

****

Science and society : people's awareness towards pollution problem

Dr. Seema Sharma *

Globalization has turned this world into a small village. We are now joined with each other through the means of communication. Television, Mobile, Computers have crossed the borders and have created a new world, where there is no barrier, no hurdles, no discriminations in making friends.

Globalization made a new world full of happiness but behind this scene a new problem emerged, the pollution problem, which gave rise to Global Warming.

It is because of the ignorance , we are now surrounded by air pollution, water pollution, soil pollution and noise pollution. If we had not ignored the blessings of the nature in the form of trees, the problem of pollution would not have been such dreadful. As it is said by the great Romantic poet Wordsworth.

"One impulse from a vernal wood
May teach you more of a man
Of moral evil and of good
Than all the sages can I"
Why this happened in India ?
Once We the Indians were the ideals before the world.

उपव्हरे गिरीणां संड्मे च नदीनाम्
धिया विप्रो अजायत् II *VV26.15 1*

"In the solitude of mountains and the confluences of streams, the wise sage developed his spiritual force". The world 'Dhi' in Vedic terminology is a multidimensional word which is used to express intellact, action, prayer and spiritual force. The ancient seers developed all these faculties in the serene atmosphere of the nature and felt obliged towards it.

India has an ancient glorious past which reveals that are we were one with the "Nature". Nature was a part of our life. 'Vedas' are the oldest treasure on this land.

Maharishi Dayanand Saraswati called 'Vedas' as the book of all the intellect on this land. 'Environment' means the atmosphere around us. It should be as pure as the 'Gangajal'. The 'air', the 'water', the 'soil', the 'fire', the 'sky' (भूमि, वायु, जल, अग्नि और आकाश) these five components make our body. These are the 'Panch Mahabhoota'.

"The earth", the atmosphere and the sky (पृथ्वी-अंतरिक्ष-द्यौ) having Agni, Indra and Aditya as the presiding duties. Man is a part of this system.

यो देवोषु अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविशेष
य औषधिशु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नम: ।

श्वेताश्वतरोपनिषद् 2.17[2]

It means that is the god who is the fire, who is in water, who pervades the whole universe, who is in medicines, who is in the vegetation, we salute that god.

Just like the Rigvedic seers, upnisadic seers were also able to see the world firmly rooted in the supreme reality. That is how they could perceive the relationship between god and nature. They could see that whatever exists in this world is the manifestation of one god.

ईशावास्यमिदं सर्वम् यत्किंच जगत्यां जगत् । [3]

It means that whatever exists in the world emanates from god. And this relationship is the thing that does wonder in preserving the environment and protecting nature.

Therefore our ancestors used to keep in mind that we should live in 'Nature' as a part of 'Nature'.

'Aryan civilization' established itself on the banks of rivers. The 'Ganga', The 'yamuna', The Bramhaputra were the mothers to nourish Indian culture and civilization both. We never used to mix impurities in the rivers. It was considered bad to wash clothes near the river, to gargle on the banks of the river, or to throw only garbage in the rivers. With the increase in population and the increase in "materialism" rivers lost their values as "duties". We used to worship our rivers but we used to throw impurities in the rivers. We worshipped our trees like - The Bunyan, The Mango, The peepal, The Ashok, The Neem, The Amla but on the contrary we cut them for our selfish motives without realizing that they were not only needed for our religious purposes but trees were important in scientific ways. We destroyed jungles thinking that jungles are vast, we killed wild animals for our fun, thinking that wild and life is infinite, it would not make any difference if one wild animal is killed, in this way, we disturbed our food chain, our 'Nature'. We felt it when we had to face lack of water, lack of pure air, lack of pure vegetables, lack of pure soil. When man faced all such difficulties, then he realized that the path of progress was easy but not long lasting. Man started eating the "Earth" his mother.

*** Prof. (English) Govt. Sanskrit College, Ujjain (M.P.) INDIA**

The Vedic rishis knew the importance of natural elements. For then *'वसुधैव कुटुम्बकम्'* means the Earth is our Home, For the rishis the yajna *(यज्ञ)* is not only necessary for the purity but also to surrender himself for the general well being of others.

Nowadays the young generation is becoming aware of the problems created by human selfishness to attain success by shortcuts. Government is taking many measures to solve pollution problem. The plantation programmes, are held to create awareness among the public.

Reasons for environmental problems :

1. Population Explosion :

With better medical facilities and better education, population increased and created such problems as land scarcity, scarcity of water and other resources resulted in an unseen struggle for existence, resulting in exploitation of resources. The cultivation land reduced resulting in the reduction of green land from the Earth.

"As a result of population explosion the overuse of fertilizers and insecticides and pesticides disturbed the bio-system of nitrogen fixation, Advancement in the field of science and technology created the problems of water and air pollution.[4]

2. Global Warming :

Global Warming as a result of Greenhouse gases : Because of industrialization, the emission of greenhouse gases has strongly increased. Specially because of the use of petrol, diesel in huge quantities, deforestation, This has resulted in the increase of green house gases which resulted in the global warming. As we are releasing carbon dioxide more and more, this is also the reason for global warming.

3. Urbanization :

Urbanization is also an outcome of population explosion. In India three-fourth of the population lives in rural areas but with the industrialization more and more people move towards urban areas resulting in urban slums.

The rapid expansion of urban areas resulted in extra demand for water, electricity, means for communication. Thus pollution reached every aspect of society, in water, air, soil and in the form of noise pollution.

Need for Awareness :

Environmental problems such as pollution, health problems need to be eradicated by awareness.

1. Birth control programmes should be made popular among the public.
2. Education : With the proper education for every citizen, awareness will increase.
3. Limited use of petrol : Awareness for limited use of fuels will decrease the amount of CO_2 in the atmosphere.
4. Make use of Solar energy : Solar energy will save the electricity and save the atmosphere from pollution.

These steps would make our Earth the safe home to live in. We cannot go back to the time of Vedas, yet we can change a little in our daily habits to make Earth as pure as it was described in the Vedas.

Too much of materialism dragged us away from the Nature. People are generally engaged on mobiles busy in conservation; they are making new friends, allover the world through the Internet. We see that a new voice is emerging from the Net which is to aware of the decreasing numbers of the trees around the Earth. This is a good signal that the whole community around is becoming Eco friendly in its approach. People are talking about this problem on the Blogs. People are sharing their views to solve it. We are somewhat late in becoming serious yet it is good signal that Globalization through electronic media is doing something fruitful.

Let us look at the following example :

Tree Organizations

American Forests

www.americanforests.org 2

American Forests is the nation's oldest non profit citizen conservation organization, founded in 1875. Their efforts helped create the National Park and National Forest systems in the U.S. Through the Global Relief program, American Forests plants millions of trees each year and advocates the benefits of both rural and urban trees, good science, and sound policy. Learn about their plans for Global Relief 2000 or take a virtual tour of famous and historic trees and forests. An order form on this site allows individuals to "plant a tree online" and help preserve threatened forest ecosystems.

Forest Ethics

www.forestethics.org

Forest Ethics protects endangered forests by transforming the paper and wood industries in North America and by supporting forest communities in the development of conservation based economies.

Forest Stewardship Council

www.fscoax.org

Forest Stewardship Council is a Mexico-based international non-profit organization founded in 1993 to support environmentally appropriate, socially beneficial, and economically viable management of the world's forests.

Forest Organization

www.Forests.org

Forests.org, Inc. works to end deforestation, preserve old growth forests, conserve and sustainably manage other forests, maintain climatic systems and commence the age

of ecological restoration. This Wisconsin based web site offers a vast array of links on forest, biodiversity and conservation topics.

Gatherings : Seeking Ecopsychology

www.ecopsychology.org/journal/gatherings 7/toc.html

The Winter issue of Gatherings. The strand running through this issue is trees. Some of us have been involved in saving forest and woodland. John Scull was asked to be an expert witness on why anyone would go to jail to save trees, and several of us contributed our thoughts.

Greenpeace International : Ancient Forests Campaign

Archive.greenpeace.org/forests

Green peace is an independent campaigning organization which uses non-violent, creative confrontation to focus public attention on environmental issues. The Ancient Forests Campaign focuses especially on world's remaining ancient forests in the Amazon, Africa, Russia, the Pacific and North and South America.

International Network of Forests and Communities

www.forestsandcommunities.org

A Canadian-based organization which promotes an ecosystem and community based approach to forestry. Offers a multitude of links.

International Society of Arboriculture

www.isa-arbor.com

The above example shows how Globalization is turning people's attention to save the Earth.

Thus we can say that when science and society unite we can solve any big problem on the Earth.

Environmental Education is necessary for the youth so that they might use the scientific bent of mind to protect the Mother Nature.

What is our duty towards society ?_____

The answer is

भूमि: माता पुत्रोहं पृथिव्या :

Reference

1. Narain's William Wordsworth Selected Poems KN.Khandelwal Lakshmi Narain Agrawal AGRA (Page No.37)
2. Hamara parayavaran Vigyan aur Paryavaran New Delhi.
3. Rachna Periodical M.P. Granth Academy Bhopal (M.P.)
4. Paryavaran Chetna M.P. Granth Academy Bhopal (M.P.)
5. Wikipedia
6. Enviroment in Vedic, J.P. Publishing House Delhi 2004, Chapter Twenty one, obligation to the Environment with special reference to Vedic and Upanishads. P.no.315
7. Ibid P.316
8. Ibid. P.317
9. Our Environment and future challenges : A perspective (Prof : Manisha Singh and Dr. S.P. Singh *राष्ट्रीय संगोष्ठी – समाधान* Management -19-20, Pub. 2008, P.no.17

****

Assurance In Higher Quality Education

Dr. Vimmi Behal * Dr. O.P. Sharma **

In a society full of diversity, ideologies and opinions, higher education means different things to different people. However as we intend to discuss and learn more about quality in higher education, we should ask ourselves what is higher to higher education ? In term of the level,higher education, includes college and university teaching learning towards which students progress to attain higher educational qualification . It develops the students ability to question and seek truth and makes him/her competent to critique on conternporary issues. According to Ronald Barnett (1992) there are four predominant concepts of higher education.

1. Higher education as the production of qualified human sources.
2. Higher education as training for a research career.
3. Higher education as the efficient management of teaching provision.
4. Higher education as a matter of extending life chances.

Interestingly, all these four concepts of higher education are not exclusive rather they are integrated and give an overall picture of what higher is in higher education. If we look at the activities of colleges and universities, we will realize that teaching research and extension form the three main functions of higher education.

Role of Higher education in the society - Higher education is generally understood to cover teaching, research and extension. If we critically analyze the different concept of higher education, we can lit the various roles higher education plays in the society. Higher education is the source or feeder system in all walks of life and therefore supplies the much needed human sources in management, planning, design, teaching and research. Higher education also provides opportunities of life long learning, allowing people to upgrade there knowledge and skill. The report of the UNESCO international commission on education in the 21st century titled " Learning The Treasure within" emphasized four pillars of education :- learning to know, learning to do, learning to live together and learning to be. While higher education intends to inculcate all these four in individual and the society.

Core Values Of National

Assessment And Accreditation Councils (Naac) The Indian Higher Education System Is In A Constant State Of Change And Flux Due To The Increasing Needs Of Expanding Access To Higher, Impact Of Technology On The Delivery Of Education, Increasing Private Participation And The Impact Of Globalization. The Core Valves Of Naac For Higher Education System Is India Envisage; National Development Fostering Global Competitiveness, Including Ethical Values, Promote Use Of Technology And Create On Atmosphere And Quest For Excellence.

Dimensions Of Quality In Higher Education- Quality, As We Know So Far, Was Originally Developed In The Manufacturing Industry. In The Area Of Higher Education, The Adoption Of Quality Control Has Been Superficial And Diluted By The Exercise Of Academic Freedom. In This Section, We Will Quality From The Perspective Of Three Groups. The Most Commonly Grouped Dimensions Of Quality Are Products Software And Service .

Product Quality Dimensions - The Following Eight Dimension For Quality That, As He Stated, Can Define Both Product And Service Quality By Performance, Features Reliability , Conformance, Durability , Service Ability, Aesthetics, Perceived Quality.

Software Quality Dimensions - The Characteristics Of Software As An Intangible Product Are More Consistent With Higher Education . The Software Quality Dimensions Widely Used In Software Engineering Are, Correctness Reliability, Efficiency, Integrity, Usability, Maintainability, Testability, Expandability Portability, Revsebility And Interoperability.

Service Quality Dimensios In Higher Education-The Service Dimension of Quality Is Probably more akin to the educational processes. We Know That Unlike Physical Goods, Services Are Ephemeral to the extent that they can be consumed only as long as the activity or he process continues. thus, there is inseparability of production and consumption. Thus services can't be stored and are perishable. The consumer is also an integral part of the service process. Thus, in highr education this frame work is more applicable as the teaching learning situations are more like a service. The following dimensions of service quality are reliability, responsiveness competence, access, courtesy, communication , credibility, security, understanding the customer, tangibles .

Summary -As we have seen earlier quality has different meaning, so also has different meanings so also it can be seen from different dimensions/ perspectives as quality of products, as quality of service and as quality applied in software. However, as a general frame work to look into quality we can analyze six dimensions- tangibles, competence attitude, content , delivery and reliability, in educational programmes institutions.

References :-

- All India council for technical education, India http.
- council for higher education accreditations , http:// www.dec.ac.in
- national assessment and accreditation council, India, http:// www.nacc.india.com/
- national council for teacher education , India, http://www.net.in.org.

* Prof. (Govt. College) Kala pipal (M.P.) INDIA ** Prof. (Hindi university) Bhopal (M.P.) INDIA

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का समस्या समाधान कौशल के साथ सम्बन्ध का अध्ययन

डॉ. अर्चना श्रीवास्तव * सोनाली पण्डित **

'व्यक्तित्व' व्यक्ति की केन्द्रीय अभिव्यक्ति है। व्यक्ति की वास्तविकता, व्यक्ति का यथार्थ व्यक्तित्व है जो शरीर मन व आत्मा का समन्वय है। इसमें आत्मा ही मानव का केन्द्र बिन्दु हैं जिसे व्यक्ति का आत्म सम्प्रत्यय या स्व कहते है। स्व वह चेतना है जो व्यक्ति को स्वयं के प्रति सूक्ष्मता के स्तर तक अपने विचार व्यक्त करने के लिए प्रेरित करती है एवं किसी परिस्थिति विशेष में स्वयं को अभिव्यक्त करती है जो व्यक्तित्व के रूप में परिभाषित की जा सकती है। यह व्यक्ति के शरीर या मुखमुद्रा बुद्धि, स्वभाव सामाजिक एवं सांवेगिक गुणों तथा अभिवृत्तियों एवं मूल्यों द्वारा पृथक ना होकर उनकी एक समन्वित (Integrated) सम्पूर्ण (Whole) तथा अद्वितीय (Unique) व्यवस्था है।

व्यक्तित्व को मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग रूपों में परिभाषित किया है। जिनमें से प्रमुख है आलपोर्ट द्वारा दी गई व्यक्तित्व की परिभाषा - ''व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो परिवेश के प्रति होने वाले अपूर्ण समायोजन का निर्णय करता है। आइजेंक के अनुसार, ''व्यक्ति के चरित्र, स्वभाव, बुद्धि तथा शरीर गठन द्वारा निर्मित अपेक्षाकृत उस स्थायी या टिकाऊ व्यवस्था को व्यक्तित्व कहा जाता है जिस पर उसका वातावरण से विलक्षण समायोजन निर्भर होता है।'' अर्थात् व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक गुणों में एक सामंजस्य पाया जाता है तथा वे परिवर्तित होते रहते है। व्यक्ति के ये शरीरिक और मानसिक गुण उसके जीवन की गतिविधि को प्रभावित करते है। इसके कारण जीवन की विशिष्ट शैली बन जाती है।

व्यक्तित्व की इस विशिष्टता को मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व प्रकारों के रूप में वर्णित किया है। सर्वप्रथम (400ई. पू) ने हिपोक्रेटस ने शरीर के द्रव्यों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बताए - पीलापित (Yellow Bile) कालापित (Black Bile) रक्त (Blood) और कफ (Phlegm) युंग (1916) ने व्यक्तित्व का वर्गीकरण दो रूपों में किया - बहिर्मुखी एवं अन्तर्मुखी। क्रेश्मर (1925) ने शारीरिक गुणों को आधार बनाते हुए व्यक्तित्व को स्थूलकाय प्रकार (Pyknic Type), कृशकाय प्रकार (Asthenic Type) पुष्टकाय प्रकार (Athletic Type), मिश्रितकाय प्रकार (Dysplastic Type) में वर्गीकृत किया है। इसी तरह शेल्डन ने (1940, 1954) ने चित्र प्रकृति के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण किया है - स्थूलकाय प्रकार, पुष्टकाय प्रकार एवं दुर्बलकाय प्रकार।

आइजेन्क (1952) ने विमाओं के आधार पर व्यक्तित्व को अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता, स्नायुविकृति - स्थिरता में वर्गीकृत किया है, जो व्यक्तिगत भिन्नता के रूप में प्रदर्शित होता है। इस व्यक्तित्व भिन्नता का प्रभाव व्यक्ति की संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक कौशलों पर देखा जाता है। संज्ञानात्मक कौशलों में प्रमुख रूप से समस्या समाधान कौशल है जो व्यक्ति के वातावरण से उसके समायोजन का निर्धारण करता है।

स्किनर के अनुसार, ''समस्या समाधान किसी लक्ष्य प्राप्ति में बाधा डालती प्रतीत होती कठिनाइयों पर विजय पाने की प्रक्रिया हैं। यह बाधाओं के बावजूद सामंजस्य करने की विधि है।''

आइजेंक के अनुसार, ''परिस्थितियों से प्रारम्भ कर इच्छित लक्ष्य तक पहुँचने की वह प्रक्रिया ही समस्या समाधान है।''

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि आवश्यकताओ एवं उसकी पूर्ति में आने वाली बाधाओं को उचित रूप से हल का निराकरण करने की प्रक्रिया ही समस्या समाधान कहलाती है। इसमें व्यक्तित्व की अपूर्णता एवं विशिष्टता का महत्वपूर्ण योगदान होता है, जो व्यक्तित्व प्रकारों के रूप में अभिव्यक्त होता है। विलियम जी. हट्ट (1945) ने मेयर्स ब्रिज प्रकार संकेतक के आधार पर व्यक्तिगत भिन्नता को लेते हुए समस्या समाधान एवं निर्णय लेने से सम्बन्धित अध्ययन किया और परिणाम इस प्रकार रहे जिसे तालिका 1.1 में दिया जा रहा है। यह तालिका व्यक्तित्व प्रकार उन्मुखीकरण एवं समस्या समाधान प्रविधियों का सारांश प्रस्तुत करती है :-

तालिका क्र . 1.1

व्यक्तित्व विमाएँ	उन्मुखीकरण	प्रविधियाँ
बहिर्मुखी	ब्रह्मय संसार के व्यक्ति एवं वस्तुएँ	मस्तिष्क उद्वेलन, गहरी सोच पर आधारित निष्कर्ष, मनोनाटक
अन्तर्मुखी संवेदनशील	विचारों का आंतरिक संसार भूत एवं वर्तमान के तथ्य एवं वर्णन	एकांत में मस्तिष्क उद्वेलन निजी मूल्यों, विचारों एवं तथ्यों को साझा करना, आगमनात्मक औचित्य वर्णन, यादृच्छिक शब्द प्रविधि
अंतर्ज्ञानमूलक	विचार एवं सिद्धान्त भविष्य की संभावनाओं	श्रेणीबद्ध करना, वर्गीकरण करना, निगमनात्मक औचित्य स्थापन करना, चुनौतीपूर्ण पूर्वमान्यता रखना, काल्पनिक चित्रण, संश्लेषण
विचारशील	वस्तुनिष्ठता, तर्क एवं औचित्य वर्णन	श्रेणीबद्ध करना, वर्गीकरण करना, विश्लेषण, कार्य विश्लेषण
प्रबल भावना पूर्ण	व्यक्तिनिष्ठता, मूल्य एवं प्रभाव	व्यक्तिगत मूल्यों को साझा एवं दूसरों के मूल्यों को सुनना, मूल्यों का स्पष्टीकरण
पारखी	संगठन, रचना एवं समापन	मूल्यांकन, पी एम आई प्रविधि, पश्चगामी योजना, एकल हल का चयन
विशेष दृष्टिकोण से समझने वाला	आँकडे एकत्रीकरण, सूचना संसाधन हल	मस्तिष्क उद्वेलन, यादृच्छिक शब्द प्रविधि, दूसरों के दृष्टिकोण को लेना

तालिका क्र . 1.1 से स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत प्रकार से समस्या समाधान प्रविधियों में अन्तर देखा जाता है अर्थात् व्यक्तित्व प्रकार एवं समस्या समाधान प्रविधि में सम्बन्ध पाया जाता है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर शोधकर्ता ने प्रस्तुत अध्ययन की योजना बनाई। अध्ययन के उद्देश्य इस प्रकार है :

* प्राध्यापक ** 'शोधार्थी बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत

उद्देश्य :

- उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व एवं उसके पक्षों का अध्ययन करना।
- उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व एवं उनके पक्षों का समस्या समाधान कौशल के साथ सम्बन्ध का अध्ययन करना।

परिकल्पना

- उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर संकाय, जाति लिंग एवं इनकी अन्त:क्रिया का सार्थक प्रभाव नहीं है।
- उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व एवं उनके पक्षों का समस्या समाधान कौशल के साथ सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

प्रविधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन में अशासकीय संतमीरा कॉन्वेन्ट उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, उज्जैन के विज्ञान एवं वाणिज्य के 60 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में लिया गया। व्यक्तित्व का मापन महेश भार्गव द्वारा निर्मित विभिन्न व्यक्तित्व, अनुसूची (डी पी आई) के आधार पर व्यक्तित्व के छ: महत्वपूर्ण शीलगुणों सक्रिय-निष्क्रिय, उत्साही-निरूत्साही, दृढ़-नम', संवेदनशील-असंवेदनशील, संवेगात्मक - असंवेगात्मक, विश्वसनीयता-अविश्वसनीयता का निर्धारण किया गया। समस्या समाधान कौशल का परीक्षण श्रीवास्तव एवं दुबे द्वारा निर्मित समस्या समाधान कौशल परीक्षण द्वारा विद्यार्थियों के समस्या समाधान कौशल का मापन किया गया। प्रदत्तों का विश्लेषण 2×2×2 कारकीय अभिकल्प प्रसरण का विश्लेषण एवं सहसंबंध की गुणन आधुर्ण विधि का प्रयोग किया गया।

अध्ययन के परिणाम (तालिका 1.4-1.8) निम्नलिखित है :

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के शीलगुण, सक्रिय-निष्क्रिय पर संकाय, लिंग, जाति एवं इनकी अन्तर्क्रिया के प्रभाव के अध्ययन के लिए 2×2×2 कारकीय अभिकल्प प्रसरण के विश्लेषण का सारांश।

तालिका क्र .1.2

स्रोत	df	SS	MSS	F-value
संकाय	1	22.12	22.12	2.77
लिंग	1	13.14	13.14	1.65
जाति	1	7.31	7.31	0.91
संकाय× लिंग	1	0.11	0.11	0.014
संकाय × जाति	1	0.002	0.002	0.00
लिंग ×जाति	1	6.09	6.09	0.76
संकाय ×लिंग × जाति	1	5.93	5.93	0.74
त्रुटि	52	414.33	7.97	0.00
योग	59			

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के शीलगुण उत्साहित - अनुत्साहित पर संकाय, लिंग, जाति एवं इनकी अन्तर्क्रिया के प्रभाव के अध्ययन के लिए 2×2×2 कारकीय अभिकल्प प्रसरण के विश्लेषण का सारांश

तालिका क्र .1.3

स्रोत	df	SS	MSS	F-value
संकाय	1	0.00	0.00	0.00
लिंग	1	2.58	2.58	0.34
जाति	1	4.39	4.39	0.57
संकाय× लिंग	1	4.79	4.79	0.63
संकाय×जाति	1	0.13	0.13	0.018
लिंग × जाति	1	0.35	0.35	0.04
संकाय×लिंग ×जाति	1	0.02	0.02	0.00
त्रुटि	52	39.50	7.58	0.00
योग	59			

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के शीलगुण उद्दण्ड-नम' पर संकाय, लिंग, जाति एवं इनकी अन्तर्क्रिया के प्रभाव के अध्ययन के लिए 2×2×2 कारकीय अभिकल्प प्रसरण के विश्लेषण का सारांश -

तालिका क्र . 1.4

स्रोत	df	SS	MSS	F-value
संकाय	1	1.92	1.92	0.25
लिंग	1	14.15	14.15	1.87
जाति	1	13.43	13.43	1.78
संकाय ×लिंग	1	14.48	14.48	1.92
संकायएजाति	1	3.34	3.34	0.44
लिंग×जाति	1	21.75	21.75	2.88
संकाय×लिंग×जाति	1	0.00	0.00	0.00
त्रुटि	52	391.90	7.53	0.00
योग	59			

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के शीलगुण अविश्वसनीय-विश्वसनीय पर संकाय, लिंग, जाति एवं इनकी अन्तर्क्रि'या के प्रभाव के अध्ययन के लिए 2×2×2 कारकीय अभिकल्प प्रसरण के विश्लेषण का सारांश

तालिका 1.5

स्रोत	df	SS	MSS	F-value
संकाय	1	102.34	102.34	0.445
लिंग	1	442.30	442.30	1.83
जाति	1	299.77	299.77	1.30
संकाय ग लिंग	1	199.73	199.73	0.829
संकाय ग जाति	1	36.62	36.62	1.59
लिंग ग जाति	1	131.56	131.56	0.572
संकाय ग लिंग ग जाति	1	228.60	228.60	0.994
त्रुटि	52	11964.98	230.00	0.00
योग	59			

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के शीलगुण उदासीन-प्रसन्नचित पर संकाय, लिंग, जाति एवं इनकी अन्तर्क्रिया के प्रभाव के अध्ययन के लिए 2×2×2 कारकीय अभिकल्प प्रसरण के विश्लेषण का सारांश

तालिका 1.6

स्रोत	df	SS	MSS	F-value
संकाय	1	5.97	5.97	0.311
लिंग	1	34.62	34.62	1.80
जाति	1	0.277	0.277	0.014
संकाय×लिंग	1	21.73	21.73	1.131

संकाय × जाति	1	59.84	59.84	3.11
लिंग × जाति	1	7.52	7.52	0.391
संकाय × लिंग × जाति	1	8.66	8.66	0.451
त्रुटि	52	999.47	19.22	0.00
योग	**59**			

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के शीलगुण संवेगात्मक अस्थिरता – संवेगात्मस्थिरता पर संकाय, लिंग, जाति एवं इनकी अन्तर्क्रिया के प्रभाव के अध्ययन के लिए 2×2×2 कारकीय अभिकल्प प्रसरण के विश्लेषण का सारांश

तालिका 1.7

स्रोत	**df**	**SS**	**MSS**	**F-value**
संकाय	1	142.87	142.87	10.07
लिंग	1	2.32	2.32	0.164
जाति	1	5.70	5.70	0.402
संकाय×लिंग	1	97.55	97.55	6.876’
संकाय × जाति	1	12.15	12.15	0.857
लिंग ×जाति	1	28.46	28.46	2.00
संकाय× लिंग×जाति	1	0.373	0.373	0.026
त्रुटि	52	737.71	14.18	0.00
योग	**59**			

शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में व्यक्तित्व प्रकार पर संकाय, लिंग व जाति के प्रभाव का अध्ययन किया। तालिका क्र .1.2 से 1.8 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व प्रकार पर संकाय, लिंग या जाति का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाता अर्थात् संकाय, लिंग व जाति के कारण व्यक्तित्व के प्रकारों में अन्तर नहीं पाया जाता है। किन्तु संकाय, लिंग एवं जाति अन्तर्क्रि`यात्मक रूप से व्यक्तित्व के प्रकार पर प्रभाव प्रदर्शित करते है। व्यक्तित्व के प्रकारों का उनके समस्या समाधान कौशल के साथ सहसंबंध तालिका क्र .1.7 में दिया जा रहा है।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का उनके समस्या समाधान कौशल के साथ सहसम्बन्ध का सारांश

तालिका 1.7

व्यक्तित्व के शील गुण	सक्रिय-निष्क्रिय	उत्साही-अनुत्साही	उद्दण्ड-विनम्र	अविश्वसनीय-विश्वसनीय	उदासीन-प्रसन्नचित	संवेगा त्मक अस्थिरता संवेगा त्मक स्थिरता
समस्या समाधान कौशल	0.096	0.034	-0.17	-0.122	-0.044	-0.146

व्यक्तित्व शीलगुण सक्रियता – निष्क्रियता एवं उत्साही निरूत्साही के साथ समस्या समाधान कौशल का धनात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। सक्रियता एवं उत्साह ऐसे व्यक्तित्व शीलगुण है जो बहिर्मुखी व्यक्तित्व विमा में मुख्य रूप से पाए जाते हैं एवं प्रविधियों के द्वारा समस्या समाधान करते है। उन्नत समस्या समाधान कौशल के लिए सक्रियता एवं उत्साह शीलगुण की अनिवार्यता भी परिलक्षित होती है।

व्यक्तित्व शीलगुण उद्दण्ड, अविश्वसनीय, उदासीन, संवेगात्मक अस्थिरता के साथ समस्या समाधान कौशल का ऋणात्मक सहसम्बन्ध पाया गया अर्थात् यह सभी शीलगुण समस्या समाधान कौशल को ऋणात्मक रूप से प्रभावित कर उसमें कमी लाते है। उद्दण्डता, अविश्वसनीयता, उदासीनता एवं संवेगात्मक अस्थिरता बढ़ने के साथ समस्या समाधान कौशल में कमी पाई गई। इस तरह के अध्ययन शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है इनके माध्यम से शिक्षक अपने विद्यार्थियों के व्यक्तित्व प्रकार के आधार पर शिक्षण आव्यूह का निर्माण कर सकता है। इस तरह की शिक्षा व्यवस्था सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन में सहायक होती है और सामाजिक विकास को गति देती है।

संदर्भ–

* व्यक्तिगत सर्वे

****

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक चरों पर विद्यालय वातावरण के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन

पियूषा मोरे*

संज्ञानात्मक का अर्थ ऐसा आचरण है जिसमें अधिकतम चेतना होती है संज्ञानात्मक तत्व उस आचरण की ओर संकेत करते है जिससे ज्ञान का अन्वेषण और उच्च स्तरीय चेतना होती है। पारिभाषिक रूप में संज्ञान से तात्पर्य सूचना संसाधन स्मृति एवं प्रत्यक्षण की मानसिक प्रक्रियाओं से होता है जिसके सहारे व्यक्ति ज्ञान की प्राप्ति करता है ।

समस्या का समाधान करता है तथा भविष्य की योजना बनाता है। संज्ञान संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के तुल्य भी समझा जाता है उससे तात्पर्य मानसिक प्रक्रियाओं से होता है, जो कैसे संगठित कि जाती है तथा वह किस तरह से कार्य करती है उसका स्मरण या पुन: प्राप्ति करते है तथा उसका उपयोग करते है यह सभी मानसिक प्रक्रियाएं संज्ञान में सम्मिलित होती है ऐसी मानसिक प्रक्रियाओं में प्रत्यक्षण स्मृति ध्यान प्रतिमा पैटर्न पहचान भाषा, संप्रत्यय निर्माण समस्या समाधान तर्कणा निर्णय लेना आदि को सम्मिलित किया जाता है यह सभी मानसिक प्रक्रियाओं शिक्षा में महत्वपूर्ण मानी जाती है इसके विकास पर वातावरण का सर्वाधिक प्रभाव देखा जाता है।

वातावरण जीवन के प्रत्येक अंश में समाविष्ट है यह मनुष्य की शक्तियों को निर्देशित करता है, प्रोत्साहित करता है अथवा निरूत्साहित करता है वह उसकी वाणी को ढालता है तथा उसके ढॉंचे को सुक्षमतापूर्वक परिवर्तित करता है केवल इतना ही नहीं वातावरण के अभाव से नहीं बच पाते व्यक्ति के रक्त में भी वातारण के अभाव से नहीं बच पाते व्यक्ति के रक्त में भी वातावरण का प्रभाव पाया जाता है प्रकृति का नियम परिवर्तनशील है, मनुष्य भी इस प्रकृति का एक घटक है काल, स्थान एवं समयानुसार परिस्थितियां भी बदलती है वातावरण में भी परिवर्तन होता है किन्तु आज का युग वैज्ञानिक युग है तथा आज की वातावरणीय परिस्थिति के अनुसार छात्र को नई-नई चुनौतियों को स्वीकार करना होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षा के दो उद्देश्य दिए गए है- (1) बालक को नए विकसित ज्ञान से परिचित करना। (2) बालक को अगली शताब्दी में विकसित होने हेतु तैयार करना। बालक का चहुंमुखी व सर्वागीण विकास का दायित्व विद्यालय शिक्षक एवं कक्षा-कक्ष के वातावरण पर है।

विद्यालय का मुख्य ध्येय बालक का सर्वागिण विकास करने के साथ बालक को ऐसे अवसर देना जिससे उसमें छुपी निहित शक्तियों का विकास हो सके व मूल प्रवृत्तियों का उपयोग कर सकें। वही विद्यालय का मुख्य प्रयोजन उसके शारीरिक मानसिक, चारित्रिक, सामाजिक गुणों का क्रियात्मक विकास है वह स्वयं अपने अपनी जाति समाज, राष्ट्र व मानव जाति के लिए वरदान सिद्ध हो सके।

उद्देश्य - उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक चरों (बुद्धि,उपलब्धि, सृजनात्मकता) पर विद्यालय के वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना :- उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक चरों पर विद्यालय के वातावरण का सार्थक प्रभाव नहीं पाया।

प्रस्तुत अध्ययन की शोध विधि विद्यालय सर्वेक्षण पर आधारित है, न्यादर्श हेतु देवास शहर के तीन विद्यालयों का चयन किया गया जिसमें शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक सरस्वती शिशु उच्चतर माध्यमिक विद्यालय इनोवेटिव पब्लिक हाई स्कूल इन विद्यालयों के कक्षा 12 के 50-50 विद्यार्थियों को लिया गया है इन विद्यार्थियों के परीक्षण हेतु डॉ. आर.के ओझा एवं डॉ.के.राय चौधरी द्वारा निर्मित शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (V.I.T.) डॉ. रोमापाल जी द्वारा निर्मित A New test of Creatirit का उपयोग किया गया व उपलब्धि के रूप में अर्द्धवार्षिक प्राप्तांको को सम्मिलित किया गया।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियो की बुद्धि के मध्यमानों की तुलना के एक दिशीय प्रसरण के विश्लेषण का सारांश

S. No.	Source of Variation	DE	SS	Mss	F-Value
1.	Among Group	2	775818.91	387909.45	5639.85
2.	With in Group	147	10110.92	68.78	

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के मध्यमान में सार्थक रूप से t परीक्षण का विश्लेषण का सारांश

	विद्यालय का नाम	M	SD	N	t-Value
1.	महारानी चिमनाबाई कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	70.86	9.43	50	1.33
2.	सरस्वती विद्या मंदिर	71.66	9.71	50	

	विद्यालय का नाम	M	SD	N	t-Value
1.	सरस्वती विद्या मंदिर	71.66	9.71	50	3.76
2.	इनोवेटिव पब्लिक हाई सेकण्डरी स्कूल	73.92	8.62	50	

	विद्यालय का नाम	M	SD	N	t-Value
1.	इनोवेटिव पब्लिक हाई सेकेण्डरी स्कूल	73.92	8.62	50	5.18
2.	महारानी चिमनाबाई कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	70.86	9.71	50	

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की उपलब्धि के मध्यमानों की तुलना के एक दिवसीय प्रसरण के विश्लेषण का सारांश

S. No.	Source of Variation	DE	SS	Mss	F-Value
1.	Among Group	2	511077.87	255538.90	0.0003
2.	With in Group Total	147 149	14836.94	100.93	

* सहायक प्राध्यापक, बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत

निष्कर्ष :-

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विभिन्न विद्यालयों के विद्यार्थियों की उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विभिन्न विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के मध्यमानों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विभिन्न विद्यालयों के विद्यार्थियों वृद्धि में अंतर पाया गया।
4. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विभिन्न विद्यालयों के विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक चरों उपलब्धि सृजनात्मकता के साथ सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

संदर्भ सूची :-

1. गेरेट एच.ई. (1972) शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी : हरियाणा: कल्याणी पब्लिशर
2. जैन गरिमा (2007) पर्यावरण अध्ययन सामाजिक एवं भौतिक एवं जैविक शिक्षण जयपुर युनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि.।
3. लिब्ग्रेन हैनरी क्ले व देवसरे हरिकृष्ण (1972-73) कक्षा अध्यापन में शिक्षा मनोविज्ञान: भोपाल: मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
4. राय पारसनाथ (1997), अनुसंधान परिचय: आगरा: लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन।
5. सक्सैना हरी मोहन (1999) पर्यावरण एवं परिस्थितिकी भूगोल: जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
6. सिंह अरूण कुमार (2006) मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां नई दिल्ली: मोती लाल बनारसीदास।
7. सोनी राम गोपाल (1998) उदयोन्मुख भारतीय समाज के शिक्षा के नए आयाम:आगरा : एच.पी. भार्गव।
8. शर्मा आर.ए. (2006) शिक्षा अनुसंधान : मेरठ : आर लाल बुक डिपो।
9. सुखिया एस.पी. (2007) विद्यालय प्रशासन संगठन एवं स्वास्थ्य शिक्षा : विनोद पुस्तक मंदिर।
10. श्रीवास्तव पंकज (2007) पर्यावरण शिक्षा : भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
11. BALASUBRAMANIAN,N (1989) A study of classroom climate in relation to pupil achievement in English at higher secondary stage. The Jousnal of English language teaching. Vol. XXVIII (15) 128-137
12. GULATI SUSHMA (1995). In situational materials to promote children's creativity in classroom ; studying the effectiveness of materials fostering creativity, Indian educational Reviw, Vol 30 (2) 59-72
13. KERAWALLA, GULISTAN J.(1995), Studets sttitude toward the school in relation to these classroom climate and school type the progress of education vol LXIX(6) 102-104
14. KRISHNAN.S. Santhana and Stephen M (1947) Organizational climate of school; A study the progress of education, VOL LXXI (16), 131-133
15. PURAVI K. (1998), Organizational climate and teacher buruout in primary school in pudu kkattai distsricts, Indian educational Abstract Issue-6
16. Pandhi, J.S; Jadhav V.G. and Rath K.B. (1997), Effect of school climate indicators on learner's achicurment at primary stage teacher's emprowerment. Issue Indian educational Abstracts Issue-6
17. Velmani,N (1990), A study of teacher behariour with Geativity of higher secondary pupils.

****

राजस्थान एवं गुजरात के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में तनाव के स्तरों की तुलना

रमणीक जैन *

आज हर वक्त मानव तनावग्रस्त, कुंठित, निराशावादी या असंतुष्टता की स्थिति में नजर आता है। जीवन में जल्द से जल्द अधिक पाने की चाहत, इच्छा को पूरा करने की बाध्यता उसके तनाव को बढ़ा रही है। यही तनाव बढ़ जाता है तो यह व्यक्ति के मन-मस्तिष्क पर छा जाता एवं व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलुओं को गहराई से प्रभावित करता है।

तनाव कई कारणों से हो सकता है जिसे वैज्ञानिक परिस्थितिजन्य एवं अकारण रूप में मानते हैं। परिस्थितिजन्य तनाव मुख्यत: पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक तनावों के कारण होते हैं। इसके अतिरिक्त आज के वातावरण में फैला प्रदूषण, आर्थिक तंगी, प्रतिस्पर्धाएँ भी इसे बढ़ा रहे हैं। इसके विपरीत कई बार किसी कारण के भी बहुत से लोग तनाव के शिकार हो जाते हैं।

मार्गन, किंग, विस्ज एवं स्कौपलर (Morgan, King, Weisz & Schopler, 1986) ने तनाव की एक उत्तम परिभाषा इस प्रकार दी है - ''हम लोग तनाव को एक आन्तरिक अवस्था के रूप में परिभाषित करते है जो शरीर के दैहिक माँगों (बीमारी की अवस्थाएँ, व्यायाम, अत्यधिक तापक्रम आदि) को वैसे पर्यावरणी एवं सामाजिक परिस्थितियाँ जिसे सचमुच में हानिकारक, अनियंत्रण योग्य तथा निबटने के मौजूद साधनों को चुनौती देने वाला के रूप में मूल्यांकित किया जाता है, से उत्पन्न होता है।''

इसी तरह से वुड एवं वुड (Wood & Wood, 1999) ने तनाव को इस प्रकार परिभाषित किया है ''अधिकतर मनोवैज्ञानिकों ने एक ऐसी अवस्था के प्रति दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक अनुक्रिया को तनाव कहा है जो व्यक्ति को चुनौती देता है या धमकी देता है तथा जिसमें अनुकूलन या समायोजन के कुछ प्रारूप की जरूरत होती है।''

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि तनाव परिस्थिति या घटना का मूल्यांकन करने के बाद उसके प्रति की गयी एक विशेष अनुक्रिया होती है जिसमें व्यक्ति अपने मानसिक एवं दैहिक कार्यों को विघटित होते पाया हैं।

ली ह्युजन (2003) ने ''भय से सम्बन्धित दुश्चिन्तायुक्त अपंग बच्चों का अध्ययन'' विषय पर ऐरिजोना विश्वविद्यालय से अध्ययन कार्य किया। पब्लिक विद्यालयों के विद्यार्थियों पर यह शोध अध्ययन किया गया। इस शोध में कई प्रकार के भयों पर अध्ययन किया गया।

शोध अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष हैं-

- भय के कारण अपंग बच्चों में शारीरिक वृद्धि नहीं हो पाती, जिससे उनमें दुश्चिन्ता उत्पन्न होती है। अपंगता का प्रभाव बच्चों के अधिगम पर पड़ता है।
- लड़कियों में भय के डर से उपलब्धि का स्तर अत्यन्त निम्न हो जाता है तथा वे अपने अपंगता के भय से भविष्य हेतु निर्णय नहीं ले पाती।

थिलेका, एस., जेकब, यू. (2002) ने ''नवीं कक्षा के एंग्लों इण्डियन स्कूल के बच्चों की स्वधारणा, तनाव परीक्षण एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन'' विषय शोधकार्य किया।

इन्होंने अपना अध्ययन नवीं कक्षा के 300 एंग्लो इण्डियन छात्रों पर किया, तनाव हेतु ''मेंडलर और सरासन्स'' परीक्षण को काम में लिया। इस अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए -

- जब छात्र एवं छात्राओं का तुलनात्मक अध्ययन तनाव परीक्षण पर किया गया तो सह-शिक्षा युक्त छात्रों में तनाव, चिन्ता और भावनात्मक दृष्टि से छात्राओं का स्तर छात्रों की तुलना में अधिक था।
- तनाव का प्रभाव शैक्षिक उपलब्धि पर अधिक था।

अध्ययन के उद्देश्य :

(1) समग्र न्यादर्श विद्यार्थियों के तनाव के स्तर का अध्ययन।

(2) राजस्थान एवं गुजरात के चयनित न्यादर्श विद्यार्थियों में तनाव के स्तर का अध्ययन।

(3) राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के तनाव के विभिन्न आयामों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पना :

* राजस्थान एवं गुजरात के चयनित न्यादर्श विद्यार्थियों में तनाव के स्तर के मध्य सार्थक अन्तर नहीं होता हैं।

न्यादर्श :

प्रस्तुत शोध राजस्थान व गुजरात राज्य के जिलों में से लॉटरी विधि द्वारा कोई दो जिलों का चयन किया गया। इन दो जिलों के 2 राजकीय तथा 2 निजी उच्च माध्यमिक विद्यालयों के दसवीं कक्षा के 30 छात्र एवं 30 छात्राओं को विद्यार्थियों का सौद्देश्य विधि से चयन किया गया।

इस प्रकार प्रत्येक विद्यालय से 60 विद्यार्थी, प्रत्येक जिले से 120 विद्यार्थी तथा प्रत्येक राज्य से 240 एवं कुल 480 न्यादर्शो का चयन किया गया। विद्यालयों का चयन याहच्छिक विधि से तथा विद्यार्थियों का चयन सोद्देश्य विधि से किया गया।

शोधकर्ता ने स्वयं तनाव प्रमापनी नामक स्वनिर्मित उपकरण का निर्माण कर किया है। जिसमें शैक्षणिक, पारिवारिक, मानसिक, व्यवसायिक, विद्यालयी तथा कुल तनाव से संबंधित कुल 75 प्रश्नों को सम्मिलित किया हैं।

समंको का विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने राजस्थान एवं गुजरात के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में तनाव के स्तर को जानने के लिये एक स्वनिर्मित तनाव प्रमापनी के माध्यम से तनाव के विभिन्न आयामों का मापन करने हेतु तथ्यों को संकलित किया। तथ्यों के संकलन के पश्चात् उनका सारणीयन और सांख्यकीय विश्लेषण किया। समंको के सांख्यिकी विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-परीक्षण आदि सांख्यिकीय मापों का प्रयोग किया गया।

तनाव के विभिन्न आयामों पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन हेतु 'टी' मान की गणना की गई जिसे सारणी संख्या 1 में दर्शाया गया हैं।

* शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

सारणी संख्या 1
तनाव के विभिन्न आयामों पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन

आयाम	श्रेणी	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान अन्तर	't' मान	सार्थकता
शैक्षणिक	राजस्थान गुजरात	54.75 53.83	6.41 6.15	0.92	1.60	असार्थक
पारिवारिक	राजस्थान गुजरात	54.87 53.82	5.59 5.41	1.05	2.09	0.05 स्तर पर सार्थक
मानसिक	राजस्थान गुजरात	51.70 51.87	9.07 8.06	0.17	0.22	असार्थक
व्यावसायिक	राजस्थान गुजरात	53.94 53.23	8.82 8.69	0.70	0.88	0.05 स्तर पर सार्थक
विद्यालयी	राजस्थान गुजरात	53.88 52.69	5.88 5.87	1.19	2.22	असार्थक
कुल तनाव	राजस्थान गुजरात	269.13 265.43	25.25 23.65	3.70	1.65	असार्थक

सारणी से यह स्पष्ट होता है कि तनाव के शैक्षणिक आयाम पर राजस्थान के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 54.75 एवं 6.41 प्राप्त हुआ हैं। वहीं गुजरात के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 53.83 एवं 6.15 प्राप्त हुआ हैं। सारणी का आगे विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि तनाव के शैक्षणिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्य मध्यमान अन्तर 0.92 तथा 'टी' मान 1.60 प्राप्त हुआ है जो कि असार्थक हैं। अर्थात् तनाव के शैक्षणिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं।

सारणी से यह भी स्पष्ट होता है कि तनाव के पारिवारिक आयाम पर राजस्थान के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 54.87 एवं 5.59 प्राप्त हुआ हैं। वहीं गुजरात के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 53.82 एवं 5.41 प्राप्त हुआ हैं। सारणी का आगे विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि तनाव के पारिवारिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्य मध्यमान अन्तर 1.05 तथा 'टी' मान 2.09 प्राप्त हुआ है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक हैं। अर्थात् तनाव के पारिवारिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में सार्थक अन्तर हैं।

सारणी से यह भी स्पष्ट होता है कि तनाव के मानसिक आयाम पर राजस्थान के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 51.70 एवं 5.59 प्राप्त हुआ हैं। वहीं गुजरात के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 51.87 एवं 8.06 प्राप्त हुआ हैं। सारणी का आगे विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि तनाव के मानसिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्य मध्यमान अन्तर 0.17 तथा 'टी' मान 0.22 प्राप्त हुआ है जो कि असार्थक हैं। अर्थात् तनाव के मानसिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं। सारणी से यह भी स्पष्ट होता है कि तनाव के व्यावसायिक आयाम पर राजस्थान के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 53.94 एवं 8.82 प्राप्त हुआ हैं। वहीं गुजरात के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 53.23 एवं 8.59 प्राप्त हुआ हैं। सारणी का आगे विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि तनाव के व्यावसायिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्य मध्यमान अन्तर 0.70 तथा 'टी' मान 0.88 प्राप्त हुआ है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक हैं। अर्थात् तनाव के व्यावसायिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में सार्थक अन्तर हैं।

सारणी से यह भी स्पष्ट होता है कि तनाव के विद्यालयी आयाम पर राजस्थान के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 53.88 एवं 5.88 प्राप्त हुआ हैं। वहीं गुजरात के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 52.69 एवं 5.87 प्राप्त हुआ हैं। सारणी का आगे विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि तनाव के विद्यालयी आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्य मध्यमान अन्तर 1.19 तथा 'टी' मान 2.22 प्राप्त हुआ है जो कि असार्थक हैं। अर्थात् तनाव के विद्यालयी आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं।

सारणी संख्या 1 से यह भी स्पष्ट होता है कि कुल तनाव पर राजस्थान के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 269.13 एवं 25.25 प्राप्त हुआ हैं। वहीं गुजरात के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमश: 265.43 एवं 23.65 प्राप्त हुआ हैं। सारणी का आगे विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि कुल तनाव पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्य मध्यमान अन्तर 3.70 तथा 'टी' मान 1.65 प्राप्त हुआ है जो कि असार्थक हैं। अर्थात् कुल तनाव पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं।

निष्कर्ष :

- तनाव के शैक्षणिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं।
- तनाव के पारिवारिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में सार्थक अन्तर हैं।
- तनाव के मानसिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं।
- तनाव के व्यावसायिक आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में सार्थक अन्तर हैं।
- तनाव के विद्यालयी आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं।
- तनाव के विद्यालयी आयाम पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं।
- कुल तनाव पर राजस्थान एवं गुजरात के विद्यार्थियों के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध पत्र किशोरवय के विद्यार्थियों एवं भावी शोध करने वाले अनुसंधानकर्त्ताओं के लिये मील का पत्थर साबित होगा।

सन्दर्भ :

- Morgan King Weisz & Scholpher (1986) Introduction to Psychology, Mc Graw Hill Publishers.
- Wood and Wood (1999) Life change and illness susceptibility, in Symposium on Separation and Depression. Edited by JP Scott, EC Senay. Washington, D.C., Am. Assoc. Adv. Sci., pp. 161-186.
- Lee Huzen: "A study of physically challenged children over phobia and anxiety", Journal of Physically Challenged Studies, Arizona University, 2003, Vol. 1, P.89-93.
- Thelika Suresh & Jacob Usha: "A Study of Self Concept, Stress and Academic Achievement of Class IX Anglo-Indian Students", Dissertation Abstract International, 2002, Vol.2, P. 147-149.

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति जागरूकता का अध्ययन

डॉ. अर्चना श्रीवास्तव * श्रीमती राखी शर्मा **

प्रस्तावना : - संस्कृत में कहा गया है, ''इंन्द्रियाणां प्रशमं शास्त्रम्'' अर्थात शिक्षा इन्द्रियों का दमन करती है, जिसके द्वारा मनुष्य को कल्याणकारी मार्ग की ओर ले जाती है, वह अपने जीवन में ''सत्यं शिवं सुन्दरम्'' की स्थापना करता है।

शिक्षा से बालक में उत्तम नागरिक गुणों का विकास होता है। जिससे वह राष्ट्रीय विकास में अपना योगदान देता है। राष्ट्र, व्यक्ति व समाज में शिक्षा की उपयोगिता को समझते हुए शिक्षा के उद्देश्य सांस्कृतिक विकास के उद्देश्य में सभ्य सुसंस्कृत तथा श्रेष्ठ व्यक्ति तैयार करने के साथ बालकों को अपनी संस्कृति का ज्ञान इसलिए आवश्यक है कि वे अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों तथा धरोहर को समझ सकें और उसकी सुरक्षा के लिए प्रेरित हो। इसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षक के द्वारा विद्यार्थियों में नैतिक गुण, नागरिकता, चरित्र तथा राष्ट्र के प्रति जागरूकता के संदर्भ में दस तत्वों का संकलन किया है।

1. भारतीय स्वतन्त्रता का इतिहास।
2. संवैधानिक उत्तारदायित्व।
3. भारत की सामयिक संस्कृति की धरोहर।
4. समानता, प्रजातंत्र तथा धर्म निरपेक्षता।
5. स्त्री पुरूष समानता।
6. पर्यावरण का संरक्षण।
7. सामाजिक अन्धविश्वासों का निर्मूलन।
8. सीमित परिवार की आवश्यकता।
9. वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अभिवृद्धि, इनमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति के राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के दसवें केन्द्रिक तत्व राष्ट्रीय अस्मिता है।

सांस्कृतिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है। इस विविधता में एकता पैदा करना आवश्यक है। राष्ट्रीय अस्मिता वह भावना है, जो हमारे मनोजगत की अनुभूति पर आधारित है। परन्तु आज का मानव भविष्य की चिन्ता में इतना आगे बढ़ गया है कि उसे इतिहास की ओर देखने का समय नहीं हैं, उसी प्रकार वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी केवल पाठ्यक्रम तक सीमित हैं, उसे राष्ट्र की पहचान अर्थात राष्ट्रीय अस्मिता का ज्ञान शिक्षा से सम्भव हैं।

अत: इस ओर शोधार्थी का ध्यान गया एवं शोध अध्ययन करने पर माध्यमिक स्तर तक विद्यार्थियों को राष्ट्रीय अस्मिता की जानकारी प्राप्त पायी गयी, परन्तु जैसे-जैसे शिक्षा का स्तर बढ़ा अर्थात उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में राष्ट्रीय अस्मिता की जानकारी का अभाव पाया गया, जिसे देखते हुए प्रस्तुत अध्ययापन की योजना बनायी गयी। अध्ययन के उद्देश्य और परिकल्पना इस प्रकार हैं:-

उद्देश्य:

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विभिन्न संकाय के विद्यार्थियों की राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति जागरूकता की तुलना करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालक-बालिकाओं की राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति जागरूकता की तुलना करना।

परिकल्पना:

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विभिन्न संकाय के विद्यार्थियों की राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालक-बालिकाओं की राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।

प्रविधि:

प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि के अन्तर्गत विद्यालय सर्वेक्षण विधि प्रयुक्त की गई।

न्यादर्श:

प्रस्तुत शोध के लिए देवास शहर के अशासकीय विद्यालय के कक्षा 9वीं व 11वीं के 48 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया।

उपकरण:

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण का विवरण इस प्रकार है:-

इस शोध में जागरूकता संबन्धी स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। जिसमें राष्ट्रीय अस्मिता से सम्बन्धित 65 वैकल्पिक प्रश्न है। जिसमें निम्न तथ्यों को लिया गया: राष्ट्रीय प्रतिक, राष्ट्रीय भाषा, राष्ट्रीय चिन्ह, मौलिक अधिकार, वन्देमातरम, राष्ट्रगान, राष्ट्रप्रेम, ऐतिहासिक स्थल थे। जिसमें चार विकल्प दिए गए एवं प्रत्येक सही विकल्प पर 1 अंक दिया गया। इस प्रश्नावली को पूरा करने के लिए 1 घण्टे का समय दिया गया।

प्रदत्त विश्लेषण:

प्रस्तुत शोध में कक्षा 9वीं व 11वीं के बालक-बालिकाओं की राष्ट्रीय अस्मिता की जागरूकता की तुलना (t) के लिए परीक्षण का उपयोग किया गया। परिणाम तालिका क्रमांक 1 में दिये गए हैं-

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के कक्षानुसार विद्यार्थियों की राष्ट्रीय अस्मिता की जागरूकता की तुलना करना था।

तालिका क्रमांक 1

कक्षानुसार राष्ट्रीय अस्मिता जागरूकता की तुलना के लिए M,SD. एवं t के मानों का विवरण

कक्षा	M	SD	N	t- Value
9वीं	48.71	4.13	28	2.17*
11वीं	45.25	6.96	20	

** 0.05 स्तर पर सार्थक*

तालिका क्रमांक 1 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कक्षा 9 के विद्यार्थियों के राष्ट्रीय अस्मिता जागरूकता का स्तर कक्षा 11 के विद्यार्थियों से उच्च पाया गया। बालक-बालिकाओं की राष्ट्रीय अस्मिता जागरूकता की तुलना **का विवरण तालिका क्रमांक 2 में दिया गया है।**

* प्राध्यापक ** सहायक प्राध्यापक, बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत

तालिका क्रमांक 2

बालक-बालिकाओं की राष्ट्रीय अस्मिता जागरूकता की
तुलना के लिए M,SD. एवं t के मानों का विवरण

कक्षा	M	SD	N	t- Value
बालिका	47.83	37.15	12	0.11
बालक	47.08	6.05	36	

तालिका क्रमांक 2 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि, बालक-बालिका में राष्ट्रीय अस्मिता जागरूकता परीक्षण के मध्यमानों में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। शोध अध्ययन परिणाम प्रदर्शित करते हैं कि कक्षा 9वीं तक विद्यार्थी राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति जागरूक पाये गये, वहीं बालक-बालिका का राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति जागरूकता के स्तर में कोई अन्तर नहीं पाया गया। सभी स्थितियों में राष्ट्रीय अस्मिता का स्तर औसत एवं निम्न ही पाया गया। अत: आवश्यक है कि विद्यालयों द्वारा प्रयास किया जावे कि शिक्षक अनुकूल वातावरण के माध्यम से निम्न उपक्रमों द्वारा बालक को राष्ट्रीय अस्मिता की जानकारी दे सकते हैं।

- राष्ट्रीय अस्मिता के संवर्धन के लिए राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रनिष्ठा तथा राष्ट्रभक्ति का विकास करने के लिए क्रान्तिकारी तथा वीरांगनाओं का जीवन चरित्र विद्यालय के सामने कहानी तथा चलचित्र के माध्यम से प्रदर्शित करना।
- शिक्षक अपने बालकों को राष्ट्रध्वज तथा राष्ट्रगीत के प्रति सम्मान के भाव को जगाये तथा राज्यमुद्रा, राष्ट्रीय फूल, राष्ट्रीय पक्षी, राष्ट्रीय प्राणी की जानकारी दे।
- शिक्षक कोई भी विषय पढ़ातें समय जाति, धर्म, सम्प्रदाय तथा भाषा के संदर्भ में एकता की भावना का विकास करें।
- राष्ट्रीय त्यौहार 15 अगस्त, 26 जनवरी के महत्वों को छात्रों के समक्ष रखकर हृदय में सम्मान एवं उत्साह के भाव को जगाऐं।
- शिक्षक, बालकों को भारत की नदियों, झीलों, समुद्र, उपजाऊ भूमि, ऐतिहासिक स्थलों, शिल्पकला तथा तीर्थ स्थलों, नृत्य, चित्रकला एवं संगीतकार आदि से अवगत करायें। जिससे वे राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति सजग होने के साथ ही उनमें राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना को जाग्रत किया जाये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बायती, जमनालाल (2006) बाल विकास समस्या और समाधान।
2. कॉल, लोकेश (2005) अनुसन्धान की विधियाँ व्यवहार परख विज्ञानों में, आगरा, एच.पी. भार्गव बुक हाउस।
3. सोनी रामगोपाल (1998) उदयोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षा के नये आयाम, आगरा, एच.पी. भार्गव बुक हाउस।
4. सामाजिक विज्ञान, कक्षा 10 राजस्थान बोर्ड।

****

सक्रिय अधिगम प्रविधि - (प्रारम्भिक स्थितियाँ)

प्रो. सरोज सिंह हाडा *

सक्रिय अधिगम एक ऐसा शिक्षण प्रविधि है जिसमें पठन - पाठन में बच्चों की सक्रियता को सुनिश्चित किया गया है, इस प्रविधि में शिक्षण एक पक्षीय नही रहता अपितु शिक्षक और विद्यार्थी दोनों समान रूप से सक्रिय रहकर सीखने - सिखाने की प्रक्रिया में संलग्न तो रहते ही है साथ ही विद्यार्थियों को विषय वस्तु स्वयं पढ़कर समझने के अवसर प्राप्त होते है।

इसकी प्रारम्भिक स्थिति को अध्ययन किया जाये तो इस प्रविधि को मध्यप्रदेश की चयनित 500 पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में 6 से 8 तक के लिये शिक्षा सत्र 2009 - 10 में लागू किया। इस प्रविधि से शिक्षण में विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता को दृष्टिगत रखते हुये सत्र 2010 - 11 में प्रदेश के प्रत्येक जिले के चयनित दो विकास खण्डों के सभी माध्यमिक विद्यालयों में इस प्रविधि द्वारा शिक्षण कार्य करवाया गया।

सक्रिय अधिगम प्रविधि के विभिन्न घटक जैसे - पाठयोजना उसके विभिन्न प्रारूप , माइंड मेप , प्रस्तुतीकरण , सारांशीकरण व मूल्यांकन आदि के न केवल निपुण बनाएगी अपितु उच्च प्राथमिक स्तर में अध्ययनरत् बच्चों में दक्षताओं की प्राप्ति में सहायक होगी ।

शोध कार्यो एवं तथ्यात्मक प्रमाणों से यह बात सिद्ध होती है कि विद्यार्थी सबसे अधिक तब सीखते है तब वे सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भागीदारी करते है। शोध यह सिद्ध करते है कि विद्यार्थियों को सुनने के अलावा भी कुछ करना चाहिये । उनको पढ़ना , लिखना , चर्चा करना एवं समस्या निदान की भी कोशिश करनी चाहिये कक्षाध्यापन के दौरान सीखने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित करने में सक्रिय अधिगम प्रविधि एक प्रभावी प्रविधि है। जो बच्चों को व्याख्यान सुनने , चिन्तन करने व कक्षा शिक्षण में सक्रिय सहभागिता करने की प्रविधि है।

✻ यह प्रविधि आवश्यक क्यों ?

क्योंकि विभिन्न शोध एवं अनुभव के प्रमाण यह बताते है कि विद्यार्थी सबसे बेहतर तब सीखते है जब वे स्वयं विषयवस्तु के साथ जुडते है और सीखने में सक्रिय रूप से सहभागी होते है। क्योंकि इस प्रविधि में यह प्रक्रिया बाल केन्द्रित होती है व विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित की जाती है। परम्परागत कक्षा वातावरण को अधिक सहज रूप से वह स्वाभाविक गति से सीखने एवं व्यक्त करने की क्षमता आ जाती है।

" Learning is a process as development " (wood worth)

सीखना '' किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रक्रिया है। जब बालक जन्म लेता है तो वह परिवार के वातावरण से कुछ न कुछ सीखने को मिल जाता है जब पहली बार आग को देखकर वह उसे छू लेता है और उस से जल जाता है फलस्वरूप उसे एक नया अनुभव होता है अत: जब वह आग को फिर देखता है तब उसके प्रति उसकी प्रतिक्रिया भिन्न होती है अनुभव ने उसे आग को न छूना सिखा दिया है। वह आग से दूर रहता है। इस प्रकार '' सीखना - अनुभव द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है। ''

थार्नडाइक '' उपयुक्त अनुक्रिया के चयन तथा उसे उत्तोजना से जोड़ने को अधिगम कहते है। विद्यार्थी सबसे अधिक तब सीखते है जब वे सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भागीदारी करते है। सक्रिय अधिगम प्रविधि द्वारा शिक्षण से विद्यार्थियों का बहुमुखी विकास होता है। इससे बालक में समझने की शक्ति का विकास होता है। एवं बालक को स्वतंत्र रूप से तम व्यक्त करने का अवसर भी प्राप्त होते है। इस प्रविधि द्वारा शिक्षण से विद्यार्थियों में प्रस्तुतीकरण एवं नेतृत्व का गुण भी विकसित होता है।

✻ सक्रिय अधिगम प्रविधि की मूलभूत मान्यताएँ -

1. सीखना अपनी प्रकृति में एक सक्रिय प्रयास है।
2. अलग - अलग व्यक्ति अलग - अलग तरीके से सीखते है।

सक्रिय अधिगम द्वारा व्यक्ति का सामाजिक विकास संभव होता है और सामाजिक उन्नयन का होना उचित शिक्षा पर निर्भर है , बालक के जीवन को महत्व पूर्ण बनाने के लिये उदार शिक्षा व संस्कार पर बल दिया है। ताकि वह सुन्दर सफल एवं सामाजिक जीवन व्यतीत करें ।

बालक परिवार में ही रहकर प्रत्येक सदस्यों को देखता है व उनका अनुकरण करता है यहीं कारण है कि इसका प्रभाव , बालक पर सबसे अधिक पड़ता है। बालक का सामाजिक विकास भी कई प्रकार की क्रियाओं का अनुसरण करके होता है।

सामाजिक अवबोध है क्या ? सामाजिक अवबोध किसे कहते है ?

'' बालक समाज में रहता है और समाज से ही बहुत कुछ सीखता है। समाज में वह चेतन ज्ञान और अवचेतन ज्ञान ग्रहण करता है। यह चेतन एवं अवचेतन ज्ञान व्यक्ति की सोच अथवा सज्ञान को विकसित करता है। और यह बोध ही सामाजिक - अवबोध कहलाता है। ''

बालक के सामाजिक अवबोध का अध्ययन करने के लिये उसकी सामाजिकता की आयु उसकी वास्तविक आयु के अनुरूप ही सामाजिक भावना के सामान्य स्तरों को समझ सकते है। परिवार के सदस्य के प्रति बालक का व्यवहार अथवा समाज के साथ उसके व्यवहार में परिवर्तन देखते है।

बालक परिवार में माता - पिता से अधिक भाई - बहन एक दूसरे के सामाजिक अवबोध पर प्रभाव डालते है। परिवार में यदि बालक बड़ा है तो वह अपने छोटे भाई - बहनों के प्रति अपने कुछ उत्तरदायित्व समझने लगता है। फलत: उसके सामाजिक अवबोध का विकास होता है।

समाज बालक के सामाजिक अवबोध के विभिन्न रूपों से प्रभावित करता है , समाज के विभिन्न उत्सव व कार्यक्रम में संस्कृति , कला , साहित्य, उदारता धार्मिक उत्सव जातीय , परम्पराएं , सामाजिक सुविधाएं आदि बालक के सामाजिक अवबोध को विकसित करती है। बालक मित्रमण्डल द्वारा भी उसके सामाजिक अवबोध का विकास होता है।

- ✻ समाज द्वारा बालक को एक सफल जीवन का निर्माण करने के लिये आत्मज्ञान , आत्म विश्वास और मानवीय संसाधनों का सही उपयोग कर व्यवहार में लाने की कला सीखनी चाहये ।
- ✻ बड़ों के साथ कैसा बर्ताव करना , छोटे के साथ कैसे रहना , मित्रों के साथ कैसे बात करना , ये सब वह परिवार से सीखता है।
- ✻ समाज में जब बालक रहता है तो वह विपरीत परिस्थितियों से व समाज की आलोचनाओं से विचलित नही होता है। बालक के व्यक्तित्व का निर्माण समाज में ही होता है।

* प्राध्यापक, बी.सी.जी शिक्षा महाविद्यालय देवास (म.प्र.) भारत

✲ सामाजिक विकास की प्रक्रिया :- '' सामाजिकरण एक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। '' Socialejateon is a social and Psychological Precess " Watson

तत्व –

1. परिवार।
2. परिवार की आर्थिक या सामाजिक स्थिति।
3. विद्यालय।
4. समुदाय या समाज।
5. जाति।
6. पड़ोस या पड़ोसी।
7. समूह।

बालक एक वट के समान नहीं है जिससे भरा जा सकें , बल्कि वह एक चिंगारी के समान है , बालक का पालन – पोषण प्यार व स्नेह के साथ होना चाहिये। बालक चेतन व अवचेतन मन से समाज से बहुत कुछ सीखता है जो उसमें सामाजिक अवबोध का प्रस्फुटन करती है। सामाजिक – अवबोध बालक के व्यक्त्वि को संतुलित करके सुन्दर व सुनियोजित करता है।

बालक जब छोटा होता है, तभी सामाजिक – अवबोध का अध्ययन करना आवश्यक होता है। क्योंकि इस अवस्था में बालक का शरीर व आत्मा दोनों ही निर्माणाधीन अवस्था में होता है।

रायर्बन के अनुसार – '' उस सम्पूर्ण परिस्थिति को जिसमें बालक अपने को विद्यालय में पाता है। जीवन में जितना ही अधिक संबंध होता है। उतना ही अधिक सफल और स्थायी उसका सीखना होता है। ''

सीखना तभी प्रभावशाली हो सकता है जब कि ये विद्यालय में शिक्षक द्वारा विभिन्न प्रकार की क्रियायें चलित हों। अनुकुल होने की परिस्थितियों में सीखने की क्रिया सबल व प्रभावयुक्त हो जाती है। – उसे सीखने के लिये मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर निम्नलिखित शिक्षण विधियों को अधिक उपयोगी व प्रभावशाली पाया गया है। –

1. करके सीखना (Learning by doing) स्मृति का स्थान मस्तिष्क में नही , वरन् शरीर के अवयवों में है , यही कारण है कि वे हम करके सीखते है। " The seat of memory is in the mind , but in the muscular system . We learn by doing"
   बालक जिस कार्य को स्वयं करते है उसे वे जल्दी सीखते है कारण यह है कि उसे करने में वे उसके उद्देश्य का निर्माण करते है।
2. निरीक्षण करके सीखना (Learning by Obsevauation) योकम एवं सिमसन '' सूचना प्राप्त करके , आधार सामग्री एकत्र करने और वस्तुओं तथा घटनाओं के बारे में सही विचार प्राप्त करने का साधन है '' बालक जिस वस्तु का निरीक्षण करते है उसके बारे में व जल्दी और स्थायी रूप से सीखते है। क्योंकि वह वस्तु स्मृति – पटल पर अंकित हो जाती है।
3. निरीक्षण करके सीखना (Learning by Obsevauation) नई बातों की खोज करना , एक प्रकार का सीखना है उदाहरणार्थ – गर्मी का ठोस व तरल पदार्थो पर क्या प्रभाव पड़ता है वह इस बात को पुस्तक में पढ़कर भी सीख सकता है। पर यह सीखना उतना महत्वपूर्ण नही होता है। जितना कि स्वयं परीक्षण करके सीखना।
4. सामूहिक विधियों द्वारा सीखना (Learning by group methods) बालक को प्रेरणा प्रदान करने , उसे शैक्षिक लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता देने , उसके मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाने , उसके सामाजिक समायोजन को उसमें आत्मनिर्भरता तथा सहयोग की भावनाओं का विकास करने के लिये व्यक्तिगत विधियों की तुलना में सामूहिक विधियाँ कहीं अधिक प्रभावशाली है।

मुख्य सामूहिक विधियां निम्निलिखित है –

1. वाद विवाद विधि (Discussion methods) इस विधि में प्रत्येक छात्र को अपने विचार व्यक्त करने और प्रश्न पूछने का अवसर दिया जाता है।
2. वर्कशाप विधि (Workshop methods) इस विधि के विभिन्न विषयों पर सभाओं का आयोजन किया जाता है। और इस विषयों के हर पहलू का छात्रों द्वारा अध्ययन किया जाता है।
3. सम्मेलन व विचार – गोष्ठी विधियां (Conseronce and sominar methods) इन विधियों से किसी विशेष विषय पर छात्रों द्वारा विचार – विनिमय किया जाता है।
4. प्रोजेक्ट , डाल्टन व बेसिक विधियां (Project , Dalton and basic methods) प्रत्येक छात्र अपनी व्यक्ति रूचि ज्ञान और क्षमता के अनुसार स्वतंत्र रूप से कार्य करता है।
5. मिश्रित विधि द्वारा सीखना (Learning by mixed methods) सीखने की दो महत्वपूर्ण विधियां है – पूर्ण विधि और आंशिक विधि। आधुनिक विचार धारा के अनुसार इन दोनों विधियों को मिलाकर सीखने के लिये मिश्रित विधि का प्रयोग किया जाता है।
6. सीखने की स्थिति का संगठन (Organijation of learning process) सीखने के कार्य को सरल और सफल बनाने के लिये सबसे अधिक आवश्यकता है – सीखने की स्थिति का संगठन।

सीखने की ये सभी विधियां व्यक्ति के मनोविज्ञान पर आधारित है। इन विधियों के प्रयोग से अधिगम तथा कक्षाध्यापन के दौरान सीखने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित करने में ALM(Active Learning methodology) एक प्रभावी प्रविधि है। सक्रिय अधिगम प्रविधि द्वारा शिक्षण से विद्यार्थियों का बहुमुखी विकास होता है। इस प्रविधि द्वारा शिक्षण से कक्षा का वातावरण पूर्णत: मानोसक , ओभघात और चिन्ता से मुक्त होता है। इसमें बालक में समझने की शक्ति का विकास होता है। सक्रिय अधिगम प्रविधि एक ऐसी ही कक्षागत प्रक्रिया है।

सक्रिय अधिगम की विशेषताएं निम्नलिखित है –

✲ इस प्रक्रिया में शिक्षक केन्द्रित न होकर बाल केन्द्रित है।

✲ सीखने की प्रक्रिया में समस्त विद्यार्थियों की सहज सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित की जाती है।

✲ विद्यार्थियों को परस्पर सहयोग के साथ – साथ स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर भी प्राप्त होते है। स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर भी प्राप्त होते है।

अत: यह कहा जा सकता है कि अवधारणाओं की समझ बनाने के लिये ALM एक आवश्यक अधिगम प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा विश्लेषण , संश्लेषण एवं मूल्यांकन आदि को बच्चे प्रभावी रूप से प्रस्तुत कर सकते है। इस प्रक्रिया को रोचक बनाने के लिये रोचक तरीके ढूँढना चाहिये व उन्हें पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिये।

सक्रिय अधिगम की आवश्यकता

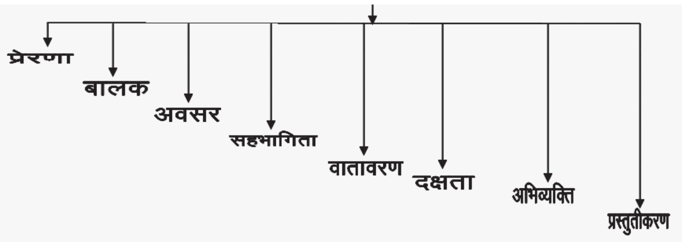

- **प्रेरणा –** शिक्षक को चाहिये कि वह बालक को समय – समय पर प्रेरित करें।
- अधिगम प्रक्रिया के लिये **बालक** व बाल केन्द्रित प्रक्रिया आवश्यक होना चाहिये।
- **अवसर –** बालक को सहज भाव से सीखने का अवसर मिलना चाहिये।
- **सहभागिता –** अधिगम प्रक्रिया में समस्त विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता होना चाहिये जिससे उन में आपसी सहयोग की भावना का विकास होगा।
- **वातावरण –** सक्रिय अधिगम के लिये उचित वातावरण का निर्माण आवश्यक है। जिससे बालक में लिखने , पढ़ने , सुनने की मूलभूत दक्षताओं का विकास होगा।
- **दक्षता –** इस प्रक्रिया से बालक में दक्षता का गुण विकसित होता है।
- **अभिव्यक्ति –** बालक जब कोई नई बात सीखता है तो उसे अभिव्यक्ति कैसे करना यह भी वह सक्रिय अधिगम द्धारा पूर्ण करता है।
- **प्रस्तुतीकरण –** सक्रिय अधिगम द्धारा बच्चों में प्रस्तुतीकरण की क्षमता का विकास होता है। जो शिक्षक का मुख्य उद्देश्य होता है।

बालक किसी बात को तभी सीख सकता है। जब उसमें सीखने की शारीरिक और मानसिक परिकल्पना होती है। बालक को प्रेरणा प्रदान करने व उसे शैक्षिक लक्ष्य को प्राप्त करने में व सामाजिक समायोजन को अनुप्राणित करने , उसके व्यवहार में सुधार करने उसमें आत्मनिर्भरता व सहयोग की भावना का विकास करने के लिये सक्रिय अधिगम प्रविधि बहुत ही प्रभावशाली प्रविधि है। सक्रिय अधिगम प्रक्रिया को रहीम के पुराने दोहे से भी चरितार्थ किया जा सकता है।

'' करत – करत अभ्यास से , जडमति होत सुजान ''
रसरी आवत जात ते , सिल पर होत निशान

अर्थात निरन्तर अभ्यास करते रहने से मूर्ख भी विद्धान हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे कुएं की उस सिल पर बार – बार रस्सी के आने – जाने से निशान पड़ जाता है। अर्थात् पत्थर भी घिस जाता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. सक्रिय अधिगम प्रविधि
   मध्यप्रदेश राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद। मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र भोपाल
2. उदयिमान भारत में शिक्षा – डॉ. गुरसरन दास त्यागी (पूर्व अध्यक्ष व अधिष्ठाता) शिक्षा संकाय
   डॉ. विजय कुमार नन्द (रीडर शिक्षा संकाय)
3. अधिगमर्कता का विकास और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया – (एस. के. मंगल व पी.डी. पाठक)

****

Effect Of Yogic Practices On Emotional States Of College Students

Dr. B.K. Chaudhary* Pranveer Singh Chouhan**

Abstract:- Yoga is an ancient science which is originated in India and has components of physical activity, which is instructed relaxation, and interception. It is also designed to bring balance and health to the physical, mental, emotional, and spiritual dimensions of the individual. The emotional problems and other mental health problems like increased anxiety, depression, etc among adolescents may lead to serious common problems as those of anxiety disorder, phobias, panic disorder, attention-deficient/hyperactivity disorder, conduct disorder, and antisocial behavior etc and these problems are infecting the present generation at a very high speed. The study is conducted on college students of Mohanlal Sukhadia University by preparing questionnaire and it is administered on 100 students out of which 50 students were selected randomly for experimental group and 50 students were selected for control group.The objective of this research paper is to study the effect of yogic practices on various emotional variables of college students.The conclusion of this paper is that yogic practices reduced anxiety, depression and many other emotional problems and one get relief from their stressful and exerted life. ***Keywords:*** *Yoga, Stress, Physical, Emotional, Depression.*

Introduction:- Yoga is an ancient science which is originated in India and has components of physical activity, which is instructed relaxation, and interception. It is also designed to bring balance and health to the physical, mental, emotional, and spiritual dimensions of the individual. Many Studies have shown that yoga practices reduce anxiety, stress, and depression and improve physical health. In a national, population-based telephone survey, 3.8% of respondents reported using yoga in the previous year and cited wellness (64%) and specific health conditions (48%) as the motivation for doing yoga. Unemployment, population explosion, industrialization, urbanization, and modernization of life have been badly affecting the human beings both physiologically and psychologically. The emotional problems and other mental health problems like increased anxiety, depression, etc among adolescents may lead to serious common problems as those of anxiety disorder, phobias, panic disorder, attention-deficient/hyperactivity disorder, conduct disorder, and antisocial behavior etc. These problems are infecting the present generation at a very high speed. Time to time educationist, psychologist, and mental health professionals are called by the government for finding out the remedy. At the present moment it looks that one has to impound oneself to pressing problems of students. Pressure of competitive life, insufficient knowledge of the academic courses, wrong choices and parental pressure, male/female relationship in school crises situations like new schools, new medium of instruction and failure in examination have their cascading effect. The teacher, his problems, the qualities of the teacher, the staff-students relationship, causes of student indiscipline, changing pattern of the society and its impact on parent/child relationship, influence of mass media of communication and the aspect of cultural shock add to the already troubled child. In such cases one can find peace and relief by doing Yoga and exercises.

Objective: The objective of this research paper is to study the effect of yogic practices on various emotional variables of college students.

Yogic Management: Emotions which arise due to hardship are traced to hallucination regarding the real nature of the self. To cope with this state of mind and body, Patanjali has recommended practices from Raja yoga, Jnana yoga, Karma yoga and Bhakti yoga, and a way of leading one's life. Many physical and mental states which create obstacles in the path of yoga arise due to the mental and physical symptoms of emotional conditions and these obstacles, which include disease, dullness, doubt, procrastination, laziness, craving, errors of perception, instability, pain, depression, irregular breathing, etc., need to be removed in order to progress on the path of yoga. It has been the experience of the great saints and seers that all the different yogic techniques or practices are effective when the environment, both internal and external, is supportive. It is found that a 4-week program of yogasanas and meditation lowers the aggressive behavior of students and the other study has reported that meditation (a) reduced problems related to maladaptive behaviors, (b)

*** Sport Officer, Pacific Institute of Engineering, Pacific Universiy, Udaipur, (Raj.) INDIA**
**** Pgt - physical education, Dr.bansi dhar school, Kota, (Raj.) INDIA**

Increased emotional and physical health and psychological well-being, (c) reduced the frequency of thought,(d) reduced substance abuse, and (e) generally improved the quality of life. Transcendental meditation reduces stress and improves academic performance.

Material Method: The study is conducted on college students of Mohanlal Sukhadia University by preparing questionnaire and it is administered on 100 students out of which 50 students were selected randomly for experimental group and 50 students were selected for control group.

Research Design: The present study considered experimental method and it can use significant variables for testing pre and post effect of yoga. The yogic practices are scheduled for a period of six months. The approximate time for the scheduled programme was 60 min. each day. For this research paper questionnaire, observations, interviews, and psychological tests are used. The selection of tool depends upon the type of data required and the nature of the problem. Mean, And T- test is used for studying significant difference between pre and post yogic practices. This test is developed for the measurements of 8 emotional states i.e. stress anxiety, depression, regression, fatigue, guilt, extraversion, and arousal. This scale was consisted of 96 items. The Scale is divided equally into 8th sub-variables containing 12 items for each. Statements were written in English. Meaning of difficult words were also explained by the investigator. The scoring was done as prescribed in the manual. Pre-test is conducted before the application of yogic practices and post-test were given after yogic practices.

Table- 1: Mean Significant Differences of Experimental group in Pre-test and Post-test

Variable	Group	N	Mean	T- ratio	Significant
Stress	Pre exp.	50/50	16.3	9.576	Sig.at 0.01
	Post		7.58		
Anxiety	Pre exp.	50/50	18.2	13.51	Sig.at 0.01
	Post		8.26		
Depression	Pre exp.	50/50	17	12.308	Sig.at 0.01
	Post		7.68		
Regression	Pre exp.	50/50	17.9	11.347	Sig.at 0.01
	Post		9.8		
Fatigue	Pre exp.	50/50	15.3	7.952	Sig.at 0.01
	Post		7.46		
Guilt	Pre exp.	50/50	15.3	11.359	Sig.at 0.01
	Post		6.2		
Extraversio n	Pre exp.	50/50	16.3	7.279	Sig.at 0.01
	Post		23.2		
Arousal	Pre exp.	50/50	17.4	11.089	Sig.at 0.01
	Post		25.4		

Following table can also be explained with the help of graphs which is as follows:

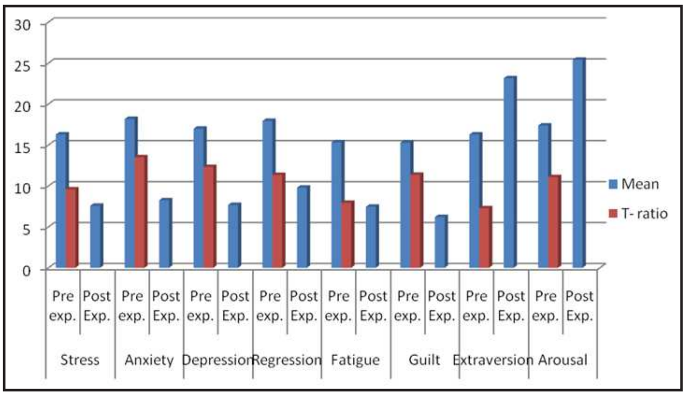

Conclusions:

The following data and graph study explained that there are a significant difference in scores of emotional states i.e. stresses anxiety, depression, regression, fatigue, guilt, extraversion, and arousal of college students. The study revealed that emotional variables of college students are reduced after yogic practices. But the emotional states i.e. extraversion and arousal were increased after yogic practices. The results found that meditation, practiced over long periods, produces definite changes in perception, attention, and cognition and it is also showed that yoga techniques are helpful in management of anxiety and improvement in concentration.

References:

1. Cairns, E., Mc Whirter, L., Barry, R., & Duffy, V. (1991). "The development of psychological well-being in the adolescence". Journal of Child Psychology and Psychiatry and Allied Disciplines, 32, 635-643.
2. Quaker, O. (2001). "Teachers Best Ideas for Involving Parents", http://www.pta.org.com.
3. Barnes, Vernon, A., Lynnette, B., Bauza, & Frank A. T. (2003). Impact of stress reduction on negative school behavior in adolescents, 1:10. Vbarnes@mail.meg.edu.
4. Goel Arun (2008) Yoga psychology and the importance of dreams for mental health. Retrieved on Dec 20. 2008.
5. Gautam, S. (1999) Mental health in ancient India and Us relevance in modern psychiatry. Indian journal of psychiatry Vol. 41.
6. Leive, C. (2009). *Glamour Online Magazine*. Retrieved 22 Feb. 2009 from http://www.glamour.com.
7. Macy, D. (2009). The Yoga Journal Story. Retrieved April 27, 2009, from http://www.yogajournal.com/global/34.
8. National Institutes of Health, National Center for Complementary and alternative Medicine (NIH NCCAM). (2009). *Yoga for Health*. Retrieved February 25, 2009. http://nccam.nih.gov/health/yoga/introduction.htm.
9. Sahasi, G. (1984). A replicated study on the effects of yoga on cognitive functions. *Indian Psychological Review, 27,* 33-35.

गुणवत्ता उन्नयन का पर्याय - सी.सी.ई. मॉडल

डॉ. अशोक अग्रवाल * डॉ. सरिता अग्रवाल **

उच्च शिक्षा का प्रशासन केवल विभाग का प्रबंधन नहीं है, वह उसके हितग्राहियों (विद्यार्थियों) की चेतना का उन्नयन भी है। शिक्षा जगत् से जुड़े होने के नाते हमारे सोच में अक्सर यह बात आती है कि क्यों समान योग्यता वाले एक शिक्षक के पास छात्र नहीं होते तथा दूसरे के यहां भीड़ होती है ? क्यों एक सेल्समेन उन्हीं साधनों से बिक्री के तमाम लक्ष्य प्राप्त करता है और दूसरा असफल हो जाता है ?

क्यों एक एम.बी.ए. डिग्रीधारी को इंटरव्यू के बाद तुरंत नौकरी मिल जाती है और दूसरे को निराशा हाथ लगती है ? क्यों समान डिग्री वाला एक डॉक्टर मरीजों में बेहद लोकप्रिय होता है और दूसरा अलोकप्रिय? सामान्य स्तर का एक अभिनेता 1 करोड़ में जिस रोल को कर लेता है, वहीं ख्याति प्राप्त हीरो उसी अभिनय के लिए 20 करोड़ मांगता है। एक जैसी डिग्री और योग्यता होने पर सफलता में इतना बड़ा फर्क कैसे पैदा होता है? इसका अर्थ यह है कि हमारे शिक्षण संस्थानों में दी जाने वाली औपचारिक शिक्षा सफलता की गारंटी नहीं देती। कार्य करना एक बात है और कार्य में गुणवत्ता लाना दूसरी बात कार्य यदि शरीर है तो गुणवत्ता उसकी आत्मा है। गुणवत्ता किसी सिस्टम की सफलता की चाबी है और इसका कोई विकल्प नहीं है। वस्तुत: शिक्षा का उद्देश्य केवल एक बार सीखना नहीं है बल्कि यह जीवनभर सीखते चलने का उपक्रम है। सतत् अध्ययन (Continuous Study), निरंतर अधिगम (Continuous Learning) और सतत् मूल्यांकन (Continuous Evolution) के बिना किसी काम में गुणवत्ता नहीं आ सकती।

वर्तमान में बढ़ती तकनीकि निर्भरता, मूल्यपरक रोजगारोन्मुखी शिक्षा, अधोसंरचनात्मक ढांचे में बदलाव, वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए नए पाठ्यक्रमों को लागू करना, अकादमिक नवाचारों का सृजन, दृष्टिकोण में परिवर्तन, आंतरिक प्रेरणा को जागृत करना, युवाओं को भारतीय परम्परा और प्रगति के बीच सामंजस्य बनाकर अपने विकास के रास्ते को चुनने का विकल्प देना, अकादमिक डिग्री के साथ-साथ पर्याप्त कौशल और हुनर सिखाना जैसे कारणों से गुणवत्ता उन्नयन अनिवार्य हो गया है।

इसी पर सुविचारित योजना के तहत मध्यप्रदेश शासन के उच्च शिक्षा विभाग ने वर्ष 2008-09 से वार्षिक पद्धति के स्थान पर सैमेस्टर प्रणालि लागू की गई है। जिसमें गुणवत्ता संस्कृति (Quality Culture) को विकसित करने के लिए छात्र के सम्पूर्ण मूल्यांकन के रूप में सतत् समग्र मूल्यांकन (सीसीई) योजना लागू की गई। सी.सी.ई. की इस नवीन पद्धति में छात्र के न केवल शैक्षणिक आधार पर मूल्यांकन किया जाता है अपितु उसकी शैक्षणेत्तार गतिविधियों के आधार पर समग्र मूल्यांकन किया जाता है। स्कूल में प्रचलित ग्रेड पद्धति का यह परिष्कृत स्वरूप है।

सतत् समग्र मूल्यांकन (सी.सी.ई.) मॉडल –

योजना एक ऐसी तकनीक है जो छात्र के परीक्षा बोझ को परिवर्तित कर अध्यापन-विज्ञान के नव-मॉडल को प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य छात्र का कार्यभार कम करके उसकी सम्पूर्ण योग्यता व क्षमता को उभारना है। सी.सी.ई. मॉडल को निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

(सी.सी.ई.)= छात्र विकास के संपूर्ण पहलू सतत् समग्र मूल्यांकन (सी.सी.ई.)

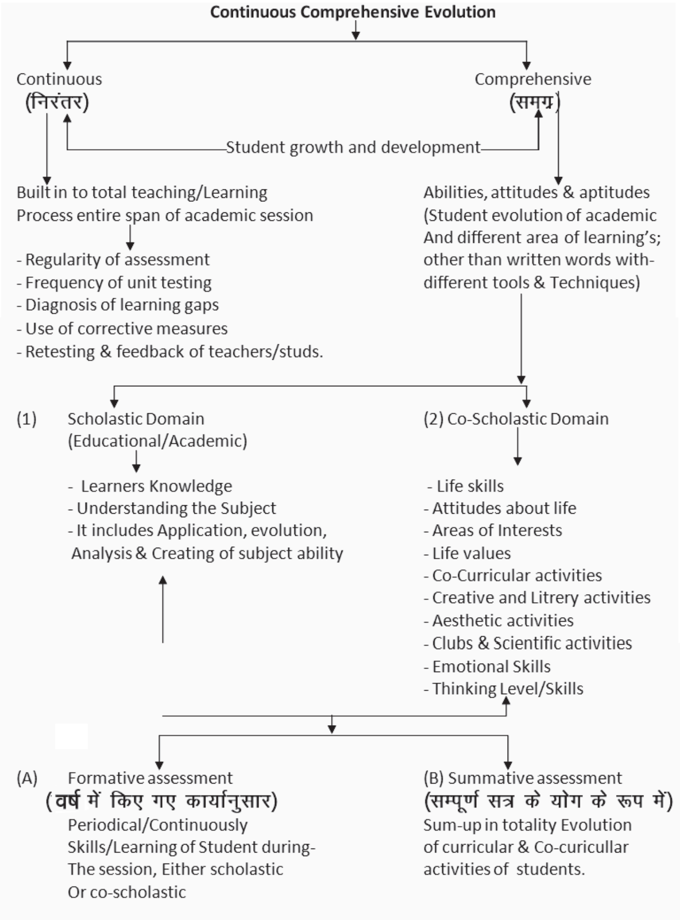

इस प्रकार सी.सी.ई. द्वारा छात्र का Intellectual, emotional, physical, Cultural और Social development के बारे में formative VWm Summative मूल्यांकन किया जाता है। इसमें छात्र के Work experience, Innovation, Steadiness, Team work, public Speaking, behavior आदि के साथ ही अन्य प्रमाप जैसे - Humanities, Sports, Music, athletics आदि को भी सम्मिलित किया जाता हैं। सी.सी.ई. वस्तुत: शैक्षणिक के साथ-साथ छात्र के व्यक्तित्व और उपयोगिता का मूल्यांकन है। इसी परिप्रेक्ष्य में हमें इसे समझकर क्रियान्वित करना होगा।

सी.सी.ई. द्वारा छात्र तनाव में कमी एवं शिक्षकीय उत्तरदायित्व:

छात्र के तनाव को कम करने मे सी.सी.ई. निम्नानुसार सहायता करता है -

1. छात्र के नियमित समय-अंतराल पर मूल्यांकन होने से उसकी सीखने की क्षमता का सतत् पता चलता रहता है, तदनुसार सुधार के उपाय किए जा सकते हैं।
2. विद्यार्थी की क्षमता एवं योग्यता के अनुसार अलग-अलग निवारण विधियाँ ओर तकनीक का सहारा लिया जा सकता हैं।

* प्राध्यापक –वाणिज्य ** सहायक प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत

3. शैक्षणिक सफलता पर ऋणात्मक कमेन्टस् से छुटकारा मिलता है। कम से कम यह तो सामने आता है कि विशेष छात्र की क्षमता/योग्यता ःया है।
4. सीखने की प्रक्रिया में सीखने वाले की सक्रिय सहभागिता होती है।
5. मूल्यांकन के अलग-अलग तरीके इसिलिए अपनाए जाते है कि छात्र की खूबियों तथा उपयोगिता का पता चल सके।
6. शिक्षक को स्वयं को अलग-अलग अधिगम-विधियों (Learning Styles) एवं योग्यताओं के लिए अपने को तैयार रखना चाहियें।
7. मूल्यांकन विधियों/तरीकों को छात्र को पूर्व से ही बताकर उनकी हिस्सेदारी तय करना।
8. छात्र को क्षमता बढ़ाने के अवसर प्रदान करना।

आत्मविकास के बिन्दु : छात्र के समग्र विकास में प्रभावी संप्रेषण तथा अंग्रेजी भाषा के अनुप्रयोग पर ध्यान प्रांरभ से ही देना चाहिए। इसमें संप्रेषण की बाधाओं को दूर करने, धारा प्रवाह बोलने के गुणों में अभिवृद्धि करने तथा उत्तर देने के पूर्व दूसरों की बात ध्यान से सुनने जैसे उपाय काम में लाए जाने चाहिए। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि गुणवत्ता किसी भी योजना या क्रियान्वयन के तरीकों को थोपने से नहीं आती, बल्कि इसके भागीदारों की सक्रिय सहभागिता एवं समर्पण द्वारा नैतिक मूल्यों की स्थापना से इसे प्राप्त किया जा सकता है। उक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुणवत्ता अभिवृद्धि का महत्वपूर्ण उपादान सतत् समग्र मूल्यांकन है।

सी.सी.ई. में अंतर्निहित भावना को समझकर उसका व्यावहारिक क्रियान्वयन करना होगा, यह तभी संभव होगा जबकि कक्षाओं में छात्रों की संख्या 30-40 तक सीमित हो, साथ ही विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात भी बढ़े। इसके लिए यह अनिवार्य है कि हम अपनी अच्छाइयों को और अधिक मजबूत करें, सुअवसरों का लाभ उठाएं, स्वयं में मानसिक दृढ़ता लाएं ओर अपनी कमजोरियों का निरपेक्ष साक्षात्कार करें, तब वह दिन दूर नहीं होगा जब यह आसमानी इन्द्रधनुष जमीनी हकीकत में तब्दील होगा और एसे में छात्र का महाविद्यालय प्रवेश भी आकस्मिक न होकर उसी तरह से होगा जैसे तेज धूप से थका-हारा व्यक्ति घने-छायादार वृक्ष को देखकर ललचा जाता है।

संदर्भ सूची –

1. गुणवत्ता एवं सेमेस्टर प्रणाली प्रकोष्ठ, उच्च शिक्षा विभाग भोपाल पेज 1 से 23।
2. शैक्षणिक पत्र सत्र 2011-12 हेतु गुणवत्ता दृष्टिपत्र आयुक्त का पत्र क्र.623/61/मंत्री उशि/2011 दिनांक 28 जुलाई 2011
3. विस्तृत दृष्टि पत्र दिनांक 28 जुलाई 2011
4. समाज वैज्ञानिकी अंक 23 (अप्रैल-सितम्बर 2013) पृ. 12 गौरव प्रकाशन, रीवा।
5. संशोधित कैलेण्डर और सेमेस्टर पद्धति में संशोधन हेतु पत्र क्र.189/11/आ.उ.शि/2011 भोपाल दिनांक 06.09.2011
6. कार्यालय आयुक्त, उच्च शिक्षा म.प्र. शासन का पत्र क्र./838/177/आउशि/गोप/प्र./12 भोपाल दिनांक 24.09.2012
7. उच्च शिक्षा में गुणवत्ता प्रबन्ध (गुणवत्ता वर्ष 2011-12)

****

मूल्यों, गुणों एवं व्यावहारिक शिक्षा से दूर होती उच्च शिक्षा

डॉ. संजय जोशी *

किसी भी देश की शिक्षा पद्धति उस देश की विचारधारा से सम्बन्धित होती है और यह विचारधारा उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में अंकुरित प्राचीन भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझना अनिवार्य है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षा को प्रकाश का वह स्त्रोत माना है जो जीवन के विविध क्षेत्रो में हमारा पथ प्रदर्शक बन सकता है। यदि हम प्राचीन भारत के स्वर्णिम युग का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि उस दौर में जब भारत विश्वगुरू कहलाता था तो इसके पीछे उस समय के तात्कालिन उच्च शिक्षा के केन्द्रों की महत्वपूर्ण भूमिका थी इनमें चाहे वो तक्षशीला, नालन्दा ,काशी, वल्लभी या विक्रमशीला हो सभी विश्वविद्यालय किसी न किसी क्षेत्र में अपनी एक विशिष्ट पहचान रखते थे।

इन विश्वविद्यालयों का शैक्षणिक स्तर ऊँचा होने के कारण विदेशों से भी अनेक जिज्ञासु अपनी ज्ञान पिपासा बुझाने यहाँ आते थे।प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में उच्च शिक्षा को प्रकाश का वह स्त्रोत माना है जो जीवन के विविध क्षेत्रों में हमारा पथ प्रदर्शक बन सकता है। उच्च शिक्षा केन्द्रों को प्रबन्धन की दृष्टि से सुसंगठित बौद्ध युग की देन कहा जा सकता है। महाभारत में कुलपति शब्द भी मिलता है जिसका अर्थ है जो दस हजार विद्यार्थियों का भरण पोषण करें।प्राचीन भारत के तक्षशील विश्वविद्यालय में छात्रों को साहित्य,उद्योगों एवं विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी।काशी विद्यालय में वेदों के अध्ययन के अतिरिक्त 16 शिल्पो की शिक्षा दी जाती थी। नालन्दा विश्वविद्यालय अपने समय का भारत का सबसे प्रसिद्ध उच्च शिक्षा का केन्द्र था।जिसकी प्रशंसा प्रसिद्ध चीनी विद्वान हेनसांग ने अपनी भारत यात्रा के दौरान की थी।इस विश्वविद्यालय में कडी परीक्षा के उपरान्त छात्रों को प्रवेश मिलता था।यहाँ एक विशाल पुस्तकालय भी था जिसे 12 वीं शताब्दी के अंत में मुस्लिम आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी ने जला कर नष्ट कर दिया था।वल्लभी में 6000 बौद्धें भिक्षु अध्ययन करते थे। यहाँ बौद्ध धर्म के साथ धार्मिक उदारता और बौद्धिक स्वतन्त्रता की शिक्षा दी जाती थी।

विक्रमशील विश्वविद्यालय में व्याकरण,तर्क,दर्शन,तंत्र और कर्मकाण्ड की शिक्षा दी जाती थी।विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को समावर्तन के अवसर पर बंगाल के शासको द्वारा डिग्री दी जाती थी। इससे भी आगे यदि एवं थोडा और पीछे जाएँ तो देखते है कि उस समय के भारत में अध्ययन अध्यापन हेतु समाज में गुरूकुल प्रणाली प्रचलित थी,जिनमें विद्यार्थी को अपनी आयु के आरंभिक 25 वर्ष इन्हीं गुरूकुल में गुरू के सानिध्य में व्यतीत करने होते थे। वह 25 वर्ष का हो जाने तक पूर्णकालिक वहीं परिवार से दूर गुरूकुल में ही रहता था। इस समयावधि में वह जीवन से संबंधित विभिन्न पक्षों की व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण करता था।

यदि इन गुरूकुलो एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों व वहाँ इन पर प्रदान की जाने वाली शिक्षा की चर्चा करे तो हम पाते है कि उस समय की शिक्षा व्यवस्था उस समय के समाज की आवश्यकता के अनुरूप एक अच्छे, कुशल, स्वावलंबी, आत्मविश्वासी नैतिक गूणों से परिपूर्ण, बहादुर व दैनिक जीवन की आवश्यकताओं व समस्याओं के सन्दर्भ में परिपूर्ण व्यावहारिक ज्ञान से युक्त नागरिक को तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। इन विश्वविद्यालयों में वेदों, शास्त्रों, शास्त्रों, वनस्पति, पर्यावरण कृषि, नैतिक आचरण व गुणों, सामाजिक व पारिवारिक मूल्यों, आयुर्वेद के ज्ञान ,विभिन्न छोटे छोटे कुटिर व्यवसायों व शिल्पकला के साथ जीवन से संबंधित प्रत्येक पक्ष चाहे वह स्वास्थ्य हो,कला हो,गृह विज्ञान हो, जंगली जडी बूटियों व विभिन्न वनस्पति ज्ञान से संबंधित व्यावहारिक व रोजगारन्मुखी शिक्षा व ज्ञान प्रदान किया जाता था जिससे उसके जीवन में कभी भी निराशा, अवसाद, हताशा व पराश्रितता जैसे नकारात्मक तत्व हावी नहीं हो पाते थे। उस समय की शिक्षा व्यवस्था का यह सुफल था कि तात्कालिन समाज में बेरोजगारी, वृद्धाश्रम, नशामुक्ति केन्द्र, तलाक जैसी समस्याओं का अस्तित्व नहीं था। अवसाद, हताशा व आत्महत्या जैसी सामाजिक समस्याओं का कोई नामोनिशान नहीं था।

दु:ख की बात है कि आज के उच्च शिक्षा के केन्द्र केवल सैद्धान्तिक ज्ञान देकर और शायद वो भी नहीं केवल कागजी डिग्रियां ही प्रदान कर रहे है। कुछ वर्शो तक तो ये पाठ्यक्रम रोजगारोन्मुखी थे किन्तु आज तो उच्च अंक व प्रतिशत बनाने के बाद भी युवा बेरोजगार है। केवल सैद्धांतिक शिक्षा होने के कारण वे मानसिक व मनोबल से भी कमजोर होने के कारण अवसाद व आत्महत्या के शिकार हो रहे है। इस शिक्षा के बाद वे अपना स्वरोजगार प्रारम्भ करने की भी स्थिति में नहीं है क्योकि वर्तमान शिक्षा पद्धति में कुटिर उद्योगो, व्यवसायों व शिल्पकलाओं से संबंधित व्यावहारिक व स्वरोजगारोन्मुखी शिक्षा की पूर्ण उपेक्षा की गई है। पिछले 2000 वर्शो की भारतीय सामाजिक व्यवस्था जाति प्रधान रही है।

आजादी के पश्चात् इस व्यवस्था के विभिन्न दोषों की चर्चा के साथ ही इसके उन्मूलन की बात पर जोर दिया जा रहा है। इस व्यवस्था में लाख कमियां व दोष रहे हो लेकिन इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता व अच्छाई से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता है। जाति व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण बात यह रही है कि प्रत्येक जाति के अपने निश्चित व्यवसाय व पेशे होते थे जो पिता व पितामह के द्वारा पुत्र या पोत्र को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक परम्परागत रूप से हस्तांतरित होते थे। बचपन से ही बेटा घर पर पिता के साथ अपने परिवार के व्यवसाय से परिचित हो जाता था व समय बीतने के साथ साथ बड़ा होने पर वह उस व्यवसाय में कुशल हो जाता था। जाति व्यवस्था की इस विशेषता ने एक महत्व का कार्य यह किया कि उसने भारतीय युवओं के समक्ष रोजगार का या अर्थ का संकट कभी पैदा नहीं होने दिया। उन्हें बेरोजगारी की हताशा व निराशा से दूर रखा।

छोटे छोटे कुटिर व बुनियादी हस्तकरघा तथा शिल्प कौशल के ज्ञान ने उन्हें स्वरोजगारोन्मुखी बनाया। आज हम पुन: उच्च शिक्षण संस्थानों में जाति व्यवस्था की इसी विशेषता की वकालात कर रहे है चाहे उसका यह स्वरूप नया :यों न हो। आज हम हमारे युवाओं को स्वरोजगारोन्मुखी पाठ्यक्रमों के प्रशिक्षण अथवा कैरियर अवसर मेलों या जॉब फेयर के माध्यम से इसी ओर ही तो प्रवृत कर रहे है कि कोई न कोई स्किल या छोटे छोटे उद्योगो व शिल्पकलाओं व व्यवसायों की जानकारी प्राप्त कर अपने अपने निजी व्यवसाय प्रारम्भ करके स्वारोजगारोन्मुखी बनो।

* विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र विभाग) स्वामी विवेकानंद शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

महात्मा गाँधी ने भी अपनी बेसिक शिक्षा योजना में शिक्षा को व्यवहारिक व रोजगारोन्मुखी तथा नैतिक,सामाजिक व आध्यत्मिक गुणों से युक्त बनाने की परिकल्पना प्रस्तुत की थी। यह दुख: की बात है कि महात्मा गांधी की शिक्षा के संबंध में इतनी महत्तवपूर्ण योजना को हमारे राजनेता, शिक्षाशास्त्री, नीति निर्माता व योजनाकार इसें अमली जामा नही पहना सके। 22 अक्टूबर 1937 मे महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश के राष्ट्रीय मनोवृति वाले शिक्षाशास्त्रियों की एक परिषद वर्धा में आयोजित हुई थी। इस परिशद मे गांधीजी ने जो विचार परिषद के सम्मुख रखें उसके प्रमुख अंश इस प्रकार है:-

1. शिक्षा की वर्तमान पद्धति किसी भी तरह देश की आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर सकती। उच्च शिक्षा की तमाम शाखाओं में अंग्रेजी भाषा को माध्यम बना देने के कारण उसने उच्च शिक्षा पाए हुए मुटठी भर लोगों तथा अपढ़ जनसमुदाय के बीच एक स्थायी दीवार सी खड़ी कर दी है। अंग्रेजी को इस तरह अत्यधिक महत्व देने के कारण शिक्षित लोगों पर इतना अधिक भार पड़ गया है कि प्रत्यक्ष जीवन के लिए उसकी मानसिक शक्तियाँ पंगु हो गई है और वे अपने ही देश में विदेशियों की भाँति बेगाने बन गए है।
2. उद्योग के शिक्षण के अभाव नें शिक्षितों को उत्पादक काम के सर्वथा अयोग्य बना दिया है और शारीरिक दृष्टि से भी उनका बड़ा नुकसान किया है।
3. लड़को व लड़कियों का सर्वत्तोमुखी विकास हो, सारी शिक्षा जहाँ तक हो सके एक ऐसे उद्योग द्वारा दी जानी चाहिए जिसमें कुछ उपार्जन भी हो।
4. कपास,रेशम और उनकी बिनाई से लेकर सफाई, लुढाई, कताई, दंगाई, मांद,लगाना, ताना लगाना, दो सूती (दुपटा) करना, डिजाइन (नमुने) बनाना तथा बुनाई आदि तमाम क्रियाएँ और कसीदा काढना, सिलाई, कागज बनाना, कागज काटना जिन्दसात्री, अलमारी, फनीर्चर बनाना, खिलौने बनाना, गुड बनाना इत्यादि ऐसे निश्चित उद्योग है जिन्हें आसानी से सीखा जा सकता है और जिन्हें चलाने के लिए बड़ी पूंजी की भी आवश्यकता नहीं होती है।
5. इस प्रकार की शिक्षा से लेकर व लडकियाँ इस योग्य हो जाएँ कि शिक्षा करने के उपरान्त वे अपनी रोटी कमा सके।
6. मैंने खूब सोच समझकर यह राय कायम की है कि प्रथामिक शिक्षा की यह वर्तमान प्रणाली न केवल धन और समय का अपव्यय करनेवाली है, बल्कि हानिकारक भी है। अधिकांश लड़के अपने माँ-बाप के तथा अपने खानदानी पेशे-धन्धे के काम के नहीं रहते, वह बुरी आदतें सीख लेते है, शहरी तौर-तरीको के रंग में रंग जाते है और थोडी सी ऊपरी बातों की जानकारी ही उन्हें प्राप्त होती है जिसे चाहे जो नाम दिया जाएं पर शिक्षा तो कदापि नहीं कहा जा सकता। इसका इलाज तो मेरे ख्याल से यह है कि उन्हें औद्योगिक या दस्तकारी की तालीम के जरिएं दी जाए।
7. मैं वास्तव में बल धन्धे या उद्यम पर नहीं, बल्कि हाथ उद्योग द्वारा शिक्षण पर दे रहा हूं। साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान इत्यादि सभी विषयों की शिक्षा उद्योग द्वारा ही दी जानी चाहिए।
8. आज लोग उन पेशों को जो उनके घरों में होते को भूल गए है, पढ़-लिखकर उन्होने क्लर्की का काम हाथ में ले लिया है और इस तरह वे आज देहात के काम के नही रहे है।
9. इलाज इसका यह है कि प्रत्येक दस्तकारी की कला और विज्ञान को व्यावहारिक शिक्षण द्वारा सिखाया जाएं और उद्योग द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा दी जाए। वस्त्र निर्माण की दस्तकारी ही एक ऐसी चीज है जो सब जगह सिखाई जा सकती है और तकली पर कुछ खर्च भी नहीं होता।

बेसिक शिक्षा में सफाई, आरोग्य और आहार-शास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्तों का समावेश हो जाता है। अपना काम खुद कर लेने तथा घर पर अपने माँ-बाप के काम में मदद इत्यादि की शिक्षा भी उन्हें मिल जाएगी। आज के बच्चों को न तो सफाई का व स्वास्थ का ध्यान है, न वे यह जानते है कि आत्मनिर्भरता क्या चीज है।

इस शिक्षा की सफलता की कसौटी उन्हें स्वावलम्बी, आत्मविश्वासी, नैतिक आचरणों व गुणों तथा सामाजिक मूल्यों के अनुरूप व्यावहारिक से परिपूर्ण बनाना है। आज आवश्यकता इस बात कि है इस प्रकार के पाठयक्रम बनाए जाएँ जिसमें उच्च गुणों उत्तम चरित्र, उत्तम शिक्षा, उत्कृष्ठ कार्य संस्कृति, तकनीकी व प्रौद्योगिक तथा व्यावहारिक बनाने के लिए कुछ बुनियादी बिन्दुओं पर विचार आवश्यक परिवर्तन करना आवश्यक है। निजीकरण व प्रतियोगितात्मक परिवेश में उच्च शिक्षा में गुणात्मक संधार एवं आर्थिक प्रासंगिक, व्यावहारिक व उद्देश्य परम आवश्यक है।

शिक्षित बेराजगारी की बढती भीड़ को रोकने के लिए उच्च शिक्षा क्षेत्र में परम्परागत सामान्य शैक्षणिक पाठयक्रमों के साथ साथ या उनके स्थान पर कम्प्यूटर, एकाउंटिग, वोकेशनल, अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत ज्योतिश (कर्म काण्ड) शिल्प कला, टेक्सटाइल डिजाईनिंग, रंगाई- छपाई, गारमेंन्ट-डिजाईनिंग, फैशन डिजाईनिंग, जैव तकनीक, औद्योगिक रसायन, पर्यटन, होटल प्रबन्धन, बीमा, व्यक्तित्व विकास, विक्रय प्रबन्धन, विदेशी व्यापार, पत्रकारिता, सूचना तकनीक फूड प्रीजरवेशन एवं पैकेजिंग, भोजन विज्ञान ,मोमबत्ती उद्योग, अगरबत्ती उद्योग, रेशम उद्योग, शहद उद्योग व गौ दुग्ध उसके उत्पाद से बनी औषधि उद्योग तथा आयुर्वेद योग व प्राणयाम से संबंधित रोजगारोन्मुखी व व्यावयासिक पाठयक्रम प्रारम्भ किये जाने की आज महत्ती आवश्यकता है। यदि भारत को पुन: विश्व शक्ति एवं विकसित राष्ट्र बनाना है तो उसे उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणवता नैतिक शिक्षा एवं शिल्प कला पर आधारित शिक्षा को स्थान देना होगा।

युवाओं के प्रेरणा स्त्रोत स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था कि मूलत: भारतीय शिक्षा पद्धति व्यक्तित्व के चहुमुँखी विकास, चारित्रिक गुणों, नैतिक मुल्यों, अर्थोपार्जन की शक्ति की भावना तथा सुसंस्कृत नागरिको के निमार्ण पर बल देती है। शिक्षा व्यक्ति के मानसिक, आध्यात्मिक एवं आंतरिक शक्तियों को जागृत करके उसके उर्ध्वमुखी विकास में महत्व की भूमिका निभाती है। आवश्यकता है ऐसे पाठयक्रम व गुणात्मक करने वाली शिक्षा की पाठयक्रम ऐसे बनाएं जाने चाहिए जो वास्तव में उनको रोजगार, नैतिक आध्यत्मिक व मानसिक रूप से सुदृढ़ बनाए। दैनिक जीवन की समस्याओं के निराकरण जानने वाले व्यावसायिक व व्यावहारिक शिक्षा आज की सबसे अधिक महत्ती आवश्यकता है। तभी उच्च शिक्षा के सही महत्व को चरितार्थ करके एक सशक्त युवा व भारत राष्ट्र का हम निमार्ण कर सकेंगे।

सन्दर्भ

1. अग्रवाल, बी. बी.: आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएं, आगरा-3 विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड।
2. जीत, योगंन्द्र : शिक्षा में नवाचार और नई प्रवृतियाँ, आगरा-3: विनोद पुस्तक मंदिर
3. कुरूक्षैत्र, मासिक पत्रिका, नई दिल्ली के विभिन्न अंक
4. योजना, मासिक पत्रिका, नई दिल्ली के विभिन्न अंक
5. नई दुनिया, दैनिक समाचार पत्र, दिनांक 4 जून 2006 इन्दौर
6. राजस्थान पत्रिका, दैनिक समाचार पत्र, दिनांक 2 अ:टूबर 2010 जयपुर
7. मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ: सामाजिक विचारधारा कौम्ट से मुकर्जी तक, दिल्ली -07, विवेक प्रकाशन 7 यू.ए., जवाहर नगर पी.पी. 484-487

बदलते समाजीकरण में बच्चों पर इंटरनेट का प्रभाव

डॉ. अंजना जैन *

शोध सारांश :- बच्चों की शैक्षणिक यात्रा में आज कम्प्यूटर व इंटरनेट, सूचनातंत्र व मनोरंजन के स्त्रोत के रूप में दैनिक जीवन का हिस्सा बन गया है। आधुनिक युग में माता-पिता भी बच्चों के लिए इंटरनेट की उपयोगिता समझते हैं। वहीं इसके दुष्प्रभाव से अभिभावक चिंतित हैं। क्योंकि इंटरनेट की कोई सीमा नहीं होती। अनगिनत साइट खोली जा सकती हैं। इंटरनेट और साइबर कल्चर के कुछ दोष भी हैं - हिंसा, अश्लीलता, नशा परोसती साइट अल्प आयु वर्ग के बच्चों के बौद्धिक विकास व प्रत्यक्ष संवाद को बाधित करती है। आज मुंबई, दिल्ली जैसे शहर में मां-बाप अपने इंटरनेट व्यसनी बच्चों को क्लिनिक लेकर पहुंच रहे हैं। अत: प्रस्तुत शोध अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि इंटरनेट उन्मुख सोसायटी में हमारे प्रत्यक्ष संवाद क्यों दम तोड़ रहे हैं? शारीरिक मनोरंजन क्रियाओं से बच्चे क्यों विमुख हो रहे हैं? पठन-पाठन की तुलना में इंटरनेट की सोशल वेबसाइट के संवाद क्यों प्रभावी हो रहे हैं? इसको किस तरह रोका जा सकता है यह जानने की कोशिश की गई है ।

प्रस्तावना-

बच्चों की शैक्षणिक यात्रा में आज कम्प्यूटर उनका हमसफर बन गया है। सूचनाओं के अथाह भंडार और मनोरंजन के स्त्रोत के रूप में इंटरनेट बच्चों के लिए उनके दैनिक जीवन का हिस्सा हैं। आज यह बात सही है कि आधुनिक युग में माता-पिता बच्चों के लिए इंटरनेट की उपयोगिता को समझ रहे हैं, वहीं इंटरनेट के अधिक उपयोग से होने वाले दुष्प्रभाव से भी बच्चों के अभिभावक चिंतित हैं। इंटरनेट पर किसी तरह की कोई सीमा नहीं होती, यहाँ कई तरह की अनगिनत साइट खोली जा सकती है। इंटरनेट की ये विशेषता लाभदायक भी है और हानिकारक भी। आज के बच्चे जहाँ बड़ी आसानी से इंटरनेट-फ्रेंडली हो रहे है, वहीं वे अनजाने में कई प्रकार के दुष्प्रभावों के वंशीभूत हो जाते है।

इस संबंध में इंटरनेट और साइबर कल्चर के कुछ दोष भी हैं। बच्चे अनजाने में इंटरनेट पर कई सारी व्यक्तिगत जानकारी दे देते हैं। टीन एजर्स इस तरह बहुत सी गोपनीय बातें भी कई तरह के प्रलोभन के चलते नेट पर शेयर कर देते हैं। इसके अलावा नेट पर अनपेक्षित साइट्स भी बच्चों पर गलत प्रभाव डालती है। हिंसा, अश्लीलता और नशा परोसती साइट्स निश्चित रूप से अल्प आयु वर्ग के बच्चों के बौद्धिक विकास को बाधित करती है। इंटरनेट के इन दुष्प्रभावों ने आज बच्चों के अभिभावकों को चिंता में डाल दिया है।वर्तमान में इंटरनेट की बढ़ती लोकप्रियता व सम्मोहन ने विदेश के साथ-साथ देश में भी बच्चों व युवाओं को तेजी से अपनी पकड़ में ले रहा है।

हाल ही में ग्रेट ब्रिटेन में किए गए दो सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि वहां माता-पिता का अपने बच्चों से संवाद इंटरनेट के माध्यम से ही होता है एवं वहां 11 वर्ष से 14 वर्ष के बीच के लगभग 40 प्रतिशत बच्चे मोबाइल अथवा कम्प्यूटर के जरिये अश्लील साहित्य के साथ में महिला मित्रों की नग्न तस्वीरें दोस्तों के बीच बिना रोक-टोक के भेज रहे हैं।[1]

भारत में इंटरनेट की दुनिया ने यहां के बच्चों व युवाओं को पूरी तरह से अपनी चपेट में ले लिया है। 100 बच्चों का सर्वेक्षण किया गया है, जिसके परिणाम निम्नानुसार है। निम्न तालिका में भारत की नेट सर्फिंग की स्थिति

भारत में नेट सर्फिंग की स्थिति

(1) प्रति सप्ताह दो घंटे से कम उपयोगकर्ता	-	34 प्रतिशत
(2) प्रति सप्ताह दो से चार घंटे उपयोगकर्ता	-	28 प्रतिशत
(3) प्रति सप्ताह पांच से आठ घंटे उपयोगकर्ता	-	16 प्रतिशत
(4) प्रति सप्ताह आठ घंटे से अधिक उपयोगकर्ता	-	08 प्रतिशत
(5) प्रति सप्ताह कोई उपयोग नहीं	-	14 प्रतिशत

स्त्रोत:-*Figure - chatting hours using internet in typical week.*

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत में नेट सर्फिंग की लत अधिकांश युवाओं एवं बच्चों को लग चुकी है। नेट सर्फिंग की इस लत ने सामाजिक संबंधों व प्रत्यक्ष संवाद को काफी हद तक प्रभावित किया है।

मुंबई में ऐसे कई इंटरनेट एडिक्टेड क्लिीनिक की शुरूआत भी हो गई है जहां दर्जनों मां-बाप अपने बच्चों को लेकर ऐसे क्लीनिक पर लगातार पहुंच रहे हैं। इंटरनेट प्रयोग के मामले में भारत आज एशिया में तीसरा तथा विश्व में चौथा देश है।[2]

साथ ही इंटरनेट प्रयोग करने वाली 85 फीसदी आबादी यहां 14 से 40 वर्ष के बीच है। इस संदर्भ में सामाजिक तथ्यों से पता चलता है कि आज कम्प्यूटर व इंटरनेट की दुनिया बच्चों में परिवार, स्कूल व क्रीड़ा समूह जैसी प्राथमिक संस्थाओं की उपादेयता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करते है।[3]

इंटरनेट के बढ़ते उपयोग ने आज संवाद के लिए शारीरिक उपस्थिति को खत्म सा कर दिया है। फेसबुक, ट्विटर व ऑरकुट जैसी वेबसाइट्स के सामने हमारे दिमाग को तरोताजा रखने वाली स्वास्थ्य क्रियाएं हमारे प्रत्यक्ष सामाजिक जीवन से गायब होती जा रही हैं। विद्यालयों में पठन-पाठन की क्रिया व शिक्षक की तुलना में इंटरनेट की सोशल वेबसाइट से संवाद प्रभावी क्यों हो रहा है? यह दौर ज्ञानाश्रित सूचना क्रांति का है। निश्चित ही सूचनाओं के तकनीकी संवाद ने परिवार व उसकी सामूहिकता को विखंडित करके बचपन को सबसे अधिक प्रभावित किया है।

आज मां-बाप को इतनी फुरसत ही नहीं है जो उसे यह बता सके कि समाज का उसके जीवन में क्या महत्व है तथा उसके सामाजिक जीवन को चयन करने की दिशा क्या होगी? बच्चों के जीवन में सांस्कृतिक मूल्यों की सीख देने वाले परिवार और स्कूल तक उनके बचपन से दूर हो रहे हैं। बच्चों का बचपन मनोरंजन व शारीरिक खेलकूद से हटकर संचार माध्यमों की दुनिया तक सिमट रहा है। एक कड़वी सच्चाई यह भी है कि परिवारों से बढे-बूढ़े तो निकाल दिए गए हैं तथा मां-बाप भी अब बच्चों के बचपन से अनुपस्थित हो रहे हैं। ऐसे अकेले वातावरण में संचार माध्यम ही ऐसे माध्यम बचते हैं जिनसे बच्चे अपने मनोरंजन की चीजों के चयन के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं।

कम्प्यूटर व इंटरनेट की दुनिया की विशेषता यह है कि ये बच्चों के

* प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

सामूहिक व मानवीय संवेदनाओं के पक्ष को गायब करके उसके निहायत काल्पनिक, स्वकेन्द्रित व रोमांचक उत्तेजना देने वाले पक्ष को ज्यादा प्रभावी बना देते हैं। चूंकि बच्चों के सामाजीकरण करने वाले परिवार व स्कूल जैसी प्राथमिक संस्थाएं भी बाजारवाद की जकड़ में है इसलिए बच्चे भी सांस्कृतिक शून्यता के दौर से गुजर रहे हैं। बचपन का सही निवेश जीवन भर मानवीय संवेदनाओं को संभाल कर रखता है।

वर्तमान का सच यह है कि दैहिक सामाजीकरण का अभाव और मीडिया, कम्प्यूटर व इंटरनेट के यांत्रिक संवादों की प्रचुरता बच्चों के बचपन को विवादास्पद बना रही है। बच्चों के जीवन में व्यसन के रूप में विकसित हो रहा उत्तेजना का यह स्थायी भाव कभी बाल-हिंसा के रूप में सामने आता है तो कभी आत्महत्या के रूप में।

इंटरनेट से बनने वाली दुनिया के नागरिकों का समाज अब 21वीं सदी के नेट से जुड़े नागरिकों का समाज बन रहा है। इस समाज में पारस्परिकता, प्रेम, बंधुत्व, मनुष्यता, सहानुभूति व मानवीय संवेदना जैसे सनातन मूल्यों का अभाव साफ दिखाई दे रहा है। इनके अभाव में सबसे अधिक प्रभावित होने वाला बच्चों का बचपन ही है। बच्चों की इस पीढ़ी में सफलता प्राप्त करने की तीव्र इच्छा तो है, परन्तु जीवन में असफल होने का धैर्य व संयम की मात्रा नहीं है।

सुझाव :-

बच्चे इंटरनेट का उपयोग करें यह भी जरूरी है, लेकिन वे इसके बुरे प्रभाव से बचें इसके उपाय भी जरूरी हैं। बच्चे इंटरनेट के आदी न हो जाएं, सूचनाओं के विशाल भंडार में से बच्चे वही चुनें जो उनके सकारात्मक विकास में सहायक हो, यह ध्यान रखना भी आवश्यक है। आज के समय में माता-पिता ही बच्चों को सही जानकारी दें सकते हैं। बच्चे अनुपयोगी साइट न देंखे इसलिए माता-पिता को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए :-

- इंटरनेट पर कई तरह के फिल्टरींग और ब्लॉकिंग सिस्टम भी है, जिसमें सुविधा है कि आप ऐच्छिक साइट्स ही खोल सके और अनचाही एवं अनोपयोगी वेबसाइट्स सर्फिंग ही न की जा सके। माइक्रोसॉफ्ट इंटरनेट एकसप्लोरर पर भी वह सुविधा उपलब्ध है कि आप अपेक्षित विषय पर आधारित साइट पर जा सके।
- इंटरनेट कंटेंट रेटिंग एसोसिएशन का एक वेबसाइट रेटिंग सिस्टम है। इसके रेटिंग्स विकल्प का उपयोग कर आप जिस विषय से संबंधित साइट्स चाहते हैं उसकी सूची देख सकते हैं। इसके अलावा कई इंटरनेट फिल्टरिंग सॉफ्टवेयर हैं जो अनुपयुक्त साइट्स को खुलने नहीं देते। फिल्टरिंग की सुविधा इंटरनेट सर्विस प्रोवाइडर भी प्रदान करते हैं, जिसका प्रयोग करना चाहिए।
- बच्चे अनुपयुक्त साइट न देखें, इसके लिए जरूरी है कि परिवार के बड़े लोग देखरेख रखें। वैसे तो छोटी आयु के बच्चों को माता-पिता अथवा अन्य किसी बड़े पारिवारिक सदस्य के साथ बैठकर ही सर्फिंग करानी चाहिए। बच्चों को नेट सर्फिंग की सही-सही जानकारी देनी चाहिए।
- शिक्षकों और नेट विशेषज्ञों के परामर्श से वेबसाइट की एक सूची निर्धारित करनी चाहिए जो बच्चों के लिए आवश्यक एवं उपयोगी हो। घर में बच्चों द्वारा इंटरनेट के उपयोग का समय भी निश्चित होना चाहिए जिससे वे उचित समय में नेट का उपयुक्त लाभ उठा सके। बच्चों संबंधी वेबसाइट्स और सर्च इंजन के बारे में जानकारी के लिए कई तरह के स्त्रोत हैं। उदाहरण के लिए एमएसएन किड्स सर्च पर जाकर माता-पिता बच्चों के लिए अलग-अलग विषयों से संबंधित साइट्स के बारे में जानकारी जुटा सकते हैं। अभिभावक जब बच्चों को नेट सर्फिंग करते हुए देख नहीं पाते तो वे ब्राउजिंग हिस्ट्री में जाकर ये देख सकते हैं कि बच्चों ने कौन-कौन सी साइट्स सर्च की है। इस संबंध में बच्चों के साथ बैठकर बात भी करनी चाहिए और उन्हें समझाना चाहिए कि क्या सही है क्या गलत।

निष्कर्ष :-

बच्चे हमारे समाज व राष्ट्र का भविष्य है। इनके बचपन के वात्सल्य, प्रेम, दया व सहानुभूति के साथ अच्छा-बुरा, सच-झूठ व हिंसा-अहिंसा के बीच के अंतर के अच्छे भाव को जीवन में समाहित करने व गलत को जीवन से निकालने के कार्य में परिवार व स्कूल जैसी प्राथमिक संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। बच्चों के जीवन से अनावष्यक रोमांच को हटाने के लिए आवश्यक है कि उनके एकाकीपन, तनाव, निराशा व कुंठा को कम करते हुए उनको रचनात्मक व शारीरिक गतिविधियों में व्यस्त किया जाए।

बच्चों में जज्बाती थकान व हिंसक उत्तेजना से जुड़े भाव को, माता-पिता और बच्चों के बीच बढ़े फांसलों को कम करते हुए एवं उनसे निकट का संवाद स्थापित करके कम किया जा सकता है। आज वैश्विक समाज के बढ़ते बाजार से बचाव मुश्किल है, परन्तु बच्चों से प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करते हुए उनमें इंटरनेट की दुनिया से उभरने वाले एकाकीपन के स्थायीभाव को कम किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :-

1. डॉ. गुप्ता विशेष - आभासी दुनिया में गुम बचपन, 2013 पृ.क्र. 2
2. डॉ. गुप्ता विशेष - आभासी दुनिया में गुम बचपन, 2013 पृ.क्र. 2
3. A. Ventaktesh - A concept utilzation 80 Household/Technology Interaction Advances in Consumer Research Vol 12 189-194 1985

****

शासकीय योजनाओं में आदिवासी महिलाओं की स्थिति (मप्र के संदर्भ में)

डॉ. डी.डी. महाजन *

''जनजाति अथवा अदिवासी ऐसे मानव समूह है, जिन्होनें बाह्य सभ्यता के कुछ तत्वों के ग्रहण करने के पश्चात् भी अपनी विशिष्ट् और मौलिक सांस्कृतिक तत्वों एवं विशेषताओं को नष्ट होने नहीं दिया है। यह दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय अध्ययन के विषय से संबंधित है। सामान्य जनजाति शब्द उन लोगों के लिए होता है। जो सभ्य समाज से, आधुनिकता से दूर जंगलो, पर्वतों की अनेक टलहटियाँ एवं घाटियों के मध्य पठारों में निवास करते है। सामान्यत: इन जनजातियों को अनेंक उपजातियाँ है :- भीला, भिलाला, बारेला, तड़वी भील, केरकू, बेगा, आदि।

वैसे तो जनजाति समाज की सामाजिक स्थिति अत्यन्त सोचनीय है। जनजातीय. समाज अंधविश्वासों रूढ़ियों तथा परमपराओं में विश्वास करता है। इनमें शिक्षा का निम्न स्तर है। सरकार और शासन द्धारा किये जा रहे प्रयास गंभीर होने के बावजूद भी अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो पा रहे है। आरक्षण नीति का फायदा जनजातियों में कुछ विकसित समुदाय बड़ी कुशलता से अपनी झोली में डाल रहा है। उपजातिगत स्तर पर अविकसित समुदाय आज इनसे वंचित रह जाता है, अन्नत: शासकीय योजनाओं का पूर्ण लाभ इन अविकसित आदिवासी समुदाय तक नही पहुचँ पा रहा है। शासन ने इन तक लाभ पहुँचाने के लिए अनेक प्रयोग भी किये किन्तु इनसे आज भी इनका लाभ प्राप्त नहीं हो रहे है। वर्तमान में स्वयं सेवी संस्थाएं और एन.जी.ओ. आदिवासीयों के विकास हेतु शासन की योजनाओं में सहभागिता कर इन तक पहुँचने का प्रयास कर रहे है। ऐसी संस्थाऐं इन तक योजनाओं को पहुँचा भी पा रही है। किन्तु ऐसे संगठनों की संख्या कम है। संस्थाओं की अपनी सिमाऐं और समस्याऐं है, जिनके कारण वह पूर्ण लाभ नही दिलवा पा रही है।

देश में अनेक योजनाऐं ''जनजातीय महिलाओं के विकास और उन्नयन के लिए चलाई जा रही है। मध्य प्रदेश में भी ऐसी अनेक योजनाऐं चलाई जा रही है। जिनमें प्रमुख निम्न है :- 1. मध्य प्रदेश ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना - रोजगार से संबंधित। 2. गांव की बेटी योजना - उच्च शिक्षा से संबंधित। 3. विवेकानन्द समूह बीमा योजना। 4. सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना। 5. इंदिरा आवास योजना। 6. स्वर्ण ग्राम स्वरोजगार योजना। 7. राष्ट्रीय काम के बदले अनाज योजना। 8. प्रधानमंत्री रोजगार योजना। 9. दीनदयाल रोजगार योजना। 10. रानी दुर्गावती अनुजाति/जनजाति स्वरोजगार योजना। 11. स्व रोजगार योजना। 12. दाई प्रोत्साहन योजना। 13. राष्ट्रीय टीकाकरण योजना। 14. बाल शक्ति योजना। 15. प्रसव हेतु परिवहन एवं उपचार योजना। 17. विजया राजे जननी कल्याण बीमा योजना। 18. जिला/राज्य बीमारी सहायता निधि। 19. जननी सुरक्षा योजना। 20. दीनदयाल अत्तयोदय उपचार योजना। 21. लोक स्वास्थ और परिवार कल्याण, परिवार कल्याण कार्यक्रम। 22. समेकित बाल विकास परियोजना। 23. किशोरी शक्ति योजना। 24. अंत्योदय योजना 25. अति गरीब महिलाओं को प्रसव पूर्व सहायता राशि के लिये योजना। 26. राष्ट्रीय परिवार सहायता योजना। 27. दीनदयाल अत्योदय मिशन (मुख्यमंत्री कल्याण योजना)। 28. बालिका समृद्धि योजना। 29. बुक बैंक योजना। 30. साईकिल प्रदाय योजना। 31. विकलांग बच्चों के लिए समेकित शिक्षा। 32. नि:शुल्क पाठ्य पुस्तकें एवं स्टेशनरी प्रदाय योजना। 33. छात्रवृति योजना। 34. कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना। 35. अनुसूचित जाति राहत नियम। 36. स्व सहायता समूह योजना। 37. दत्तकपुत्री योजना। 38. आयुषमती योजना।

आधुनिक समय में शासन की इन योजनाओं से महिलाओं को सशक्त बनाकर महिला सशक्तिकरण किया जा सकता है, बशर्ते महिलाओं को इन योजनाओं की जानकारी पहुँच पाये।

अन्यथा शासन की ये सम्पूर्ण योजनाएँ व्यर्थ ही जायेंगी, क्योंकि जिन तक इनका लाभ प्रस्तावित होता है, उन तक शत-प्रतिशत नहीं पहुँच पाती। यद्यपि हमारा सुझाव है कि शासन को योजना बनाने से पूर्व, योजना यह भी बनाना अति आवश्यक है कि योजना उन महिलाओं तक सुरक्षित पहुँचे जिनके लिए योजना बनाई गई है। विश्वसनीय शासन प्रणाली ही यह कठिन कार्य कर सकती है। निश्चित ही महिलाएँ लाभान्वित होकर सशक्त बनेंगी। कई ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएँ लाभ लेने से वंछित रह जाती है। इसका सबसे प्रमुख कारण है ग्राम पंचायत शासन प्रणाली में व्याप्त भ्रष्टाचार, कम पढ़े-लिखे सरपंच इन्हें जानकारियाँ नहीं होती की म.प्र. शासन ने कौन-सी योजनाओं का हाल ही में क्रियान्वयन किया जा रहा है।

योजनाओं के लाभ लेने में बाधायें या अवरोध :-

- शासकीय योजनाओं में जनजाति परिवेश का ध्यान नहीं रखा जाता है।
- योजनाओं को आदिवासी महिलाओं तक पहुँचने में अनेक बाधाएं होती है। इसके लिए शासन की एजेंसिया का संतोषजनक कार्य नहीं है।
- आदिवासी महिलाओं में निरक्षरता और अनपढ़ होने के साथ-साथ उनमें जागरूकता का अभाव है।
- आदिवासी समाज सामान्य ढंग से किसी पर सहज रूप से विश्वास नहीं कर पाते ।
- बिचोलियों और दलालों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, यह अपना स्वार्थ पहले सिद्ध करते है।
- शासन के पास योजनाओं को पहुचाने के लिए सीमित संसाधन उपलब्ध है।
- आदिवासीयों का निवास स्थान दुर्गम और पहाड़ी क्षेत्रों में होने के कारण योजनाओं का प्रसार-प्रचार नहीं हो पाता है।

सुझाव :-

- शासन को स्वयं सेवी और गैर शासकीय संगठनों के साथ मिलकर योजनाओं को चलाना चाहिए तथा इनका सहयोग लेना चाहिए।
- योजनाओं का निर्माण आदिवासी समाज के परंपरा और परिवेश के अनुरूप होना चाहिए।
- आदिवासी के पलायन को तत्काल रोका जाना चाहिए।
- बिचौलियों एवं दलालों पर आवश्यक कठोर कार्यवाही की जानी चाहिए
- योजनाओं के लिए प्रचार के अन्य माध्यमों का भी उपयोग किया जाना चाहिए इसके लिए स्थानीय स्तर पर पढ़े लिखे व्यक्तियों की सहायता लेनी चाहिए।
- महिलाओं के विकास के अवरोधों को दूर किया जाना चाहिए।
- शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन की समीक्षा की जानी चाहिए।
- महिला विकास एवं अन्य विभागों द्धारा संचालित योजनाओं को अधिक प्रभावी बनाना चाहिए ।

संदर्भ ग्रन्थ :-

- डॉ. अशुरानी - महिला विकास कार्यक्रम - इना पब्लिशर्स जयपुर 1997
- गर्ग रामअवतार - जनजातियां विकास नितियां और योजनाएं - राधव पब्लिकेशन नई दिल्ली 1999
- शर्मा बह्ममदेव-आदिवासी विकास एवं सैद्धातिक विवेचना - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल 1980
- मध्य प्रदेश योजनाएं - मध्यप्रदेश सांखिकी संचालनालय द्धारा प्रकाशित भोपाल
- डॉ. निकुंज :- भील जनजाति की सामाजिक संरचना

* विभागाध्यक्ष (रसायनशास्त्र) शासकीय निर्भयसिंह पटेल विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

स्वामी विवेकानन्द के विचार आज की समस्याओं के समाधान

डॉ. सुमन तनेजा *

विवेकानन्द एक व्यक्ति जो अपने आप में एक राष्ट्र की संस्कृति है विवेकानन्द एक ऐसी विभूति है, जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विभिन्न पक्ष आकर्षित करते है यदि उन पर बोलने या लिखने की बात उठती है। मैं उनके सम्बंध में जो कुछ लिखना चाहती हूॅ, उसे शीर्षक दिया जा सकता है - ''स्वामी विवेकानन्द के विचार आज की समस्याओं के समाधान'' क्योंकि मैंने जो कुछ थोड़ा बहुत उनके विचारों का अध्ययन-मनन किया उससे यह प्रतीत हुआ कि हमारी वर्तमान भीषण एवं गम्भीर समस्याओं के सरल समाधान स्वामी विवेकानन्द के विचारों में निहित है।

वर्तमान में हमारे सम्मुख जो सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक समस्याऐं विद्यमान है, उनका निदान खोजने में स्वामी विवेकानन्द के विचार हमारा समुचित मार्गदर्शन कर सकते है वर्तमान का कोई भी प्रश्न यदि हम स्वामी विवेकानन्द के दर्शन के समीप ले जाते है वह प्रश्न निरुत्तरित नहीं लौटेगा अपने साथ कोई न कोई सार्थक सारगर्भित उत्तर अवश्य लेकर आयेगा।

हमारी सर्वप्रमुख समस्या संस्कृति से जुडी हुई है। ऐसे समय में जबकि भारतीय पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति की ओर आकृष्ट हो रहे है विवेकानन्द ने इस तथ्य पर बल दिया कि हमें अपनी संस्कृति का बोध होना चाहिए। उसकी महानता का ज्ञान होना चाहिए। अपने उच्च सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण हेतु दृढ़ संकल्प होना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द के दर्शन का अध्ययन करने पर हमें अपनी प्रेम, दया, परोपकार, करुणा पर आधारित उच्च संस्कृति का ज्ञान होता है। अनेक देशों का भ्रमण करने के उपरांत भारतीय संस्कृति की महानता से अभिभूत होकर स्वामी विवेकानन्द ने लिखा था:- ''संसार हमारे देश का अत्यंत ऋणी है। यदि भिन्न-भिन्न देशों की पारम्परिक तुलना की जाये तो मालूम होगा कि सारा संसार सहिष्णु भारत का जितना ऋणी है, उतना किसी और देश का नही।'' उन शब्दों को स्मरण कर कौन सहृदय भारतीय अपनी संस्कृति के प्रति समर्पित न हो जायेगा ? हमारी पावन संस्कृति की श्रेष्ठता को बड़े विश्वासपूर्ण ढंग से स्वामी विवेकानन्द ने प्रतिपादित किया उनका कहना था विदेशों के लाखों स्त्री-पुरुषों में जड़वाद की जो अग्नि धधक रही है, उसे बुझाने के लिए जिन जीवन दायी सलिल की आवश्यकता है, वह यहीं विद्यमान है।

''ऐसे विचारों को दृष्टिगत कर जो पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति की ओर उन्मुख भारतीय है, वे भी अपनी संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन की अभिलाषा करेंगे। उन्हें भौतिकवाद की दौड निरर्थक लगेगी। पाश्चात्य संस्कृति का खोखलापन और उसकी सारहीनता हमें अपनी उच्च मूल्यों से युक्त संस्कृति के अनुगमन और संरक्षण के लिए अभिप्रेरित करती है। इस विचारों का अध्ययन कर आज का भारतीय यही महसूस करेगा कि हमारी संस्कृति श्रेष्ठ है और आवश्यकतानुसार उसी का पुनर्मूल्यांकन करते हुए उसी संस्कृति से जुडाव-लगाव रखना है। इसी का पल्लवन पुष्पन करना है।

सांस्कृतिक पक्ष के साथ-साथ ही हम धार्मिक पक्ष को भी लेते है। इस क्षेत्र में गुरु रामकृष्ण परमहंस ने शिष्य स्वामी विवेकानन्द पर एक उत्तरदायित्व सौंपा था वह था सभी धर्मों के समन्वयन और नये ज्ञान के सृजन का उत्तरदायित्व। स्वामी विवेकानन्द ने सभी धर्मो को सम्मान की दृष्टि से देखा उनका कहना था ''चाहे कोई काबा की ओर घुटने टेककर उपासना करे या गिरजाघर में या मंदिर में ही करे वह जाने या अनजाने उसी परमात्मा की उपासना कर रहा है।'' ऐसे शब्द यदि सभी धर्मावलम्बियों के बीच प्रसारित किए जाए तो ये साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करने का अमोघ अस्त्र सिद्ध होंगे। आपने विभिन्न दृष्टांतो का उल्लेख करते हुए बताया कि भारत ही ऐसा देश है जहॉं के लोगो ने अपने-अपने देवताओं के लिए यह कहकर लड़ाई नहीं की कि 'मेरा ईश्वर सच्चा है, तुम्हारा झूठा, आओ हम लड़कर ये फैसला कर लें।'' भारत में तो '' एक सिद्धप्रा बुक्ष्धा वदन्ति'' अर्थात सत्ता एक मात्र है, पण्डित लोग उसी एक का तरह-तरह से वर्णन करते है।

आज के भारत को इसी दृष्टि की आवश्यकता है। आकाश के समान विशाल और समुन्द्र जैसे गहन ये विचार ही हृदय विदारक साम्प्रदायिकता के आधार पर होने वाली विस्फोटक एवं हिंसक घटनाओं को रोक सकते है। आज की आतंकवादी गतिविधियों का निदान विवेकानन्द के इन्हीं विचारों में है। मत-मतान्तर विधि या अनुष्ठान, ग्रंथ मंदिर यह सब गौण है। अन्ध श्रद्धा उन्हें स्वीकार्य नही थी। उनके धर्म विचार जो कि सभी धर्मो के प्रति समभाव और समन्वयात्मकता पर आधारित है, धर्म से जुडी समस्त समस्याओं के समाधान में सक्षमहै।

स्वामी विवेकानन्द का कहना था-मैं न राजनीतिज्ञ हूॅं न राजनीतिक आन्दोलनकारी। मैं केवल आत्मत्व की चिंता करता हूॅं- जब वह ठीक होगा तो सब काम अपने आप ठीक हो जायेंगे। ''फिर भी उनके भाषणों और विचारों में राजनीति का जो दर्शन मिलता है, वह सदैव-सदैव युगानुकूल रहा है। राष्ट्रीय आंदोलन के युग में उनकी ''सन्यासी का गीत'' कविता ने राष्ट्रवादियों को स्वतंत्रता के मूल्य तथा पवित्रता का पाठ सिखाया। आज के भारत की उग्रतम समस्याएँ भी राजनीति से ही सम्बद्ध है। राष्ट्रवाद के सिद्धांत को अपनाते हुए विवेकानन्द ने कहा था '' जिस प्रकार संगीत में एक प्रमुख स्वर होता है, वैसे ही हर राष्ट्र के जीवन में एक प्रधान तत्व हुआ करता है, अन्य सब तत्व उसी में केन्द्रित होते है।

भारत का तत्व है धर्म।'' धर्म भारत के राष्ट्रीय जीवन का मेरुदण्ड है और राजनीति की जटिलतम समस्याओं का हल विवेकानंद के दर्शन से ही खोजा जा सकता है, इस सत्य का आभास हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को पहले ही हो चुका था। अत: गाँधीवाद में विवेकानंद के दर्शन के महत्वपूर्ण अंश लिए गए है। गाँधीजी ने ''राजनीति का जो आध्यात्मिकरण'' किया सत्य, अहिंसा, प्रेम, नैतिकता, सत्याग्रह पर जो आधारित किया उसका मूल विवेकानंद के विचार है। आज राजनीति में अपराधीकरण का उपचार करना है, तो एक अचूक औषधि गाँधीवाद ही है।

विवेकानंद के यह शब्द ''जन्मभूमि की सेवा को अपना सबसे बड़ा कर्तव्य समझो। ''यह आज का हर राजनीतिज्ञ अपने जीवन में उतार ले तो राजनीति में व्याप्त पूरे भ्रष्टाचार का उन्मूलन संभव है। सर्वाधिक समस्याएँ

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.) भारत

आज राजनीति और राजनीतिज्ञों से ही संबंधित है निस्संदेह प्रत्येक समस्या का समाधान विवेकानंद के विचारों में विद्यमान है। विवेकानंद के विचारों को आत्मसात कर हम राजनीति को आदर्शपूर्ण बना सकते है।

सामाजिक क्षेत्र में विवेकानंद रुढियों को तोड़ने और सामाजिक परिवर्तन के इच्छुक थे। उन्होंने भारतीय समाज एवं वर्ण-जाति व्यवस्था का गहनता से विश्लेषण किया और 'जातीय चक्र' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। जिसके अनुसार विवेकानंद का विचार था कि विश्व इतिहास इस बात का साक्षी है, कि ब्राहा'ण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन्हीं चार श्रेणियों ने कालान्तर में एक दूसरे से राजनीतिक एवं सामाजिक शक्तियॉ अर्जित की है। ''जातीय चक्र'' में प्रत्येक वर्ण को उच्च स्थान प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होगा। इस सामाजिक सत्य को हम स्वीकार कर लें तो समाज में ऊँच-नीच, वैमनस्स, कटूता, द्वैष स्वयंमेव ही समाप्त हो जाए। ''जातीय चक्र'' को हम स्वीकार कर लें तो समस्त ''अहं'' स्वयंमेव तिरोहित हो जाये।

विवेकानंद यद्यपि कोई अर्थशास्त्री नहीं थे तथापि उन्होनें कहा था-'मैं समाजवादी हूँ।'' उनका मार्क्स की ''इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में कोई विश्वास नहीं था। वर्ग संघर्ष के स्थान पर उनका विश्वास परस्पर सहयोग एवं वर्ग सामंजस्य तथा विश्वप्रेम पर था। उन्होनें देश के सभी निवासियों के लिए समान अवसर के सिद्धांत का समर्थन किया। उन्होंने लिखा है - ''यदि प्रकृति में असमानता है, तो भी सबके लिए समान अवसर होना चाहिए अथवा यदि कुछ को कम कुछ को अधिक अवसर दिया जाए तो दुर्बलों को सबलो से अधिक अवसर दिया जाना चाहिए।''

विवेकानंद का समाजवाद किसी वर्ग विशेष को मिटाना नहीं चाहता अपितु दीन-दुखियों की दुर्दशा दूर करके अन्य वर्गो के समकक्ष लाना चाहता है। स्वामी विवेकानंद मानव मात्र के कल्याण की बार-बार कामना करते है। समाजवाद के क्षेत्र में विवेकानंद द्धारा व्यक्त विचार आज शासन व्यवस्था के आधार के रुप में अपनाकर शासन को स्थायित्व प्रदान कर अनेक समस्याओं से मुक्ति पाई जा सकती है।

युवाशक्ति में सकारात्मक सोच और उसके लिए संभाग का पथ प्रदर्शन भी भारत की एक मुख्य समस्या है। इस तथ्य से कोई अनभिज्ञ नहीं कि ''युवा वायु'' वेग से दिशा में बहता है, अत: उसके लिए समुचित मार्गदर्शन अत्यंत आवश्यक है। यह मानव जीवन का महत्वपूर्ण काल है। इस अवस्था में मानव जीवन की अनेक विध शक्तियाँ विकासोन्मुख होती है। युवा शक्ति ही क्रांति का मूल स्त्रोत होती है। युवा वर्ग की समाज में अत्यंत उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका होती है युवा अपनी भूमिका की ओर तब तक उन्मुख नहीं हो सकता जब तक कि उसका समुचित रुप से आह्वान न किया जाए। भारत की इस महान विभूति ने युवा शक्ति का आह्वान बहुत ही ओजपूर्ण एवं संतुलित रुप से किया। उनके द्धारा किए गए आह्वान में अद्भत शक्ति है, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन में तो युवा सक्रिय भूमिका के लिए प्रेरित हुए ही। आज भी आपके विचार-वाणी-कर्म की त्रिवेणी युवा को कर्तव्य भावना की ओर प्रवाहित कर देने की तीव्र लहर की भाँति है।

सभी प्रकार के युवाओं को अभिप्रेरित करने में आप सक्षम है। युवा यदि केवल पुस्तकीय ज्ञान में उलझा है, तो आपके आह्वान भरे शब्दों से अपनी क्षमताओं का विकास कर राष्ट्र की व्यवहारिक समस्याओं को सुलझाने में सहयोगी सिद्ध होगा। भाग्य पर आश्रित लक्ष्यहीन युवा किसी अभिनव दिशा का अन्वेषण कर लेगा। लक्ष्य होते हुए भी तत्परता के अभाव में भटकता युवा अपनी गति को तीव्र कर देगा। भ्रष्टाचार के कारण कुंठाग्रस्त हुआ युवा समाज की बुराईयों को दूर कर विजयी मुस्कान बिखेरेगा। सम्पन्न लेकिन नशे की निद्रा में डूबे युवा की मोह निद्रा भंग होगी। युवाओं से संबंधित उनके प्रमुख वक्तव्य जो स्मरण किये जाते है वे है -''जीवन में हमेशा अच्छे आदर्शो को चुनो और उसी पर अमल करो।'' ''समुद्र को देखा न कि उसकी लहरों को'' ''उठो जागो और तब तक न रुको जब तक मंजिल प्राप्त न हो जाए।'' ''जब तक जीना तब तक सीखना, ''मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है।'' इस प्रकार युवावर्ग जो कि राष्ट्र को समाज को अनकानेक विपदाओं से उभार सकता है, उसके आह्वन की शक्ति स्वामी विवेकानंद के वक्तव्य में विद्यमान है। युवा शक्ति के संबंध में न उनका दर्शन था उसी ने आपको राष्ट्रीय सेवा योजना के प्रतीक पुरुष के रुप में प्रतिष्ठित किया है।

भारतीय नारियों की ओर भी विवेकानंद ने ध्यान दिया क्योंकि उस समय स्त्रियों की दशा बहुत पिछड़ गई थी। उनके शब्दों में स्त्रियाँ आदि शक्ति जगन्माता की प्रतीक है। जिस दिन से हम माँ की सच्ची पूजा करने लगेंगे, और हर व्यक्ति माँ के लिए अपना बलिदान दे देगा, उसी दिन में भारत का यथार्थ में भला होने लगेगा और वह समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर होता जायेगा। विवेकानंद ने स्पष्ट कहा कि ''जो देश अपनी स्त्रियों का सम्मान नहीं कर सकता वह आगे नहीं बढ़ सकता।'' उनके यहीं विचार नारी की प्रतिष्ठा में आज सहायक है।

स्वामी विवेकानंद के मुख्य रुप से विचार यद्यपि वेदांत विषयक है। तथापि उनके विचारों के गहन अध्ययन से सिद्ध होता है, कि आज की समस्त सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, युवावर्ग, नारी सम्बंधी समस्याओं के निदान आपके दर्शन में निहित है। जिस क्षेत्र में भी हमें दिशा की आवश्यकता है। वहाँ हमें दिशा विवेकानंद के दर्शन से प्राप्त है। आपके विचार सदैव युगानुकूल एवं प्रासंगिक है। विचारों को कार्य रुप मिलता रहे इसलिए आपने ''रामकृष्ण मिशन'' की स्थापना की जिसकी शाखाएँ आज भी भारत के विभिन्न भागों में एवं विश्व के अन्य देशों में विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु सक्रिय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. विवेकानंद का दार्षनिक चिंतन - डॉ. भरत कुमार तिवारी
2. शिक्षा के आयाम - डॉ. शंकरदयाल शर्मा
3. स्वामी विवेकानंद - श्री
4. राजनीतिक विचारक विश्वकोष - ओम प्रकाश गाबा

****

विवेकानन्द और भारतीय नवजागरण

बल्लु सिंह मुवेल *

प्रस्तुत शोध पत्र विवेकानन्द और भारतीय नवजागरण पर एक शोधपरक मुल्यांकन प्रस्तुत करता है। भारतीय नवजागरण की शुरूआत उन्नीसवीं सदी से हो जाती है। बंगाल ने उसमें मुख्य भूमिका अदा की और भारत का जो सामाजिक ढॉचा उसमें यें आन्दोलन व्यक्ति प्रयासों के रूप में शुरू हुए तथा धीरे-धीरे उन्होंने भारतीय मानस को प्रभावित किया बंगाल में नव जागरण की जो लहर आई उसमें रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की भूमिका बड़ी प्रभावी है। रामकृष्ण को भारतीय आध्यात्मिक जागरण का सबसे प्रबल स्तम्भ कहा जाता है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस की साधना की साधना और अद्धितीय सफलताओं ने भारतवासियों की राष्ट्रीय चेतना पर अमिर छाप छोड़ी और देश की सुषुप्त आध्यात्मिकता को जागृत करने मे महान योगदान दिया किन्तु उसे राष्ट्र के सशक्त जीवन-प्रवाह की और अग्रसर और विकसित करने का कार्य स्वामी विवेकानन्द ने किया जिससे भारत आधुनिक युग में प्रथम बार विश्व में एक महान राष्ट्र होने की स्थिति प्राप्त कर सका।

विवेकानन्द ने भारतीय नवजागरण को एक नयी दिशा दी। उन्होंने रामकृष्ण के आध्यात्मिक जागरण को प्रचारित -प्रसारित किया।उसे व्यावहारिक स्वरूप देने का महत्वपूर्ण कार्य विवेकानन्द ने किया उनका परिचय नये ज्ञान-विज्ञान से था। वे वाणी-लेखनी दोनों की योग्यता रखते थे। उन्होंने ईमानदारी से अनुभव किया कि हिन्दु समाज को रूढ़ियुक्त होना और इसके लिए कर्मठता की अपेक्षा है केवल चिन्तन मनन से काम नही चलेगा। ठोस कदम उठाने होगें।

1893 ई.में शिकागों में जो सर्वधर्म सम्मेलन हुआ था उसमें विवेकानन्द ने भारत के सम्मान की रक्षा की पश्चिम यह मान बैठा था कि भारत (जिसे वह हिन्दू जाति का पर्याय तक मानने की भूल करत है) एक पराजित देश है और यहॉ के समाज में कोई शक्ति अब शेष नहीं योकि वह विदेशी सत्ता का गुलाम हैं। पर शिकागों में विवेकानन्द ने अपने स्वाभिमान का जो परिचय दिया उसमें भारतीय राष्ट्रीयता का संकेत मिलता है।

उन्होनें सम्पूर्ण आत्म विश्वास से और पराधीन देश की हीन भावना से मुक्त होकर भारतीय सभ्यता और संस्कृति की व्याख्या की प्राचीन भारतीय पौराणिकता को लेकर प्राय: विदेशो में व्यंग्य किये जाते रहे हैं। विवेकानन्द ने धर्म इतिहास दर्शन की आधुनिक व्याख्यकी और प्रमाणित किया कि भारतीय समाज की जिजीविषा अभी जीवित है।

विवेकानन्द का विश्वास था कि सर्वोच्च आध्यात्मिक चेतना के माध्यम से ही भारत का पुनर्नवीनीकरण हो सकता हैं और उसे प्राचीन गौरवपुर्ण सर्वोच्च स्थिति के पुन प्राप्ति हो सकती है। अत एव कृषियों की वद्य आध्यात्मिसंस्कृति जिसकी अवनति होने के कारण देश का पतन हुआ है। की पुनर्व्याख्या की जानी चाहिये और इस हेतु प्रथम देश से निर्धनता अशिक्षा और सामाजिक कुरीतियों को दूर किया जाना चाहियें। तभी देश की राष्ट्रीय उन्नति सम्भव है। जब भारत उदासीनता आलस्य और निराशा के घोर वातावरण में डूबा हुआ था स्वामी जी के विचारो ने भारत वासियों में निर्भीकता और कर्मठता का संचार किया स्वामीजी ने भारतवासियों को जहॉ स्वाधीनता की प्राप्ति की आशा बधाई वही उन्हें त्यागपूण वृत्ति धारण करने की शिक्षा दी सामाजिक व राष्ट्रीय एकता और सार्वजनिक कल्याण की प्राप्ति पर बल दिया और विदेशी शासकों के आतंक से उत्पन्न होने वाली पुरूषता का परित्याग करने का आह्वान किया।

विवेकानन्द ने धर्म को नये आलोक में देखा उसके आधुनिक व्याख्याता है। उन्होंने उसे एक नयी परिभाषा दी और उसे जीवन से जोड़ने का प्रयत्न किया। उनके सामने पश्चिम का भौतिक वादी जीवन था इसकी तुलना में उन्होने भारतीय दर्शन के आध्यात्मिक एवं नैतिक पक्ष को प्रस्तुत किया। योग विलास की अनियन्त्रित दौड़ का उन्होंने विरोध किया उसके स्थान पर आध्यात्मिक शक्ति का आग्रह किया । पर यह आध्यात्मिकता उनके लिए कोई वायवी निराकार वस्तु नहीं है उन्होने इसे स्पाथित किया। उन्हें भारत की सामभिक अवस्था का गहरा एहसास था और वे भारतीय समाज को एक नया मोड़ देना चाहते थे। उन्होने अपने देश की जर्जर अवस्था की और संसार का ध्यान आकृष्ट करना चाहा ।

कई मायनों में विवेकानन्द नवजागरण के सबसे सार्थक हस्ताक्षर है। स्वयं सन्यास का वरण करते हुए भी उन्होने निवृत्ति अथवा जीवन से पलायन पर बल नही दिया। ये भौतिकवादी लिप्सा के विरोधी थे और उच्चतर मानव मूल्यों की तलाश के लिए उन्होंने अथक प्रयत्न किया पर वे सामाजिक बदलाव के हिमायती थे। भारतीय इतिहास की लम्बी परम्परा पर उन्होने दृष्टि डाली और उसकी पुनर्व्याख्या की। उन्होने हिन्दू धर्म को कूप-मण्डूकता से उबराना चाहा था। पर यहॉ विवेकानन्द की दृष्टि अन्य संकुचित हिन्दु रूढिवादियों से भिन्न थी। वे अपनी राष्ट्रीय भावना में मानव वादी दृष्टि से परिचालित थे। और उन्होने वेदान्त का नया विश्लेषण किया।

स्वामी विवेकानन्द ने बार-बार इस बात पर जोर दिया कि यदि भारतवासी वेदान्त के उत्रंग आदर्शो को अपने जीवन में उतारने लगे तो भारतीय और भारतीय के बीच की समस्त दीवाले दह सकती है। और इस प्रक्रिया कद्धारा देश में एकता लाने वाली विराट शक्ति उत्पन्न हो सकती है। जो भारतवासियों के विभिन्न सम्प्रदायों और समुदाय को एक सूत्र में गुथकर समस्त भारत को एक महान राष्ट्र बनाये। स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि आत्मा के ईश्वरीय होने सारे विश्व के एक होने और इन आदर्शो के अनिवार्य परिणाम निर्भीकता की भावना समबन्धी वेदान्ती विचारो के भारतीय जीवन में प्रसारित होने से न केवल भारतवासी एकता के सूत्र में आबद्ध होगे अपितु राष्ट्र में एक ऐसी महान् शक्ति का समावेश हो जायेगा जिससे भारत निष्कर्मव्यता और निराशा के गर्त से उभर जायेगा।

विवेकानन्द के लिए वेदान्त कोई पण्डिताऊ चीज नहीं है। जिसे ग्रन्थों से जाना परखा जा सकता हैं। वह मानव मात्र के प्रति सद्दश्यता के भाव से उत्पन्न वस्तु है। उन्होने कहा कि ''वेदान्त धार्मिक विचारों में स्वतन्त्रता का हिमायती है और इसीलिए इस देश में धार्मिक सहिष्णुता रही है। वे मानते हैं कि सामाजिक परिस्थितियों में वेदान्त के व्यावहारिक पक्ष की आवश्यकता

* शोधार्थी (राजनीति विज्ञान) विक्रमविश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

है। और इसके लिए उन्होने गीता के उदाहरण दिये। उनके शब्दों में वेदान्ती नैतिकता का यही सारांश हैं। सबके प्रति साम्य ।'' अर्थात विवेकानन्द भारतीय दर्शन विशेष तथा वेदान्त की जो व्याख्या करना चाहते है। उसमें उनके सामने पर तन्त्र भारत का चित्र मौजुद है। देश की गुलामी के बावजूद विवेकानन्द आशा निवत थे और उनकी आशा का केन्द्र भारत की वही आध्यात्मिक चेतना थी। जिसने उसे संघर्षो में भी जीवित रखा।

विवेकानन्द के राष्ट्रों में ''भारत की वह सजीवता अभी भी आक्रान्त नही हुई है। उन्होने उसका त्याग नही किया हैं वह आज भी बलशाली हैं अन्धविश्वासों के बावजूद भी वहा भयाअन्धविश्वास हैं उनमें से कुछ अत्यन्त धन्य एवं घृणाश्चद चिन्ता न करो उन पर राष्ट्रीय जीवन धारा जाति का आध्यय अभी भी जीवित हैं।'' वेदान्त के आधार पर स्वामी विवेकानन्द को अमेरिका में प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक सफलतासे भारतवासियों में अपने धर्म व दर्शन और अपनी संस्कृति के प्रति महान् स्वाभिमान का जागरण हुआ।

विवेकानन्द भारतीय महिलाओ की दशा सूधारने के प्रति पर्याप्त रूप से सजग रहे। उनका विश्वास था कि राष्ट्र के विकास के हेतु धर्म और अध्यात्मवाद के बाद दूसरा स्थान महिलाओं की स्थिति में सुधार किये जाने के कार्य को दिया जाना चाहिये। उन्होंने घर की चार दीवारो के आंतकपूर्ण वातावरण से महिलाओं के मुक्त किये जाने और उन्हे शिक्षित किये जाने के प्रबल पक्ष लिया तथा महिलाओं के लिए नवजीवन प्रदान किये जाने के हेतु भारतवासियों द्धारा कार्य करने का आह्वान किया।

नवजागरण की दृष्टि से स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचार उल्लेखनीय है। वे शिक्षा के माध्यम से राष्ट्र का निर्माण और पुनरूध्दार करना चाहते थे। उन्होंने कहा था कि ''शिक्षा से मेरा तात्पर्य आधुनिक प्रणाली की शिक्षा से नही वरन् ऐसी शिक्षा से हैं जो भावात्मक हो तथा जिससे स्वाभिमान के भाव जागे। केवल किताबे पढादेने से कोई लाभ नही। हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है। जिससे चरित्र - निर्माण हो मानसिक शक्ति बढे बुद्धि विकसित हो और देश के युवक अपने पैरो पर खडे होना सीखो। स्वामी जी ने लिखा था कि ''भारत वर्ष के अनर्थी की जड़ हैं जनसाधारण की गरीबी पाश्चात्य देशो के गरीब तो निरे पशु हैं उनकी तुलना में हमारे यहाँ गरीब देवता हैं इसलिए हमारे यहाँ के गरीबों के ऊँचा उठाना अपेक्षाकृत सहज है। अपने निम्न वर्ग के लोगों के प्रति हमारा एक मात्र कर्तव्य है।

उनको शिक्षा देना उन्हें सिखाने, कि इस संसार में तुम भी मनुष्य हो, तुम लोग भी प्रयत्न करने पर अपनी सब प्रकार उन्नति कर सकते हो'' विवेकानन्द संकुचित और कठोर जातिवाद के कटु आलोचक थे। 1895 में उन्होंने कहा था कि ''जाति का आदर्श यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को वह कार्य दिया जाय जिसके वह सर्वाधिक योग्य हों। केवल जन्म के आधार पर जातिनिश्चित किये जाने से समाज का संगठन कठोर व संकुचित हो जाता है। ओर व्यक्ति का विकास अवरूद्ध हो जाता हैं।

विवेकानन्द के जाति प्रथा छुआछुत अछुत प्रथा और महिलाओं की दशा के सुधार सम्बन्धी विचार भारतीय समाज के परिष्करण और उदांती करण के संदर्भ में उल्लेखनीय है। जैसे -जैसे भारतीय समाज परिष्कृत और उदान्त होता गया उसमें सामाजिक समानता और सामाजिक स्वतन्त्रता के आदर्श विकसित होते गये जो भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। राजनैतिक नव जागरण को गहरा ठोस और व्यापक आधार राष्ट्रवादी विचार धारा से प्राप्त होता हैं। इस दृष्टि से स्वामी विवेकानन्द का योगदान पर्याप्त महत्व रखता हैं। ''स्वामीजी ने राजनीतिक थे और न किसी राजनैतिक आन्दोलन के संयोजक किन्तु उनमें राष्ट्रवादी भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी उन्हें भारत से बेहद प्रेम था।

उन्होने गर्व के साथ धोषणा की थी कि ''यदि इस भूमण्डल पर कोईदेश ऐसा है जो पुण्य भूमि कहलाने का अधिकारी हैं जो अर्न्त दर्शन और आध्यात्मिक देश हैं तो वह भारत हैं''। स्वामी जी का विश्वास था कि वेदान्त के सिद्धान्तों का विश्व व्यापक प्रयोग किया जा सकता है। वे वेदान्त द्धाराप्रतिपादित विश्व के समस्त मनुष्यों की अनिवार्य एकता के आदर्श में अटूट विश्वास रखतें थे और वेदान्त के आधार पर समस्त विश्व का सामाजिक राजनैतिक और आध्यात्मिक कल्याण चाहते थे।

उनकी कामना थी कि पूर्व पश्चिम को आाध्यात्मिक का पाठ सिखावे और पश्चिम पूर्व को भोतिक समृद्धि का ज्ञान दे। उनके शब्दों में ''यह भी उचित है कि जब पूर्व का व्यक्ति यन्त्र- निर्माण करना सीखना चाहे तो वह पश्चिम के व्यक्ति के चरणों में बैठे और उससे ज्ञान प्राप्त करे। जब पश्चिमका व्यक्ति आध्यात्मिक तत्व के विषय में आत्मा और परमात्मा के विषय में इस विश्व के अर्थ और रहस्य के विषय मे ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो वह ज्ञान को प्राप्त करने के निर्मित पूर्व के व्यक्ति के चरणों मे बैठे''। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्दपूर्व और पश्चिम दोनों की समानता के स्तर पर खड़ा करके दोनो के अभावों की पूर्ति करना चाहते थे। ओर विश्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहते थे।

डॉ.डीपी.श्री वास्तव को शब्दो में स्वामी विवेकानन्द ने भारतवासियों के अन्दर अदभूत साहस और कर्मठता की भावना उत्पन्न करके जनसाधारण और विशेषत: अधुतों की स्थिति को सुधारे जाने हेतु भारतीय जनता की सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक और राजनैतिक आकाक्षओं की जागृति करके सामाजिक समानता राष्ट्रीय एकता औराष्ट्रीय स्वतन्त्रता का परोक्ष था अपरोक्ष रूप से समर्थन करके और सबसे अधिक भारतवासियों को उनकी आध्यात्मिक और धार्मिक गुरूता के प्रति विश्वास जागृत करके उनके राष्ट्रीय स्वाभिमान के भाव को उच्च स्तर तक पहुंचा कर तथा भारत को इंग्लैंड के समक्ष समान स्तर पर खड़ा होना सिखाकर आधुनिक भारत के नवजागरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।''

निष्कर्ष तौर पर हम माते हैं कि विवेकानन्द नये भारत की एक कल्पना अपने मन में सजोये हुए थे और गहन दार्शनिक विचारों के योगी होते हुए भी वे इतने आत्मलीन कभी नहीं हुए कि देश उनकी आँख से ओझल हो जाए। भारतीय नवजागरण में विवेकानन्द का महत्वपूर्ण प्रदेय है। क्योंकि उन्होंने व्यापक मानवीय चेतना का प्रचार प्रसार किया।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. 'विवेकानन्द साहित्य' नवम खण्ड पृ.219-228
2. 'विवेकानन्द साहित्य' द्धितीय खण्ड पृ.321-322
3. 'विवेकानन्द साहित्य' तृतीय खण्ड पृ.105-315
4. 'विवेकानन्द साहित्य' प्रथम खण्ड पृ.385
5. 'विवेकानन्द साहित्य' द्धितीय खण्ड पृ.276-335-363
6. 'विवेकानन्द साहित्य' द्धितीय खण्ड पृ.336-337-37
7. 'विवेकानन्द साहित्य' नवम खण्ड पृ.376
8. 'विवेकानन्द साहित्य' द्धितीय खण्ड पृ.321
9. 'विवेकानन्द साहित्य' नवम खण्ड पृ.300

****

युवाओं का समाजीकरण और सामाजिक परिवर्तन

डॉ. शबनम खान *

परिवर्तन संसार का नियम है। परिवर्तन किसी भी वस्तु, विषय अथवा विचार में समय के अंतराल से उत्पन्न हुई भिन्नता को कहते है। परिवर्तन एक बहुत बड़ी अवधारणा है और यह जैविक, भौतिक तथा सामाजिक तीनों जगत में पाई जाती है, किन्तु जब परिवर्तन शब्द के पूर्व सामाजिक शब्द जोड़ कर उसे सामाजिक परिवर्तन बना दिया जाता है तो निश्चित ही उसका अर्थ सीमित हो जाता है। परिवर्तन अवश्यम्भावी है, क्योंकि यह प्रकृति का नियम है। संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं रहता है। स्थिर समाज की कल्पना करना आज के युग में संभव नहीं है।

समाज में सामंजस्य स्थापित करने के लिए परिवर्तन आवश्यक है। मैकाइवर और पेज का कहना है कि समाज परिवर्तनशील तथा गत्यात्मक कहा जाता है। सामाजिक परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यदि हम समाज में सामंजस्य और निरंतरता को बनाये रखना चाहते है तो हमें यथास्थिति अपने व्यवहार को परिवर्तनशील बनाना ही होगा। यदि ऐसा नहीं करते तो मानव समाज की इतनी प्रगति संभव नहीं होती। कभी-कभी परिवर्तन का विरोध भी होता है, क्योंकि समाज में रुढिवादी तत्व प्राचीनता से ही चिपके रहना पसंद करते है। यही सब तथ्य मानव के समाजिकरण पर प्रभाव डालते है और उसके जीवन को एक दिशा प्रदान करते है जो उसके जीवन यापन और दिनचर्या का तरीका व कारण बनता है। इसी प्रक्रिया से जब युवा गुजरता है तो वह समाज में हो रहे बदलावों को समझता, जानता और पहचानता है, जिससे वह अपने आप में परिवर्तन कर स्वयं को एक दिशा प्रदान कर सके।

किसी भी समाज में परिवर्तन उसके बाह्य और आंतरिक दोनों रुपों में होता है। सामाजिक परिवर्तन की गति और दिशा ही किसी भी समाज को आकार देते है और उसी के आधार पर उसका समाजीकरण होता है। यह विलियम जोन्स ने सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा देते हुए कहा कि ''सामाजिक परिवर्तन वह शब्द है जो कि सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रतिमानों, सामाजिक अंतर्क्रियाओं या सामाजिक संगठन के किसी पहलू में होने वाली भिन्नताओं अथवा परिवर्तनों के लिए इस्तेमाल किया जाता है।'' के.एल. शर्मा का मानना है कि ''स्थान, समय और संदर्भ के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक संरचना के अंदर होने वाले परिवर्तन की प्रक्रियाओं के पुंज को सामाजिक परिवर्तन कहते है।'' यह परिवर्तन समाज में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रुपों में हो सकते है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत में सामाजिक परिवर्तनों का दौर चल पड़ा।

पंचवर्षीय योजनाओं से लेकर नेहरु के समाजवाद तक स्वाधीन भारतीयों को सुनहरे भविष्य के स्वप्न दिखाई गए, लेकिन 1960 तक आते-आते यह स्वप्न धूमिल पड़ने लगे और चीन के साथ युद्ध में मिली करारी हार ने तो इन सपनों को चकनाचूर कर दिया। सामंती ताकते फिर से उभरने लगी, शोषण और दमन की प्रक्रिया अंग्रेजों से भी तीव्र हो गई, जिससे आम आदमी का जीवनयापन बहुत ही दुखदायी हो गया और इसका परिणाम नक्सलवादी आंदोलन के रुप में दिखाई देता है। इसके बाद पाकिस्तान से साथ दो युद्ध, इमरजेंसी, राजनीति में एक नई पार्टी का उदय, संचार क्रांति, नई आर्थिक नीति या उदारीकरण और वैश्वीकरण की बयार से लेकर ग्लोबल विलेज की धारणा व बाबरी विध्वंस आदि तक स्वाधीन भारत के कुछ ऐसे बिन्दु है, जिन्होंने समाज के सभी तबकों को प्रभावित कर समाज में परिवर्तन किया। दरअसल यह पूरी कहानी 20वीं सदी के भारत की है, जो अब 21वीं शताब्दी में पहुंच चुका है। देवदास अब देव-डी में परिवर्तित हो चुका है तो समाज में भी कई परिवर्तन हुए है। जो मानव समाज के समाजीकरण का मूल कारण भी है और परिणाम भी है, जिसने युवाओं की भूमिका तथा उनके जीवनयापन करने के तरीके को निर्धारित करने में निर्णायक भूमिका निभाई है।

21वीं सदी परिवर्तन की सदी है। सामाजिक रुप से क्रांति का युग है, सिनेमा में मल्टीप्लेक्स का, आर्थिक रुप से उपभोक्तावादी या अब कहिये एफ.डी. का, सांस्कृतिक रुप से पब संस्कृति का, शैक्षणिक रुप से आई.आई.टी. का और मीडिया के संदर्भ में आभासी दुनिया का युग है। 21वीं सदी में सबसे ज्यादा सामाजिक परिवर्तन सूचना तकनीक ने किया है, जिसमें सोशल मीडिया और इंटरनेट की महत्वपूर्ण भूमिका है। ऐसा समय चुनौतीपूर्ण तो है ही, साथ ही आत्ममंथन का भी है।

इस नित्य परिवर्तनगामी भारतीय समाज में युवाओं की भूमिका की तलाश करना एक महत्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि भारत एक युवा देश है। यहां सबसे ज्यादा संख्या युवाओं की है, कुल जनसंख्या का लगभग 60% । लेकिन परिवर्तन में युवाओं की भूमिका जानने से पहले यह जान लेना जरुरी होगा कि युवा किसे कहा जाये, क्या 42 साल के राहुल गाँधी युवा है, या 22 साल के विराट कोहली या 38 साल के युवा चेतन भगत ? युवा होने की क्या शर्त है ? राजनीति में युवा की परिभाषा अलग तथा खेल और आम आदमी की अलग है। क्या, युवा का संबंध शरीर से है, मस्तिष्क से, या फिर विचारों से ? आखिर कौन युवा है? किसे कहा जाए युवा ? ये कुछ विचारणीय प्रश्न है, जिनके आलोक में हमें युवाओं के संदर्भ में भारतीय और पश्चिमी विचारों को जानना आवश्यक है। युवाओं की पहचान और परिभाषा अलग-अलग संस्कृतियों में अलग-अलग रही है।

भारतीय परंपरा में आश्रमों का वर्गीकरण 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य आश्रम, 25 से 50 वर्ष तक गृहस्थ आश्रम, 50 से 75 तक वानप्रस्थ आश्रम, और 75 से 100 वर्ष तक सन्यास आश्रम माना गया है। वहीं 21वीं सदी के भारत ने युवा की नई परिभाषा दी। भारत में जब 2003 में राष्ट्रीय स्तर पर युवाओं को दो समान समूहों के अंतर्गत विभाजित करते हुए 13 से 19 वर्ष के लिए किशोर आयु समूह तथा 20 से 35 वर्ष के आयु समूह के लिए मध्यम युवा वर्ग में वर्गीकृत किया गया है। वहीं पश्चिमी परंपरा में 13 से 19 वर्ष के व्यक्ति को अल्प आयु माना जाता है।

20 से 40 वर्ष के व्यक्ति को युवा माना जाता है, 40 से 60 अधेड़ और 60 के बाद बुजुर्ग माना जाता है। कुल मिलाकर देखा जाये तो विभिन्न राष्ट्रों ने युवाओं के लिए 20 से 40 तक का आयु समूह तय किया है।

किसी भी देश की पूंजी मानव संसाधन होता है और उसमें भी उस देश की

* प्राध्यापक (हिन्दी) माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.) भारत

बुनियाद युवा होते है। युवा किसी भी देश का आधारस्तंभ होते है, क्योंकि सबसे ज्यादा ऊर्जावान और संभावनाऐं युवाओं में ही होती है। भारत एक युवा देश है, वैश्विक आंकडे बताते है कि जहाँ 2020 तक अमरीका की औसत आयु 45 वर्ष, चीन की 37 वर्ष, पश्चिमी यूरोप व जापान की 48 होगी, वहीं भारत में औसत आयु 29 वर्ष होगी। निश्चित ही संपूर्ण विश्व की दृष्टि आज भारत के कौशल युक्त युवाओं पर टिकी है।

युवाओं के आधार पर ही भारत ने अपनी परंपरागत छवि का आवरण उतारकर नई पहचान बनाई है। आर्थिक सुधारों से लेकर राजनीति, खेल और व्यवस्था परिवर्तन के आंदोलन आदि सब में युवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसका जीता-जागता उदाहरण अरब देशों में हुए व्यवस्था परिवर्तन के आंदोलन, अमरीका में वॉलस्ट्रीट आंदोलन और भारत में हुए जे.पी. आंदोलन और दामिनी के साथ हुये अमानवीय व्यवहार के खिलाफ उमडे आक्रोश के रुप में। दरअसल आज का युवा संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। सत्ता द्वारा ऐसा परिवेश निर्मित किया गया है, जिसमें आज का युवा बुरी तरह फंसा हुआ है। गलाकाट प्रतियोगिता से लेकर बाजारी अर्थव्यवस्था तक।

युवा किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का इंजन होता है और सबसे ज्यादा प्रतिभावान और ऊर्जावान होता है। लेकिन प्रश्न उस प्रतिभा और ऊर्जा को सही दिशा में इस्तेमाल करने का है। आज बाजार युवाओं को लुभावने सपने दिखाकर अपने पक्ष में इस्तेमाल कर रहा है। मीडिया और सिनेमा बाजार के दो महत्वपूर्ण घटक है जो बाजार के पक्ष में माहौल तैयार करते है, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज के युवाओं का रुझान फौज से ज्यादा एम.एन.सी. की तरफ है, जिसके कारण नेशनेल्टि जैसा मूल्य टुकडों में विभाजित हो गया। इन सबके लिए सिर्फ युवाओं को दोष देना ठीक नहीं है, दरअसल ये पूरा मसला सत्ता के बेस स्ट्रक्चर और नीतियों का है।

कुल मिलाकर देखा जाये तो सामाजिक परिवर्तन में युवाओं की भागीदारी को हमें दो स्तरों पर समझना होगा। एक सत्ता के भीतर रहकर परिवर्तन में भागीदार युवा, दूसरा सत्ता के खिलाफ परिवर्तन में भागीदार युवा। सत्ता के भीतर जो युवा है, वो सत्ता की हाथ की कठपुतली बने हुये है, उनकी डोर सत्ता के हाथ में है। वो किसी भी सरकारी और गैर सरकारी संस्था में हो, सत्ता के पक्ष में काम करना उनकी मजबूरी है। दूसरा जो सत्ता के खिलाफ खडे होकर परिवर्तन की लौ जलाए है, ऐसे युवाओं को हम आजादी की लड़ाई से लेकर जे.पी. आंदोलन और हाल ही के दिनों में हुई घटनाओं में भागीदारी के रुप में देख सकते है। ऐसे युवाओं का एक पक्ष नक्सलवादी आंदोलन से भी जुडा है, वो भी परिवर्तन चाहता है, इन सबका गंभीरता से मूल्यांकन करने की जरुरत है, क्योंकि काम न तो सिर्फ कैन्डल मार्च से होगा और न ही युवा दिवस मनाने से होगा। काम तो होगा सही नीतियों और बेहतर व्यवस्था से। क्योंकि ये समय ब्लैक एंड व्हाइट का नहीं बल्कि रंगीन भरा है, जहां चीजें साफ दिखने की बजाय धुंधली दिखाई देती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. चंद्रा नरेन्द्र, समाजशास्त्र, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, संस्करण 2007, नई दिल्ली
2. वर्मा पवन कुमार, भारत के मध्यवर्ग की अजीब दास्तान, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1999, नई दिल्ली
3. पटनायक किशन, भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2010
4. शाह घनश्याम, भारत में सामाजिक आंदोलन, रावत पब्लिकेशन, संस्करण 2009

****

वैश्वीकरण और दलित

डॉ. पुष्पा शाक्य *

आजादी के पश्चात् और वर्शों से हमने देश में अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं। मनुवादी व्यवस्था ने भारत के दलितों को प्रत्येक स्तर पर बूरी तरह से पछाडा है। ये हमें जल, जमीन, जंगल की समस्याओं सहित जब सामाजिक आर्थिक शैक्षणिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रगति को देखकर पता चलता है कि छिपे तौर पर दलितों के अधिकारों पर धात लगाकर उनका हनन किया है। महात्मा ज्योतिराव फुले ने शिक्षा का हथियार दलितों और महिलाओं को देकर उन्हें समृद्ध किया है। डा. अम्बेडकर ने संविधान में उसकी व्यवस्था करके अपेक्षित वर्ग के उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया है।

वैश्वीकरण के इस युग में दलितों की अनेक उपेक्षा, शिक्षा का नीतिकरण, वैश्वीकरण की दुनिया में आज की दलित श्रम जीवी वेरोजगार होकर आर्थिक असमानता को झेलते हुए चौराहों पर खड़ा है। वैश्वीकरण को जन सामान्य के मध्य बारम्बार प्रगति के गर्भ के रूप में प्रचारित किया जा रहा है वे लोग एवं राष्ट्र जो संसाधन एवं राजनैतिक शक्ति के स्वामी है। दूसरों के लिये ऐसी परिस्थितियॉ उत्पन्न करना चाहते है जिससे प्रगति के इस माडल का दूसरे अनुकरण करे।

वैश्वीकरण एक आर्थिक व्यवस्था जो मानवता नैतिकता या धर्म के वैश्वीकरण की चर्चा नहीं करती वैश्वीकरण तो यह सुनिश्चित करता है कि समृद्ध राष्ट्र एवं राष्ट्र में समृद्ध वर्ग के लोग वर्तमान व्यवस्था से जितना लाभान्वित हो रहे है उससे अधिक लाभान्वित हो वैश्वीकरण दुसरों से अपेक्षा करता है कि यह विश्वास करे की उनके ऊपर भी धन की कुछ वर्शा होगी। संपन्न राष्ट्रों एवं अभिजात वर्ग के लोगों के द्धारा वैश्वीकरण की प्रक्रिया का स्वागत किया गया है। इतिहास गवाह है अनेक बार राष्ट्रों की संपन्नता, धन संपदा और शक्ति में वृद्धि नागरिकों के मध्य समान रूप से वितरित नहीं है। दुनिया के समृद्धिशील राष्ट्रों में चाहे कितनी भी प्रगति या धन सम्पदा में वृद्धि हो जाए किन्तु वैश्वीकरण से टक्कर तो विपक्ष दलित जनता जिनके साथ जाति, लिंग, अल्पसंख्यक, स्थिति, रंग के आधार पर भेदभाव किया जाता है। ये वैश्वीकारण का विरोध अपने पूर्व अनुभव के आधार पर कर रहे है। क्योंकि इससे गरीबी उन्मूलन असामनता, अन्य शोशण को रोकना संभव नहीं हो सकता है। वैश्वीकरण एक नई आर्थिक व्यवस्था के रूप में आर्थिक प्रगति खुशहाली प्रदान करने में सफल होगा कि नहीं। वैश्वीकरण की दुनिया से किस प्रकार दलित प्रभावित हो रहे है।

प्रौद्योगिकी प्रगति के परिणाम स्वरूप बाजारों राष्ट्रीय राज्यों एवं प्रौधोगिकी के एकीकरण की दुनिया के रूप में सोची-विचारी परियोजनाओं के रूप में जिनके अंतर्गत आर्थिक उदारीकरण राष्ट्र एवं व्यक्ति को प्रबल बाजारी शक्तियों के प्रभाव में लाना है। वैश्वीकरण विभिन्न रूपों में हमेशा अस्तित्व में रहा है। किन्तु अब यह एक प्रमुख शक्ति बन गया है जो विश्व के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष को नियंत्रित करने लगा है। ऐतिहासिक रूप से राष्ट्रों के सम्मुख व्यापार सेवा में एवं पूँजी व श्रम का प्रवाह चक्र किन्तु वैश्वीकरण की नई विशिष्टता यह है कि वस्तु पूंजी एवं सेवाओं के नये नियमों एवं कानूनों के निर्माण का एक प्रयास नये एजेन्डा को लागू करना एवं नियंत्रित करना उसका उद्देश्य है। वैश्वीकारण के नये रूप का अर्थ दो परिवर्तन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उदारीकरण जिसमें प्रत्येक देश को व्यापार पर से प्रतिबंध हटाकर वस्तुओं, सेवाओं पूंजी एवं सूचना पौधोगिकी का आवगमन करना चाहिए दूसरा निजीकरण निजी बाजार आधारित नीजि अर्थ व्यवस्थाओं को वढ़ाना राज्य की अर्थव्यवस्था एवं समाज के प्रशासन में न्यूनतम हस्तक्षेप होना चाहिए। दूसरे शब्दों में महत्वपूर्ण आर्थिक नीतियों का निर्धारण प्रजातांत्रिक तरीके से निर्वाचित जनप्रतिनिधियों के स्थान पर बाजार की शक्तियों द्धारा किया जाएगा।

दलित वैश्वीकरण को किस प्रकार देखते हैं ?

नये आर्थिक जगत में जो कि निजीकरण एवं बाजारीकरण अर्थव्यवस्था पर आधारित है। दलितों का भविष्य क्या है ?क्योंकि भारतीय समाज में दलित अत्यंत पिछड़ा वर्ग है जिसके हिस्से में अन्य निर्धनता के साथ गरीबी और उपेक्षा ही आयी है। किन्तु इसके अतिरिक्त जो ज्यादा उल्लेखनीय है कि आर्थिक जगत में बाजार या बाजार के बाहर दलित जाति वंशक्रम एवं पेशे के आधार पर बहिष्कार एवं अत्यधिक भेद-भाव के शिकार होते है। क्रय शक्ति के अभाव में दलित बाजार से बहिष्कृत ही नहीं है। बल्कि जाति भेद भाव के कारण कुछ की बाजार तक पहुच नहीं होने से भी पीड़ित है दलित विशेषत: रोजगार बाजार में अवसरों के जाल तक अपनी पहुच नहीं होने, नि:शक्त होनके से एवं नीजि क्षेत्र में अनोपचारिक माध्यम से अधिक भर्ती होने से अधिक प्रभावित होंगे।

वैश्वीकरण का रोजगार के अवसरों पर विपरीत प्रभाव शारीरिक श्रम पर अत्याधिक निर्भरता होना दलित का स्वरोजगार से मजदूरी की ओर पलायन शहरी श्रमिक नियमित श्रमिक से अनियमित श्रमिक शहरी रोजगार के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। निजीकरण से शहरी दलितों की बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। शिक्षा का निजीकरण एवं व्यवसायीकरण जिससे दलित उच्च लागत के कारण शिक्षा से वंचित होते जाऐंगे। निजीकरण दलितों में लिंग असमानताओं को बढाता है अशिक्षा की उच्च दर गरीबी और भेदभाव निजीकरण लक्ष्य तक पहुच की गारंटी नहीं देता है माहिलाये जिनके जिनके साथ जाति वर्ग एवं लिंग के आधार पर भेदभाव किया जाता है ये वैश्वीकरण से विशेशरूप से प्रभावित हैं।

वैश्वीकरण के कारण दलितों के लिये आर्थिक विकास के क्षेत्र में सिमटने से हिंसा में और आधिक वृद्धि की संभावना है। उपलब्धियों के बाबजूद अनुसूचित दलित व अन्य वर्गो के मध्य समानता अभी भी जारी है। एवं बढ़ती जा रही है। वर्तमान युग में दलित वर्ग के साथ सामाजिक एवं आर्थिक भेदभाव के आकार को दर्शाता है। और यह भी दर्शाता है कि अभी दलित वर्गो को सम्मान एवं गरिमामय जीवन और अजीविका की कल्पना के लिये बहुत प्रतिक्षा करनी होगी। इस प्रकार सुनियोजित षड़यंत्र के कारण आज लाखों नवयुवक उच्च शिक्षा प्राप्ति के पष्चात भी बेरोजगार भटकते अत्महत्या करने, बैराग्य भाव की जिन्दगी जीने के लिये मजबूर है। अत: दलितों को अपनी जागरूकता का परिचय देकर अपनी तथा अपने समाज की आजादी की

* सहायक प्राध्यापक, माता जीजा बाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.) भारत

लड़ाई में बहु जनों का भारत निर्माण करने में तन मन धन से आगे बढ़कर जल, जमीन, शिक्षा उद्योग की रक्षा कर निर्भयता से आगे आये क्योकि आज का दलित, आदिवासी महिलाऍ एवं अपने वर्गो के बीच नेतृत्व विकास किये जाना आवश्यक है। क्योकि जिस किसी नागरिक या नागरिक समूहों को अपना अधिकार पाना है। उसी को आगे आना होगा यही समय की मांग है।

वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण की वर्तमान बाध्यताओं एवं उनके बढ़ते प्रभाव के परिपेक्ष्य में डॉ. अम्बेड़कर और अम्बेड़कर बाद की जिन चुनौतियों का सामना करना पड रहा है वह सब हमारे लिये चिन्ता एंव गहन विष्लेशण का विशय है। बहुराष्ट्रीय निगमों का जाल विश्व व्यापार संगठन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक की राजनितियों के सामने विश्व की सरकारें कमजोर होती जा रही हैं। पूरा विश्व बाजार बन गया है। और बाजार के सिद्धांत एवं मूल्य राज्य एवं सरकारों पर प्रभावित होते चले जा रहें है। तब शोषण विहिन समता उच्च नवीन समाज की स्थापना का संकल्प और उसे प्राप्त करने की रणनीति की पुन: समीक्षा आवश्यक प्रतीत होती है।

वैश्वीकरण का मूल लक्ष्य पूंजी और अत्यधिक पूंजी अर्जित करना और विश्व के भू-गर्भीय संस्थानों खनिजों पर एकाधिकार स्थापित करना है। यह सब शोषण के बिना संभव नहीं है। आज विश्व की सरकार दो प्रकार से भूमंडलीय करण का शिकार हो रही है। प्रथमत: जमीनी स्तर पर अर्थात संशाधनों पर स्वामित्व एवं अधिकार के स्तर पर और दूसरा आरोपित मान्यताओं अर्थात नीतियों में स्तर पर राष्ट्र को राष्ट्रीय भूमि खनिज संसाधनों को राष्ट्र के क्षेत्राधिकार में थे। राष्ट्र के हाथों में थे वे स्थानांतरित होकर बहुराष्ट्रीय निगमों के अधीन होते गये इससे प्रकार्यात्मक समायोजन कार्यक्रम कहते है। इसी प्रकार राष्ट्र एवं सरकारों की नीतियों में बहुराष्ट्रीय नियमों के उद्देश्य को लाभ पहुंचाने के लिये जो नये-नये नियम बनाये जा रहे है। संवैधानिक संशोधन किये जा रहे है। वे अधोसंरचनात्मक समायोजन कार्य के अंतर्गत आते इससे सरकार अपने मूल स्वरूप को खोती जा रही है। और प्राथमिकताए परिवर्तित होती जा रही है जिससे सरकार की, राष्ट्र की, सीमाएं सीमित होती जा रही है । सरकारे पूंजी अर्जन की माध्यम बनती जा रहीं है। सरकारों पर बाजार हावी हो गया है। इस भू-मंडलीय कृत बाजार की संस्कृति में पूंजी और अर्जन के प्रवाह के सामने व्यक्ति और व्यक्ति से जुड़े लोककल्याण की नीतियों का कितना महत्व रह पाता है। यह विष्लेशण का विशय है।

संदर्भ सूची -

1. डॉ. अम्बेडकर जीवन और मिशन-एल आर बाली
2. डा. अम्बेडकर ने कहा- शोध संकलन एवं संपादन अनिता कुमारी
3. डॉ. भीमराव अम्बेडकर-एम. कुमार दीप्ती शर्मा
4. डॉ. भीमराव अम्बेड़कर व्यक्ति और विचार- विश्व प्रताप गुप्त और मोहनी गुप्त
5. जननायक डॉ भीमराव अम्बेडकर-ओमप्रकाश कश्यप और सुभाष कश्यप
6. डॉ. अम्बेडकर का अर्थिक चिन्तन- डॉ ज्ञानचन्द्र खिमेसरा
7. डॉ. अम्बेडकर समाज वैज्ञानिक - डॉ. रामगोपाल सिंह
8. डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक विचार- डॉ. रामगोपाल सिंह
9. भारतीय दर्शन- संपादक डॉ. व.की. देवराज
10. भारतीय दर्शन डॉ.राधाकृष्णन- अनुवादक नंदकिशोर गोविल
11. भारतीय दर्शन - आचार्य बलदेव उपाध्याय
12. रचना पत्रिका
13. पत्रिक डॉ. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान शोध डॉ.बाबासाहेब अ.राष्ट्रीय सा.वि.संस्थान महू

****

भारतीय दर्शन में धर्म की संकल्पना

डॉ. पुष्पा कपूर *

सारांशः– भारतीय दर्शन में पुरूषार्थ की अवधारणा है। पुरूषार्थ चार हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें धर्म का स्थान प्रथम है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से निश्पन्न है, जिसका अर्थ है 'धारण करना'। 'धर्म' शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। भगवद्गीता में धर्म शब्द को कर्तव्य के अर्थ में लिया गया है। जहाँ कृष्ण कहते हैं-**श्रेयान स्वधर्म विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्म भयावह ॥**

वैदिक धर्म को 'सनातन' धर्म भी कहा जाता है, सनातन का अभिप्राय है 'नित्य'। प्राचीन भारत इस सनातन धर्म को अपनाकर अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। जब उसने धर्म की अवहेलना आरम्भ की तब से वह अवनति की ओर जा रहा है। मनु ने कहा है - धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित: अर्थात् हनन किया हुआ धर्म प्रजा को भी मार देता है और रक्षित हुआ धर्म लोगों की भी रक्षा करता है।

भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों को दो भागों में विभक्त किया गया है - वैदिक और अवैदिक। वैदिक दर्शन वे हैं जो वेदों को प्रमाण मानते हैं तथा उनमें शट् दर्शन (न्याय, वैशेशिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा) आते हैं। अवैदिक दर्शन वे हैं जो वेद विरोधी हैं। वे वेदों को प्रमाण नहीं मानते हैं। वे हैं चार्वाक, बौद्ध तथा जैन दर्शन। वेदों को प्रमाण न मानने के कारण इन्हें नास्तिक दर्शन भी कहा गया है। नास्तिक दर्शनों में प्रथम चार्वाक दर्शन है। जो शरीर से भिन्न किसी नित्य आत्मा को नहीं मानता। चार्वाकों ने कहा है- ''चेतना से भरा शरीर ही आत्मा कहलाती है, शरीर से अलग आत्मा का अस्तित्व नहीं है।[1] चार्वाक लौकिक जीवन में सुख प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं। वे परलोक, ईश्वर, मोक्ष आदि को नहीं मानते। अत: परलोकवादी जिस अर्थ में 'धर्म' शब्द को मानते हैं, उस अर्थ में चार्वाक उसे नहीं मानते। वे मानते हैं कि धर्म इहलौकिक आजीविका का मात्र साधन है। जैन दर्शन शरीर के अतिरिक्त आत्मा के अस्तित्व को भी स्वीकार करता है। यह परलोक एवं पुनर्जन्म पर भी विश्वास करता है।

यह मानता है कि धर्म के परमाणु होते हैं, जो पुण्य कार्य से निर्मित होते हैं, जिसे जैन दर्शन 'पुद्गल' कहता है। जीव अपने द्वारा किये गए कर्मों के फल भोगने हेतु शरीर धारण करता है। कर्म का प्रभाव समाप्त हो जाने पर जीव को शरीर के रूप में आने की आवश्यकता भी नहीं रह जाएगी। बौद्ध दर्शन में 'धर्म' शब्द व्यापक अर्थ में लिया गया है। उनके मतानुसार आत्मा नित्य नहीं है, यद्यपि बौद्ध दर्शन पुनर्जन्म को मानता है। वह विज्ञान को मानता है। वह पंच स्कन्धों को 'धर्म' कहता है। आचरण में अहिंसा एवं निर्वाण प्राप्ति के उपाय को वह 'धर्म' बताता है। ''बुद्ध का मानना है कि यदि मनुष्य अपने दु:ख से निवृत्ता होना चाहता है, तो उसे शीलवान बनना आवश्यक है, अर्थात् आचरण के नियमों का पालन करना अनिवार्य है।''[2]

इस प्रकार आचरण में नीति का होना आवश्यक है इसके लिये करूणा, प्रेम, मैत्री होना चाहिए। बुद्ध ने धर्म के लिए करूणा को महत्वपूर्ण बताया। न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम के मत में 'धर्म', आत्मा का एक विशेश गुण है। वह शुभ कर्मों से या शुभ प्रवृत्ति से उत्पन्न होता है, जिसे 'अदृष्ट' भी कहते हैं। मनुष्य का राग, द्वेष, क्रोध आदि के वशीभूत होकर कर्म करना अधर्म का मूल है। अत: मनुष्य को अपने कर्तव्य का बोध होना चाहिए। न्याय दर्शन के अनुसार ईश्वर इस संसार के मनुष्यों के लिए एक धर्म व्यवस्थापक भी है। मनुष्य के सुख-दु:ख का निर्णय ईश्वर ही करते हैं। पाप और पुण्य के संग्रह को ही 'अदृष्ट' कहते हैं, जो मनुष्यों के भाग्यों में पाये जाने वाले भेदों का कारण बनकर रहता है। ईश्वर ही अदृष्ट का संचालन करता है। कर्म नियम के अनुसार मनुष्य अपने किये गए कर्मों, चाहे वे अच्छे हो या बुरे, का फल अवश्य भोगता है। सद्कर्मों से पुण्य का निर्माण होता है और असद् कर्मों से पाप का निर्माण होता है। वैशेशिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद का मत है कि जिस कर्म से मनुष्य इस लोक में अभ्युदय और अन्त में नि:श्रेयस प्राप्त कर लेता है, उसका नाम 'धर्म' है।

इस प्रकार महर्षि कणाद धर्म के साथ एहलौकिक उन्नति को भी जोड़ देते हैं, साथ ही वह अगला जन्म सुधारने एवं ईष्वर प्राप्ति के लिये तो उपयोगी है ही। धर्म के बिना मनुष्य का मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है। धर्म से सबकुछ सिद्ध हो सकता है। जब तक आत्मा संसार में रहती है या भ्रमण करती है, तब तक इसे अपने पूर्व कर्मों के फल भोगने का अवसर मिला करता है। सांख्य दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल ने सत्कर्मजन्य अन्त:करण की एक विशेष वृत्ति को 'धर्म' माना है। आत्मा अज्ञानवश प्राकृतिक पदार्थों के प्रति राग, अहं से ग्रसित होकर बन्धनयुक्त हो जाता है।

सत्वगुण से विवेक का उदय होता है। जिस शारीरिक, मानसिक अथवा बौद्धिक कर्म के द्वारा मानव के अन्त:करण में वैराग्य-शांति आदि का उदय हो तथा विवेक का प्रकाश हो, उसी को धर्म कहते हैं। इस प्रकार पुरूष को प्रकृति के विकार से अनासक्त करके अपने यथार्थ स्वरूप के बोध के अनुकूल अन्त:करण को निर्मित करनेवाला कर्म ही 'धर्म' है। योगदर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि के अनुसार चित्तावृत्ति को क्लेश से बचाकर समाधि के उपयुक्त बनाने में जो कर्म सहायक है, उसे धर्म कहते हैं। योगदर्शन मन को ही बन्धन अथवा मोक्ष का कारण मानता है।

मन ही समस्त वृत्तियों का आधार है। समस्त कर्मों के संस्कार भी अन्त:करण में ही संचित होते हैं। जो कर्म यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि में सहायक है, वे ही धर्म हैं। योग दर्शन आत्मसाक्षात्कार के द्वारा आन्तरिक शक्तियों को जगाने पर बल देता है। योग का मुख्य उद्देश्य है आत्मा या पुरूष को अपने सच्चे स्वरूप का सही ज्ञान दिलाना। अपने स्वरूप को पहचानते ही आत्मा अपने समस्त मानसिक विकारों से मुक्त हो जाती है। यह तभी सम्भव है, जब चित्त की सभी वृत्तियों का पूर्ण रूप से नियंत्रण हो जाए। पूर्व मीमांसा के प्रवर्तक जैमिनी के अनुसार धर्म वह है जिसे वेद ने हमारे कल्याणार्थ वर्णित किया है, वह है यज्ञ आदि रूप क्रियाकलाप, इसे ही धर्म कहा गया है।

यज्ञ आदि का अनुष्ठान कर जो अपूर्व की उत्पत्ति होती है, उसको ही धर्म कहते हैं। कर्मानुष्ठान एवं फल प्राप्ति के मध्य जो व्यवधान होता है, उसमें अपूर्व के रूप में विद्यमान धर्म ही, फल उत्पन्न करता है। पूर्व मीमांसा में नैतिक

* प्राध्यापक – दर्शनशास्त्र शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म. प्र.) भारत

पक्ष पर सर्वाधिक बल दिया गया है। धर्म की विषयवस्तु वेदों से ली गई है। अपने कर्तव्यों का पालन करना तथा वैदिक कर्मों के द्वारा ही मानव जीवन को सँवारना मीमांसा के अनुसार सच्चा धर्म है। मीमांसा दर्शन में यज्ञ करना ही सबसे बड़ा धर्म है। अद्वैत वेदान्त में शंकराचार्य का मत है कि परम तत्व एक है, जीवो ब्रह्मैव नापर:।

जीवात्मा और ब्रह्म में अभेद है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। चेतना आत्मा में अनिवार्यत: अंतर्भूत रहती है। आत्मा ज्ञाता है। वह अनुभूति करती है। चेतना के समान उसमें भी इच्छा, द्वेश, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, सुख, दु:ख आदि गुणों के संस्कार निहित होते हैं। इन गुणों की उत्पत्ति अदृष्ट के द्वारा होती है एवं अदृष्ट के क्षय हो जाने पर इनका नाश हो जाता है। लोक कल्याणकारी कर्म को 'धर्म' कहा गया है। इस प्रकार भारतीय दर्शन में पुरूषार्थ की अवधारणा है। पुरूषार्थ चार हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें धर्म का स्थान प्रथम है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है 'धारण करना'। 'धर्म' शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। भगवद्गीता में धर्म शब्द को कर्तव्य के अर्थ में लिया गया है।

मनु ने मानव जीवन में दस पदार्थों के धारण को 'धर्म' कहा है, वे हैं –

1. **धृति :–** विपत्ति आने पर भी चित्ता में धैर्य का बना रहना। प्रारम्भ किये गए कर्म में यदि बाधा आ जाती है तब भी उद्विग्न न होना तथा संतोश का भाव बनाए रखना। अपने धर्म से न हटना अथवा अपने धर्म को कभी भी न छोड़ना।
2. **क्षमा :–** औरों के अपराध को सहन कर लेना। क्रोध की स्थिति निर्मित होने पर भी क्रोध न करना। किसी के अपकार किये जाने पर भी बदला न लेना। अपमान को सहन कर लेना।
3. **दम अर्थात् संयम :–** तपस्या करने में जो क्लेश हो उसे सहना। विकार के कारण उपस्थित रहने पर भी मन को निर्विकार रखना। मन पर नियंत्रण रखना।
4. **अस्तेय :–** चोरी न करना, दूसरों की वस्तु का लालच न करना। अन्याय से दूसरों का धन आदि ग्रहण न करना।
5. **शौच :–** आन्तरिक और बाह्य शुद्धि रखना। आहार आदि की पवित्रता, शरीर को शुद्ध रखना।
6. **इन्द्रिय निग्रह :–** इन्द्रियों को वश में रखना, इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत्ता न करना, जितेन्द्रिय होना।
7. **धी :–** बुद्धि अर्थात् भलीभाँति समझना। शास्त्रों के अभिप्राय को समझना।
8. **विद्या :–** आत्मोपासना करना। भलीभाँति आत्म विषयक विचार करना।
9. **सत्य :–** मिथ्या एवं अहितकारी वचन न कहना। यथार्थ बोलना। अपनी जानकारी के अनुसार उचित बोलना।
10. **अक्रोध :–** किसी भी परिस्थिति में क्रोध न करना। क्रोध का कारण होने पर भी क्रोध न करना। कार्य में बाधा उत्पन्न करने वालों के प्रति भी चित्त को निर्विकार बनाए रखना।

इस प्रकार धर्म केवल मनुष्यत्व का ही रक्षक न होकर प्राणीमात्र का रक्षक है। इसी से प्राणीमात्र के प्रति अहिंसा की धारणा है। सदाचार का पालन करना धर्म है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. भारतीय दर्शन - केदारनाथ सिंह, शशि भूशण, पृ. 70
2. भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन - नरेशप्रसाद तिवारी : पृ.64
3. धर्मदर्शन की रूपरेखा - डॉ. हरेन्द्रप्रसाद सिन्हा
4. धर्मदर्शन का सर्वेक्षण - डॉ. दुर्गादत्ता पाण्डेय
5. सामान्य धर्मदर्शन एवं दार्शनिक विश्लेषण - याकूब मसीह
6. धर्मदर्शन - लक्ष्मी निधि शर्मा
7. धर्मदर्शन - डॉ. रामनारायण व्यास
8. धर्मशास्त्र का इतिहास (खण्ड 1) - पी.वी. काणे
9. धर्मदर्शन प्राच्य एवं पाश्चात्य - याकूब मसीह
10. भारतीय दर्शन - जे.एन. सिन्हा
11. भारतीय दर्शन की रूपरेखा - हरेन्द्रप्रसाद सिन्हा

****

स्व शक्ति परियोजना-एक मूल्यांकन (म. प्र. के सन्दर्भ में)

डॉ. सारिका मिश्रा * डॉ. अंतिमबाला जैन **

सारांश- समाज में अशक्त समझी जाने वाली गरीब एवं ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाकर उनमें निर्णय क्षमता विकसित करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा ग्रामीण महिलाओं के विकास के लिए स्वशक्ति परियोजना शुरु की गई है देश के सात राज्यों में संचालित इस परियोजना का मध्यप्रदेश में महिला वित्त एवं विकास निगम द्वारा क्रियान्वयन किया जा रहा है। मध्यप्रदेश में यह योजना सितम्बर 1998 से प्रारंभ हुई है। वर्तमान में यह योजना मध्यप्रदेश के 9 जिलों में कार्य कर रही है। परियोजना के लिए बहुत से लक्ष्य रखे गये थे जैसे महिला स्व-सहायता समूहों का गठन करना, समूहो की फेडरेशन का गठन करना, समूहों को बैंक से सीधे सम्बद्ध कराना, जिससे वह बैंक ऋण की प्रक्रिया से जुड़ सके।

महिलाओं को उनके अधिकारों एवं उनसे संबंधित योजना की सम्पूर्ण जानकारी हो ऐसी कार्य योजना को अमली जामा पहनाना। सामुदायिक विकास में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित हो ऐसा वातावरण तैयार करना किन्तु परियोजना द्वारा अपने लक्ष्यों को प्राप्त न कर पाना परियोजना की अपेक्षित सफलता को संदेह के घेरे में ला रहा है। प्रस्तुत शोधपत्र में स्व-शक्ति परियोजना की वर्तमान स्थिति, परियोजना की सफलता तथा परियोजना के सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यक उपाय सुझाने की दिशा में एक प्रयास है।

प्रस्तावना-(परियोजना का परिचय) मानव संसाधन विकास मंत्रालय के तहत महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा स्थापित केन्द्रीय परियोजना सहायता ईकाई (सी. पी. एस. यू) के निर्देशन एवं निगरानी में यह परियोजना संचालित की जा रही है। देश के सात राज्यों में क्रियान्वित इस योजना के अन्तर्गत मध्यप्रदेश के 9 जिलों को रखा गया है।

यह जिले होशंगाबाद, देवास, बैतूल, सीहोर, टीकमगढ़, छतरपुर, इंदौर, उज्जैन एवं खण्डवा है। मध्यप्रदेश के अतिरिक्त यह परियोजना उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, कर्नाटक, गुजरात, हरियाणा, उत्तरांचल, छत्तीसगढ प्रदेशों में संचालित की जा रही है।

इस परियोजना के कई उद्देश्य है जैसे महिलाओं में जागरुकता लाना एवं कुशलता में वृद्धि करना, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक संसाधनों तक महिलाओं की पहुँच बनाना एवं नियंत्रण स्थापित करवाना, परिवार, समाज एवं प्रशासन में महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरुक करना, महिलाओं को आम मुद्दों से जोड़ना, महिलाओं में संगठन शक्ति का विकास करना आदि।

मध्यप्रदेश में इस परियोजना के लिए 29.41 करोड़ का प्रावधान किया गया है। परियोजना के अन्तर्गत गांव की गरीब, विशेषकर गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली महिलाओं के समूह बनाने का लक्ष्य रखा गया है इसके अलावा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग की महिलाओं के समूह बनाने पर भी जोर दिया गया है।

इस परियोजना के तहत लक्षित ग्रामों में ग्रामीण महिलाओं के समूह गठित कर उन्हें बचत के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसके बाद आपसी ऋण एवं बैंक से सम्बद्ध करके बैंक ऋण समूह को उपलब्ध हो सके इस तरह की प्रक्रिया को आसान बनाया जाता है। समूह के लिए आय अर्जक गतिविधियों का प्रशिक्षण एवं सहयोग भी इस परियोजना का हिस्सा है। इस परियोजना का मूल लक्ष्य समूह की महिलाओं को सीधे किसी तरह का ऋण उपलब्ध न करा कर उनमें स्वयं की आर्थिक क्षमता विकसित करना है।

योजना के लाभ:- इस परियोजना को प्रारम्भ करते समय महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा यह अनुमान लगाया गया था कि ग्रामीण महिलाओं को निम्न लाभ प्राप्त होगें-

1. महिलाओं में जागरुकता आयेगी।
2. महिलाओं की कार्यकुशलता में वृद्धि होगी।
3. आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक संसाधनों तक महिलाओं की पहुँच बढ़ेगी।
4. महिलायें आम मुद्दों से जुडेगी।
5. महिलाओं में संगठन शक्ति का विकास होगा।
6. महिलायें बचत करना सीखेंगी।
7. महिलाओं को ऋण उपलब्ध हो सकेगा।

अध्ययनविधि :- स्वशक्ति परियोजना का मूल्यांकन करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के संमको का उपयोग किया गया है। महिलाओं से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित कर परियोजना से लाभों के बारे में जानकारी संकलित की गई है, इसी प्रकार स्वशक्ति परियोजना की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करने के लिए म. प्र. महिला एवं बाल विकास विभाग तथा म. प्र. महिला वित्त एवं विकास विभाग से द्वितीयक समंक एकत्रित किए गए है।

वर्तमान स्थिति :- स्वशक्ति परियोजना भारत के सात राज्यों में संचालित की जा रही है। मध्यप्रदेश के सम्बन्ध में यह योजना केवल 9 जिलों में संचालित है। मध्यप्रदेश में यह परियोजना महिला वित्त एवं विकास निगम द्वारा संचालित की जा रही है। परियोजना का कार्यकाल 5 वर्ष का है। मध्यप्रदेश में यह परियोजना सीहोर, देवास, इंदौर, उज्जैन, खण्डवा, बैतूल, होशंगाबाद, टीकमगढ़ एवं छतरपुर में संचालित की जा रही है।

वर्तमान में परियोजना के अन्तर्गत म. प्र. में आने वाले ब्लॉक 40 है इसके अंतर्गत आने वाले ग्राम 1139 है। म. प्र. में परियोजना के सहभागी गैर सरकारी संगठन 58 है। वर्तमान में म. प्र. में स्व शक्ति परियोजना के अन्तर्गत बनाये गये स्व-सहायता समूहों की संख्या 2462 है। इन समूहों में शामिल महिलाओं की संख्या 32014 है। तथा इस परियोजना का कुल बजट 29.41 करोड़ रुपये हैं।

परियोजना का पुनरीक्षण:- महिला एवं बाल विकास द्वारा समय-समय पर पुनरीक्षण किया जाता रहा है ताकि परियोजना के पूर्व निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। इन पुनरीक्षणों के माध्यम से समय एवं

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य एवं प्रबंधन विभाग) अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत
** अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

परिस्थितियों के अनुसार परियोजना में परिवर्तन किये गये है जैसे हाट बाजार का प्रारंभ सन् 2002 में किया गया। सामुदायिक सम्पत्तियों के निर्माण में महिला समूह की भागीदारी कराई गई। महिला स्व-सहायता समूहो द्वारा तैयार उत्पादन म. प्र. खादी ग्रामोद्योग बोर्ड के प्रतिष्ठित ब्रांड विंध्या वैली से जोड़ा गया। खण्डवा जिले के महिला स्व सहायता समूहों के द्वारा तैयार ईट को बाजार में भारती ब्रांड के नाम से प्रस्तुत किया गया आदि।

परियोजना की सफलता का मूल्यांकन :- मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत आने वाले महिला एवं बाल विकास विभाग एवं म. प्र. महिला वित्त एवं विकास निगम के द्वारा समाज में सशक्त समझी जाने वाली गरीब एवं ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाकर उनमें निर्णय क्षमता विकसित करने के उद्देश्य से स्व-शक्ति परियोजना का प्रारंभ करना नि:संदेह एक महत्वपूर्ण प्रयास है किन्तु इसकी सार्थकता एवं सफलता ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक परिवेश, उनकी शिक्षा की स्थिति, महिला एवं बाल विकास विभाग तथा म. प्र. महिला वित्त एवं विकास विभाग के प्रयासों पर निर्भर है। वर्तमान समाज शास्त्रियों का यह विचार है कि ग्रामीण महिलाओं को सशक्त किये बिना समाज का सर्वागीण विकास संभव नहीं है लेकिन ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक परिवेश, परम्परागत रीति रिवाज एवं उनकी शैक्षणिक स्थिति को देखते हुये यह कार्य कठिन प्रतीत होता है।

स्व-शक्ति परियोजना ग्रामीण महिलाओं की ऐसी सामाजिक स्थिति, उनकी शैक्षणिक स्थिति एवं उनकी मानसिक दुर्बलता का शिकार हुई हैं। व्यक्तिगत सर्वेक्षण के आधार पर इस सम्बन्ध में स्पष्ट हुए तथ्य निम्नानुसार है-

1. परियोजना से लाभान्वित महिलाओं का 92.67 प्रतिशत अस्थाई कार्य करने को बाध्य है अर्थात् परियोजना से महिलाओं को नियमित आय का साधन प्राप्त नहीं होता हैं।
2. परियोजना से लाभान्वित महिलाओं में 78 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि परियोजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त वे अपना उद्यम नहीं लगा सकी क्योंकि पूँजी की उपलब्धता नहीं थी अर्थात् निगम समूहों को बैंको से सीधे सम्बन्ध करने में सफल नहीं हो सका।
3. परियोजना के कार्यक्षेत्र में कुछ अपवादों को छोड़कर महिला स्व-सहायता समूहों की सामुदायिक भागीदारी को स्थापित करने में निगम असफल रहा है।
4. पुराने स्व-सहायता समूहों को परियोजना से जोड़ने एवं नये स्व-सहायता समूहों के निर्माण में निगम का कार्य उत्साहवर्धक नहीं रहा है।
5. लगभग 85 प्रतिशत लाभान्वित महिलाओं का मानना है कि उनकी सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया है अर्थात् परियोजना के माध्यम से निगम महिलाओं को उनके अधिकारों एवं उनसे संबंधित योजनाओं की जानकारी देने में सफल नहीं हो सका है।
6. परियोजना से लाभान्वित महिलाओं में 63 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि प्रशिक्षणों में कोई नई तकनीक नहीं बताई जाती है जिससे उनके परम्परागत कौशल में निखार आ सके।
7. परियोजना से लाभान्वित महिलाओं में 83 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि प्रशिक्षण इतने कम समय के लिये दिये जाते है कि ग्रामीण महिलाओं को उसे समझ पाना कठिन होता है।
8. सर्वेक्षण के दौरान यह तथ्य भी स्पष्ट हुआ है कि स्व-शक्ति परियोजना के माध्यम से महिलाओं में संगठन शक्ति का विकास करने तथा महिलाओं को आम मुद्दों से जोड़ने में भी निगम द्वारा अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं की गई हैं।

स्व-शक्ति परियोजना की सफलता हेतु सुझाव :-

1. स्व-शक्ति परियोजना की सफलता के लिए सबसे पहले ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक परिवेश, उनकी शैक्षणिक स्थिति एवं उनकी सोच में बदलाव की जरुरत है इसके लिए गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से जागरुकता शिविरों को आयोजित किया जाये।
2. परियोजना के अन्तर्गत दिये जाने वाले प्रशिक्षणों की अवधि बढ़ाई जाये तथा प्रशिक्षणों में नई तकनीकों को शामिल किया जाये ताकि महिलाओं द्वारा उत्पादी वस्तुयें वर्तमान आवश्यकता के अनुसार हो।
3. बैंको को प्रोत्साहित किया जाये की वे महिला स्व-सहायता समूहों को अधिक से अधिक मात्रा में ऋण उपलब्ध कराये ओर इसके लिए निगम समूहों द्वारा लिये गये ऋण की गारण्टी ले।
4. स्व-शक्ति परियोजना को म. प्र. के अन्य जिलों में भी शुरु किया जाये ताकि सम्पूर्ण म. प्र. की ग्रामीण महिलायें इससे लाभान्वित हो सके।
5. समूहों द्वारा बनाये गये उत्पादों की विपणन व्यवस्था निगम द्वारा की जाये ताकि महिला समूहों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को बाजार उपलब्ध हो सके।
6. परियोजना की सफलता व्यापक प्रचार प्रसार से ही सम्भव हो सकेगी इसके लिए गैर सरकारी संगठनों की सहायता ली जायें। स्व-शक्ति परियोजना में उल्लेखित कर्मियों के बावजूद यह परियोजना महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए अत्याधिक आवश्यक है। आशा है कि ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, मनावैज्ञानिक विकास में यह योजना अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

सन्दर्भ:-

1. महिला विकास कार्यक्रम इनाश्री पब्लिशर्स, 2002 आशुरानी
2. गरीब महिलायें उधार एवं रोजगार किताब घर कानपुर सन् 2002।
3. योजना पत्रिका
4. मध्यप्रदेश महिला एवं विकास निगम के वार्षिक प्रतिवेदन।
5. सबल, म. प्र. वित्त एवं विकास निगम त्रैमासिक न्यूज लेटर।
6. ममत्व मेला प्रतिवेदन म. प्र. महिला वित्त एवं विकास निगम।
7. म. प्र. महिला एवं बाल विकास विभाग के वार्षिक प्रतिवेदन।

****

योग का महत्व (आलेख)

श्रीमती भावना ठाकूर *

परिचय :– योग भारत में एक आध्यात्मिक प्रक्रिया को कहते हैं, जिसमें शरीर और आत्मा को एक साथ लाना योग का काम होता है। यह शब्द प्रक्रिया और धारणा हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में ध्यान प्रक्रिया से संबंधित है। योग का भगवद्गीता प्रतिष्ठित ग्रंथ माना जाता है। वेदेत्तर काल में भक्ति योग और हठयोग नाम भी प्रचलित हो गये। महात्मा गाँधी ने अनासक्ति योग का व्यवहार किया। पंतजलि योगदर्शन में क्रिया योग शब्द का उल्लेख मिलता है।

महर्षि पंतजली ने व्यक्ति निर्माण के आधार, शिक्षा, स्वास्थ्य, मानवीय चेतना का गहन ज्ञान प्राप्त कर इनके विकास का मार्ग अष्टांग योग के रूप में सुझाया है। समाज और राष्ट्र के निर्माण का सपना पूरी तरह से व्यक्ति निर्माण पर टिका है। व्यक्ति के चरित्र निर्माण का प्रयत्न आधुनिक युग की महती आवश्यकता है।

वर्तमान युग में बदलती जीवन शैली के कारण मनुष्य संतुलन के बिंदु से दूर होता जा रहा है। आधुनिकता के परिपेक्ष्य में भौतिक एवं सामाजिक मूल्यों का ह्रास, आचरण की अराजकता, आहार की अपर्याप्तता एवं अधिक भौतिक अनियमितता वातावरण की विषमताओं के कारण मानव शारिरीक एवं मानसिक रूप से रूग्ण होते जा रहे हैं। योग विद्या द्वारा तन–मन का संतुलित विकास होता है एवं समग्र व्यक्तित्व का अविर्भाव संभव है।

योग का इतिहास :– वैदिक संहिताओं के अंतर्गत तपस्वियों के बारे में 900 से 500 ई. पू. में योग का उल्लेख मिलता है। सिंधुघाटी सभ्यता 3300–1700 ई.पू. में योग ध्यान का उल्लेख है। उपनिषद् महाभारत, भगवद्गीता 200 ई. पू. एवं पंतजली के योग सूत्र 400 ई. पु. ऋषि पंतजली द्वारा व्याख्या किया गया योग संप्रदाय सांख्य मनोविज्ञान और तत्वमीमांसा को स्वीकार करते हैं।

महर्षि पंतजली व्यापक रूप से योग दर्शन के संस्थापक माने जाते हैं। महर्षि पंतजली का योग राजयोग के रूप में माना जाता है। उनका योग यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान, समाधि आठ अंगों पर आधारित है। भगवद्गीता में प्रमुख रूप से योग के तीन रूप कर्मयोग, भक्ति योग और ज्ञान योग बताये गये हैं। हठ, योग की एक विशेष प्रणाली है, जिसे 15 वीं सदीं में भारत में हठ योग प्रदीपिका के संकलक योगी स्वत्मारमा द्वारा वर्णित किया गया।

योग का अर्थ :– योग संस्कृत के शब्द ''युज'' धातु से बना है। युज धातु का अर्थ जोड़ना होता है। योग का सही मायने में मर्म है आत्मा का मोक्ष के साथ जोड़। सच्चा योग वही है जो आत्मा को पुष्ट बनाए न कि शरीर को। जब आत्मा का जोड़ परमात्मा के साथ हो जाता है तो योग सही मायने में सार्थक हो जाता है। योग शब्द का व्यवहार बहुत व्यापक अर्थ में लिया जाता है। इसका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है।

योग शद्ध का अर्थ भी इसी भाव में है, जीव और प्रण का पूर्ण रूप से मिलना। गीता में भगवान श्रीकृण ने कहा है। ''योग: कर्मसु कौशलम्।'' अर्थात कुशलतापूर्वक किया गया कार्य ही योग है। महर्षि पंतजली के अनुसार ''चित्तवृत्ति निरोध: योग:।'' अर्थात् चित्त की वुतियों का निरोध होना ही योग है। सांख्यमतानुसार ''पुरूष प्रकृति का प्रथकत्व स्थापितकर दोनों का वियोग पुरूष का स्वरूप में स्थित होना योग है।'' ''प्राण और अपान के संयोग चन्द्र और सूर्य के मिलन को शिव और शक्ति के रुप को भी योग कहा गया है।''

पंतज़ली के अनुसार :– ''अध अनुशासनम योग:।'' अर्थात् अनुशासन ही योग है। संक्षेप में आशय यह है कि योग के शास्त्रीय स्वरूप उसके दर्शन, आधार को सम्यक रूप से समझना बहुत सरल नहीं है। सरल शब्दों में कहें तो आत्मा का परमात्मा से मिलना ही योग है।

वर्तमान परिपेक्ष्य में योग की आवश्यकता :– आज योग केवल आश्रम में रहने वाले साधुओं संतों तक ही सीमित नहीं रहा है। पिछले कुछ दशकों से लोगों में योग के प्रति आस्था बड़ी है तथा इसे विज्ञान ने भी स्वीकार किया है।

पहला सुख निरोगी काया'' उक्ति 21 वीं सदीं का मूल मंत्र है। दूषित वातावरण, दूषित खाद्य पदार्थ, विकृत मनोरंजन, आराम पसंद दिनचर्या फलस्वरूप उत्पन्न विकृत सोच व बदलती जीवन शैली मानव स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। वैज्ञानिक युग ने जाहँ सुविधाऐं उपलब्ध कराई हैं वहाँ कुछ ऐसी विकृतियाँ भी प्रदान कर दी है जिससे मानव विनाशकारी मार्ग की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं।

मानव स्वास्थ्य के चार आधार स्तंभ :–

1. नियमित भोजन
2. नियमित व्यायाम
3. नियमित निद्रा
4. संयमित जीवन

इन चार आधार स्तंभों का पालन कर मनुष्य दीर्घजीवी बनता है। इस मशीनी युग में शारीरिक श्रम सीमित हो गया है। सामिष एवं गरिष्ठ भोजन हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग हो गया है। भला ऐसे में हम कैसे स्वस्थ रह सकते हैं। योग जीवन यापन का सच्चा पथ प्रदर्शक विज्ञान है। इस प्रकार योग मानव का चहुमुँखी विकास करता है। योग विज्ञान होने के साथ – साथ एक उत्तम जीवन जीने की कला है।

योग के लक्ष्य :– योग का लक्ष्य स्वास्थ्य में सुधार से लेकर मोक्ष प्राप्त करने तक है। सभी सांसरिक कष्ट एवं जन्म और मृत्यु चक्र (संसार) से मुक्ति प्राप्त करना है। उस क्षण में परम ब्रम्हाण के साथ समरूपता का एक एहसास है।

महाभारत में योग का लक्ष्य ब्रम्हा के दुनिया में प्रवेश के रूप में वर्णित किया गया है। भक्ति सप्रदाय के वैष्णवत्व को योग का अंतिम लक्ष्य स्वंय भगवान की सेवा करना या उनके प्रति भक्ति होना है। जहाँ लक्ष्य यह है कि भगवान विष्णु के साथ एक शाश्वत रिश्ते का आनंद लेना।

योग का महत्व :– भारतीय धर्म और दर्शन में योग का आध्यात्मिक महत्व है। आध्यात्मिक उन्नति या शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए योग की आवश्यकता और महत्व को प्राय: दर्शनों एवं भारतीय धार्मिक सभी सम्प्रदयों ने एकमत व मुक्तकंण्ठ से स्वीकार किया है

वर्तमान युग :– आधुनिक युग में योग का महत्व बढ़ गया है। इसके

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, रेहटी, जिला सीहोर (म.प्र.) भारत

बढ़ने का कारण व्यस्तता और मन की व्यग्रता है। आधुनिक मनुष्य को आज योग की ज्यादा आवश्यकता है, जबकि मन और शरीर अत्याधिक तनाव, वायु प्रदूषण तथा भागमभाग के जीवन से रोगग्रस्त हो चला है। उसके अंतर्मुखी और बहुर्मुखी होने में संतुलन नहीं रहा। जिसका परिणाम संबंधों में तनाव और अव्यवस्थित जीवनचर्या के रूप में सामने आता है।

भविष्य का धर्म :- वास्तव में योग भविष्य का धर्म और विज्ञान है भविष्य में योग का महत्व बढेगा। मानव अपने जीवन में श्रेष्ठता के चरम पर अब योग के माध्यम से आगे बढ़ सकता है, इसलिये योग का महत्व समझना होगा। योग व्यायाम नहीं, विज्ञान का चौथा आयाम है।

इस भौतिकवादी क्लेशमय जीवन में योग की सबसे अधिक आवश्यकता है। थोड़ा सा नियमित आसन और प्राणायाम हमें निरोगी और स्वस्थ्य रख सकता है। यम-नियम के पालनों से हमारा जीवन अनुशासन से प्रेरित हो चरित्र में अकल्पनीय परिवर्तन कला सकता है। धारणा एवं ध्यान के अभ्यास से वह न केवल तनावरहित होगा वरन कार्य-कुशलता में पारंगत भी हो पायेगा। हम अपने उत्थान के साथ-साथ समाज तथा राष्ट्र के उत्थान में भी सहभागी हो सकेगें। बाबा रामदेवजी का कहना कितना सही है, ''जो रोज करेगा योग, उसे नहीं होगा कोई रोग।''

रोग न केवल शारीरकि क्रियाओं को सही करता है वरन् मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में भी सहायक है। जिसके चलते हम किसी भी बात पर अपना ध्यान केन्द्रित करना सीख जाते हैं। जीवन में नई उमंग जोष हमारे अंदर उभरने लगता है। आज हम देख रहे हैं कि दूरदर्शन एवं शिविर केन्द्रों के माध्यमों से सारी दुनिया योग की दीवानी दिखाई दे रही है। योग ही तो है जिसने हमें भीतरी और बाहरी प्रकृति को वश में करना सिखाया है।

प्रात: काल सूर्य नमस्कार करने का जो हमारे शास्त्रों में कहा गया है, वह सभी आसनों का पर्याय ही तो है। हर धर्म पुस्तक में मन की शांति के लिए योग का कहीं न कहीं उपयोग देखा ही जाता है। योग एक ऐसी अमूल्य औषधि है जो बिना मूल्य आप को निरोगी बना सकती है शक्तिशाली बना सकती है।। आपके आत्मविश्वास को बढ़ा सकती है। योग के महत्व को जानिए, पहचानिए और जीवन में इसे अपनाइये।

''योग है जीविन धारा,
जिसने जाना,उसने माना
सबका इसने जीवन तारा,
रोगों से हो मुक्त सभी,
ये विनती आपसे अभी।''

योग साधना :- इसके अतर्गत आसन प्राणायाम का अभ्यास शारीरिक सम्पन्नता के साथ मानसिक शक्ति भी प्रदान करता है। योग हमारी कार्यकुशलता एवं कार्यक्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि करता है। संतोष की भावना स्वाभाविक रूप से जीवन में समाहित हो जाती है।

आत्मोन्नति के साधन के रूप में योग की महत्ता को प्राय: सभी भारतीय दर्शनों ने स्वीकार किया है। आत्मशुद्धि के लिए योग ही सर्वोत्तम साधन हैं। इससे और मन की शुद्धि हो जाती है।

लाभ :-

1. योग से शरीर और मन तरोताजा होता है।
2. योग से खोई हुई शक्ति की पूर्ति होती है।
3. योग से आध्यात्मिक लाभ की प्राप्ति होती है।
4. योग युवा एवं ऊर्जावान बनाने में सहायक है।
5. योग से पाचन तंत्र सुचारू रूप से कार्य करता है।
6. योग द्वारा तन की स्थूलता का नाश होता है ओर व्यक्ति तंदरूस्त होता है।
7. यौगिक क्रियाओं द्वारा बुद्धि मेघाशक्ति स्मरणशक्ति में वृद्धि होती है।
8. योग मानव को संयमी एवं आहार विहार में मध्यम मार्ग का अनुकरण करने वाला बनाता है।।
9. यौगिक क्रियाऐं करने से हृदय फेफड़ों को बल मिलता है, रक्त शुद्ध होता है, रक्त का संचारण ठीक होता है।
10. योग मन को स्थिरिता (एकाग्रता) प्रदान कर सकंल्प शक्ति को बढ़ाता है।
11. योग शारिरीक स्वास्थ्य के लिए वरदान है। इससे शरीर के समस्त अंग प्रभावित होते हैं तथा वह अपने कार्य को सुचारू रूप से करते है।
12. यौगिक क्रिया से मेरूदण्ड रीड़ की हड्डी लचीली बनती है।
13. यौगिक क्रियाएं योग करने वालों को यथाशक्ति करना चाहिए।

उपसंहार

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि योग यदि नियमित दिनचर्या के रूप में प्राणायाम व कुछ आसनों को अभ्यास के रूप में करने से व्यक्ति निरोगी बनता है। मनुष्य में नैतिकता , बौद्धिक स्तर शारीरिक एवं मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास योग पद्धति से ही संभव है।

इस प्रकार योग मानव का चहुमुँखी विकास करता है। योग विज्ञान होने के साथ-साथ एक उत्तम जीवन जीने की कला है। आज भारत ही नहीं वरन् विश्व के अनके देशो में योग के प्रति लोगों का रूझान बढ़ता जा रहा है। वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि आयु बढ़ाने के साथ-साथ शारीरिक शिथिलता एवं वैचारिक अस्थिरता का योगाभ्यास के द्वारा निदान किया जा सकता है।

इस प्रकार यह निर्विवाद सत्य है कि योग एक सम्पूर्ण विज्ञान है वह केवल शारीरिक व्यायाम मात्र नहीं है। इसके आसन, मुद्राऐं आदि जहाँ शरीर को निरोग एवं सुडोल बनाते हैं, रोग निरोधक क्षमता प्रदान करते हैं वहीं प्राणायाम, ध्यान धारता आदि मानसिक एकाग्रता एवं बुद्धि की प्रखरता प्रदान करने में सहायक है। अत: जीवात्मा और परमात्मा का सम्पूर्ण रूप से मिलना ही योग है। योग सुखी एवं समृद्ध जीवन व्यतीत करने का राजमार्ग है।

स्वामी सम्पूर्णानंद ने योग को परिभाषित करते हुए कहा कि, ''योग वह कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर मन वांछित फल की प्राप्ति की जा सकती है।'' ऊँ असतो मा सद्गमय,तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृर्त्योमाड मृतंगमय लोका: समस्ता: सुखिनों भवन्तु।

ऊँ शान्ति....शान्ति......शान्ति......

****

रामकथा का उद्भव और विकास

प्रो. मनु श्रॉफ *

वृहद्धर्मपुराण में वाल्मीकि रामायण के विषय में कहा गया है कि सभी काव्य, इतिहास और पुराण ग्रंथों का आधार यही रचना है-

'रामायणमहाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्।
तन्मूलं सर्व काव्यानामितिहास पुराणयोः:' ।।[3]

इसमें संदेह है कि व्यास और वाल्मीकि ने न केवल भारत वरन् समस्त दक्षिण पूर्व एशिया के साहित्य को गंभीरता से प्रभावित किया। इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते है कि यह कथा जनसाधारण के बीच वाल्मीकि से पहले ही प्रचलित थी। यह गीतों के रूप में सुनाई जाती थी और इस प्रकार इसका स्वरूप आख्यान काव्य था।

बौद्ध त्रिपिटिक, महाभारत और वाल्मीकि रामायण के अनुशीलन से पता चलता है कि राम संबंधी आख्यान काव्य की उत्पत्ति, वैदिक काल के बाद लेकिन चौथी शताब्दी ई. पू. से कई शताब्दी पूर्व हुई। वैदिक साहित्य में रामकथा के अभाव के कारण विद्वानों ने इसके मूल के संबंध में अलग-अलग अनुमान लगाये है - डॉ. वैबर का मत है कि रामकथा का मूलरूप बौद्ध 'दशरथ जातक' में सुरक्षित है कि जबकि डॉ. कामिल बुल्के ने यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि 'दशरथ जातक' में प्राप्य रामकथा मौलिक न होकर, वाल्मीकि की रामायणीय कथा का विकृत रूप है।[4]

भारतीय साहित्य की अन्य रचनाओं के तुलनात्मक आधार पर यह बात निश्चित है कि आधी रामायण की रचना 300 ई. पू. के आसपास हुई।[5]

वाल्मीकि रामायण में धर्म को बहुत महत्व दिया गया है। राम धर्मात्मा एवं धर्मचारी है। वे सत्यवादी, आज्ञाकारी पुत्र, एक पत्नीव्रत, प्रजाहितैशी एवं सत्य प्रतिज्ञ है। राम संसार के भोगों के प्रति उदासीन नहीं है, लेकिन संतुलन और धर्म को सभी सुखों का आधार मानते है। वाल्मीकि के राम अपने मनोवेगों का कहीं भी दमन नहीं करते। एक उच्चाशय महामानव के अनुरूप ही उनके मनोवेगों का प्रकाशन होता है।

वाल्मीकि परवर्ती भारतीय साहित्य में भी रामसंबंधी रचनाओं की अटूट श्रृंखला मिलती है। जिसके मूल में इसी रचना की प्रेरणा है। संस्कृत में रघुवंश(कालिदास) सेतुबन्ध(प्रवरसेन), जानकीहरण(कुमारदास), रामचरित(अभिनंद), उत्तररामचरित(भवभूति), बालरामायण(राजशेखर) आदि प्रबंध एवं नाटक इसके उदाहरण है। जैन परम्परा के प्राकृत और अपभ्रशं साहित्य में वाल्मीकि के संशोधन का प्रत्यन मिलता है।

इस परम्परा में सबसे प्रसिद्ध रचनाएँ विमलसूरि का 'पउमचरिय'(प्राकृत) और उस पर आधारित स्वयंभूदेवकृत 'पउमचरिय'(अपभ्रंश) है। भारतीय भाषाओं में रामकाव्य की परम्परा आबाध रुप से चलती रही। इसके कुछ उदाहरण है- कम्बनकृत 'तमिलरामायण' (12 वीं शती), रंगनाथ रचित तेलगू भाषा का 'द्विपद रामायण' (13 वीं शती) रामनामक कवि द्वारा मलयालम में रचित इरामचरित(14 वीं शती), असमी भाषा का 'माधव कन्दली रामायण'(14 वीं शती) बांग्ला भाषा का कृतिवास-रामायण(15 वीं शती), ओड़िया कवि बलरामदासकृत 'जगमोहन रामायण' (16 वीं शती) कन्नड़ कवि नरहारि का तोखे रामायण(16 वीं शती), और एकनाथ का मराठी 'भावार्थरामायण'(16 वीं शती) आदि।[6]

मनुष्य की कल्पना आधार बहुत कुछ उसका परिवेश होता है। युग के अनुसार उसके आदर्श और धारणायें बनती है। अतैव भिन्न युगों-युगों में हमें काव्य की विशेषताएँ मिलेगी। मानव की मूलवृत्तियाँ एक सी होती है, किन्तु युग के अनुसार उनके आवेग और प्रकाशन में भेद मिल सकता है। काव्य में दोनों प्रकार के चरित्र हो सकते है जैसे कि उस काल या परिवेश में है। अथवा अपनी दुर्बलताओं से ऊपर उठकर जैसा उन्हें होना चाहिए।

दोनों ही रुपों में अर्थात आदर्श और यथार्थ चित्रण में लेखक की कल्पना पर उसका परिवेश प्रभाव डालता है। इसी कारण विभिन्न युगों में राम के चरित्र को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया जाता रहा। श्री रामानुजाचार्य और रामानंद के प्रभाव में रामभक्ति का प्रचार हुआ और रामभक्ति संबंधी अनेक ग्रंथों की रचना हुई। वैष्णवो संहिताओं में रामनाम महिमा, राम के परतत्व और रासलीला आदि का वर्णन मिलता है।

हनुमत्संहिता में राम की रासलीला और जलविहार का वर्णन है। शिवसंहिता में कंदली वन में रामसीता का प्रेमप्रसंग उल्लेखित है। वृहद ब्रह्मसंहिता में राधाकृष्ण और सीताराम के युगल उपासना का विधान है। हिरण्यगर्भ संहिता और ब्रह्मसंहिता में राम को पुर्णावतार, पूर्णब्रह्म, अद्वैत आनंद, शुद्ध चैतन्य लक्षण से युक्त माना गया। 'आध्यात्म रामायण' अनुमानत 14 वी - 15 वी शती की रचना है। इसमें राम को ईश्वर का अवतार और संगुण ब्रह्म माना है। इसमें राम विश्व की उत्पत्ति, लय, स्थिति आदि के एकमात्र कारण है।

जानकी जीवनदास के 'महारामायण'(संवत 1985) में राम को पूर्ण ब्रह्म मानकर सखी भाव से राम की उपासना की गई है। इसमें राम की रासलीला का वर्णन है। गोस्वामी तुलसीदास के अभिर्भाव से पूर्व हिन्दी में रामकथा की मुख्यरुप से चार धाराएँ चल रही थी। 1. जैन रामकथा 2. वीरगाथाओं में रामकथा 3. मधुर उपासना संबंधी रामकथा 4. भक्ति आंदोलन तथा भक्ति परम्परा की रामकथा जैन रामकथा प्राकृत अपभ्रंश की कड़ी के रुप में प्रारंभिक हिन्दी में भी चलती रही।

चन्दवरदायी के महाकाव्य पृथ्वीराज रासौ में रामकथा की चर्चा दूसरे प्रस्ताव में आई है, जिसमें रामावतार का वर्णन किया गया है। हिन्दी में मधुर उपासना का प्रारंभ श्री अग्रस्वामी(अग्रअली) की संस्कृत भाषा(अष्टयाम) तथा हिन्दी भाषा में लिखित(ध्यानमंझरी) में देखने को मिलता है। ध्यानमंझरी में रामजीवनार्थ, राम की आंतरिक लीला, मधुरति सीता की सुरती आदि का सरस वर्णन है। भक्ति परम्परा की रामकथा में ईश्वरदास की कृतियाँ 'भरतमिलाप' तथा 'अंगदपेज', भूपतिकृत 'रामचरित रामायण'(1285 ई.वी.) सुंदरदासकृत, 'हनुमानचरित' आदि प्रमुख है। तुलसी से पूर्व हिन्दी में भक्ति संबंधी पर्याप्त साहित्य लिखा जा चुका था।[8]

रामकाव्य परम्परा में संस्कृत में जो स्थान वाल्मीकि का है वही हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास का। तुलसी ने वाल्मीकि रामायण और आध्यात्म रामायण, दोनों को अपने काव्य के आधार ग्रंथों के रूप में ग्रहण किया है। गोस्वामी तुलसीदास के बाद ऐसा कोई कवि व्यक्तित्व नहीं हुआ, जो मर्यादित

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र), माखनलाल चतुर्वेदी शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत

रामभक्ति परम्परा में बहुमूल्य योग दे सकें। तुलसी के समकालीन आचार्य केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' (1601 ई.) की रचना से इस रामकाव्यधारा में नूतनता प्रदान की। बांग्लाभाषा में रामकथा पर आधारित कृतिवास की रामायण में, राम के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन हुआ है, परंतु मानवीय दुर्बलताओं के कारण उनका मानवरूप ही मुखरित हुआ है। राम की गलदश्रु भावुकता पर बंगाली सहहृदयता का प्रभाव स्पष्ट है। [9] हिन्दी के आधुनिक रामकाव्यों में प्राय: सभी कवियों ने राम के प्रति अपनी श्रद्धा एवं भक्ति प्रकट की है और उन्हें ईश्वर का अवतार भी कहा है। राम सभी काव्यों में प्राय: मानवेतर मानव है। उनके व्यक्तित्व में आदर्श की पराकाष्ठा होने के कारण असाधारणता अवश्य है। उनमें मानवीय दुर्बलता होते हुए भी आनंत गुण है। वे गंभीर, विनयशील, अद्धितीय, शौर्य सम्पन्न एवं परमदयालु है। आधुनिक रामकाव्यों में राम के ईश्वरतत्व की भक्तिमूलक धारणा का अंत हो गया है और इसका स्थान सांस्कृतिक आदर्शों ने ले लिया है। [10]

मैथिलीशरण गुप्त के रामत्यागमयी आर्य संस्कृतिक स्थापक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के राम अध्यात्नोमुख जीवनदर्शन के प्रचारक, हरिऔधजी के राम-शाम नीति के प्रवर्तक और बलदेवप्रसाद मिश्र के राममानवतावादि राष्ट्रीयता के पोषक है। कही वह नवचेतनावाद से संवाहक अतिमानव है और कही वर्ग संघर्ष में दलित वर्ग के नेता राम के स्वरूप में ऐसा नया विचार बोध आना स्वभाविक है, क्योंकि जीवनसंबंधी मान्यताओं के साथ प्राचीन आदर्श भी परिवर्तित हो जाते है और राम केवल मानव नहीं है, उनके चरित्र में भारतीय जनमन का उत्कर्ष समाहित है।

इस प्रकार वाल्मीकि से पूर्व भी जनमानस के कण्ठाहार राम पार्थिव वांग्मय में ब्रह्म, ईश्वर महामानव के रूप में छाये रहे। भारत की लगभग सभी भाषाओं में उनके चरित का विविध रूपों में गुणगान हुआ। राम के चारित्रिक विकास को इस लघु लेख में समेट पाना न तो संभव और न सामर्थ के अनुकूल अंत में मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि राम तुम्हार चरित स्वयं ही काव्य है।

संदर्भ सूची

1. कल्याण ज्योतिषतत्वाड्क संख्या 1 2014 पेज न. 131
2. रामचरितमानस 1/190;1/191
3. वृहद्धर्मपुराण, पूर्वभाग 25/28
4. रामकथा, डॉ. कामिल बुल्के, पृ. 29
5. मानस-कौमुदी, पृ. 4-5, 7
6. मानस-कौमुदी, पृ. 7
7. वाल्मीकि-रामायण 3-46-18,19,21
8. हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 245
9. कृतिवासी बंगला रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. रमानाथ त्रिपाठी, पृ. 238
10. रामचरित चिन्तामणि, दूसरा सर्ग पृ. 10
11. साहित्य एव संस्कृति : चिंतन के नये आयाम पृ.क्र. 29-37

****

याददाश्त बनाएँ धारदार! एलर्ट बनें (शोध आलेख)

डॉ. संजय सोहनी * डॉ. अनिता राय बाथम **

शोध- आलेख - अपनी रोजमर्रा की दिनचर्या में कुछ लोग कुछ न कुछ जरूर भूलते है। जैसे कि चाबी कोट की जेब में रहती है, लेकिन वे उसे टेबल की दराज में तलाशते हैं, चश्मा सिर पर चढ़ा होता है, लेकिन वे उसे इधर-उधर ढूंढते है, दफ्तर की बैठक तो घंटे भर पहले शुरू हो जाती है, लेकिन उन्हें वक्त का ध्यान नहीं रहता, वगैरह-वगैरह। और ऐसा क्यों न हो, क्योंकि सुबह से शाम तक के व्यस्त क्रियाकलाप का प्रभाव हमारी स्मरण शक्ति पर पड़ना स्वाभाविक है।

क्या चिंता का विषय है ? लीलावती अस्पताल की कसंल्टेन्ट न्यूरोलॉस्टि डॉ.श्वेता अदतिया कहती है कि हर व्यक्ति, जिसे कभी-कभी भूलने की समस्या का सामना करना पड़ता है, जरूरी नहीं कि उसे डिमेंशिया हो । अधेड़ उम्र तक पहुंचते-पहुंचते अगर भूलने की थोड़ी समस्या हो, तो चिंता का विषय नहीं है। हाँ, यदि आपको लगता है, कि भूलने की बीमारी आपको हद से ज्याद प्रभावित कर रही है, तो आप इसको ठीक कर सकते हैं। इस समस्या से आप बच सकते हैं। अगर आप इसको समय रहते पहचान लेते हैं, तो आपको किसी दवा विशेष या पैथी की नहीं, बल्कि न्यूरोबिक्स नाम मानसिक कसरत की जरूरत है।

क्या है न्यूरोबिक्स ? - सही मायने मे न्यूरोबिक्स यानी मेंटल एरोबिक्स दिमाग की कोशिकाओं को दुरूस्त रखता है,ठीक वैसे ही जैसे कि हृदय को स्वस्थ रखने के लिये कॉर्डियोवेस्कुलर व्यायाम है। न्यूरोबिक्स एक तरह से हमारे दिमाग की कोशिकाओं को सक्रिय करने की कसरत है, जिसमें आपकी पांचों इंद्रियों का प्रयोग करता है, जैसे -स्वाद, स्पर्श, दृष्टि, सूंघने की शक्ति और देखने की शक्ति। इस प्रयोग से हमारे दिमाग के हरेक सोए पड़े हिस्से को बल मिलता है। हालांकि यह कोई नया प्रयोग नहीं है, पर जैसा कि विशेषज्ञों का कहना है, न्यूरोबिक्स दिमाग पर बड़ा कारगर साबित हुआ है।

अदतिया का यह भी कहना है कि सुडूको, शतरंज और क्रासवर्ड जैसे खेल दिमाग के लिये व्यायाम साबित हुए है। पर ये न्यूरोबिक्स की तरह दिमागी कोशिकाओं को बल देने वाले व्यायाम की बराबरी नहीं कर सकते है। इसका कारण है कि हमारी सारी इंद्रियों को एक साथ प्रयोग में लाने का काम पूर्ण रूप से न्यूरोबिक्स ही करता है।

अदातिया कहती है, कि न्यूरोबिक्स आप कभी भी और कहीं भी कर सकते हैं। और यह बहुत आसान भी है जैसे - दांतो को ब्रश दाएं हाथ की बजाए बायें हाथ से करें (यानी, जो अपना रूटीन वर्क बाएं हाथ से करते हैं, वे दाएं हाथ से करें) बाएं हाथ से ही लिखे, अपनी मेज पर पड़ी चीजों को उलट-पलट करें अदतिया कहती है कि फोन या माउस पकड़ने के लिए भी जब आप अपने उलटे हाथ को उपयोग में लाते हैं, तो दिमाग की शांत पड़ी कोशिकाएँ जागृत होती हैं। इसी तरह अपने घर की ओर नये रास्ते से जाने से हमारा दिमाग नयी दिशाएँ खोजता है तो दिमागी कोशिकाओं को बल मिलता है, दिमाग में नई नर्व सेल्स उत्पन्न होने लगती है।

आंखे बंद करना - आंखे बंद करके नल तलाशना, पानी को महसूस करना, नये साबुन की सुगंध लेना। इन गतिविधियों से स्पर्श और सूंघने की शति से संबंधित मस्तिष्क के हिस्सों को बल मिलता है।

व्यंजनो को सूंघकर पता लगाना :-खाने की मेज पर रखे व्यंजनों को देखकर पहचानने के बजाय सूंघकर पहचाने, सूंघने से संबंधित मस्तिष्क का हिस्सा जागृत होगा।

सुबह की शुरूआत खूबसूरत फूलों से करें :- अगर आप अपनी सुबह की शुरुआत कॉफी के सुगंधित जायके से करते है, तो एक सुबह फूलों को सुगंध के साथ शुरूआत करके तो देखें इस गतिविधि से आपके दिमाग मे एक नये तरीके की सुगंध की सूचना जाएगी और आपकी कार्यक्षमता बढ़ेगी।

सलाद की प्लेट को बंद आंखो से सजाये: - आपकी आंखो को बंद कर सही मात्रा में नमक और मिर्ची सलाद में डालने की कोशिश करें। इस प्रयोग में आपकी सूंघने और स्पर्श करने की गतिविधि से आपका दिमाग काफी सक्रिय होता है, क्योंकि आप बगैर देखे सब कर रहे होते है इस कसरत से आपका एब्स्ट्रेक्टसेंस यानी बिना देखे हुए भी सही अंदाजा लगाने की क्षमता विकसित होती है।

अनजान एवं नयी ध्वनियों को सुनना :- इस प्रयोग से श्रवण शक्ति को बल मिलता है। इसको आप अकेले भी कर सकते है और दोस्तों के साथ भी। आप चिड़ियाघर मे जाकर चिड़ियों का चहचहाना रिकार्ड कर सकते है और अपने घर पर जाकर चिडियों का नाम उनके चहचहाने से पता करने का प्रयोग कर सकते हैं। आप किसी म्युजिक सीडी से सुनकर उनमें विभिन्न वाद्य यंत्रो का पता करने का प्रयोग भी कर सकते है। इन प्रयोगों से श्रवण शक्ति से जुड़े दिमागी हिस्से को बल मिलता है।

सामाजिक गतिविधियो में हिस्सा लें :- सामाजिक गतिविधियों में हिस्सा लेने, नई व्यंजन विधियाँ सीखकर उन्हें बनाने और नई-नई किताबों का अध्ययन कर और नृत्य सीखने से भी आप अपने दिमाग को तेज बना सकते है। नयी भाषा सीखना भी एक सफल प्रयोग है। इन प्रयोगों से आप अपने दिमाग पर जोर डालकर, दिमाग को विकसित कर सकते है।

सारे विशेषज्ञ यह नहीं मानते कि दिमाग को दुरूस्त रखने के लिये कोई एक ठोस प्रक्रिया या व्यायाम है, चाहे वो शतरंज का खेल हो या सुडूको या फिर न्यूरोबिक्स। नेचर न्यूरोसाइंस की प्रधान संपादक सेन्ड्रा आमोट और प्रिसटॅन यूनिवर्सिटी में न्यूरो साइंस के प्रोफेसर सैम बैंग यह मानते है कि ये सब प्रयोग विश्वास पर आधारित है। उनका मानना है, कि रोजमर्रा के जीवन मे हमें कई ऐसे अनुभव होते है, जो हमें दिमागी कसरत करवाते हैं। जैसे नया पता ढूंढना, दोस्तों के साथ मेल मिलाप बढ़ाना या फिर दफतर में चल रही राजनीति या प्रपंच से बचना।

एक तरह का परीक्षण जो कि बहुत सफल रहा है। दिमाग को दुरूस्त और मजबूत बनाता है। उसका नाम है शारीरिक व्यायाम। विशेषज्ञ मानते है, कि शारीरिक व्यायाम से हमारे एक्जिक्यूटिव फंक्शन को बल मिलता है। एक्जिक्यूटिव फंक्शन मनुष्य की उस शक्ति की तरफ इशारा करता है, जो आपके किसी वस्तु स्थिति के दौरान उचित व्यवहार करने में प्रयुक्त होती है। इसमें हमारी कुछ मुख्य गतिविधियाँ आती है। जैसे कार्य करने की गति,

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) ** सहायक प्राध्यापक (गृहविज्ञान) भेरूलाल पाटीदार शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत

प्रतिक्रियात्मक गति ओर कार्यशील स्मरण शक्ति। अठारह शोधों का गहन विश्लेषण से पाया गया है कि जब निष्क्रिय व्यक्ति भी व्यायाम करता है, चाहे उसकी उम्र 70 वर्ष ही क्यों न छू गई हो, तो भी उसे इसमे लाभ मिलता है।

व्यायाम है परम लाभकारी – व्यायाम उम्रदराजी से संबंधित दिमाग के फ्रंटल कारटेक्स के संकुचन को कम करने मे सहायक होता है। जानवरों पर किए गए अध्ययनों से पता चला है, कि व्यायाम से दिमाग का रक्त संचार सुधरता है, जिससे न्यूरान्स को बल मिलता है। यही नहीं व्यायाम से हदय का भी स्वास्थ्य सुधरता है और स्ट्रोक यानी ब्रेन अटैक से भी बचाव होता है, जो दिमाग पर दुष्प्रभाव डालते है।

व्यायाम से दिमाग में ऐसे प्रोटीन की उत्पत्ति होती है जो न्यूरॉन्स व्यायाम से दिमाग के हिपोकैम्पस नामक स्मरण शक्तिकेन्द्र मे नई कोशिकाओं का जन्म होता है। इससे काग्नेटिव परफॉर्मेंस में इजाफा होना स्वाभाविक है। शोधकर्ता अब तक इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे है कि किस प्रकार व्यायाम दिमाग के लिए सबसे कारगर है, पर किसी भी प्रकार का ऐरोबिक वर्कआउट या किसी भी तरह का शारीरिक व्यायाम दिमाग के लिये अच्छा है। इससे दिमाग को ऑक्सीजन मिलती है। जो लोग व्यायाम की शुरूआत कर रहे है उनको 30 से 60 मिनट तेज चलने का व्यायाम सप्ताह मे कई बार करना चाहिए।

दिमाग को तेज करने के तरीके :-

दिमाग को तेज करने के लिये कोई मुश्किल काम करने की जरूरत नहीं है। बढ़िया व्यायाम वह है, जो सरल हो, और आपकी सारी इन्द्रियों को उपयोग में लाता हो।

1. संगीत–इससे आपके दिमाग का न्यूरान तंत्र मजबूत होगा।
2. भाषा ज्ञान–भाषा को सीखने, बोलने और इसके दौरान प्रयुक्त श्रवण शक्ति भी हमारे दिमाग को तेज करती है।
3. टेबल टेनिस– इससे दिमाग की अच्छी कसरत होती है।
4. शतरंज– दिमाग शार्प बनता है।
5. नृत्य–नृत्य जैसे टैंगो करने से आपकी स्मरण शक्ति और शारीरिक नियंत्रण करने की शक्ति को बल मिलता है और पोस्चर मे सुधार आता है।
6. पहेली– जटिल पहेलियाँ दिमाग को ध्यान केन्द्रित करने मे सहायक होती है।
7. गेन्द उछालना–गेंद को ऊपर उछालकर पकड़ने की क्रिया से नियंत्रण करने की शक्ति का विकास होता है।

स्मरण शक्ति बढ़ाने में कारगर गतिविधियाँ –

1. **ध्यान करें –** ध्यान स्मरण शक्ति के लिये बहुत जरूरी है। ध्यान करने की प्रक्रिया के लिये किसी एकांत कमरे में शांति से लेट या बैठ जाए और दोनों हाथों को अपने पेट के ऊपर रख लें। इसके बाद कुछ गहरी सांस लें, और कमरे के शांत वातावरण में ध्यान लगाएं। इसका अभ्यास आप रोज 10 मिनट के लिये करें।
2. **सृजनात्मक बने–** अपनी दिनचर्या शुरू करने से पहले आप अपने दिमाग में अपने तरीके से उसका तालमेल बिठा सकते है, ताकि आपको सब कुछ याद रहें।
3. **सुगंध ले–** नाक से हमारी स्मरण शक्ति का बहुत बड़ा संबंध है। सोने से पहले आप बिस्तर पर अपना पसंदीदा इत्र डाले, ताकि सुबह आप अपने को तरोताजा महसूस करेगें।
4. **अच्छी नींद ले–** बोस्टन के बेथ इजरायन डिकोनेस केन्द्र के शोध से यह पता लगा है, कि सेरिबेलम दिमाग का यह हिस्सा है, जो आपकी गति और सही माप करने की क्षमता पर नियंत्रण करता है। और उसे दुरूस्तर करने के लिये रोज अच्छी नींद की आवश्यकता होती है। सेरिब्रलकारटेक्स ''ग्रे मेटर'' दिमाग का वह हिस्सा है, जो तर्क शक्ति, दृष्टि, श्रवण और स्मरण शक्ति का केन्द्र होता है। मस्तिष्क विशेषज्ञ यह मानते है, कि दिमागी कसरत कारटेक्स को बल देती है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. हेल्थ और न्यूट्रीशन – सितम्बर 2008 पृ क्रमांक 6 से 10
2. हेल्थ और न्यूट्रीशन – नवम्बर 2002 पृ क्रमांक 12
3. हेल्थ और न्यूट्रीशन – जनवरी 1997 पृ क्रमांक 65 से 69

****

स्वर्ण उत्खनन् आकर्षण (आलेख)

डॉ. सतीश माहेश्वरी * तृप्ति माहेश्वरी **

सोने का खनन भारत में अत्यन्त प्राचीन समय से हो रहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि दसवीं शताब्दी के पूर्व पर्याप्त मात्रा में खनन हुआ था। गत तीन शताब्दियों में अनेक भूवेत्ताओं ने भारत के स्वर्ण युक्त क्षेत्रों में कार्य किया किन्तु अधिकान्शत: वे आर्थिक स्तर पर सोना प्राप्त करने में असफल ही रहे। भारत में उत्पन्न लगभग सम्पूर्ण सोना मैसूर राज्य के कौलार तथा हट्टी स्वर्ण क्षेत्रों में निकलता है।

अत्यन्त अल्प मात्रा में सोना उत्तरप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पंजाब तथा मद्रास राज्यों में भी अनेक नदियों की मिट्टी या रेत में पाया जाता है किन्तु इसकी मात्रा साधारणत: इतनी कम है कि इसके आधार पर आधुनिक ढंग का कोई व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से प्रारम्भ नहीं किया जा सकता। इन क्षेत्रों में कुछ स्थानों पर स्थानीय निवासी अपने अवकाश (छुट्टी) के समय में इस मिट्टी एवं रेत को धोकर कभी-कभी अल्प (थोड़े) सोने की प्राप्ति कर लेते हैं।

यह क्षेत्र मैसूर राज्य के कौलार जिले में मद्रास के पश्चिम की ओर 125 मील की दूरी पर स्थित है। समुद्र से 2800 फुट की ऊँचाई पर यह क्षेत्र एक उच्च स्थली पर है। वैसे तो इस क्षेत्र का विस्तार उत्तर दक्षिण में 50 मील तक है किन्तु उत्पादन योग्य पट्टिका की लम्बाई लगभग 4 मील ही है। इस क्षेत्र में बालाघाट, नंदी दुर्ग, उरगाम, चैपियन रीफ तथा मैसूर खाने स्थित हैं। खनन के प्रारम्भ से मार्च 1951 के अन्त तक 2,18,42902 आउंस स्वर्ण, जिसका मूल्य 169.61 करोड़ रुपया प्राप्त हुआ।

कौलार क्षेत्र में कुल 30 पट्टिकाएं हैं जिनकी औसत चौड़ाई 3-4 फुट है। इन पट्टिकाओं में सर्वाधिक स्वर्ण उत्पादक पट्टिका चैपियन रीफ है। इसमें नीले भूरे वर्ण का, विशुद्ध तथा कणों वाला स्फटिक प्राप्त होता है। इसी स्फटिक के साहचर्य में सोना मिलता है। सोने के साथ ही दुरमेलीन भी सहायक खनिज के रुप में प्राप्त होता है।

सोने का व्यापार वर्तमान में एक औद्योगिक इकाई का स्वरुप ले चुका है। स्वर्ण के उत्खनन में कई बड़ी-बड़ी कम्पनियां सम्पूर्ण विश्व में सक्रिय हैं और भारत में भी स्वर्ण उत्खनन का कार्य कर्नाटक सरकार के द्वारा संचालित होता है। स्वर्ण का शुद्धीकरण भी कई कम्पनियों के लिए औद्योगिक कार्य कर रुप ले चुका है। इसके बाद प्रारम्भ होता है शुद्ध स्वर्ण का औद्योगिक इकाई के रुप में उपयोग, जिसमें आभूषण उद्योग का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इसके अलावा स्वर्ण के अन्य उपयोग विभिन्न प्रकार के औद्योगिक इकाइयों में किये जाते हैं।

विश्व के दृष्टिकोण से देखा जाये तो भी सम्पूर्ण विश्व में स्वर्ण के प्रति मोह स्वर्ण की खरीद बिक्री को एक व्यावसायिक स्वरुप प्रदान करता है। यही कारण है कि सम्पूर्ण विश्व में स्वर्ण की मांग अन्य बहुमूल्य धातुओं की तुलना में सम्पूर्ण विश्व में स्वर्ण की मांग अन्य बहुमूल्य धातुओं की तुलना में सर्वाधिक है। कोई स्वर्ण को आभूषण के रुप में रखना चाहता है तो कोई बुरे समय का साथी मानकर विनियोग रुप में रखता है। साथ ही विभिन्न प्रकार के रीति रिवाज इसकी खपत को सम्पूर्ण विश्व में बनाए रखते हैं।

भारत में भी स्वर्ण के प्रति लोगों का मोह इसको एक औद्योगिक स्वरुप प्रदान करता है। यही कारण है, कि सोना बेचने के लिए बड़ी-बड़ी ब्राण्डेड कम्पनियाँ और घराने इस व्यवसाय की ओर आकर्षित हुए हैं जैसे-तनिष्क, गीतान्जली, दिढमास, रिलायन्स आदि तथा बड़े-बड़े घराने जैसे भीमजी जवेरी, पी.सी. ज्वेलर्स, कटारिया ज्वेलर्स, डी.पी. ज्वेलर्स, एस.एस.जैम्स, संघवी एण्ड कम्पनी आदि घराने इस व्यवसाय में कूद पड़े हैं। जिसका मुख्य कारण भारतीयों का सोने के प्रति मोह ही है। क्योंकि वे त्यौहार, शादी ब्याह और अन्य अवसरों पर सोने की खरीदी करते हैं जिससे स्वर्ण उद्योग पनप रहा है।

स्वर्ण उद्योग में छोटे मजदूर, छोटी दुकानें और बड़ी-बड़ी फर्में सक्रिय हैं, जो स्वर्ण की आभूषण अलग-अलग डिजाईन और वैरायटियों में बनाते हैं तथा ब्राण्डेड कम्पनी के लिए भी काम करते हैं।

इस उद्योग में छोटे-छोटे व्यवसायी जो ब्राण्डेड तो नहीं होते किन्तु ग्राहकों का विश्वास इनके व्यवसाय को चलाने में सहायक सिद्ध होता है। छोटे शहरों में अधिकांश ग्राहक ऐसे ही दुकानों पर से स्वर्ण खरीदकर अपनी आवश्यकता को पूर्ण करते हैं। धीरे-धीरे ये छोटे व्यापारी ही आगे चलकर बड़ी-बड़ी व्यापारिक फर्म बन जाते हैं।

बड़े शहरों में स्वर्ण की खरीद करने वाला उच्च वर्ग ब्राण्डेड शोरुम से खरीदता है जिससे ये ब्राण्डेड शौरुम औद्योगिक इकाई का रुप ले लेते हैं और भारी मात्रा में मांग की पूर्ति करने के कारण ये अपने ग्राहकों को भारी छूट (Discount) भी देते हैं जो इस व्यवसाय में पहले कम ही देखी जाती थी।

विनियोग करने वाला वर्ग बैंकों के माध्यम से और अन्य सरकारी संस्थाओं के माध्यम से खरीदता है जिससे सरकारी तौर पर स्वर्ण की मांग उत्पन्न होती है और शासकीय कार्यो में स्वर्ण की उपलब्धता सरकारी मांग को बनाती है जैसे रिजर्व बैंक को नोट छापने के लिए स्वर्ण डिपाजिट मनी के रुप में अपने खजाने में रखना आवश्यक होता है। अत: शासकीय तौर पर भी स्वर्ण की मांग निरन्तर बनी रहती है।

****

* प्राध्यापक (वाणिज्य) **शोधार्थी (पीएच.डी) स्वामी विवेकानंद वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

'सहकारिता'-सामाजिक आर्थिक उत्थान का सशक्त आधार

डॉ. रोहित पाटीदार *

वैदिक काल से आज तक सहकारिता अपने बदलते हुए परिवेष में निरन्तर सामाजिक-आर्थिक सेवा एवं उन्नयन का आधार रही है। भविष्य में भी सहकारिताएं अपने स्वायत्त प्रयासी इकाई के रूप में विकास योजनाओं का वादन निरन्तर बनी रहेगी। आज सहकारिता की गंध मानव मन मस्तिष्क में इतने गहरे पैठ गई है, कि दुनिया का प्रत्येक मानव सहकारिता के दर्शन को मानता है और अपने जीवन में लागू करता है, चाहे वह इस बात को स्वयं जानता हो या न जानता हो। सच तो यह है कि मानव को वानर से नर बनने की दीर्घ विकास यात्रा ही सहकारिता से शुरू होती हैं। मानव के आदि जीवन-काल में सहकारिता के बीज ही थे, जिनके कारण मानव एकांकी से झुंड और झुंड से सामाजिक जीवन जीने हेतु अपने को तैयार कर पाया है।

ऋग्वेद में लिखा है कि - '' तुम सबका एक सामान्य लक्ष्य हो, तुम्हारे ह्रदय परस्पर मिले हुए हो, तुम सबके मस्तिष्क एक हो, जिससे कि तुम कुशलता से कार्य कर सकों''।

सहकारिता व्यक्तियों का एक ऐच्छिक संगठन है जो लोकतंत्र, समानता तथा आत्म सहायता के आधार पर निजी हित तथा सम्पूर्ण समुदाय के हित में काम करता है। यह एक सामाजिक तथा आर्थिक आंदोलन है, जिसका आधार सेवा है, न कि लाभ।

सहकारिता का बोध वाक्य है - ''बिन सहकार नहीं उद्धार'' अर्थात् सभी मिल जुलकर कार्य करेंगे तो ही विकास हो सकता है। सहकारिता में साथ में मिलकर कार्य करने की प्रेरणा होती है। विष्व साहित्य में आशा, विश्वास और उत्साह के स्त्रोत के रूप में इन्द्रधनुष वर्णित है। मानव समाज ने इसे आशा के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया तथा इसके विभिन्न रंगों के सम्मिश्रण ने उसमें सुसम्बन्धता के भाव जाग्रत किया है। सहकारिता के लक्ष्य एवं आदर्षो को सही मायने में प्रतिकात्मकता प्रदान करने के लिए इन्द्रधनुषी सप्तरंगों की अपेक्षा और कौन सा साधन सफल हो सकता है ?

क्योंकि सात रंगों की इन्द्रधनुषी क्षमता, एकरूपता के रूप में सहकारिता के अंदर निराशा में आशा सामंजस्य और विभिन्नता में एकता तथा पूर्ण शान्ति अलग-अलग रंगों के सौजन्य से निर्मित होकर भी एक रूप हो जाता है, जो विविधता में एकजुटता का प्रतीक है। इसी प्रकार सहकारिता में भी सब प्रकार के जाति, वर्ग व रंग आदि भेदभाव से उठकर अन्र्तराष्ट्रीयता की भावना को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करने के लिए इन्द्रधनुष के रंगो से सजे सतरंगे झंडे को अपनाया है, सहकारी ध्वज सात रंगों के स्वाधीनता के प्रतिक का आधार मानकर अपनाया गया इस ध्वज के सात रंगों में लाल रंग- आर्थिक स्वाधीनता, केसरिया रंग - सामाजिक स्वाधीनता, पिला रंग - नैतिक स्वाधीनता, हरा रंग - राजनैतिक स्वाधीनता, नीला रंग - कृषि स्वाधीनता, आसमानी रंग - उद्योग व्यापार स्वाधीनता तथा जामुनी रंग - कला, शिक्षा की स्वाधीनता के प्रति, सहकारिता जीवन की सभी समस्याओं को हल करने का एक उत्तम और सर्वांगीण साधन है, इस कारण अधिकांश क्षेत्र में सहकारिता की डगर को चुनकर ही उन्नति और प्रगति का मार्ग प्रषस्त किया जा रहा है।

श्री एम.टी.हैरिक ने सहकारिता की संक्षिप्त परिभाषा देते हुए कहा है कि 'सहकारिता स्वेच्छा से संगठित हुए व्यक्तियों का कार्य है, जिसमें वे उनकी शक्ति, साधनों का दोनों का उपयोग सम्मिलित व्यवस्था के अंतर्गत लाभ या हानि के लिए करते है। ''

सहकारिता दर्शन :-

सहकार का शाब्दिक अर्थ परस्पर मिलकर कार्य करना है, किन्तु इसकों इस शाब्दिक अर्थ भर में समझना संकुचित दायरों की सोच का प्रतिबिम्ब करना ही होगा सहकार एक संजीवनी है, जो मानव स्वभाव के कारण प्राचीनतम खोज है आखेट युग से अब तक मानव के प्रत्येक विकास में एक-एक और अनेक ने मिलकर सभ्य समाज की रचना ही है, मानव के विभिन्न आयामों में सहकारिता में दर्शन के समाहीकरण के कारण ही मानव आज तक प्रगति के उच्चतम, शिखर पर पहूंच सका है।

हमारे देश की संस्कृति भी आदिकाल से ही सह अस्तित्व एवं परस्पर सहयोग के सिद्धांत को प्रतिपादित करती है। इन्ही सिद्धांत में कार्यरत समाज एक दूसरे पर निर्भरता के आधार पर अपना लक्ष्य प्राप्त करता है। इसमें धर्म, जाति, नस्ल, लिंग, भाषा एवं अमीरी - गरीबी की रेखाएं अपने आप लुप्त हो जाती है एवं बडी से बडी आर्थिक समस्याओं का समाधान सहकार के माध्यम से किया जा सकना संभव हो जाता है। तथा यह एक ऐसे अस्त्र के रूप में कार्य करता है, जिसमें गरीबी रूपी दानव को असहाय एवं गरीब जनता द्वारा एक होकर आसानीसे मारा जा सकता है। एवं समानता पूर्ण समाज की रचना की जा सकती है।

इस दर्शन का आधार समानता सामुहित प्रयास, सामुहित चेतना व एकता की भावना है। यह ऐसा संगठन है, जो समस्याओं का समाधान सामुहिक व प्रभावशाली विधि से करता है, और एक ऐसी जीवन प्रणाली है, जो समाज के कमजोर वर्ग को इस योग्य बनाती है कि वे विभिन्न क्षेत्रों जैसे उद्योग, वाणिज्य या व्यवसाय के क्षेत्र में अपने से अच्छी स्थिति वाले लोगों से समान रूप से प्रतिस्पर्धा कर सके एवं कृषि के क्षेत्र में उन्नति कर आत्मनिर्भर बन सकें। यह व्यक्ति प्रधान व्यवस्था है, न कि पूंजी प्रधान व्यवस्था है। इसी कारण इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता के दर्शन भी देखने को मिलते है।

सहकारिता का दर्शन एक सबके लिए व सबसे एक के लिए पर आधारित है, जो न केवल एकता व सहयोग को जन्म देती है। वरन् जीवन में आनंद, त्याग, सहानुभुति, एकता करूणा आदि को भी संचारित तथा प्रोत्साहित करती है। इसी की मुल भावना इस आधार पर आधारित है कि समाज के व्यक्ति परस्पर मिलकर स्वेच्छा से कार्य करें व स्वयं ही विकास के मार्ग को ढुंढे । इस अर्थ में सहकारिता आत्म-निर्भरता की दिशा में एक पहल है। सहकारिता की अपनी विशेषताएं होती है।

इनका अपना दर्शन है, इसका एक दार्शनिक आधार है। इन समस्याओं का सामाजिक व आर्थिक उद्देश्य होता है। प्रायवेट लिमिटेड व पब्लिक सेक्टर से अलग एक दृष्टिकोण होता है। इनका संचालन मुल्यों के आधार पर प्रजातांत्रिक तरीके से किया जाता है। जिसमें नैतिक मूल्यों को महत्वपूर्ण मानने के साथ-साथ बाजार मूल्यों पर भी ध्यान दिया जाता है। इसमें आम व्यक्ति की हिस्सेदारी की व्यवस्था की वकालत की जाती है। राष्ट्र पिता

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, जोबट जिला-अलीराजपुर (म.प्र.) भारत

महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज्य की कल्पना को साकार करने में सहकारिताएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

पंजीयन, सिद्धांत व उद्देश्य :-

* **पंजीयन** - साख सहकारिता मर्यादित संस्थाओं का पंजीयन ''म.प्र. स्वायत्त सहकारिता अधिनियम 1999 के अंतर्गत किया जाता है। इसका पंजीयन कार्यायल सहायक आयुक्त (प्रशासन) सहकारिता जिले में किया जाता है। इसकी आदर्श उपविधियां निम्नलिखित है।
* **अधिनियम** :अधिनियम से तात्पर्य म.प्र. स्वायत्त सहकारिता अधिनियम 1999 से है।
* **सहकारिता वर्ष** : सहकारी वर्ष से तात्पर्य है 31 मार्च को समाप्त होने वाले वर्ष से है।
* **धारा** : धारा से तात्पर्य स्वायत सहाकारिता अधिनियम की धाराओं से है।
* **उपविधियाँ** : उपविधियाँ से तात्पर्य इस अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत सहकारिता अथवा पंजीकृत मान्य की गयी उपविधियों से है , तथा जो तत्समय प्रवृत्त हो ओर उनके अंतर्गत उपलब्धियों को कोई पंजीकृत संशोधन आता हो।
* **रजिस्ट्रार** : धारा 3 के अधिन राज्य सरकार के लिए किसी व्यक्ति को सहकारिता का रजिस्ट्रार से है, अथवा उस अधिकारी से है जिसे सहकारिता से संबंध में रजिस्ट्रार की शक्तियों का प्रयोग करने हेतु शासन द्वारा प्राधिकृत किया है।
* **लाभांश** : लाभांश से तात्पर्य किसी सदस्य को उसके द्वारा धारित अंषो के मूल्य के अनुपात में सहकारिता के लाभ में से चुकाई गई रकम से है।
* **सदस्य** : सदस्य से तात्पर्य इस सहकारिता के रजिस्ट्रीकरण संबंधित संयोजन में सम्मिलित कोई व्यक्ति/महिला जिसे रजिस्ट्रेशन के बाद उपविधियों के अनुसार सदस्यता प्रदान कर दी गयी हो।
* **अध्यक्ष** : अध्यक्ष से अभिप्राय है कि वैतनिक या अवैतनिक हैसियत वाला वह व्यक्ति जिसे उपविधियों से अनुसार बोर्ड द्वारा सदस्यों, निर्देशकों या अन्य में से नाम निर्दिष्ठ या निर्वाचित या नियुक्त किया गया हो जो ऐसे कर्त्तव्यों का पालन करेगा। जिसमें ऐसे उत्तरदायित्व होंगे, और जो ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेंगा जो उपविधियों में विनिर्दिष्ट है, तथा बोर्ड द्वारा समुनिर्देशित की गयी है।
* **कार्यक्षेत्र** : कार्यक्षेत्र से तात्पर्य वह क्षेत्र जहां से सदस्यता ली जाती है।
* **बोर्ड** : बोर्ड से अभिप्रेत है सहकारिता का कोई शासी निकाय जो चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हो तथा संचालक में प्रबंधकारिणी अथवा किसी भी नाम से पुकारी जाती हो जिसे उपविधियों के अधिक सहाकारित के कार्यकलाप के निर्देश सौंपे गये है।
* **प्रबंध/कर्मचारी** : से तात्पर्य संस्था के कार्य संचालन के लिए संचालक मण्डल/प्रबंधकारणी /बोर्ड द्वारा नियुक्त सेवारत कर्मचारी/अधिकारी से है।
* **राज्य शासन** : राज्य शासन से तात्पर्य मध्यप्रदेश शासन से है।
* **सेवानियम** : सेवानियमों से तात्पर्य अधिनियम की धारा के अंतर्गत संचालक मण्डल प्रबंधकारिणी बोर्ड द्वारा प्रसारित सेवा नियमों से है।
* **सहकारिता** : उपविधि क्रं. 1 में वर्णित सहकारिता से है, इस अधिनियम के अधिन रजिस्ट्रीकृत उन व्यक्तियों की स्वायत्त संस्था जो संयुक्त स्वामित्व के और लोकतांत्रिक उद्यम के माध्यम से अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए स्वेच्छा से संयोजित हुए है।
* **प्रतिनिधि** : प्रतिनिधि से अभिप्रेत है, वह सदस्य जो किसी सहायक सहाकारिता की प्रोन्नति के समय तथा ऐसी सहायक सहाकारिता के जिससे वह सहकारिता संबंध है सम्मिलन के समय उसके हित का प्रतिनिधित्व करने के लिए उसके द्वारा नाम निर्दिष्ठ किया गया है या अन्य सहकारिता में प्रतिनिधित्व के लिए निर्वाचित किया गया है।
* **निदेशक** : निदेशक से अभिप्रेत है बोर्ड के निदेशक से है।
* **विनिर्दिष्ठ पद**: से तात्पर्य अध्यक्ष/सभापति के पद से है। ऐसी उपविधियां जो इन उपविधियों में वर्णित नहीं है उनकी व्याख्या म.प्र. स्वायत्त सहकारिता अधिनियम 1999 में दी गयी परिभाषा से की जायेगी।

साख सहकारिता के सिद्धांत:-

* **स्वैच्छिक व खुली सदस्यता:-** सहकारिता संस्थाऍ संगठन है, बिना किसी जाति वर्ग, धर्म राजनीतिक विचारधारा आदि के कृत्रिम, प्रतिबंध या भेदभाव के उन समस्त व्यक्तियों के लिए सदस्यता खुली हुई है, जिन्हे समिति की सेवाओं का उपयोग करने की पात्रता है, और सदस्यता के उत्तरदायित्व और कर्त्तव्यों का निर्वाह करने को तत्पर है।
* **लोकतांत्रिक सदस्यता नियंत्रण:-** सहकारी संस्थाए प्रजातांत्रिक संस्थाए है। जिनका नियंत्रण, नीतियों का निर्धारण निर्णय कर उनका क्रियान्वयन सदस्यों द्वारा किया जाता है, जो सक्रिय भागीदारी करते है, अपनी सेवाए देने वाले चुने हुए पुरूष व महिला प्रतिनिधि सदस्यों के प्रति उत्तरदायित्व होते है। संस्थाओं में सदस्यों के समान मताधिकार (एक व्यक्ति एक मत) है।
* **सदस्यों की आर्थिक भागीदारी:-** सदस्य अपनी संस्थाओं की पूँजी में न्यायिक योगदान करते है और लोकतांत्रिक रीति से नियंत्रण रखते है, सदस्यता की एक शर्त के रूप में सदस्य अपनी दी गई पूँजी के अनुपात उसका सीमित लाभ प्राप्त करते है। शेष आधिक्य का विभाजन सदस्यों द्वारा किया जाता है, जैसे संस्था की प्रगति व विकास के लिए प्रावधान करने हेतु सदस्यों का संस्था के साथ किये गए कारोबार व्यवहार के अनुपात में लाभांस देने और सदस्यों द्वारा स्वीकृत अन्य गतिविधियों के विकास में उपयोग हेतु किया जाता है।
* **स्वायत्त और स्वतंत्रता:-**सहकारी संस्थाए उनके सदस्यों द्वारा नियंत्रित स्वायत्त, स्वतंत्र और स्वावलम्बी संगठन है। यदि वे सरकार या किसी अन्य संगठन के साथ कोई संविदा या अनुबंध करते है । अथवा बाहरी साधनों से अपनी पूँजी बढाते है तो वे यह कार्य उन शर्तो पर करते है, जिससे उनके सदस्यों का प्रजातांत्रिक नियंत्रण व सहकारी समिति (संस्थाओं) की स्वायत्ता बनी रहें।
* **शिक्षा प्रशिक्षण ओर सूचना:-** सहकारी संस्थाए, अपने सदस्यों, संचालकां, पदाधिकारियों, प्रबंधकों और कर्मचारियों के शिक्षा प्रशिक्षण की व्यवस्था करती है, ताकि वे संस्थाओं में विकास में प्रभावी योगदान दे सकें तथा वे सामंजस्य युवा वर्ग एंव नेतृत्व योग्य लोगों में सहकारिता के तत्वों और लाभों से अवगत करा सकें।
* **समुदाय के प्रति सहयोग एवं निष्ठा:-** सहकारी संस्थाए अपने सदस्यों को अधिकतम प्रभावी ओर उपयोगी सवोओं की आपूर्ति करती है। सहकारी संस्थाए अपने सदस्यों द्वारा स्वीकृत नीतियों के माध्यम से समाज के हितार्थ समुचित विकास के लिए उत्सुक और चिन्तित रहती है।

साख सहकारिता मर्यादित संस्थाओं की योजनाए:-

* **जमा योजना:-**सावधि जमा योजना, मासिक आय योजना, सावधि

जमा पर, अधिविकर्ष सुविधा, महिला ग्रह बचत योजना, बचत खाता योजना, दुर्घटना बीमा योजना, आवृत्ति जमा योजना, लॉकर योजना, उत्सव योजना, डबल डिपाजिट योजना तथा डेली जमा योजना

* **ऋण योजनाए:** लघु एवं गृह उद्योग ऋण योजना, अवासीय ऋण योजना, उपभोक्ता ऋण योजना, वाहन ऋण योजना तथा विकास ऋण योजना।
* **संस्थाओं की लेखांकन प्रक्रिया:-** साख सहकारिता मर्यादित संस्थाओं में उक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से लेखा को निम्नलिखित रिकार्ड और विलेखों की संवीक्षा करना आवश्यक होता है।
  - 31 मार्च के लेखा परीक्षित वित्तीय विवरणीयॉ।
  - संस्थाओं का मिलान विवरणी जमा खाता और उधार खाता के साथ बैंके/बैंकों द्धारा जारी बकाया पुष्टि प्रमाण पत्र।
  - ऋणों जमा राशियों देनदारों, निवेषों अन्य अस्तियों और स्टॉक के अंतर्गत अलग-अलग मदों के लिए बकाया राशियों की सूची जर्नल लेजर/बेलेन्स शीट के साथ इनका मिलान।
  - 31 मार्च की तारीख स्टॉक और निवेषों के भौतिक सत्यापन का प्रमाण पत्र रिपोर्ट
  - 31 मार्च की स्थिति में मांग, वसुली ओर बकाया स्थिति।
  - जर्नल लेजर, केशबुक और लोन लेजर आदि का मिलान करना आदि।

साख सहकारी संस्थाओं की समस्याएँ :-

ऋण देने की प्रक्रिया में विलम्ब होना, सहाकारी संस्थाओं में कम्प्यूटरीकृत न होना, कर्मचारियों की कमी एवं उपलब्ध कर्मचारियों में कुशलता का अभाव, सहकारी जागरूकता तथा उपयुक्त नेतृत्व की कमी ऋण वितरण में हितग्राही का सही चयन न होना, ऋण वितरण/वसूली तथा अन्य कार्यो में भ्रष्टाचार तथा लोगों में बचत करने की प्रवृत्ति में कमी।

सुझाव :

साख सहकारिता मर्यादित संस्थाओं को इन समस्याओं के निराकरण हेतु इन उपायों पर ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक कर्मचारी को शिक्षित, प्रशिक्षित कर कुशल बनाना चाहिए।

- लोगों में अधिक से अधिक बचत की भावना को बढ़ावा देना चाहिए।
- ऋण की स्वीकृति के पूर्व ऋण लेने वालों की सम्पूर्ण जानकारी ली जाए एवं ऋण लेने वालों की सम्पूर्ण जानकारी ली जाए एवं ऋण वितरण के बाद यह भी देखे कि ऋण वितरण का समुचित उपयोग हो रहा या नहीं।
- ऋण स्वीकृति जिस कार्य के लिए कठिनाईयों को विशेष रूप से ध्यान रखकर उसे दूर किया जाए।
- ऋण स्वीकृति जिस कार्य के लिए दिया जा रहा है उस कार्य की उत्पादकता में वृद्धि को ध्यान रखा जाए।
- छोटे ऋणों वाले सदस्यों की कठिनाईयों को विशेष रूप से ध्यान रखकर उसे दूर किया जाए।
- ऋण वितरण प्रक्रिया में संसोधन कर प्रक्रिया को ओर सरल बनाया जाए।
- संस्थाओं में कम्प्यूटरीकरण होना।
- कर्मचारियों की कमीयों को दूर करना।
- वर्तमान सहकारिताओं को आत्मनिर्भर और सक्षम इकाई बनाने के लिए सहकारिता विधान में और प्रावधान करना चाहिए।
- जिन संस्थाओं में महिलाए सदस्य है। उनमें निहित प्रक्रियाओं का ऐसा सरलीकरण किया जाना चाहिए ताकि वे महिलाओं के कार्य के विकास में सुधार हो सकें।

निष्कर्ष :-

'सहकारिता' का सिद्धांत उतना ही प्राचीन है जितना की मानव समाज क्योंकि घरेलु और सामाजिक जीवन सहयोगपूर्ण कार्य पर आधारीत होते है हम जिसे सहयोगपूर्ण अथवा सहकारी प्रयास कहते है, वह अन्तत मानव की सामुहिक प्रवृत्ति एवं भावना ही है, जो उसे साथ रहने मिलकर कार्य करने तथा कठिनाई में एक दूसरे की सहायता करने हेतु प्रेरित करती है।

सहकारिता में एक व्यक्ति सबके लिए और सब एक के लिए, की भावना को विशेष महत्व दिया जाता है। यह भावना न केवल एकता एवं सहयोग को जन्म देती है। वरन् जीवन में स्नेह आनन्द त्याग सहानुभूति श्रद्धा एवं करूणा को संचारित एवं प्रोत्साहित भी करती है।

संदर्भ :

1. सवायत्त सहकारी सोसायटी अधिनियम 1999 प्रकाशन इन्दौर
2. सहकारी सोसायटी अधिनियम 1960 मदनलाल जिंदल एडवोकेट प्रकाशन राजकमल पब्लिकेशन इन्दौर
3. बैंकिग एक परिचय इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ बैंकिंग एंड फायनेंस, नईदिल्ली
4. सहकारिता डॉ. एम.आर.जान, डॉ. युनुस जान क्वालिटी पब्लिसिंग भोपाल
5. सहकारी सोसायटी अधिनियम 1960 सी.पी.सिंह सुविधा आफ हाउस प्रा.लि.भोपाल
6. सहकारिता के 100 वर्ष प्रकाशन प. नि. जिला सहकारी संघ मर्यादित खरगोन।

****

महिला सशक्तिकरण की प्रतीक प्रो. डॉ. सुमित्रा वास्कले

प्राचार्य–शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय खरगोन (म.प्र.)

''भुखला त भुखला पर सुखला त हतें'' अर्थात, भूखे ही सही लेकिन सुख से तो हैं। घोर अभावों में सुख का अनुभूत करने वाली जनजातियों में 'आदिवासी' उपजाति बारेला पश्चिम निमाड़ मध्यप्रदेश की भीली जाति की एक उपजाति हैं। यह एक शान्ति प्रिय स्वाभिमानी एवं मेहनत कर अपना जीवन यापन करने वाली जाति हैं।

इसी आदिवासी जनजाति के चाटली ग्राम तहसील सेंधवा जिला बड़वानी पश्चिम निमाड़ के एक कृषक परिवार में डॉ. सुमित्रा वास्केल का जन्म हुआ। शाला में प्रवेश के दौरान उनकी शिक्षिका ने उनका जन्म 9 जुलाई 1956 अंकित किया था। घोर अभावों में इनका बचपन बीता। प्रारम्भिक शिक्षा कान्ता बहन त्यागी 'समाज सेविका' द्वारा स्थापित कस्तूरबा वनवासी कन्या आश्रम निवाली में हुई। तत्पश्चात् स्नातक उपाधि शासकीय स्नातक महाविद्यालय, सेंधवा से प्राप्त की। स्नातक करने के पश्चात् टेलीफोन आपरेटर की नौकरी करते हुए डॉ. वास्केल ने आगे की उच्च शिक्षा भी जारी रखी। इसी दौरान 1982 में श्री उमरावसिंह वास्केल से विवाह हुआ। विवाह के पश्चात क्रमश: 1985 में हायर सेकेण्डरी लेक्चरर एवं 1987 में उच्च शिक्षा विभाग में सहायक प्राध्यापक हिन्दी विषय पद पर अपनी सेवाएँ शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन में प्रदान की।

1992 में इनके पति श्री उमरावसिंह वास्केल का आकस्मिक निधन हो गया। इस घोर विपत्ति के समय डॉ. वास्केल ने अपने धैर्य को बनाये रखा एवं अपने दो बच्चों की परवरिश के साथ ही शासकीय सेवा कार्य पूरी निष्ठा से जारी रखा। ससुराल पक्ष एवं माता पक्ष का सम्बल मिलने से इनके जीवन में आया कठिन समय इन्हें डिगा नहीं सका, जीने की जीजिविशा के साथ समस्त विपत्तियों को दरकिनार करते हुए सम्पूर्ण ऊर्जा एवं सकारात्मक दृष्टिकोण लिये जीवन में आगे बढ़ती रही।

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन में सहायक प्राध्यापक 'हिन्दी' के रूप में पदस्थ हुई थी, और यही पर प्राध्यापक की पदोन्नति भी हुई। सन् 2010 में स्नातक प्राचार्य के रूप में शासकीय कन्या महाविद्यालय, खरगोन में पदोन्नत हुई। एक वर्ष पश्चात 2011 में स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन में प्राचार्य के पद पर स्थानान्तरण हो गया। तब से निरन्तर इसी महाविद्यालय में प्राचार्य के रूप में सेवाएं दे रही है। वर्तमान में स्नातकोत्तर प्राचार्य पद पर पदोन्नति भी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय खरगोन में ही हुई हैं।

शासकीय सेवा के अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र को अपना कार्य क्षेत्र चुना हैं । उनका मानना हैं कि अभी भी आदिवासी क्षेत्र में शिक्षा का अभाव हैं। समाज मेंअन्धविश्वास व्याप्त हैं, आदिवासी समाज देश की मुख्य धारा से जुड़ नहीं पाया हैं। जितना सम्भव हो सके आप समाज के हित में कार्य करती रहती है। महिलाओं को जागरूक करने का प्रयास करती हैं। आपके प्रयास से निम्न आय वर्ग की कई महिलाओं ने न केवल अक्षर ज्ञान प्राप्त किया बल्कि औपचारिक शिक्षा ग्रहण कर शासकीय सेवा में भी कार्यरत हुई हैं। अपने निवास के आस–पास रहने वाले मजदूरों के बच्चों को अवकाश के दिन पढ़ाती है, जब भी अवसर मिलता हैं सुदूर आदिवासी अंचल में जाकर शिक्षा तथा पर्यावरण से वहाँ के जनजातीय लोगों को जोड़ने का अथक प्रयास करती है क्योंकि आप जानती हैं कि जनजातीय जीवन में प्राकृतिक संतुलन का महत्वपूर्ण स्थान जीविका के लिये होता हैं।

महाविद्यालय में शैक्षणिक एवं प्रशासनिक कार्य के अतिरिक्त उच्च शिक्षा में गुणवत्ता वृद्धि के लिए निरन्तर नवाचार करने का प्रयोग करती रहती हैं जिससे न केवल अध्ययनरत विद्यार्थी बल्कि कार्यालयीन स्टॉफ एवं शिक्षकगणों का सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास होता हैं। अपने सहज व्यवहार से महाविद्यालय को एक पारिवारिक वातावरण में परिवर्तित कर दिया हैं जिससे विद्यार्थी, कार्यालयीन एवं शैक्षणिक स्टॉफ सभी उत्साह एवं पूर्ण निष्ठा से कार्य का निर्वहन कर श्रेष्ठ परिणाम देने का प्रयास करते है।

'नवीन शोध संसार' आपकी सेवाओं को सादर प्रणाम करता है एवं आपके उज्जवल भविष्य की कामना करता है.

'अद्वितीय प्रतिभा के धनी'

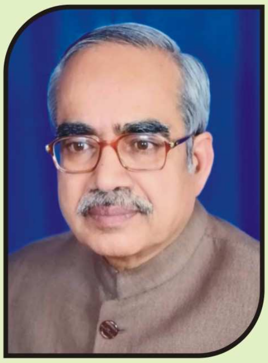

प्रो. डॉ. मोहनलाल छीपा

(कुलपति, अटल बिहारी वाजपेयी, हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल)

''कौन कहता है कि, आसमां में छेद नहीं हो सकता, एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों!''

यह कथन प्रो. डॉ. मोहन लाल छीपा पर चरितार्थ होता है। आपने अपनी मेहनत एवं प्रतिभा से जो कार्य किये है किसी आसमां में छेद करने से कम नहीं है। आपका जन्म आजादी के 3 वर्ष बाद 25 अगस्त 1950 में हुआ। बचपन से ही शिक्षा में अग्रणी रहे कक्षा में हमेशा अव्वल एवं विद्यालय के सभी शिक्षकों के चहेते रहे। अपने शिक्षण वर्षो में उन्हें कई परेशानियों का सामना करना पड़ा। मगर अपने दृढ़ निश्चय से उन्होंने सभी बाधाओं को पार किया।

आपने बी.ए. आनर्स किया, फिर एम.ए. (अर्थशास्त्र) और फिर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। देश में कई छात्रों को अच्छी शिक्षा ना मिलते देख आपने शिक्षा जगत को ही अपनी कर्म भूमि के रूप में चुना और संकल्प लिया कि, जहां तक संभव हो सके आप छात्रों को उच्च स्तरीय शिक्षा देने में प्रयासरत रहेंगे। इस संकल्प को पूरा करते हुए आपको शिक्षा जगत में 41 से अधिक वर्ष हो चुके है। जिसमें अध्यापन का 38 वर्ष का अनुभव एवं प्रशासकीय अनुभव (कुलपति के रूप में) 3 वर्षो का अनुभव सम्मिलित है।

आपने, अपने अब तक के कार्यकाल में 100 से अधिक अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संगोष्ठियों/सम्मेलनों में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई है। 10 से अधिक संगोष्ठियों/सम्मेलनों का आयोजन किया है। 50 से अधिक एम.फिल के छात्रों को शोध में निर्देशन दिया है। 20 से अधिक छात्रों को आपके शोध निर्देशन से ही पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई है। आपकी इसी प्रतिभा को देखते हुए, आपको शैक्षणिक कार्य हेतु विदेश जाने का अवसर प्राप्त हुआ जिसमें जर्मनी, इंग्लैण्ड, फ्रांस, नोर्वे, पोलेण्ड, दक्षिण अफ्रीका, स्वीडन आदि देश शामिल है।

आपके शिक्षण कार्यो के प्रति समर्पण को देख कर कई शिक्षण मण्डल एवं संस्थानों के द्वारा आपको अध्यक्ष, आजीवन सदस्य एवं सदस्य के रूप में मनोनीत किया गया। जिसमें आप राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, बीकानेर विश्वविद्यालय, बीकानेर, कोटा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर, राजस्थान, भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय मेरठ, हिन्दी ग्रंथ अकादमी राजस्थान आदि में अपनी सेवाएं दे रहे है।

आप राष्ट्रपति के द्वारा उत्तर-पूर्व पहाड़ी विश्वविद्यालय, शिलांग में राष्ट्रपति के मनोनीत सदस्य भी है। साथ ही आप महर्षि दयानंद सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर में कुलपति भी रह चुके है। वर्तमान में आप अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल में कुलपति के रूप में कार्यरत है। यहां आपके द्वारा हिन्दी भाषा के विकास एवं विस्तार पर जो कार्य किया जा रहा है वह अत्यंत प्रशंसनीय है जिससे हमारे देश की आने वाली पीढ़ी को लाभ अवश्य मिलेगा।

उज्जवल भविष्य की शुभकामनाओं के साथ – 'नवीन शोध संसार'